वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड : चार

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन, बी-19,
  न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765
  मो. : 09829547773

- **राजस्थानी ग्रंथागार**
  सोजती गेट
  जोधपुर (राज.) 342001
  दूरभाष : 0291-2623933

- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667

- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27
  नोएडा 201301
  दूरभाष : 0120-2538101
  मो. : 09871143768

- **सर्वोदय बुक स्टॉल**
  प्रकाश नारायण चौहान
  प्लेटफॉर्म नं. 1/2, 3/4,
  मुगलसराय
  मो. : 09452072003

- **विश्वविद्यालय प्रकाशन**
  चौक, वाराणसी 221001
  फोन : 0542-2413741,
  2413082
  फैक्स : 0542-2421472
  E-mail : sales@vvpbooks.com

- **लोकहित प्रकाशन**
  संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
  लखनऊ 226004
  फोन : 0522-2691384,
  2691358

मानव प्रबोधन प्रन्यास

शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003

वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता
डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड : चार

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

संकलन में सहयोगी

श्री वृजभूषण ओबराय

अंग्रेजी लेखों के हिन्दी अनुवादक

श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय

आशीर्वचन

परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी

परामर्श मण्डल

प्रकाशक :
शिवार्चन प्रकाशन
मानव प्रबोधन प्रन्यास
श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर
शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003
दूरभाष : 0151-2230982, 2239903
मो. : 09413769139

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास
खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व
खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान
खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता
खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रथम संस्करण : 2012 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : सात सौ रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003

VEDANT DARSHAN KI VAIGYANIKATA (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 700



पूज्य पिताजी श्री धर्मचंद ओबराय

एवं

पूज्य माताजी श्रीमती रामकौर ओबराय

को

डॉ. हरवंशलाल ओबराय की यह कृति सादर समर्पित है।

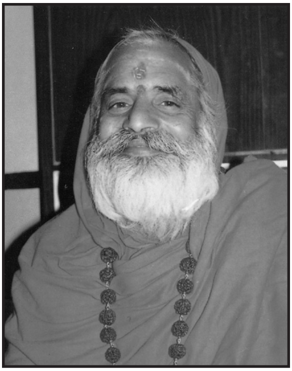
प्रस्तुतकर्ता :

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

ॐ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का



विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

असंख्य महाप्रलयों को, ब्रह्माओं को, कल्पों-मन्वन्तरों और युगों के रूप में प्रवाहित यह अनादि सृष्टि हर कालखण्ड में अपनी विशिष्ट साज-सज्जा को अनावृत करती है। जिस कालखण्ड में तम की शक्तियां प्रकाश की शक्तियों को पराजित कर अट्टहास करती हैं उसी कालखण्ड में तब अवतारों और महापुरुषों के रूप में परम-तत्त्व की मुक्त मुस्कान मानव को प्रेम, शान्ति और सुख का अनुभव कराती है—दिव्य-प्रकाश को फैलाती है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

स्व. डा. हरवंशलाल ओबराय की रचनाओं को इन ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत करने में उनके भ्रातात्रय (डॉ. मदनलाल ओबराय, श्री वृजभूषण ओबराय, श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय) का सब प्रकार से श्लाघनीय सहयोग रहा है। उनके इस भावपूर्ण सहयोग के अभाव में ग्रंथों का प्रकाशन असंभव हो जाता। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। उन पर तथा उनके समूचे कुल पर प्रभु की कृपा बरसती रहे—यह शुभ कामना है।

—स्वामी संवित् सोमगिरि

सम्पादकीय

न तो पश्चिम को 'और' न अरब राष्ट्रों को भारत की राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, भाषा, महापुरुष, मान बिन्दुओं, श्रद्धा के केन्द्रों एवं इतिहास आदि के विषय में कोई भ्रान्ति है। विश्वप्रसिद्ध अमरीकी इतिहासज्ञ विल डूरेन्ट स्पष्ट रूप से कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्म स्थली था और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी है। भारत हमारे दर्शन की जननी था, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी था, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी और ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी था। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

इसी बात की पुष्टि में क्रूजर (Creuzer) भी कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

जामा मस्जिद के शाही इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी जब मक्का गये तो वहां के एक निवासी ने पूछा—'आप हिन्दू हैं?' शाही इमाम ने चौंककर कहा—'नहीं-नहीं, मैं मुसलमान हूँ।' बाद में उन्होंने प्रश्नकर्ता से पूछा—'आपने मुझे हिन्दू क्यों कहा?' तो उसका सहज उत्तर था—'इसलिये कि आप हिन्दुस्तान से आये हैं।'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दि. 1.5.1977)

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अरनाल्ड टॉयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्राकथा का सर्वेक्षण करने के बाद लिखा है—यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्मविनाश में अन्त न होना हो तो यहां (भारत में) हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए

एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है। और इस आणविक युग में सर्वनाश से बचने का यह एकमात्र विकल्प है।

हे भारत! तू इससे पहले कि पश्चिम अपनी घोर नास्तिक और भोगवादी सभ्यता से निराश हो, शान्ति के लिए तरसता हुआ, अति व्याकुल तुम्हारी शरण में आवे कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिए अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपने घर को मत फूंक डालना।

विल डूरेन्ट
Story of Civilisation
Story of Philosophy

स्पष्ट है कि न पश्चिम को और न अरब राष्ट्र को भारत की राष्ट्रीयता के विषय में कोई भ्रान्ति है। और पूर्व (पहले) की भांति भारत ही उनका आशा का केन्द्र है और भारत से ही भविष्य में मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते हैं। क्योंकि आज के आधुनिक युग में पश्चिम ने चाहे जितनी प्रगति कर ली हो, जैसे—वह आकाश में पक्षियों की भांति उड़ सकता है, समुद्र में मछलियों की भांति तैर सकता है। पर मानव की भांति पृथ्वी पर रहना उसे भारत से ही सीखना होगा। आज पश्चिमी जगत् विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में श्रेष्ठता के लिए जाना जाता है। पर उसके पास वह दृष्टि, वह भावना, वह कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व नहीं जो मानव मात्र को सुख-शांति व आनन्द दे सके। पूर्णता तक ले जा सके। मोक्ष दे सके। जीवन की समस्याओं का समाधान दे सके।

जब भारत के प्रति पश्चिम की दृष्टि स्पष्ट है। तब स्वयं भारत, वह भी स्वाधीनता के पश्चात् के काल में कैसे भ्रान्त और पथच्युत होकर भटक गया?

अंग्रेजों से पूर्व भारत की सम्पन्नता से आकृष्ट होकर जितने भी विदेशी आक्रान्ता आये, अपने रहन-सहन, भाषा, आचार-विचार, मजहब आदि सभी आधारों पर हम उन्हें मलेच्छ ही समझते रहे। वे कभी भी, किसी भी आधार पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित नहीं कर सके, हमारे आदर के पात्र नहीं बन सके। चाहे वह ग्रीक, शक, हूण, कुषाण हो। मुगल, तुर्क, पठान हों चाहे फ्रेंच, डच, पूर्त हों। इसलिये ये कभी भी न हमारे हृदय में प्रवेश कर सके और न हमारे घरों में। पर अन्तिम आक्रान्ता अंग्रेज बड़ा ही धूर्त और चालाक था। उसने देखा यहां सब प्रकार की विविधता, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, पूजा पद्धति, भाषा, अनेकों दार्शनिक धाराओं के बाद भी यह राष्ट्र एक कैसे है? इनको जोड़ करके रखने वाला सूत्र कौनसा है? तब उसने पाया यहां का धर्म, दर्शन, संस्कृति सारे देश को एकसूत्र में पिरोये हुए है। इसका धारक, वाहक, प्रचारक यहां का ब्राह्मण वर्ग है। संन्यासी वर्ग है। प्रत्येक हिन्दू को अपने देश, धर्म, जाति, इतिहास, भाषा, अपने आचार-

विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा पर गर्व है। इस देश से बढ़कर कोई देश नहीं जो सृष्टि के आरम्भ से है और अन्त तक रहने वाला है। हमारी जाति से बढ़कर कोई जाति नहीं और हमारे धर्म, भाषा, संस्कृति से बढ़कर कोई धर्म, भाषा, संस्कृति व इतिहास नहीं। इन सबके रहते हुए इन पर दीर्घकाल तक न शासन किया जा सकता है और न ही इन पर केवल तोप-तलवार के बल पर दीर्घकाल तक शासन किया जा सकता है। नहीं तो इस्लाम सफल हो जाता। क्योंकि जहां भी गया वहां की मूल सभ्यता संस्कृति को नष्ट कर अपने बर्बर विदेशी मजहब को थोप दिया। पर भारत में ऐसा सम्भव नहीं हुआ। इसलिए उसने यहां की शिक्षा व्यवस्था एवं अन्य व्यवस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन कर हमारे मानस को ही बदल दिया। हमारी रुचि में, बुद्धि में परिवर्तन कर दिया। जिस चोटी, तिलक, यज्ञोपवीत के लिए सिर दे देते थे पर इस्लाम के आगे घुटना नहीं टेका, धर्म परिवर्तन स्वीकार नहीं किया, वे ही हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में आकर स्वयं जनेऊ, चोटी, तिलक को त्याग कर, गोमांस खाकर यहां तक कि कुछ हिन्दू उसकी हड्डियों को मन्दिरों में फेंकने लगे। जबकि इसके पूर्व चाहे हिन्दू नास्तिक हो या आस्तिक गो के प्रति एक भी अवज्ञा का दृष्टान्त नहीं मिलता। अंग्रेजी शिक्षा का कैसा प्रभाव पड़ा इसके दो ऐतिहासिक उदाहरण पर्याप्त सिद्ध होंगे। बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दादाजी पर अंग्रेजी शिक्षा का, सभ्यता-संस्कृति का ऐसा नशा चढ़ा कि वे कहते थे भारत को अपना विकास करना है तो अंग्रेजों की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। यद्यपि एक घटना ने उनके जीवन को पुनः भारतीयता से जोड़ दिया। तभी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महापुरुष हमें मिले। ऋषि अरविन्द घोष के पिता कृष्णन् घोष भी अंग्रेजी सभ्यता में ऐसे ही रंग गये थे। उन्हें भी लगता था भारत को अपने विकास के लिए यूरोप की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन को वे कीड़ा मानते थे। इसलिए 5 वर्ष के अरविन्द को दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में, तत्पश्चात् इंग्लैण्ड भेज दिया और एक ईसाई परिवार को सौंप दिया। वारीन्द्र को तो जन्मते ही इंग्लैण्ड भेज दिया ताकि भारत की हवा भी न लगे।

इस प्रकार अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति में शिक्षित व्यक्ति अंग्रेजी को वरदान मानकर स्वयं के प्रति हीनभावना से भर गया। इस तरह अंग्रेज स्वयं के प्रति श्रेष्ठता की और हिन्दुत्व के प्रति हीनता की भावना भरने में समर्थ हो गया। यही मैकाले का भाव था। 2 जनवरी, 1835 में ब्रिटिश संसद में वक्तव्य देते हुए उसने कहा था—मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण सभी जगह घूमा। लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर दिखाई नहीं दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी, आध्यात्मिक

एवं सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था, के स्थान पर यह स्थापित न कर दें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था भारत की शिक्षा व्यवस्था से अधिक महान् है। इसके लिए आवश्यक है इस देश का गौरव-सम्मान, सदियों पुरानी प्राचीन शिक्षा प्रणाली और सांस्कृतिक प्रथाओं को मूल से ही बदलें। परिणामतः हिन्दुस्तानी यह मानने लगें कि जो कुछ भी विदेशी है, पाश्चात्य का है, वह श्रेष्ठ और महान् है। और इस कारण से वे स्वयं की निजी सांस्कृतिक धरोहर गवाएंगे और ऐसे नागरिक बन जायेंगे जैसा हम उनको बनाना चाहते हैं। मतलब कि काले अंग्रेज पैदा होंगे जो स्वैच्छिक गुलाम बन जायेंगे। तब ही हिन्दुस्तान सही अर्थों में हमारे आधिपत्य वाला गुलाम राष्ट्र बन पायेगा। ऐसा ही विचार फ्रांस का पादरी एबी दुबोय (Abbe Dubois) ने सन् 1815 में लिखा। वह इस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी में रहा। वहां हिन्दू समाज में समरसता से रहकर उसने जो अनुभव पाया था उसका लाभ कम्पनी को हो, इस दृष्टि से एक पुस्तक लिखी। जिसमें कम्पनी को कई सूचनाएं दी गई थी। उसमें यह महत्त्वपूर्ण सूचना थी कि हिन्दुओं की संस्कृति अति श्रेष्ठ कोटि की होने से उन पर ख्रिस्ती धर्ममत का प्रभाव नहीं जमेगा। अतः भारत में अंग्रेजी आधिपत्य स्थिर करने के लिए भारतीयों की अपने वेद शास्त्र, दर्शन आदि से श्रद्धा विचलित करनी चाहिए। ऐसी ही अमरीका के एक पादरी ने एक पुस्तक लिखी—'The inevitable choice'। इसमें लिखा है कि हिन्दुओं का जो वेदान्त का तत्त्वज्ञान है वह बड़ा खतरनाक है। अगर इसका सामना नहीं किया गया तो एक दिन ऐसा आयेगा कि यह सारा का सारा ईसाई सम्प्रदाय हिन्दू समाज का एक सम्प्रदाय बनकर रह जाएगा। क्योंकि हिन्दू विविधता को रखते हुए भी अपनी आन्तरिक एकात्मता के द्वारा सबको अपने अन्दर समाविष्ट कर लेता है। उसने लिखा है कि हिन्दू समाज एक आक्टोपस है। आक्टोपस एक प्राणी होता है जिसके आठ पैर होते है और जो कोई इसके फंदे में फंस जाता है वह छूट नहीं सकता। उसने कहा कि हिन्दू समाज एक आक्टोपस है, इसके फंदे में फंस गये तो हिन्दू समाज में आत्मसात् हुए बिना नहीं रह सकते। तुम इसके सम्प्रदाय बनकर रह जाओगे। स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष थे, एक बार रेलगाड़ी से जा रहे थे। उनके डब्बे में एक पादरी भी बैठा था। उससे बातचीत होने लगी। वह पादरी कहने लगा हिन्दू धर्म में कोई दम नहीं रहा। सब लोग हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाई बन रहे हैं और फिर गिणती गिनाने लगा। स्वामीजी बोले आनन्द की बात है। पादरी बोला क्या कहा—आनन्द की बात है? आपको दुःख नहीं होता। स्वामीजी बोले, नहीं होता। आपको जितनी मेहनत करनी है करो, एक दिन सुबह हम घोषणा कर देंगे कि क्रॉइस्ट कृष्ण के अवतार थे और तुम्हारे सारे ईसाई समाज को हिन्दू समाज में ले लेंगे। बात ठीक है यह हमारी पद्धति है किसी का कुछ न मिटाते हुए सबको अपने अन्दर स्वीकार लेते हैं, अपने भाईचारे में बांध

लेते हैं। इसलिए इन्हें डर हिन्दू से नहीं है—हिन्दू धर्म, दर्शन, संस्कृति से है। इन्हीं सब सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए इस्ट इंडिया कं. द्वारा भारतीय भाषा, विद्या शास्त्र, कला आदि का अध्ययन यूरोपीय पंडितों में प्रोत्साहित किया गया और इसी दृष्टि से अनेकों यूरोपीय पंडित हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। और भारत एवं भारतीय इतिहास पर प्रहार प्रारम्भ हुए। इन सब आधारों पर लार्ड मैकाले अपने पिता को पत्र लिखता है।

लार्ड मैकाले का अपने पिता को लिखा पत्र दि. 12 अक्टूबर, 1836—हमारी शालाएं बहुत अच्छी तरह से उन्नति कर रही हैं। हिन्दुओं पर इस शिक्षण का प्रभाव अद्‌भुत हुआ है। अंग्रेजी शिक्षण जिसने प्राप्त किया है, ऐसे हिन्दुओं में से एक भी हिन्दू ऐसा नहीं है जो सच्चे हृदय से अपने धर्म का पालन करता हो। थोड़े ऐसे हैं जो नीति के विचार से स्वयं को हिन्दू कहते हैं। कुछ लोग ईसाई बन रहे हैं। यह मेरा विश्वास है कि यदि अपनी ऐसी शिक्षण नीति चलती रही तो यहां की सम्मानित जातियों में आगामी 30 सालों में एक भी ऐसा बंगाली बचा नहीं होगा जो कि मूर्तिपूजक हो। यह उनको ईसाई बनाये बगैर ही हो जाएगा। उनके धर्म में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अपना (अंग्रेजी का) ज्ञान एवं विचारशीलता बढ़ाने से यह काम स्वयं ही हो जायेगा। ऐसी सम्भावना पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इतना होने पर भी अंग्रेज व मैकाले अपने शासनकाल में उतना सफल नहीं हो पाए जितनी की सफलता स्वाधीन भारत में मिली और मिल रही है। अंग्रेजों के काल में अनेक महापुरुष उठ खड़े हुए, जिससे सांस्कृतिक नवजागरण व तत्पश्चात् राजनैतिक आन्दोलन का क्रम चल पड़ा। जिसमें महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, डॉ. हेडगेवार, स्वामी प्रणवानन्द, लाल-बाल-पाल, वीर सावरकर, गांधी-सुभाष आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। इसलिए मैकाले की अंग्रेजीयत को वह सफलता नहीं मिली क्योंकि हिन्दुओं ने इसे चुनौती के रूप में स्वीकारा। पर स्वाधीनता के बाद सबको लगा अब तो अपना राज्य है, वैसी चुनौती रही नहीं। वे ऐसे दुर्बल, अकुशल और कल्पना की दुनिया में विचरने वाले अपने मानस पुत्र को राज्य-शासन देकर गये जिससे अंग्रेजों के स्वार्थ सुरक्षित रहे और हिन्दू समाज (जो इस देश का राष्ट्रीय समाज है) कभी उठ न सके। और गांधीजी ने भी उन्हें अपना उत्तराधिकारी चुनकर मानो स्वयं अपने एवं पूर्ववर्ती महापुरुषों के कार्यों पर पानी फेर दिया।

अंग्रेजों के काल में भारत में दो विचारधाराओं का दर्शन होता है। एक तो भारत की परम्परागत धारा—प्राचीन काल से भारत एक सनातन राष्ट्र है, सनातन इसकी संस्कृति है। दूसरी धारा अंग्रेजों द्वारा प्रचारित-प्रसारित कि भारत एक नये राष्ट्र के रूप

में अंग्रेजों के नेतृत्व में विकसित हो रहा है। पहली धारा की समर्थक है प्राचीन से लेकर अर्वाचीन ऋषि परम्परा—जिसमें स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लाल-बाल-पाल, वीर सावरकर से गांधी तक थे। दूसरी धारा के समर्थक नेहरूजी थे।

अंग्रेजों और गांधी की कृपा से शासन सूत्र नेहरूजी के हाथ में आ जाने से और स्वयं गांधीजी और पटेल के नहीं रहने से सारे देश को अपने अनुसार चलाने का निरंकुश अवसर उन्हें मिल गया। पंडित नेहरू स्वयं अंग्रेजों के मानस पुत्र होने से अपने को शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धर्म की दृष्टि से मुसलमान और मार्क्सवाद के अनुयायी, केवल हिन्दू माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हिन्दू मानते थे अन्यथा हिन्दुत्व पर उनकी कोई श्रद्धा नहीं थी। वरन् चिढ़ थी। अपने ग्रंथ Discovery of India और आजाद व्याख्यानमाला में जो उनका व्याख्यान 'आज कल आज में' एवं अन्यत्र भी हिन्दू विरासत पर गर्व की बात कही अवश्य है पर व्यवहार उनका सदा इसके विपरीत ही रहा है। अंग्रेजों के काल में शिक्षा व्यवस्था में जो बची-खुची भारतीयता या हिन्दुत्व था वह भी उनके काल में और उनकी लीक पर चलने वाली सरकारों द्वारा समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजी काल में हमारी शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ अन्य सभी व्यवस्थाओं को जो ग्रहण लगा था वह यथावत ही नहीं और भी विकृत हुआ। इस प्रकार आजादी के पहले दिन से ही देश अपने मार्ग से विचलित हो गया। भारत की जो भूमिका होनी चाहिए थी वह आज तक नहीं बन सकी।

इसी का परिणाम है आज का पढ़ा-लिखा युवक राष्ट्रीयता से रहित, स्वाभिमान से शून्य, आत्मगौरव से रहित, भारतीय इतिहास से अनभिज्ञ, देश-धर्म, संस्कृति एवं पूर्वजों की गौरवगाथा से वंचित है। क्योंकि वह भारत की मूल विचार परम्परा से कटा हुआ है। उसे न अपनी दार्शनिक धाराओं की जानकारी है और न आज के आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष किस तरह भारतीय विचार परम्परा को, वेदान्त की धारा को सत्य प्रमाणित करते जा रहे हैं, इसकी जानकारी है। और न उसे सेमिटिक परम्परा कितनी अमानुषिक, अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक, अराष्ट्रीय है और वह न केवल मानव को वरन् सारे चराचर को त्रास देने वाली सिद्ध हुई है और हो रही है, इसका ज्ञान है। यही कारण है कि वह अपने ही देश, धर्म, संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों, श्रद्धा-केन्द्रों, भाषा, वेश-भूषा, खान-पान के विरुद्ध खड़ा है। वही सेमिटिक परम्परा (ईसाई-मुसलमान) के समर्थन में खड़ा होकर उसको संरक्षण प्रदान कर रहा है। वही देश के नेतृत्व के स्थान पर स्थापित है। वही शिक्षक, प्रोफेसर, प्राचार्य, अफसर बना हुआ है। वही विधायिका में बैठकर कानून बना रहा है। कार्यपालिका में बैठकर उसे क्रियान्वित करवा रहा है। न्यायपालिका में बैठकर निर्णय दे रहा है। इस प्रकार अपने मूल राष्ट्रीय समाज

से कटा हुआ, उनकी विचार परम्पराओं से, उनकी आकांक्षाओं से अनभिज्ञ होकर देश को नेतृत्व दे रहा है। समाज की मूल आकांक्षा और परम्परा के विरुद्ध वह कानून व व्यवस्थाओं को थोप रहा है। इस प्रकार नेतृत्व देने वाले वर्ग और मूल समाज में कोई मेल नहीं है। विनोबा भावे के शब्दों में परस्पर राहु-केतु के समान कटे हुए हैं। विनोबा भावे कहते हैं कि 'अंग्रेजी पढ़ाई के कारण हमारे देश की जनता राहु और केतु के रूप में विभक्त हो गई है। आज जो हमारे शासक और विचारनिर्माता हैं उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी के माध्यम से होती है, वे अंग्रेजी में ही सोचते हैं और विदेशी विचार ही उनके लिए आदर्श है। वे राहु की तरह केवल सिर ही सिर हैं, भारत के शरीर से, भारत की सामान्य जनता से उनका सम्बन्ध कट गया है। भारतीय जनता की भावना, मान्यता और मूल्यचेतना उनके लिए न सामान्य है न महत्त्वपूर्ण।' इस प्रकार आज का पढ़ा-लिखा वर्ग मूल समाज के विरुद्ध खड़ा है। यह देश की सबसे बड़ी समस्या है। फिर देश में तीन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियां—विश्व व्यापी इस्लामिक शक्ति, ईसाई शक्ति और कम्यूनिज्म की शक्ति—इस देश को नष्ट करने में लगी हैं। उसके पोषक और समर्थक बने हुए उन्हें सब प्रकार की सुविधा और संरक्षण दे रहे हैं और यह सब नेहरूजी की नीतियों का परिणाम है। अतः जो हानि ग्रीक, शक, हूण, कुषाण, मुगल, तुर्क, पठान, फ्रेंच, डच, पूर्त और अंग्रेज नहीं कर सके उससे अधिक हानि स्वाधीन भारत की नेहरू सरकार और उस लीक पर चलने वाली सरकारों ने कर दी है। अपने देश की मूल चेतना की उपेक्षा करके।

इस्लामिक, ईसाइयत एवं कम्यूनिज्म की धारा और ईसाइयत की प्रतिक्रिया में उपजी पश्चिमी सभ्यता आज अपने घर में ही खण्डित और तिरस्कृत होती जा रही है। क्योंकि ये प्रकृति के विरुद्ध धारायें हैं। प्रकृति के विरुद्ध, मानव स्वभाव के विरुद्ध धारायें अधिक काल तक टिकी नहीं रह सकती। चिरंजीवी नहीं हो सकती।

सेमिटिक परम्परा और भारतीय दृष्टि में मूलभूत अन्तर है। भारतीय दृष्टि दर्शन में, अध्यात्म में प्रवेश पाने के लिए पात्रता की, अधिकारी भेद की चर्चा करती है कि कौन शिष्य बनने के योग्य है और कौन गुरु की पात्रता रखता है। वेदान्त दर्शन ब्रह्म जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है और ब्रह्म जिज्ञासु को साधन चतुष्टय से युक्त होना चाहिए। तब उसमें शिष्य बनने की पात्रता आती है।

साधन चतुष्टय

(क) नित्यानित्य वस्तुविवेक।

(ख) इहामुत्रार्थ फलभोग विराम (इसमें लौकिक एवं पारलौकिक सभी कामनाओं का परित्याग)।

(ग) शम-दमादि षड्सम्पत्ति युक्त (शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा)।

(घ) मुमुक्षत्व।

ऐसे ही योग दर्शन में यम-नियम में प्रतिष्ठित होकर ही आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान-समाधि की कक्षा में प्रवेश की स्थिति आती है। समाधि की स्थिति में आत्म-साक्षात्कार की स्थिति आती है। उस अवस्था में ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता बनने की स्थिति आती है। तो हमारे यहां ब्रह्मविद्या के प्रवेश में कितनी कठोर मर्यादाएं स्थापित की गईं और ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता के लिए तो पात्रता है कि वह श्रोत्रिय और साथ में ब्रह्मनिष्ठ भी होना चाहिए।

पर सेमिटिक परम्परा में इस प्रकार की कोई मर्यादा नहीं होने से जो ब्रह्मविद्या में प्रवेश के भी अधिकारी हैं या नहीं, वे ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता तक बन गये। अर्जुन जिज्ञासु तो बन सकता है पर वही गुरु बनकर उत्तर देने लगे तो कितने अनर्थ की सम्भावना है? वैसे ही सेमिटिक परम्परा के आचार्य जैसे ईसा मसीह आदि अधिक से अधिक ब्रह्मविद्या के विद्यार्थी तो बन सकते हैं, जिज्ञासु तो बन सकते हैं, लेकिन ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता नहीं। बिना पात्रता के, बिना नैतिक आधार के ईश्वर साक्षात्कार वैसा ही है जैसा दुर्योधन का। कृष्ण के समझाने पर वह स्पष्ट कहता है कि मैं धर्म को भी जानता हूं, अधर्म को भी जानता हूं। धर्म में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म से निवृत्ति नहीं। मेरे अन्दर एक देव बैठा हुआ है। वह जैसा प्रेरित करता है वैसा ही मैं करता हूं—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

तो दुर्योधन के अन्दर कौन देवता बैठा है? वह राम नहीं काम है, स्वार्थ है। उसका स्वार्थ जैसा उसको प्रेरित करता है, प्रेरणा देता है, वैसा ही वह करता है। अतः अपने स्वार्थ के अनुसार, अपने स्वभाव के अनुसार, अपने स्तर के अनुसार, अपने संस्कारों एवं सोच के अनुसार ऐसे ही देव को हम अपने अन्तःकरण में प्रतिष्ठित कर लेते हैं एवं भ्रमवश उसी प्रेरणा को अन्तःप्रेरणा मान बैठते हैं।

जब हम राग-द्वेष से रहित होते हैं, चित्त शुद्ध होता है, तो पूर्वाग्रह से मुक्त चित्त में ही ईश्वरीय प्रेरणा एवं साक्षात्कार होता है। उसके पूर्व तो अपने स्तर, अपने सोच, संस्कार एवं आवश्यकतानुसार प्रेरणा होती है। उसे ईश्वरीय प्रेरणा कहना गलत है। उसे ईश्वर प्रेरित नहीं मनःप्रेरित, मनःकल्पित ही कहा जा सकता है। सेमिटिक परम्परा ने ऐसी कोई मर्यादा या चिंतन न होने से जो ब्रह्मविद्या के

शिष्य बनने की पात्रता भी नहीं रखते हैं वे ही ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता बनने से, ईश्वर के नाम पर कितने अनर्थकारी सिद्धान्तों को जन्म दिया—

सेमिटिक परम्परा का ईश्वर घोर राग-द्वेष से ग्रस्त है। उसकी अभिरुचियां नृशंसतापरायण हैं। उसकी मुंहलगी जातियां हैं, मुंहलगे चर्च और उम्मा हैं। उसके अक्षम्य शत्रु भी हैं। वह अहंकार से भरा हुआ और स्वार्थ से सराबोर है। वह किसी अन्य उपास्य अथवा उपास्यों को सहन नहीं कर सकता। उसका आग्रह है कि उसके सिवाय किसी अन्य उपास्य की पूजा नहीं होनी चाहिए।

बाइबिल में ईश्वर (याहू) अपने मुख से कहता है कि 'वह ईर्ष्या विदग्ध ईश्वर है'। और जो ईर्ष्या विदग्ध है वह भयंकर रोष और नृशंसता से भरा हुआ भी है। वह अपने मुंहलगे लोगों को आदेश देता है कि जब मैं तुमको उस देश में पहुंचा दूं जहां पहुंचाने का वायदा मैंने तुमसे किया था और मैं उस देश के वासियों को तुम्हें सौंप दूं तो तुम उनको मारोगे और उनका सर्वनाश कर दोगे। तुम उनके साथ कोई समझौता नहीं करोगे न ही उनके प्रति दया दिखलाओगे.... तुम उनके पूजास्थलों का ध्वंस करोगे, उनकी देवमूर्तियों को तोड़ डालोगे और जिन वनों में चैत्य हैं उनको काट डालोगे..... कारण, तुम अपने प्रभु के निकट पावन लोग हो। बाइबिल विधि विवरण—7.1.6। कुरान के अल्लाह में भी लगभग ऐसे ही गुण-धर्म मिलते हैं। वह कोप का देवता है। जो लोग उस पर तथा उसके पैगम्बरों पर विश्वास नहीं करते उनको वह भयावह दण्ड (अजाब-अल-अजीम) देता है। इसी न्याय से वह प्रचण्ड प्रतिशोध लेने वाला है। वह लूट के माल की प्रभूत राशि देने वाला भी है। वह अपने मोमिनो को बतलाता है कि उसने किस प्रकार मोमिनो के शत्रुओं (काफिरों) को परास्त करके काफिरों की धरती, उनके घर-बार और उनका धन-धान्य मोमिनो को दिलवाये। अल्लाह बाइबिल के याहू का अक्षरशः अनुसरण करता है। याहू ने अपने मुंहलगे लोगों से वायदा किया है कि वह उनको ऐसे प्रशस्त और सम्पन्न नगर प्रदान करेगा जिनका निर्माण उन्होंने नहीं किया, ऐसे कुएं देगा जो कि उन्होंने नहीं खोदे। अंगूरों के ऐसे बाग और जैतून के ऐसे पेड़ देगा जो कि उन्होंने नहीं बोये।

बाइबिल विवरण 6.10.11 में God एवं अल्लाह के ये गुण-धर्म हैं। तो प्रश्न है शैतान के कौन से गुण-धर्म हैं? फिर इनके God सर्वोच्च सत्ता भी नहीं हैं। उनके समानान्तर शैतान की सत्ता है जो God का पहले नम्बर का शत्रु है। जो God की चुनौती के रूप में खड़ा है तथा God से निरन्तर संघर्षरत है। दोनों धर्म पुस्तकें हमें उपदेश देती हैं कि अपने नेक कर्मों के द्वारा खुदा की मदद करनी चाहिये ताकि शैतान उसको पीठ न लगा दे। इस प्रकार God न सर्वोच्च सत्ता है और न सर्वशक्तिमान।

इनका (ईसाई और मुसलमान का) कर्म सिद्धान्त अपूर्ण और अशुद्ध है। क्योंकि वे कर्म के सिद्धान्त को अन्तिम कयामत के दिन न्याय के रूप में मानते हैं पर परलोक एवं पुनर्जन्म न मानने से उनके कर्म के सिद्धान्त का आधार भी कच्चा रह जाता है। Justice delayed is justice denied विलम्बित न्याय अन्याय जैसा बन जाता है। अमरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरहुड ने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों वर्षों के बाद कयामत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर पर विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा, ऐसे ईश्वर से धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है जो कुछ दिन, माह या वर्ष में न्याय तो दे देता है।

हिन्दू धर्म मानता है कि ईश्वरीय न्याय अनवरत रूप से चल रहा है। भगवान् का न्यायालय एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं होता है।

फिर उनका ईश्वर न्याय भी अपने-अपने विश्वासियों के पक्ष में देता है। इस प्रकार ईश्वरीय न्याय निष्पक्ष नहीं है। अपने मत के सापेक्ष है। अविश्वासियों यानी काफिरों और हिडेनों को तो अनन्त नरक की आग में ही जलना है।

इसी विश्वास की निष्पत्ति मुहम्मद अली के कथन में है—पापी से पापी, भ्रष्ट से भ्रष्ट मुसलमान भी गांधी से श्रेष्ठ है। क्योंकि वह अल्लाह एवं मुहम्मद को स्वीकारता है। यही बात ईसाइयत के साथ है। मत-पंथ-सम्प्रदाय या उपासना पद्धति या धर्म तो उसी को कहेंगे जो मनुष्य में सद्गुणों, श्रेष्ठ गुणों का, दैवी सम्पदा, चरित्र का विकास करे। यानी मनुष्य को मनुष्यत्व में ले जाये। मनुष्यत्व से देवत्व में, देवत्व से ब्रह्मत्व में यानी विकास के सर्वोच्च शिखर पर ले जाए। पर इसके विपरीत जो मनुष्य को मनुष्यत्व से च्युत कर पशुत्व, पशुत्व से पिशाचत्व में ले जाय क्या उसे मत-पंथ-सम्प्रदाय या मजहब अथवा धर्म कहा जा सकता है?

यही कारण है जब तक वह हिन्दू है वह राम-कृष्ण का पुजारी, गोभक्त, देवभक्त, देशभक्त है। पर जैसे ही इस्लाम या ईसाइयत को स्वीकारता है राम-कृष्ण और भारत देश से कट जाता है। गोभक्षक बन जाता है। अन्य धर्मावलम्बियों का विरोधी बन जाता है। अलगाववादी, आतंकवादी बन जाता है। साम्राज्यवाद का पुर्जा बन जाता है।

ईसाइयत मनुष्य को जन्म से पापी मानती है और वह तब तक पापमुक्त नहीं होता जब तक ईसा को व्यक्तिगत मुक्तिदाता न स्वीकारता हो। भले ही वह कितना भी सदाचारपरायण, धर्मपरायण, ईश्वरपरायण क्यों न हो। क्योंकि जीसस ने स्वयं सूली पर चढ़कर सारे ईसाइयों के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है। इसलिए ईसाइयत को जो स्वीकार करता है वह सब प्रकार के पाप करके भी

पाप से मुक्त रहता है। इससे तो पुण्यात्मा बनने की प्रेरणा ही शेष नहीं बचती। इसलिये ईसाइयत के इतिहास में एक भी पुण्यात्मा ढूंढ़ना मुश्किल है। जो ईसाइयत को स्वीकारता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। इससे अधिक असंगत, अनर्गल बात क्या हो सकती है। क्या दूसरे के पापों का, आने वाली सभी पीढ़ियों के पापों का प्रायश्चित्त किसी अन्य के द्वारा किया जा सकता है? फिर ईसा को धोखे से पकड़वाने वाला जुडास (उनका यहूदी शिष्य) जो स्वयं पश्चात्ताप स्वरूप आत्महत्या कर लेता है, उसको वे दोषी मानते हैं। ईसा को सूली पर लटकाने के लिए केवल उसे ही नहीं, पूरी यहूदी जाति को दोषी मानकर उन्हें सब प्रकार से पीड़ित कर उनको दण्डस्वरूप उनके देश से ही निष्कासित कर देते हैं। अतः दोनों बात एक साथ कैसे सत्य हो सकती है। ईसा ने सूली पर चढ़कर सभी के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया और दूसरी तरफ ईसा की सूली के लिए पूरी यहूदी जाति को दोषी मानें या जुडास को दोषी मानें।

जब ईसा को अपनी सूली ढोनी पड़ रही थी, अपार वेदना हो रही थी। तब God से शिकायत करते हुए कह उठे—हे God! तुमने भी कष्ट के समय साथ छोड़ दिया। तब H.G. Wells प्रश्न उठाते हैं—God ने अपने पुत्र का ही साथ छोड़ दिया तो उनके शिष्यों का क्या होगा? जो स्वयं दीन-हीन दशा में क्रॉस पर लटका हो और उसके शरीर पर ठोंकी कीलों से रक्त प्रवाहित हो रहा है, जो आतताइयों के सम्मुख बिल्कुल लाचार दिख रहा हो और जिसके चेहरे पर अन्याय और अत्याचार से लड़ने का संकल्प रत्तीभर भी न झलक रहा हो, जिसकी स्वयं की यह स्थिति है वह दूसरों का, शिष्यों का क्या उद्धार करेगा?

ईसाइयत मानती है कि जीसस ने सबके पाप भस्म कर दिये? जीसस को गये दो हजार साल हो गये। अगर जीसस ने सब पाप समाप्त कर दिये तो फिर दो हजार साल से ईसाइयों द्वारा पाप क्यों हो रहे हैं दुनिया में? इन दो हजार सालों में ईसाइयों द्वारा जितने पाप हुए हैं उतने शायद ईसा के पहले कभी नहीं हुए हों। दो-दो विश्वयुद्ध ईसाइयों ने लड़े हैं। ये दो हजार साल आदमी के दु:ख, पीड़ा, घावों के, पाप के, घृणा के, हिंसक युद्धों के साल हैं। आदमी खूंखार से खूंखार होता चला गया और ईसाइयत फिर भी दोहराये चली जाती है कि ईसा ने सबको पाप से मुक्त कर दिया। यह कितना अनर्गल प्रलाप है?

स्त्री के विषय में ईसाइयत की मान्यता है कि स्त्री का जन्म इसलिए हुआ कि आदम अकेला था और उसने कहा कि 'भगवान् मैं अकेला हूँ, मेरा समय नहीं कटता है। मुझे कोई साथी दो।' तब God ने ''मैन'' को सुला दिया और उसकी पसली खींची और उसमें फूंक मार दी तो हौव्वा (औरत) पैदा हो गई। हौव्वा आदम के मनोरंजन के लिए, सेवा के लिये, उपभोग के लिये पैदा हुई। उसमें

आत्मा या चेतना नहीं है। उससे जैसी चाहें सेवा ली जा सकती है। इनके यहां नारी पूज्या नहीं भोग्या है। दूसरा, नारी मनुष्य को पाप के संसार में लाने वाली है क्योंकि होव्वा शैतान से प्रेरित होकर निषिद्ध ज्ञानवृक्ष के फल को स्वयं खाती है फिर आदम को खिलाती है। फलतः ईश्वर से अभिशप्त होने और स्वर्ग से च्युत होने का कारण बनती हैं। यहां सब कुछ बिना परिश्रम के प्राप्त था। पृथ्वीलोक में सब कुछ परिश्रम से प्राप्त होगा और साथ ही प्रसव पीड़ा भोगने का अभिशाप प्राप्त करती है। नारी ही मनुष्य को पाप के संसार में लाने वाली है। अतः ईसाइयत में मातृपद वंदनीय नहीं तिरस्करणीय है। यही कारण है कि वहां के साहित्यकारों ने मां को बड़ी-बड़ी गालियां दी और शताब्दियों तक नारियों को अमानुषिक यातना देकर करोड़ों की संख्या में मार दिया गया।

ईसाइयत के अनुसार मानवेतर प्राणी और चराचर जगत् मनुष्य के उपभोग के लिए हैं—तब गॉड ने नूह और उसके लड़कों को आशीर्वाद दिया—फलदायी बनो, अपनी संख्या बढ़ाओ और जमीन पर फैल जाओ। तुम्हारा आतंक जमीन के जानवरों, आसमान के परिन्दों, उन सब पर जो भूमि पर चलते हैं और सागर की मछलियों पर छा जायेगा। उन सबको तुम्हें सौंप रहा हूं। जो जिन्दा है और चलता है वह सब तुम्हारे खाने के लिए है। जैसे मैंने तुम्हें वनस्पति दी, उसी तरह अब तुम्हें सब कुछ दे रहा हूं।

अर्नाल्ड टायनबी ने कहा था कि आज जो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या व्याप्त है उसका कारण क्रिश्चियनिटी है जिसने कहा कि भगवान् ने मनुष्य को भेजा और कहा कि इसका उपभोग करो। तो मनुष्य सोचता है सारी दुनिया मेरे लिये है और इसका अविवेकपूर्ण विध्वंस कर रहा है। इससे यदि मुक्ति प्राप्त करनी हो तो हमको पौर्वात्य, भारतीय तत्त्वज्ञान की ओर जाना पड़ेगा जो सभी के अन्दर ईश्वर का निवास मानकर चलता है।

इस्लाम और ईसाइयत दोनों धारायें मानव समाज को दो भागों में बांट देती हैं। विश्वासी (जो इस्लाम व ईसाइयत को स्वीकारते हैं) मोमिन हैं और अविश्वासी जो उन्हें नहीं मानते वे काफिर हैं। हिडेन हैं। इनके भाग्य में इहलोक में इनका उचित प्रायश्चित्त वध और परलोक में प्रायश्चित्त अनन्त नरक की आग में जलना ही है। और इन दोनों सम्प्रदायों के पूर्वज माता-पिता ईसाई या मुसलमान नहीं हो सकते हैं। उन्हें भी इन दोनों पंथों ने अनन्त नरक की अग्नि में डाला है और अपने ही देश की पूर्व सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को नष्ट कर दिया है। क्योंकि वे इस्लाम या ईसाइयत से सम्बन्ध नहीं रखते। अतः वे नष्ट होने योग्य ही हैं। जब उन्होंने अपने देश की यह दुर्गति की तो अन्य देशों पर भी कहर ढाया और आज भी ढहा रहे हैं—इसकी कल्पना भी कितनी भयावह है। इन दोनों में जिहाद

आवश्यक कर्तव्य है जिसमें काफिरों और हिडेनों को अपने मत में लाना नहीं तो निर्मम ढंग से वध कर देना। जो जितने काफिरों का वध करेगा उसे जन्नत में उतना ही ऊंचा स्थान मिलेगा। गाजी बनने पर विशेष और जिहाद में मृत्यु होती है तो वह शहीद कहलाता है और तुरन्त जन्नत मिलती है। कयामत तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। और युद्ध में विजयी होने पर लूट में उसको हिस्सा मिलता है।

जो भी सद्‌गुण, मानवता, दया, क्षमा, सेवा, भाईचारे व बंधुत्व की बात है वह अविश्वासियों पर लागू नहीं होती है। इन सब तथ्यों को बाद देकर जब यह कहा जाता है कि सब धर्म समान हैं, कोई भी मजहब वैर करना नहीं सिखाता है तो यह आत्मवंचना नहीं तो क्या है? भारतीय विचारधारायें जीओ और जीने दो में विश्वास करती है सबको अभय देती हैं, पर सेमिटिक धारा केवल स्वयं के जीने में विश्वास करती है। दूसरों को जीने दो में विश्वास नहीं करती।

हिन्दू धर्म एकात्मता में विश्वास करता है पर सेमिटिक परम्परा एकरूपता में। यह मानव प्रकृति के विरुद्ध है। 84 लाख योनियों में एकमात्र मानव योनि ही कर्म योनि है जिसमें विचार स्वातंत्र्य है। रुचि भेद है। अत: एकरूपता नहीं एकात्मता ही सम्भव है। अत: मानव समाज को एक डण्डे से हाँका नहीं जा सकता। यही कारण है कि इस्लाम, ईसाइयत, कम्यूनिज्म जो एकरूपता को लेकर चले वे आगे चलकर स्वयं ही कई सम्प्रदायों में विभक्त हो गये। केवल मात्र इस्लाम में 73 सम्प्रदाय हैं।

गीता के 12वें अध्याय के बीसवें श्लोक में अमृत धर्म 'धर्म्यामृतमिदं' शब्द आया है। अमृत धर्म वह है जो सबको अमृत की, ईश्वर की संतान मानता है और सबको अभय देता है। पर जो मानव समाज को दो भागों में बांट देता है, जो उनके मत को मानता है वह विश्वासी और उसके मत को नहीं मानता है वह अविश्वासी है, काफिर है, Hidden है। उनको परलोक में अनन्त नरक की आग में ही जलना है और भूलोक में उनका उचित प्रायश्चित्त निर्मम ढंग से मृत्युदण्ड ही है। अत: जो अविश्वासियों के प्रति घृणा, द्वेष फैलाता है क्या उसे अमृत धर्म कहेंगे? या वह विष धर्म है। एक के प्रति भी द्वेष फैलाता है वह अमृत धर्म नहीं हो सकता। अमृत धर्म राग-द्वेष से मुक्त कर सबको समान रूप से प्रेम करना सिखाता है, पर जो विद्वेष फैलाये उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है? उसे असुर धर्म या विष धर्म ही कहा जा सकता है।

ईसाइयों का इतिहास भी बड़ा रक्तरंजित हैं। कलंकित है—पहले चर्च ने गैर ईसाइयों को मारना, जलाना प्रारम्भ किया। फिर राजनीतिक विरोधियों को नष्ट करने का अभियान चलाया। फिर गैर ईसाई राष्ट्रों के विरुद्ध जिहाद प्रारम्भ किये तथा गैर ईसाई राष्ट्रों को धरती से उच्छेद करने का अभियान चलाया। फिर ईसाई मत के ही भिन्न सम्प्रदायों के स्त्री-पुरुषों को तेल छिड़क कर सामूहिक रूप

से जलाना प्रारम्भ किया। पोप ने अपने धार्मिक न्यायालय बना लिये जो तनिक भी विरोध करने वाले या भिन्न मत रखने वाले लोगों को चर्च के शत्रु कहकर सामूहिक रूप से जलाने या मारने का दण्ड देता था। Blood Council ने हजारों-लाखों लोगों को फांसी पर चढ़ा दिया। धार्मिक न्यायालय (Inquisition) ने पोप के एक वाक्य पर सन् 1568 में नीदरलैण्ड (हालैण्ड) के तीन लाख निवासियों को तेल छिड़ककर सामूहिक रूप से जला दिया। सारे यूरोप और अमरीका का चर्च का इतिहास इसी प्रकार के हिंसा-हत्या के कुकर्म से रक्तरंजित है।

डॉ. पितृम ए. सोरोकिन (डाइरेक्टर हार्वर्ड सेन्टर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म) अपनी पुस्तक—रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी (पृष्ठ 47) में ईसाई मिशनरियों के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं—'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्धपिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार परायण तथा सर्वाधिक सत्तामदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में पाश्चात्य ईसाइयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है। इनकी सेनाओं ने जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा है। पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यह अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, अफ्रीकावासी, आस्ट्रेलियावासी तथा एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के ईसाई प्रेम के शिकार हुए हैं, जिनके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का क्षरण, सामाजिक संस्थाओं का तथा ईसाई प्रेम के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन पद्धति का विनाश, शराबखोरी, यौन रोगों व व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, आदि-आदि।

एच.जी. व्हेल ने ईसाइयत के सारे इतिहास का सर्वेक्षण करते हुए लिखा है, 'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ है, जो क्रॉस पर मर गया। इस पर उसके मित्र ने व्यंग्य करते हुए टिप्पणी की कि वह भी ईसाई कहां था? वह तो स्वयं यहूदी ही था।

13 फरवरी, 2008 को आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री केविन खड़ेन, आस्ट्रेलिया की संसद के अन्दर सारे पापों के लिये जो सारे आस्ट्रेलियाई पुराने एबोरिझनल्स जोन है उसके पुराने मूल निवासी थे, जिनकी विशेष पहचान थी, जिनकी विशेष संस्कृति थी, विशेष पूजा पद्धति थी, उसको नष्ट कर उनको मारकर उनकी जगह स्वयं बस गये थे, जो आज एबोरिझनल्स के वंशज हैं उनसे क्षमा मांगी। एक-एक बात के लिये कि हमने आपकी संस्कृति, परम्परा एवं परिवारों को नष्ट किया। यह एक काला अध्याय है। मैं उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूं। भविष्य में ये कभी नहीं होगा।

यद्यपि ये माफी ऐसी है जैसे सौ चूहों को खाकर बिल्ली हज करने चली। और अपने देश में और अन्यत्र भी ईसाई मिशनरियों की वही पुरानी गतिविधियां परिवर्तित रूप से चालू हैं। इस्लाम का इतिहास भी कम दर्दनाक नहीं। उन्होंने गैर मुस्लिम (काफिर) देश के विरुद्ध जिहाद बोलकर भयंकर रक्तपात किये। नारी जाति का घोर अपमान किया। धन और इज्जत को लूटा। नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में चुनवाया। विधर्मियों की आँखें निकलवायी, बोटी-बोटी नुचवायी, आरे से चिरवाया, चर्खियों पर कटवाया, दो-दो पैसों में सिर बिकवाये, जलते हुए तवों पर जलवाया, उबलती हुई देग में जलवाया, खून के खांखरे जलवाये, मन्दिरों-मठों को तोड़ा, पुस्तकालयों-विश्वविद्यालयों को जलाया, देव प्रतिमाओं को अपने शौचालयों में औंधे मुख लगवाया। दुर्लभ ग्रंथों को जलाकर अपने हमाम गर्म करवाये और देश के नर-नारियों को विदेश में गुलाम बनाकर बेचा। यह सब दुर्भाग्य से धर्म के विस्तार के लिए घोर अधर्म होते रहे।

ईसाइयत की इन सब असंगत, अनर्गल बातों ने केवल मानव जाति को ही नहीं, नारी जाति को ही नहीं, केवल जीव जगत् को नहीं पूरे चराचर जगत् को कितना त्रास दिया। हजारों वैज्ञानिकों को त्रास दिया, निर्मम ढंग से वध किया। जिसने ज्ञान-विज्ञान की धारा को, विकास की धारा को सदियों तक अवरुद्ध कर रखा था। चर्च से मुक्त होकर चिन्तन की कल्पना भी घोर अपराध था। इसके विरोध में जब पश्चिम में प्रबुद्ध लोगों में आत्ममंथन की प्रक्रिया चली तब ईसाइयत के प्रति मोहभंग हुआ। और धर्म के नाम पर वे ईसाइयत को ही, सेमिटिक परम्परा को ही जानते थे इसलिए उनमें धर्म के प्रति अनास्था उत्पन्न हो गयी। फयूरबाख, मार्क्स, नीत्शे, फ्रायड, बर्टेंड रसेल आदि सब ईसाइयत या सेमिटिक परम्परा को ही जानते थे। इनकी विकृत मान्यताओं और क्रियान्वयन की वीभत्सता से इन्हें धर्म और ईश्वर के नाम पर Allergy हो गयी। फिर ईसाइयत के पीछे न कोई दार्शनिक आधार था, न बौद्धिक-वैज्ञानिक तथ्य। किसी भी आधार को न पाकर यह परिणाम निकाला कि ईसाइयत का प्रारम्भ कपोल कल्पना मात्र से हुआ है।

और इस्लाम में अभी भी इतनी कट्टरता है, उन्माद है कि अभी तक विधिवत आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारंभ ही नहीं हुई। आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारंभ होते ही उनके विरुद्ध मौत का फतवा जारी हो जाता है। जिस दिन विधिवत इस्लाम में आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी इनकी भी स्थिति ईसाइयत की तरह होगी।

साम्यवाद भी अपने ही घर में प्रकृति के विरुद्ध विचार होने के कारण ढह गया। भौतिक आधार पर कभी समता स्थापित नहीं हो सकती। वह जब भी होगी तो आध्यात्मिक आधार पर, आत्मिक आधार पर, वैदान्तिक आधार पर ही होगी। सृष्टि ही विषमता में होती है और विषमता पर्यन्त ही रहती है। सभी का शारीरिक,

मानसिक, बौद्धिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। पर सबमें चेतन तत्त्व, आत्मतत्त्व एक ही है। अतः आत्मिक आधार पर ही समता स्थापित हो सकती है, भौतिक आधार पर कभी नहीं।

मार्क्स की मूलभूत तीन मान्यतायें हैं—सभी मनुष्य जन्म से स्वार्थी हैं, मनुष्य का अन्तिम (Sole Goal) अर्थ की प्राप्ति ही है और अर्थ के व्यापार में नैतिकता का दखल नहीं होना चाहिये। फिर मार्क्स यह कल्पना करता है—सभी अपनी योग्यता के अनुसार समाज को अपनी सेवा देंगे और आवश्यकतानुसार समाज से अपना योगक्षेम प्राप्त करेंगे।

यह भौतिक आधार पर कभी सम्भव नहीं है। क्योंकि भौतिकता में श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं बचता। यह चेतना के विस्तार से सम्भव होता है। हमारी चेतना का विस्तार अपने परिवार तक होता है। अतः परिवार में प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार परिवार को सेवा देता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार उससे योगक्षेम प्राप्त करता है। ऐसे ही जिसकी चेतना का विस्तार समाज तक है तो वह समाज के प्रति, जिसकी चेतना का विस्तार राष्ट्र तक है, तो वह राष्ट्र के प्रति और जिसकी चेतना का विस्तार सारे चराचर जगत् के प्रति है तो उसके सारे क्रियाकलाप उसको केन्द्र करके होंगे। पर मार्क्स चेतन तत्त्व को, आत्मा या ईश्वर को मानता ही नहीं है। चेतना का विस्तार तो धर्म के आधार पर, चरित्र के आधार पर होता है इन सबका साम्यवादी दर्शन में कोई स्थान ही नहीं है। यदि कोई ईश्वर है तो बदमाश, उचक्के का नाम है। धर्म अफीम है। नैतिकता, सदाचार आदि पुराने जमाने के बाट हैं। न कर्मफल सिद्धान्त है न पुनर्जन्म। यही प्रथम और अन्तिम जन्म है। सज्जन और दुर्जन को शेष में मरकर मिट्टी में ही मिल जाना है तब क्यों स्वार्थ त्यागकर सदाचरण करें? यही कारण है कि यह धारा स्वपोषक, स्वजनपोषक और परपीड़क बनकर अपने घर में ही ढह गयी। आज कम्यूनिज्म का वैचारिक आधार प्रायः समाप्त हो गया है फिर भी भारत में टिके हुए हैं तो आतंक एवं शासन के बल पर ही। और अपने देश में प्रारम्भ से ही कम्युनिस्टों की दोगली भूमिका रही है। मार्क्स ने तो सेमिटिक परम्परा (ईसाई व इस्लाम) के धर्म का खण्डन किया था। हिन्दू धर्म से तो वह परिचित ही नहीं था। तब उसके खण्डन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पर कम्युनिस्टों की यहां भूमिका विपरीत रही है। वे प्रारम्भ से ही हिन्दू धर्म के कट्टर शत्रु और ईसाई-इस्लाम के समर्थन में प्रारम्भ से आज तक खड़े हैं। भारत को एक सनातन राष्ट्र न मानकर भारत में 18 भाषा के आधार पर 18 राष्ट्र मानते रहे हैं। प्रचारित करते रहे हैं। कुछ की विवेक की दृष्टि खुली रहती है। उन्हें भूल का एहसास हुआ स्वीकार किया तो उनको ही उन्होंने अपनी पार्टी से निष्कासित कर दिया। उदाहरणार्थ—

नवम्बर, 1985 में कम्युनिस्ट पार्टी के नेता और केरल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री ने मलयाली पत्रिका 'कैरियर' में एक लेख लिखकर राष्ट्रीयत्व के विषय में अपने संशोधित विचार रखे। अच्युत मेनन लिखते हैं—'जिस समय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई उस समय हमने कहा था कि भारत एक राष्ट्र कभी नहीं रहा। क्योंकि यहां राजनीतिक एकता नहीं थी। यह हिन्दुस्तान एक बहुराष्ट्रीय राज्य है। लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा वह कहना गलत था। अब हमें यह अनुभव होने लगा है कि भारत एक राष्ट्र ही है। यहां राजनीतिक एकता भले न रही हो किन्तु सांस्कृतिक एकता थी। यहां अलग-अलग भाषायें थी, इसलिए अलग-अलग राष्ट्र थे ऐसा भी हमने सोचा। लेकिन अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है कि अलग-अलग भाषायें रहते हुए भी सांस्कृतिक एकता यहां रही है और अगर यह सांस्कृतिक एकता न होती तो क्या केरल से निकलकर आदि-शंकराचार्य सारे भारत में भ्रमण करते और हिन्दुस्तान के चार कोनों में चार मठों की स्थापना करते? यदि सांस्कृतिक एकता न होती तो चार मठों की स्थापना न की गयी होती। और अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है जिसको हम तीर्थक्षेत्र कहते हैं वे वास्तव में राष्ट्रीय एकात्मता के केन्द्र हैं। सांस्कृतिक एकता पर आधृत यहां के राष्ट्रीयत्व का आधार यदि कोई हो सकता है तो यह हिन्दू धर्म (फेथ) ही हो सकता है। हिन्दू धर्म की अपनी कल्पना को स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं हिन्दू मजहब की बात नहीं कर रहा हूं। मेरे हिन्दू धर्म में केवल वैदिक लोग ही नहीं जैन और बौद्ध आदि बाकी के सभी लोग भी आते हैं।

आज रूस (सोवियत संघ) के 15 टुकड़े हो गये हैं पर जब गोर्बोचेव रूस के राष्ट्रपति थे, तब रूस विघटन की स्थिति में था कई टुकड़ों में विभक्त होने की आशंका थी, इसके लिये आन्दोलन चल रहे थे। इसलिए गोर्बोचेव बड़े उदास, निराश थे। उस समय इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री थैचर रूस की यात्रा पर आयी हुई थी। इस विषय पर चर्चा होने से थैचर ने हंसते हुए उनसे कहा, कि कमाल है ऐसे समय में आप अपने परममित्र भारत से सलाह क्यों नहीं लेते, जो इतने हजारों साल से इतने राज्य, इतनी जातियां, इतनी बोलियां, इतने सम्प्रदाय, इतनी विविधताओं के होते हुए भी उन सबको जोड़कर चल रहा है। स्पष्ट है इतनी विविधता के होते हुए भी भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक बना रहा है।

पश्चिम में ईसाइयत की प्रतिक्रिया में धर्म और ईश्वर को तिरस्कृत कर भोगवादी, उपभोक्तावादी और बाजारवादी सभ्यता को जन्म दिया गया। जिससे जीवन के बहिर्मुखी विकास के लिये अहर्निश कर्म की प्रेरणा देकर भौतिक प्रगति का जैसा उद्‌भव हुआ जो शायद इससे पूर्व कभी सम्भव नहीं हुआ। पर यह प्रगति हुई अन्तर्जीवन को खोखला करके। समाज जीवन, परिवार जीवन को प्रायः नष्ट

करके। अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं यथा अन्न, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश (ओजोन परत में छेद करके) को प्रदूषित कर अपने अस्तित्व के लिये संकट खड़ा कर लिया है। अतः यह विकास नहीं सर्वनाश की स्थिति है। यह कृत्य उस मूर्ख की तरह है जो वृक्ष की जिस डाल पर बैठा है उसे ही काट रहा है। इस प्रकार यूरोपियन सभ्यता के अवसान की, पतन की घोषणा स्वयं उनके ही मनीषी दशकों से करते आ रहे हैं। सावधान करते आ रहे हैं।

स्पष्ट है विकृत अध्यात्मवाद (सेमिटिक परम्परा उसमें विशेषकर इस्लाम और ईसाइयत) साम्यवाद, ईसाइयत की प्रतिक्रिया में उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति मानव को सुख-शांति, स्वस्थ दृष्टि देने में असमर्थ सिद्ध हुई है। फलतः पश्चिम के श्रेष्ठ मनीषियों की दृष्टि भारत पर है। जो पूरे विश्व का विचार करते हैं। पश्चिम में भी दोनों वर्ग हैं। एक तो अपने हित में भारत सहित सारी दुनिया का शोषण करना चाहता है, भारत को अपना बाजार बनाये रखना चाहता है। इसके लिये भारत को दुर्बल बनाये रखने के लिये नानाविध षड्यंत्रों में लिप्त है। दूसरे वहां के श्रेष्ठ मनीषी जो दुनिया की हित चिंता करते हैं उनकी दृष्टि भारत पर है। नवीन भारत पर नहीं जो कि स्वयं पथच्युत है, भग्न और भ्रष्ट है। उनकी दृष्टि प्राचीन भारत पर, वैदिक भारत पर है। वैदान्तिक, औपनिषदिक, गीतोक्त भारत पर है जो अमर भारत है, शाश्वत भारत है। सारे विश्व को राह दिखा सकता है। प्राचीन भारत की, वैदान्तिक भारत की सत्यता निरन्तर पुरातात्त्विक आधार पर भी और नवीनतम वैज्ञानिक अन्वेषणों के द्वारा और भी अधिक पुष्ट होती जा रही है। पहले वे भारत की प्राचीनता को स्वीकारने के लिये तैयार नहीं थे, परन्तु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने और सरस्वती नदी के अन्वेषण ने भारत की प्राचीनता और विस्तार को मानने के लिए बाध्य कर दिया।

पुराणों को Mythology के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ। पर पुराणों के आधार पर नील नदी के स्रोत का पता लगने पर पुराणों की सत्यता मानने के लिए बाध्य हुए हैं।

राम और कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता को मानने के लिये भी तैयार नहीं थे। रामसेतु के प्रकटन से राम की ऐतिहासिकता और प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो गई। और समुद्र के गर्भ से द्वारिका के प्रकटन से स्वयं कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता सिद्ध हो गई। और जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है वह वैदान्तिक निष्कर्षों के समीप पहुंचता जा रहा है। जिस भारतीय कालगणना की पहले हंसी उड़ाई जाती थी वह सत्य सिद्ध हो गई और उनकी कालगणना Religion Myth सिद्ध हो रही है। पश्चिम ने भौतिक क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में जो भी जय यात्रा की है वह ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ही की है। जब तक पश्चिम ईसाइयत के चंगुल

में था तब तक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अंधकार का युग, अज्ञान का युग माना जाता है और अरब के माध्यम से भारतीय एवं यूनानी ज्ञान-विज्ञान से परिचित होकर ही तथा एशिया की लूट से उनकी जय यात्रा, विकास यात्रा सम्भव हो पाती है। पर स्वस्थ दृष्टि के अभाव में यह जय यात्रा सर्वनाश की यात्रा, मानव समाज के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न स्वरूप बनता जा रहा है। पश्चिम की मात्र 300-400 वर्ष की इस विकास यात्रा ने मनुष्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया जबकि भारत के हजारों-लाखों वर्ष की उत्थान-पतन की यात्रा में ऐसा प्रश्नचिह्न कभी नहीं खड़ा हुआ।

इसलिए विश्व मनीषा की दृष्टि भारत पर है। आज हिन्दू धर्म विश्व की मांग बनता जा रहा है। और इस मांग की पूर्ति करना हमारा दायित्व है। आज वे योग को स्वीकार कर रहे हैं, आयुर्वेद को स्वीकार रहे हैं, दीपावली उत्सव को, हिन्दू विवाह पद्धति को स्वीकार रहे हैं, उनकी संसद वेदमंत्रों से प्रारम्भ हो रही है। जब स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना से एक संवाददाता ने पूछा 'आपकी अब इच्छा क्या है? अगला जीवन किस प्रकार बिताना चाहती हैं?' स्वेतलाना ने कहा कि मैं गंगाजी के किनारे कुटिया बनाकर मनःशान्ति के साथ जीवन बिताना चाहती हूं। ऐसी इच्छा स्टालिन की पुत्री प्रकट करती है।

अमरीका के पूंजीपतियों में जो शिखर पर थे उनमें हेनरी फोर्ड नाम आता है। फोर्ड परिवार अभी भी वहां के बड़े पूंजीपतियों में गिना जाता है। उनके प्रपौत्र अलफ्रेड फोर्ड भगवान कृष्ण के भक्त बन गये। वे हिन्दुस्तान में आये थे। यहां कुछ पत्रकारों ने उनको घेर लिया। यहां के प्रगतिशील लोगों को इस बात का बड़ा दुःख था कि ये भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति जैसे प्रतिगामी विचार में कैसे फंस गया। पत्रकारों ने उनसे प्रश्न किया कि 'आप यदि कृष्ण भक्ति में लग गये तो आपकी सम्पति का क्या होगा? फोर्ड ने उत्तर दिया Wealth? Whose Wealth? All wealth belongs to lord krishna. कोलकाता के प्रगतिशील पत्रकारों को बड़ा दुःख हुआ।

सम्पूर्ण दुनिया के इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन करने वाले एरनार्ड टायनबी ने अट्ठाइस (28) विश्व संस्कृतियों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था वक्तव्य दिया था कि इसके पश्चात् मानवता का मार्गदर्शन करने का दायित्व भारत को उठाना पड़ेगा। न्यूक्लियर शस्त्रों के भण्डार के कारण, अन्न की कमी के कारण सारी दुनिया को बचाने का काम केवल भारत कर सकता है। उन्होंने कहा कि 'आज भारत में तरह-तरह के संकट हैं। दुनिया में जितने भी तरह के संघर्ष हैं विभेद हैं वे सब तरह के संघर्ष और विभेद भारत में मौजूद हैं। किन्तु इन सारे संकटों से ग्रस्त होते हुए भी मैं यह जानता हूं कि भारत में जो एक

बात है वह अन्य किसी भी देश में नहीं है। भारत को प्राचीन संस्कृति की यह देन मिली है। वह है Unity in the midst of diversity विविधता के अन्तर्गत बहता हुआ एकात्मता का प्रवाह। उसका साक्षात्कार करने की क्षमता संस्कृति के नाते भारत को प्राप्त हुई है। यह देन और किसी भी देश को प्राप्त नहीं है? इसलिए मुझे पूरा विश्वास है कि इस सांस्कृतिक देन के कारण इस परम्परागत प्रवाह के कारण भारत अपने समस्त संघर्षों एवं अन्तर्भूत विभेदों पर विजय प्राप्त करेगा। वह एक आदर्श समाज निर्माण करेगा और इस समाज रचना के निर्माण के पश्चात् किस तरह विभेदों से रचना की जा सकती है—यह भारत से सीखने का अवसर दुनिया को मिलेगा। भारत में विश्व को दिशा देने की क्षमता है। यह बात एरनार्ड टायनबी कहता है। और अब यह बात सत्य होती-सी प्रतीत होती है तभी तो वर्तमान विश्व के श्रेष्ठतम उद्यमी स्टीव जॉब्स ने स्वीकार किया कि भारत की संस्कृति में अवगाहन के पश्चात् उनके जीवन में चामत्कारिक परिवर्तन आया। स्टीव जॉब्स कहते है मैं एनलाइटनमेंट के विचार की तरफ आकर्षित था और यह पता लगाने की कोशिश कर रहा था कि मैं कौन हूं और मेरी जिन्दगी का मकसद क्या है। वह भारत के गांव-देहातों में सात महिनों तक भटकता रहा। इस छोटी-सी यात्रा में स्टीव जॉब्स भारत से जो लेकर लौटे, उसने उनकी जिन्दगी बदल दी। यह थी इंट्यूशन या अंतर्ज्ञान की ताकत। वह पश्चिमी विचारों और संस्कारों में पले-बढ़े थे। इसमें प्रमुखता दी जाती है तर्क और बुद्धि को। हर चीज का कारण और प्रभाव होता है। पश्चिमी बुद्धि कारण और प्रभाव से हर घटना को समझने की कोशिश करती है। इंट्यूशन इससे अलग अपने भीतर झांकने की ताकत है। स्टीव कहते हैं पश्चिम का तार्किक विचार जन्मजात मानवीय गुण नहीं है। पर भारत के गांव के लोगों को इसे सीखना नहीं पड़ता। वे जो सीखते हैं जो एक अर्थ में मूल्यवान है और दूसरे अर्थ में नहीं भी। यही इंट्यूशन की ताकत है। यही अनुभव से प्राप्त बुद्धिमत्ता है। भारत के गांवों ने उन्हें इंट्यूशन की ताकत ही नहीं दी, इसकी रोशनी में 'पश्चिम दुनिया के पागलपन' को देखने की शक्ति भी दी।

यह शक्ति जीवन भर स्टीव जॉब्स के साथ रही। आईपॉड से लेकर आईफोन तक जितने नये युगांतरकारी आविष्कार स्टीव कर सके, उनके पीछे पश्चिम के तार्किक विचार की बजाय इंट्यूशन की ताकत थी।

इस प्रकार स्टीव ने भारत आकर अंतर्ज्ञान की शक्ति को पहचाना, इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि उन्होंने अपने काम और जीवन में उसका सफल प्रयोग किया।

एक समय कहा जाता था—'सब सड़कें रोम को ले जाती हैं। वह समय था पूरे यूरोप पर रोम का एकछत्र राज्य था। उसकी राजधानी रोम—सभ्यता, साहित्य, कला, संस्कृति एवं सैन्य शक्ति का केन्द्र थी। इसलिए पूरा यूरोप रोम

की ओर देखता था और 'सभी सड़कें रोम की ओर जाती हैं, ऐसा कहा जाता था। फिर कालान्तर में, औपनिवेशिक काल में इंग्लैण्ड दुनिया के मानचित्र पर छा गया और कहा जाने लगा कि अंग्रेजी राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। पर द्वितीय विश्वयुद्ध में उसकी भी कमर टूट गयी और फिर रूस के विघटन के बाद अब अमरीका ने वही स्थान प्राप्त कर लिया है जो कभी रोम और लंदन का होता था। आज अमेरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली देश है। अब अमरीका भी लड़खड़ा रहा है अब वही स्थान सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भारत लेता जा रहा है तभी तो आज अमरीका के एक-तिहाई लोगों की आस्था हिन्दू धर्म में है वे कर्म सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म में विश्वास करने लगे हैं, मृतक का दाह संस्कार करने लगे हैं। अब वे केवल ईसाई मत सच्चा है और अन्य मत झूठे हैं यह स्वीकार नहीं करते। वरन् यह मानने लगे हैं सत्य तो एक है जिसे विद्वान् लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं। और उसे पाने के अनेक मार्ग हैं। ऐसी सर्वे की रिपोर्ट छप रही है। आज वे संस्कृत भाषा को अपना रहे हैं, गीता को अपना रहे हैं। अमरीकी मतान्तरण करके हिन्दू नहीं बन गये हैं, किन्तु अपनी आस्थाओं, विचारों और व्यवहार में हिन्दुओं जैसे हो गये हैं। पर बड़े दुःख की बात है कि अपने ही देश के संविधान में हिन्दू धर्म और संस्कृति को संरक्षण प्राप्त नहीं है। जबकि इस्लाम और ईसाइयत को विधिवत संरक्षण प्राप्त है जो ईसाइयत स्वयं यूरोप में तिरस्कृत हो गयी है और निरन्तर होती जा रही है। वहां इंग्लैण्ड का राष्ट्राध्यक्ष ईसाई होता है और ईसाइयत को वैधानिक संरक्षण प्राप्त है। यही स्थिति यूरोप के अन्य देशों में है। पर बड़ी विचित्र बात है कि जो हिन्दू धर्म विश्व की आशा है उसे अपने ही देश में संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं है।

विकास सीधी रेखा में नहीं चलता। यह चक्राकार चलता है। इसमें उत्थान और पतन के दौर आते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति जीवन में, परिवार जीवन में, समाज जीवन में उत्थान और पतन के दौर आते हैं वैसे ही राष्ट्र जीवन में उत्थान और पतन के दौर आते हैं। तो काल के प्रवाह से कुछ गर्द उस पर अवश्य आ गई है। समाज जीवन में कुछ अंधविश्वास, गलत रूढ़ियां अवश्य जुड़ गयी हैं, पर ये सब ऊपर-ऊपर ही हैं। अन्दर में मूल सुरक्षित है। अतः गर्द हटाते ही उसका मूल स्वरूप प्रकाश में आ जायेगा। जिससे न केवल भारत वरन् पूरा विश्व ही नहीं चराचर जगत् आलोकित हो उठेगा। जबकि सेमिटिक परम्परा के मूल में विकृतियां ही विकृतियां, त्रुटियां ही त्रुटियां भरी हुई हैं। यही कारण है कि वह अपने जन्म के लग्न काल से आज तक सारे विश्व ही नहीं चराचर जगत् को त्रास देता आ रहा है। क्यों नहीं इस पर कोई आयोग गठित होता है जो यह विचारे कि उसके अपने सन्दर्भ में और विश्व के अन्य देशों के सन्दर्भ में उसका अवदान क्या रहा है?

पश्चिम में मार्क्स, फ्रायड, नीत्शे, बर्ट्रेंड रसेल, फयूरबाख आदि ने जो धर्म की आलोचना की है वह सेमिटिक परम्परा की, की है। वे हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति से परिचित ही नहीं थे। सेमिटिक परम्परा में जो Personal God की अवधारणा है, गांधीजी के शब्दों में King like God की अवधारणा जो भीषण रूप से राग-द्वेष, ईर्ष्या से ग्रस्त है, जिसकी मुंहलगी जातियां, देश, उम्मा, चर्च हैं और उनके प्रति वचनबद्धता है, समझौता है। जिनकी स्वयं की रुचि नृशंसतापरायण है। ऐसा ईश्वर हमारा आदर्श कैसे हो सकता है? यह तो खण्डन योग्य ही है। ऐसे ईश्वर के स्वरूप के कारण उन्हें धर्म के नाम से ही, ईश्वर के नाम से ही अरुचि हो गई और हिन्दुओं में जो धर्म की, ईश्वर की अवधारणा थी उससे वे परिचित नहीं थे। पर जैसे-जैसे उनका हिन्दू धर्म, हिन्दू ईश्वर, हिन्दू सभ्यता-संस्कृति से परिचय हुआ, वे इसके प्रशंसक बने। इम्यानुल कांट की गणना दुनिया के अजर-अमर दार्शनिकों में है। प्रशा के कानिग्सवर्ग नामक नगर में सन् 1724 में एक गरीब परिवार में मोची के घर में उनका जन्म हुआ था। उसकी मां बड़ी धर्मनिष्ठ थी। वह पाइटिस्ट सम्प्रदाय की अनुगामिनी थी जिसमें सदाचार और नैतिकता को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता था। किन्तु 'पाइटिस्ट' सम्प्रदाय में संयम एवं अनुशासन के नियम बड़े कड़े थे। बालक कांट इसी सांचे में ढला था—माता के मार्गदर्शन में उसकी संकल्प शक्ति और आचरण-बुद्धि फौलाद की दृढ़ता में परिणत होती रही।

माता के साथ कांट प्रतिदिन दोनों समय चर्च जाता था। और अपनी दैनिक-चर्या का काफी समय पादरियों के धर्मोपाख्यान सुनने में बिताता था। किन्तु माता की ईश्वर निष्ठा का जितना गहरा बीजारोपण उसकी चेतना पर हुआ पादरियों के आचरण से उतनी ही घृणा उसे होने लगी। और इसी विद्रोह के आवेग में एक दिन उसने अपनी माता से कह दिया—प्यारी मां, सैकड़ों-हजारों भयभीत लोगों को पादरियों के सामने घुटने टेक कर पाप मुक्ति का आशीर्वाद प्राप्त करते देख मेरा मन कहता है कि यदि कहीं भगवान के कोप जैसा कोई विधान है तो वह बिजली बनकर गिरे। जिसकी आग में यह चर्च, पादरियों का यह मठ और ये मूढ़ पुजारी जलकर भस्म हो जाएं।

इसी विद्रोह भावना की स्फूर्ति में कांट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'क्रिटिक आव प्योर रीजन, लिखी जिसने विचारों की दुनिया में तहलका मचा दिया। उसके बाद 'क्रिटिक आव प्रैक्टिकल रीजन' प्रकाशित हुआ। सारे यूरोप के मठाधीशों की नींद हराम हो गई। सामंतवाद के किले थरथराने लगे और चर्च की दीवारें लड़खड़ाने लगी।

ये दोनों पुस्तकें ज्ञानयोग पर थी। ज्ञान क्या है? ईश्वर क्या है, धर्म क्या है? इन दोनों पुस्तकों में इन प्रश्नों का जो विवेचन है उससे पाश्चात्य दर्शन की कई

स्थापनाओं में आमूल-चूल परिवर्तन हुए। उसने अपने प्रखर आलोचक हाडने को कहा था—मैं दार्शनिक नहीं हूं, मैं एक मामूली प्रोफेसर हूं। किन्तु मैं यह देखकर बेहद पीड़ित हूं कि भय ने मनुष्य को सर्कस का पशु बना कर रखा है। मैं इस भय को मिटाने का बीड़ा उठा चुका हूं। बाइबिल में वर्णित 'पाप का भय' आज के जगत् का सबसे भयंकर भय है। मैं उसको तोड़ दूंगा। मैं मनुष्य को धर्म के भय, पाप के भय, ईश्वर के भय से मुक्त करना चाहता हूं। भय ही वास्तव में पाप का बीज है। मनुष्य और उसकी आत्मा के बीच में भय का पहाड़ ही सबसे बड़ी बाधा है।

वही कांट कहता है गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा मैंने उसे पढ़ा और उसने मुझे आजीवन विस्मित रखा। उसके दर्शन पर गीता के निष्काम कर्मयोग और कर्तव्यवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

पंथों और पैगम्बरों की परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण जो भीषण रक्तपात एवं बर्बर जनसंहार हुए उसी ने कार्लमार्क्स जैसे क्रान्तिद्रष्टा को भी नास्तिक बना दिया।

रोमां रोलां कहता है कि पचीस साल पहले की बात है। मैं सुबह के समय घूमता हुआ एक गिरजे के सामने से गुजरा। पादरी प्रवचन पढ़ रहा था—

ईश्वर! हमारे शत्रुओं का नाश करो। अधर्मियों के लिए नरक के द्वार खोल दो। हमारे देश को सुख-सम्पदा से भर दो। हमारे सम्राट् को दिग्विजयी बनाओ....

आज एक-चौथाई सदी बीतने पर भी हमारे गिरजाघरों में लगभग इसी प्रकार के प्रवचन पढ़े जाते हैं। उनके खयाल से मेरे मन में विद्रोह की आंधी आयी और मैं सोचता हूं : कैसा है यह प्यारा ईश्वर? वह दया और सहानुभूति का ईश्वर नहीं है। वह अनन्त प्रेम का ईश्वर नहीं, वरन् वह हिंसा का ईश्वर है, रक्तपात का ईश्वर है। जो दो-दो विश्वयुद्धों को जन्म देकर शैतान की हंसी हंसता है।

पिछले पचीस सालों से मैं उस ईश्वर से घृणा करता आ रहा हूं और अपनी कल्पना में ऐसे ईश्वर को साकार करता रहा हूं जो मनुष्यों के अपार गौरव और महानता का प्रतीक हो। उस ईश्वर की खोज में मैंने संसार के सभी नये-पुराने दर्शन शास्त्र पढ़े हैं, परन्तु मुझे संतोष नहीं मिला।

हां, हिन्दुओं का वेदान्त पढ़ने पर मुझे जरूर कुछ संतोष हुआ और मेरी कल्पना का ईश्वर साकार किया है। हिन्दू दर्शन कहता है—

मुझे घृणा से मुक्त कर दो, मुझे अजातशत्रु बनाओ और भावनाओं के तूफान में मुझे इस प्रकार अचल-अटल बनाओ कि सबको समझ सकूं और प्यार कर सकूं।

काण्टलियो टालस्टाय—बौद्धिक ओज से भरपूर, शारीरिक दृष्टि से समकालीन लोगों में स्वस्थ, वेश और प्रतिभा के कारण अत्यन्त प्रतिष्ठित, एक बड़ी जमींनदारी के स्वामी, आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त रूसी भाषा के महान् लेखक और विश्व साहित्य के प्रतिष्ठित यशस्वियों में से एक काण्टलियो टालस्टाय का बाह्य जीवन समृद्धमय था, पर उन्हें लगा—जीवनधारा रुक-सी गई है।

प्रत्येक प्राणी के लिए और स्वयं उसके लिए भी जीवन में पीड़न, मृत्यु और निरन्तर क्षय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए निश्चय कर लिया था कि इस भांति वह जीवित नहीं रह सकता। या तो जीवन का कोई अर्थ उसे जानने को मिलना चाहिए, नहीं तो फिर वह अपने-आप को गोली मार लेगा।

इस आन्तरिक संघर्ष ने उन्हें द्रष्टा-चिन्तक, जीवन तत्त्व के सत्य का अन्वेषी बनने को पुनः विवश किया। टालस्टाय के स्वलिखित कागज में एक 'अज्ञात प्रश्नावली' इस प्रकार से है—

(1) मैं क्यों जी रहा हूं?

(2) मेरे और अन्य सब लोगों के अस्तित्व का कारण क्या है?

(3) मेरे अस्तित्व और दूसरे सारे अस्तित्वों का प्रयोजन क्या है?

(4) मेरे अन्तर में अच्छाई-बुराई का जो विभाजन मैं अनुभव करता हूं इसका अर्थ क्या है और ऐसा क्यों होता है?

(5) मुझे कैसे जीना चाहिए?

(6) मृत्यु क्या है? उससे मैं अपने को कैसे बचा सकता हूं?

इन छह अज्ञात प्रश्नों की खोज के लिए टालस्टाय दार्शनिकों की ओर झुका—यह जानने के लिए कि मानव जीवन के प्रयोजन के विषय में दार्शनिकों की राय क्या है? हर प्रकार की दार्शनिक पुस्तकें उसने पढ़ना शुरू किया। शोपेनहार, प्लेटो, कांट, पास्कल के दर्शन में उन्हें अपने प्रश्नों का सही उत्तर न मिला। समूचा विज्ञान भी उसके मन को समाधान न दे सका। टालस्टाय को यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि इन दार्शनिकों ने उन्हीं प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित रूप से दिया है जिसका प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर जहां निश्चित सुझाव और मार्गदर्शन की आवश्यकता है वहां वे उसे टाल गये हैं। आयु के सातवें दशक के अंत में और अस्सी वर्ष के आरम्भ में भारतीय दर्शन की ओर मुड़े। भारतीय दर्शन के प्राचीन स्मारक वेदों और उपनिषदों की ओर भारत के श्रेष्ठ महाकाव्यों और लोक साहित्यों की ओर जीवन के अंतिम अर्थ और मानव जीवन के लक्ष्य का उत्तर पाने के लिए। तब से मृत्यु पर्यन्त उन्होंने भारतीय संस्कृति की ओर बहुत ध्यान दिया और उसे रूस में लोकप्रिय बनाया।

बर्टेंड रसेल जिन्होंने Why I am not a Christian पुस्तक लिखी। वे कहते हैं उन्हें किसी धर्म को स्वीकारने का कहा जाय तो वे बौद्ध धर्म को स्वीकारेंगे। सन् 1950-52 में एक बार डॉ. राधाकृष्णन और रसेल में रेडियो वार्ता हुई। पहले रसेल ने 'मैं धर्म को क्यों नहीं स्वीकारता' पर अपनी वार्ता प्रस्तुत की फिर डॉ. राधाकृष्णन ने हिन्दू धर्म को परिभाषित कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। उस वार्ता को सुनकर रसेल कहते हैं—धर्म का स्वरूप यह है तो मुझे भी धर्म मान्य है। स्पष्ट है 'ईसाइयत एकमात्र सच्चा Religion है' और 'Personal God की अवधारणा' ने लोगों के जीवन को नरक बना दिया था। इसलिए हर प्रबुद्ध व्यक्ति यूरोप में ईसाइयत के विरोधी हुए यथा—जॉनलेकी, चाहे जॉनलॉक, चाहे आइंस्टाइन, कार्लजुंग, सिंगमंड फ्रायड, नीत्शे, थियोडोर, एडोलमो, ए.जे. अय्यर, अन्ना, अरिन्ट, मैक्स प्लेंक, हुस्सर्ब, मेक्समिलर, फयूरबाख आदि-आदि।

बी.बी.सी. के उद्घोषकर्ता, पत्रकार, लेखक मार्क तुली ने दार्जिलिंग के वेलहम स्कूल के बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा—जब पश्चिम स्वयं अपने जीवन-मूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है तब नकली अमरीका बनने की अपेक्षा असली भारत बनना अधिक सातत्यपूर्ण है।

इस पुस्तक में भारतीय दर्शन परम्परा के कालातीत स्वरूप को, उसके वैज्ञानिक स्वरूप को आज के आधुनिक सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। कैसे भारतीय दार्शनिक परम्परा चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन, आधुनिक व शाश्वत है।

इसी संदर्भ में दर्शन की मूलभूत मान्यताएं क्या हैं? भारतीय दर्शन की धाराएं कितने प्रकार की हैं, भारतीय दर्शन के मूलभूत प्रश्न क्या हैं? भौतिकवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? द्वैतवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? चेतनवाद क्या है, उसके कितने प्रकार हैं? उसका सबसे उत्कृष्ट, परिपूर्णरूप शंकराचार्य के अद्वैतमत में मिलता है जिसकी ओर वैज्ञानिक जगत् भी झुक रहा है। आकृष्ट हो रहा है। जीवन तत्त्व क्या है, उसका रहस्य क्या है, जीवन तत्त्व की महत्ता क्या है? आत्म तत्त्व क्या है? मृत्यु तत्त्व क्या है, क्या इसकी वास्तविक सत्ता है या मुमुक्षु के लिए एक पड़ाव की तरह है सिद्धि प्राप्त साधक के लिए वास्तविक जीवन तत्त्व की, आत्म तत्त्व की उपलब्धि का अवसर है, प्रभु मिलन की वेला है, मोक्ष का महापर्व है। तत्त्व के प्रति भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा में क्या मूलभूत अन्तर है, विकासवाद के संदर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा में क्या विभेद है? अपरा विद्या, विज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टि क्या है? आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की खोज क्या है? और उसके निष्कर्ष कैसे भारतीय दर्शन के, वेदान्त के निकट आते जा रहे हैं। सृष्टि क्या है, उस संदर्भ में वैज्ञानिक खोजों के साथ भारतीय

दर्शन से किस प्रकार का सामंजस्य है? पाश्चात्य विज्ञान किन आधारों पर भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है? विश्व की प्राचीन सभ्यताएं क्यों नाश को प्राप्त हुईं और पश्चिम की आधुनिक सभ्यताएं परम वैभव पर होते हुए भी क्यों अवसान पर हैं और भारतीय सभ्यता-संस्कृति सब प्रकार की दुर्भाग्य की ठोकरें खाकर भी क्यों चिरंजीवी बनी हुई है, और भविष्य में विश्व की आशा का केन्द्र क्यों बनती जा रही हैं? कार्लमार्क्स द्वारा धर्म की आलोचना की समीक्षा सेमेटिक परम्परा पर लागू है, सनातन हिन्दू धर्म, वैदिक धर्म, आर्य धर्म पर नहीं। वर्तमान आधुनिक मानव समाज की समस्याओं से उबरने के लिए विश्व को और आधुनिक भारत को, भारतीय दर्शन का क्या मार्गदर्शन है, इन सब तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित करने की, विचार करने की आवश्यकता है।

भारतीय दर्शन परम्परा के विषय में जैसे-जैसे विश्वविद्यालय में चुनौती मिलती गयी वैसे-वैसे परम पूज्य स्वर्गीय डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से जिज्ञासा करता रहा और उनके चरणों में बैठकर पढ़ता रहा। उनकी व्यस्तता और असमय में दुर्घटना में चले जाने से बहुत से पाठ अधूरे रह गये जो इस प्रकार हैं—द्वैतवाद, कर्मसिद्धान्त, भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान में तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन, सृष्टि रहस्य, हिन्दू एवं ईसाई का तुलनात्मक अध्ययन—जिसे मैंने उनसे प्राप्त दृष्टि के आधार पर बहुत कुछ उन्हीं के शब्दों में पूरा करने का प्रयास किया है। इसमें तीन स्वतंत्र लेख मेरे भी हैं जो उनके चले जाने के बाद लिखे गये हैं। और विषय की स्पष्टता के लिए शामिल किये गये हैं जो इस प्रकार हैं—

1. आधुनिक समय में उपनिषदों का प्रसार यूरोप में
2. पाश्चात्य विज्ञान तीन कारणों से भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है
3. पश्चिमी सभ्यता का बुरा हश्र क्यों?

फिर उनके कुछ भाषणों के सारसंक्षेप, मैंने जो उनसे जिज्ञासाएं की थी, उनका भी सारसंक्षेप और स्फुट विचार भी शामिल किए गए हैं। और जो लेख पूर्व के तीन खण्डों में शामिल होने से रह गये थे उन्हें परिशिष्ट में समाविष्ट किया गया है। पुरुलिया के राजस्थान स्कूल में 'गोस्वामी तुलसीदास' पर भाषण हुआ था, वह भी इसमें शामिल है।

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
मो. 09413769139

अनुक्रम

प्रवचन

परिशिष्ट प्रथम (राष्ट्रीय समस्याएं)

परिशिष्ट द्वितीय (महापुरुष)

डॉ. हरवंशलाल ओबराय के संस्मरण

ऋषि दधीचि का पावन बलिदान दिवस था। शाम का समय था। इस पावन प्रसंग की चर्चा प्रो. ओबरायजी कर रहे थे। वहां मैं भी कुछ बन्धुओं के साथ उपस्थित था। तब एक सज्जन जो कभी-कभी संस्कृति विहार आया करते थे, कहने लगे—यह प्रसंग आज के सन्दर्भ में सत्य नहीं है। तब डॉ. ओबराय ने कहा—सत्य तो मल से भरे हुए गुदे भी हैं। पर जब आप किसी साक्षात्कार में जाते हैं तब अपना सजा-धजा चेहरा ही दिखाते हैं, मल से भरे हुए गुदे तो नहीं। उसे तो अच्छी तरह ढककर रखते हैं। उसी प्रकार अपनी संस्कृति, सभ्यता, देश, इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को ही अपने सामने एवं अन्यों के सामने रखना चाहिए, Dark portion को नहीं। त्रिगुणों के कारण कुछ गन्दगी आ ही जाती है, उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। और आदर्श तो हमेशा ऊंचा होना चाहिये। हां, यह अलग बात है कि हम किस स्तर तक उसका पालन कर पाते हैं।

मानव सेवासंघ के प्रतिष्ठाता परमश्रद्धेय स्वामी शरणानन्दजी से डॉ. ओबरायजी का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। स्वामीजी जब रांची आते थे, तब अवश्य संस्कृति विहार में भी पधारते थे। उनके सत्संग का आयोजन भी वहां रहता था। एक बार ऐसे ही चर्चा प्रसंग में कहने लगे—आप क्या हिन्दू-हिन्दू कहते रहते हो, मानव की बात किया करो। तब डॉ. ओबराय ने बड़ी विनम्रता से धीरे से कहा—चूंकि आप हिन्दू हैं इसलिए आप मानवता की बात कर रहे हैं। अगर आप मुसलमान या ईसाई होते तो मानवता की बात नहीं करते। मुसलमान या ईसाई की बात ही करते।

तब स्वामीजी डॉ. ओबराय की बात स्वीकार कर मौन होकर मुस्कराने लगे। तब डॉ. ओबराय ने कहा—आदर्श तो हमेशा ही ऊंचा रखना चाहिये। जैसे—सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः—पर दृष्टिकोण हमेशा व्यावहारिक होना चाहिये।

हिन्दू इतना उदार और सहिष्णु है कि उदारता जो इसका भूषण है, वही दूषण हो गया है। वरदान अभिशाप हो गया है। स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी ने इसे सद्‌गुण विकृति कहा है। स्वामी रामतीर्थ ने यथार्थ व्यावहारिकता का अभाव कहा है।

अतः हमें यह तो प्रयास करना चाहिये कि सद्गुण दुर्गुण न हो जाय और उसका यथार्थ व्यावहारिकता के साथ उचित सामंजस्य हो।

हिन्दी साहित्य से एम.ए. पास एक छात्रा तुलसीकृत मानस और वाल्मीकि रामायण पर अनर्गल आरोप लगाने लगी। तब डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी ने कहा—तुलसी के मानस की चार चौपाई और वाल्मीकि रामायण का एक श्लोक सुनाओ, पर वह सुना नहीं पाई। जब श्रीमान् जी ने डांट लगाई तो उसने कहा—मैं एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास हूं। क्या हुआ जो मैं रामायण नहीं जानती? तब श्रीमान्जी ने कहा—जिस प्रकार मक्खी 56 प्रकार के पकवानों पर बैठती है पर वह भोजन से रस ग्रहण करने के लिये या भोजन करने के लिये नहीं वरन् विष्ठा करने के लिये बैठती है। वैसे ही कुछ आधुनिक या नास्तिक लोग धर्मग्रंथों (रामायण, महाभारत आदि) से कुछ पाने के लिये अध्ययन नहीं करते वरन् उस पर विष्ठा करने के लिए बैठते हैं।

एक बार पटना एयरपोर्ट पर श्री आनन्दमूर्तिजी उतरे। संयोग से डॉ. ओबराय को वहीं से कहीं की फ्लाइट पकड़नी थी। अतः दोनों का आमना-सामना हो गया। श्रीआनन्दमूर्तिजी अपने संन्यासी शिष्यों से घिरे हुए थे। तब डॉ. ओबरायजी ने एक जिज्ञासा का समाधान चाहा। वे टालमटोल करने लगे, तब भी उन्होंने अपनी जिज्ञासा रख ही दी। आप तो गृहस्थ हैं। माताजी भी आपके साथ हैं और आप दोनों रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हैं। आप शिष्यों को संन्यास की दीक्षा कैसे दे रहे हैं? तो उन्होंने कहा—इसका उत्तर तो मेरा कोई भी शिष्य दे देगा। फिर कहने लगे—रामकृष्ण परमहंसजी ने गृहस्थ होते हुए भी विवेकानन्दादि को संन्यास की दीक्षा दी। तब डॉ. ओबराय ने बताया कि रामकृष्णदेवजी ने तोतापुरीजी से विधिवत संन्यास की दीक्षा ली थी। स्वयं का विरजा होम किया था। अतः संन्यास दीक्षा देने के अधिकारी होते हुए भी उन्होंने संन्यास की दीक्षा नहीं दी थी। अपने कुछ शिष्यों को गेरिक वस्त्र में भिक्षा मांगने का अधिकार अवश्य दिया था। उनके शिष्यों ने उनके जाने के बाद संन्यास की दीक्षा ली थी।

डॉ. ओबराय को प्लेन पकड़ना था। उनके साथ में श्री गंगाप्रसाद बुधियाजी (संस्कृति विहार के अध्यक्ष) थे, कहने लगे कि इनसे विवाद के चक्कर में हमारा प्लेन छूट जायेगा। तब डॉ. ओबराय आनन्दमूर्ति के मुंह पर यह कहते हुए—'शिष्य तो गेरुआ, गुरु है ठगवा' चल पड़े।

डॉ. ओबराय अक्सर कहा करते थे हिन्दुओं के पास तत्त्वज्ञान तो सर्वश्रेष्ठ है। पर हमारी पैकिंग रद्दी है और हमारे सेल्समैन हैं घटिया। जो हिन्दुओं में तेजस्वी हैं वे सरकारी, गैर-सरकारी प्रतिष्ठित पदों पर चले जाते हैं और जिन्हें कुछ नहीं आता वे पुजारी बन जाते हैं। ईसाइयों के पास तत्त्वज्ञान कुछ नहीं। सबसे घटिया है

पर उनकी पैकिंग सबसे बढ़िया है, टिप-टोप है और उनके सेल्समैन एक से बढ़कर एक हैं। डॉक्टरेट, पीएच-डी. से नीचे कोई नहीं है।

इसलिए मेरा यह प्रयास है, पैकिंग अच्छी हो और श्रेष्ठ लोगों के पास यह पुस्तक पहुंचे।

डॉ. ओबराय अक्सर पादरियों और सिस्टरों के विषय में कहा करते—प्रायः सभी पादरी अविवाहित पिता हैं और प्रायः सभी सिस्टर अविवाहित मदर हैं। पादरी थोटंकल, जो स्वामी नरेन्द्रानन्द बनकर ब्राह्मणों के गरीब बच्चों को पढ़ाने के नाम पर लाकर, ईसाई बना रहा था। उसका जब भण्डाफोड़ हुआ, पकड़ा गया तब उसके पास से एक बक्सा निरोध सामग्री पकड़ी गई। अब तो आये दिन पादरियों के यौनाचार के अपराध प्रकाश में आ रहे हैं।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ने भक्त दम्पतियों (पति-पत्नी) में एक शहर विशेष में परस्पर राखी बंधवा दी और कहा—आज से आप भाई-बहिन हैं, उन्हीं की तरह रहें। आज से परस्पर में पति-पत्नी का व्यवहार वर्जित है। इससे बड़ी अव्यवस्था फैली, और विवाद का रूप ले लिया। संयोग से उस समय डॉ. हरवंशलाल ओबराय उस शहर विशेष में किसी कार्यक्रम से गये हुए थे। उनके सामने भी यह समस्या आयी। तब उन्होंने उन सब दम्पतियों को और समाज के प्रतिष्ठित लोगों को एक साथ बुलाकर कहा कि आपने कुल देवता, अग्निदेव, वेदमंत्रों तथा सारे कुटुम्ब व समाज को साक्षी रखकर वैदिक पद्धति से पाणिग्रहण संस्कार किया, वह सही है या किन्हीं के भुलावे-बहकावे में आकर परस्पर राखी बांध ली उसे सत्य मानेंगे? सबने एक स्वर से कहा—पाणिग्रहण-संस्कार को।

स्वामी करपात्रीजी महाराज जीवनभर शुद्धि-संस्कार के विरोधी रहे। सोंस के रामरक्षा यज्ञ में डॉ. ओबरायजी ने विलियम नाम के व्यक्ति को बलराम नाम देकर उसका वेदमंत्रों द्वारा शुद्धि-संस्कार किया। इस पर स्वामीजी रुष्ट हो गये और उन्होंने तुरंत डॉ. ओबरायजी को बुलाया। उन्होंने कहा कि इस प्रकार से दूसरों को शुद्ध करते-करते तुम स्वयं अशुद्ध हो जाओगे। कभी भी बीज का नाश नहीं होता। एक भी हिन्दू बचा रहेगा तो हिन्दू धर्म की रक्षा हो जायेगी। प्रो. ओबरायजी ने कहा प्रजातंत्र में सिर गिने जाते हैं, तौले नहीं जाते। फिर हिन्दू समाज के संख्याबल में क्षीण होते ही हिन्दुस्तान आर्यावर्त्त से म्लेच्छावर्त्त बन जायेगा—पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान बन जायेगा। अतः भारत आर्यावर्त्त बना रहे इसके लिए हिन्दू समाज का बहुसंख्यक बने रहना आवश्यक है। अतः शुद्धि-संस्कार अनिवार्य है। इससे स्वामीजी ने सहमत होकर उस रात्रि को सभा में शुद्धि-संस्कार का समर्थन किया।

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

जेल जीवन व अन्य संस्मरण

हरवंशलाल ओबराय की मृत्यु से भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का एक प्रकांड विद्वान्, एक प्रखर वक्ता एवं प्राचीन व संस्कृत ग्रंथों का विशेषज्ञ एवं शोधकर्ता हमारे बीच से उठ गया। सक्रिय राजनीति में अन्तर्लिप्त न रहते हुए भी जब जहां कहीं भी राष्ट्र संकट दृष्टिगोचर हुआ श्री ओबराय ने आगे की पंक्ति में आकर भारतीय दर्शन एवं शास्त्र की ढाल लेते हुए एक योद्धा की तरह उसका सामना किया। इसका उदाहरण था सन् 1974-75 का जयप्रकाश आन्दोलन।

मेरे अभिन्न मित्र

1975 की आपातस्थिति के समय तो हम दोनों अति निकट आ गए। मैं 4 जुलाई की रात को ही गिरफ्तार कर लिया गया और 5 जुलाई की रात में जब जेल में ले जाया गया तो वहां ओबरायजी पहले से ही विद्यमान मिले। मुझे देखते ही उन्होंने आलिंगन में भर लिया। हम दिल खोलकर मिले। उस दिन जेल का 5 नम्बर का वार्ड कैदियों से भरा था। सोने की जगह नहीं थी फिर भी उन्होंने उसी में जगह बनाई और हम लोग एक करवट में ही सो गए।

मैं उन्हीं दिनों के अपने संस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूं जिससे स्व. ओबराय के अनोखे व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

जेल की एक ही कोठरी में जिसमें मुश्किल से 40 कैदी समा सकते थे, करीब 150 कैदियों को ठूंस दिया गया। सोते समय करवट बदलना तक कठिन हो जाता था। ओबरायजी, श्री आगाशे, श्री प्यारेलाल चोपड़ा एवं मैं जेलर के पास गए और वार्ड बदलने को कहा। उन्होंने वार्ड बदलने का वादा किया और शाम को एक छोटा वार्ड दिया जो 'दरी वार्ड' के नाम से जाना जाता था। उसमें पहले से ही 20 कैदी विद्यमान थे। किसी तरह हम लोग उसमें सात दिन रहे। लेकिन इसी बीच हम सबों के कुछ न कुछ सामान चोरी चले गए। 11 जुलाई को हम सभी जेलर के पास गए और दूसरे वार्ड की मांग की। जेलर ने जब देने से इनकार किया तब उस दिन ओबरायजी ने, जो शांत प्रकृति के माने जाते थे, ऐसा उग्र रूप धारण किया कि दूसरे दिन सवेरे ही हम गया केन्द्रीय जेल भेज दिए गए।

रांची जेल में उन्होंने रामायण का पाठ प्रारम्भ किया। मैं रामायण का सस्वर पाठ करता था और ओबरायजी अपने सरस शब्दों में उसका अर्थ बड़ी ही तन्मयता से बतलाते थे। उस दिन एक पंक्ति थी—'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद्काल परखिये चारी।।' इस पर उन्होंने ऐसे लोगों को, जो जेल जीवन एवं आपातकाल से घबरा गए थे, काफी हिम्मत बंधाई और अपने एक घंटे के प्रवचन में केवल इसी का विशद् वर्णन किया।

जेल में गीता गोष्ठी

गया केन्द्रीय जेल में गीता गोष्ठी होती। ओबरायजी प्रतिदिन गीता पाठ करते और गीता की मीमांसा के दौरान आपातकाल की खामियों एवं प्रशासन की तीखी आलोचना करते। लेकिन गीता की पंक्तियां ही उसका माध्यम हुआ करती थीं। इस पर जेलर ने ओबरायजी को गीता पाठ बंद कर देने को कहा। ओबरायजी उखड़ गए एवं साफ शब्दों में कहा कि 'गीता पाठ बंद नहीं होगा। आप अपने उच्च अधिकारी को लिख दें। मैं सभी सजा भुगतूंगा किन्तु धर्म करने में रुकावट को नहीं सहूंगा।' अंत में हार कर जेलर स्वयं कभी-कभी आकर गीता पाठ में बैठने लगा लेकिन इनकी प्रशासकीय आलोचना जारी रही।

संस्मरणांजलि

मुझे याद है, ओबरायजी दूसरी श्रेणी में रखे गए और हम लोग साधारण कैदी थे। अतः उन्हें 8 बजे बंद किया जाता था जबकि हम लोगों को 6 बजे शाम को ही वार्ड में बंद कर दिया जाता था। उन्हें द्वितीय श्रेणी का भोजन मिलता था। उन्हें खाने में जो नीबू दिया जाता था वह उसका अचार बनाते थे और प्रतिदिन शाम को खिड़की से दे जाते थे। इतना ही नहीं, जब कभी भी खीर या कोई बढ़िया भोजन या पकवान बनता वह खिड़की से जरूर दे जाते।

पुस्तकों से असीम प्यार

गया जेल के पुस्तकालय की हालत दयनीय थी। वहां की कोई भी पुस्तक पूर्ण दशा में नहीं थी। ओबरायजी पुस्तकों का अध्ययन करते और उन्हें कूटों से बांध कर उनकी सूची तैयार कर लेते। जो कोई उनसे मिलने जाता वह फल या मिठाई वगैरह लेकर जाता था। वह उन्हें यह सब लाने से मना कर कपड़ा और कूट मांगते थे। जेल में भोजन के लिए आटा मिलता था, उसमें से थोड़ा लेकर लेई बनाते और उसी से वहां की सभी पुस्तकों की मरम्मत कर पुस्तकों का एक सूची-पत्र बना दिया। गया जेल उनको इसके लिए बराबर ही याद करेगा।

जेल में कोई भी बीमार हो या किसी तरह की किसी को तकलीफ हो, वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, सबकी सेवा मानव मात्र की सेवा समझ कर करते

थे। रोगी को डॉक्टर के पास ले जाकर उनसे चाहे शांति से हो चाहे संघर्ष से, दूध, दवाई, नीबू इत्यादि आवश्यक चीजें जरूर दिलवा देते थे और जब तक वह रोगी चंगा नहीं हो जाता था बराबर उनको देखने जाते।

वीर माता

जेल जाने के बाद पहली बार उनकी 87 वर्षीया वृद्ध माता गया केन्द्रीय जेल में उनसे मिलने गई। ओबरायजी मां से मिलने आए। पहले उन्होंने माता के चरण छूकर प्रणाम किया और बातें करने लगे। भावावेश में ओबरायजी की आंखें भर आईं। इस पर उनकी माताजी ने कहा- बेटा! तुम प्रतिदिन गीता का पाठ करते हो और दूसरों को गीता का ज्ञान देते हो। आज तुम्हारी आंखों में आंसू! उसके बाद से जब भी उनकी माता मिलने आतीं, ओबरायजी उनके चरण छूकर खुशी से मिलते।

जेल में मिलने आने वालों से उनकी मांग रहती थी गुटका रामायण एवं छोटी 20 पैसे वाली गीता की। जेल के सभी हिन्दू-मुस्लिम कैदियों एवं वहां के सभी कर्मचारियों को भी उन्होंने गीता और रामायण की प्रतियां बांटी।

ओबरायजी कहा करते थे 'परोपकारपुण्याय पापाय परपीडनम्।' और उन्होंने इस तत्त्व को अपने जीवन में ढाला था। जेल का हरेक व्यक्ति, चाहे वह उम्र कैद प्राप्त कैदी हो या चोरी-डकैती में सजा प्राप्त या राजनीतिक कैदी हो, सबसे मिलते और सबको धर्म का उपदेश देते। एक बार मुस्लिम कैदियों ने हम सबों को ईद-मिलन समारोह में अपने वार्ड में बुलाया। हम सभी गए और वहां भी उनका भाषण हुआ। वहीं पर गया के किसी कालेज के प्रिंसिपल थे—नसीरुद्दीन साहब। उन्होंने कहा था कि अगर संघ वाले ऐसे हैं तो हम लोगों को संघ मान्य है।

ऐसे थे स्व. ओबरायजी। आज वे नहीं रहे पर उनकी स्मृति रह गई है जो हमें बराबर प्रेरणा देती रहेगी।

—**प्रभासचन्द्र दुबे,** रांची

एक कर्मठ योगी

हरवंशलाल ओबरायजी के प्रति मेरी श्रद्धा अटूट थी। स्वजाति भाई होने के कारण नहीं अपितु उनकी प्रकाण्ड विद्वत्ता के लिए। हम दोनों में प्रेम की निरन्तर वृद्धि होती रही और प्रेमवश ही वह मुझे भीष्म पितामह कहकर सम्बोधन करते थे तो मैं उनको 'कलि का कृष्ण' कह दिया करता था। मेरी दृढ़ मान्यता है कि परमपिता परमात्मा परम दयालु है, पर उनकी लीला अगम्य है। उन अपरम्पार की

लीला को समझ नहीं पाने के कारण कभी-कभी अज्ञानतावश ही अनायास क्रोध उत्पन्न हो जाता है। हम दोनों के सहज प्रेम के प्रति उनको विद्वेष हो गया और आज हम दोनों के बीच इतनी दूरी आ गई कि पुनः उनके दर्शन हेतु मुझे भी अपनी जीवन लीला को समाप्त करना पड़ जाएगा। वह संसार से चल बसे, पर अन्तिम क्षणों तक 'राम-कृष्ण' और 'हरि ॐ' का उच्चारण करते रहे। उनके लिए असंख्य लोगों की आंखों से आंसू बहे। उनकी दाह-क्रिया राजशाही सम्मान के साथ की गई। श्राद्ध भी बड़ी श्रद्धा के साथ सम्पन्न हुआ। सब मिलाकर देखता हूं तो मन में पूर्ण विश्वास कर लेता हूं कि ओबरायजी एक कर्मठ योगी थे। वह इस नश्वर शरीर से जुदा हो गए पर उनकी कीर्त्ति सदा अक्षुण्ण और अमर रहेगी। आज हम सभी का महान् कर्तव्य हो जाता है कि उनके स्वप्नों को साकार रूप दें। उनको अंतर्दृष्टि प्राप्त थी। उनको पूर्वाभास हो गया था कि निकट भविष्य में ही उन्हें अप्रत्याशित दुर्घटना का शिकार होना है। जब इनका इंदौर सम्मेलन में जाना निश्चित हो गया तो मैंने भी उनके साथ जाने की तैयारी कर ली। परन्तु दुर्भाग्य ने मुझे रोक लिया। ओबरायजी की दुर्मति हुई और मुझ वृद्ध के कष्टों का अनुमान कर मुझे अपने साथ ले जाने में उन्होंने अपनी पूर्ण अनिच्छा व्यक्त की। मुझे जो शंका हुई थी उसका प्रत्यक्ष रूप तुरन्त दिख गया जब दूसरी ही शाम को रेडियो प्रसारण से श्रीओबराय के निधन का समाचार प्राप्त हुआ।

धीरेन्द्र लाल खन्ना
ग्राम-खतरीखटंगा

ओबरायजी की पावन स्मृतियां : बहन के संस्मरण

आदरणीय ओबरायजी इस समय हमारे बीच में नहीं हैं। हमारा और उनका लौकिक सम्बन्ध टूट गया, परन्तु उनकी स्मृतियां तो सदा ही हमारे मानस पटल पर अंकित रहेंगी। वैसे तो उनकी सद्भावनापूर्ण स्मृतियों का कोई अन्त ही नहीं है परन्तु मैं तो पिछले तीन वर्ष के दो-चार संस्मरण ही लिख रही हूं।

एक बार मुझे उनके घर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं अपने स्वभावानुसार घर को खूब साफ-सुथरा रखती। मैं अपना अधिकांश समय घर को धोने-पोंछने और सजाने-संवारने में ही लगा देती। एक दिन ओबरायजी कहने लगे, हे निर्मला बहन! तुम अपना सारा समय ही घर के कामों में न लगा दिया करो। शीघ्रता से गृह-कार्यों से निबट कर राम नाम जपा करो। घर-बार तो सब यहां रह जाना है, साथ जाने वाला है केवल राम नाम। न तो तुम्हारा रावलपिंडी वाला घर रहा है और न ही रहेगा मेरा यह घर। सब घर नश्वर हैं। सदा सत्य, अनश्वर, स्थिर, अमर

तो राम नाम ही है। उन्होंने संसार की नश्वरता को और राम नाम की अमरता को कितना अधिक अनुभव किया था, वह तो उनकी स्वाभाविक ढंग से कही हुई बातों से ही पता चल सकता है।

गीता के उपदेशों का मनन करने वाले ओबरायजी उन दिनों बहुत ही अन्तर्मुखी हो रहे थे। वह सांसारिक बन्धनों के प्रति निर्लिप्त से दीखते थे। एक दिन जबकि वह अपने बी.आई.टी. वाले घर में अपने भाई-बहनों के बीच में बैठे हुए उनको प्रातःस्मरण करा रहे थे, प्रातःस्मरण के बाद वह कहने लगे—'कौन किसका भाई और कौन किसकी बहन। न तो पिछले जन्म में कोई भाई-बहन थे और न ही अगले जन्म में होंगे। यह तो इस जन्म के क्षणिक सम्बन्ध हैं। यद्यपि मां की ममता भी नश्वर है। न तो वह पहले जन्म में हमारी माता थी और न ही अगले जन्म में होगी, वह तो इस जन्म में हमारी जननी है। तथापि आज हम संसार में कुछ कर सके हैं और कुछ करने का सामर्थ्य रखते हैं तो यह सब इस माता के संस्कारों का ही प्रभाव है।

कितनी मातृभक्ति थी उनके हृदय में। परन्तु संसार की नश्वरता को तो उन्होंने समझ ही लिया था। आखिर वह समय आ ही गया जबकि वह संसार के सभी क्षणिक सम्बन्धों से मुंह मोड़कर अपने परमधाम को चले गए।

ओबरायजी बहुत ही विद्वान् थे। उन्होंने वेदशास्त्रों के अतिरिक्त कला, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और ज्योतिष के सम्बन्ध में भी बहुत अध्ययन किया हुआ था। उन्हें हस्तरेखा का भी बहुत ज्ञान था। उनका हृदय भी तो शुद्ध था इसलिए अपनी मृत्यु का उन्हें पूर्वाभास होने लगा।

यह बात आज से ढाई वर्ष पहले की है। अपने नित-नेम की भांति जब हम सभी भाई-बहन प्रातःस्मरण कर रहे थे और सबने अपने दाएं हाथ का दर्शन किया तो ओबरायजी कहने लगे कि आप दोनों भाई-बहन (बृजभूषण और निर्मला) तो दीर्घायु लेकर आए हो, जबकि मेरी आयु की रेखा तो आधे से थोड़ी ऊपर जाकर एकदम समाप्त हो गई है। ऐसा अनुमान है कि 60 वर्ष की अवस्था से पहले ही मैं भगवान् के घर चला जाऊंगा। किसी दिन अकस्मात् ही मेरी हृदयगति बन्द हो जाएगी या फिर मेरा इतना भयंकर एक्सीडेंट होगा कि फिर तो मेरा संभलना ही असम्भव हो जाएगा। जब हमने कहा कि ऐसा तो कदापि नहीं हो सकता, तो वह कहने लगे, 'मृत्यु का तो जन्म के साथ चोली-दामन का सम्बन्ध है।' संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं वे अपने प्यारे प्रभु के बुलाने पर तत्क्षण उसके पास चले जाते हैं। इसके बाद वह कहने लगे—'न तिल बढ़े न राई घटे, जो लिखया करतार।

—निर्मला बहन

अपने मित्रों के प्रति

लायन्स क्लब का लायनवाद जड़ता की स्थिति को पार कर, शुभारम्भ की गतिशीलता से आगे बढ़कर अब प्रगतिशीलता के अनन्त पथ पर बढ़ रहा है। किन्तु यह लायनवाद जीवन से दूर ले जाने वाला कोई पलायनवाद नहीं है। वर्तमान काल में लायनवाद तथा लायन क्लब की कार्य पद्धति में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तथा यदि हम रांची के लायन बन्धु विकास की गति के साथ कदम मिलाकर नहीं चलते तो हम निश्चय ही पिछड़ जाएंगे।

मैं यह विश्वास करता हूं कि हमारे क्लब के सदस्य उत्साह एवं संस्था के प्रति प्रेम भावना में पीछे नहीं है। किन्तु हमें अभी भी इस संस्था की कार्य पद्धति का विकास करना है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।

एक समय था जब भारत उसी सेवाव्रत का महानतम आदर्श प्रस्तुत करता था, जो कि लायन क्लब का भी आदर्श मंत्र है—

थी दूसरों की आपदा, हरणार्थ अपनी सम्पदा।
कहते नहीं थे किन्तु हम, करके दिखाते थे सदा।।
नीचे गिरे को प्रेम से, ऊंचा उठाते थे हमीं।
पीछे रहे को घूमकर, आगे बढ़ाते थे हमीं।।

यह इतिहास की विडम्बना ही है कि ऐसे महान् सेवाव्रती देश में आज अभाव एवं भुखमरी का नृत्य हो रहा है।

इस देशव्यापी जड़ता तथा क्लब की गतिहीनता से मुक्त होने के लिए जब हम क्लब के भूतपूर्व नेतृत्ववृन्द की ओर आशा की दृष्टि से देखते हैं, तब हमें सहसा स्मरण आता है—

पथ से भटके यात्री दलों की चर्चा न हो,
जो पथदर्शक साथ चले उसका सम्बल हो।
पतझड़ हुई पुरानी, कूच कर गया माली,
बसंत में नूतन माली की जय हो।

हमारे क्लब का सौभाग्य था कि इसमें बड़े महत्त्वपूर्ण सज्जन सदस्य के रूप में आए किन्तु हमारी अकर्मण्यता से वे आज हमसे कुछ दूर हो गए हैं, उनके प्रति मुझे निवेदन करना है—

ओ इस बगिया के फूलों, क्यों मित्रों से तुम रूठ गए?
आओ, जग उद्यान बीच, अब पुनः रंग और गंध भरें।

मुझे आशा है कि हमारे पुराने लायन बन्धु पुनः अपनी इस मातृ संस्था में आएंगे। बैठकों में भाग लेंगे तथा संस्था में सजीव रुचि प्रदर्शित करेंगे।

हृदय द्वार पर आशाएं आहट देती हैं,
छूटे बंधु पुनः मिलेंगे यात्रा पथ पर।

लायन बंधुओं के समान मैं लायन भगिनीवृंद से भी अपील करता हूं कि भारत की महान् परम्परा के अनुसार अपने लायन पतियों के इस समाजसेवा के कार्य में पूरा सहयोग करें, तभी वे अर्द्धांगिनी कहलाने योग्य होंगी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

निज स्वामियों के कार्य में सम भाग जो लेतीं न वे।
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे।
तो फिर कहातीं किस तरह अर्द्धांगिनी सुकुमारियां।
तात्पर्य यह अनुरूप ही थीं नरवरों के नारियां।

व्यक्ति में सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए एक सच्चा कर्मठ मानव क्या नहीं कर सकता?

बिन्दु, सिन्धु को जन्माता है, उर्मि बनती है तूफान।
पुष्प बनाते हैं बगिया को, सब कुछ कर सकता इनसान।।

अन्त में मैं पुनः कहना चाहता हूं कि हमारा उद्देश्य है—व्यक्ति के गुणों का विकास करना तथा नर-नारी की संयुक्त चेष्टाओं को इस प्रकार प्रेरित करना कि मानवता का आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मंगल सम्पन्न हो सके। एतदर्थ हमारे चतुर्सूत्री साधन हैं—

(1) नागरिकता की चेतना तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूकता।

(2) योजना कार्यों में क्रियात्मक भाग तथा व्यक्ति और समाज के विकास के लिए कार्यक्रम।

(3) आर्थिक विकास में प्रगति।

(4) सभी लोगों में परस्पर परिचय, सद्भाव एवं सहयोग को बढ़ावा देना।

दृढ़संकल्प समर्पित जीवन, अनुशासनमय जीवन गीत।
यही हमारा ध्येयवाक्य हो, मंगल पुण्य पंथ के मीत।।

लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े का पत्र डॉ. ओबराय के नाम

दीनदयाल शोध संस्थान

7-ई, स्वामी रामतीर्थ नगर, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली 110055

दूरभाष : 526792, 526715 तार : मंथन

ख्यातनाम श्रद्धेय डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से परिचित होने का सुअवसर जब वे बिहार में बी.आई.टी. में कार्यरत थे, उस समय मेरे प्रवास के समय प्राप्त हुआ। यह मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं। उनकी अपने उपेक्षित बंधुओं के उत्पीड़न को देखने पर उभरी हुई तड़पन मुझे आज भी स्मरण आती है। उसी में से भारत की विश्व संचार की गौरवगाथा को प्रकाशित एवं प्रसारित करने की प्रेरणा ग्रहण कर देश-विदेश में जाकर सम्पूर्ण विश्व की एकात्मता का दर्शन वे अपनी दुर्लभ चित्रकला तथा अभिलेख संग्रह के कार्य द्वारा कराते रहे। वह एक बेजोड़ कार्य था।

इसी लगन को लेकर जब वे ब्रह्मदेश (आज का म्यांमार) गए थे उस समय मेरा भी प्रवास माननीय श्री भाऊराव देवरसजी के प्रवास के निमित्त से हो रहा था। एक ही स्थान पर कार्यक्रम हुआ। मा. श्री भाऊरावजी भी डॉ. ओबरायजी के अध्ययन को देखकर स्तम्भित थे। वे पहले से ही उनसे परिचित थे व उनके गुणों के पारखी थे। डॉ. ओबरायजी की प्रगति में मा. श्री भाऊरावजी का स्नेह व आशीर्वाद सदैव साथ था। ऐसे विद्वान् राष्ट्र व संस्कृति भक्त मनीषी के कार्यों का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हो व उसमें सभी समानशील बंधु-भगिनी सहायक होकर अपना योगदान दें यही विनती है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे इस सत्प्रयास को सफलता प्रदान करने का अनुग्रह करें।

शुभेच्छु,

लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े

Shree Babasaheb Apte Smarak Samiti, Pune

309, Shaniwar Peth, Pune 411030

फाल्गुन शुक्ला 9, संवत् 5084

दिनांक : 23.3.83

परममित्र हरवंशलालजी को सप्रेम प्रणाम।

दि. 17 को आप नागपुर छोड़े और दि. 18 को मैं वहां से निकलकर यहां आ गया। दि. 5 अप्रैल तक यहीं रहूंगा। दि. 14 अप्रैल वर्षप्रतिपदा को बम्बई में इतिहास दिन मनाने वाले हैं। उससे पहले बम्बई की भिन्न-भिन्न 6-7 बस्तियों में इस योजना में काम कर सकने योग्य व्यक्तियों की बैठकें मैं संबोधित करूं ऐसी योजना दि. 6 से 11 अप्रैल तक के लिए बनी है। दि. 12 से 15 अप्रैल नागपुर में रहूंगा और दि. 17 को विशाखापट्टनम में मनाए जाने वाले इतिहास दिन के लिए वहां पहुंचूंगा। तब से 20-25 दिन तक आंध्र प्रांत में रहूंगा। केन्द्र स्थान हैदराबाद रहेगा जहां का पता—केशव निलयम, बरकतपुरा, हैदराबाद-500027 है।

सात वार तथा बारह माहों के विषय में जो जानकारी आप हैदराबाद में लिख कर दिये थे उसकी एक प्रति आप चाहते हैं ऐसा नागपुर में बताये थे। संभव है उसको ठीक प्रकार तैयार करने की आपकी योजना होगी। नागपुर की बैठक में हुए विचार के अनुसार ऐसे लेख पत्र-पत्रिकाओं में आना ठीक रहेगा। इसलिए इस विषय को योग्य स्वरूप देकर आप वह मेरे पास भेजिये यह प्रार्थना। आवश्यक होने पर हम यहां मराठी व तेलुगु अनुवाद करा लेंगे। केवल यह ही लेख नहीं, आपसे मैंने इसलाम पूर्व अरब व कोलंबस पूर्व अमेरीका ये दो लेख भी मांगे थे। ये तथा इस प्रकार के जो भी लेख होंगे उनकी एक-एक प्रति यहां अवश्य भेजिये। वह लेख आपके नाम से हम छपवा सकेंगे। वृहत्तर भारत की प्रदर्शनी के चित्र भी आप भेज सकोगे क्या? उसका प्रचार व प्रदर्शन उत्तम होने की दृष्टि से तथा अनेक स्थानों पर होने की दृष्टि से यहां अवश्य प्रयत्न होगा।

गत वर्ष सितम्बर में तथा इस वर्ष जनवरी में महाराष्ट्र प्रांत के जिलाप्रमुखों की दो बैठकें सम्पन्न हुई थी। इस मई में तीसरी बैठक होगी।

पंजाब के विषय में लेख तैयार हो गया क्या?

शेष कुशल। तत्रस्थ सभी बन्धु मित्रों को नमस्कार!

आपका,

राम साठे

भारतीय संस्कृति के महान् सपूत
प्रो. हरवंशलाल ओबराय
का
चाईबासा की जनता की ओर से सादर
—: अभिनन्दन :—

धर्मप्राण भारत की प्राण-वायु, धर्म और संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में सस्वर निनादित करने वाले, राजनीति की लोह-शृंखला में बंधुत्व के फूलों से एकता की माला के बजाय संस्कृति के रेशमी धागों से सम्पूर्ण मानवता को एकसूत्र में बांधने के महान् पक्षधर एवं पशु-शक्ति सम्पन्न राजनीति पर धर्म-चक्र के नियंत्रण के महान् हिमायती! हम आपके अभिनन्दन से प्रेरणा पूरित हो रहे हैं।

विश्व में भारतीय संस्कृति के व्याख्याता! स्वार्थ और ईर्ष्या की केंचुली में भारतीयता का ढोंग भरने वाले, विदेशी राजनीतिक षड्यंत्र से अनुप्रेरित होकर भारत की गौरवपूर्ण स्वर्णिम परम्परा को अपने विषदन्त से रक्त हीन करने के दु:संकल्पी कुछ लोग जब हमारे वेद के ऋषियों की महान् आध्यात्मिक उपलब्धियों, वेद की ऋचाओं को मात्र प्रलाप कहकर टालने लगे और मानवता का उत्स बिन्दु होने का श्रेय पाश्चात्य देशों के गले मढ़ा जाने लगा तभी भारत ने पश्चिम की कुण्ठाग्रस्त मानसिक गांठ खोलकर प्राची के महान् आलोक से विश्व को बोधत्व प्रदान कराने हेतु स्वामी विवेकानन्द, अभेदानन्द, रामतीर्थ, योगानन्द और आपके समान संस्कृति के महान् व्याख्याताओं को भेजा। भारत को अपने प्राचीन पर सचमुच बड़ा गर्व है। क्योंकि वृहत्तर भारत की सीमाओं की गोद में हमारा महान् भारत हमेशा अपने सांस्कृतिक महापुरुषों के पदचिह्नों पर चल कर उनके आदर्शों से अनुप्राणित होता रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ (UNESCO) के आह्वान पर आपने विश्व के अनेक देशों की यात्रा की और राजनीति के चक्रव्यूह में फंसकर गंदे मस्तिष्क के गंदले नालों से जो जल प्रवाह निकल कर विश्व के चेतना सम्पन्न राष्ट्रों की नाक तक चढ़ गया था, आपने

भारतीय संस्कृति की उच्छल तरंगों से उसे स्पन्दित करके ज्ञान के महान् रसायन को विश्व को छक कर पिलाया।

राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है—आपने अपने जीवन के सारे के सारे मुस्कराते बसन्त की छौंक देकर राजनीति में धर्मनीति के समन्वय का महान् प्रयास किया है। आपकी आस्था है कि राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। भाषा तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। धर्म तोड़ता है, संस्कृति जोड़ती है। इसलिए आपने प्रत्येक व्यक्ति को भारत की संस्कृति में माला के मनकों की तरह अनुस्यूत करने का महान् संकल्प किया है। संस्कृति विहार के माध्यम से आपकी इन अमूर्त भावनाओं को देश के कोने-कोने में मूर्त होता देख हमारे स्वाभिमान को बड़ा बल मिला है। हम आपके इस महान् संकल्प में सहयोगी बन कर अनुप्रेरित हो रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है—

भगवान् भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती

गुरुनानक पूर्णिमा,
सं. 2023

हम हैं—
चाईबासा के नागरिक

संस्कृति विहार का स्पष्ट उद्देश्य है—प्रत्येक भारतवासी को शत-प्रतिशत भारत भक्त बनाना

(क) प्रत्येक भारतवासी की शत-प्रतिशत श्रद्धा भारत के भीतर हो। भारत से बढ़कर किसी अन्य देश को न माने।

(ख) भारत ही उसकी कर्म भूमि, धर्म भूमि, पितृ भूमि एवं मातृ भूमि—सभी कुछ है। यदि किसी की धर्म भूमि भारत से बाहर (जैसे मक्का) चली जाती है तो भारत उसके लिये पुण्य भूमि न होकर भोग भूमि रह जाती है।

भोग की वस्तु	**पूजा की वस्तु**
(1) भोग की वस्तु का महत्त्व तब तक है जब तक उससे स्वार्थ की पूर्ति होती है।	पूजा की वस्तु का महत्त्व शाश्वत है। सदा रहने वाला है।
(2) भोग की वस्तु स्वार्थ है। It is a meand to end	पूजा की वस्तु अपने आप में साध्य है। end is itself
(3) भोग की वस्तु खरीदी और बेची जाती है। व्यापार का काम होता है।	पूजा की वस्तु कभी खरीदी और बेची नहीं जाती। इसमें व्यापार की कल्पना भी पाप है।
(4) भोग की वस्तु काटी-बांटी जा सकती है। जमीन काटी-बांटी जाती है।	पूजा की वस्तु को विभाजित नहीं करते। मां को बांट नहीं सकते।
(5) भोग की वस्तु के प्रति आज का प्रेम कल वैर में बदल जाता है—जैसे वेश्या। आज भोग किया, कल मनमुटाव होने पर वैर में परिणत हो जाती है। भोग की वस्तु साधन मात्र होती है।	पूजा की वस्तु पर अखण्ड प्रेम की भावना होती है।

(6) भोग की वस्तु का हम शोषण करते हैं, जब उसको हम साधन मात्र मानते हैं तो उसकी भलाई की चिन्ता किये बिना शोषण करते हैं, रस चूसते हैं। हमारी तृप्ति के साथ उसका नाश हो जाता है।	पूजा की वस्तु का शोषण नहीं किया जा सकता। अपनी पूजा द्वारा उसका महत्त्व बढ़ाते हैं।
(7) भोग की वस्तु से हम कुछ लूटना या छिपाना चाहते हैं।	पूजा की वस्तु के प्रति हम कुछ समर्पण करते हैं। हमारी भावना कुछ देने की होती है। मां की पूजा में कुछ चढ़ाना यह भारत भक्ति है।
(8) जैसे वेश्या भोग की वस्तु है, जमीन भोग की वस्तु है।	मां पूजा की वस्तु है। सर्वतोभावेन समर्पण की भावना भक्त की होनी चाहिये।

उद्देश्य-प्राप्ति के उपाय—

प्रत्येक भारतवासी को भारतीय संस्कृति का ज्ञान और गौरव होना चाहिए। ज्ञान होने पर ही सत्य से प्रेम होता है। सत्य को जानने से सत्य के प्रति श्रद्धा होती है। Once you know the truth, you believe in truth.

भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य	—	रामायण, महाभारत
भारत के राष्ट्रीय महापुरुष	—	राम-कृष्ण
भारत का राष्ट्रीय इतिहास	—	राणा प्रताप है अकबर नहीं
राष्ट्रीय उत्सव	—	होली, दीपावली
राष्ट्रीय वेश-भूषा	—	धोती-कुरता
राष्ट्रीय दर्शन	—	षड्दर्शन, बौद्ध, जैन
राष्ट्रीय ललित कला	—	शिल्प, मूर्तिकला
राष्ट्रीय साहित्यकार	—	व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास
भारतीय शिष्टाचार	—	अभिवादन

इसमें किसी पंथ, सम्प्रदाय या धर्म का झगड़ा नहीं है।

भारत की सांस्कृतिक एकता

भारत का स्वरूप

संस्कृति का महत्त्व

वैदिक राष्ट्रवाद

वैदिक ऐक्य मंत्र

रामायण

महाभारत

पुराण

काव्य

जातियों का समन्वय

उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ

तीर्थों द्वारा ऐक्य संवर्धन

संस्कृत द्वारा सांस्कृतिक ऐक्य

आध्यात्मिक मूल्य

समान नैतिक मूल्य

समान सुख-दुःख की अनुभूति

जीवन दृष्टि

धर्म, समन्वय एवं सद्भाव

भाषाओं की विविधता में भाव की एकता

प्रदेशों की अनेकता में देश की एकता

आधुनिक राष्ट्रनायकों का योगदान

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार हिन्दू जाति एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में रही है, जिसका एक ही इतिहास, साहित्य और सभ्यता है।

पाश्चात्य विद्वान् विन्सेन्ट स्मिथ ने भी लगभग इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उनका कहना है—'निःसंदेह भारत में एक आधारभूत एकता है। यह एकता भौगोलिक पृथक्ता या राजनैतिक श्रेष्ठता से प्राप्त होने वाली एकता से कहीं गहरी है। यह एकता असंख्य परस्पर विरोधी रक्त, रंग, भाषा, पोशाक, रीति-रिवाज तथा साम्प्रदायिक घेरे से बहुत ऊपर उठी हुई है।

राधाकृष्णन के अनुसार—'हिन्दू धर्म नैतिक जीवन पर बल देता है और उन सभी वर्गों में भ्रातृत्व स्थापित करना चाहता है जो नैतिक नियम अथवा धर्म द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलना अपना कर्तव्य समझते हैं। हिन्दू धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं प्रत्युत उन सभी का एक महान् भ्रातृ संघ है, जो सत्य को मानते हैं और निष्ठापूर्वक सत्य की खोज करते हैं।'

भारत के भूतपूर्व विदेशमंत्री प्रसिद्ध न्यायविद् स्वर्गीय मुहम्मद करीम छागला ने भी हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था, 'तुम चाहे आस्तिक हो, चाहे नास्तिक हो, चाहे सन्देहवादी हो। फिर भी हिन्दू हो। वास्तव में हिन्दू कोई रिलिजन नहीं। यह तो एक जीवन विधि है, विचार पद्धति है। फ्रांसीसी लोग अपनी तर्क-बुद्धि और सूक्ष्म विश्लेषण के अन्तर्गत समस्त भारतीयों को चाहे वे किसी भी जाति या सम्प्रदाय के क्यों न हों, हिन्दू ही कहते हैं। मैं समझता हूं कि जो देश में रहते हैं, इसे अपना घर मानते हैं, उनके लिये यही सम्बोधन है। सच बात तो यह है कि हम सब हिन्दू हैं, भले ही हम भिन्न-भिन्न धर्मों, मजहबों या सम्प्रदायों को मानने वाले हों। मैं हिन्दूं हूं क्योंकि मैं अपने पूर्वजों को आर्यों की सन्तान मानता हूं और उस संस्कृति तथा विचारधारा का पोषक हूं, जिसे वे अपनी भावी पीढ़ियों के लिये विरासत में छोड़ गये हैं। इस व्याख्या से जैन, सिक्ख, बौद्ध आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों को ही नहीं बल्कि समझदार, उदारचेता ईसाई और मुसलमान भी अपने को हिन्दू कहने में संकोच नहीं करेंगे।

डॉ. एनीबेसेन्ट कहती हैं—यह समझना भूल नहीं कि हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई भविष्य नहीं। हिन्दुत्व ही वह जमीन है जिसमें भारत की जड़ें गहराई तक पहुंची हुई है और उसे उस जमीन से अलग कर दिया जाये तो वह कटे पेड़ की तरह मुरझा जायेगा। भारत में अनेक जातियां और धर्म हैं, परन्तु उनमें से किसी का भी भारत के अतीत के साथ सम्बन्ध नहीं है और न ही उनके कारण भारत की राष्ट्रीयता कायम है। यदि भारत ने हिन्दुत्व की रक्षा नहीं की तो फिर कौन बचायेगा उसे? भारत की रक्षा भारत ही कर सकता है। भारत और हिन्दुत्व में कोई अन्तर नहीं, वे समानार्थक हैं।

दर्शनशास्त्र की मूलभूत मान्यतायें

1. Philosophy—पश्चिम का Philosophy शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से बना है—Philos+sophia जिसका अर्थ है बुद्धिमत्ता का प्रेम। इसकी पहुंच बुद्धि तक ही है, इससे परे नहीं।

2. दर्शन—भारत का दर्शन शब्द पश्चिम के Philosophy शब्द से अधिक गंभीर है। इसका अर्थ है, परम सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार। यह बुद्धि से आगे आत्मा की अनुभूति का क्षेत्र है। उदाहरणार्थ श्री केशवचन्द्र सेन या राममोहन राय Philosopher कहे जा सकते हैं, किन्तु श्री रामकृष्ण परमहंसदेव लौकिक विद्या में अनपढ़ होते हुए भी सच्चे सत्य के द्रष्टा थे।

3. दर्शन और विज्ञान—जहां विज्ञान विश्व के परम सत्य का एकाकी अध्ययन करता है, वहां दर्शन उसी परम सत्य का समग्र एवं सर्वांगीण अध्ययन करता है। उदाहरणार्थ—भौतिकी (Physics) मात्र पदार्थ (Matter) तथा ऊर्जा (Energy) का अध्ययन करता है। रसायनशास्त्र केवल रासायनिक द्रव्यों का ही, वनस्पति शास्त्र केवल वनस्पति का ही, जीव विज्ञान केवल जीव का, अध्ययन करते हैं।

भिन्न-भिन्न विज्ञानों द्वारा विश्व का खंडश:चित्र (Fragmentary View) उपलब्ध होता है। दर्शन हमें समग्र विश्व का अखंड दर्शन कराने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ—धरती के गोलाकार होने पर भी उसके खंडश:चित्रों में वह गोल नहीं दिखायी देती। इसलिए भिन्न-भिन्न विज्ञान एक Jury के सदस्यों के समान हैं, जो तथ्य खोजकर सामने लाते हैं। तथा दर्शन एक Judge के समान है जो उन भिन्न-भिन्न तथ्यों का मिलान कर उन पर अपना निर्णय देता है।

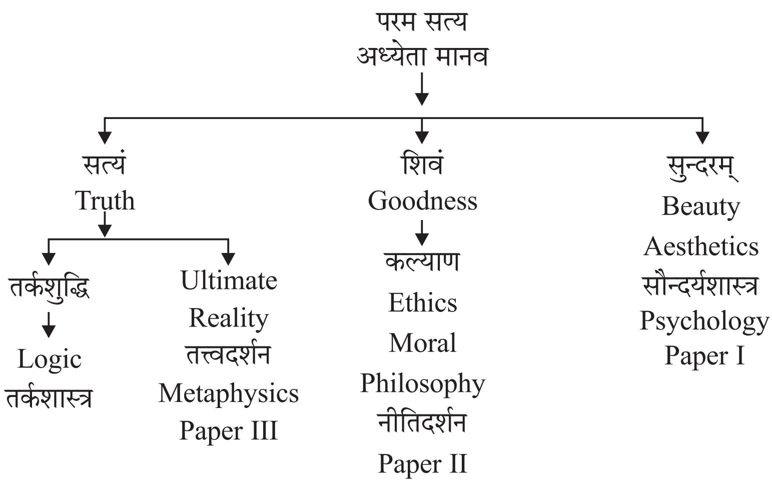
विज्ञानों का अध्ययन क्षेत्र अधिकांश बाहर का ही जगत् रहता है। दर्शन का अध्ययन क्षेत्र बाहर के जगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् अधिक रहता है। विज्ञान वस्तुओं से अधिक संबंध रखता है। दर्शन विचारों और अनुभूतियों से अधिक संबंध रखता है। जिसकी अन्त:स्थिति सुदृढ़ है वह परिस्थिति के विकट मार्ग में भी विजयी होगा, अन्यथा परिस्थिति उसको कुचल डालेगी।

4. दर्शन और धर्म—दर्शन परम सत्य के लिए बौद्धिक एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण है। जबकि धर्म उसी परम सत्य के लिये भावनात्मक दृष्टिकोण है। धर्म में प्राय: तीन तत्त्व मिले रहते हैं—

(क) दार्शनिक दृष्टिकोण, (ख) कथा पुराण और (ग) कर्मकांड।

धर्म में कुछ अंध-विश्वास भी चलते रहते हैं जिनका दर्शन में स्थान नहीं है। दर्शन प्रत्येक विश्वास को विवेक की कसौटी पर कस कर मानता या त्यागता है।

5. दर्शन की शाखाएं—



तत्त्व ज्ञान की मौलिक समस्याएं—दर्शन विश्व के चरम सत्य का व्यवस्थित एवं तर्कशुद्ध अध्ययन है—

1. विस्मय की गोदी में दर्शन का जन्म—जब मनुष्य अपने इर्द-गिर्द के इस विराट् विश्व को देखता है जिसमें कोटि-कोटि ग्रह, नक्षत्र, तारागण, धरती से अनन्त गुणा बड़े-बड़े पिण्ड, असंख्यकोटि निहारिकाएं—सब किसी अदृश्य शासन के सूत्र में बंधे हुए घूम रहे हैं। तब वह बड़े विस्मय में पड़ जाता है और जीवन की आदि और अन्तिम समस्याओं के विषय में सोचने लग जाता है। इसी विस्मय की गोद में ही दर्शन का जन्म होता है। यूनान के दार्शनिक अरस्तू (Aristotel) ने भी कहा है—'Philosophy is born in the lap of wonder.'

2. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा—वेदांत के प्रथम सूत्र में लिखा है, 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' अर्थात् सबसे प्रारम्भ में ब्रह्म की जिज्ञासा है। ब्रह्म क्या है? विश्व का अन्तिम सत्य क्या है? इसी जिज्ञासा से दर्शन प्रारम्भ होता है। अत: जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। जिसकी जिज्ञासा जितनी सहज होती है, उतना ही वह

चिन्तनशील होता है। जिसकी जिज्ञासा जितनी तीव्र होती है वह उतना ही सत्य के ज्ञान के लिए व्याकुल हो उठता है। जैसे नरेन्द्रनाथ दत्त (विवेकानन्द) ईश्वर को जानने के लिए अत्यन्त आतुर हो उठे थे। जो अपने आप नहीं सोचता उसे काल अपनी चपत लगाकर सोचने के लिए मजबूर करता है।

3. सृष्टि रूपी काव्य का आदि कवि कौन है?—वेद में सृष्टि की एक काव्य से उपमा दी गयी है जो चिर-प्राचीन होकर भी नित्य नवीन है। 'पश्य देवस्य काव्यं, न ममार जीर्यति' वेद अर्थात् देवता के इस सृष्टि रूपी काव्य को तो देखो। न यह मरता है और न पुराना होता है।

मन में जिज्ञासा उठती है कि इस सृष्टि के अलौकिक काव्य को रचने वाला अमरकवि कौन है?

इसी सृष्टि को आंग्ल भाषा में Universe कहा जाता है। जिसका अर्थ है एक शक्ति (Uni) का काव्य (Verse) है। Universe के उस अमर UNI (एक परम सत्य) को खोजना ही दर्शन का प्रयोजन है।

4. रूमी का आदि एवं अंत—ईरान के एक दार्शनिक ने सृष्टि की एक ऐसी रोचक पुस्तक से तुलना की है, जिसका पन्ना-पन्ना और पंक्ति-पंक्ति बहुत मनोरंजक है, किन्तु उसका प्रथम एवं अंतिम पन्ना लुप्त है। अतः मानव युगों से इस सृष्टि रूपी पुस्तक के आदि रचयिता और सृष्टि रूपी महागाथा के अन्तिम परिणाम की खोज कर रहा है। यह खोज ही दर्शन को जन्म देती है—

तत्त्व दर्शन के तीन मौलिक प्रश्न है—

कुतः	Whence	(क) यह सृष्टि कहां से आयी या पैदा हुई?
कीदृशीः	How	(ख) यह सृष्टि किस नियम से किस प्रकार चल रही है?
कुत्रः	Whither	(ग) सृष्टि कहां, किस नियति की ओर किस लक्ष्य की ओर बढ़ रही है?

5. है या नहीं—दर्शन का आधारभूत प्रश्न है—विश्व की अन्तिम सचाई कुछ है, या कुछ भी नहीं है? इस प्रश्न के तीन उत्तर हो सकते हैं—

(क) विश्व में कोई अन्तिम सत्य है। (Theism)

(ख) विश्व में अन्तिम सत्ता कोई नहीं है। (Nihilism)

(ग) इस बात में संदेह है कि कोई अंतिम सत्ता है या नहीं। (Scepticism) संशयवाद।

6. क्या उसे जान सकते हैं—इस प्रश्न के निम्नलिखित उत्तर हो सकते हैं—

(क) ज्ञेयवाद (Gunosticism)—इस सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य को जाना जा सकता है।

(ख) अज्ञेयवाद (Agnosticism)—इस सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य को जाना ही नहीं जा सकता।

7. एक या अनेक—फिर प्रश्न उठता है, विश्व की कोई अन्तिम सत्ता है, तो क्या वह एक है, अथवा अनेक? इसके निम्नलिखित उत्तर हो सकते हैं—

(क) अद्वैतवाद, एकसत्तावाद-एकतत्त्ववाद (Monism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता एक और केवल एक ही है। जैसा वेदांत में कहा गया है—'एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति' अर्थात् एक ब्रह्म ही है, उसके सिवा कोई दूसरा नहीं है। वेद में ही कहा है—'एकमेव अद्वितीयम्' अर्थात् वह एक ही है, उसके समान दूसरा नहीं है। कुरान में भी कहा है—'आ अल्लाह इल्लि लहा' अर्थात् अल्लाह एक ही है, उसके सिवा कोई दूसरा नहीं।

(ख) द्वैतवाद (Dualism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अन्तिम सचाइयां दो हैं। कोई दार्शनिक आत्मा तथा परमात्मा को दो अंतिम सत्ताएं मानते हैं तथा कई जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा को दो सत्ताएं मानते हैं। भारत में मध्वाचार्य द्वैतवादी दार्शनिक हैं। यूरोप में देकार्ते (Descartes) भी द्वैतवादी हैं।

(ग) त्रेतवाद (Trillism)—इस सिद्धान्त के अनुसार अंतिम सत्ताएं तीन हैं—जीव, जगत् और ब्रह्म। इसके समर्थक सांख्य दर्शन, न्याय दर्शन और आर्य समाज है।

(घ) अनेकत्ववाद या अनेकांतवाद (Pluralism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ताएं अनेक हैं, एक नहीं।

8. अन्तिम या चरम सत्ता का स्वरूप क्या है?—तत्त्व विज्ञान के प्रश्नों में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि विश्व की चरम सत्ता का स्वरूप क्या है—जड़ अथवा चेतन। इसके उत्तर में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रस्तुत होते हैं—

(क) अध्यात्मवाद या चैतन्यवाद (Spiritualism or Idealism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता का स्वरूप आध्यात्मिक अर्थात् चेतना के गुण वाला है। भारत की अधिकांश दर्शनधाराएं आध्यात्मिक हैं।

(ख) जड़वाद, पदार्थवाद (Materialism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता जड़ पदार्थ है, कोई चेतन, आत्मा, परमात्मा इत्यादि नहीं। भारत के चार्वाक तथा पश्चिम के अधिकांश विचारक जड़वादी या पदार्थवादी ही हैं।

(ग) उभयवाह्यवाद (Neutralism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता न जड़ है न चेतन। वह दोनों से परे ही है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध दार्शनिक Bertrand Russell इस मत के हैं।

9. चरम सत्ता को जानने की विधि क्या है—इस प्रश्न के उत्तर में निम्नलिखित सिद्धान्त सामने आते हैं—

(क) इन्द्रिय अनुभववाद (Empiricism)—इस वाद के अनुसार परम सत्य को इन्द्रिय अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है। इसको मानने वाले इंग्लैण्ड के Locke, Barkley, Hume, Sidgwick, Benthem इत्यादि विचारक हैं।

(ख) बुद्धिवाद (Rationalism)—इसके अनुसार परम सत्य को इन्द्रियों के द्वारा नहीं, वरन् बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है। इसके समर्थक Descartes, Spinoza, Liebniz, Wolf, Hegel है।

(ग) शास्त्रवाद (Dogmatism)—इसके अनुसार परम तत्त्व को धर्म पुस्तकों या शास्त्रों के माध्यम से ही जाना जा सकता है। इसे मताग्रहवाद या अंध-श्रद्धावाद भी कहते हैं। ईसाई पादरी तथा मुसलमान मौलवी अपनी बाइबिल या कुरान को ही अन्तिम प्रमाण मानते हैं।

(घ) Critical Rationalism or Criticism—इसके अनुसार परम सत्य को न अंधविश्वास से, न इन्द्रिय ज्ञान से और न केवल बाहर के शास्त्रों से, न मात्र सामान्य बुद्धि से ही जाना जा सकता है। उसे प्रखर तर्कयुक्त बुद्धि से जान सकते हैं।

10. Intuitionism अन्तरानुभूतिवाद या अन्तःप्रज्ञावाद—इसके अनुसार परम सत्य का ज्ञान इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सबसे परे शुद्ध आत्मानुभूति के प्रकाश द्वारा ही हो सकता है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने इसी अन्तरानुभूति के माध्यम से परम सत्य को जाना था।

11. भारतीय दर्शन की प्रसिद्ध विचारधाराएं—वेद विश्व के पुस्तकालयों का प्राचीनतम ग्रंथ है। भारतीय आस्तिक उसे प्राचीनतम ईश्वरीय विधान मानते हैं। इसी मान्यता के आधार पर भारतीय दर्शन दो विभागों में विभक्त हो जाता है।

आस्तिक दर्शन	**नास्तिक दर्शन**
Orthodox Schools of Philosophy	Unorthodox Hetrodox Schools of Philosophy
(जो वेद को ईश्वरीय प्रमाण मानते हैं।)	(जो वेद को अंतिम प्रमाण नहीं मानते)
1. सांख्य — कपिल	1. चार्वाक दर्शन (लोकायत दर्शन) — चार्वाक
2. योग — पतंजलि	
3. वेशैषिक — कणाद	2. जैन दर्शन — महावीर
4. न्याय — गौतम	
5. पूर्वमीमांसा — जैमिनी	3. बौद्ध दर्शन — भगवान् बुद्ध
6. उत्तरमीमांसा — बादरायणव्यास	

दार्शनिक समस्या	चार्वाक दर्शन	जैन दर्शन	बौद्ध दर्शन
वेद प्रमाण	भोगवादी दर्शन होने के कारण वेद के अध्यात्म से दूर। अतः वेद प्रमाण नहीं।	कुछ वैदिक यज्ञों में पशु-बलि की बुरी रूढ़ि प्रचलित हो जाने के कारण जैन दर्शन ने वेद को स्वत:प्रमाण मानने से इनकार कर दिया।	वैदिक यज्ञों में पशुबलि होने के कारण वेद को प्रमाण नहीं माना।
अंतिम चरम सत्य Ultimate Reality	जड़ पदार्थ Matter	जीव (आत्मा) अजीव, पुद्गल पदार्थ।	All is Change. सब कुछ
जगत्	जड़ जगत् ही सत्य है।	जगत् अध्रुव है।	सर्वं क्षणिकं सब परिवर्तन- शील है।
जीव (आत्मा)	शरीर से परे जीव नहीं है। यावज्जीवेत सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।	जीव अजीव से भिन्न है, आत्मा (जीव) अमर है, अनन्त ज्ञान, अनन्त शांति।	आत्म चैतन्य की धारा, ज्ञान सरिता। Soul or self is a stream of conciousness
ईश्वर (सृष्टिकर्ता)	ईश्वर नहीं है।	सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं है। सृष्टि अपने आप प्रकृति से ही पैदा होती है। प्रत्येक आत्मा मुक्त होकर परमात्मा बन जाता है। अभी तक 24 तीर्थंकर मुक्त हुए हैं।	ईश्वर के विषय में मौन। मौन के तीन अर्थ— (1) स्वीकृति, (2) अस्वीकृति, (3) संशय। वास्तव में वे नैतिक पुनर्जागरण के एकमेव लक्ष्य की पूर्ति के लिये तत्त्व दर्शन के विवादों को टालना चाहते थे।
कर्मफल कर्म-सिद्धान्त	कोई कर्मफल सिद्धान्त नहीं।	कर्मफल सिद्धान्त अमिट है।	कर्मफल सिद्धान्त है।
कर्मफल प्रदाता कौन	कोई नहीं।	फलप्रदः कर्म। कर्म का फल स्वतः होता है। ईश्वर द्वारा नहीं।	फलप्रदः कर्म। कर्म फल है शेष मौन।
पुनर्जन्म	भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। पुनर्जन्म नहीं।	पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।
मोक्ष	नहीं	अर्हत्, मुक्ति	निर्वाण

की रूपरेखा (चार्ट)

सांख्य	न्याय वैशेषिक	पूर्वमीमांसा	वेदान्त
वेद स्वतः प्रमाण है।	वेद स्वतः प्रमाण है।	वेद स्वतः प्रमाण है।	वेद स्वतः प्रमाण है।
प्रकृति और पुरुष	ईश्वर-सृष्टिकर्ता	ईश्वर	आत्मा (ब्रह्म)
प्रकृति सत्य है।	जगत् सत् है।	जगत् सत् है।	ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। ब्रह्म सत्य है, ब्रह्म को छोड़कर जगत् मिथ्या है।
आत्मा अमर है।	आत्मा अमर है।	आत्मा ही कर्ता एवं भोक्ता है।	आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा अकर्ता है, साक्षी है।
स्पष्ट नहीं। प्रकृति पुरुष मानता है।	सृष्टिकर्ता ईश्वर है।	कर्म को ही सृष्टि का आदिकारण मानता है।	सृष्टिकर्ता को मानता है, आगे चलकर ब्रह्म को ही जगत्, जगत् को ब्रह्म रूप मानना। Immanent Causality
कर्मफल सिद्धान्त है।	कर्मफल सिद्धान्त है।	कर्म ही सब कुछ है। कर्म ही ईश्वर है। यज्ञ ही भगवान् है। कर्म ही सर्वशक्तिमान है।	कर्मफल सिद्धान्त है।
दोनों बातें। एक शाखा स्वतःफल, दूसरी शाखा ईश्वर।	कर्मफल प्रदाता है ईश्वर।	कर्म ही फलप्रदाता है। कर्म ही भगवान् है।	ईश्वर ही कर्मफल प्रदाता है।
पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।
मुक्ति	मुक्ति	मुक्ति	मुक्ति व मोक्ष

प्रकृति के पांच तत्त्व (चार्ट)

पांच तत्त्व प्रकृति में				पिण्ड शरीर में पांच तत्त्व			
ब्रह्माण्ड में तत्त्व	विवरण	गुण	सूक्ष्म इन्द्रिय	इन्द्रिय		विकार	आयुर्वेद
पृथ्वी	स्थूलतम जड़ता सर्वाधिक	गंध	घ्राण तन्मात्रा	नासिका	पृथ्वी तत्त्व से	मोह	
जल	पृथ्वी से अधिक सूक्ष्म, व्यापक, महीन, शक्तिशाली	रस	रस तन्मात्रा	रसना	जल तत्त्व से	काम	
अग्नि	जल से अधिक सूक्ष्म	ताप, रूप, उष्ण, प्रकाश	चक्षु तन्मात्रा	चक्षु	अग्नि तत्त्व से	क्रोध	पित्त तत्त्व का प्रकोप
वायु	अग्नि से सूक्ष्म	स्पर्श	त्वक् तन्मात्रा	त्वचा	वायु तत्त्व से	लोभ	
आकाश	पांचों तत्त्व में सबसे सूक्ष्म	शब्द	शब्द तन्मात्रा	कर्ण	आकाश तत्त्व से	अहंकार	

भारतीय दर्शन की कुछ समस्याओं का दिग्दर्शन

शंकराचार्य एवं मंडन मिश्र—जब भगवान् शंकराचार्य (वेदान्ती) शास्त्रार्थ हेतु मीमांसक मण्डन मिश्र के घर का पता पूछ रहे थे तब महिष्मती नगरी में पनघट पर पानी भरती हुई स्त्रियों ने मण्डन मिश्र के घर का परिचय दिया।

(1) जगद् ध्रुवं स्यात्, जगदध्रुवं स्यात्, कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीड़ान्तरसन्निरुद्धाः, जानीहि तन् मण्डनमिश्रधाम।

क्या जगत् ध्रुव है (स्थायी है) या अस्थायी (अध्रुव) है? यह (शास्त्रार्थ) जहां द्वार पर पिंजरे में तोता-मैना परस्पर शास्त्रार्थ कर रहे हों, वही मण्डन मिश्र का धाम है।

(2) फलप्रदः कर्म, फलप्रदोऽजः, कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीड़ान्तरसन्निरुद्धाः, जानीहि तन् मण्डनमिश्रधाम।

जहां द्वार पर पिंजरे में बद्ध तोता-मैना यह शास्त्रार्थ करते हों कि 'क्या कर्म का फल स्वयं कर्म से ही होता है अथवा कर्मफल दाता अजः (ईश्वर) है', उसी घर को तुम मण्डन मिश्र का धाम जानो।

(3) स्वतः प्रमाणं, परतः प्रमाणं, कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीड़ान्तरसन्निरुद्धाः, जानीहि तन् मण्डनमिश्रधाम।

जहां द्वार पर पिंजरे में बद्ध तोता-मैना यह शास्त्रार्थ करते हों—'क्या वेद स्वतः प्रमाण है अथवा वेद के लिए भी किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता है?' उस घर को तुम मण्डन मिश्र का धाम जानो।

यो वैभूमा तदमृतम्। अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। छा.उ. 7/24/1

जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य अर्थात् मरणशील अथवा विनाशशील है।

भारतीय दर्शन की पूर्णता

दर्शन का इतिहास भारत से है न कि यूनान से—दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत् में डुबकी लगा कर जिन अमूल्य विचार-रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई.पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है, जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर, मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा था कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदांत दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध आचार्य दर्शन—सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिए न कि यूनान से।

संसार में श्रेष्ठतम आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं बौद्धिक दर्शन—डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में—'संसारभर में सम्भवतः आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक दर्शन की ऐसी कोई भी ऊँचाई नहीं है कि जिसका सममूल्य वैदिक ऋषियों और अर्वाचीन नैयायिकों के मध्यवर्ती विस्तृत ऐतिहासिक काल में न पाया जाता हो।'

भारतीय दर्शन की पाश्चात्य दर्शन की तुलना में श्रेष्ठता—सर डब्ल्यू हंटर के शब्दों में—'भारतीय दर्शन ने उन समस्त दार्शनिक गुत्थियों के सम्भावित समाधान खोज लिए थे, जो गुत्थियां प्रारम्भ से यूनानियों, रोमनों और मध्यकालीन यूरोपीय चिन्तकों को परेशान करती रहीं और आज तक वैज्ञानिकों को भी उलझन में डाले हुए हैं।'

मिसेज मैनिंग के शब्दों में—'हिन्दुओं के मन एवं चिन्तन का उतना अधिकतम विस्तार हो चुका था जितना मानव के लिए कभी भी सम्भव हो सकता है।'

प्रो. श्लेगल (जर्मन) कहते हैं—'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, बौद्धिक अध्यात्मवाद जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनन्त प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही हो और किसी भी समय बुझ सकती है।'

काउंट जॉर्न्स जेर्ना का कथन है—'यूनान और रोम के दार्शनिकों की तुलना में हिन्दू दार्शनिक बहुत-बहुत आगे थे।'

प्रो. वेबर का मूल्यांकन है—'दर्शन के ही क्षेत्र में भारतीय मनीषा ने चमत्कारी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त किया था।'

दर्शन मात्र बौद्धिक वाग्विलास नहीं वरन् जीवन की सर्वोच्च साधना—भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि व्यायाम अथवा वाणी का विलास मात्र नहीं था वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना ही थी। जीवन का परम लक्ष्य है पूर्णत्व, अमरत्व अथवा मोक्ष को प्राप्त करना। तदर्थ सत्य का साक्षात्कार अनिवार्य है। सत्य की उपेक्षा करके केवल दिमागी उछल-कूद या बुद्धि के बन्दर-नाच से कोई पूर्ण पुरुष या मुक्त पुरुष नहीं बन सकता। गुरुग्रंथ साहिब में लिखा है—

चतुराई न चतुर्मुख पाया।
भोले भाव मिले रघुराया।। (रविदास)

पश्चिम ने आर्मचेयर फ़िलॉसफ़र (आरामकुर्सी दार्शनिक) अधिक पैदा किए हैं। उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड के बर्ट्रेण्ड रसेल पश्चिम के महानतम विचारक माने जाते थे, किन्तु 80 वर्ष की अवस्था में 16 वर्ष की सुन्दरी से जीवन का 16वां विवाह रचाते हैं, आराम से कुर्सी में पड़े हुए, मुख में सिगार लिए, एक ओर सुरा दूसरी ओर सुन्दरी को थामे हुए दार्शनिक समस्याओं पर लिखने या बोलने वाले विलासी व्यक्ति के दर्शन को खोपड़ी के खेल से अधिक और क्या कहा जा सकता है?

भारत में दर्शन को जीवन की परम साधना एवं सर्वोच्च सिद्धि माना गया है।

गीता के दार्शनिक भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि क्रियात्मक दार्शनिक थे। जिनकी कथनी-करनी में अन्तर नहीं था। इसलिए भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग रहा है।

भारतीय संस्कृति और वेद

1. विश्व का प्राचीनतम साहित्य।

2. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा—संस्कृति का सर्वप्रथम प्रकाश जो सर्वश्रेष्ठ प्रकाश सिद्ध हुआ।

3. मानवता के लिए जीवन का सर्वप्रथम दिव्य विधान। किसी भी राज्य का प्रशासन समुचित रीति से चलाने के लिए प्रशासन से पूर्व ही संविधान का होना अनिवार्य है। संविधान विधि (नियम) का सम्यक् एवं सुस्पष्ट घोषणापत्र है। यदि किसी नागरिक को जीवन के उद्देश्य तथा नियम स्पष्ट शब्दों में नहीं बताये जाएंगे, तो उन नियमों के अनुसार न्यायपालिका चलाना तथा उन अज्ञात नियमों का उल्लंघन करने वाले को दण्ड देना स्वयं में अन्याय एवं अवैध कार्य होगा। यदि सृष्टि की रचना किसी सृष्टिकर्ता ईश्वर ने की है, तब सृष्टि के सम्यक् प्रशासन के लिए उसे अपना दिव्य संविधान सृष्टिरचना के साथ ही घोषित कर देना चाहिए ताकि सभी मानवों को जीवन के उद्देश्य एवं नियम स्पष्ट हो जावें तथा यह भी प्रकट हो जावे कि सृष्टि का महानतम सम्राट् हमसे किस मर्यादापालन की आशा रखता है? वेद का वचन है—**'एको हि विश्वस्य भुवनस्य राजा'** अर्थात् इस सारे विश्व भुवन का एक ही सम्राट् है। इस दृष्टि से संसार की सभी धर्म पुस्तकों में वेद का स्थान ही सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो जाता है। क्योंकि यह विधान तभी से प्रकट है जब से सृष्टि ने नेत्र खोले हैं। इसकी तुलना में किसी धर्म का विधान 1973 वर्ष पहले प्रकट हुआ। किसी का 14 शती पूर्व, किसी का केवल पांच शती पूर्व तथा आनन्द मार्ग जैसे सम्प्रदाय का नया विधान आज प्रकट हो रहा है। प्रश्न उठता है कि जब सृष्टि को बने लगभग ढाई अरब वर्ष बीत चुके हैं तथा धरती पर मानव का अस्तित्व भी करोड़ों वर्षों से माना जाता है। तब करोड़ों-करोड़ों वर्षों तक विधान प्रकट न करने वाले गॉड या खुदा को क्या न्यायकारी माना जा सकता है? इसलिए वेद ही सर्वप्रथम ईश्वरीय विधान है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

1. वर्तमान सृष्टि के आरम्भ में सभी मनुष्य बालबुद्धि थे। अतः वे आजकल के समान एक-दूसरे को शिक्षा नहीं दे सकते थे। निश्चय ही किसी उच्च चैतन्य शक्ति (परमात्मा) ने उन्हें ज्ञान दिया होगा। अन्यथा मनुष्य भी आज तक पशुओं के तुल्य रहता।

2. एक पतित जाति अण्डमान द्वीप में निवास करती हैं। उसका नाम है निगरेटा। उसकी न लिपि, न कपड़ा, न सीना-पिरोना, न खेती और न ही कोई धातु ज्ञान। आग सदा जलती रहती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते समय अग्नि साथ ले जाते हैं। कदाचित् ही कोई दस तक गिन सकता होगा। कपड़े नहीं, पत्ते से शरीर को ढांकते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वर लोगों को दण्ड देने के लिए जल-प्लावन करता है। शनैः शनैः इस जाति का नाश हो रहा है। यदि मानवजाति का स्वाभाविक विकास हो रहा हो तो हजारों वर्षों से उक्त निगरेटा जाति हीनावस्था में क्यों पड़ी रही? अतः ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता सिद्ध हुई।

3. ईश्वरीय ज्ञान का पहला लक्षण है—उसके नाम से यह झलके कि वह ज्ञान है न कि पुस्तक। निराकार ईश्वर हृदयों में ज्ञान का प्रकाश करता है।

4. पारसियों की पुस्तक 'जिन्द अवेस्ता' का अर्थ है—'पवित्र लेख की व्याख्या। (जिन्द शब्द छन्द से मिलता-जुलता है।)

5. बाइबिल शब्द यूनानी धातु Biblia से निकला है जिसका अर्थ है, 'बहुत-सी पुस्तकें।' बाइबिल के दो संस्करणों के नाम हैं—Old Testament & New Testament यह शब्द Latin शब्द Tester से निकला है जिसका अर्थ है—साक्षी होना। बाइबिल में भिन्न-भिन्न घटनाओं की साक्षी (Testamony) संकलित है। अतः यह मनुष्य की बनाई हुई है।

6. 'अलकुरान' अरबी के दो शब्दों से बना है, 'अल+कुरान। कुरान 'कर+आ' धातु से निकलता है, जिसका अर्थ है पढ़ना। अतः अलकुरान का अर्थ है वह लेख जो विशेष रूप से पढ़ा गया हो।

7. गुरुग्रंथ साहब का अर्थ है गुरुवाणी का संग्रह।

8. वेद विद् धातु से निकला है जिसका अर्थ ज्ञान है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(यजुर्वेद अ. 40 मं. 8)

परमात्मा सबमें व्यापक, शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित, छिद्र रहित, अच्छेद्य, नाड़ी आदि के बंधन से रहित, अविद्या दोष से रहित, सदा पवित्र, जो कभी पापयुक्त नहीं होता, सर्वज्ञ, मनीषी, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला स्वयंभू, अपने स्वरूप से उत्पत्ति-विनाश रहित, जीव रूपी प्रजाओं के लिए यथावत ज्ञान का उपदेश करता है।

9. यह आवश्यक है कि परमात्मा अपने ज्ञान का दान सृष्टि के आरम्भ में दे। वेद के अतिरिक्त शेष सभी पुस्तकें बाद की हैं। अतः उसके पूर्व की अनेक पीढ़ियों को ज्ञान से वंचित रखना उचित नहीं।

10. कुरान को बने 1352 वर्ष

बाइबिल- 1960

हजरत आदम का समय- 6000 वर्ष पहले था।

जिन्द अवेस्ता- 4000 वर्ष पहले। जिन्द अवेस्ता में महर्षि वेदव्यास का वर्णन आया है। जिन्द अवेस्ता में—'शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः' यह वेदमन्त्र आया है।

11. बालगंगाधर तिलक अपनी पुस्तक 'आरोयन' में ज्योतिष विद्या के प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि विशेष-2 ब्राह्मण भागों को बने 12,000 वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं।

12. वेदों में जो सृष्टि संवत् दिया है वह अब नवीन वैज्ञानिक अन्वेषणों से ठीक सिद्ध हो रहा है।

13. ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर के सभी पुत्रों के लिए होना चाहिए। किसी देश, वर्ण या दल विशेष के लिए नहीं।

14. वेद में प्रक्षेप सम्भव नहीं।

15. वेद में इतिहास, भूगोल नहीं हो सकता।

16. भारत का इतिहास उत्तरोत्तर अवनति का इतिहास है। पश्चिम के विकासवाद के सामने हमारा ह्रासवाद है। वेद काल की अपेक्षा आज हम काफी पिछड़े हुए हैं।

17. वेद का अर्थ पौराणिक कथाओं के आधार पर करना वैसा ही है जैसे वर्तमान फारसी के शब्दकोश से पहलवी कालीन पुस्तकों का अर्थ करना।

18. मोनियर विलियम्ज कट्टर ईसाई थे। उनका यत्न था कि वेद छः सहस्र वर्ष से पूर्व का सिद्ध न हो क्योंकि ईसाई धर्म में लिखा है कि सृष्टि को बने प्रायः 6 सहस्र वर्ष ही बीते हैं। यदि वेद 20 हजार वर्ष पूर्व का सिद्ध हो जायेगा तो बाइबिल झूठी सिद्ध हो जायेगी। राजा राजेन्द्र लाल मित्र तथा रमेशचंद दत्त इत्यादि ने भी यूरोपीय विद्वानों का अनुकरण किया।

19. ईश्वर सर्वज्ञ है अतः उसका कोई कार्य त्रुटियुक्त नहीं हो सकता। जो मनुष्य अपनी इच्छाओं को बारम्बार बदलता रहता है तथा अपनी पूर्व आज्ञाओं के विरुद्ध नई आज्ञाएं प्रकाशित करता रहता है, वह सफल नेता बनने के योग्य नहीं।

(क) बाइबिल में कई स्थानों पर ऐसा उल्लेख आता है कि ईश्वर ने अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप किया। कई स्थानों पर ईश्वर धमकियां देता है। किन्तु पीछे क्षमा कर देता है। बाइबिल के कई भाग कहा जाता है भिन्न-भिन्न समयों पर आसमान से उतरे। क्या परमात्मा का पहला ज्ञान अपूर्ण था?

(ख) मुसलमान मानते हैं कि पहले परमात्मा ने क्रमशः जबूर, तौरेत तथा अञ्जील के ज्ञान प्रकाशित किए। फिर उनको क्रमशः उत्तरोत्तर निषिद्ध करता रहा। क्या ईश्वर पहले अज्ञानी था? वेद जैसे सृष्टि के आदि में था वैसा अभी है। एक मात्रा भर का भी अन्तर नहीं हुआ।

20. प्राकृतिक संसार का कर्ता परमेश्वर है। अतः ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि नियमों के विरुद्ध भी नहीं हो सकता।

(क) बाइबिल में सृष्टि के नियमविरुद्ध लिखा है कि ईसा मसीह मरियम कुमारी के पेट से पैदा हुए। उन्होंने मुर्दे को जीवित किया।

(ख) कुरान में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य के जन्म से पहले ही वर्तमान थी। अल्लाताला ने दुनिया की तारीकी (अंधेरा) को दूर करने के लिए ही चाँद और सूरज बनाये।

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय।। वृ.उ., 1/3/28

दाराशिकोह और उपनिषद्

दाराशिकोह एक बार शिकार के चक्कर में मार्ग भूलकर एक साधु के आश्रम में जा पहुंचा था। उसे आशा थी कि साधु उठकर उसका स्वागत करेगा। उसे सम्मान देगा। क्योंकि शाहजहां का सबसे बड़ा प्रिय पुत्र होने के कारण वह अपने को भारत का भावी सम्राट् समझता था। किन्तु साधु एक पुस्तक पढ़ता रहा और मुसकराता रहा। दारा को बहुत क्रोध आया और उसने साधु से प्रश्न किया, 'तुमने हमसे यह तक भी नहीं पूछा कि हम कौन हैं? कहां से और क्यों आए हैं?

साधु ने उत्तर दिया, यही प्रश्न तो नचिकेता यम से पूछ रहा है कि संसार के इतने प्राणी कहां से आते हैं फिर कहां चले जाते हैं? क्यों आते हैं? क्यों चले जाते हैं? इसी प्रश्न का उत्तर यम देने वाले थे कि आप आ गए। पधारिये।

तब तक एक शिष्य पानी लेकर आ गया था। दारा ने पानी पीया। क्रोध कुछ शान्त हुआ। फिर प्रश्न किया, यह कौन-सी पुस्तक है?

यह उपनिषद् है राजकुमार।

क्या यह हिन्दुओं की कोई धार्मिक पुस्तक है? दारा ने प्रश्न किया।

पुस्तक हिन्दू-मुसलमान की नहीं होती। पुस्तक सत्य का ज्ञान कराने का साधन मात्र है। यदि आप समझते हैं कि इसमें जो कुछ लिखा है, उससे आपका ज्ञान बढ़ा है तो पुस्तक अच्छी है। नहीं तो कुछ भी नहीं है। बकवास मात्र है।

क्या यह इन प्रश्नों का सही उत्तर दे सकती है।

'पहले आप बताइये, क्या आप इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं?

कुरान में लिखा है कि खुदा हर चीज को पैदा करता है। इनसान को भी। और इनसान का शरीर और उसकी रूह तब तक कब्र में दफन होती रहेगी जब तक कयामत नहीं आती और खुदा सबका फैसला नहीं सुना देता।

'मगर हिन्दू तो अपने मुर्दों को जला देते हैं। उनके शरीर तो राख बनकर गंगा में, यमुना में अथवा नदियों में बह जाते हैं। वे कयामत के दिन कहां से उठकर खड़े होंगे?'

यह तो मुझे नहीं मालूम। कुरान में तो यह भी लिखा है कि जब तक पाक और सच्चे मुसलमान पृथ्वी पर जीवित रहेंगे, तब तक कयामत नहीं आ सकती- साधु ने कहा। हां, दारा ने हामी भरी। तो आपका विचार है कि संसारभर के मुसलमानों में कोई पवित्र और सच्चा मुसलमान नहीं रहेगा। ये कैसे हो सकता है? तो फिर न तो कयामत आएगी और न ही किसी मुसलमान का फैसला होगा। क्यों?

क्या तुम्हारी किताब इस विषय में कुछ बताती है?

न बताती होती तो फिर मैं पढ़ता ही क्यों?

दारा सोच-विचार में पड़ गया। वह उपनिषद् अवश्य पढ़ेगा उसने निश्चय किया और इतिहास बताता है कि दाराशिकोह ने केवल उपनिषद् पढ़े ही नहीं वरन् उनका फारसी में अनुवाद भी किया। वह तो वेदान्त में इतना डूब गया था कि उसे बादशाह बनने में भी कोई विशेष रुचि नहीं रही थी। उसके ज्ञान अर्जन को यह कहकर औरंगजेब (आलमगीर) ने बदनाम किया कि वह काफिर बन गया है। और संस्कृत पढ़ता है। सुन्नी मुसलमान उसके विरोधी हो गए और जो उसके साथ घटित हुआ वह इतिहास हम सबको ज्ञात है।

वेदान्त की बात से दाराशिकोह बहुत प्रभावित हुआ और बहुत आश्चर्यजनक बात लगी वह यह थी कि इन प्रवचनों में कहीं भी किसी धर्म विशेष का वर्णन नहीं था। जो आदेश थे वे सभी मानवों के लिए थे। न कहीं किसी पर कटाक्ष था न किसी के प्रति घृणा। उसने अपने पिता एवं अन्यों को कई बार हिन्दुओं को गाली बकते सुना था। किन्तु, कैसे हैं ये लोग जो कहते हैं केवल सत्य को जानो। किसी भी पुस्तक, प्रवचन, साधु-महात्मा के कहे पर आँख बंद करके विश्वास न कर लो। उस पर मनन करो और यदि हृदय स्वीकार करे तभी उसे मानो।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद्ँ सर्वं विदितम्।।

आत्मा ही देखने योग्य है, श्रवण करने योग्य है, मनन करने योग्य है और ध्यान करने योग्य है। आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन और वास्तविक ज्ञान से इस विश्व का सारा रहस्य ज्ञात हो जाता है।

आधुनिक युग में उपनिषदों का प्रसार यूरोप में

आधुनिक समय में उपनिषदों पर दृष्टि सर्वप्रथम मुगल सम्राट शाहजहाँ के उदारचेता ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह की जाती है। दाराशिकोह के उपनिषदों से परिचित होने के सन्दर्भ में भी एक सुन्दर कथा है। एक दिन वह आखेट करने घोर अरण्य में प्रवेश करता है और रास्ता भटककर, थककर एक झोंपड़ी में पहुंचता है। जहां एक साधु एक पुस्तक को पढ़ने में तल्लीन है।...

इस प्रकार दाराशिकोह उपनिषदों से परिचित होता है और उससे प्रभावित होकर दाराशिकोह ने (सन् 1640) काशी आदि से पण्डितों को बुलाकर छह माह तक उपनिषदों की व्याख्या को उनसे सुना। फिर स्वयं संस्कृत सीखी और सन् 1657 में बावन उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद पंडितों की देखरेख में प्रारम्भ किया । सन् 1657 से 1674 तक सत्रह वर्ष वह अनुवाद का कार्य करता रहा।

औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा भी दाराशिकोह से प्रभावित हुई। जब औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा ने अपने ताऊ को इस नयी मस्ती और प्रसन्नता में देखा तो एक दिन बोली—अब्बा! यह आपके भीतर जो मस्ती और शांति आ गई है यह कैसे आ गई है। दाराशिकोह ने कहा, मेरे द्वारा उपनिषदों का अध्ययन करने से। तब जेबुन्निसा कई दिन तक अपने विद्वान् ताऊ से इस अमृत भरे ज्ञान को प्राप्त करती रही।

कालान्तर में एक सौ वर्ष के बाद सन् 1757 में बंगाल के नवाब शुजाउद्दोला के दरबार में मिस्टर जटियल नाम का एक फ्रांसीसी राजदूत था। उसने किसी से फारसी के उन उपनिषदों को सुना और मस्त हो गया। वह फारसी के उपनिषद् फ्रांस ले गया। वहां एक सज्जन बर्नियर को दिए। बर्नियर पर भी जादू हुआ। उसने ये उपनिषद् इनका कुछ भाग पेरिस के बड़े पादरी डुपारन को सुनाया। वह प्रभावित हुआ। उसने निश्चय किया कि इन उपनिषदों को संस्कृत भाषा में पढूँगा। पेरिस से भारत पहुंचा। 14 वर्ष तक संस्कृत पढ़ता रहा। फिर संस्कृत में उपनिषदों को पढ़ा। सन् 1801 में इसका लैटिन में अनुवाद किया जो जटिल एवं दुरूह था। उसकी एक प्रति जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् एवं दार्शनिक शोपनहावर, जो रुग्ण होकर मृत्युशय्या पर पड़ा था, को भेंट की। उसको पढ़कर वह उछल पड़ा। इतना

प्रमुदित एवं प्रसन्न हुआ कि वह स्वस्थ हो गया। वह कहता है—यद्यपि हमारे लिए संस्कृत को समझना कठिन है और हमारे पास वे साधन नहीं जिनसे ठीक रूप से हम संस्कृत के रहस्यों को समझ सकें। तो भी जहां तक हमने खोज की है....संसार में किसी भी पुस्तक का स्वाध्याय इतना लाभ देने वाला और आत्मा को ऊपर उठाने वाला नहीं जितना कि उपनिषदों का है। मेरी आत्मा को उपनिषदों से ही शान्ति मिली और मरने के पश्चात् भी इन्हीं से शान्ति मिलेगी।

मैक्समूलर कहता है—यदि शोपनहावर की बात को समर्थन करने की, प्रमाणित करने की आवश्यकता है तो इसका समर्थन मैं करता हूं। यद्यपि शोपनहावर किसी भी बात की जल्दी से प्रशंसा करने वाला नहीं था। 'India—what can it teach us' में वे लिखते हैं—जीवनभर मैंने उपनिषदों का अध्ययन किया है। स्वाध्याय किया है। उसके बल पर मैं कह सकता हूं कि शोपनहावर ने जो कहा है उस कथन की पुष्टि करता हूं।

पाल ड्यूसन कहता है—उपनिषद् मनुष्य की मेधा बुद्धि का अनमोल फल हैं। जीवन और मृत्यु के समय दु:ख और कष्ट के समय नहीं अपितु हर समय प्रतिक्षण उनसे ऐसी शांति मिलती है जैसी और कहीं भी नहीं मिलती। भारत के लोगों के पास आत्मज्ञान और आत्म शांति का ऐसा कोष है जो संसार में और किसी के पास भी नहीं। मैं जब भारत की यात्रा के लिए गया तो बहुत सी लाभप्रद बातें मुझे मिली। परन्तु सबसे लाभदायक और सबसे महत्त्वपूर्ण है पवित्र भाषा में ऋषियों का ज्ञान देने वाले उपनिषद्।'

उसने यह भी कहा, 'अपने पड़ोसी को अपनी भांति प्रेम करो, यह ठीक है। किन्तु मैं ऐसा क्यों करूं? क्योंकि मैं अपने सुख-दु:ख को स्वयं में अनुभव करता हूं, पड़ोसी में नहीं। इसका उत्तर बाइबिल में नहीं है। वेद में केवल तीन शब्दों में है—'तत्त्वमसि'। फ्रेंच दार्शनिक विक्टर कजिन्स ने कहा कि प्राच्य दार्शनिक ज्ञान की तुलना में यूरोपीय बुद्धि घुटने टेक देती है। जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् फ्रेडरिक श्लेगल ने कहा है कि प्राच्य आदर्शवाद के सामने उच्चतम यूरोपीय दर्शन फीका पड़ जाता है।

सर डब्ल्यू हंटर ने लिखा—जिन समस्याओं को रोमन और ग्रीक नहीं सुलझा सके। जिन प्रश्नों ने मध्यकाल के विद्वानों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों को उद्विग्न किया। उन सबका उत्तम और उचित उत्तर भारतीय दर्शनों में उपलब्ध है।

ह्यूम (Hume) ने Dogmas of Budhism में लिखा—मैंने अरस्तू, सुकरात, अफलातून और कितने ही अन्य विद्वानों के ग्रंथ बहुत ध्यान से पढ़े हैं। परन्तु जैसी विद्या इन उपनिषदों में मैंने देखी और जितनी शांति इनसे पाई, वैसी तो और किसी भी स्थान पर मुझे नहीं मिली।

आश्चर्य तो यह है कि उपनिषदों के प्रशंसकों में यूरोप के मर्डक प्रभृति पादरियों और प्रशासकों का बाहुल्य है। एनी बेसेन्ट ने उपनिषदों को मानव मन की सर्वोच्च उपज कहा।

इस प्रकार से कितने यूरोपीय विद्वानों के विचार बताए जाएं। उपनिषदों के ज्ञान ने पूरे यूरोप में एक वैचारिक तहलका मचा दिया और इसे ही भविष्य के विश्वधर्म के रूप में मान्यता मिलने लगी।

मौलिक प्रश्न—

कस्मे देवाय हविषा विधेम? ऋग्, 10/121/5

हम किस देव की स्तुति और उपासना करें?

उत्तर—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

ऋग्, 10/121/5

जिस दैवी शक्ति ने इस विशाल द्युलोक को, इस पृथिवी को, स्वर्लोक और नाक-लोक को अपने अपने स्वरूप में स्थिर रखा है और जो अन्तरिक्ष लोक में भी व्याप्त हो रही है, उसको छोड़कर हम किस देव की स्तुति और उपासना कर सकते हैं? अर्थात् हमको उसी महान् शक्तिरूपिणी देवता की उपासना करनी चाहिए।

जड़वाद

जो विचारधारा यह मानती है कि विश्व की अन्तिम सचाई जड़-पदार्थ ही है और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं। उसे पदार्थवाद अथवा Materialism कहते हैं।

पदार्थ की परिभाषा—जो वस्तुएं जगह घेरती हैं और वजन रखती हैं, उन्हें पदार्थ कहा जाता है।

प्राचीन यूनानी विचारक—(क) Thales का मत है कि सृष्टि का मूल तत्त्व जल है।

(ख) Anximender का मत है कि मूल तत्त्व जड़ तो है, किन्तु उसे वाणी से कथन नहीं किया जा सकता।

(ग) Aneximenes का मत है कि सृष्टि का मूल तत्त्व वायु ही है।

(घ) Heraclitus का विचार है कि सृष्टि का मूल तत्त्व अग्नि है।

(ङ) Empedocles के अनुसार सृष्टि में चार मूल तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु।

(च) भारत के सांख्य दर्शन में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वों को जड़ प्रकृति का अंग माना गया है। किन्तु प्रकृति से परे चेतन आत्मा को भी सांख्य दर्शन मानता है। जिसे पदार्थवाद नहीं मानता है।

(छ) यूनान के Leucippus और Democritus ने पश्चिम में पहली बार यह कहा कि विश्व जड़-पदार्थ के परमाणुओं से बना है। भारत में महर्षि कणाद ने इससे पहले ही परमाणुवाद का विचार प्रस्तुत किया था।

(ज) प्लेटो तथा एरिस्टाटल पदार्थवाद को नहीं मानते। प्लेटो तो बुद्धिवादी या चेतनवादी था। अरस्तू विश्व की अन्तिम सचाई को विकास शक्ति मानता है, जो जड़ द्रव्य जैसी है।

आधुनिक विचारक—(क) आधुनिक यूरोप में फ्रांस के दार्शनिक देकार्ते ने जड़ और चेतन दोनों को सत् माना है।

(ख) England के Locke, Barkely, Hume भी जड़वादी हुए।

(ग) इटली के चार्ल्स डार्विन भौतिक विकासवादी विचारक हैं जिनका मत है कि जड़ पदार्थ के विकास से ही जीवों का विकास हुआ है।

(घ) कार्लमार्क्स कम्यूनिज्म का जन्मदाता भी जड़वादी है। उसके सिद्धान्त का नाम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है।

जड़वाद के नाम—जड़वाद चूंकि ईश्वर को नहीं मानता इसलिए इसे नास्तिकवाद भी कहा जाता है। क्योंकि यह प्रकृति को सत् मानता है, इसलिए इसे Naturalism भी कहते हैं। क्योंकि यह जड़ वस्तुओं की सत्ता मानता है इसलिए इसे वस्तुवाद कहते हैं।

जड़वाद की परिभाषाएं—(1) सृष्टि का अन्तिम तत्त्व जड़ है।

(2) जड़ तत्त्व अथवा पदार्थ (Matter) के रूप में जड़ वस्तुएं ही सत् नहीं है। जैसे—मेज, कुर्सी, टेबल आदि। विश्व की तमाम वस्तुओं में सहायक वह सूक्ष्म पदार्थ सत् है जिसके सूक्ष्म परमाणु सब वस्तुओं में व्याप्त हैं। वस्तुएं अनेक हैं किन्तु उनकी रचना करने वाले परमाणु सबमें एकसमान हैं।

(3) जड़ पदार्थ की मात्रा सृष्टि में सदा समान रहती है। न उसकी उत्पत्ति हो सकती है, न नाश। जड़वादियों के मत में जड़ द्रव्य अनादि, नित्य और अविनाशी है। अधिक से अधिक पदार्थ का रूप परिवर्तित होता है। कभी पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है और कभी ऊर्जा पदार्थ में। सारे विश्व में पदार्थ और ऊर्जा की कुल मात्रा सदा समान रहती है।

(4) जड़ वह है जिसकी स्थिति देश और काल में है।

(5) जड़ द्रव्य में गति होने से सृष्टि का निर्माण होता है।

(6) जड़ के अतिरिक्त कोई आत्मा, ईश्वर आदि की सत्ता नहीं है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में जो जीवन और चेतना है वह जड़ द्रव्य का ही विकार माना जाता है।

7. जड़वाद के तर्क—(क) वैज्ञानिक खोज से पता चलता है कि प्रारम्भ में न पृथ्वी थी, न सूर्यमंडल। केवल एक गर्म निहारिका थी। उसी से टूटकर सूर्यमंडल बना। सूर्यमंडल से टूटकर नवग्रहों सहित पृथ्वी बनी। पृथ्वी के ठंडी होने पर नदी, पहाड़ आदि बने। ठंड से कार्बन और उससे जीव का विकास हुआ। धीरे-धीरे जीवों में चेतना का विकास होने लगा। जड़ द्रव्य ही सारी सृष्टि का मूल है।

(ख) विज्ञान ने सिद्ध किया है कि सारी सृष्टि में पदार्थ एवं ऊर्जा की कुल मात्रा सदा समान रहती है। यदि ये मान लिया जाय कि चेतना नाम की कोई अलग शक्ति भी है, तो विज्ञान के इस नियम का उल्लंघन हो जाता है। हम देखते हैं कि

अन्न, जल आदि भौतिक पदार्थों से जीवन शक्ति बढ़ती है तथा जड़ पदार्थ ही जीवन एवं चेतना का भी मूल है।

(ग) शरीर विज्ञान सिद्ध करता है कि चेतना मस्तिष्क पर निर्भर करती है, जो शरीर का भौतिक अंग है।

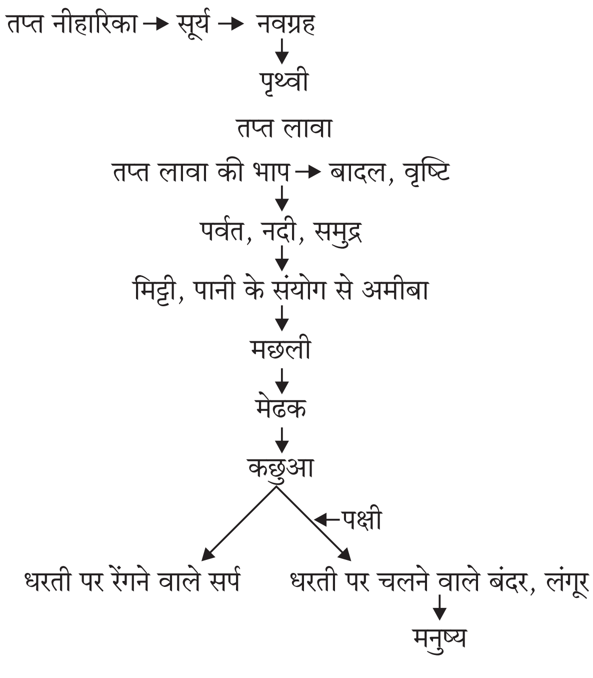
(घ) मानसिक क्रियाओं की शारीरिक क्रियाओं द्वारा व्याख्या की जानी चाहिए। सभी मानसिक क्रियाओं से पहले स्नायुमंडल में कुछ परिवर्तन होते हैं जो भौतिक ही हैं।

(ङ) यदि चेतना का अस्तित्व जड़ शरीर से अलग होता तो विज्ञान में उसका कुछ प्रमाण मिलता। अत: जड़वाद मानता है कि चेतना जड़ शरीर पर ही आधारित है।

जड़वाद के प्रकार—(1) Gross Materialism (फूहड़ अवैज्ञानिक जड़वाद)—इसके अनुसार जड़ वस्तुएं ही सत् है। प्राचीन यूनानी इस मत को मानते थे।

(2) वैज्ञानिक जड़वाद—इसके अनुसार वस्तुएं सत् नहीं किन्तु अन्दर छिपे हुए पदार्थ के परमाणु ही सत् है। परमाणु गतिशील है।

(3) विकासात्मक जड़वाद—इटली के वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने अपनी खोजों के आधार पर यह मत स्थापित किया कि जड़ पदार्थ से ही धीरे-धीरे जीवों का विकास हुआ।



(4) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—कम्यूनिज्म के जन्मदाता कार्लमार्क्स ने अपने गुरु हीगेल से द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति ली और उसे भौतिकवाद पर लागू करने का प्रयास किया। हीगेल भारत के सांख्य दर्शन से प्रभावित था तथा उसने द्वन्द्वात्मक पद्धति के द्वारा आध्यात्मिक सत्य को प्रस्तुत किया था। हीगेल का कथन है कि कोई भी विचार पहले एक वाद के रूप में प्रकट होता है, फिर उस वाद के समस्त दोषों को प्रकट करने वाला एक विरोधी विचार (प्रतिवाद) सामने आता है, फिर वाद एवं प्रतिवाद के परस्पर संघर्ष द्वारा एक समन्वय विचार सामने आता है, जिसे सम्वाद कह सकते हैं। फिर इस सम्वाद का सम् हटा देने से शेष वाद या Thisis ही बचता है। अब इस वाद का प्रतिवाद सामने आता है। पुनः सम्वाद बनता है। यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक पूर्णज्ञान या सत्य की प्राप्ति नहीं हो जाती।

(Thisis) वाद → प्रतिवाद
↓
सम्वाद

इस द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति का अन्त पूर्ण सत्य से होता है। हीगेल अध्यात्मवादी था, किन्तु उनका शिष्य कार्लमार्क्स जड़वादी था। उसने हीगेल से द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति तो ले ली, किन्तु उसे भौतिक जगत् पर लागू किया। इस प्रकार मार्क्स ने अपने गुरु के सिद्धान्त को ही उलट दिया।

मार्क्स की मान्यताएं

(क) जड़ पदार्थ ही सत्य है।

(ख) पदार्थ में प्रगति द्वन्द्वात्मक प्रणाली से हो रही है।

जैसे—किसी ने मिट्टी की दवात बनाई → लोहे की दवात बनाई
↓
कांच की दवात
↓
पत्थर की दवात
↓
प्लास्टिक की दवात

वस्तुओं में अनिवार्य प्रगति के कारण कम्यूनिज्म को प्रगतिवाद भी कहते हैं।

(ग) आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त इत्यादि किसी में भी मार्क्स का विश्वास नहीं है।

(घ) मार्क्स के मत में धर्म जनसाधारण के लिए अफीम की गोली के तुल्य है। निर्धन लोग दुःख, अभाव सह कर भी क्रांति इसलिए नहीं करते क्योंकि धर्म के

प्रभाव से वे यह मानते रहते हैं कि यह दु:ख उनके पिछले कर्मों का ही प्रभाव है। मार्क्स नैतिक मूल्यों को भी किसी पुराने जमाने की बाट समझते हैं।

(ङ) समाज में अर्थ वितरण की विषमता के कारण दो वर्ग निर्मित हो गये हैं—अमीर तथा गरीब। इन दोनों वर्गों में द्वन्द्व या वर्ग-संघर्ष होना अनिवार्य है।

(च) कोई भी क्रांति तब तक सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं कहलाती जब तक कि वह रक्तक्रांति न हो।

(छ) बलात्कार या शक्तिप्रयोग (बलप्रयोग) वह दायी (Nurse) है जो एक समाज के गर्भ से नई सामाजिक रचना को प्रकट करता है।

(ज) निर्धनों को यह अधिकार है कि वे धनिकों का धन, परिवार एवं जीवन तक छीन लेवें।

(झ) मार्क्स के मत में व्यक्तिगत परिवार उतना ही बड़ा अपराध है जितना व्यक्तिगत सम्पत्ति।

(ञ) मार्क्स के मत में धन पर सारे समाज का अधिकार होना चाहिए तथा परिवार भी पूरे समाज के अधिकार में होना चाहिए। सभी स्त्रियां समाज की, सभी पुरुष समाज के, सभी बच्चे समाज के होंगे। सम्पत्ति एवं परिवार साझा Common होने के कारण इसे Communism कहा जाता है। मार्क्स का विचार है कि सम्पत्ति के कारण ऊँच-नीच की भावना पैदा होती है। किन्तु सम्पत्ति के लिये लोभ का कारण भी परिवार ही है। सम्पत्ति संचय भी परिवार में होता है और सम्पत्ति के कम-अधिक होने से द्वेष एवं संघर्ष भी परिवारों में होते हैं। मनुष्य स्त्री को भी अपनी सम्पत्ति के समान मूल्यवान मानता है। धनी-निर्धन परिवारों के सम्बन्ध से भी ऊँच-नीच की भावना पैदा होती है। फिर विवाह या गृहस्थ जीवन पुरुष द्वारा नारी को पराधीन रखने का मंत्र है। इसलिए मार्क्स ने घोषणा की कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह परिवार भी समाप्त होना चाहिए। मार्क्स के मतानुसार लेनिन ने पेरिस (रूस का एक छोटा कस्बा) में Commune का प्रयोग किया। किन्तु उसके परिणाम बहुत भयंकर निकले। 75 प्रतिशत बच्चों को यौन रोग लग गये तथा पूरा परिवार व्यभिचार तथा हिंसा की अग्नि में जलने लगा। इसलिए यह प्रयोग बंद करना पड़ा।

(ट) रूस के मनोवैज्ञानिक यौन क्रीड़ा पर संयम या चरित्र का बंधन स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि यौन तृप्ति भी जीवों की अन्य इच्छाओं के समान एक इच्छा है। उसकी पूर्ति में कोई पाप या अपराध नहीं है। जिस प्रकार प्यास लगने पर पानी का गिलास पीना एक सहज क्रिया है। उसी प्रकार कामेच्छा होने पर संभोग करना भी एक सहज क्रिया है। जिसमें पाप या अपराध का कोई प्रश्न नहीं है। इस

प्रकार के निर्बन्ध भोग-विलास के आचरण से सारा समाज एक पतित, कुत्सित, व्यभिचार का भवन-सा बन जायेगा जिसमें चरित्र, पवित्रता एवं जीवन मूल्यों का कोई स्थान नहीं बचेगा।

(ठ) Communism से पहले England के इन्द्रिय सुखवादी Hedonist विचारकों लॉक Lock, Hume, सिजविक, मिल, बेनथम ने भी भोगवाद का नारा दिया था। 'eat, drink and be merry' (खाओ, पीओ और मौज करो)। Communism या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का भी यही नारा है।

भारतीय जड़वाद (Indian Materialism)—भारत में चार्वाक ने अपने लोकायत दर्शन में यही स्थापना की है। विश्व का मूल तत्त्व जड़ ही है। जड़ तत्त्व के चार रूप हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। इसके अनुसार चेतना या आत्मा जड़-तत्त्व से पृथक् कुछ नहीं है। जिस प्रकार पान में कत्थे तथा चूने के सहयोग से लाल रंग निकलता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न जड़-तत्त्वों के संयोग से जीव तथा आत्मा का प्रादुर्भाव होता है। न आत्मा का अस्तित्व है, न परमात्मा, न नरक, न स्वर्ग, न मोक्ष आदि का अस्तित्व है। चार्वाक विश्व को एक यंत्र के समान मानता है। चार्वाक भोगवादी है, उसका कथन है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत्।
भस्मभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।

जब तक जीओ सुख से जीओ, कर्जा उठाकर घी पीओ। भस्मीभूत जीव का लौटकर आना कैसे होगा? चार्वाक भारतीय भोगवादी होने के कारण पश्चिम के सुराम् पीबेत् के स्थान पर घृतम् पीबेत् का प्रयोग करता है।

पदार्थवाद की आलोचना—(1) जड़वाद का प्रासाद पदार्थ की जिस परिभाषा पर खड़ा है, आज वह परिभाषा ही बदल गयी है। जिस महल की ईंटें ही टूट जाय, वह महल कैसे खड़ा रह सकता है? पहले पदार्थ की परिभाषा इस प्रकार की जाती थी कि जो वस्तुएं जगह घेरती हों और वजन रखती हों, उसे पदार्थ कहते हैं। किन्तु बाद में विज्ञान ने सिद्ध किया कि पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। अतः Materialism के स्थान पर Energism का सिद्धान्त बन गया। आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध किया कि पदार्थ के अणुओं में एक महान् शक्ति छिपी हुई है। छोटे-छोटे अंग केन्द्रीय अणु के चारों ओर वेग से चक्कर लगा रहे हैं। एक परिधि से दूसरी परिधि तक जाने में अणु से इतनी महान् शक्ति निकलती है, जिससे अणुबम तैयार हो जाता है। अतः पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर पाया गया कि वहां केवल Radio Active Waves अर्थात् विद्युत् गत्यात्मक तरंगें ही हैं—

(क) जड़ पदार्थ ही सत्य है।

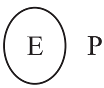
(ख) जड़ पदार्थ सूक्ष्म कणों Molecules के बने हैं।

(ग) Molecule को पुनः तोड़कर छोटे Atoms बने।

(घ) Atom का भी विभाजन करके उसके परमाणु बने।

1. Electron (केन्द्रस्थ परमाणु)।

2. Proton (परिधि स्थित परमाणु) परिधि में चक्कर लगाते हैं।



3. Electron के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने वाले Proton परमाणुओं की अनेक परिधियां बन जाती हैं। जैसे भंवर में जलबिन्दु एक केन्द्र के इर्द-गिर्द वेग से घूमते हैं।

(च) अणु के विस्फोटन से परमाणु अन्दर की परिधि से जब बाहर की परिधि में आता है, तब बहुत विराट् शक्ति प्रकट होती है।

(2) विश्व में हमें जड़ और चेतन दोनों का अनुभव होता है। इन दोनों के संयोग से पिण्ड और ब्रह्माण्ड का कार्य चल रहा है। द्वैतवादी दोनों को सत् मानते हैं। यदि पदार्थ ही अंतिम सत्ता है तो वह चेतन की व्याख्या करके दिखाये जैसे चेतन जड़ की व्याख्या करता है।

जड़	**चेतन**
1. मृत, अजीव, अचेतन।	1. अमृत, सजीव, सचेतन।
2. जड़, अन्य जड़ पदार्थों को भी नहीं जानता। एक पत्थर अन्य पत्थरों, हीरों को नहीं पहचानता। एक मुर्दा अन्य मुर्दों को नहीं पहचानता।	2. चेतन अन्य जड़ पदार्थों को जानता है। क. सब खनिज पदार्थों को मनुष्य ने जाना। ख. सब रसायन औषधि, धातु को जाना। ग. सब वनस्पतियों को जाना। घ. सब कीट-कीटाणु को जाना। ड. सब पशु-पक्षी को जाना। च. सब मनुष्यों को जाना। छ. जगत् को जाना।
3. जड़ अन्य जड़ के परस्पर संबंध को भी नहीं जानता।	3. चेतन एक जड़ के दूसरे जड़ से संबंध को जानता है—पेट्रोल, अग्नि, चूना, हलदी, एसिड, लिटमस आदि।

4. जड़—जड़ तथा चेतन के संबंध को भी नहीं जानता, खेत-मालिक को नहीं जानता, शरीर क्षेत्र है।	4. चेतन (क्षेत्रज्ञ) जड़ के साथ चेतन के संबंध को जानता है।
5. जड़ मालिक को नहीं जानता।	5. चेतन मालिक को पहचानता है।
6. जड़ लक्ष्य को भी नहीं जानता।	6. चेतन लक्ष्य को पहचानता है।
7. जड़ स्वयं को नहीं जानता।	7. चेतन स्वयं को भी जान सकता है।

क्योंकि जड़ न अपनी व्याख्या कर सकता है और न चेतन की व्याख्या कर सकता है और दूसरी ओर चेतन जड़ और चेतन दोनों की व्याख्या कर सकता है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता चेतन ही सिद्ध होती है, जड़ नहीं।

(3) जो वैज्ञानिक या जड़वादी यह कहता है कि जड़-तत्त्व ही अंतिम सत्ता है वह वैज्ञानिक स्वयं चेतन और सजीव है, जड़ नहीं। जड़ में न जीवन है न चेतना, हम में जीवन और चेतना, दोनों हैं। प्रश्न पैदा होता है, तब हममें यह जीवन और चेतना कहां से आ गई। 'You cannot get something out of nothing.' अर्थात् आप शून्य में से कुछ प्राप्त नहीं कर सकते। पत्थर को निचोड़ने से दूध नहीं निकाला जा सकता। इसी प्रकार निर्जीव और अचेतन जड़ के मंथन से जीवन और चेतना प्रकट नहीं हो सकती।

(4) जो जड़वादी (डार्विन, मार्क्स, चार्वाक) मानते हैं कि जड़-पदार्थ से ही जीवन एवं चेतना का विकास होता है, वे भी इसको प्रमाणित नहीं कर सकते। उन्हें भी अपरोक्ष रीति से यह मानना पड़ता है कि केवल जड़ से सृष्टि की व्याख्या नहीं हो सकती। वे चालाकी से चेतन को जड़ का ही विकार कहते रहते हैं, जबकि जड़ और चेतन के स्वरूप में आकाश-पाताल का अंतर है। जड़ को ही अंतिम सत्ता मानना उनका हठधर्म है।

(5) बर्ट्रेंड रसेल का मत है कि विश्व की अंतिम सत्ता जड़ और चेतन दोनों से परे है। वह एक ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति है, जो जड़-चेतन दोनों से परे होते हुए जड़ और चेतन का आधार भी है। इससे भी पदार्थवाद खंडित हो जाता है।

(6) विश्व को एक यंत्र के समान मानना भी आधुनिक विज्ञान की खोजों से गलत सिद्ध होता है। यंत्र में हर वस्तु एवं क्रिया पहले से नियत होती है तथा यंत्र पुनः पुनः पहले जैसी गति दोहराता रहता है। जैसे घड़ी की सूइयां, इसमें कोई प्रगति की संभावना नहीं है। आधुनिक विज्ञान की खोज है कि विद्युत् शक्ति (Radio Active Energy) किसी यंत्र के नियम में बंधी हुई नहीं है।

(7) आइन्सटाइन ने सिद्ध किया है कि प्रकृति जगत् में जो कुछ है। सब सापेक्ष है। इसके अनुसार जड़ द्रव्य एक स्वतंत्र सत्ता न होकर वह भी सापेक्ष ही है। जड़ चेतन की अपेक्षा जड़ है।

(8) जड़वाद सम्पूर्ण विश्व की संगत व्याख्या नहीं कर सकता। जीव और अजीव में मौलिक भेद है। सजीव प्राणी अंग संचालन, आत्म विकास, आत्म रक्षा आदि की चेष्टा करते हैं। जो जड़ नहीं कर सकते।

(9) जड़वाद मन और चेतना की व्याख्या करने में भी असमर्थ है। शरीर और मन का अन्योन्याश्रय संबंध अवश्य है, किन्तु मन ही तन का अधिकांशतः संचालन करता है। जैसे कि मन में क्रोध का भाव आने पर तन में क्रोध के लक्षण स्वतः प्रकट होते हैं। जड़वादी उलटे तन के लक्षणों से मन का भाव उत्पन्न होना मानते हैं। जो बिल्कुल गलत है।

(10) प्रकृतिवाद के आधार पर जड़वादी मानते हैं कि जड़ के विकासक्रम में जीव और चेतना की उत्पत्ति होती है। अब प्रश्न पैदा होता है कि विकास की पहचान क्या है?

प्रगति = प्र + गति अर्थात् लक्ष्य की ओर बढ़ना प्र (आगे) (Pro) गति (Gress) बढ़ना।

परागति — लक्ष्य के विपरीत

विनाश — लक्ष्य के विपरीत

दुर्गति — बुरी गति

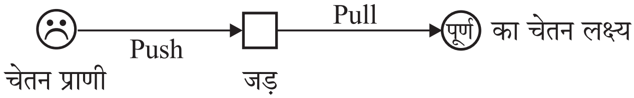
अवगति — बुरी गति

विगति — विपरीत गति

प्रगति या दुर्गति का निर्णय लक्ष्य के आधार पर होगा। यदि लक्ष्य हो 100 फुट ऊंचा मीनार, तो जितना ऊपर निर्माण होगा, उतनी प्रगति होगी। यदि लक्ष्य 100 फुट गहरा कुआं हो तो जितना नीचे निर्माण होगा, उतनी प्रगति होगी।

विकास तभी विकास माना जायेगा जब पूर्वनिश्चित लक्ष्य की ओर प्रगति होगी। जड़ पदार्थ किसी लक्ष्य को पहचानता ही नहीं, तो जड़ किसकी ओर विकास करेगा। लक्ष्य की पहचान केवल चेतन को होती है। पूर्णत्व का लक्ष्य पूर्वनिश्चित मान लेने का अर्थ है, जड़ से पूर्व कोई पूर्ण सनातन सत्ता है। अतः भौतिक जड़वादी विकासवाद अपने आप खंडित हो जाता है। इसके स्थान पर आध्यात्मिक विकासवाद सिद्ध होता है।

जड़ को पीछे से कोई चेतन ही उसे लक्ष्य की ओर प्रेरित करके बढ़ा रहा है और जड़ के आगे कोई चेतन ही लक्ष्य के रूप में उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।



विकास शब्द स्वयं स्पष्ट कर रहा है कि लक्ष्य पूर्वनिश्चित है। अतः भौतिकवादियों का जड़ विकासवाद का सिद्धान्त बिना चेतन सत्ता को माने खंडित हो जाता है।

11. जड़वादी विश्व की व्याख्या प्रकृतिवाद के आधार पर करने की चेष्टा करते हैं। वस्तुओं की व्याख्या प्रकृति के नियमों से की जाती है। उन नियमों की व्याख्या सर्वव्यापक नियमों से की जाती है। किन्तु वे सर्वव्यापक नियम क्या अपने आप में जड़ हैं या चेतन, यह प्रश्न शेष बच जाता है। फिर उन नियमों की कोई नियामक सत्ता भी है, या नियम अपने-आप अंधी गति से चल रहे हैं। इन प्रश्नों का समाधान जड़वाद नहीं दे सकता। सारे विश्व में एक ही नियम है, जो न मनमानी कर सकता है, न अनुशासन भंग कर सकता है। तो सहज ही प्रश्न खड़ा होता है कि इस नियम का कोई नियंता, कोई नियामक, कोई विश्वव्यापी शासक है अथवा नहीं। जड़वाद यहां हार जाता है। विश्व के नियमों में हम एक नैतिक उद्देश्य का संकेत भी पाते हैं जिसकी जड़वाद कोई व्याख्या नहीं कर सकता। जैसे—शिशु के जन्म के साथ ही माता के स्तनों में दूध उतर आता है और बच्चे के दांत आ जाने पर मां का दूध सूख जाता है—

जब दांत न थे, तब दूध दियो।
जब दांत दिये, तो क्या अन्न न दोगे।। (तुलसीदास)

जब हुए मात के गर्भ में, करे रखवाली जोय।
अब तो हैं नौ वर्ष के, क्यों न सहाय होय।।

गुरु गोविन्द सिंह ने पिता को उत्तर देते हुए ये वचन कहे थे।

स्पष्टतः प्रकृति की एक-एक चीज में उद्देश्य भरा हुआ है। छोटे नियम बड़े नियम से, बड़े नियम उससे बड़े नियम से बंधे हुए हैं।

12. जड़वाद पदार्थों की कुछ व्याख्या करता है, किन्तु पदार्थों में जिन गुणों की अनुभूति होती है, उनकी व्याख्या नहीं कर सकता। जैसे—फूल का रंग, रूप, आकार, सुगन्धि, कोमलता, उससे प्राप्त होने वाले आनन्द, काव्यप्रेरणा, आध्यात्मिक प्रेरणा, इनमें से किसी की व्याख्या जड़वाद द्वारा नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए—स्नेह, प्रेम, आनन्द, श्रद्धा, भक्ति, वात्सल्य, कर्तव्यभावना जिनके लिए मनुष्य अपना बड़े से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत रहता है, जड़वाद की प्रयोगशाला में उनका कुछ भी अर्थ नहीं। महान् मानवीय अनुभूतियां, आदर्श एवं जीवनमूल्य जड़वाद की तराजू में तौले नहीं जा सकते। शरीर साढ़े तीन हाथ

का मांस का लोथड़ा है। जिसमें इतना भाग ऑक्सीजन, कार्बन आदि है। इससे इस मनुष्य का दूसरे से क्या रिश्ता है पता नहीं चलता। पुत्र भाव, माता भाव, भ्राता भाव कुछ भी स्पष्ट नहीं। इससे दया, स्नेह, ममता, श्रद्धा, विश्वास की कोई भी भावना नहीं उभरेगी।

13. जड़वाद के अनुसार अणुओं के आकस्मिक संयोग-वियोग से विश्व की उत्पत्ति हुई है। यदि विश्व अणुओं के आकस्मिक मिलने या हटने से बना होता, तो विश्व में कोई नियम या व्यवस्था न दिखायी देती। यदि अकस्मात् बहुत से परमाणु एक जगह इकट्ठे हो जायें या अचानक बिखर जायें, तो वहां नियम या व्यवस्था कुछ नहीं बचे। अतः सृष्टि की व्यवस्था के पीछे कोई सुविचारित नियम है, अंधा नियम नहीं। सृष्टि में एक दिव्य योजना काम कर रही है।

14. जड़वाद की मान्यता है कि सृष्टि में पदार्थ और ऊर्जा की कुल मात्रा सदा एकसमान रहती है। इस मान्यता से जड़वाद चेतना की सत्ता को टाल जाता है। किन्तु पदार्थ की अनश्वरता का नियम भौतिक नियम है। उससे अभौतिक चेतना की व्याख्या नहीं हो सकती है, और न टालना ही तर्कसंगत है।

15. ज्ञानयोग की दृष्टि से भी जड़वाद खंडित हो जाता है। ज्ञान के लिए एक अनिवार्य त्रिपुटि है—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। बिना ज्ञाता के ज्ञेय का अस्तित्व नहीं। सब ज्ञान भी ज्ञाता पर अवलंबित है। यदि ज्ञाता विश्वसनीय है, तो ज्ञान विश्वसनीय है। यदि ज्ञाता अविश्वसनीय है, तो ज्ञान भी अविश्वसनीय है। यदि अंधा और झूठा व्यक्ति कहे कि पांच पैर वाला दैत्य देखा, तो उसकी बात पर कौन विश्वास करेगा?

जब जड़वादी कहते हैं कि जड़तत्त्व ही परम सत्य है, तो प्रश्न उठता है कि इस ज्ञान को जाना किसने? यदि वे कहें जड़ ने ही जाना कि जड़ ही परम सत्य है, तो यह अविश्वसनीय है। क्योंकि जड़ अंधा है, ज्ञाता अंधा हो तो ज्ञान भी अंधा। यदि चेतन ने जाना जो जड़वाद स्वयं खंडित हो जाता है। तब जड़ अंतिम सत्य नहीं रहा। उसका सिद्धान्त कट जाता है।

16. जड़वाद में मनुष्य के व्यक्तित्व का, उसके मानसिक जीवन, आत्मा, संकल्प, स्वतंत्रता, नैतिक आदर्श इत्यादि का नाश हो जाता है।

17. साम्यवाद के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद भी हिंसा, अशांति, व्यभिचार आदि का कारण बनता है। पश्चिम के भोगवाद से मानवता संत्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कर रही है।

18. जड़वाद में आदर्श के लिए कोई स्थान नहीं। वास्तव में बिना आदर्श के जीवन में प्रगति हो ही नहीं सकती। यथार्थ से आदर्श की ओर बढ़ना ही प्रगति

का मूल मंत्र है। अतः जड़वाद मानवता की प्रगति में साधक न होकर बाधक बनता है।

19. कर्म-सिद्धान्त के बिना विश्व में नैतिकता के बीज का नाश हो जायेगा। जड़वाद में कर्म-सिद्धान्त की गुंजाइश नहीं है।

20. जड़वाद पुनर्जन्म को नहीं मानता। किन्तु संसार में हजारों-लाखों ऐसे सच्चे दृष्टान्त हैं, जहां वास्तव में बच्चे अपने पिछले जन्म की स्मृतियों को लेकर नये जन्मों में प्रकट हुए। यदि मनुष्य जड़ शरीर ही है, जो मर कर भस्म हो गया अथवा धरती में गाड़ दिया गया। तो नये जन्म में, नये स्थान पर, नये शरीर में पिछले जन्म की स्मृतियों को किसने पहुंचाया? निश्चय ही मनुष्य केवल एक पदार्थ का टुकड़ा या अणु-परमाणुओं का समूह ही नहीं है। वह एक चेतन आत्मा है जो जन्म और मृत्यु की सीमाओं को लांघ जाता है—

इस जन्म-मरण के आर-पार।
शाश्वत जीवन नौका-विहार।। (सुमित्रानन्दन पंत)

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्र भवतु सम्मनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदतभद्रया।।

अथर्व, 3/30/2-3

पिता के जीवन में कोई व्रत हो, पुत्र अपने माता-पिता का आज्ञानुवर्ती और उनके साथ एक-मन होकर रहे। पत्नी अपने पति के प्रति मधुर और स्नेहयुक्त वाणी का ही व्यवहार करे। भाई भाई के साथ और बहन बहन के साथ द्वेष न करे। तुम्हें चाहिए कि एक-मन होकर समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह और प्रेम को बढ़ाने वाली वाणी का ही व्यवहार करो।

द्वैतवाद

द्वैतवाद—वह दार्शनिक विचारधारा जिसके अनुसार विश्व की अन्तिम सचाई एक नहीं होकर दो है। इसे द्वैतवाद या Dualism कहते हैं।

जड़वाद तथा चैतन्यवाद एकतत्त्ववादी विचारधारायें हैं। द्वैतवाद दोनों (जड़ और चेतन) को सत् मानता है। द्वैतवाद की मान्यता इस प्रकार है—

(क) सृष्टि की व्याख्या न केवल मात्र जड़ तत्त्व से हो सकती है और न केवल मात्र चैतन्य तत्त्व से। जड़ और चेतन दोनों मौलिक हैं। न जड़ चेतन का विवर्त है और न चेतन जड़ का विकसित रूप। जड़ का गुण विस्तार है और चेतना का गुण प्रकाश है। इसमें विस्तार नहीं होता। जड़ विस्तृत है, चेतन नहीं।

(ख) मूल तत्त्व न केवल जड़ रूप है और न चेतन रूप है, अपितु दोनों है। द्वैत वास्तविक है, पारमार्थिक है।

(ग) जड़ और चेतन दोनों की प्रकृति भिन्न एवं परस्पर विरोधी है।

जड़ स्थूल है, चेतन सूक्ष्म। जड़ विस्तृत है और चेतन देश के बंधन से मुक्त।

जड़ निर्जीव है तो चेतन सजीव।

जड़ ज्ञानशून्य है तो चेतना ज्ञानसम्पन्न।

जड़ भौतिक है, चेतन अभौतिक है।

जड़ दृश्य है, चेतन द्रष्टा।

जड़ प्रकृति है तो चेतन पुरुष।

जड़ क्षेत्र है तो चेतन क्षेत्रज्ञ।

जड़ शरीर है तो चेतन आत्मा।

जड़ यंत्र है तो चेतन यंत्री।

जड़ ज्ञेय है तो चेतन ज्ञाता।

जड़ परिधि है तो चेतन केन्द्र।

जड़ पदार्थ है तो चेतन प्रयोक्ता।

जड़ घूर है तो चेतन नूर।

जड़ मृण्मय है तो चेतन चिन्मय।

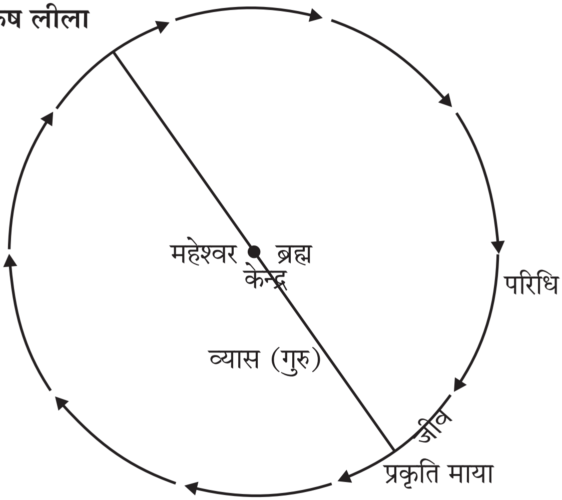
जड़ परिवर्तनीय है तो चेतन अपरिवर्तनीय।

जड़ माया है तो चेतन महेश्वर।

जड बहिरंग है तो चेतन अन्तरंग।

इन दोनों में परस्पर विरोधी गुण होते हुए भी दोनों एक-दूसरे के पूरक भी हैं। मानव जड़ चेतन का संयोग ही है।

प्रकृति-पुरुष लीला



परिधि रेखा से बनी है। रेखा बिन्दुओं से बनी है। A Line is a continuation of points.

सरल रेखा अनन्त तक बढ़ती जावे तो गोलाकार हो जाती है।

वृत्त का आधार केन्द्र है, बिन्दु है।

वृत्त बना ही बिन्दुओं के विस्तार से है।

बिन्दु का कोई आकार नहीं, न लम्बाई, न चौड़ाई, न मोटाई

ब्रह्म का कोई आकार नहीं, निराकार।

ब्रह्म से बनने वाले ब्रह्माण्ड का आकार है। जैसे बिन्दु से वृत्त (साकार) बना।

बिन्दु ही वृत्त का कारण है। बिन्दु ही वृत्त (परिधि) में व्याप्त है।

ब्रह्म ही सृष्टि का कारण। वही सृष्टि में व्याप्त **'तत् सृष्ट्वा तदेवानु-प्राविशत्'**—वेद।

वृत्त (परिधि में) चक्र है। भटकना है, आदि-अन्त रहित चक्कर है। परिधि में प्रकृति है। वहां 84 लाख का चक्र है।

ज्योतिष में ऊर्ध्व= केन्द्र, अधः=परिधि।

गीता—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।। 15/1 गीता

ऊपर मूल और शाखा नीचे, पीपल तरु लासानी है।
पत्तों में है वेद ऋचाएं, जो जाने सो ज्ञानी है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। 8/16 गीता

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 18/61

कबीर—'चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय।
दुइ पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।'

दो पाट द्वैत के हैं। प्रत्येक गुण का विरोधी गुण भी है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, मित्र-शत्रु, गर्मी-सर्दी, अपना-पराया। जहां प्रकृति, वहां द्वैत।

कमाल—चलती चक्की देखि के, दिया कमाला हास।
उनको चाकी क्या कहे, जो कीली के पास।।

जो दाने (जीव) केन्द्र (चैतन्य सत्ता, अपने मूल) की ओर जाते हैं वे मुक्त हो जाते हैं।

केन्द्र में शक्ति, परिधि में चक्कर

केन्द्र में (नियन्ता) नियंत्रणकर्ता, परिधि में परवशता बंधन (नियंत्रित)

द्वैतवाद की युक्तियां—(1) हमारा अनुभव प्रमाणित करता है कि विश्व में जड़ और चेतन दो प्रकार की सत्ताएं हैं। क्षेत्र जड़ है तो क्षेत्रज्ञ चेतन। जड़ विस्तृत अचेतन है और मन या आत्मा अविस्तृत चेतन। यदि मूल तत्त्व की प्रकृति में द्वैत नहीं तो हमारे अनुभव दो प्रकार के क्यों होते हैं। अधिकांश दार्शनिक एवं वैज्ञानिक द्वैतवाद को मानकर चलते हैं।

(2) जड़ पदार्थ का अनुभव चेतन के अनुभव से भिन्न एवं विरोधी होता है। अतः दोनों को एक न मानकर दो भिन्न तत्त्व मानना अनिवार्य है। जब दोनों में परस्पर विरोध है तो एक से दूसरे की उत्पत्ति असम्भव है। जड़ से जीवन और

चेतना पैदा नहीं हो सकती। और न चेतन से ही जड़ पदार्थ उत्पन्न हो सकते हैं। अत: मूल तत्त्व के स्वरूप में प्रारम्भ से ही बुनियादी द्वैत है।

जड़ और चेतन दोनों का अनुभव सब लोगों को होता है। इस सार्वजनिक अनुभूति से भी दोनों की सत्ता सिद्ध होती है। हम संसार की अन्य सब वस्तुओं की सत्ता में संदेह कर सकते हैं पर स्वयं अपने अस्तित्व पर संदेह करते ही अपना अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। जब संदेह है तो संदेह करने वाला भी जरूर है। इसी प्रकार जड़ पदार्थ के विषय में भी सैकड़ों, हजारों, लाखों लोगों का अनुभव एकसमान देखकर मानना पड़ता है कि जड़ पदार्थ की भी सत्ता अवश्य है।

द्वैतवाद का ऐतिहासिक रूप : (क) सांख्य दर्शन—कपिल के सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति दो सनातन सत्तायें मानी गयी हैं। मूल प्रकृति अव्यक्त (रूपविहीन) है तथा इसमें तीन गुणों का समन्वय है—सत्, रज और तम। तम=अंधेरा। निद्रा, आलस्य, प्रमाद तमोगुण के लक्षण हैं। प्राचीन प्रतीक है कुम्भकर्ण। रजोगुण—कामनाओं से प्रेरित होकर खूब कर्म करना। जैसे रावण, अर्जुन आदि। सतोगुण—परिश्रम, संघर्ष, साधना, तपस्या के उपरान्त ज्ञानबोध से प्राप्त होने वाली शान्ति। जैसे रामकृष्ण परमहंस।

ये तीनों गुण प्राय: बिल्कुल अलग-अलग तथा अन्य गुणों से अलिप्त नहीं रह सकते। वे परस्पर एक-दूसरे से मिले-जुले रहते हैं।

एक ही व्यक्ति के जीवन में प्रात:काल सतोगुण का आधिक्य होता है। मध्याह्न में रजोगुण का आधिक्य एवं रात्रि में तमोगुण का आधिक्य रहता है। उसी व्यक्ति में सत् गुण की प्रकृति विशेष होने से वह दिन में परिश्रम काल में भी पूर्ण स्वाध्याय करता है। रात्रि के तमोगुण के काल में भी आध्यात्मिक चिन्तन, ध्यान करता है। बाह्य प्रकृति (परिस्थिति) भी मनुष्य को प्रभावित करती है और मनुष्य की अंत:प्रकृति (अंत:स्थिति) बाह्य प्रकृति को प्रभावित करती है और तमोगुण प्रवृत्ति का व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त में आलस्य में, दिन के कर्म के समय प्रमाद में और रात्रि को निद्राधीन रहता है।

सत्त्वोन्मुखी रजोगुण—वीरों में, महापुरुषों में, इतिहास निर्माताओं में, अवतारों में, रजोगुणी कर्म महान् आदर्श (ज्ञान, शान्ति, आनन्द) की ओर लगा हुआ निष्काम कर्मयोगी बन जाता है। उदाहरणार्थ—शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह आदि।

तमोभिमुखी रजोगुण—तमोगुण (निद्रा, आलस्य, प्रमाद) की ओर ले जाने वाला कर्म व्यक्ति को स्वार्थी, सकामी, संघर्षशील, ईर्ष्यालु, द्वेषी और क्रोधी बना डालता है। जैसे कंस, दुर्योधन, रावण आदि।

रजोगुण (कर्म) कर्म करने को प्रेरित करता है
- सत्त्व (ज्ञान-शांति-आनन्द) की ओर जाने से सत्कर्म, निष्काम कर्म।
- तम (निद्रा, आलस्य, प्रमाद, भोग) की ओर ले जाने वाला हीन कर्म।

ऐसा कोई भी नहीं है जिसमें सिर्फ तमोगुण हो या रजोगुण या सतोगुण। मनुष्य में तीनों गुणों का समावेश होता है, पर जिस गुण का आधिक्य होता है उसी के नाम से पुकारा जाता है। प्रकृति के तीनों गुण मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वह जिस ओर खिंच जाता है, वैसे ही गुणों का विकास उसके जीवन में होता है।

मनुष्य के सतोगुणी होने पर उसे समाज में प्रतिष्ठा, उच्चपद प्राप्त हो जाता है तो उसमें अहंकार का प्रवेश हो जाता है और समाज की अधिक से अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके और सतोगुणी के नाम पर समस्त भोगों एवं ऐश्वर्य भोग सके इसके लिए आश्रम की स्थापना, युवक-युवतियों को शिष्य बनाना आदि। यानी सतोगुणी के माध्यम से या नाम से संसार के भोगों एवं प्रतिष्ठा के लिये सतोगुण को व्यवसाय बना लेते हैं।

इस तरह प्रकृति के तीनों गुण सदैव पुरुष को तमाचा मारने का अवसर देखते रहते हैं।

अतः तमोगुण रूपी कुम्भकर्ण को समाप्त कर देवें, रावण रूपी रजोगुण को चीर देवें एवं विभीषण रूपी सतोगुण को राम के चरणों में समर्पित कर दें ताकि उसमें अहंकार का प्रवेश न हो पाए।

यह तीन गुण बाह्य प्रकृति में भी हैं, अन्त:प्रकृति में भी हैं। बाह्य प्रकृति और अंत:प्रकृति की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है। अन्त:स्थिति दुर्बल होने से मनुष्य परिस्थिति का दास बन जाता है। अन्त:स्थिति सुदृढ़ होने से वह अपने अनुकूल ढाल लेता है। यह तीनों गुण अलग नहीं हो सकते। सदा इकट्ठे रहते हैं। इनका प्रभुत्व घटता-बढ़ता रहता है।

मूल प्रकृति का नाम है अव्यक्त। वह रूपविहीन है। पुरुष की दृष्टि पड़ने से इसमें परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन का कारण तीन गुण ही है। परिवर्तनशील प्रकृति व्यक्त प्रकृति कहलाती है। यह इन्द्रियों के भोगने का विषय है। यह अचेतन क्रियाशील है।

(क) मूल प्रकृति (अव्यक्त)—शान्त, अचेतन, क्रियाहीन है। तीनों गुण साम्यावस्था में सृष्टि से पूर्व या प्रलय के बाद रहते हैं। प्रलय=सब कुछ का प्रकृति में लय हो जाना। सुषुप्तिकाल=क्षणिक प्रलय। नाम लय, रूप लय, देश लय,

काल लय, पात्र लय, परिस्थिति लय, देहाध्यास लय, मनाध्यास, शारीरिक रोग, वंश, कुल, जाति, वर्ण, अवस्था... लय।

मूल प्रकृति एक माता के समान जीव का उद्धार करने में सहायक है। प्रकृति माता=पार्वती माता।

(ख) क्रियाशील प्रकृति (व्यक्त)—त्रिगुणमयी, परिवर्तनशील, क्रियाशील, अचेतन, इन्द्रियों के लिए भोग्य विषय। प्रकृति के पांच महाभूतों के पांच गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध—इन्द्रियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन्द्रियों के विषयों में लिप्त होने से इन्द्रियों का स्वामी मन भी उन्हीं में बंध जाता है। व्यक्त प्रकृति बंधन का कारण है।

पुरुष—पुरुष प्रकृति रूपी नटी का स्वामी एवं द्रष्टा है। वह चेतन एवं निष्क्रिय है। पुरुष प्रकृति के संयोग से विश्व का विकास होता है। पुरुष मूलतः गुणों से परे है। गुण तो प्रकृति का है जो पुरुष में प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। पुरुष ज्ञाता, भोक्ता और नित्य है।

बंधन का कारण—जीव के बंधन का कारण अविवेक है। वह जड़ चेतन के भेद या पुरुष प्रकृति के भेद को भूल जाता है। इसलिए बंधन में पड़ जाता है।

त्रिविध दु:ख—बंधन तीन दु:खों के रूप में है—(1) आध्यात्मिक दु:ख= अपने भीतर के दु:ख, मानसिक। (2) आधिदैविक=दैव, भाग्य अथवा प्राकृतिक प्रकोप से होने वाले दु:ख। (3) आधिभौतिक=शारीरिक एवं भौतिक क्षति।

मोक्ष—त्रिविध ताप या त्रिविध दु:ख का नाश या छुटकारा।

यूनान—यूनान का प्राचीन दार्शनिक Thales जल को मूल तत्त्व मानता है। Aneximenus वायु को मूल तत्त्व मानता है। Hreclictas अग्नि को मूल तत्त्व मानता है। पर ये तीनों उन तत्त्वों में जीव या चेतना का समावेश भी मानते हैं। अत: वे मूल तत्त्व को एकात्मक मान कर भी इसकी प्रकृति में द्वैत मानते हैं।

Anexigoros मानता है कि जड़ तत्त्व के साथ चेतन शक्ति भी सत् है।

प्लेटो और अरस्तू में द्वैतवादी विचार मिलता है। अच्छाई और बुराई के बीज चेतन और जड़ तत्त्वों में हैं। जड़ तत्त्व जगत् का उपादान Material cause कारण है और ईश्वर या चेतन सत्ता जगत् का निमित्त कारण (Efficient cause) है। अरस्तू निम्नलिखित कारणों का विश्लेषण करता है—

(क) Material cause (उपादान कारण)—लकड़ी।

(ख) Formal cause (प्रारूप कारण)—नक्शा।

(ग) Efficient cause (निमित्त कारण)—बढ़ई।

(घ) Instrumental cause (यंत्र उपकरण, साधन)—औजार।

(ङ) Final cause (उद्देश्य कारण)—रोजी-रोटी की समस्या।

धार्मिक चिन्तक आगस्टाइन भी शरीर और आत्मा, दो तत्त्व मानता है।

फ्रांस का दार्शनिक देकार्त यूरोप में दर्शन के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। इसे यूरोप के नवदर्शन का पिता कहा जाता है। एक ओर वह पश्चिम में Cordinate ज्यामिति का आविष्कर्ता माना जाता है और दूसरी ओर दर्शन के क्षेत्र में भी द्वैतवाद का सबसे प्रमुख प्रयोक्ता माना जाता है। वह प्रारंभ में संदेह से शुरू करता है। उसका कथन है कि प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व पर संदेह है। इस तरह जीव, जगत् और ब्रह्म सबकी सत्ता संदेहास्पद हो जाती है, पर देकार्त पुनः तर्क करता है—जब मैं संदेह करता हूं तो कम से कम मैं संदेह करने वाला तो अवश्य हूं। Cogito Ergo sum—I think, therefore, I am. मैं संदेहकर्ता हूं, अतः मैं हूं।

इससे पूर्व भगवान् शंकराचार्य ने भी यही तर्क दिया है कि ज्यों-ज्यों मैं अन्य वस्तुओं की सत्ता के विषय में संदेह करता जाता हूं त्यों-त्यों मैं अपनी (संदेह करने वाली) सत्ता को पुष्ट करता जाता हूं। Doubt prespoises the doubter. देकार्त ने इस तरह आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के बाद प्रकृति की स्थिति को सिद्ध किया। उसने नियम बनाया कि जो प्रत्यय (concept) पूर्ण रूप में स्पष्ट है वह सत् का सूचक है। देकार्त के अनुसार प्रकृति इसलिए सत् है कि इसे प्राप्त होने वाले प्रत्यय पूर्ण रूप से स्पष्ट है। देकार्त के मत में पुरुष और प्रकृति, जड़ और चेतन में जातिगत भेद है। जड़ का गुण विस्तार और चेतन का गुण चेतना है।

यंत्र-यंत्री—आगे चल कर देकार्त ने यंत्र और यंत्री का भेद बताया। विज्ञान ने यंत्रों का अध्ययन शुरू किया और दर्शन ने यंत्री का अध्ययन।

ईश्वर—देकार्त ने ईश्वर की सत्ता के भी बड़े सुंदर प्रमाण दिये हैं।

(1) कारण-नियम (Cause, Proof)—विश्व में प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कारण होता है। बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता। अतः इतने बड़े विराट् विश्व का कारण ईश्वर अवश्य है। यदि आगे कोई ईश्वर का भी कारण खोजे तो यह विषम चक्र, अनन्त एवं अगाध ही रहेगा। इसका कोई हल नहीं हो सकता। इस कठिनाई से बचने के लिए देकार्त ईश्वर को आदिकारण मानता है। इसे ही भारतीय दर्शन में स्वयंभू माना जाता है। जिसे यूरोप के दार्शनिक Cause Sui (स्व कारण) मानते हैं।

(2) सृष्टि और स्रष्टा (Design and Designer)—सृष्टि एक व्यवस्थित रचना है। इतनी सुंदर सुव्यवस्थित सृष्टि का कोई कलाकार स्रष्टा, नियामक भी

अवश्य होगा। यह Design सुंदर है। नमूना या सुंदर रचना बनाने वाला अवश्य होगा। नभ मण्डल में अनन्त ज्योतियां, नक्षत्रों की नियमित गतियां, चन्द्र-सूर्य-धरती की व्यवस्थित लीला, वनस्पतियों का नियमबद्ध विकास, फूलों और फलों का सौन्दर्य एवं मिठास, वनराज द्वारा वायुशोधन, सृष्टि के कण-कण में सौन्दर्य की छटा। यह सब कुछ किसी महान् कलाकार के बिना कभी सम्भव नहीं है।

(3) प्रयोजनवादी प्रमाण (Teleological proof)—सृष्टि में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है। उसके पीछे सृष्टिकर्ता का महान् प्रयोजन निहित है। मनुष्य को दिन में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उस समय वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते हैं। मनुष्य द्वारा त्यागा हुआ वायु वृक्ष का भोजन है, त्यागा हुआ मैला खेत के लिये खाद। इस तरह सृष्टि के पग-पग में ज्ञान-सूझ वाली परम बुद्धिमान् सत्ता का प्रयोजन छिपा है।

सत्तामूलक प्रमाण (Ontological proof)—ईश्वर का विचार एक पूर्ण सत्ता का विचार है। ईश्वर अर्थात पूर्ण पुरुष। जो पूर्ण है उसकी सत्ता है, तभी तो वह पूर्ण है।

नैतिक प्रमाण (Moral proof)—God is the source of all Goodness. समस्त नैतिकता का मूल परमेश्वर हैं, Goodness is road to Godliness. सदाचार ही ईश्वर प्राप्ति का साधना पथ है। Without Goodness there is no God. बिना सदाचार के ईश्वर कुछ नहीं है। Good (ऋतम्) + God (सत्यम्) दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक को पाने से दूसरा अपने आप प्राप्त हो जाता है। God is complete Goodness परमेश्वर पूर्ण शिव (कल्याण) है। बिना ईश्वर के विश्व में नैतिकता नहीं बचेगी। कांट ने ईश्वर के अस्तित्व के लिये यही तर्क दिया है।

व्यावहारिक युक्ति (Pragmatic proof)—अमेरीका के दार्शनिक जेम्स का मत है कि ईश्वर के विश्वास से मनुष्य को बल एवं आत्मसंतोष प्राप्त होता है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व अवश्य है।

धार्मिक अनुभूति—धार्मिक विचारक प्रमाण देते हैं कि अनेक दिव्य पुरुषों को जैसे—तुलसी, मीरा, रसखान, विवेकानन्द, रामतीर्थ, ईसा आदि को ईश्वर का साक्षात् अनुभव हुआ है। इसलिए ईश्वर है।

नकार में स्वीकार का प्रमाण—जब कोई पूछता है कि कमरे में कौन है? और व्यक्ति उत्तर देता है कि यहां कोई नहीं। तो इसका अर्थ यह नहीं कि वास्तव में कोई नहीं। कम से कम उत्तर देने वाला तो है। यदि कोई कहे कि ईश्वर नहीं है तो भाव इतना ही है कि उसे ईश्वर का ज्ञान नहीं हुआ अथवा अनुभूति नहीं हुई। यदि वह अपने ही व्यक्तित्व की खोज करे तो उसे अपने अन्तर में ही नारायण मिल जाय।

आस्तिक-नास्तिक विवाद—एक आस्तिक और एक नास्तिक रात्रि को देर तक ईश्वर को सिद्ध एवं असिद्ध करने के लिये तर्क-वितर्क करते रहे। आधी रात को दोनों ने निश्चय किया कि शेष शास्त्रार्थ कल करेंगे। दूसरे दिन प्रातः आस्तिक ने नास्तिक को कहा—अरे भाई! तुम्हारे तर्क इतने जोरदार थे जिनसे प्रभावित होकर मैंने अपनी सारी पुस्तकों को जला दिया। इस पर नास्तिक ने कहा—अरे, यह बहुत अनर्थ हुआ। मैं तो आपके तर्कों से प्रभावित होकर अपनी नास्तिकता का पुस्तकालय जला कर आया हूं।

आलोचना—जड़ और चेतन दोनों को सत् मान लेने से यह समस्या बन जाती है कि क्या दोनों समान रूप से स्वतंत्र महत्त्व के हैं या एक-दूसरे के अधीन। पर जड़ और चेतन दोनों को अलग-अलग स्वतंत्र सत्ता मानने से विश्व में दो शक्तियों का शासन बन जाता है जिससे इस विश्व (Universe) में एक शक्ति का शासन नहीं रहता है। दो सत्ताओं का शासन हो तो एक शासन के वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नैतिक नियम से दूसरे शासन के वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नैतिक नियम परस्पर विरोधी और भिन्न भी हो सकते हैं। इस दो सत्ता से जगत् में अव्यवस्था फैल जायेगी। यदि घर में ही माता का अनुशासन एवं पिता का अनुशासन परस्पर भिन्न और विरोधी हो तो परिवार कुछ दिनों में उजड़ जायगा।

जब जड़ और चेतन दोनों परस्पर विरोधी प्रकृति के हैं तब दोनों में सम्बन्ध स्थापित हो, यह कैसे सम्भव है। सांख्य दर्शन इसमें उपमा का प्रयोग करता है। अन्धे और लंगड़े का, या गाय और बछड़े का। ये उपमा अपर्याप्त है क्योंकि ये दोनों उदाहरण ही सजीव हैं, चेतनता के हैं। अतः द्वैत के आधार पर सृष्टि की संतोषजनक व्याख्या नहीं हो सकती।

द्वैतवाद नैतिकता का आधार नहीं बन सकता। जब तक द्वैत है, गैर-पने का, पराये-पन का भाव है तब तक दूसरे की खैर नहीं। दूसरेपन, पराये-पन के आधार पर ही लूट-खसोट, बेईमानी, बलात्कार, अत्याचार का आधार बनता है।

नये शोध में जड़-चेतन का अन्तर शेष नहीं बचता। जो चेतना पत्थर में सोयी हुई, पशुओं में ऊँघ रही है, वह मनुष्य में जाग्रत् है। इसे जगदीशचन्द्र वसु ने प्रयोगों के द्वारा सिद्ध कर दिखाया।

आज का शोध जड़ को जड़ के रूप में नहीं बताता। उसके अन्दर ऊर्जा समायी हुई है। इसलिए बर्ट्रेंड रसेल कहता है जिन ईंटों पर जड़वाद का महल खड़ा था वह ईंट ही कच्ची प्रमाणित हुई।

इस प्रकार द्वैतवाद जीव-जगत् की संतोषजनक व्याख्या करने में असमर्थ सिद्ध होता है।

चैतन्यवाद

(1) चरम सत्ता का स्वरूप—दर्शन की आधारभूत समस्या है कि विश्व की चरम सत्ता का स्वरूप क्या है? मोटे तौर पर देखने से मनुष्य को अपने पिण्ड में और ब्रह्माण्ड में दो प्रकार की शक्तियों का खेल दृष्टिगोचर होता है। एक जड़ दूसरी चेतन। एक घूर और दूसरी नूर, एक मृण्मय दूसरी चिन्मय, एक क्षेत्र दूसरी क्षेत्रज्ञ। आंग्ल भाषा में दार्शनिक इसे Mind और Matter नाम से पुकारते हैं। इसे ही गीता में देह और देही (आत्मा) नाम से पुकारा गया है। शरीर जड़ मिट्टी का पुतला है पर इसके भीतर जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा इनसे परे ज्ञान चेतना है वे सब चैतन्य का ही खेल हैं।

(2) जड़ एवं चेतन—द्वैतवादी दार्शनिक मानते हैं कि जड़ और चेतन दोनों सत् हैं। इसे Dualism कहते हैं। भारत में मध्वाचार्य एवं पश्चिम में देकार्त इसके प्रसिद्ध दार्शनिक हैं।

(3) जड़ या चेतन—जड़ व चेतन दोनों को सत् मान लेने से यह समस्या बच जाती है कि क्या दोनों समान रूप से स्वतंत्र महत्त्व के हैं या एक-दूसरे के अधीन।

यदि जड़ और चेतन दोनों अलग-अलग स्वतंत्र सत्तायें हैं तो विश्व में दो शक्तियों का शासन बन जाता है जिससे इस विश्व (Universe) में एक शक्ति का शासन नहीं रहता। यदि विश्व में सर्वोच्च सत्ता एक है तो हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि क्या वह जड़ है या चेतन। या तो जड़ चेतन की व्याख्या करे या चेतन जड़ की व्याख्या करे तभी यह फैसला हो सकता है कि दोनों में अन्तिम सत्ता कौन-सी है। जड़ तो स्वयं ज्ञानशून्य जड़ ही है वह स्वयं को भी नहीं जानता। अन्य जड़ों को और चेतन को भी नहीं जानता। अतः विश्व व्याख्या में असमर्थ है। चेतन जड़ को भी जानता है, दूसरे जड़ों को भी जानता है। जड़ और चेतन के सम्बन्ध को जानता है और स्वयं को जानता है। अतः चेतन ही अन्तिम सत्ता की व्याख्या कर सकता है।

चैतन्यवाद की परिभाषा—चैतन्यवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार विश्व की अन्तिम सत्ता का स्वरूप चेतन आत्मा है।

चैतन्य की मान्यतायें—(क) विश्व का मूल तत्त्व चेतना ही है।

(ख) चेतन तत्त्व निराकार, निर्विकार और अमूर्त है। जाके मुंह माथा नहीं, नाहि रूप और कुरूप। पुहुप बास (सुगंधि) पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।। (उपमा से परे)। चेतन तत्त्व जड़ पदार्थों के समान देश-काल में फैला हुआ नहीं है।

(ग) जड़ या तो अवास्तविक है या प्रातिभासिक है या चेतन तत्त्व का ही व्यक्त रूप है।

(i). बंध्या सुत के विवाह के भोज में कलकत्ते के रसगुल्ले खाये। (अवास्तविक)

(ii) रज्जु में सर्प समझ कर डरना (प्रातिभासिक)। स्वप्न में राजा का कंगाल हो जाना। स्वप्ने होय भिखारि नृप, रंक नाकपति होय। जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच जग जोय।।

(iii) शरीर का जीवन एवं इन्द्रियों का प्रकाश न शरीर का है न इन्द्रियों का, सिर्फ आत्मा का ही प्रकाश है।

4. जड़ शक्ति और जीवन—दोनों ही चैतन्य शक्ति से सम्बन्धित और उस पर निर्भर है।

5. विश्व एक जड़ मशीन या यंत्र के समान नहीं है। इसका कोई प्रयोजनपूर्ण उद्देश्य है। सृष्टि का संचालन किसी दिव्य ईश्वरीय शक्ति द्वारा किसी महान् प्रयोजन के लिये हो रहा है। इसी प्रकार मानव जीवन भी प्रयोजनपूर्ण है। न विश्व में मनमानी अराजकता है और न मानव जीवन निरर्थक है। विश्व लोक कल्याण के लिए परम प्रभु का एक विराट् यज्ञ है और मानव जीवन परम प्रभु की प्राप्ति के लिये एक दिव्य साधना है।

6. परम तत्त्व को न इन्द्रिय ज्ञान द्वारा पूर्ण रूप से जाना जा सकता है, न मन से उसकी कल्पना की जा सकती है, न वाणी से उसका कथन किया जा सकता है और न बुद्धि ही उसको पूर्ण रूप से जान पाती है। उसे केवल आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है।

चैतन्यवाद के पक्ष में युक्तियां—मूल तत्त्व वही है जो सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वजनीन एवं सर्वरूप हो। केवल क्षणिक और परिवर्तनशील वस्तु या घटना को मूल तत्त्व नहीं कहा जा सकता है। तथ्य और सत्य में अन्तर स्पष्ट है—

तथ्य	**सत्य**
तथ्य एकदेशीय वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना होती है। यह देश	सत्य सार्वदेशिक वस्तु, व्यक्ति या घटना को कह सकते हैं। जांच

(Space) में आबद्ध होता है। देश इसे सीमित बनाता है। भौतिक वस्तु एकदेशीय होती है क्योंकि उसकी परिभाषा है जो वजन रखे और स्थान घेरे। उदाहरणस्वरूप फूल, डॉ. अब्दुल कलाम, मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण।

तथ्य एकदेशीय सत्य है। एक स्थान में सुख तो दूसरे स्थान पर इसके विपरीत दु:ख।

तथ्य सार्वकालिक न होकर किसी एक काल विशेष की सीमा में आबद्ध होता है। वह काल से घिरा होता है। इसलिए काल उसे खा जाता है। इसलिए तथ्य क्षणिक परिवर्तनशील और नश्वर होता है। जैसे रामनवमी उत्सव, जे.पी. आन्दोलन, शरीर, राजा ययाति का यौवन।

करने पर कोई वस्तु सार्वदेशिक नहीं हो सकती। कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सब स्थानों पर नहीं हो सकता है। कोई घटना भी एक ही समय सभी स्थानों पर नहीं घट सकती। केवल चेतन तत्त्व ही सार्वदेशिक, सर्वव्यापक है।

अत्र सत्यम् तत्र सत्यम् यत्र सत्यम् और सर्वत्र सत्यम्—जो सभी स्थानों में सत्य है।

सत्य सार्वकालिक होता है। किसी काल विशेष की सीमा में आबद्ध नहीं। **आदि सत्यम् युगादि सत्यम् भवति सत्यम् भविष्यति सत्यम्–** सत्य सब कालों में, काल के तीनों विभागों भूत, वर्तमान, भविष्य में सदा एकरस बना रहता है। इसलिए काल उसे खा नहीं सकता। इसी कारण उसे अकाल भी कहते हैं। सत् श्री अकाल का यही अर्थ है कि वह अकाल पुरुष या तत्त्व जिसे काल खा नहीं सकता, वही सदा सत्य है। शरीर नित्य बदलता रहता है। गर्भ में शुक्र का कीड़ा जन्म में छोटा-सा शिशु, बालपने में चंचल बालक, किशोरावस्था में क्रीड़ा-कौतुक करने वाला विद्यार्थी, यौवन में गृहस्थ आश्रम का प्रवेशार्थी, प्रौढ़ावस्था में गृहस्थी का बोझा ढोने वाला, वृद्धावस्था में जीवन की ठोकरों एवं रोगों से जर्जर। किन्तु इन सारी बदलने वाली अवस्थाओं के भीतर मनुष्य की चेतना अखण्ड एवं अपरिवर्तनीय रहती है। यानी शरीर बदलता रहता है पर शरीर में स्थित मैं तत्त्व कभी नहीं

	बदलता। जो मैं तत्त्व बचपन में था वही अन्त तक बना रहता है।
तथ्य एक रूप या कुछ रूप होता है। यानी वह दूसरी वस्तु या रूप से कट जाता है।	सत्य सर्वरूप होता है। वही सभी में अनुस्यूत होता है। अत: वह किसी दूसरी वस्तु या रूप से नहीं कटता। इसलिए उपनिषदों में एक को जानने से सबको जानने की प्रतिज्ञा है।
तथ्य सार्वजनीन न होकर एकजनीन अर्थात् किसी व्यक्ति विशेष या कुछ व्यक्तियों या वस्तुओं से सम्बन्धित यानी सीमित होता है। जैसे सुशीलजी का विवाह, इन्दिराजी की हार, जनता पार्टी की विजय।	सत्य सार्वजनीन होता है। सूर्य का प्रकाश बिना भेद-भाव के सबको ज्योति देता है। सत्य पर एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं है।

परम तत्त्व वही है जो सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वरूप एवं सार्वजनीन सत्य हो। विचार करने पर वह तत्त्व चेतन आत्मा ही है।

चैतन्यवाद के पक्ष में दूसरी युक्ति अनुभववाद—पाश्चात्य दार्शनिक बर्कले (Berkley) के अनुसार मनुष्य के ज्ञान का एकमात्र साधन अनुभव है। यदि अनुभव न हो तो हमें सत्य का ज्ञान कभी नहीं हो सकेगा। सारा ज्ञान किसी न किसी के अनुभव पर निर्भर है। विश्व सत्ता बाहर नहीं है वरन् वह हमारे अनुभव पर ही आधारित है। जब भौतिकवादी कहता है कि जड़ पदार्थ सत्य है तो यह ज्ञान भी किसी के अनुभव की उपज है। अत: अनुभूति का महत्त्व वस्तुओं की सत्ता से पहले है। जब हम किसी फूल का अनुभव करते हैं तो भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से उसके रूप, रंग, सुगन्धि, कोमलता, वायु में फड़फड़ाहट की ध्वनि आदि इन्द्रिय अनुभव मस्तिष्क को ज्ञात होते हैं। मस्तिष्क अपने पिछले अनुभव के आधार पर अर्थ लगाता है कि यह फूल है। अब व्यक्तिगत मन सीमित होने के कारण सदा ठीक अर्थ नहीं लगा सकता। इसलिए मन की चेतना से ऊपर एक विश्वव्यापी चेतना है जिसे विश्व मानस या Universal mind भी कहा जाता है। इसी विश्वमन को परमात्मा कहते हैं।

3. विश्व मानस या विश्व चेतना—भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के मन में जो व्यक्तिगत चेतना है वह दूसरों से अलग-अलग तथा नितान्त असम्बद्ध नहीं है। सभी की चेतना मूलत: विश्व चेतना से जुड़ी हुई है। यदि ऐसा न होता तो व्यक्ति का मन दूसरे के मन का सद्भाव अथवा दुर्भाव कभी न जान सके। तब मित्रता,

बंधुभाव, निष्ठा, विश्वास, श्रद्धा आदि सद्‌गुण असम्भव ही रहते तथा मानव का मानव से व्यवहार ही असम्भव हो जाता है। जैसे कमरे में बैठे व्यक्ति की दृष्टि सीमित है। मैदान वाले की दृष्टि अधिक विकसित और पहाड़ी की चोटी वाले की दृष्टि बहुत खुल जाती है। उसी प्रकार विश्व चेतना की ओर ज्यों-ज्यों हम विकसित होते जाते हैं त्यों-त्यों हम अधिक से अधिक लोगों के मन के भावों को जानने में समर्थ होते जाते हैं। ऐसी आध्यात्मिक साधना से योगी त्रिकालदर्शी बन जाते हैं तथा भविष्यत् में घटने वाली घटना को पहले से ही जानकर भविष्य-कथन कर सकते हैं।

विश्व चेतना की सिद्धि हेतु तीन साधन—व्यक्तिगत चेतना से विश्व चेतना तक विकसित होना यही जीवन की मोक्ष साधना है। इसके लिए साधन क्या है? मनुष्य यदि अपनी चेतना का विश्लेषण करे तो उसमें चेतना की मुख्य तीन प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं—

(क) ज्ञानात्मक प्रवृत्ति,

(ख) रागात्मक प्रवृत्ति,

(ग) संकल्पात्मक प्रवृत्ति।

हर चेतन प्राणी कुछ न कुछ जान रहा है या सुख-दुःख का अनुभव कर रहा है और कुछ कर्म के लिए संकल्प कर रहा है। इसी के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन बन जाते हैं—

(क) ज्ञानयोग—Know the Perfect पूर्ण को जानो। मनुष्य के अन्दर जिज्ञासा है वह जानना चाहता है। ज्ञानयोग का कथन है ज्ञान साधना में तब तक मत रुको जब तक पूर्ण को न जान लिया जाये।

(ख) भक्तियोग—Feel for the Perfect पूर्ण के लिए हर्ष-विषाद, सुख-दुःख अनुभव करो। अमर वस्तु के वियोग में दुःख मानो और अमर वस्तु के संयोग में सुख मानो—

'हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाना कोय।'
'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।'

हृदय से पाना भक्ति योग है। भक्तियोग हृदयवान एवं भावनाशील लोगों के लिये है।

(ग) कर्मयोग—Act for the Perfect पूर्ण के लिये कर्म करो। हम कर्म करते हैं मरने वाले लोथड़ों के लिये। यदि हम लोक व्यवहार में अपने समस्त कर्तव्यों का पालन भागवत बुद्धि से करते हैं तो लोक व्यवहार भी सुन्दर होगा, कर्म की फांसी हमें संसार के बंधन में डाल नहीं सकेगी तथा कर्म के फूलों से

भगवान् की पूजा भी हो जायेगी। यह निष्काम कर्मयोग नर की सेवा को नारायण की पूजा में रूपान्तरित कर देता है।

गति → क्रिया → कर्म → कर्तव्य → निष्काम कर्म → धर्म → प्रभु प्राप्ति।

4. पांचवीं युक्ति—विश्व का ज्ञान तभी सम्भव है जब वह ज्ञान की प्रक्रिया के अनुकूल हो। ज्ञान की प्रक्रिया में ज्ञाता चाहिये। कुछ ज्ञेय वस्तु चाहिये जिसे ज्ञाता जानना चाहता है। फिर ज्ञाता और ज्ञेय के बीच ज्ञान का सम्बन्ध चाहिये। जब तीनों की प्रकृति एक जैसी हो तभी ज्ञान सम्भव है। जब विश्व बोधगम्य है तभी उसे कोई ज्ञाता जान सकता है तभी यह सिद्ध होता है कि यह ज्ञेय विश्व भी ज्ञान के स्वरूप का ही है। ज्ञान की सम्भावना और विश्व की बोधगम्यता यह सिद्ध करती है कि विश्व भौतिक न होकर चेतनस्वरूप का है। इसलिए हमारी चेतना में समा सकता है। The same spirit sleeps in a stone, dreams in an animal and awaken in man. वही आत्मा जड़ में सोयी हुई है, पशुओं में सपने लेती है वही आत्मा मनुष्यों में जाग उठती है। जड़ पदार्थ के अन्तर्गत भी चेतन सत्ता वर्तमान है तभी न हम जगत् को भौतिक या जड़ होते हुए भी जान लेते हैं। क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय में तालमेल हुए बिना ज्ञान कैसे हो सकता है? अत: निश्चित ही जड़ के अन्दर चेतन तत्त्व समाया हुआ है।

विश्व में एक नैतिक प्रयोजन है (प्रयोजनवाद)। सृष्टि में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है। सृष्टि में सृष्टिकर्ता का महान् प्रयोजन निहित है। बच्चे के जन्म के साथ मां के स्तनों में दूध आ जाता है और बच्चे के दांत आने पर मां का दूध सूख जाता है। मनुष्य को ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते हैं। मनुष्य का त्यागा हुआ वायु वृक्ष का भोजन है। मनुष्य के द्वारा त्यागा हुआ मैला खेत के लिये खाद है। इस तरह सृष्टि के पग-पग पर एक व्यवस्था, एक प्रयोजन स्पष्ट दीखता है।

छठी युक्ति—चिरंतनवाद, शांकरमत—मूल तत्त्व वही है जो चिरंतन है, सर्वव्यापक है। शुद्ध सत्ता चेतन है। वह स्वयं प्रकाश या स्वयं ज्योति है। केवल स्वयं प्रकाश ही अपने को प्रकट कर सकता है। जड़ अपने को कभी प्रकट नहीं कर सकता।

शंकराचार्य ने कहा है—ज्यों-ज्यों हम अपने अस्तित्व पर संदेह करते हैं त्यों-त्यों और भी पुष्ट होता है कि हम अवश्य हैं। क्योंकि संदेह सिद्ध करता है कि कोई संदेह करने वाला अवश्य होना चाहिए।

इसी बात को फ्रांस के देकार्ते ने कहा—

Cogito ERGO Sum

I know, therefore I am

मैं जानता हूं इसलिए मैं अवश्य हूं।

मैं संदेह करता हूं अतः मैं अवश्य हूं।

जितना अधिक मैं अपने अस्तित्व पर संदेह करता जाता हूं उतना ही मेरा अस्तित्व पुष्ट होता जाता है। अतः मानव की चेतन सत्ता ही विश्व की अन्तिम सत्ता है। मैं हूं तभी सच्चा या झूठा ज्ञान प्राप्त होता है। अगर मैं ही नहीं रहूंगा तब कैसे ज्ञान प्राप्त करूंगा।

आस्तिक तथा नास्तिक—भारतीय दर्शन में आस्तिक का अर्थ है वह विचारधारा जो वेदों को अन्तिम प्रमाण मानती है यथा षड्-दर्शन। नास्तिक वह जो वेदों को अन्तिम प्रमाण नहीं मानते—यथा बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन।

रूढार्थ (लोक प्रचलित अर्थ) में आस्तिक का अर्थ है वह व्यक्ति या विचारधारा जो ईश्वर में विश्वास करे। नास्तिक वह माना जाता है जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करे।

अध्यात्मवाद में आस्तिक का अर्थ है जो स्वयं में (आत्मा में) विश्वास करता है।

नास्तिक का अर्थ है जिसमें आत्मविश्वास ही न हो।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं—पुराने धर्म कहते थे नास्तिक वह है जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते। नया धर्म (वेदान्त) कहता है नास्तिक वह है जो स्वयं में विश्वास नहीं करता।

मैं के सिद्ध होते ही परमात्मा भी सिद्ध हो जाता है।

बौद्ध दर्शन—सर्वं क्षणिकम् All is change

शंकराचार्य—यह किसने जाना कि सब कुछ क्षणिक है?

बौद्ध—यह भगवान् बुद्ध ने जाना।

शंकराचार्य—यदि शरीरधारी बुद्ध ने जाना तो वे स्वयं काल से सीमित थे, वे जन्म-मरण वाले थे। उनकी चेतना क्षणिक थी। विश्व की अनादि-अनन्त सत्ता के विषय में वह कैसे जान सकता है, जो अल्पजीवी है। उसके जन्म के पहले के बारे में वह कैसे जान सकता है तथा मृत्यु के उपरान्त का सत्य कैसे जान सकता है।

यदि 30 मील की दौड़ का खेल हो जिसमें 15 खिलाड़ी दौड़ने वाले हैं और निर्णायक महोदय स्वयं पांच मील दौड़कर, हांफकर गिर जाने वाले हैं तो कौन निर्णय करेगा कि कौन जीता, कौन प्रथम आया। निर्णायक को दौड़ के आदि में रहना चाहिये, बीच में भी उपस्थित रहना चाहिये तथा अन्त में भी। अन्यथा निर्णय नहीं हो सकता।

इसी प्रकार सृष्टि की दौड़ खरबों वर्ष पुरानी है और जब तक सृष्टि रहेगी यानी अन्त तक देखने वाला होगा तभी न कोई दावा कर सकता है कि चेतना क्षणिक है।

क्षणिक चेतना वाला अनादि-अनन्त शाश्वत सत्ता को नहीं जान सकता। परम सत्ता को वही जान सकता है जिसे शाश्वत चेतना हो।

यदि शरीरधारी बुद्ध को क्षणिक चेतना का ज्ञान है कि सब कुछ बदलने वाला है तब तो उसका हम कोई भरोसा नहीं कर सकते। हम जितना ऊंचा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उसके लिए उतना ही ऊंचा या पक्का ज्ञाता भी चाहिये। सारा ज्ञान किसी न किसी ज्ञाता का ही साक्ष्य है। ज्ञाता विश्वसनीय नहीं तो उसका जाना हुआ ज्ञान अज्ञान ही है। ज्ञान के अनुपात में ज्ञाता चाहिए। अगर कोई डॉक्टर सूर्य का तापमान थर्मामीटर से मापने चले तो थर्मामीटर सहित डॉक्टर भी पिघल जायेगा। अतः सूर्य की शक्ति मापने के लिए सूर्य से बड़ा शक्तिशाली या उसके समान तेज वाला चाहिये।

ज्ञाता भी विश्वसनीय चाहिये तभी विश्वस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है। कोई कहे अमुक स्थान में बीस पैर वाला दैत्य देखा, पर आंख का डॉक्टरी परीक्षण करने पर पाया गया कि उसकी आंख ही खराब है। इसलिए

यदि ज्ञाता झूठा है तो ज्ञान झूठा

यदि ज्ञाता कच्चा है तो ज्ञान कच्चा

यदि ज्ञाता नश्वर है तो ज्ञान नश्वर

बौद्ध—भगवान् बुद्ध के शरीर ने नहीं उनकी आत्मा ने जाना कि सब कुछ क्षणिक है।

शंकराचार्य—तब बुद्ध आत्मा के रूप में शाश्वत हैं क्षणिक नहीं। तब भी सिद्ध होता है कि क्षणिक के पीछे एक शाश्वत सत्ता है। वही आत्मा या परमात्मा है।

इस पर रामकृष्णदेव एक कथा कहा करते हैं —

एक नमक की पुतली नमक का डण्डा लेकर समुद्र की थाह (गहराई) नापने गई। और वह समुद्र में ही घुल-मिल गई यानी समा गई। जो स्वयं ही समुद्र में विलीन हो गई वह समुद्र की गहराई कैसे बता सकती है?

गई पूतरी नौन की थाह सिन्धु को लेन।
गल वह सिन्धु ह्वै गई, कहे कौन अब बैन।। (बैन-वचन)

क्षणिक की कोई हिम्मत नहीं कि अनन्त की थाह पा सके। चेतन ही चेतन को जानता है। आत्मा ही परमात्मा को जानता है। मैं के आत्मा सिद्ध हो जाने पर

परमात्मा अपने आप सिद्ध हो जाता है। जब नास्तिक कहता है—मैं कहता हूं कि ईश्वर की सत्ता नहीं है। तब विवेकानन्द उससे पूछते हैं—क्या तुम्हारी अपनी सत्ता भी है या नहीं। अपनी सत्ता स्वीकारते ही परमात्मा की सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है। यदि तुम में क्षणिक चेतन है तो तुम्हारा कथन ही गलत है। यदि तुम्हारा मैं शाश्वत चेतन है तब वही शाश्वत चेतन ही आत्मा है या परमात्मा है। तब तुम्हारे उसकी सत्ता से इनकार करने पर भी वह सिद्ध हो रहा है।

पाश्चात्य चेतनवादी दार्शनिकों को पहले आत्मा का विचार वहां के यूनानी दार्शनिकों की विचारधारा में नहीं आया इसलिए थेल्स जल को, तो Heraclites अग्नि को परम सत्य मानते रहे। सर्वप्रथम आत्मा का विचार पाइथोगोरस में प्राप्त होता है। वह ईसा से लगभग 532 वर्ष पूर्व हुआ। अर्थात् वे भगवान् बुद्ध के समकालीन दार्शनिक थे।

संस्कृत के आत्मा शब्द को पाली भाषा में अत्ता एवं अत्तो भी लिखा या बोला जाता है। इसी से ग्रीक (यूनानी) एवं लैटिन भाषा में Auto शब्द बना है जिसका अर्थ भी वही है Self स्वयं, आत्मा, खुद। आत्मा → अत्ता → अत्तो Auto और Auto से ही Automatic आत्मचालित—स्वचालित Autonomous आत्मनामी (स्वतंत्र) Automobile स्वयंचाली, आत्मचाली Autocrat आत्म (अहं) शासी।

पाइथोगोरस को भारतीय पुराण इतिहास में पृथ्वीगुरु नाम से लिखा है। इतिहासकार मानते हैं कि पाइथोगोरस भारत की यात्रा पर आया था तथा भारत से अध्यात्म शिक्षा प्राप्त करके यूनान लौटा था। ज्यामिति में जो Theoram of Pythogoras प्रसिद्ध है, वह भी उसने भारत से सीखी थी क्योंकि पाइथोगोरस से बहुत पहले वही बोधायन के सुल्व सूत्रों में लिखित थी।

पाइथोगोरस के पश्चात् सुकरात (ईसा से 399 वर्ष पहले) ने भी आत्मा की चर्चा की। उसके काल में कुछ भारतीय दार्शनिक यूनान में पहुंच गये थे जिनके साथ सुकरात का आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। सुकरात ने कहा Knowledge is Power ज्ञान ही सबसे बड़ी शक्ति है। उसने भारतीय उपनिषदों के आत्मानां विद्धि के अनुरूप कहा—"Know Thyself' अपने आपको जानो। सुकरात के पश्चात् उसके शिष्य प्लेटो हुए। जो पश्चिम में चैतन्यवाद के महानतम विचारक माने जाते हैं। प्लेटो ने कहा कि चरम सत्य भौतिक प्रकृति का नहीं है, वरन् वह भौतिक विचार की प्रकृति का है। विचार को अंग्रेजी में Idea कहते हैं। उसीसे प्लेटो की विचारधारा का नाम Idealism पड़ गया। इस Idealism शब्द का Ideal (आदर्श) से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह लोगों की मुख टकसाल Idea से Idealism नाम चल पड़ा। प्लेटो कहता है जितने मनुष्य देखते हैं, जानते हैं वे

सब व्यक्तिविशेष हैं जिनके भिन्न-भिन्न नाम एवं रूप हैं। इन सबको मिलाकर हम एक सामान्य मनुष्य का विचार बनाते हैं। वह सामान्य मनुष्य (General man) केवल एक Idea (विचार) ही है। जब हम कहते हैं मनुष्य नश्वर है तब हम किसी व्यक्तिविशेष की बात नहीं कह रहे जो विशेष नामधारी, विशेष रूप वाला, स्थान वाला, कुल वाला व्यक्ति है। Man (मानव) एक Idea जिसे किसी ने देखा-सुना नहीं पर सबने उसका विचार किया है।

Ram is Mortal
Shyam is Mortal } Percept
Mohan is Mortal

Therefore Man is Mortal—Concept

राम, श्याम, मोहन आदि दिखते हैं, Percept हैं। इन्द्रियों से इन्हें जान सकते हैं पर मनुष्य को नहीं। मनुष्य Concept है, विचार शुरू होता है Concept से Idea से।

राम, श्याम, मोहन, सोहन Percept है।

Man या सामान्य मनुष्य Concept है।

Man (Concept) में वे सब मनुष्य सम्मिलित हैं, जो पहले हो चुके हैं। वे भी शामिल हैं जो वर्तमान में हैं और वे भी सम्मिलित हैं, जो कि भविष्य में होंगे। विचार के लिये हम कहते हैं Man is Mortal किन्तु सत्यता यह है कि This Man That Man तो मरता है परन्तु General Man जो विचार है वह नहीं मरता। इसी कारण प्लेटो के दर्शन को Idealism कहा जाता है। अमेरीका के विचारक Emerson ने प्लेटो के यश में लिखा है 'Plato is Philosophy & Philosophy is Plato.' पश्चिम में अन्य महान् चैतन्यवादी दार्शनिक हुए हैं— Berkley, Leibnitz, Kant, Hegal, Fichte, Scheling, Schobenhauel, Bradley, Croce, Gentile, Green, Mactaggart, Royce आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

चैतन्यवाद के मुख्य तीन रूप हैं—

(क) Objective वस्तुनिष्ठ चैतन्यवाद

(ख) Subjective आत्मनिष्ठ चैतन्यवाद

(ग) Absolute Idealism निरपेक्ष चैतन्यवाद

ज्ञानशास्त्र की दृष्टि से Idealism (चैतन्यवाद) के दो रूप माने जाते हैं—

A. Metaphysical idealism (तात्त्विक चैतन्यवाद)

B. Epistemology

वस्तुनिष्ठ चैतन्यवाद—इसका कथन है चेतना वस्तुओं के समान सामने प्रकट सत्ता है। वह हमारे मन पर, कल्पना पर, हमारे व्यक्तिगत चिन्तन पर निर्भर नहीं है। यदि सत्य है और उसका कोई ज्ञाता नहीं है तब भी वह वस्तुनिष्ठ सत्ता Objective Reality है ही। जैसे फूल एक वस्तु है। चाहे कोई देखे न देखे, चाहे किसी की रुचि हो न हो, चाहे किसी की आँख में रोशनी हो या न हो, चाहे देखने में समर्थ हो या न हो, फूल तो फूल ही है। इसे एक वस्तु सत्ता (an objective reality) कहते हैं।

इसी प्रकार चेतना एक Objective Reality (वस्तुनिष्ठ सत्ता) है, वह किसी के जानने, मानने या कल्पना करने पर निर्भर नहीं है। ईश्वर की सत्ता है। कोई जाने न जाने, माने न माने, ईश्वर की सत्ता तो है ही। किसी के मानने या न मानने से तो उसकी सत्ता या अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। उसकी सत्ता तो है ही, चाहे उसे कोई जान सके या नहीं।

प्लेटो वस्तुनिष्ठ चैतन्यवादी है। यह व्यक्ति या वह व्यक्ति राम, मोहन, सोहन, श्याम आदि व्यक्तिविशेष हैं। वे इन्द्रियों से गोचर होने वाले जीव हैं। उनको मिलाकर जो सामान्य मानव का विचार है, वह एक विचार है जो अलग-अलग व्यक्तिगत मानव की अपेक्षा अधिक स्थायी है। वास्तव में 'मानव' ही शाश्वत है, यह मनुष्य या वह मनुष्य शाश्वत नहीं।

प्लेटो के मत में इस मानव को केवल कल्पना मात्र या बुद्धि का खेल नहीं माना जा सकता। वह एक वस्तुनिष्ठ सचाई है। व्यक्तिगत वस्तुओं (Percept) के मिलान से हम सामान्य जाति प्रत्यय (Concept) बनाते हैं। Ram, Shyam, Mohan इन्द्रियगोचर है किन्तु Man एक जाति प्रत्यय है Concept है। कुछ जाति प्रत्यय अधिक व्यापक हैं और कुछ कम हैं। इस प्रकार जाति प्रत्ययों का एक तारतम्य है—कम व्यापक, अधिक व्यापक, और अधिक व्यापक और सर्वव्यापक।

राम, श्याम, मोहन—कम व्यापक

मानव जाति—अधिक व्यापक

प्राणीमात्र—और अधिक व्यापक

पूर्ण कल्याण, पूर्ण श्रेयस् का विचार (Idea of complete goodness) Summum Bonom. (God)

वस्तुनिष्ठ चैतन्यवाद की आलोचना—प्लेटो के अनुसार विश्व का आधार जाति प्रत्यय है। वे ही सत्य हैं। उनके अतिरिक्त कुछ नहीं। प्रश्न है कि जड़ जगत् की उत्पत्ति कहां से हुई। प्लेटो का कथन है कि जड़ पदार्थ जाति प्रत्ययों की

अपूर्ण छाया मात्र है। जड़ और चेतन की व्याख्या संतोषजनक प्रतीत नहीं होती। प्लेटो ने जड़ जगत् को मिथ्या नहीं माना। उसके अनुसार जड़ पदार्थ भी जीवन के आदर्श हो सकते हैं। इससे प्लेटो के दर्शन में द्वैतवाद का दोष आ जाता है। शुद्ध चैतन्यवाद नहीं रहता। प्लेटो के अनुसार सामान्य प्रत्ययों की संख्या अनेक हैं जिनमें एक श्रृंखला है। प्लेटो सभी को सत्य मानते हैं। इस तरह सत्य अनेक हो जायेंगे और एक सत्य की अपेक्षा दूसरा सत्य अधिक व्यापक मान लेने से छोटा सत्य सापेक्ष रह जाता है। वस्तुनिष्ठ सत्ता से नहीं। फिर अनेक प्रत्ययों का सर्वोच्च प्रत्यय का परम कल्याण से क्या सम्बन्ध है? यह भी स्पष्ट नहीं होता।

आत्मनिष्ठ चैतन्यवाद—(Subjective Idealism) इस विचारधारा के अनुसार विश्व की अन्तिम सत्ता चेतना है। पर वह पूर्ण रूप से हमारे अनुभव पर अवलम्बित है। बिना ज्ञाता के ज्ञान हो ही नहीं सकता। इंग्लैण्ड के दार्शनिक Berkley ने अनुभव का विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य को जड़ वस्तु का कभी भी अनुभव नहीं होता। जब भी अनुभव होता है तो कुछ गुणों का। उदाहरणार्थ जब हम खाण्ड (चीनी) की कल्पना करते हैं हमारे ध्यान में उजलापन, मिठास, चूर्णता आदि गुणों का अनुभव होता है। चीनी इन्हीं समूहों का नाम है। अत: जड़ वस्तुयें हमारे मन के अनुभूत गुणों का समूह मात्र ही है। इस तरह जड़ वस्तुओं का अस्तित्व गुणों पर निर्भर है तथा गुणों का अस्तित्व हमारे मन के गुणों पर निर्भर है। यदि अनुभव नहीं तो गुण नहीं और गुण नहीं तो वस्तुयें नहीं। इसलिए व्यक्ति की चेतना ही है जो उसकी अनुभूति में प्रकट होती है। वही विश्व की चरम सत्ता है। अनुभूति से बाहर कोई सत्ता नहीं।

आलोचना—बर्कले ने जड़ पदार्थों को केवल अनुभूत गुणों का समूह माना है। दृश्य जगत् का स्वरूप उसने प्रत्यय वाला माना है। पर सब प्रत्ययों का आधार तो आत्मा है जो स्वयं प्रत्यय नहीं है। बर्कले इसे स्पष्ट नहीं कर सका। आत्मा General Idea नहीं है वरन् वह सबका आधार है। बर्कले ने भिन्न-भिन्न आत्माओं के अतिरिक्त ईश्वर को भी सत्य माना है। पर बर्कले बुद्धिसंगत होने से आत्मा और ईश्वर के सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं कर सका। बर्कले ने केवल अनुभव को ज्ञान का साधन माना। इसी अनुभववाद के आधार पर उसने जड़ वस्तुओं के अस्तित्व का खंडन किया। पर आत्मा के विषय में उसने कहा कि आत्मा प्रत्यय नहीं है तथा अनुभववाद द्वारा गुणों की अनुभूति से आत्मा को नहीं जाना जा सकता।

हम देखते हैं कि बर्कले ने जड़ जगत् के अस्तित्व का खंडन करने के लिये शुद्ध अनुभववाद को आधार माना, पर आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने के लिये उसने अनुभववाद को त्याग दिया। अनुभववाद का तर्कसंगत निष्कर्ष शुद्ध विज्ञानवाद ही हो सकता है जिसके अनुसार व्यक्तिगत प्रत्ययों को छोड़कर अन्य

कोई भी द्रव्य सत्य नहीं। सफेदी, मिठास के गुणों से चीनी का ज्ञान हुआ। इसी तरीके से सफेदी, स्वाद, द्रव्यता से दूध का ज्ञान हुआ, पर इसी विधि से आत्मा का ज्ञान कैसे हो सकता है?

बर्कले कहता है कि सारा ज्ञान किसी ज्ञाता पर निर्भर है। आलोचक पूछता है कि यदि हम फूल के सामने से हट जायें या आँख बंद कर लें तो क्या उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए बर्कले ने ईश्वर की सत्ता को मान लिया तथा कहा जब फूल को कोई व्यक्तिगत रूप में कोई व्यक्तिविशेष नहीं देख रहा है तब ईश्वर देख रहा है। व्यक्तिगत आत्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है। यह भी बर्कले ने स्पष्ट नहीं किया। क्या ईश्वर भी व्यक्तियों के समान देखता है या अनुभव करता है यह भी स्पष्ट नहीं हुआ।

निरपेक्ष चैतन्यवाद—इस मत के अनुसार सृष्टि की अन्तिम सत्ता चेतन है, जो पूर्णतया निरपेक्ष तथा स्वावलम्बी है। किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है। इस विचारधारा का प्रारम्भ काण्ट, फिक्टे से हुआ और पूर्ण विकास ग्रीन, ब्रेडले, हीगेल में हुआ। इसके अनुसार सृष्टि की अन्तिम सत्ता एक है पर वह अनेकता में प्रतिबिम्बित होती है। एक में अनेक और अनेक में एक यानी एकता में अनेकता और अनेकता में एकता। एक ब्रह्म ही जगत् की अनेकता में अपने को प्रकट करता है तथा यह अनेकता उसी एकता में समा जाती है।

हीगेल के मत में विश्व बोधगम्य है। बुद्धि के नियम ही प्रकृति के नियम हैं। ज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के लिए वाद-प्रतिवाद और सम्वाद की प्रक्रिया बताई जो अन्त में पूर्णज्ञान निरपेक्ष सत्य तक पहुंचाती है। परम तत्त्व किसी पर निर्भर नहीं। वह स्वयंभू है। वह विरोध रहित है तथा पूर्ण है।

आलोचना—1. चैतन्यवाद के अन्य रूपों की अपेक्षा निरपेक्ष चैतन्यवाद अधिक तर्कसंगत है।

2. हीगेल के मत में प्रकृति का जड़ रूप माया या भ्रम है। यही विचार भारत में शंकराचार्य आदि का था। प्रश्न है कि इस भ्रम का कारण क्या है?

3. हीगेल ने केवल एक निरपेक्ष बुद्धि को परम तत्त्व स्वीकार किया। निरपेक्ष बुद्धि किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती। यदि बुद्धि देश-काल, पात्र-परिस्थिति का विचार न करे तो नैतिक आचरण हो ही नहीं सकता।

4. यदि विश्व की अन्तिम सत्ता निरपेक्ष बुद्धि ही है और सब आत्मायें उसी एक निरपेक्ष बुद्धि की ही छाया मात्र है, तो नैतिक आचरण के लिये व्यक्तिगत स्वतंत्रता बचती ही नहीं। यदि मनुष्य में संकल्प की स्वाधीनता नहीं है तो उसे नैतिक आचरण के लिये उत्तरदायी नहीं माना जा सकता।

5. हीगेल के मत में सम्पूर्ण विश्व बुद्धिगम्य है तथा विश्व की सम्पूर्ण प्रगति बुद्धि-जगत् में ही होती है। इस तरह हीगेल की दुनिया एक बुद्धि में बंद दुनिया है। ज्ञान के लिये ज्ञाता और ज्ञेय भी चाहिये। यदि सारा विश्व मूलतः मन स्वरूप ही है तो मन के जानने का विषय क्या होगा? क्या मन ही मन को जान रहा है, विश्व है ही नहीं?

विश्व हमारी कल्पना में है। उदाहरणार्थ—जगत् को पहले ही मन रूप मान लिया। ब्रह्माण्ड में चाँद-सितारों को मन रूप मान लिये तो हम उनको जान ही नहीं सकते हैं केवल उसका ज्ञान न होकर मन का ही ज्ञान हो रहा है।

भारतीय चैतन्यवाद का सबसे प्राचीन रूप उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद् वेदों का ही ज्ञान-भाग है। भगवान् वेदव्यास ने ब्रह्मसम्बन्धी वैदिक सूत्रों को ध्यान में रखकर ब्रह्मसूत्र नाम के ग्रंथ की रचना की। यही वेदान्त का आधार ग्रंथ माना जाता है।

भगवान् शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त के रूप में महानतम भाष्य लिखा। उनका वैदिक सूक्त एकोऽहं द्वितीयो नास्ति है। शंकराचार्य के दर्शन को उनके एक श्लोक में संक्षिप्त रूप से कहा जा सकता है—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

जो करोड़ों ग्रंथों में कहा गया है उसे मैं आधे श्लोक में बताता हूँ कि ब्रह्म ही सत्य है और ब्रह्म के सिवा जगत् मिथ्या है और जीव स्वरूप से ब्रह्म ही है और ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं।

आत्मा और परमात्मा दोनों स्वरूप से चेतन ही हैं। दोनों में बड़ा और छोटापन केवल उपाधिभेद ही है जो मिथ्या है। जैसे विष का प्याला और विष की बूंद दोनों स्वरूप से विष ही हैं। जैसे बिन्दु और सिन्धु दोनों स्वरूप से जल ही हैं। जैसे विराट् अग्नि और चिंगारी दोनों स्वरूप से अग्नि ही हैं। उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा स्वरूप से चेतन ही है। चेतना और चेतना में भेद नहीं। प्रकाश और प्रकाश के बीच विभाजक रेखा नहीं लगायी जा सकती। प्रकाश से प्रकाश को अलग नहीं किया जा सकता—

धरती की विभाजक रेखा थोड़ी देर के लिये
रेत की विभाजक रेखा कम थोड़ी देर
पानी की विभाजक रेखा क्षणिक
आकाश की विभाजक रेखा असंभव
प्रकाश की विभाजक रेखा नितान्त असम्भव

आत्मा ही विश्व का आदि प्रकाश, प्रथम प्रकाश, मूल प्रकाश एवं अनादि-प्रकाश है।

वस्तुओं एवं मानवों में अन्तर का कारण—मानव मानव में या वस्तु में अन्तर का कारण है माया (भ्रान्ति, मिथ्याज्ञान, छलावा, इन्द्रजाल, मोह (=अज्ञान)। माया का शाब्दिक अर्थ है—मा=नहीं या=जो अर्थात् जो वास्तव में नहीं है किन्तु भासती है। जैसे मृग मरीचिका, आकाशकुसुम, गंधर्व नगर। माया के दो मुख्य अभिकर्ता हैं—Two agents of Maya.

(क) नाम। नाम कल्पित है, बदलने वाला है। हमारे मैं से भिन्न है।

(ख) रूप। गर्भ में जीवन एक सूक्ष्म शुक्राणु से शुरू होता है, प्रतिक्षण बदलता रहता है। अन्त में श्मशान की धूलि के कण में बदल जाता है। वस्तुओं एवं व्यक्तियों में परस्पर भेद का कारण नाम की भिन्नता एवं रूप की भिन्नता है। इसी के कारण प्रकृति में अनेकता है।

दृष्टान्त—सागर में एक लहर उठी, कोटि-कोटि बुदबुदे बन गये। कोई बुलबुला बड़ा कोई छोटा। कोई मोटा, कोई पतला। कोई चमकदार, कोई साधारण। कोई प्रकाश में, कोई अंधेरे में। कोई लहर के ऊपर, कोई बीच में, कोई नीचे। कोई बुलबुला उत्तर में, कोई दक्षिण में। कोई पूर्व में तो, कोई पश्चिम में। कोई यह, कोई वह। बुलबुलों के नाम भिन्न, रूप भिन्न। बुलबुलों के राग-द्वेष, ईर्ष्या....

चेतना की एक हिलोर से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हो गये। उसी के संकल्प खींच लेने पर प्रलय। नाम-रूप रहते हुए ही जो नाम-रूप से परे अपने आत्मस्वरूप (चेतना) को जान लेता है वह जीवन्मुक्त होकर संसार में विचरण करता है।

शंकर कहते हैं कि बुलबुला बनने से पहले भी जल था। बुलबुला बने हुए भी जल ही है तथा बुलबुला मिट जाने पर भी जल ही होगा। इसलिए जल तीनों काल में सत् है। पर बुलबुला (नाम-रूप के साथ) न अतीत में था और न भविष्य में रहेगा। केवल वर्तमान में दिखता-सा है। जो वस्तु तीनों काल में सत् रहे वही सत् है। जो केवल वर्तमान में सत्-सी दिखती हो, भूत और भविष्य में झूठी हो। वह धोखा (माया) है। इन्द्रजालिक धोखे से रुपया बनाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कसौटी बतायी है। सत् वस्तु का कभी अभाव नहीं हो सकता और असत् सदा टिकी नहीं रह सकती—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16

सत् का कभी अभाव नहीं है, नहीं असत् का होता भाव।
तत्त्वदर्शी ऋषियों ने इन, दोनों का ही किया ठहराव।।

व्यवहार जगत् में नाम-रूप की महत्ता है। इसके बिना सांसारिक व्यवहार सम्पन्न नहीं किये जा सकते। पारमार्थिक दृष्टि से नाम-रूप का कोई महत्त्व नहीं है। जीव जब जगत् में आता है तभी नाम-रूप धारण करता है और संसार में ही नाम रूप छोड़कर चला भी जाता है। इसलिए संसार में नाम-रूप साधक है। क्योंकि संसार में असंख्य जीव हैं। जीवों में मानव भी अरबों की संख्या में हैं। अतः बिना नाम और रूप के संसार का कोई व्यवहार नहीं सध सकता। पर परमार्थ में बाधक है। भेद ज्ञान में सहायक है नाम-रूप और अभेद ज्ञान में नाम-रूप बाधक है। अनेकता की सिद्धि में नाम-रूप सहायक है पर एकता में नाम-रूप बाधक है।

अनेकता में एकता—बुलबुला, तरंग, लहर, फेन, वीचि, ज्वारभाटा, वाष्प, भाप, बादल, घना बादल, जलवृष्टि, हिमवृष्टि, बर्फ, ओला, ओस, नदी, नद, तालाब, बावड़ी, कुआं, झरना, प्रपात, नहर, समुद्र... व्यवहार में नाम भी भिन्न है और रूप भी भिन्न-भिन्न हैं तथा कार्य भी अलग पर तत्त्व से सभी जल हैं। जल को शेष कर दें या घटा दें तो कुछ भी नहीं बचता है। अतः जल तत्त्व तीनों काल में सत् है। नाम-रूप तो वर्तमान में कुछ समय के लिए भासता सा है।

जो तत्त्व को देखता है वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। आत्मज्ञानी पुरुष शोक से पार हो जाता है। जो नाम-रूप को देखता है उसे शोक में संतप्त होना ही पड़ता है उसे क्योंकि नाम-रूप तो नष्ट हो जाता है।

अहंता और ममता, बंधन के दो हेतु हैं—

अहंता यानी False I झूठा मैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार को मैं समझ लेना अहंता है।

झूठे मेरेपन की भावना को ममता कहते हैं। sense of false my यह अहंता पर ही निर्भर करती है। गलत मैं की भावना से गलत मेरेपन की भावना उत्पन्न हो जाती है। मैं शुद्ध तो मेरापन शुद्ध है। मैं में भ्रान्ति तो मेरापन में भ्रान्ति। मेरा मैं का ही परिणाम है और यह दोनों अज्ञान का परिणाम है।

ज्ञानजनित आकर्षण ही प्रेम, भक्ति, मुक्ति का मार्ग है और अज्ञानजनित आकर्षण ही मोह है जो शोक और भय का कारण है। मोह का अर्थ मूर्च्छित हो जाना है। इसमें बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अज्ञानजनित आकर्षण को ही मोह कहते हैं। इसमें बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है। विवेक लुप्त हो जाता है और जीव को जिन वस्तुओं, घटनाओं या व्यक्तियों से भय अथवा शोक नहीं होना चाहिए उन्हीं से भयभीत होने लगता है और उनका शोक करने लगता है। उदाहरणार्थ—अपने नित्य पहनने वाले कोट से भय का कोई कारण नहीं, पर अंधेरे में उसे भूत समझकर डरने लगता है। धुंधले प्रकाश में, अंधेरे

में उसकी नींद खुलने पर भयभीत हो जाता है। पर प्रकाश होने पर भय समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान के होते ही मोह लुप्त हो जाता है और भयमुक्त हो जाता है। नश्वर वस्तुओं, क्षणभंगुर शरीरों और परिवर्तनशील घटनाओं के ही ठीक स्वरूप को न जानने के कारण उसके प्रति मोह हो जाता है। उनके छिन जाने या नष्ट हो जाने की आशंका से उसके नाश से पहले ही भय होने लगता है और उनके छिन जाने के पश्चात् जीव शोक करने लगता है। उदाहरणार्थ—एक धनी साहूकार धन के प्रति मोह के कारण चिंतित एवं भयभीत रहता है कि हाय धन लुट न जाय और धन के लुट जाने पर शोक में छाती पीटने लगता है। पहले भय बाद में शोक। इसी प्रकार मोहग्रस्त माता चिंता करती रहती है कि कहीं मेरे बच्चे पर संकट न आ जाय और नश्वर शरीरों के चले जाने पर शोक में डूब जाती है।

वास्तव में हर वस्तु और हर व्यक्ति का अन्तिम स्वामी तो परमेश्वर ही है। वस्तु तो अल्पकाल के लिए प्रयोगार्थ हमें मिलती है और छिन जाती है। अल्पकाल के लिए वस्तु मेरी है केवल सदुपयोग के लिए, मिल्कीयत के लिए नहीं। झगड़ा सदुपयोग के लिये नहीं मिल्कीयत के लिए होता है। मिल्कीयत ईश्वर की और सदुपयोग हमारे लिये। मेरा कहने से मिल्कीयत की भावना होने से घातक होगी।

द्वे पदे बंधमोक्षाय, निर्ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुः निर्ममेति विमुच्यते।।

दो शब्दों में बंध मोक्ष का निर्णय होता, यह मेरा का भाव अथवा नहीं कुछ मेरा। मेरा मेरा कहने से बंध जाता जन्तु, मेरा कुछ नहीं, मुक्त होने का लक्षण। मेरापन (ममता) स्वार्थ भाव। मेरा कुछ नहीं है (सब कुछ प्रभु का है)—यज्ञार्थ भाव। हवन के मंत्रों में बार-बार दुहराया जाता है—इदं न मम—अर्थात् यह मेरा नहीं है।

अनात्मा को आत्मा समझना अहंता है।

अहंता का शाब्दिक अर्थ है अहंकार।

ममता के कारण मनुष्य स्वार्थी बनता है (यह मेरा पैसा है)

लोभी बनता है (यह मेरा लाभ है)

मोही बनता है (यह मेरा बेटा संजय है)

प्रभु से सदुपयोग मांगें, स्वामित्व नहीं—वस्तुओं एवं व्यक्तियों का सदुपयोग करने के लिये मेरा कहना उचित है, किन्तु स्वामित्व के अर्थ में मेरा कहना अपराध है। सबका स्वामी प्रभु ही है—

सारी प्रभुता प्रभु की, सारा वैभव विभु का
सारा ऐश्वर्य ईश्वर का, सारी माया महेश्वर की

सारी प्रकृति परमेश्वर की, सारी लक्ष्मी नारायण की।

ईशावास्यमिदं सर्वम्—जगत् में जो कुछ है सबका सृष्टा भी प्रभु, सबका स्वामी भी प्रभु, सब में व्याप्त भी प्रभु, सब कुछ प्रभु में व्याप्त।

मानव धन का स्वामी नहीं केवल प्रयोक्ता या न्यासी (Trustee) है—मानव अपने जन्म के समय एक कौड़ी लेकर आता नहीं और मृत्यु के समय एक कौड़ी ले जा सकता नहीं। अतः वह संसार की किसी भी निधि का स्वामी नहीं। प्रभु अतीव कृपा करके, प्रभु उस पर विश्वास Trust करके धन या अन्य निधियों को प्रयोग के लिये देते हैं जिससे व्यक्ति समाज, परिवार, राष्ट्र और विश्व के बड़े-से-बड़े कल्याण के लिए सदुपयोग कर सके इसलिए मानव केवल Trustee है। ईश्वर की दी हुई सम्पत्ति न बेकार जानी चाहिये और न दुरुपयोग होना चाहिये। ईश्वर की सम्पत्ति को अपना कहना विश्वासघात (Breach of trust) है।

अर्थ, व्यर्थ, अनर्थ एवं सार्थ—धर्मविहीनं अर्थमनर्थम् (धर्म के बिना अर्थ अनर्थ है)

यज्ञविहीनं अर्थं व्यर्थम् (समाज कल्याण के बिना अर्थ व्यर्थ है)

धर्मार्पितं धनधान्यं धन्यम्।

यज्ञार्पितं हि द्रव्यं दिव्यम्।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा—भगवान् दो बार हंसते हैं—

(क) जब एक डॉ. रोगी की नाड़ी देखने के पश्चात् गर्व से कहता है अब आप चिन्ता न करें मैं इसको बचा लूंगा। अहंता का दोष है, तब भगवान् हंसते हैं। अरे डॉ.! जब तुम्हारे प्राण निकलने लगे तो स्वयं को बचा लेना। वास्तव में डॉ. तो केवल treatment करता है Cure तो भगवान् की कृपा पर निर्भर है।

(ख) जब दो भाई हाथ में रस्सी लेकर जमीन बांटते हैं और कहते हैं यह तेरी है और यह मेरी।

अपनी तन की मिट्टी तो ढो नहीं सकता फिर और बोझ धरती की मिट्टी का बांध रहा है (या धरती का बोझा बांधने चला)। अतः अपने पास जो बोझा है उसको तो पहले संभाल।

शंकराचार्य के विषय में लोगों को भ्रान्ति है कि वे जगत् को पूर्णतः मिथ्या मानते हैं। वास्तव में वे सत्ता के स्तरों का तारतम्य निम्न प्रकार से स्पष्ट करते हैं।

सत्ता के तीन स्तर

प्रातिभासिक सत्ता—जिसका केवल आभास होता है वास्तविक नहीं। जैसे कि स्वप्नलोक, शुक्ति में मोती, मरुभूमि में जल, रज्जु में सर्प। स्वप्नलोक पूर्णतः

कल्पित है और रज्जु में सर्प समझने में रज्जु की सत्ता है पर उसमें सर्प की भ्रान्ति होती है।

व्यावहारिक सत्ता—जगत् एक व्यावहारिक सत्ता है जो संसार के कर्तव्यों के निर्वाह तक के लिए सत् मान लेने से काम चल सकता है पर उसे अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता। क्योंकि एक समय था यह जगत् नहीं था। एक समय है यह है, एक समय होगा जब पुनः नहीं होगा। अतः जगत् को जगत् के व्यवहार के लिए सत् तथा जीवन के परम लक्ष्य की दृष्टि से असत्य मानना चाहिए।

पारमार्थिक सत्ता—जीवन का परम पुरुषार्थ एवं परम अर्थ पूर्णत्व की प्राप्ति, अमरत्व की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति है। वास्तव में सत्य है ही वही जिसकी सत्ता का कभी नाश न हो सके। ऐसी पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म या आत्मा ही है अन्य कुछ नहीं।

विवर्तवाद—जगत् वास्तव में उसी प्रकार ब्रह्म पर आश्रित है जिस प्रकार सर्प की प्रतीति रज्जु की सत्ता पर आश्रित है। जो वस्तु स्वयं अपनी सत्ता के बल पर है उसे वर्तमान कहते हैं। जो वस्तु स्वयं अपनी सत्ता पर नहीं दूसरे की सत्ता पर टिकी है, उसे विवर्त मानते हैं। विवर्त एक प्रकार का अतात्त्विक परिवर्तन Unreal Change है जैसे रज्जु में सर्प दिखने पर रज्जु वास्तव में सर्प में बदल कर सर्प नहीं हो गयी। उसमें केवल प्रतीति हो गयी। विवर्त जादूगर की जादूगरी जैसा है। इसी विवर्त के द्वारा ही ब्रह्म में जगत् की प्रतीति हो रही है। जल में बिन्दु, तरंग, फेन आदि की प्रतीति होती है। इसे ही विवर्तवाद कहा जाता है।

तात्त्विक परिवर्तन विवर्त से भिन्न है। तत्त्व में परिवर्तन हो जाने को विवर्त नहीं कहकर विकार कहते हैं। जैसे दूध से दही बनना। इसमें दूध दही के रूप में परिवर्तित हो जाता है। पुनः दही का दूध बनना सम्भव नहीं।

वेदान्त किसी भी वस्तु का निषेध कर, खण्डन कर उसको शाश्वत जीवन प्रदान करता है। इसलिए वेदान्ती अत्यन्त सहृदय होता है। बौद्धों के यहां जगत् शून्य का विवर्त है। अतः जगत् का मूल शून्य और जगत् के नष्ट होने पर शून्य बचता है। अतः बौद्धों के यहां जगत् के नष्ट होने पर शून्य बचता है। पर वेदान्त जगत् के मूल में, अधिष्ठान में सत् (ब्रह्म) को मानता है। अतः जगत् के नाश से ब्रह्म की सत्ता शेष रहती है। जगत् कार्य रूप से मिथ्या, असत् पर कारण रूप से सत् है। समुद्र तरंग रूप से मिथ्या पर जल रूप से सत्य है। तरंगमाला को मृत्यु के भय से मुक्त करने के लिए कहते हैं तरंगमाला! तू कार्य रूप से असत्, पर उपादान कारण जल के रूप में सत्य है। जल ही तेरा जीवन, तेरा वास्तविक स्वरूप है। तू अपने को मूल रूप से जल मान और अपने को दुःख से मुक्त मान।

कुछ समय के सत्संग में वेदान्त मनुष्य को अमर जीवन प्रदान करता है। जीव के भीतर के ब्रह्म को जगाना, मानव के भीतर के भगवान् को जगाना, नर के भीतर नारायण को जगाना वेदान्त का उद्देश्य रहा है। ईश्वर कोई सातवें आसमान पर न होकर हमारे भीतर ही समाया हुआ है—

सब घट मेरा साँईंया सूनी सेज न कोय,
बलिहारी वा घट की जा घट प्रकट होय।

उसी को प्रकट करना, जगाना, जानना, उसी का लाभ प्राप्त करना ही सच्चा स्वराज्य है। सच्चा स्वास्थ्य है, सच्ची स्वतंत्रता है। अपनी आत्मा के अलावा किसी अन्य का दास बनने में गुलामी है। आत्मज्ञान एवं आत्मलाभ में ही मुक्ति है। वेद कहता है, 'अयमात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ही ब्रह्म है। अतः तुम पंचभूत के पुतले मात्र नहीं हो। तुम शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आत्मा हो। तुम भेड़ नहीं शेर हो। तुम दुर्बल नहीं बली हो। तुम पापी नहीं निष्पाप हो।

शंकर को मायावादी कहना सत्य का गला घोंटना है। शंकर ने माया को माया कहकर उसको त्यागने तथा ब्रह्म को प्राप्त करने का आदेश दिया है। शंकर माया के नहीं ब्रह्म के पुजारी हैं। अतः ब्रह्मवादी हैं।

बौद्धों का योगाचार्य मत—बौद्धों के योगाचार्य के मत में भी चेतना एक विज्ञान प्रवाह stream of consciousness है। चेतना के सिवा किसी वस्तु की सत्ता नहीं। इस मत को विज्ञानवाद भी कहा जाता है। यह मत शंकराचार्य के मत के बहुत निकट है। पर जहां शंकराचार्य आत्मा या ब्रह्म शब्द का प्रयोग करते हैं वहां योगाचार्य मत के बौद्ध इस विषय में मौन हैं।

आलोचना—(1) योगाचार्य मत के अनुसार बाह्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है। यह वास्तव में मन का ही प्रत्यय Concept है। यदि बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व ही नहीं तो उनकी प्रतीति मन में कैसे होती है?

(2) योगाचार्य मत में वस्तु और उसका ज्ञान दो नहीं एक ही हैं। पर यथार्थवादी मानते हैं वस्तु ज्ञान से भिन्न है।

(3) योगाचार्य मत में बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व ही नहीं है। यदि यह सच है तो हमें दो प्रकार की चेतनाओं में भेद करना असम्भव हो जायेगा। घड़े को देखकर घट ज्ञान, पट को देखकर पट ज्ञान होता है।

(4) शांकर मत चैतन्यवाद का पूर्ण विकसित एवं तर्कसंगत रूप है। पर यह स्पष्ट नहीं होता कि अज्ञान की उत्पत्ति कहां से और कैसे होती है?

(5) सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या भी स्पष्ट नहीं होती।

(6) चैतन्यवाद विश्व में एक प्रयोजन या उद्देश्य को मानता है। यह बुद्धि को संतुष्ट करता है और आधुनिक वैज्ञानिक भी इस ओर झुक रहे हैं।

(7) पर जगत् को मिथ्या या माया या भ्रम कहना युक्तिसंगत नहीं है।

(8) मन बिना शरीर के पाया नहीं जाता और बिना मन के चेतना सम्भव प्रतीत नहीं होती। तब एक खुला प्रश्न बच जाता है क्या अशरीरी चेतना का अस्तित्व है? भारतीय तत्त्वज्ञानियों का उत्तर है—'हां'।

(9) यदि विश्व बुद्धिगम्य है तो सभी पदार्थों में बुद्धि निहित मिलनी चाहिए। पर यथार्थ में अनेक पदार्थों में बुद्धि या चेतना नहीं है।

(10) ग्रीन आदि प्रयोजनवादियों का विचार है कि विश्व की व्यवस्था के लिये चेतन आत्मा आवश्यक है। इससे द्वैत का स्थान बन जाता है। एक जड़ जगत् और उसमें व्यवस्था करने वाली चेतन आत्मा।

(11) यदि जड़ जगत् भी मूलतः चेतन ही है तो ज्ञान की सम्भावना नहीं बचती। ज्ञाता के लिए ज्ञेय उससे भिन्न होना चाहिए।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

ऋग्, 10/191/2

हे मनुष्यो! जैसे सनातन से विद्यमान, दिव्य शक्तियों से सम्पन्न सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भाव से, मानो प्रेम से, अपने-अपने कार्य को करते हैं; ऐसे ही तुम भी समष्टि-भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त होओ, ऐकमत्य से रहो और परस्पर सद्भाव से बरतो।

क्या भगवान् शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध थे?

(क) कई आलोचक शंकराचार्य पर आरोप लगाते हैं कि वे प्रच्छन्न बौद्ध थे। क्योंकि उन्होंने बौद्धों के समान जगत् को मिथ्या माना। यह आरोप कई आचार्यों ने, द्वैत और त्रेतवादी दार्शनिकों ने भी लगाया है।

(ख) कई आलोचक उन्हें मायावादी कहकर उनकी निन्दा करते हैं।

(ग) कई मध्यकालीन एवं आधुनिक आलोचक यह आरोप लगाते हैं कि उनके जगत् विचार और मायावाद के कारण व्यक्ति की कर्मण्यता का नाश हुआ। समाज की अपार क्षति हुई तथा देश पराधीन हुआ है।

(घ) यह भी आलोचना कि जब जगत् ही मिथ्या है तब सारे कर्म अच्छाई-बुराई भी मिथ्या ही हैं। तब सारा इतिहास मिथ्या है और इतिहास निर्माता महापुरुष एवं अवतारी पुरुष भी मिथ्या ही हैं। तब बौद्ध एवं वेदान्त का भेद भी मिथ्या है। खण्डन-मण्डन शास्त्रार्थ भी मिथ्या ही है। इस प्रकार जगत् के मिथ्या हो जाने से मानव भी निरर्थक एवं मिथ्या रह जाता है।

वास्तव में इन आरोपों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि शंकराचार्य पर यह आरोप एवं आक्षेप भी अतिचार एवं मिथ्या ही हैं—

शंकराचार्य के दर्शन को परम्परा का बल प्राप्त है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों की ही व्याख्या की है, नया मतवाद स्थापित नहीं किया।

वेदों में वेदान्त का मूल निहित है—

'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।'

(शुक्लयजुर्वेदीय ईशावास्योपनिषद्)

हे पूषन। सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वर का श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्र से ढका हुआ है, आपके भक्तिरूप सत्यधर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझको अपना दर्शन कराने के लिए उस आवरण को आप हटा लीजिए।

अहं त्वं असि त्वं वाऽहमस्मि।

मैं तुम बन जाऊं, तुम मैं बन जाओ....मेरी प्रार्थना और वरदान सफल हो जाय।

गीता में सत् की कसौटी—

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में एकत्र 18 अक्षौहिणी सेना, उनके शरीर, उनके महासमर, रक्तपात आदि सभी असत् हैं क्योंकि एक समय था जब वे नहीं थे। मध्य में थे। पुनः कुछ काल बाद नहीं रहे। जिसकी सत्ता त्रिकाल में नहीं है केवल मध्य में रहती है, उसे शंकराचार्य सत्य नहीं मानते। जो त्रिकाल अबाधित सत्ता है, उसे ही सत्य स्वीकारा है।

गीता में माया की स्थापना—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 7/14

वेदव्यास द्वारा श्रीमद्भागवत आदि में माया की स्थापना की गयी है।

गौडपादाचार्य द्वारा जगत् की प्रतीति का निरूपण किया गया है।

शंकराचार्य द्वारा सत्ता के तीन स्तरों का वर्णन। जगत् की व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक नहीं।

आधुनिक विज्ञान भी जगत् को सापेक्ष सत् मानता है, निरपेक्ष सत् नहीं।

परमाणु विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि जो वस्तु जैसे दिखाई देती है वैसी वास्तव में नहीं। चट्टान का टुकड़ा स्थिर प्रतीत होता है किन्तु उसके भी परमाणुओं की बड़ी तीव्र गति चल रही है।

प्रच्छन्नता का अर्थ है वास्तव में कुछ और होते हुए धोखे का वेश धारण करते हुए किसी को ठगने का प्रयास करना। प्रच्छन्न बौद्ध का अर्थ हुआ वैसा व्यक्ति जो वास्तव में हृदय से बौद्ध हो किन्तु बौद्ध धर्म के हित साधन के लिये चालाकी से संन्यासी का वेश धारण कर लिया है। रावण प्रच्छन्न साधु बन गया था। कर्ण प्रच्छन्न ब्राह्मण बनकर कुछ समय के लिए रहा। वैसे ही कुमारिल भट्ट प्रच्छन्न बौद्ध, बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिये बने। शंकराचार्य ने बौद्धों का कुछ भी हित साधन नहीं किया बल्कि बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्हें देश से भी निष्कासित कर दिया।

यदि शंकराचार्य बौद्ध भिक्षु बनकर बौद्धों के हित के विरुद्ध गुप्त रूप में कार्य करते तो बौद्ध लोग उन्हें प्रच्छन्न कह सकते थे। किन्तु शंकराचार्य ने ऐसा काम नहीं किया और बौद्धों ने प्रच्छन्न बौद्ध कहा भी नहीं। वे तो उन्हें अपना सबसे बड़ा प्रकट शत्रु एवं विरोधी मानते रहे।

शंकराचार्य न प्रकट बौद्ध थे न प्रच्छन्न। वे तो प्रकट संन्यासी थे जो खुले आम चुनौती देकर शास्त्रार्थ में विरोधियों को पराजित कर अपने विचारबल से ही दिग्विजय करने में समर्थ थे। अतः उन्हें प्रच्छन्नता की कभी आवश्यकता ही नहीं थी।

शेर को डरने की आवश्यकता नहीं। प्रच्छन्न वेश धारण करने की आवश्यकता नहीं। प्रच्छन्नता सोद्देश्य होती है निरुद्देश्य नहीं। ठग विद्या करने वाला खुले आम प्रकट रूप में अपनी बात कहने और अपना उद्देश्य पूरा करने में असमर्थ अथवा भयभीत रहता है। इसलिए वह चालाकी से धोखाधड़ी का वेश धारण कर प्रच्छन्न रूप में अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। शंकराचार्य जैसे विश्वविख्यात महानतम दार्शनिक पर ऐसा आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है।

किसी भी विचार का तार्किक परिणाम विचारक के अपने जीवन की कृति से आंका जाता है। यदि शंकराचार्य का दर्शन मानव को अकर्मण्य बनाता है तो उसका सबसे प्रथम परिणाम तो द्रष्टा के निजी जीवन पर होना चाहिये। किन्तु शंकराचार्य के समान कर्मठ व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में खोजने पर भी दूसरा नहीं मिल सकता। यदि उनका दर्शन उन्हें ही अकर्मण्य नहीं बना सका तो अन्यों को, दर्शन के अध्येताओं को अकर्मण्य क्योंकर बनायेगा?

शंकराचार्य को मायावादी कहना भी अन्याय है। भौतिकवादी भूत को परम सत् मानता है। अध्यात्मवादी आत्मा को परम सत् मानता है। इसी तरह जो माया को परम सत् माने वही मायावादी होगा। किन्तु शंकराचार्य माया को नितान्त मिथ्या मानते हैं। अतः वे मायावादी नहीं ब्रह्मवादी थे।

शंकराचार्य माया का निराकरण कर जीवों को ब्रह्मलाभ कराने के लिये दर्शन प्रस्तुत करते हैं। जीवों के तीन ताप, पंचक्लेशों का निदान करते हुए उन्होंने मायारूपी उपाधि-व्याधि को दर्शाया है। जैसे डॉक्टर रोग का निदान करके रोग के निराकरण के लिये उपचार करता है तो उसे रोगवादी नहीं कहा जायेगा और उसके औषधालय को रोगालय कहना अनुचित होगा।

शंकराचार्य जैसा समाज सेवक, धर्मसंस्कारक, राष्ट्रनिर्माता भी अन्य कोई नहीं हुआ।

जहां छोटे-छोटे राजा-रजवाड़े चप्पा-चप्पा भूमि के लिये परस्पर रक्तपात करते हुए देश के हजारों टुकड़े बनाते रहे, वहां शंकराचार्य जैसे निर्लिप्त महापुरुष ने भारत को एक सुदृढ़ सांस्कृतिक एकता में निबद्ध किया। राष्ट्र के महानतम निर्माताओं में वे सबसे शिरोमणि गिने जायेंगे।

पश्चिम में राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनते रहे इसलिए सारे यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और धर्म एक होते हुए भी बीस राष्ट्र बन गये। इसकी उलट भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई का नाम है। इसलिए राज्य अनेक और राजे देशी और विदेशी होने पर भी भारत अभी तक एक बना रहा। यह सब शंकराचार्य की ही कृपा है।

पारमार्थिक स्तर पर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लोकसंग्रह के लिये व्यावहारिक स्तर पर निर्लिप्त भाव से कर्म करने की प्रेरणा एवं जीवन का प्रत्यक्ष उदाहरण शंकराचार्य ने ही प्रस्तुत किया है। कर्तव्य की दृष्टि से जगत् को व्यावहारिक सत् मानकर उत्तम से उत्तम कर्म करना चाहिए। किन्तु कर्म निर्लिप्त भाव से करने के लिये निरन्तर स्मरण रखना चाहिए कि जगत् क्षणभंगुर, अनित्य है। इसलिए इसके मोहपाश में फंसना उचित नहीं है। मनुष्य प्राय: जो कर्म करता है, जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में है उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति उसका ममता भाव बन जाता है। जिससे उसका अपना ही अहित हो जाता है। जगत् का हित करते हुए यदि अपना ही अहित हो गया तो यह घाटे का ही सौदा है। दूसरे की अल्पसेवा हुई और स्वयं 84 लाख योनियों के फेर में पड़ गया। यह बुद्धिमत्ता नहीं। फिर वस्तुओं, व्यक्तियों से मोह हो जाने के कारण जगत् का भी हित न होकर अहित होने लगता है।

सम्राट् भूमि के टुकड़े पर शासन करता है। उसे भूमि से मोह होता है, वह भूमि विस्तार और राज्य विजय के लिये संघर्ष, रक्तपात करता है। परिव्राजक, अलिप्त होकर निर्मल भाव से विश्व की सेवा करता है तथा भूमि पर राज्य न करके मानवों के हृदयों पर राज्य करने लगता है। जहां सम्राटों की सेनाएं हार जाती हैं, वहां परिव्राजक बिना सेना के केवल दण्ड-कमण्डलु लेकर एक अलौकिक दिग्विजय कर लेता है।

परिव्राजक हृदयों पर शासन करने के कारण वहां जनता नि:स्वार्थ भाव से, नि:शुल्क सेवा समर्पित करती है। सेवा ही नहीं स्वयं उपहार के रूप में फल, मिठाई आदि लाते हैं और उसी में एक कण प्रसाद के रूप में पाकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं। वहीं राजा के यहां सेवा मोटा-मोटा वेतन लेकर करते हैं। वेतन में थोड़ा विलम्ब हो गया या उन्हें अहसास हुआ कि वेतन कार्य की अपेक्षा कम दिया जा रहा है तो विद्रोह, बगावत कर देते हैं। जबकि परिव्राजक को नि:शुल्क श्रम यानी तन, मन और धन तीनों समर्पित करते हैं।

संसारी लोग छोटी-छोटी तुच्छ कामनाओं में फंसे रहते हैं और कामनापूर्ति के लिए इस विषयों के संसार को सत् मान लेते हैं। किन्तु निष्काम कर्मयोगी अपने समस्त कर्म प्रभु की प्रीति के लिये करता है, अपनी या किसी अन्य की कामनापूर्ति के लिए नहीं। इसलिए कामना की अपूर्ति होने पर भी न दु:खी होता

है, न कर्म छोड़ता है और न परिस्थिति की भयंकरता से भयभीत होता है। स्वामी शरणानन्दजी का कथन है—

जो चाहते हैं सो होता नहीं,
जो होता है सो भाता नहीं,
जो भाता है सो रहता नहीं।

चाहने और होने के बीच की खाई से दु:ख होता है। होने और भाने के बीच अन्तर होने से भी दु:ख होता है। भाने वाली वस्तु के प्रति मोह हो जाता है इसलिए उसके नाश या देहांत से पुनः दु:ख होता है। इसलिए निष्काम भाव एवं आचार होना दु:ख से बचने का सबसे उत्तम उपाय है। जब तक संसार को सत् मानते रहेंगे तब तक उसकी चाह बनी ही रहेगी। जब उसकी नश्वरता एवं असत्यता का बोध हो जायेगा तब उसके प्रति वितृष्णा एवं वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। भर्तृहरि सारा राज्य त्यागकर वन की ओर जा रहे थे। उन्हें एक स्थान पर एक गोल अशर्फी चमकती हुई दिखाई दी। उनके मन में विचार आया कि जंगल में यह काम आयेगी। ज्योंही लपककर हाथ बढ़ाया तो ज्ञात हुआ वह अशर्फी नहीं किसी के मुख से थूका हुआ बलगम है। जो धूप में चमक रहा था। जब आदमी को बोध हो जायेगा कि संसार की वस्तुएं तृण या थूक के समान त्याज्य हैं तो वह ध्येयमार्ग की ओर बढ़ने वाला कर्मवीर संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन से भी न विचलित होगा और न मोह बंधन में बंधेगा। ऐसे कर्मयोगी की कर्मशक्ति संसार की मोह-माया से मुक्त होकर और अधिक चमक उठेगी। संसार की अनित्यता से मुक्त होने का संदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। 9/33, गीता**—अर्थात् इस अनित्य सुखहीन संसार को प्राप्त कर इसमें न फंसते हुए मुझ पूर्ण पुरुषोत्तम, परब्रह्म परमेश्वर की आराधना कर। यह संतोष का विषय है कि आलोचकों ने जगत् को अनित्य कहने वाले भगवान् कृष्ण को भी प्रच्छन्न बौद्ध नहीं कह दिया।

शंकराचार्य का संसार के प्रति वैराग्य का गलत अर्थ लगाने के कारण मध्यकाल के संतों ने परलोकवाद, जगत् मिथ्यात्व आदि का जैसा प्रचार किया उसके कारण समाज की कर्मण्यता को क्षति अवश्य पहुंची। किन्तु औषधि का दुरुपयोग करने में दोष रोगी का ही है वैद्य या उसके निर्माता का नहीं।

मलूकदास कहते हैं—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

कबीर कहते हैं—

रूखी सूखी खाय कर ठण्डा पानी पीव।
देख परायी चूपड़ी मत ललचाओ जीव।।

संतोष की अशुद्ध व्याख्या से भी राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षा-विजिगीषा मर जाती है। शंकराचार्य का मन्तव्य ऐसा कभी नहीं था। उन्होंने स्वयं सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में दिग्विजय करके दिखाया और राष्ट्र को चिरंतनजीवी बनाने के लिये सांस्कृतिक एकता का सम्पादन किया। वैराग्य और संतोष में यह विवेकपालन करना चाहिये कि संतोष हमें होना चाहिये जो कुछ हमारे पास है। परन्तु उसमें कभी नहीं होना चाहिये जो कुछ हम हैं। We should be contented what we have, but not what we are. अर्थात् वस्तुओं में संतोष होना चाहिये किन्तु आत्मविकास में कभी संतोष नहीं होना चाहिये। जीवनभर अधिक से अधिक आध्यात्मिक विकास करना चाहिये। शंकराचार्य के दर्शन का उचित पालन करने से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानव मात्र का बड़े से बड़ा कल्याण साधन हो सकता है।

पेट के कीड़े और आँख की गर्मी दूर करने के लिये औषधि बनाई गई। पर हमने आँख की औषधि पेट में और पेट की औषधि आँख में डाल ली और पेट और आँख की अधिक क्षति की तो यह दोष औषधि का नहीं औषधि के प्रयोग करने वाला का है। वैसे 'जगत् मिथ्या है' कि का प्रतिपादन करके बताया इसमें फंसो नहीं, निर्लिप्त और निष्काम भाव से इसके प्रति कर्म करो। इससे आसक्त मत होओ। क्योंकि यह मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। उसी की प्राप्ति के लिये कर्म करो। पर हमने उलटा किया जगत् को सत्य मान लिया है और भगवान् को मिथ्या। जिसके कारण आज समाज में बुराइयां आ गई हैं।

संसार में प्रत्येक जीव जो-जो चाहते हैं वैसा-वैसा हो नहीं सकता। संसार में सभी की अपनी-अपनी चाहना है। उसके अनुसार संसार में सबकी चाहना पूर्ति नहीं हो सकती है। जैसे कि मैं चाहता हूं दर्शन का पंडित बनना, पर ऐसा नहीं हो पाता है। और जो होता है उससे हम संतुष्ट नहीं होते। वह हमारे मन के अनुकूल नहीं होने के कारण उससे संतुष्ट नहीं रहते हैं। और जो मन के अनुकूल होता है वह अधिक देर तक टिकता नहीं। इस तरह हम तीनों स्थितियों में संतुष्ट नहीं रह पाते हैं कि जो चाहते हैं सो होता नहीं। जो होता है जो भाता नहीं। जो भाता है सो टिकता नहीं।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। यजु., 36/18

मैं मनुष्य क्या, सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं! हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखे!

जीवन रहस्य : प्रथम

हम सब जी रहे हैं। किन्तु जीवन तत्त्व क्या है? इस पर प्राय: विचार नहीं करते। जीवन को जीना और जीवन के रहस्य को समझना, दो अलग-अलग बातें हैं। वैसे ही जैसे घर में रेडियो रखना और रेडियो का विज्ञान जानना। जीवन तत्त्व अमीबा से लेकर मनुष्य तक सबमें क्रीडा कर रहा है। पर जीवन तत्त्व की लीला का रहस्य मानव ही समझ सकता है, अन्य कोई जीव नहीं। मनुष्य में भी अधिकांश जीवन का बोझा या साँसों का भार तो ढो रहे हैं पर जीवन तत्त्व को समझने का प्रयास नहीं करते।

गीता के सातवें अध्याय में भगवान् ने कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत:।। 7/3, गीता

अर्थात् हजारों मनुष्यों में कोई एक विरला ही सिद्धि के लिये (अर्थात् जीवन रहस्य के उद्घाटन के लिये) यत्न करता है और उन यत्न करने वाले हजारों में से भी कोई विरला एक ही मुझे तत्त्व से जान सकता है। अर्थात् मुझ जीवन तत्त्व के रहस्य को समझ सकता है।

जीवन तत्त्व इतना गहन है कि हजार × हजार अर्थात् दस लाख में एक व्यक्ति ही जीवन तत्त्व का रहस्य समझ सकता है।

सृष्टि में जीवन तत्त्व आया कहां से? इस विषय में भिन्न-भिन्न विज्ञान एवं दर्शन अधूरा उत्तर देने का प्रयास करते हैं। भौतिकवादी विज्ञान (भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, नृतत्त्व विज्ञान, वनस्पति) तथा भौतिकवादी दर्शन (जड़वादी चार्वाक दर्शन Gross materialism, Scientific materialism, dialetical materialism आदि) जीवन तत्त्व का मूल स्रोत किसी भौतिक तत्त्व से ही मानते हैं। वे तर्क देते हैं कि जैसे जल और मिट्टी के संयोग से या गोबर के सड़ने से अपने आप कीटाणु, जीवाणु पैदा हो जाते हैं उसी प्रकार ये जीवन तत्त्व भौतिकता से जन्म लेकर धीरे-धीरे विकसित होते हुए मनुष्य के रूप तक पहुंचा है। उनका अनुमान है कि धरती जब जलते हुए लावे के रूप में सूर्य से पृथक् हुई तो उसके ताप से धुआं

आकाश की ओर उठा और बादल बनकर पानी के रूप में बरसा। फिर मिट्टी और पानी के संयोग से Germination प्रारम्भ हुआ। डार्विन के अनुसार पहले जलचर बने (मछली आदि)। फिर थलचर और एक शाखा पंखों वाली पक्षियों से नभचर हो गये। धीरे-धीरे पशु विकसित होते हुए बन्दर और लंगूर तक पहुंच गये। लंगूरों में चिंपांजी नाम का लंगूर सबसे अधिक बुद्धिमान् हुआ और उसके पश्चात् मनुष्य का विकास हुआ।

वास्तव में भौतिकता के हठ के कारण अधिकांश वैज्ञानिक और विचारक जीवन को मृण्मय (मिट्टीवाला) तत्त्व मानते रहे हैं। जबकि जीवन तत्त्व मृण्मय न होकर चिन्मय (चेतनावाला) है। यदि मिट्टी और पानी के संयोग से जीवन का अंकुर पैदा हो सकता है तो आज भी कीटाणुरहित (Disinfect) जल को कीटाणुरहित पात्र में प्रशीतक यंत्र (Refrigerator) में रख दिया जाए तो उसमें कोई जीवाणु पैदा नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार गोबर को कीटाणु रहित करके वायु रहित शीशी में रखा जाए तो कभी कीटाणु पैदा नहीं होंगे। जैसे बीज सूक्ष्म होने से सबके ध्यान में आता नहीं और फसल (खेती) बड़ी होने पर सबके ध्यान में आ गया। उसी प्रकार गोबर या मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणु खाली आँख से दिखाई नहीं देते और बड़े होने पर दिखाई देने लग जाते हैं। यदि सूक्ष्म जीवाणु के बीजों को औषधि द्वारा हटा दिया जाए तो गोबर या मिट्टी में से अपने आप जीवन के अंकुर पैदा नहीं हो सकते। उसी प्रकार जल और वायुमंडल में अनेक जीवाणु रहते हैं। जल को शुद्ध कर लेने और वायुमण्डल को शुद्ध कर लेने से अंकुर पैदा नहीं होगा। दैनिक प्रयोग की वस्तुओं में फल का रस या शर्बत एक दिन में जीवाणु ग्रस्त हो जाने से खराब हो जाता है। उसी फल के रस या शर्बत को बन्द बोतल में कीटाणुनाशक औषधि के साथ वर्षों तक रखा जा सकता है। इस प्रकार जीवन के बीज से ही जीवन का अंकुर पैदा होता है। निर्जीव व जड़ वस्तु से जीवन पैदा नहीं हो सकता। Life issues from life and never from nonlife. We cannot get anything out of nothing. यदि जड़ पत्थर में जीवन तत्त्व है नहीं तो उसमें से हम जीवन या चेतना को प्रकट नहीं कर सकते। सबसे बड़ा प्रश्न है कि हममें जीवन और चैतन्य है। जड़ पदार्थ जीवन शून्य और चेतना शून्य है। हम कैसे मानें हमारा जीवन और चेतना उस तत्त्व से प्राप्त हुए हैं जिसमें स्वयं जीवन और चेतना है ही नहीं। निश्चय ही हमारा जीवन और चेतना किसी विश्वव्यापी चेतना का अंश है। मिट्टी+पानी – जीवाणु (disinfection) = No life. जीवन स्वतंत्र तत्त्व है। मिट्टी, पानी और गर्मी केवल उसका विकास एवं रहने योग्य वातावरण प्रदान कर सकते हैं। उसे पैदा नहीं कर सकते।

जीवन तत्त्व के अध्ययन को हम जीवन के तीन स्तरों में बांट सकते हैं—

(क) जीवन का प्राथमिक बीज—बीजाणु, जीवाणु। सबसे छोटा जीव कोष अमीबा या protoplasm

(ख) विकसित देह में आश्रित जीवन जैसे—पशु, पक्षी व मनुष्य आदि।

(ग) देहातीत—अर्थात् देह के आश्रय से मुक्त, शाश्वत जीवन। जब जीवन का अध्ययन केवल आश्रित जीवन के रूप में किया जाता है तब पंचमहाभूत उस जीवन के स्तर के लिये अनिवार्य वातावरण बन जाते हैं। क्योंकि देह पांच तत्त्वों से ही बना है। पर देहातीत या शाश्वत जीवन तत्त्व का अध्ययन किया जाता है तब पंचमहाभूत जीवन के साधन होने के बजाय बाधक हो जाते हैं। क्योंकि जीवन तत्त्व आत्म तत्त्व है। वह पुरुष है और स्वरूप से ही प्रकृति के अधीन न होकर प्रकृति का स्वामी है। इसलिए देहाश्रित जीवन प्रकृति में परिबद्ध जीवन है और देहातीत जीवन् मुक्त एवं शाश्वत जीवन है। भौतिकवादी केवल देहाश्रित जीवन को ही देखते हैं। वे देहातीत जीवन को संभव ही नहीं मानते। इसलिए वे जीवन को एक भौतिक तत्त्व से उत्पन्न हुआ मान लेते हैं।

क्या देहातीत जीवन होता है? इस प्रकार के उत्तर पर भौतिकवाद का जीवन या मरण अवलम्बित है। हम इसी जन्म में अनुभव करते हैं कि हमारा सूक्ष्म शरीर हमारे स्थूल शरीर को त्याग कर बहुत दूर की और इच्छित लोकों की सैर कर आता है। इस सूक्ष्म मन के द्वारा हम दूसरों के मन की बात जान लेते हैं। इसीके द्वारा हमें अनेक भावी घटनाओं का पूर्वाभास मिल जाता है। इसी को विकसित करने से हम मन ही मन अपने मित्रों और साधकों से बात कर लेते हैं। इसे Mental telepathy कहा जाता है।

किसी मृतक के सूक्ष्म शरीर (वायु स्वरूप) को वश में कर लेने से भूत के द्वारा अनेक बातों की जानकारी और अनेक कठिन प्रतीत होने वाले कार्यों की पूर्ति की जा सकती है। यह निश्चय ही किसी भौतिक शरीर द्वारा नहीं हो रहा है। इस शरीर में जीवन के सभी लक्षण हैं केवल स्थूल पंचभौतिक शरीर नहीं है। इससे स्पष्ट होता है केवल स्थूल पंचभौतिक शरीर ही जीवन नहीं है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि देह के बंधन से मुक्त होकर भी जीवनी शक्ति आश्चर्यजनक खेल खेल सकती है। आजकल पश्चिम में इसका विशेष अध्ययन किया जा रहा है जिसे परामनोविज्ञान Parapsychology के नाम से पुकारा जाता है।

भौतिक शरीर के पात (देहांत) के पश्चात् क्या केवल देह का अन्त होता है या जीवन का भी अन्त हो जाता है। भौतिकवादी समझते हैं कि जीवन का भी अन्त हो जाता है। पर, भारतीय मनीषियों ने कहा और आज हजारों तथ्यों द्वारा ठोस प्रमाणों सहित सिद्ध हो रहा है कि देहान्त से जीवन का अन्त नहीं होता है।

अनेकों बच्चों को पूर्व जन्म की स्मृति का होना, जन्म से बिना पढ़े ही बड़े-बड़े ग्रंथों का कंठस्थ होना, विगत जीवन की अत्यन्त गोपनीय बातों को वर्तमान जीवन में प्रमाण सहित बता सकना आदि, सिद्ध करते हैं कि जीवन देह रूपी बाहरी आवरण मात्र नहीं है। जीवन उसके भीतर का सारतत्त्व है। अत: जीवन तत्त्व के देहातीत हो सकने की सम्भावना जीवन के भौतिक अंकुरण और जीवन की भौतिकवादी व्याख्या को असत्य सिद्ध करती है।

एक जीववैज्ञानिक (Biologist) से मैंने पूछा, जीवन क्या है? वह बोला, जिसमें Activity and productivity (प्रजनन क्षमता) हो उसे जीवन कहा जाता है। पुन: प्रश्न किया प्रजनन क्षमता क्या जीवन का अनिवार्य लक्षण है? उत्तर हां में मिला।

प्रश्न—अनेक ऐसे जीवित बलिष्ठ नर-नारी हैं जो पूर्णत: जीवित हैं, परन्तु उनके संतान नहीं होती। कुछ स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। कुछ अविवाहित रहते हैं। कुछ विवाहित होकर भी प्रजनन नहीं करते और कुछ में प्रयास करने पर भी संतति नहीं होती। क्या उन सबको जीवित माना जायेगा। यदि यह अनिवार्य लक्षण हो तो सब जीवितों में समान रूप से पाया जाना चाहिये। तब जीववैज्ञानिक बोले—प्रजनन क्षमता को छोड़कर क्रियाशीलता को ही जीवन का लक्षण माना जाय।

प्रश्न—क्रियाशीलता से क्या अभिप्राय है? घूमने-फिरने की शक्ति। क्या घूमने-फिरने वाले को जीवित माना जाएगा। उत्तर—नहीं। क्रियाशीलता किसी लक्ष्य की ओर होनी चाहिए। प्रश्न—दिल्ली से चलने वाली राजधानी एक्सप्रेस अपने लक्ष्य हावड़ा तक पहुंचती है, तो क्या उसे जीवित माना जाएगा? उत्तर—नहीं। जीवन का लक्षण है Automatic activity towards goal. प्रश्न—यदि जर्मनी से Automatic bomber फ्रांस भेजा जाता है और बिना चालक के लक्ष्य पर बमबारी करके चला जाता है, तो क्या उसको जीवन माना जाएगा? तो इस पर जीववैज्ञानिक निरुत्तर हो गया। इसके आगे हम कुछ नहीं बता सकते। अब जीवन लक्षण आप ही बताइये। मैंने बताया कि जीवन का लक्षण है Concious activity towards God. लक्ष्य की ओर सचेतन गति। जब कोई जीव लक्ष्य की ओर बढ़ता है तो उसे लक्ष्य की पहचान होती है। उसे अपने साधन की पहचान होती है, मार्ग की पहचान होती है और लक्ष्य के दायें-बायें या किसी दिशा में घूम जाने पर उसके अनुसार गति व दिशा को भी परिवर्तित करता जाता है। उसे अपने-पराये की पहचान होती है और लक्ष्य की प्राप्ति का हर्ष भी अनुभव करता है और लक्ष्य से भटक जाने का दु:ख भी होता है।

इसके विपरीत जब Automatic bomber को फ्रांस के किसी मैदान में भेजा जाता है तो Bomber लक्ष्य को नहीं पहचानता है। उसी समय संयोगवश जर्मनी

की सेनायें हों तो Bomber उन्हें भी मारकर लौट आयेंगे। मशीन को अपने-पराये की पहचान नहीं। Bomber को लोगों पर बम बरसाने की न खुशी और न ही गलती से अपने लोगों को मारने का गम है। राइफल या मशीनगन के आगे जो भी अपना या पराया आएगा, मारा जाएगा। यदि भूल से भाई को ही चोर समझकर गोली दाग दे तो गोली भाई को देखकर अपना रास्ता कतई नहीं बदलेगी। इसकी तुलना में लाखों-करोड़ों रुपयों के Bomber या रॉकेट की अपेक्षा एक साधारण व सूखे टुकड़ों पर पलने वाला कुत्ता यदि चोर का पीछा करता हो तो चोर जैसे दिशा बदलता है वैसे वह भी दिशा बदल लेता है, मित्र-शत्रु को पहचानता है, लक्ष्य को पहचानता है। यदि काली अंधेरी रात को दूर से हमको ही चोर समझकर भूंकता हुआ फाड़ खाने के लिये आ जाए और हम उसका नाम ले लें तो उसका क्रोध भरा विचार तुरन्त परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि वह लक्ष्य को पहचानता है।

जहां जीवन है वहां चेतना है। चेतना के बीज बिना जीवन की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती है। जीवन मृण्मय न होकर चिन्मय तत्त्व है। उदाहरणस्वरूप—(क) वनस्पतियों में जीवन है—यह डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने सिद्ध किया है। भारतीय मान्यता में वनस्पति को सदा से जीवनधारी माना जा रहा है। डॉ. बसु ने यह भी सिद्ध किया है कि अत्यन्त सूक्ष्म चेतना भी है जो इनमें सुषुप्ति की अवस्था में रहती है। उन्होंने अमेरीका में कुछ प्रयोग भी दिखाये जिनमें फूलों को कठोरता से गाली देने पर वे कुम्हलाना शुरू कर देते हैं। खुली आँख से वह प्रतिक्रिया दिखलाई नहीं पड़ती। परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण यंत्र द्वारा कई सौ गुणा बढ़ाकर दिखलाने से कुम्हलाने की प्रतिक्रिया साफ-साफ दिखलाई देने लगी। उसी प्रकार से प्यार से बुलाने पर खिलते हैं। वनस्पतियों पर संगीत का सुखद प्रभाव और कोलाहल से दु:खद प्रभाव आज विज्ञान के प्रयोगों से सिद्ध हो रहा है।

चेतना के तीन पहलू हैं—ज्ञानात्मक, रागात्मक और संकल्पात्मक (क्रिया)। वृक्ष एवं पेड़-पौधे अपनी जड़ों द्वारा मिट्टी के भीतर ही भीतर खाद और पानी की ओर बढ़ते हैं। यदि जड़ के मार्ग में कोई बड़ी चट्टान या बाधा आ जाए तो उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हुए खाद-पानी तक वह पहुंच जाती है। प्रकाश की प्राप्ति के लिए पत्ते और टहनियां ऊपर को उठती हैं। यदि किसी अंधेरे कमरे में बेल लगायी जाए तो कुछ दिनों में रोशनदान से बाहर झांकना शुरू कर देती है। बिना चेतन के वृक्ष को कैसे पता लगता है कि खाद कहां है? अत: वनस्पति का चेतन स्वरूप है। इसलिए चेतन के अनुरूप ही लक्ष्य की ओर बढ़ती है।

(ख) अमीबा—सबसे छोटा एक जीवकोष वाला जीवाणु है। वह इतना सूक्ष्म है कि सूई की नोक पर सैकड़ों अमीबा उठाये जा सकते हैं। न आँख है न कान और न मुख। केवल बहुत सूक्ष्म त्वचा रूप में है। यदि एक गिलास में मैदा

के चूर्ण के साथ कांच का महीन चूर्ण मिला दिया जाए और उसमें एक अमीबा को छोड़ दिया जाए तो अमीबा धीरे-धीरे सब अनाज के कणों को खाता जाएगा और मार्ग में आने वाले कांच के कणों को त्यागता जाएगा। इस प्रकार कांच के कणों से बचते हुए अनाज के कणों की खोज बिना नाक, आँख वाला जैसा सूक्ष्म जीवाणु कर सकता है तो यह चेतना ही का चमत्कार है।

(ग) चींटी—गुड़ का कण या चीनी का कण लेकर अपने बिल की ओर जा रही है और मार्ग में श्री विजयकांतजी एक बालटी पानी गिरा दें और चींटी डूबने से बच जाए तो वह उस विशाल जलराशि के इर्द-गिर्द चक्कर लगाकर अपने बिल तक पहुंच जाती है।

(घ) साइबेरिया से शीत ऋतु में भारत के मैदानों में आनेवाले प्रवासी-पक्षी हजारों मील की यात्रा करके आकाश मार्ग से वापस अपने घोंसलों तक पहुंच जाते हैं। अतः लक्ष्य की ओर सचेतन गति जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है।

जब जीवन चेतना के बिना हो ही नहीं सकता तो जीवन और चेतना को एक-दूसरे का पर्याय ही मानना पड़ेगा। गीता में भगवान् कहते हैं—

जीवनं सर्वभूतेषु। 7/9
भूतानामस्मि चेतना। 10/22
अहमात्मा गुडाकेश। 10/20
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्। 7/10

इससे सिद्ध होता है कि जीवन, चेतना, आत्मा, परमात्मा ही सृष्टि का सनातन बीज है। यह उसकी लीला है कि वह कभी जीवाणुओं में खेलता है कभी स्वेदज में, कभी अंडज, जारज और पिण्डज यानी सभी जीवों में खेल खेलता है और कभी शरीरों से मुक्त होकर नित्यमुक्तस्वभाव निजानन्दरूप बनकर शाश्वत जीवन-लीला करता है। तब वह जीवन् मुक्त, देहातीत अथवा ब्रह्मलीन कहा जाता है।

अमीबा से मनुष्य तक जो विकास की सीढ़ी है वह भौतिक विकास के सिद्धान्त से स्पष्ट कभी नहीं हो सकती। क्योंकि वह जीवन तत्त्व के, चैतन्य के रूप में उत्तरोत्तर खिलते जाने का बहुत सुन्दर क्रम है। अतः यह जड़ के विकास की कहानी न होकर चेतन के विकास की कहानी है।

(क) एक पत्थर प्रकट रूप से पूर्णतया जड़ है। चाहे बाद में अन्तिम खोज पर उसमें भी चैतन्य तत्त्व सोया हुआ या छिपा हुआ मिलता है। The same spirit sleeps in a stone, dreams in an animal and awakes in man. वही आत्मा पत्थर में सो रही है, पशुओं में स्वप्न ले रही है और मनुष्यों में जाग

उठती है। पत्थर में जड़ता है। जीवन प्रकट नहीं है, चेतना प्रकट नहीं है। बौद्धिक चेतना भी नहीं, नैतिक चेतना भी नहीं। आत्मचेतना का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ख) पेड़-पौधे-वनस्पति में कुछ मात्रा में जड़ता है। क्योंकि स्थावर है। किन्तु उसमें जीवन का प्राकट्य हो गया है। पौधे अपने खाद-पानी (खुराक) वायु व प्रकाश को पहचानते हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए बढ़ते हैं। वनस्पतियों को सुख-दु:ख की सूक्ष्म अनुभूति भी होती है। काटने वाले व्यक्ति को देखकर पौधा भय से कांपने लगता है और माली को देखकर प्रफुलित हो जाता है। पौधे में जीवन स्पष्ट है पर चेतना बहुत कम विकसित होने के कारण गहन सुषुप्ति की अवस्था में छिपी हुई है। पौधों में बौद्धिक चेतना या तर्क-वितर्क करने की योग्यता नहीं है। उनमें नैतिक चेतना का भी विकास नहीं हुआ है जिससे भले-बुरे, नैतिक-अनैतिक का निर्णय कर सके। उनमें आत्मिक चेतना कि मैं कौन हूं या आत्मज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ग) पशु-स्तर पर जीवन और भी विकसित होकर जंगम एवं गतिमान हो गया है। पशुओं में चेतना पौधों की अपेक्षा अधिक विकसित हो गयी है। जीवन तत्त्व खिलता है तो चेतना की पंखुड़ियां खुलती जाती हैं। पशुओं को दु:ख-सुख की स्पष्ट अनुभूति होती है। अपने-पराये, मित्र-शत्रु की पहचान, लक्ष्य की पहचान स्पष्ट होती है। किन्तु उनमें बौद्धिक चेतना का अभाव है। नैतिक चेतना भी प्राय: नहीं है। डाकू का कुत्ता डाकू के प्रति, सज्जन का कुत्ता सज्जन के प्रति, यह उसकी पशु प्रवृत्ति ही है। यदि उसमें नैतिक विवेक होता तो डाकू का कुत्ता अपने मालिक को डाके से रोकता, सहयोग नहीं करता। किन्तु चूंकि पशु-स्तर के पश्चात् जीवन का विकास मानव स्तर पर होने वाला है इसलिए ऊँचे स्तर के पशुओं में कुछ नैतिक चेतना का पूर्वाभास मिलने लगता है। महाराणा प्रताप के चेतक ने क्षत-विक्षत होते हुए भी अपने स्वामी को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने के बाद ही प्राण छोड़ा। कई हाथी बड़ी समझदारी के और विवेक के कार्य करते हैं। गोलकोंडा के जंगल में शुद्धिकार्य के लिए जाते समय मेरे को एक जंगली हाथियों का परिवार मिला। वे स्वभाव से भयंकर माने जाते हैं। उनकी जीप का ड्राइवर जीप को छोड़कर भाग गया। हाथी-हथनी और उसका बच्चा सूंड उठाकर भयंकर चिंघाड़ करते हुए उनकी ओर दौड़े आ रहे थे। उन्होंने ढोलक के साथ जयगणेश-जयगणेश का कीर्तन करना शुरू किया। कुछ क्षणों बाद ही हाथी सिर हिला-हिला कर झूमने लगे और जंगल में एक ओर चले गए। हाथी विपत्ति में पड़े हुए जीवों की उपयोगी सहायता करता हुआ पाया गया है। वह अपनी सूंड में जलभर कर शिव का जलाभिषेक करता है। गंध-पुष्प आदि चढ़ाता है। प्यासे को पानी पिलाता है। अन्यायी को खोज कर दण्ड देता है।

यूनान की एक प्रचलित कथा है। एक शेर के पांव में कांटा चुभ गया था और एक व्यक्ति ने कांटा निकाल दिया। कुछ माह के पश्चात् राजा ने उसी व्यक्ति को द्वेषवश पकड़ कर भूखे शेर के आगे डालने का आदेश दिया। किन्तु शेर ने भूखा होते हुए भी अपने उस उपकारी को पहचान लिया और उसका पांव चूमने लगा। गाय सबसे सात्त्विक पशु है। उसमें नैतिक चेतना अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक है। एक सदाचारी पहलवान के ऊपर दुष्टों का आक्रमण होने पर गायों ने गुण्डों को सींगों से मार-मार कर भगा दिया। कई गायें जंगल में शिव की पिण्डी पर अपने आप जाकर दुग्धधारा से अभिषेक करती थीं। बप्पारावल (महाराणा प्रताप के पूर्वज) ने देखा कि एक गाय का दूध नहीं निकलता था, तो उन्होंने जंगल में जाकर देखा कि वह शिवलिंग का दूध से अभिषेक कर रही है। तभी से मेवाड़ के राजाओं ने एकलिंग महादेव को अपना कुलदेवता माना। इस प्रकार पशुओं में भी नैतिक चेतना की झलक मिलने लगती है।

(घ) मनुष्य में जीवन का सर्वोत्तम विकास हुआ है। उसमें सत्ता है, जीवन है, चेतना है। मानसिक चेतना बौद्धिक चेतना है नैतिक चेतना है, और आत्म चेतना की योग्यता भी है। अरस्तू ने मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहा है Man is rational animal अर्थात् मनुष्य एक तर्कशील प्राणी है। पर यह परिभाषा अधूरी ही है। क्योंकि तर्क की योग्यता से ही मानव जीवन का पूर्ण प्रतिफलन नहीं हो जाता। इसके विपरीत हम प्राय: देखते हैं मानव तर्कशक्ति का दुरुपयोग करके सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध करके अपने पापों को छिपाता है और समाज के अपराधों को बढ़ाता है। यदि तर्कशील प्राणी ही मनुष्य है तो घृणित से घृणित सामाजिक अपराध करने वाले और समूची मानवता के माथे पर कलंकरूप अपराधी जनों के वकील उन दुष्टों को दण्ड से बचाने के लिए न्यायालय में तर्क-वितर्क करते ही हैं। क्या अपराध के संरक्षक बनकर भयंकर अपराधियों को बचाने का प्रयास करने वाले rational animal ही सच्चे मनुष्य हैं? दिल्ली में बिल्ला और रंगा जैसे अपराधियों के द्वारा निर्दोष बच्चों की हत्या एवं बलात्कार काण्ड से सारा देश विक्षुब्ध हुआ और मानवता लज्जित हो गयी। किन्तु न्यायालय में उनके बचाव के लिये तर्क-कुतर्क करने वाले वकील अपराध के संरक्षक एवं अपराधियों के त्राता बनकर क्या अपनी मनुष्यता की परिभाषा सिद्ध कर रहे थे? अत: मानव को पशु से पृथक् करने वाला विशेषगुण केवल rationality ही नहीं है। मानव को पशु से पृथक् करने वाले विशेष गुण तीन हैं जो क्रमशः एक दूसरे से ऊपर हैं। वे तीन विशेष गुण हैं—

(1) Rationality
Morality
spirituality

animality must be controlled by mentality and mentality by rationality, rationality by morality and morality by spirituality.

पशुता पर मानसिकता का अंकुश होना चाहिए। मानसिकता पर बौद्धिकता का अंकुश, बौद्धिकता पर नैतिकता का नियंत्रण और नैतिकता पर आध्यात्मिकता का नियंत्रण होना चाहिए। इस क्रम से जीवन विकसित हुआ है और इसी क्रम से ही मानव जीवन सच्चा विकास कर सकता है। कई मनुष्य शरीर से मनुष्य होते हुए भी पत्थर या खनिज पदार्थ के समान जड़ एवं चेतना शून्य पड़े रहते हैं। वे खनिज स्तर के जीव ही हैं। कई वनस्पति स्तर के जीव हैं जो स्थावर प्रकृति के हैं और उन्हें पड़े-पड़े ही खाना-पीना मिलता रहे। वनस्पति स्तर के विलासी, भोगी, रोगी, तमोगुण विशेष हैं। कई नर पशु के स्तर पर है जो पशु-प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वश, खाने-पीने, मौज उड़ाने, लूटने-पाटने जैसे उत्पातों में लगे रहते हैं। ये रजोगुण विशेष Hedonist वाले भौतिकवादी है। कुछ मनुष्य बुद्धि की चालाकी को ही मनुष्यता का मापदंड मान बैठते हैं। इसमें दो स्तर हैं। एक चतुर चालाक हैं जो बुद्धि की जागरूकता से दूसरों द्वारा ठगे नहीं जा सकते। दूसरे धूर्त लोग जो अपनी बुद्धि की अतिशय चालाकी से दूसरों को ठगते रहते हैं। मनुष्य का चतुर होना तो अभीष्ट है पर उसका धूर्त canning होना कभी भी अभीष्ट नहीं है। रजोगुण जब तमोगुण का सहयोगी होता है तब बुद्धि की चतुराई को धूर्तता की ओर खींचकर ले जाता है। जैसे रावण बड़ा बुद्धिमान् होने पर भी आचारहीन, धूर्त सिद्ध हुआ। वह साधुवेश धारण कर धोखे से सीता को हर कर ले गया।

आजकल अधिकांश आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग सच्चे अर्थ में बुद्धिमान् न बनकर धूर्त ही बनते हैं। Modern Western education is producing not wise man but only civilized crooks in 20th centuary. 20वीं शताब्दी सभ्य धूर्त पैदा कर रही है। बैरिस्टर लोग कानून की सबसे बड़ी पढ़ाई करने के बाद भी यदि अपराधों को पोषण एवं अपराधियों को संरक्षण देते हैं तो क्या वे सभ्य धूर्त नहीं हैं। आधुनिक सभ्यता का सबसे बड़ा अभिशाप यही है—मिथ्याचार और धूर्तता।

रजोगुण जब सतोगुण की ओर उन्मुख होता है तब बुद्धि नैतिक नियंत्रण में विकसित होती है। इसी निर्मल बुद्धि को ही गायत्री में प्राथमिकता दी गई है। बुद्धि मनुष्य की ऐसी महान् शक्ति है जो धरती और आकाश के रहस्य को खोलने वाली है। इहलोक-परलोक, नर और नारायण, कर्म और धर्म, वर्तमान और भविष्य की साधना-सिद्धि, दोनों को परस्पर जोड़ने वाला सूत्र बुद्धि ही है। इहलोक में वर्तमान की समस्याओं का हल बुद्धि ही कर सकती है और भविष्य में यह शरीर छूटने के

बाद मुझे कहां जाना है और क्या लक्ष्य है इसका रहस्य तो बुद्धि ही खोलती है। बुद्धि वह विचारशक्ति है जो बड़े-से-बड़े रहस्यों की गांठ खोल देती है। मतिभ्रष्ट, मतिनष्ट और मतिशून्य होना एक दुर्भाग्य है। खनिज, वनस्पति और पशु प्रायः मतिशून्य हैं। अपराधी मानव मतिनष्ट है और बुद्धि की धूर्तता से अपराधों का चालाकी भरा, तर्कछल द्वारा संरक्षण और पोषण करने वाले लोग मतिभ्रष्ट हैं। गांधीजी के पास एक व्यक्ति ने बार-बार बहुत प्रबल आग्रह किया कि वे बैरिस्टर होने के नाते कचहरी में उसके केस की पैरवी करें। किन्तु बड़ी-से-बड़ी फीस का प्रलोभन देने पर गांधीजी ने कहा—जब मैं जानता हूं कि तुम अपराधी हो तो मैं तुम्हारी वकालत कभी नहीं कर सकता। मदनमोहन मालवीयजी के पीछे एक व्यक्ति कई वर्ष तक लगा ही रहा कि वे उसकी पैरवी करें। किन्तु मालवीयजी इनकार करते रहे। अन्त में उसने बनारस विश्वविद्यालय के लिये एक लाख रुपये की राशि दान दी और मालवीयजी को अपने केस की फाइल दे गया। मालवीयजी ने कहा कि मेरा प्रथम कर्तव्य यही होगा कि मैं न्यायालय में साफ-साफ बता दूं कि तुम अपराधी हो। उस व्यक्ति के आश्चर्य प्रकट करने पर मालवीयजी ने कहा, मैंने वकालत न्याय के संरक्षण के लिए पढ़ी है, अन्याय के संरक्षण के लिए नहीं।

आज संसार में जितने पाप व अपराध हो रहे हैं वे बुद्धि की मंदता, बुद्धि की विकृति, बुद्धि की नष्टता और बुद्धि की भ्रष्टता के कारण ही हैं। बुद्धि की उज्ज्वलता ही नर को आदर्श नरत्व की ओर, देवत्व की ओर, ब्रह्मत्व की ओर विकसित होने में सहायक है। इसलिए गायत्री में बुद्धि की उज्ज्वलता और बुद्धि के नैतिक मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करते हैं। नैतिक चेतना सही अर्थ में एक मानवीय उपलब्धि है। चरित्र एक महामानवीय गरिमा है। पशुओं के शब्दकोश में चरित्र और नैतिकता के शब्द हैं ही नहीं। एक कुत्ता जिस कुतिया के गर्भ से जन्म लेता है यदि उसी के साथ बड़ा होने पर संभोग करे तो वह पशुओं में बुरा नहीं माना जाता। पशुओं के प्रजनन केन्द्रों में किस नर पशु का किस मादा पशु से मेल कराया जाए इसकी कोई मर्यादा नहीं है। मनुष्य की मनुष्यता की सच्ची कसौटी उसका चरित्र ही है जिसके बिना वह मनुष्य के रूप में निरा-पशु ही है।

कार्लमार्क्स अपने कम्यूनिज्म के सिद्धान्त में कहते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ व्यक्तिगत परिवार भी एक बुराई है जो नष्ट होना चाहिए।

Private family is as great evil as private property. Hence it must be avoided.

मार्क्स Commune (साझा गांव) की कल्पना करता है जिसमें सब लोग सहकारी जीवन जीयेंगे। न किसी का कोई व्यक्तिगत धन न व्यक्तिगत परिवार होगा। सब धन समाज का, सब स्त्री समाज की, सब पुरुष समाज के, सब बच्चे

समाज के होंगे। इसका अर्थ हुआ भारत में सदा से प्रतिष्ठित गृहस्थी के लिए अनिवार्य पतिधर्म और सतीधर्म का सर्वनाश। दूसरे शब्दों में animal husbandry पशु प्रजनन केन्द्र के समान Human Husbandry मानव प्रजनन केन्द्र की रचना। मार्क्स की मृत्यु के बाद मार्क्स के पट्टशिष्य लेनिन ने रूस के पेरिस नगर में Commune का प्रयोग किया किन्तु उसके परिणाम बड़े भयंकर निकले। 75 प्रतिशत बच्चों को यौन रोग लग गया तथा पूरा समाज व्यभिचार एवं हिंसा की अग्नि में जलने लगा। इसलिए यह प्रयोग बंद करना पड़ा।

इस प्रकार चरित्रहीन मानव मानव न रहकर पशु बन जाता है। बिना चारित्रिक आधार के पूरा समाज वेश्यालय बन जाता है। नैतिक चेतना वास्तव में धर्म की ही चेतना है। भारत में धर्म शब्द नैतिकता एवं कर्तव्य का परिचायक है न कि मत अथवा सम्प्रदाय का। इसलिए भर्त्तृहरि ने कहा—**'धर्महीना पशुभिः समाना।'** नैतिक चेतना का महत्त्व भारत के सभी दार्शनिकों के अतिरिक्त पश्चिम के सभी सुलझे हुए दार्शनिकों ने भी स्वीकार किया है। किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या नैतिक विकास जीवन का अन्तिम लक्ष्य है? यदि मनुष्य किसी अन्य मनुष्य के प्रति कोई आचरण (अच्छा-बुरा) करना चाहे तो कम से कम दो बातें अपेक्षित हैं। एक कर्ता और दूसरा कर्म (जिसके प्रति क्रिया की जाती है)। किन्तु यदि मनुष्य अन्य व्यक्तियों और समाज की भलाई के लिए अच्छा कर्म करता रहे तो भी उसे यह सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि जिस शरीर से अच्छा कर्म किया वह शरीर एक दिन छूट जाएगा और जिन व्यक्तियों और समाज के लिए कर्म किया उनसे भी साथ छूटना निश्चित है। उस परिस्थिति में तब मेरी क्या स्थिति होगी। इसके लिए मनुष्य को नैतिकता से आगे आध्यात्मिकता का भी चिन्तन करना पड़ता है। जीवन का लक्ष्य—**आत्ममोक्षार्थं जगद्धिताय च।** अपनी मुक्ति और जगत् का भला। यदि जग की भलाई करके अपनी मुक्ति की साधना नहीं की तब भी घाटे का सौदा हो जाएगा। क्योंकि जग का भला तो सोचा पर अपना सच्चा भला नहीं सोचा। इसलिए नैतिकता आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख एवं उससे प्रेरित भी रहनी चाहिए। वास्तव में बिना नैतिकता के आध्यात्मिकता का कोई अधिकारी नहीं बन सकता और बिना आध्यात्मिकता के नैतिकता अविकारी नहीं रह सकती। नैतिकता अन्तिम सीढ़ी है जिस पर पांव रखे बिना आध्यात्मिकता के सर्वोच्च शिखर पर नहीं पहुंचा जा सकता। किन्तु आध्यात्मिकता की जंजीर पकड़े बिना नैतिकता की सीढ़ी पर टिके रहना भी अत्यन्त कठिन है। Without morality talk of spirituality is hypocracy and without spirituality morality cannot stay longer. Goodness leads to Godliness and Godliness protacts goodness.

वैदिक शब्द ऋतम् नैतिक नियम का पर्याय है। रामायण, महाभारत आदि में इसी ऋतम् को धर्म कहा है। वैदिक शब्द सत्यम्—आध्यात्मिक परमसत्ता का बोधक है। ऋतम् के बिना सत्यम् की उपलब्धि नहीं होती और सत्यम् के बिना ऋतम् में निष्ठा अविचल रह नहीं सकती।

बौद्ध दर्शन में नैतिक जागरण का एक महानतम अभियान मिलता है। भगवान् बुद्ध का जीवनकार्य भी यही था समाज का नैतिक पुनर्जागरण करना। पर ईश्वर की सत्ता के विषय में उनके मौन से बाद में बड़ी भ्रान्तियां फैल गई। बाद में प्राय: सभी बौद्ध दार्शनिक खुलेआम नास्तिकता का प्रचार करने लगे। कालान्तर में लोगों के मन में संदेह पैदा हुआ। जब सब कुछ जानने वाला सर्वान्तर्यामी सब जगह वर्तमान, सर्वव्यापक और सबको उचित फल देने वाला सर्वशक्तिमान ईश्वर है ही नहीं तो भला कर्मफल कौन देगा? इसलिए कर्मफल भी मिथ्या कल्पना मात्र ही बचता है। जब कर्मफल सिद्धान्त टूट जाता है तो नैतिकता की मानो रीढ़ की हड्डी ही टूट जाती है। Law of universal justice ही कर्मफल सिद्धान्त है जिसका कथन है—

अवश्यमेव लभते फलम्, कृतं कर्म शुभाशुभम्। मनुष्य के किये गये अच्छे या बुरे कर्म का फल अवश्य ही मिलता है।

यदि अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा फल सदा सब देश और काल में मिलता है तभी विश्वव्यापी न्याय हो सकता है। यदि विश्वव्यापी न्याय की तुला डगमगा जाती है तो नैतिकता का कोई आधार ही नहीं बचता। विश्वव्यापी नैतिक न्याय के लिए कर्म सिद्धान्त का नियामक किसी ऐसी शक्ति को होना पड़ेगा जो सब जीवों के सब कर्मों को उनकी अन्तर्मन की भावनाओं को सीधे वहीं से जान ले। विश्वव्यापी न्याय के लिए आवश्यक है सृष्टि के नैतिक नियम की प्रतिष्ठा और नैतिक नियम के नियामक ऐसे परम पुरुष अथवा परम शक्ति की अनिवार्यता जो कर्मों के मूल उत्स को भी जाने। जहां कहीं छिपकर कर्म किया जाए वहां भी वर्तमान हो। जहां कहीं भागकर जाय वहां भी पहले से ही मौजूद हो। और वह इतना शक्तिशाली हो कि कोई व्यक्ति उसके अनुशासन का निरन्तर उल्लंघन करते रहने एवं कर्म के अच्छे-बुरे फल को न भोगने की धृष्टता न दिखा सके। अत: कर्म-सिद्धान्त के विश्वव्यापी नैतिक नियम के नियमन के लिए और विश्वव्यापी न्याय की तुला को स्थिर रखने के लिए एक अन्तर्यामी, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान सत्ता आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है।

जैन दर्शन कर्म सिद्धान्त को तो उचित प्रतिष्ठा देता है किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता। प्रश्न उठता है कि कर्मफल का प्रदाता नियामक कौन है? शंकराचार्य के समय यह दार्शनिक शास्त्रार्थ चलते रहते थे कि—फलप्रद: कर्म,

फलप्रदोऽजः। क्या कर्मफल दाता कर्म ही है अथवा कोई अज, ईश्वर। तो जैन दर्शन कहता है फल तो कर्म से अपने आप ही पैदा होता है इसके लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं। जैसे अग्नि में हाथ डालने से हाथ जलता है। विष खाने से मनुष्य मरता है। इसमें ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न कहां उठता है? आज के वैज्ञानिक भी कहते हैं लिटमस पर एसिड डाला जाए तो लाल हो जाता है। इसमें ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा की कोई आवश्यकता नहीं। शंकराचार्य का प्रश्न है यदि देवदत्त ने सोमदत्त की हत्या कर दी तो इस हत्या के कर्मफल का विधान कौन करेगा? मृतक गवाही दे नहीं सकता कि हत्या किसने की? खून भी गवाही नहीं दे सकता, छुरा भी साक्षी नहीं दे सकता क्योंकि वह जड़ है। हत्यारा भाग जाता है और पकड़े जाने पर भी अपने को दोषी नहीं मानता। हत्या कर्म भी जड़ है। वह न हत्यारे को पहचानता है न हत्या के पात्र को, न ही हत्या के शस्त्र को। अब कौन निर्णय करे कि दोषी कौन है? हत्यारा चेतन है, किन्तु बचने के लिए अपने को हत्यारा घोषित नहीं करता। यदि कर्मफल का निर्णय उसी पर छोड़ दिया जाए तो कोई हत्यारा अपने को फांसी लगाना नहीं चाहेगा। इस तरह कर्म के दोषी का निर्णय और कर्मफल का निर्णय कर्म भी नहीं, करण, उपादान भी नहीं, सम्प्रदान भी नहीं कर सकता, केवल कर्ता कर सकता है, यदि वह निष्पक्ष हो। कर्म, करण, क्रिया आदि सब जड़ हैं। कर्ता ही चेतन है, पर निष्पक्ष कर्ता मिलना मुश्किल है। इसलिए यदि कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा रहनी है तो कर्म का नियामक कोई निष्पक्ष न्यायकर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान ईश्वर होना चाहिए। आधुनिक युग में Communism भी लोक कल्याण का प्रचार करता है और कुछ मात्रा में उन लोगों के द्वारा लोक कल्याण होता भी है, किन्तु कुछ समय पश्चात् उनके मन में Communism की नास्तिक आस्था के कारण एक प्रतिक्रिया पैदा होती है कि ईश्वर किसी उचक्के, बदमाश का नाम है। 'नैतिक मूल्य', पुराने जमाने के खोटे सिक्के हैं। धर्म जनसाधारण को नशे में भुलाये रखने के लिए अफीम मात्र है, कर्म फलदाता कोई है ही नहीं। इस जन्म के बाद कोई जन्म भी नहीं है। यहां इस जन्म में अपने कर्मों का फल नहीं मिल सकता तो हम अच्छे कर्म करे ही क्यों? यदि मृत्यु के बाद अगला जन्म ही नहीं और मृत्यु एक संत और दुष्ट को मिट्टी में ही मिला देती है, तो हमें सज्जन बनने की आवश्यकता ही क्या? यदि एक हत्यारा लाखों लोगों की हत्या करने के बाद एक विषैली गोली खाकर अपनी आत्महत्या कर लेता है, तो संसार का कोई न्याय-विधान तो दंड दे ही नहीं सकता और यदि पुनर्जन्म में भी उसे इन कुकर्मों का फल न मिलने वाला हो तो न्याय की तुला टूट जाएगी और मनुष्य निर्भय होकर अपराध करने लगेंगे। यदि एक सज्जन की अच्छाई का अन्तिम परिणाम और दुष्ट की बुराई का अन्तिम परिणाम समान रूप से मर कर मिट्टी बन जाना ही हो तो किसी के सज्जन बनने और कल्याण कर्म

करने की प्रेरणा ही कहां बचेगी? इसलिए आध्यात्मिकता विहीन नैतिकता अधिक देर तक टिक नहीं सकती। Communist देशों में होने वाले व्यापक हत्याकांडों, हिंसा, उत्पीड़न, बलात्कार आदि भयंकर घटनाओं के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण उनकी नास्तिकता ही है। नास्तिक व्यक्ति निकलता है कल्याण करने और कर बैठता है अकल्याण। इसलिए गरीबों-मजदूरों का कल्याण का नारा देकर गरीबों का ही शोषण किया जा रहा है और प्रत्येक खूनी क्रांति में उन गरीबों को ही तोप का बारूद बनाकर उड़ाया जा रहा है। जो जीवन दर्शन यह निष्ठा लेकर चलता है कि विश्व का अंतिम सत्य जड़भूत ही है उसे भौतिकवाद, जड़वाद, भोगवाद Materialism कहते हैं। England का मध्यकालीन दर्शन hedonism, मार्क्स का Communism, डार्विन का विकासवाद तथा मोटे तौर पर सारे पश्चिम का बहुलांश में यही जीवन दर्शन है। इसके विपरीत जीवन की वह प्रणाली जो यह आस्था लेकर चलती है कि विश्व का अन्तिम सत्य चेतन आत्मा है उसे आत्मवाद, अध्यात्मवाद या spiritualism कहते हैं। इन दोनों विचारधाराओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक मृण्मय है, दूसरा चिन्मय है। एक भोगवाद तो दूसरा योगवाद। एक बहिरंग का उपासक तथा दूसरा अंतरंग का। आजकल कई सज्जन कहते रहते हैं कि भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वय होना चाहिए। वास्तव में यह शब्दप्रयोग दार्शनिक दृष्टि से अशुद्ध है। जब एक वाद घोषणा करता है, जड़ पदार्थ ही अन्तिम परम सत्ता और चेतन का अन्तिम परीक्षण में कुछ अस्तित्व ही नहीं बचता है, जड़ ही अन्तिम तत्त्व बचता है तो दूसरी ओर अध्यात्मवाद बिल्कुल इसके विपरीत चेतन को ही अन्तिम सत्ता और जड़ को अन्तिम परीक्षण में मिथ्या या माया मानता है। इन दोनों विचारधाराओं की परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध तलवार तनी हुई है। तो इन वादों का समन्वय सोचने में भी असंगत लगता है। इसलिए इन दो वादों का समन्वय न कह कर यदि कोई कहे कि जीवन में प्रगति के लिए जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा का यथास्थान महत्त्व है तो कुछ युक्तिसंगत लगता है। प्रत्येक माता के जीवन में काम-भोग का यथास्थान मर्यादित महत्त्व है क्योंकि उसके बिना उसकी संतति होगी ही नहीं और वह मां नहीं कहलाएगी। पर काम-भोग उसके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य या परम सत्य नहीं है। दूसरी ओर एक वेश्या के जीवन का चरमलक्ष्य सर्वोपरि सत्य कामभोग ही है इसलिए वेश्या भोगवादी होने के कारण तिरस्करणीय है और माता सती होने के कारण पूजनीय है। इसलिए पदार्थवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय नहीं हो सकता जैसे वेश्या के भोगवाद और माता के सतीवाद का समन्वय नहीं हो सकता। हमारी आध्यात्मिक संस्कृति में पदार्थ का भी यथोचित मर्यादित स्थान है। हमारे चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। काम हमारा मनोवैज्ञानिक आदर्श है। जिसमें धर्म की मर्यादाओं में रहते हुए सांसारिक सुख-कामनाओं की प्राप्ति

को उचित महत्त्व दिया गया है। अर्थ हमारा आर्थिक और राजनीतिक आदर्श है, जिसमें धर्म पर चलते हुए धन्य-धान्य की प्राप्ति, राज्य की वृद्धि एवं समृद्धि को उचित महत्त्व दिया गया है। धर्म हमारा नैतिक आदर्श है, शरीर से लेकर ब्रह्म पर्यन्त समस्त कर्तव्यों की विधिवत परिपूर्ति पर बल दिया गया है। वह धर्म या ऋतम् हमारे भारतीय जीवन के ताने-बाने का केन्द्रीय तन्तु है। इसका चारों पुरुषार्थों में महत्त्वपूर्ण योगदान है। बिना धर्म के अर्थ अनर्थ हो जाता है—**'धर्मविहीनम् अर्थम् अनर्थम्, यज्ञविहीनम् अर्थम् व्यर्थम्।।'**

अर्थात् पाप की कमाई का पैसा अनर्थकारी होता है और समाज कल्याण रूपी यज्ञ में समर्पण किये बिना अर्थ व्यर्थ होता है। डाकू का पैसा अनर्थ है और कंजूस का पैसा व्यर्थ है। अर्थ न अनर्थ होना चाहिए न व्यर्थ। अर्थ सार्थक तभी होता है जब धर्म के द्वारा कमाया जाए और यज्ञ भावना से धर्मार्थ कार्य में लगाते हैं। धर्म की इस मर्यादा के बिना पाश्चात्य अर्थशास्त्र इस अर्थ का जो व्यवहार सिखलाता है कि वह आज पश्चिम में बहुत बड़े अनर्थ का कारण सिद्ध हो रहा है। पाश्चात्य अर्थशास्त्र में यह पढ़ाया जा रहा है कि हर मानव स्वार्थी है। जीवन का लक्ष्य अर्थ ही है तथा अर्थशास्त्र के व्यापार पर नैतिकता या धर्म या शास्त्र का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इन तीनों मान्यताओं का तार्किक निष्कर्ष लंदन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. बेन्हम के उस ग्रंथ में Economics of Prostitution में मिलता है। इसलिए उन्होंने कहा है कि एक माता या पत्नी मिलकर जितना कार्य करती है वह दो नौकरानियां मिल कर सकती हैं इसलिए एक माता-पत्नी का आर्थिक मूल्य लगभग 50 पौण्ड है। उसकी तुलना में एक वेश्या उससे 100 गुणा राशि प्रतिमाह कमा लेती है इसलिए शुद्ध अर्थशास्त्र की दृष्टि से एक वेश्या का कार्य माता या पत्नी के कार्य से अधिक लाभकारी है। इस प्रकार धर्मविहीन अर्थ अनर्थ की ओर ले जाता है। बिना धर्म के अंकुश के काम भी व्यभिचार बन जाता है—

धर्मविहीनं कामं भोगम्,
संयमहीनं कामं रोगम्।

इस प्रकार भारत की आध्यात्मिक संस्कृति में काम एवं अर्थ का यथोचित व मर्यादित महत्त्व अवश्य है किन्तु वह धर्म के अंकुश में ही मंगलकारी रहता है और जीवन के क्रमिक विकास में सहायक बनता है। धर्म या नैतिकता को आध्यात्मिक आधार एवं प्रेरणा की आवश्यकता रहती है यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। संक्षेप में आध्यात्मिक आधार के दार्शनिक परिणाम इस प्रकार होंगे—

(क) मैं चेतन आत्मा हूं। सब भौतिक वस्तुओं का ज्ञाता, निर्माता, उपभोक्ता, प्रयोगकर्ता एवं निर्लिप्त द्रष्टा हूं।

(ख) मैं चेतन सब वस्तुओं का स्वामी हूं और भौतिक वस्तुएं मेरे साधन व उपकरण एवं लीला के ही खेल-खिलौने हैं। पैसे की तुलना में वस्तु और वस्तु की तुलना में व्यक्ति और व्यक्ति में भी उसका चेतन आत्मा उत्तरोत्तर महत्त्व के हैं। इसलिए अपने आचरण में मैं पैसे के स्वार्थ में वस्तु का अनादर, वस्तु के स्वार्थ में व्यक्ति का अनादर या आत्मा का तिरस्कार नहीं करूंगा।

(ग) जड़ से चेतन अधिक मूल्यवान है इसलिए जड़ के लिए चेतन को कलंकित नहीं होने दूंगा। नश्वर के लिए अनश्वर को नहीं त्यागूंगा। क्षुद्र के लिए महान् को नहीं ठुकराऊंगा। व्यक्ति के लिए समष्टि को क्षति नहीं पहुंचाऊंगा।

(घ) क्योंकि मैं अमर आत्मा हूं, इसलिए मुझे न आतंक का त्रास कर्तव्यपथ से डिगा सकता है न मृत्यु का भय डरा सकता है। अध्यात्मवादी निर्भय होकर कर्तव्यपथ पर बढ़ता है। संकटों को हंसते-हंसते झेलता है और फांसी के तख्ते पर या जल्लाद की तलवार के सामने मुस्कराता रहता है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति।

आत्मज्ञानी पुरुष सब भूतप्राणियों को अपना आत्मा ही मानकर व्यवहार करता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अन्य या पर को कष्ट दे सकता है किन्तु स्वयं अपने आपको नहीं सताना चाहता है। जब सब प्राणी मेरी ही आत्मा है तो मैं किसकी जेब काटूं और किसका गला काटूं। अतः सच्ची नैतिकता आध्यात्मिक दृष्टि खुलने पर ही जगती है।

(ङ) आत्मवादी व्यक्ति इतना उदार होता है कि वह सबके दुःख को अपना दुःख मानकर दूसरे के क्लेशहरण हेतु एवं दूसरों की सेवा हेतु सचेष्ट रहता है।

(च) मानव और प्रत्येक जीव को भी सबसे प्यारा मैं (अपना आप) ही होता है। अन्य सब सम्बन्ध इसकी तुलना में दूसरे, तीसरे व चौथे दर्जे पर ही आते हैं। देहाध्यासी व्यक्ति अपने मैं की सीमा अपने शरीर तक ही मानता है और इसके अतिरिक्त सबको पर या पराया समझता है। यही स्वार्थ अथवा क्षुद्रता का मूल कारण है—

अयं मम परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

यह मेरा है अथवा पराया है, यह गणना क्षुद्र बुद्धि वालों की होती है। इसके विपरीत अध्यात्मवादी व्यक्ति जब सब में आत्मा (मैं) का दर्शन करता है तो कोई वैरी या पराया बचता ही नहीं तथा स्वार्थ का मूल आधार ही नष्ट हो जाता है—

बिसर गई सब तात पराई, न कोई वैरी न ही बेगाना।
सकल संग हमरी बन आई, बिसर गई सब तात परायी।।

—गुरुनानक देव

ईशोपनिषद् के छठे मंत्र में भी कहा है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

जो सब भूतप्राणियों को आत्मा करके देखता है वह आत्मदर्शी किसी से घृणा कर ही नहीं सकता।

(ज) भाषा की लाचारी से और व्यवहार की सुगमता के लिए हम सामने वाले व्यक्ति को तू और दूर वाले व्यक्ति को वह कहते हैं। पर जिसे तू कहते हैं और वह कहते हैं वह स्वयं भी अपने को मैं ही कहता है। चाहे दुनिया में सबके कल्पित नाम रखे हुए हैं, किन्तु नाम से कोई दूसरा ही उन्हें बुलाता है। कोई भी स्वयं को मैं छोड़कर नाम से नहीं बुलाता। नाम परायों के व्यवहार के लिये है स्वयं अपने व्यवहार के लिए मैं ही है। अतः सब मानवों का वास्तविक एवं सबसे प्रिय नाम मैं (आत्मा) ही है। केवल मानवों का ही नहीं सब प्राणियों में भी यही मैं या स्वयं समानरूप से व्याप्त है। जैसे मैं स्वयं बोल रहा हूं। तू स्वयं प्रश्न करने के लिए आ गया। वह स्वयं जाग उठा है। वे स्वयं पहुंच गये। वे नारियां स्वयं पनघट से पानी ला रही है। बच्चे स्वयं खेलने लगे। वृद्ध स्वयं चिन्तामग्न है। कुत्ता स्वयं भौंकने लगा। गाय स्वयं रम्भाने लगी। कोयल स्वयं गाने लगी। तोता स्वयं राम-राम बोलने लगा। मच्छर स्वयं घुस आये। मक्खियां स्वयं भिनभिनाने लगी। कीटाणु ने स्वयं काट लिया। इस प्रकार सब मनुष्यों, बच्चों, बूढ़ों, पुरुषों-स्त्रियों, पशुओं-पक्षियों, कीड़ों, कीटाणुओं के नाम अलग-अलग हैं। रूप अलग-अलग हैं। सबका परिचय पृथक्-पृथक् है। किन्तु सबका स्वयं एक ही है। जो सबमें पिरोये हुए स्वयं को पहचान लेता है वह आत्मा की आत्मा का दर्शन कर लेता है अर्थात् वह परमात्मा के विराट् रूप का दर्शन कर लेता है।

पश्चिम वालों की नैतिकता मात्र मनुष्यों के प्रति सत्कर्म या कल्याण कर्म करने का उपदेश देती है पर अध्यात्मवादी जीवमात्र को, प्राणीमात्र को अपना ही आत्मा जानकर विश्व कल्याण के लिए जीता है। हंस को तीर लगने पर सिद्धार्थ की स्वानुभूति से आंखों में आंसू छलक आते हैं। एक कबूतर की रक्षा के लिए राजा शिवि अपने शरीर के लोथड़े को तराजू पर तोल देते हैं।

पश्चिम के दार्शनिक अन्य जीवों का मांस खाते हुए और मद्यपान करते हुए मनुष्यों को सदाचार का उपदेश देने के लिए पुस्तकें लिखते हैं किन्तु भारत का अध्यात्मवादी दार्शनिक सारी सृष्टि में आत्मदर्शन करके विश्वव्यापी अहिंसा एवं सदाचरण को अपने प्रत्यक्ष जीवन से सीखता है।

यह विश्व का सर्वोत्तम भौतिक आदर्श, राजनैतिक आदर्श, सामाजिक आदर्श, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श है।

जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति उपकार कर्म करता है तो उसके पीछे नैतिक प्रेरणा क्या है? इसी का महत्त्व सबसे अधिक है। यदि मनुष्य भौतिकवादी दृष्टिकोण से एक पदार्थ का टुकड़ा ही है तो एक पदार्थ के टुकड़े को दूसरे पदार्थ के टुकड़े के प्रति सदाचरण क्यों करना चाहिए? इसका कोई समाधान नहीं मिलता है। ईसाई धर्म में कहा है—ईश्वर सबका पिता है और मानव परस्पर बंधु हैं। इसलिए बंधुभाव से दूसरे का उपकार करें। बौद्ध धर्म सभी प्राणियों को परस्पर साथी-संगी मानकर सदाचार की शिक्षा देता है। जैन दर्शन जीवदया की प्रेरणा देता है। इस प्रकार परोपकार की नैतिक प्रेरणाएं भिन्न-भिन्न हो सकती है। बंधुभाव से, मित्रभाव से, पुत्रभाव से, साथी के भाव से, खुदा का बंदा मानकर, जीवभाव से, दु:खी प्राणी से प्रेमभाव से, करुणा भाव से, रक्षा भाव से, अहिंसा भाव से, परोपकार का बदला चुकाने के भाव से आदि-आदि। किन्तु अध्यात्मवादी दूसरे का उपकार वास्तव में दूसरे का परोपकार न मानकर स्वयं अपना ही उपकार मानते हैं। किसी प्राणी के लिए मैं जो कुछ करता है, वह इसलिए कि वह बंधु-भाई है, मित्र-संबंधी, परिचित है, दु:खी जीव है, निर्धन है, सहायता का पात्र है या परोपकार के बदले परोपकार का पात्र है। इसलिए नहीं वरन् केवल इसलिए कि वह केवल मेरी अपनी ही आत्मा है। इसलिए जिसे दुनिया परोपकार समझती है वह वस्तुत: स्व-उपकार ही है। दूसरे के प्रति हमदर्दी को सहानुभूति कहते हैं। अध्यात्मवादी व्यक्ति सहानुभूति के स्थान पर स्वानुभूति से कर्म करता है। वह दूसरों पर तरस खाकर, दया करके, उसका दु:ख दूर नहीं करता वरन् उसे स्वयं अपना ही दु:ख मानकर क्लेशहरण करता है।

दूसरों के प्रति कल्याण कर्म का मनुष्य को कुछ अभिमान हो सकता है। किन्तु स्वयं अपनी सेवा का अभिमान होता ही नहीं। इसलिए अध्यात्मवादी निराभिमान भाव से सारे विश्व को आत्मा जानकर निष्काम सेवा का आनन्द लेता है।

अध्यात्मवादी विश्व का भरपूर कल्याण करने के साथ अपना परम कल्याण भी साधता जाता है। अपनी मुक्ति और जग का भला दोनों साथ-साथ सिद्ध होता जाता है। वह ऐसा पूर्ण विकसित, परम पवित्र, निष्काम एवं नि:स्वार्थ महामानव बन जाता है कि उसका प्रत्येक कर्म स्वत: विश्व कल्याण का महायज्ञ बन जाता है। उसके कर्मों में ईश्वरीय शक्ति, ईश्वरीय विभूति, ईश्वरीय निष्ठा, ईश्वरीय माधुर्य एवं सौन्दर्य प्रकट होने लगता है। उसके स्पर्शमात्र से असंभव काम संभव होने लगता है। वह धरती पर चलता फिरता देवता है, वह जीवन्मुक्त बनकर जीते जी ही मोक्ष का आनन्द अनुभव करता है। जैसे श्रीरामकृष्ण, रामतीर्थ, महर्षि रमण, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि महापुरुषों ने इसी जन्म में ब्रह्मानन्द की लीला का रसास्वादन किया है।

इस शरीर के पात के पश्चात् ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष परामुक्ति का लाभकर परब्रह्म परमेश्वर के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति मानव को पशुत्व से नरत्व, नरत्व से देवत्व और देवत्व से ब्रह्मत्व की ओर क्रमिक विकास करती हुई जीवनरूपी कमल को पूर्ण प्रफुलित कर देती है।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि भारतीय संस्कृति में धर्म के बाद मोक्ष की आवश्यकता क्या है? यह वैसा ही है जैसा नैतिकता के ऊपर आध्यात्मिकता क्यों है? नैतिकता के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता स्पष्ट की जा चुकी है। आध्यात्मिक प्रेरणा से नैतिकता कैसे पूर्ण विकसित होती है, वह भी स्पष्ट किया जा चुका है। धर्माचरण का अर्थ कर्तव्यपालन अथवा नैतिक सदाचार ही है। कर्म अथवा धर्म पर द्वैत एवं नानात्व बना ही रहता है। अद्वैत अथवा एकत्व प्राप्त नहीं होता है। इसकी प्राप्ति के लिए मोक्ष अनिवार्य है।

कर्म मनुष्य को तीन प्रकार से कर्मचक्र अथवा भवचक्र में बांध लेता है। कर्म किये बिना ही गुजारा नहीं, बिना कर्म के संसार का भला नहीं हो सकता। किन्तु कर्म करते हुए हम ही कर्म के बंदी हो जाएं, जगत् का कल्याण करते हुए हम अपना ही अकल्याण कर लें तो बड़े घाटे का सौदा होगा।

कर्म करते हुए कर्म का परिणाम तो आगे होता है, किन्तु कर्म का छींटा पहले कर्ता पर पड़ता है। जैसे बन्दूक चलाते हुए गोली सीधी तो आगे निकलती है पर धक्का पीछे पड़ता है। इस प्रकार कर्म कर्ता को रंगता जाता है। यदि क ने ख की हत्या की तो तात्कालिक आगे का परिणाम ख की मृत्यु, तात्कालिक पीछे का परिणाम (कर्म का रंग) हुआ 'क' का हत्यारा बन जाना। तो हत्या के कर्म ने ही 'क' को हत्यारा बनाया। यों ही कर्म किसी को चोर बना देता है। अन्यथा चोर, हत्यारा, डाकू किसी के माथे पर लगा हुआ नामपट्ट नहीं है। पर कर्म उसके मन पर जो रंग छोड़ता है, उसी से वह सज्जन या दुष्ट बन जाता है। कर्म की यह रंगत ज्यों-ज्यों गहरी होती जाती है, त्यों-त्यों आदत बन जाती है। आदत धीरे-धीरे चरित्र बन जाती है और चरित्र मनुष्य का भाग्य बन जाता है—

Sow a thought, it becomes an act
Sow an act, it becomes a habit
Sow a habit, it becomes a character
Sow a character, it becomes a destiny.

कुकर्म करके समाज की नजर से या पुलिस से भले ही बच जाएं पर कर्म की रंगत और आदत के फंदे से नहीं बच सकते। हिटलर का साथी Eachman जो शुरू में एक खून करने से भी डरता था, आदत लग जाने से संसार का सबसे बड़ा हत्यारा बन गया।

कर्म, फल की वासना से भी कर्ता को बांध देता है। मनुष्य कर्म करने के बाद फल के लोभ से अपने मन की सारी शक्ति फल की प्रतीक्षा में लगा देता है जिससे आगे कर्म की प्रगति रुक जाती है। कई बार जल्दी फल प्राप्त करने के लिये वह उतावलेपन में भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाता है। कई बार फल को अधिक महत्त्व देने के कारण वह बिना कर्म का कष्ट उठाये फल पाने के लिए कुछ चेष्टा करता है। बिना परिश्रम के पैसा कमाना चाहता है। बिना उचित तपस्या के लाभ पाना चाहता है। बिना परीक्षा दिए प्रमाण-पत्र लेना चाहता है। कई बार फल पर दृष्टि रखने से, फल को ही लक्ष्य मानकर फल के लोभ से कर्म की सौदेबाजी करने लगता है। कई बार अपेक्षित फल न मिलने से हताश, निराश होकर अपने कर्तव्य कर्म को ही लात मार बैठता है। फल की वासना उसे इस जन्म में भी उतावला बावला बनाती रहती है और यदि वह फल की अधूरी इच्छा लेकर मरता है, तो कर्मफल की आकांक्षा उसे अगले जन्म में भी भटकाती रहती है। इसलिए जो सकामकर्मी है वह कर्म करते हुए कर्म के चक्र में बंध जाता है और कर्मफल के दल-दल में गहरा फंसता जाता है।

कर्म कर्ता को कर्तापन के अहंकार में भी बांधता जाता है। अच्छे से अच्छा कर्म करने के बाद भी यदि कर्तापन का अहंकार बढ़ जाए तो यह वैसे ही है जैसे बढ़िया खीर पकाने के पश्चात् उसमें मुट्ठी भर बालू डाल दी जाए। यह क्षुद्र अहंकार ही मनुष्य को स्वार्थी, समाजद्वेषी एवं ब्रह्म से विमुक्त करने वाला कारण है। समाज में स्वार्थ के संघर्षों की अपेक्षा अहंकार के संघर्ष अधिक चल रहे हैं।

दो कुत्ते हड्डी के स्वार्थ पर लड़ते हैं, पर दो नेता अहंकार की लड़ाई, प्रतिष्ठा की लड़ाई, ईर्ष्या की लड़ाई में कुत्तों से भी ज्यादा भयंकर और लम्बी लड़ाई लड़ते हैं। इसलिए कर्म करते हुए कर्ता कर्म की रंगत में रंगता जाता है, उसकी आदत में बंधता जाता है, फल की वासना में बावला बना रहता है। अहंकार के स्थूल हो जाने से ईश्वर से बिछुड़कर समाज में अन्य कार्यकर्ताओं से संघर्ष करता रहता है—तो ऐसा कर्मी जन्म-जन्मान्तर में कर्म-बंधन में ही बंधा रहता है। यही कर्मों का बंधन—पुनर्जन्म का बंधन ही भवबंधन है। इसलिए कर्तव्य कर्म का आचरण करने वाले व्यक्ति को आध्यात्मिक प्रेरणा से भगवान् की प्रीति के लिए सत्कर्म करते हुए कर्मों का संग, कर्मफल की वांछा एवं कर्तापन का अहंकार सभी कुछ प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना चाहिये। ऐसे निष्काम कर्मयोग द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। आदत के बंध टूट जाते हैं। फल का लोभ समाप्त हो जाता है और कर्तापन का अहंकार भी धुल जाता है। इस चित्तशुद्धि के बाद व्यक्ति ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बन जाता है। उसके निर्मल अन्त:करण में स्वत: ही ब्रह्मज्योति प्रकाशित होने लगती है। ''कबीरा मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर पाछे पाछे हरि फिरे कहत

कबीर कबीर।।'' अभी तक जीव ब्रह्म को पुकारता था। अब चित्त निर्मल होने पर स्वयं ब्रह्म (मैं) ही आत्मा (मैं) को पुकारता है। वह अपने भीतर जिस निर्लिप्त आत्मा का दर्शन करता है वह नेत्र खोलने पर सारे विश्व में भी उसी आत्मा का ही दर्शन करता है। जिस तुलसीदास ने अपने निर्मल अन्त:करण में 'सीयाराम' को देखा उसने नेत्र खोलने पर गाया—

'सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'

जब निष्काम कर्म अथवा धर्म का आचरण करते-करते मनुष्य के अन्तर से उसका सच्चा मैं ही मैं को पुकारे तब उसे सब कर्म-धर्म त्यागकर अपने आपसे मिलने हेतु मोक्षमार्ग पर पग रखना चाहिए। इसलिए भगवान् गीता में अपने अन्तिम उपदेश में कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। 18/66

अर्थात् हे मानव! सब धर्मों का परित्यागकर तू मेरे पास आ जा।

कर्म की सार्थकता इसी बात में है कि हम कर्मचक्र से छूट जाएं। धर्म की सार्थकता इसी बात में है कि धर्म करते-करते धर्म से उठकर मोक्ष के अधिकारी बन जाएं। यह मोक्ष ही जीवन की परिपूर्णता है। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। धर्म, अर्थ और काम, इसी लक्ष्य तक पहुंचने की तीन क्रमिक सीढ़ियां हैं—पहले काम (सांसारिक सुख) फिर अर्थ—आवास, धन्य-धान्य, राजभोग, फिर धर्म-नैतिक आचरण। सबसे ऊंचा सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष है। जो भगवान् 'जीवनं सर्वभूतेषु' है, जीवन में विकास करते-करते स्वयं विश्वजीवन का केन्द्र, सब जीवों का अंतिम अमर जीवन बन जाना ही मोक्ष है, उस भगवान् की प्राप्ति है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

यजु., 31/18

सर्वत्र ओत-प्रोत वह महान् देवाधिदेव सूर्य के समान अपने तेजोमय रूप को सर्वत्र फैलाये हुए भी हमारे अज्ञानान्धकार के कारण हमसे तिरोहित है। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु अथवा अपूर्णता की भावना का अतिक्रमण कर सकता है। अमृतत्व अथवा विशाल जीवन की प्राप्ति का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

जीवन का महत्त्व

आजकल बहुत से नवयुवकों को जब किसी दुर्व्यसन से बचने के लिए कोई बड़ा गुरुजन समझाता है कि धूम्रपान या नशे की गोलियों से जीवन बर्बाद मत करो तो वे तपाक से उत्तर देते हैं—'यदि मैं अपना जीवन बर्बाद करता हूं तो आपको क्या हानि है? जब उन्हें समझाया जाता है कि यह जीवन समाज की थाती और प्रभु का वरदान है, तो वे कहते हैं श्वास हम लेते हैं तो मिल्कीयत समाज की कैसे हो गई। हम ईश्वर को ईश्वर ही नहीं मानते हैं तो जीवन को ईश्वरीय वरदान कैसे मानें।

यह ठीक है कि मानव जीवन श्वास पर अवलम्बित है। किन्तु सभी के जीवन श्वास की दया पर ही नहीं है। अमीबा में जीवन है किन्तु श्वसन प्रक्रिया संभव ही नहीं है। सूई की नोक पर पांच सौ अमीबा रह सकते हैं। वर्षाऋतु की समाप्ति पर मेढक धरती के नीचे बिना श्वास लिए समाधि जैसी अवस्था में आठ-आठ मास तक जीवित पड़े रहते हैं। भूत-प्रेतों के जीवन में भी श्वसन की कोई आवश्यकता नहीं है। सूक्ष्म शरीर भी बिना श्वसन के जीवितों के समान लीला करते हैं। मुक्त आत्मायें भी श्वास की दया पर जीवित नहीं रहतीं।

प्राणों की लीला प्राणियों में चलती है, किन्तु यह लीला भी बड़ी रहस्यमयी है। क्या प्राण जीवन का आधार है अथवा जीवन का लक्षण है? उत्तर में कहना पड़ेगा कि प्राण समस्त जीवन का आधार नहीं है। क्योंकि जीवन के कई स्तर बिना प्राणों के सिद्ध हो रहे हैं। प्राणियों में भी प्राण जीवन का आधार न होकर जीवन का लक्षण मात्र है। जीवन में वह शाश्वत चेतना है जो प्राणों को चलाती है। कई बार समाधि अवस्था में प्राण (श्वसन) बंद होने पर डॉक्टर जीवित प्राणी को भी भ्रम से मृत मान बैठते हैं। अत: जीवन व्यापक तत्त्व और प्राण उसके अधीन है। सामान्य प्राणियों में प्राण जीवन का लक्षण मात्र है जीवन का कारण नहीं।

जब नवयुवक कहता है कि प्राण हम चलाते हैं। हम ढोते हैं। श्वास हम लेते हैं तो प्रश्न पैदा होता है कि इन प्राणों को चलाता कौन है? वेद में कहा है—

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 1/8, केनोपनिषद्

अर्थात् जो स्वयं प्राणों की दया पर नहीं जीता पर जिसकी कृपा से सब प्राणियों के प्राण चलते हैं उसी को तुम ब्रह्म जानो न कि उसको जिसकी अन्य लोग उपासना करते हैं। मनुष्य दिन में औसतन 21 हजार 600 सौ श्वास लेता है। प्रति चार सेकंड में श्वास भीतर जाकर ऑक्सीजन से रक्त को शुद्ध कर भीतर की गंदी वायु को लेकर बाहर आ जाता है। यह अद्भुत श्वसन लीला कौन चला रहा है? यदि कहें कि शरीर चला रहा है तो मृतक का शरीर श्वासों को क्यों नहीं चला सकता? इसलिए स्पष्ट हो जाता है कि हमारी चेतन जीवनी शक्ति ही श्वासों को चला रही है और जब वह शरीर का संग छोड़ देती है तो श्वसन एवं हृदय का स्पन्दन जो उसी पर अवलम्बित था। तुरन्त बंद हो जाता है।

प्राणी क्या है? श्वास ही प्राण है। श्वास क्या है? शरीर में संचार करने वाली वायु को ही श्वास कहते हैं। प्राण पांच प्रकार के होते हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। प्राण अन्दर जाने वाली वायु, अपान बाहर निकलने वाली वायु, समान बारीक नस-नाड़ियों तक अन्न-रस को पहुंचाने वाली वायु। व्यान-परिश्रम अथवा धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ाने के समय, भार उठाने के समय ली जाने वाली वायु। उदान—प्राण प्रणयनन या विसर्जन के समय निकलने वाली वायु।

नवयुवक कहता है कि श्वास हम लेते हैं तो उसका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि श्वास उसकी इच्छा से नहीं चल रही है। स्वतः चल रही है। सुप्तावस्था में, बेहोशी में भी चलती रहती है। इसलिए प्राणों को चलाने वाला मनुष्य से ऊपर कोई और होना चाहिए। वायु का स्वभाव आकाश की ओर भागने का होता है। क्योंकि वायु खाली स्थान में ही संचार करती है। शरीररूपी यंत्र में वायुरूपी पक्षी कैसे टिका हुआ है इसी पर बड़ा विस्मय होता है। महात्मा रवीदास ने कहा है—

नवद्वारे का पींजरा, तामे पक्षी पौन (पवन)।
रहिबे को अचरज महा, गये अचंभो कौन?

वास्तव में दो कान, दो नासिकाद्वार, दो आंख, मुख और मल-मूत्र के कुल मिलाकर नौ बड़े द्वारों से पवन रूपी पक्षी बड़ी सुगमता से बाहर आ सकता है। इसके साथ शरीर में लाखों रोमछिद्र भी वायु के निकलने के लिए पर्याप्त द्वार हैं। इन रोमछिद्रों से पसीना बाहर निकलता है और उसीसे वायु भी निकल सकता है। फिर श्वास टिका हुआ कैसे है? इस पर एक और अचम्भा यह है कि श्वास स्थिर समरूप में टिका हुआ भी नहीं है। जब प्रतिदिन 21 हजार 600 श्वास इस पिंजरे से बाहर निकलकर ब्रह्माण्ड की सैर करता है और पुनः पिंजरे में लौट आता है। इसलिए मानव शरीर स्वयं अपने आपमें सब रहस्यों में सबसे बड़ा रहस्य बना हुआ है।

पश्चिम के वैज्ञानिकों से मैंने इस विषय में बार-बार चुनौती देकर पूछा है क्या विज्ञान ने आज तक कोई यंत्र बनाया है जो वायु से चलता हो? जिसमें नौ बड़े-बड़े द्वार और लाखों छिद्र जैसे छोटे-छोटे द्वार भी खुले हों और वायु यंत्र में से 21 हजार 600 बार प्रतिदिन बाहर निकलकर पुनः अपने आप भीतर प्रवेश करता हो। अभी तक किसी वैज्ञानिक से समाधानकारक उत्तर नहीं मिला। वे स्वयं सहमत हैं कि यह एक रहस्य ही है।

श्वास का बाहर निकलना ही मृत्यु है। यदि बाहर निकला हुआ पुनः लौटकर भीतर न आये तो यह शरीर क्षणभर में मृतक होकर गिर जाए। मुंगेर में एक बालक दीपावली पर मुख से फूंक लगाकर गुब्बारा फुलाता है और श्वास अन्दर खींचने से गुब्बारा पिचक कर उसके मुंह में चला जाता है। 10-12 बार ऐसा करके वह कुछ एकत्रित बच्चों को तमाशा दिखा रहा है। अचानक एक बार गुब्बारा अन्दर खींचने पर उसकी श्वास नलिका पर अटक गया और वह तत्क्षण गिरकर मर गया। इतनी कच्ची श्वास की डोरी पर जीने वाला मानव कैसे कह सकता है कि श्वास वह लेता है और जीवन उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। जीवन का दाता और प्राणों का प्राण परब्रह्म परमेश्वर ही है। इसलिए जीवन प्रभु का एक महान् और दिव्य वरदान है।

प्राणी प्राणायाम द्वारा अपने प्राणों से प्राणेश्वर की अर्चना करता है। भक्त अपने प्राण की माला में प्रभु का नाम पिरोकर श्वास-प्रश्वास की सुमिरन की माला से प्राणदाता परमेश्वर की पूजा करता है। योगी अन्तकाल में प्राणों को ब्रह्मरंध्र में चढ़ाकर प्राण विसर्जन वेला में अपने प्राणों के पुण्य प्राण प्राणेश्वर के चरणों में चढ़ाकर मुक्त हो जाता है।

श्वास श्वास में हरि जपो
वृथा श्वास मत खोय
न जाने एही श्वास में
आवन होय न होय।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म तमश्नुते।।

जब इस मनुष्य के हृदय में रहने वाली सब कामनाएं नष्ट हो जाती हैं तब वह अमृत हो जाता है और इसी जीवन में ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

जीवन रहस्य : द्वितीय

शुद्ध प्रकाश में जड़ और चेतन का भेद नहीं है। वहां पर प्रकाश ही प्रकाश है। उस शुद्ध प्रकाश, ब्रह्म प्रकाश को प्राप्त करने के लिए चेतना का सहारा लिया जाता है। चेतन-जड़ का अन्तर उसमें भेद लौकिक वस्तु है। इस संसार को समझने के लिए जड़-चेतन का भेद किया जाता है। अमृत और मृत्यु का भेद व्यावहारिक सत्ता में है, पारमार्थिक सत्ता में नहीं। इस भेद को समझना आवश्यक है। व्यावहारिक सत्ता को पार किए बिना पारमार्थिक सत्ता को प्राप्त करना कठिन है। शुद्ध प्रकाश में भेद नहीं है। वहां अभेद है। भेद सांसारिक गुण है। भेद करते हुए अभेद तक पहुंचना होगा। भेद को पहचानते हुए, उसकी मर्यादा का पालन करते हुए अभेद को प्राप्त करना होगा।

संसार में जड़-चेतन का भेद—

चेतन- के लिए प्रयुक्त शब्द—पुरुष, आत्मा, जीवन, प्राण।

चेतना के तीन भेद, मनोविज्ञान के अनुसार—

ज्ञानात्मक—के कारण जोड़-घटाव आदि जानते हैं।

भावात्मक—से सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं।

संकल्पात्मक—इससे हम किसी काम का संकल्प करते हैं।

चेतनाशील प्राणियों की मुख्य विशेषता है।

चेतनाशील प्राणियों की गति स्वत:चालित और ध्येयोन्मुख होती है। पेड़-पौधों में भी चेतना शक्ति रहती है। मगर सुषुप्ति अवस्था में सूक्ष्म रूप में रहती है। मांसाहारी पेड़ अभी भी दक्षिण अफ्रीका आदि में पाए जाते हैं। जो किसी भी दूसरे जीव के खून पर जीवित रहते हैं। जब उस गाछ के नीचे कोई जीव जाता है तो उस पेड़ की डाल उस जीव को कसकर दबोच लेती है और उसका खून चूस लेती है। मांसाहारी फूल भी होते हैं। यह भी food seeking activity है। ध्येय के बीच बाधा आने पर उसके अनुसार अपने को समायोजित करना यह चेतन प्राणियों की विशेषता है।

मनुष्य और मशीन में अन्तर—मशीन पदार्थ है। निर्जीव है। मनुष्य सजीव है। मनुष्य की गति किसी चेतनशील मनुष्य द्वारा चालित है। मनुष्य की गति स्वतःचालित है। मनुष्य ने मशीन को Calculate करके रख दिया है और उसके अनुसार मशीन काम करती है। मशीन अपने आप कुछ नहीं करती है। कोई भी मशीन Purely automatic नहीं होती। उसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव की शक्ति काम करती है। यदि Human factor निकाल दिया जाए तो मशीन का कोई अर्थ नहीं रहता।

मनुष्य में ध्येय को पहचानने की शक्ति होती है। मशीन में यह शक्ति नहीं होती। Recognisation of Goal नहीं होता। Automatic activity towards the goal, Recognisation of goal. Adjustment of goal. स्वतःवर्धन, वंश-वर्धन ये सभी चेतनाशील प्राणियों के गुण हैं। मशीन परतःचालित होती है। ध्येय की पहचान नहीं होती है। गति कार्य स्वतः नियंत्रित नहीं होता। जड़ में परिस्थिति का ज्ञान, जगत् का ज्ञान, चैतन्य का ज्ञान, आत्मज्ञान, अन्य जड़ वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता है।

चैतन्य वस्तु में उपरोक्त सभी ज्ञान है।

मनुष्य में चेतना का विकास

	सत्ता	जीवन	चेतना	नैतिक चेतना	आत्म चेतना
जड़ पदार्थ में	है	×	×	×	×
खनिज वस्तु में	है	×	×	×	×
वनस्पति में	है	है	घनसुषुप्ति	×	×
पशु-पक्षियों में	है	है	है	है	×
मनुष्य में	है	है	है	है	है

पशु में स्वतः एक प्रेरणा से नैतिक चेतना है। मगर आदमी में नैतिक गुण है। नैतिकता की कसौटी है नैतिक और अनैतिक के बीच चुनाव करना। एक कुत्ता अपने चोर स्वामी के प्रति भी वफादार होता है और कुत्ते का साधु के प्रति भी वफादार होना उसका गुण है। मगर नैतिक गुण नहीं।

जीवन ही चेतना है। चैतन्य ही जीवन है। परम चैतन्य में ही परम जीवन मिलता है। शाश्वत जीवन प्राप्त होता है।

आत्मा

भारत का धर्म दर्शन एवं समस्त चिन्तन आत्मा रूपी केन्द्रीय बिन्दु पर ही टिका हुआ है। भारत की सभी विचारधाराओं के लिए कोई सामूहिक नाम है तो वह अध्यात्मवाद (Spiritualism) है। हमने इसे ईश्वरवाद या Godism नहीं कहा। इसके कई कारण हैं—

(क) ईश्वर के विषय में भारत के दो-एक धर्मों में कुछ मतभेद हो सकते हैं। किन्तु आत्मा के विषय में किन्हीं भी भारतीय सम्प्रदायों में कोई भी मतभेद नहीं है। बौद्ध दर्शन ईश्वर के विषय में मौन है। जैन दर्शन उसकी सत्ता को आधा स्वीकारता है। किन्तु आत्मा की सत्ता, चार्वाक को छोड़कर शेष सभी भारतीय विचारधाराओं की आस्था का समान बिन्दु है। इसलिए भारत की चिन्तनधारा को अध्यात्मवाद और पश्चिमी चिन्तनधारा को भौतिकवाद, जड़वाद या भोगवाद नाम दिया जाता है। जो विचारधाराएं ये मानती हैं कि जड़ एवं चेतना शून्य पदार्थ ही विश्व की अन्तिम सचाई है उसे भौतिक कहा जाता है। इसकी तुलना में जो विचार-सरणी यह मानती है कि विश्व की अन्तिम सचाई परम चैतन्ययुक्त अमर आत्मा ही है उसे अध्यात्मवाद कहा जाता है। इसको मानने वाले अध्यात्मवादी कहलाते हैं।

(ख) भारत के जितने मत-सम्प्रदाय हैं उनकी चार समान आस्थाएं हैं। यही चार हिन्दू धर्म के दार्शनिक आधार हैं—

1. आत्मा अजर, अमर व अविनाशी है।

2. जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है।

3. जब तक मोक्ष नहीं मिलता तब तक पुनर्जन्म होता रहेगा। ताकि मनुष्य मोक्ष के लिये अधूरी रही साधना को अगले जन्मों में पूरा कर सके।

4. जब पुनर्जन्म होगा तो पिछले जन्मों के अर्जित कर्मों का फल, पिछली अधूरी साधनाएं अगले जन्म में साथ-साथ चलेंगी।

हिन्दू धर्म के इन चारों दार्शनिक सिद्धान्तों में सबसे आधारभूत सिद्धान्त आत्मा की अमर सत्ता ही है। उस एक की व्याख्या अथवा मंथन से चारों सिद्धान्त प्रकट हो जाते हैं।

आत्मा में अमरत्व सत्ता एवं स्वतंत्रता निजानन्द—जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष वास्तव में आत्मसाक्षात्कार की ही स्थिति है। यदि आत्मा में अमरत्व न हो तो आत्मसाक्षात्कार से क्या प्राप्त होगा। यदि दूध में घृत छिपा हुआ है तो मंथन से प्रकट किया जा सकता है। यदि फल में रस हो तो उसे प्रयत्न करके पान किया जा सकता है। किन्तु, जिस पानी में घृत का अंश है ही नहीं उसको बिलोने से घृत कैसे निकलेगा? जो कुछ आत्मा में गुम्फित है उसे प्रत्यक्ष प्रकट कर लेना यही आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष है। इस प्रकार आत्मा की सत्ता नहीं तो मोक्ष की कोई सम्भावना ही नहीं बचती है। यदि सत्ता कुछ हो ही नहीं तो स्वतंत्रता का क्या अर्थ होगा। मोक्ष की महिमा हेतु भगवान् मनु ने लिखा है—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखं' अर्थात् सर्वपरवशता ही दुःख है। आत्मवशता ही सुख है। यह आत्मवशता ही मोक्ष का आनन्द है जिसके लिए जीव 84 लाख योनियों में तरस रहा है।

यदि आत्मा कोई शाश्वत सत्ता है तभी तो आत्मवशता का कुछ अर्थ हो सकता है। अन्यथा नहीं। यदि बीज में आम हो तो वृक्ष में भी आम लगेगा। अन्यथा असम्भव ही है। यदि आत्मा में निजानन्द, परमानन्द निहित न हो तो आत्मसाक्षात्काररूपी मोक्ष में वह आनन्द कहां से प्राप्त होगा जो आत्मा में पिहित (Latent) है उसे अपिहित (Patent) या प्रकट करना यही मोक्ष साधना है। (आत्मा में जो गुण सम्पदा छिपी हुई है उसे पाना ही मोक्ष है)।

आत्मा की सत्ता पर पुनर्जन्म निर्भर—जब तक जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ तब तक पुनर्जन्म का विधान भी आत्मा की अमर सत्ता पर निर्भर एवं आत्मा की महिमा प्रकाश के लिए ही है। यदि आत्मा अमर न हो तो शरीर के श्मशान भूमि में जल जाने या जल में जलचरों का आहार बन जाने अथवा कब्र में मिट्टी बन जाने के पश्चात् पुनर्जन्म कैसे सम्भव होता है। किन्तु इतिहास के एवं प्रत्यक्ष जीवन के हजारों प्रमाणों से पुनर्जन्म सिद्ध हो जाता है।

पुनर्जन्म का उद्देश्य है आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयास का अवसर प्राप्त होना। पुनः पुनः पुनर्जन्म का उद्देश्य क्या है? उद्देश्य है आत्मसाक्षात्कार के लिए पुनः पुनः प्रयास। परीक्षा में एक बार अनुत्तीर्ण हो जाने पर पुनः परीक्षा में बैठने का अवसर सिद्ध करता है कि परीक्षा अनिवार्य है। और परीक्षा की महत्ता सिद्ध करती है कि जिस विद्या को प्रकट करने के लिए परीक्षा है वह विद्या बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यदि प्रथम प्रयास में सफल नहीं हुए तो पुनः-पुनः परीक्षा में बैठने का अवसर मिलेगा। किन्तु अन्ततोगत्वा परीक्षा में पास होना अनिवार्य है।

विद्या में अध्यात्मविद्या इसके प्रकटन के लिए पुनर्जन्म पर इसका दुरुपयोग करने पर मनुष्य योनि से पतित होकर पशु योनि प्राप्त होना कुछ समय के लिए—

भगवान् गीता में कहते हैं—'अध्यात्मविद्या विद्यानां' अर्थात् सब प्रकार की विद्याओं में मैं अध्यात्मविद्या हूं। इस विद्या की सफलता है आत्मसाक्षात्कार और उसकी परीक्षा का अवसर है पुनर्जन्म। जैसे परीक्षा में नकल, बेईमानी करने पर कुछ वर्षों के लिए परीक्षा से बहिष्कृत कर दिया जाता है। उसी प्रकार मानव जन्म में मोक्ष साधना के स्थान पर कुकर्मों में लग जाने पर कुछ समय के लिए मानव योनि से वंचित कर क्षुद्र-पशुयोनियों में ढकेल दिया जाता है।

पिछले जन्मों की संचित कमाई नष्ट नहीं होती वरन् कर्म सिद्धान्त के अनुसार साथ चलने का विधान—एक अथवा अनेक जन्मों में संचित कर्मों की पूँजी से यदि जीव मोक्ष का अधिकारी नहीं बना तो पुनर्जन्म के समय क्या उसकी पिछली सारी कमाई नष्ट हो जायेगी। यदि ऐसा हो तो बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण ही कहा जाएगा। कर्म सिद्धान्त में पिछले जन्मों की पूँजी साथ चलने का जो विधान है वह इसलिए है ताकि जीव अन्ततोगत्वा जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार का लाभ कर सके।

कर्म-सिद्धान्त आत्मा की अमरता पर आधारित एवं अनेक जन्मवाद पर आधारित—कर्म सिद्धान्त भी आत्मा की अमरता पर आधारित तथा आत्मसाक्षात्कार की उपलब्धि के लिये ही है। यदि आत्मा अमर नहीं तो पिछले जन्मों के कर्मों का फल शरीर के नष्ट हो जाने के पश्चात् कौन भोग सकता है। यदि मानव का एक ही जन्म होता है तो जन्म से ही किसी बच्चे को अंधा, लूला-लंगड़ा, भ्रष्ट पैदा करने वाला अल्लाह या God न्यायकारी कैसे कहा जा सकता है।

कर्मों की पूँजी का सुन्दर विनियोग पिछड़े साधक का सहयोग या जग हित के साथ-साथ कर्मफल प्रभु के चरणों में अर्पित—पूँजी सदा विनियोग के लिये ही होती है। कर्मों की पूँजी भी किसी उद्देश्य के लिये है। इसका सुन्दर विनियोग यह है कि शुभ कर्मों से जगत् का कुछ कल्याण हो सके। साथ ही जो साधक आत्मसाक्षात्कार के लिये अभी पीछे है उनका सहयोग करके उन्हें भी जीवन की परीक्षा में उत्तीर्ण होने में सहायता मिल सके। कर्मों की पूँजी का दूसरा विनियोग है प्रभु के दिये हुए तन से, प्रभु के दिये हुए मन से, प्रभु के दिये हुए धन से, प्रभु के दिये हुए जन से, प्रभु की दी हुई इन्द्रियों द्वारा, प्रभु के दिए हुए बुद्धि के प्रकाश से, प्रभु की दी हुई आत्मा की ज्योति से, प्रभु की प्रेरणा द्वारा प्रभु के रचे हुए जगत् में, प्रभु के जीवों के प्रति जो भी कल्याणकारी शुभकर्म इस शरीर से बन पड़े उन सब कर्मों को प्रभु के चरणों में ही समर्पित कर दिया जाए। इस प्रकार कर्मों के पुष्पों से, कर्मफल के नैवेद्य से कर्तापन के अहंकार रूपी कपूर को जलाकर कर्मों की सारी पूँजी प्रभु के चरणों में चढ़ाकर कर्मों द्वारा प्रभु की पूजा की जाए। ऐसे में कर्मों की पूँजी का सबसे उत्तम विनियोग भी हो जाएगा। पूँजी शेष न रहने से कर्म

का व्यापार भी बंद हो जाएगा। कर्मफल एवं कर्तापन का अहंकार विलीन हो जाने से कर्मों की फांसी भी समाप्त हो जाएगी और आत्मसाक्षात्कार रूपी जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भी प्राप्त हो जाएगा।

आत्मा मूल बीज है। मोक्ष उसी का फल है। पुनर्जन्म उसी की खेती का प्रयास है और कर्म सिद्धान्त खेती के लिए उपयोगी खाद-पानी है। इस तरह हिन्दू धर्म के चारों दार्शनिक सिद्धान्त आत्मा पर टिके हुए हैं। इसलिए भारत ने आत्मा की साधना पर इतना बल दिया है। इसकी प्राप्ति से सब कुछ अपने आप प्राप्त हो जाता है। 'यत लब्धा ना परमं लाभम्'। जिसको लाभ करने के पश्चात् अन्य कोई बड़ा लाभ नहीं बचता। ऐसा अद्भुत आत्मतत्त्व है।

आत्मा का यथार्थ स्वरूप परमात्मा ही है—जिस भगवान् की प्राप्ति के लिए जीव तरसता रहता है। जीवनभर साधना करता है। उसका स्वरूप क्या है? भारत के ऋषियों ने खोजा कि उसका स्वरूप आत्मा ही है। उसे शुद्ध आत्मा, विशुद्धात्मा, विश्वात्मा, परमात्मा, जगदात्मा आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। जब तक जीव अज्ञान में है तब तक नाम और रूप से बद्ध, अहंकार से दूषित मैं को आत्मा मानता रहता है। वह मेरा आत्मा, तेरा आत्मा शब्द भी प्रयोग करता रहता है। ये सब अहंकार से दूषित मैं का वर्णन है। नाम और रूप माया के दो बड़े अभिकर्ता हैं। वे शरीर और संसार का नाम परिचय (नामपट्ट) लगाकर माया का व्यापार चालू कर देते हैं। जब मनुष्य विवेक द्वारा यह जानता है कि नाम और रूप के लेबल सच्चे और शाश्वत नहीं हैं। तब नाम-रूप से परे अपने शाश्वत मैं की खोज करता है। नाम-रूप के अहंकार से परे जो निर्लिप्त आत्मा, असंग आत्मा, शुद्धात्मा की सत्ता है उसका ज्ञान या मात्र भान होने पर ही उसे प्रकाश होता है कि शुद्धात्मा, विशुद्धात्मा, निर्लिप्त आत्मा, असंग आत्मा की सत्ता है और शुद्धात्मा, विशुद्धात्मा, निर्लिप्त आत्मा, असंग आत्मा में मेरा-तेरा का कोई भाव नहीं बचता। वहां एक ही अखण्ड आत्मा की सत्ता है। बिजली के अलग-अलग बल्बों को देखकर लाल, पीले व हरे रंगों का भान होता है, किन्तु जिस विद्युत् से सब चमक रहे हैं उस विद्युत् का कोई रंग-रूप नहीं है। वह सभी रंग-रूपों का आधार होते हुए भी सभी रूप रंगों से निर्लिप्त है। इसी प्रकार यह असंग आत्मा, निर्लिप्त आत्मा सब जीवों में अखण्ड-एकरस होने के कारण इसे विश्वात्मा, जगतात्मा, सकल भूत अन्तरात्मा अथवा परमात्मा कहा जाता है। इस प्रकार परमात्मा मूलतः शुद्धात्मा ही है। परमात्मा परमचैतन्य रूप एवं परम ज्ञान स्वरूप है। यह आत्मा के ही गुण हैं। बिना आत्मा के न तो परमात्मा को समझा जा सकता है और न उसकी सत्ता सिद्ध की जा सकती है। कठोपनिषद् में बार-बार कहा है कि जो उस परब्रह्म परमेश्वर को जो नित्यों का नित्य, चेतनों का

चेतन है, जो उसे आत्म रूप करके जानता है उसी को परम सुख व परम शान्ति प्राप्त होती है, अन्य किसी को नहीं।

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।

2/2/13 कठ उ.

जो नित्यों का नित्य और चेतनों का चेतन है और जो एक को अनेक बनाने में समर्थवान है। उस परमतत्त्व को जो धीर पुरुष स्वयं अपना आत्मा करके पहचान लेते हैं उन्हें ही शाश्वत सुख व शांति प्राप्त होती है। अन्य किसी को नहीं। इस प्रकार ईश्वर जो सब धर्मों का केन्द्रीय बिन्दु है वह स्वयं भी तात्त्विक दृष्टि से आत्मा ही है। वेदान्त का महावाक्य है—'अयमात्मा ब्रह्म'।

स्वामी रामतीर्थ कहते हैं Self realisation is God realisation आत्मज्ञान ही परमात्मज्ञान है। आत्मा की प्राप्ति ही परमात्मा की प्राप्ति है। वेद-उपनिषद् बार-बार उद्‌बोधन करते हैं आत्मानंविद्धि अपने आपको जानो। यूनानी दार्शनिक सुकरात ने कहा—

Know thyself

Knowledge is power

अपने आपको जानो, ज्ञान ही महाशक्ति है।

महात्मा कबीर कहते हैं—

आत्मज्ञान बिना सब कुछ सूना

क्या मथुरा क्या काशी रे।

पानी बिच मीन प्यासी रे।

गुरु तेगबहादुर भी चेतावनी देते हैं—

कह नानक बिन आपा चिन्हे

मिटे न भ्रम की काई

काहे रे वन खोजन जाई?

आत्मा का अस्तित्व

सच्चे मैं का स्वरूप—आत्मा का अर्थ है मैं। मैं के लिए संस्कृत में चार शब्द हैं—अहम्, स्वयं, निज और आत्मा।

दुर्भाग्य से मानव अपने सच्चे मैं को भूलकर इन चारों शब्दों का अशुद्ध प्रयोग करने लगा है। अहम् पर शरीर का अध्यास कर वह अहंकार करने लगा है।

इस अहंकार के कारण ही वह आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य से भटक गया है। स्वयं पर अपनी बुद्धि का आरोप कर वह कहता है मैं स्वयं विचार कर सकता हूं। मैं स्वयं निर्णय ले लूंगा। निज पर अहंता-ममता का अध्यास कर वह कहता है यह मेरा निज का व्यक्तित्व है। यह मेरी सम्पत्ति है, आत्मा पर मन का आरोप कर वह कहता है मेरे आत्म सम्मान को ठेस लगी है। मैं आत्म सम्मान के लिए सर्वोच्च न्यायालय तक केस लड़ूंगा। मैं शत्रु का सर्वनाश करके रख दूंगा। शुद्ध अहम्, शुद्ध निज, शुद्ध स्वयं, शुद्ध आत्मा ही हमारा सच्चा मैं है। चाहे कोई ज्ञानी हो या अज्ञानी मैं के अस्तित्व से कोई इनकार नहीं कर सकता। जितना-जितना मैं के अस्तित्व पर शक करता है उतना-उतना मैं अपने आप सिद्ध होता जाता है। संदेह है तो संदेहकर्ता अवश्य है।

देकार्त एवं शंकराचार्य—शंकराचार्य और देकार्त तर्क देते हैं कि यदि सृष्टि में कुछ भी सत् नहीं तो संदेह पैदा होता है कि क्या मैं संदेह करने वाला स्वयं भी हूं या नहीं? संदेह संदेहकर्ता को सिद्ध कर देता है कि यदि संदेहकर्ता ही नहीं है तो संदेह पैदा हो कैसे सकता है। जितना-जितना मैं अपने अस्तित्व पर संदेह करता जाता हूं उतना-उतना ही अधिक मेरा अस्तित्व सिद्ध होता जाता है। इसी बात को फ्रांस के दार्शनिक देकार्त ने कहा—

Cogito Ergo Sum I know therefor I am.

मैं जानता हूं इसलिए मैं अवश्य हूं। मैं संदेह करता हूं अतः मैं अवश्य हूं। अतः सत् की सत्ता का विवेकपूर्ण व तर्कसंगत आधार मिल जाता है। स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं—प्राचीन काल में नास्तिक उसे कहा जाता था जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता था। पर मैं उसे नास्तिक मानता हूं जो स्वयं की सत्ता में विश्वास नहीं करता। यह बड़ी विचित्र बात है कि संसार का सबसे बड़ा नास्तिक भी अपनी सत्ता से इंकार करने को प्रस्तुत नहीं होता।

मैं को मान कर ही तत्त्वदर्शन का आरम्भ आत्मा स्वयंसिद्ध है—इस प्रकार मैं को मानकर ही समस्त तत्त्वदर्शन का द्वार खुलता है। यह अलग बात है कि कोई मैं के सच्चे स्वरूप की खोज करे और कोई उसके बहिरंग की मीमांसा तक ही सीमित रह जाए। किन्तु मैं के बिना किसी का भी काम नहीं चलता। मैं को सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वरन् उसको असिद्ध करने का हर प्रयास इसको और अधिक सिद्ध करता जाता है। मुझे अपनी चेतना के द्वारा ही चेतना की चेतना है। I am conscious of my consciouness through by consciousness. इसलिए मैं को या चेतना को सिद्ध करने के लिए किसी भी बाहर के प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। मेरा चिन्तन ही सिद्ध कर रहा है कि मैं चिन्तनकर्ता अवश्य हूं।

इस प्रकार मैं या आत्मा स्वयंसिद्ध है। इसको दिखाने या सिद्ध करने के लिए किसी बाहर के प्रकाश या प्रमाण की आवश्यकता रहे वह परतःप्रमाण या परप्रकाश होता है। जैसे अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी को दिखाने के लिए दीपक के प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु आत्मा स्वत:प्रमाण एवं प्रकाश है, बल्कि इसी के प्रकाश से संसार की अन्य वस्तुएं और तत्व-ज्ञान के अन्य विषय प्रकाशित व प्रमाणित हो सकते हैं। बाहर की वस्तु को दिखाने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। वैसे बुद्धि के दीपक के दर्शन से वह प्रकाशित होती है। मैं होगा तभी जिज्ञासा होगी। बिना मैं के न प्रश्न होगा, न उत्तर। न दार्शनिक चर्चा की सम्भावना, न दर्शनशास्त्र। अतः सारा दर्शनशास्त्र इस आत्मतत्त्व पर ही टिका हुआ है।

न केवल दर्शनशास्त्र मैं पर टिका हुआ है वरन् सृष्टि भी—उपनिषद् के ऋषि कहते हैं केवल दर्शनशास्त्र ही क्यों सारा विश्व इसी आत्मतत्त्व से प्रकाशित व प्रमाणित हो रहा है। हम कल्पना करें कि यदि सृष्टि में चेतन तत्त्व न होता तो सृष्टि क्या होती, कैसी होती। इसकी कल्पना भी भयंकर है। क्योंकि कल्पना करने के लिए किसी चेतना की आवश्यकता पड़ती है। मुर्दा मुर्दों की बरात सजा कर मुर्दा घाट में मृत्युभोज करता तो उसकी हलवा-पूरी खाकर किस भौतिकवादी का पेट भरता। इसलिए सारी सृष्टि चेतना के तंतु पर ही टिकी हुई है। भगवान् गीता में कहते हैं—**भूतानामस्मि चेतना।** 10/22

अर्थात् मैं सब भूतप्राणियों की चेतना हूं। आत्मा का स्वरूप सत्-चित् आनन्दस्वरूप है।

आत्मा का सत् स्वरूप—सत् की कसौटी सदा बना रहना असत् जिसकी सत्ता सदैव न रहे—सत् वस्तु वह है जिसकी सत्ता सदा बनी रहे। भगवान् ने गीता में सत् की कसौटी बताते हुए लिखा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। 2/16

अर्थात् सत् का कभी अभाव नहीं है न ही असत् का होता भाव। तत्त्वदर्शियों, ऋषियों उन दोनों का किया यहीं ठहराव।

जो वस्तु सत् है वह कभी मिटेगी नहीं। जो असत् है वह सदा टिकेगी नहीं। संसार की जितनी वस्तुएं हैं सब सत् प्रतीत होती है। किन्तु, विवेक का दीपक जलाने पर पता चलता है एक न एक दिन उनका विकार या विनाश हो जाता है। एक समय था जब वह वस्तुएं नहीं थी। एक समय है जब ये वस्तुएं हैं और एक समय पुनः होगा जब वे वस्तुएं नहीं रहेंगी। जो वस्तु भूतकाल में असत् थी, भविष्यत् में पुनः असत् हो जाएगी। केवल वर्तमान में सत्-सी प्रतीत होती है। वह

वास्तव में असत् है, असत् ही है। केवल सत् की भ्रान्ति हो रही है। इसी भ्रान्ति को शंकराचार्यजी ने माया कहा है। इसके सत् प्रतीत होने का रहस्यमय कारण है कि अनेकता में भासित होने वाली सत् वस्तुएं मूलतः एक ही सत् के अधिष्ठान पर टिकी हुई है। नाम-रूप ने उनको अनेकता और अलग-अलग सत्ता की भ्रान्ति में बांध रखा है। जल की बूंद, वीचि, लहर, तरंग, ज्वारभाटा, फेन, वाष्प, बादल, घने बादल, वर्षा, हिमवृष्टि, नदी-नाला, तालाब, बावड़ी, कुआं, नद, महानदी, समुद्र, महासमुद्र सबके नाम-रूप पृथक्-पृथक् हैं। व्यवहार जगत् में भाप को बर्फ कहना और वर्षा को समुद्र कहना मूर्खता माना जाएगा। भाप गरम, बर्फ ठण्डी है, वर्षा बिन्दु में है, सिन्धु अगाध है। किन्तु इन सबके नाम-रूप के, माया के पर्दे के पीछे जो जल तत्त्व है वह एक और अविभाज्य है। उसके बिना जल के विकारों की सारी सृष्टि मिथ्या और माया ही है। इसी प्रकार अनन्त फैलाव वाला और अनेकता के रूपों वाला सारा विश्व किसी एक ही सत् वस्तु पर टिका हुआ है। जो उस एक को जाने वह ज्ञानी और जो परिवर्तनशील, नश्वर, अनेकता को ही जाने वह भ्रान्त अज्ञानी है। यदि शरीर सत् है तो उसका नाश कभी नहीं होना चाहिए। यदि इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, संसार के ऐश्वर्य-भोग, अहंता-ममता में बंधा हुआ सारा संसार सत् है, तो उसका कभी अभाव नहीं होना चाहिए। किन्तु सुषुप्तिकाल में पिण्ड और ब्रह्माण्ड सहित सारे संसार का अभाव हो जाता है। ये हम सब दैनिक अनुभव से जानते हैं। यदि हमारा ही अभाव हो जाता तो हम इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड के अभाव के साक्षी कभी नहीं बन सकते। यदि सत् वस्तु का सत्यानाश मान लिया जाए तो मानव के विवेक व विश्वास का महाविनाश हो जाएगा जिसे संसार के लोग सत् कहते हैं। उसके विनाश के हम साक्षी हैं। सत्य त्रिकाल-बाधित है। वह सार्वदेशिक, सार्वकालिक सत्य होना चाहिए। क्षणभंगुर, काल-कवलित और देश परिच्छिन्न सत् नहीं। गुरु नानकदेवजी जपुजी साहब के प्रारम्भ में कहते हैं—आदि सच, युगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच—आदि सत्य, युगादि सत्यम् भवति सत्य, भविष्यति सत्यम्। जो आदिकाल में सच है। युगों के विभाजन के समय भी सच है और भविष्यत् में सत्य रहेगा। उस सत्य वस्तु को जपो।

संसार उस परम सत्य को छोड़कर झूठी नश्वर वस्तुओं के चिन्तन में जीवन और जीवन की अमूल्य शक्तियों को नष्ट कर रहा है। हमने ऊपर सिद्ध किया कि आत्मा का अभाव होने पर सारे दर्शनशास्त्र का अभाव बल्कि सारी सृष्टि का अभाव हो जाता है। अतः आत्मा एकमात्र अजर, अमर, अविनाशी सत्ता है जिस पर सब कुछ टिका है। गीता में भगवान् आत्मा का निरूपण करते हुए कहते हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोन हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 2/20, गीता

आत्मा Being है Becoming नहीं—आत्मा है इसे सत्ता (Being) कहा जाता है। यह होकर होने वाला Becoming नहीं है। आत्मा अस्ति न भवति। आत्मा है, होती नहीं है। आत्मा एक अखण्ड रहता है। शरीर और संसार की अन्य वस्तुएं जो नाम-रूप के कारण भासती हैं। सब विकारी, परिवर्तनशील और होकर होने वाली हैं।

आत्मा पंचभूतों से प्रभावित नहीं होती—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। 2/23, गीता

प्रत्येक शस्त्र अपनी धार या नोक से अपने से कुछ अधिक स्थूल वस्तु को ही काट या छेद सकता है। कोई भी शस्त्र अपने से अधिक सूक्ष्म भौतिक वस्तु को काट, छेद नहीं सकता। पतले कागज की खड़ी धार को उसको सीधे ऊपर से नीचे चाकू अथवा ब्लेड द्वारा भी काटना सम्भव नहीं होता। बाल को दो भाग में चीरना तलवार अथवा चाकू से भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार भौतिक शस्त्र अपने से अधिक सूक्ष्म भौतिक वस्तु को नहीं काट सकते। आत्मा तो अभौतिक है, फिर विश्व का सूक्ष्मतम तत्त्व है उसे शस्त्र कैसे काट सकता है? धरती भौतिक तत्त्व है उसे शस्त्र द्वारा दो भाग में काटा-बांटा जा सकता है। बालू थोड़ी देर के लिए काटा जा सकता है, कालान्तर में वे पुनः एकरूप, सम हो जाती है। जल को शस्त्र द्वारा क्षण भर के लिए काटने की भ्रान्त लीला हो सकती है। अग्नि को काटना असम्भव ही है। इसी प्रकार वायु और आकाश भौतिक तत्त्व होते हुए भी शस्त्र द्वारा काटे नहीं जा सकते। तब शस्त्रों की क्या मजाल है कि वे अभौतिक और परम सूक्ष्म आत्मा को काट सकें?

अग्नि केवल उन्हीं भौतिक वस्तुओं को जला सकती है जिनमें कार्बन हो और जलाने के वातावरण में ऑक्सीजन सहायक हो। जिस वस्तु में कार्बन नहीं होगा वह कभी नहीं जलेगी। जैसे कि सोना, चांदी, लोहा आदि धातुएं केवल पिघलती हैं, जलती नहीं। उनके भीतर जो कार्बन का खोट है, वह जल जाता है। कोयला पूर्ण कार्बन ही कार्बन है किन्तु किसी ऐसे बंद स्थान पर जहां कार्बन डाइऑक्साइड या नाइट्रोजन भरी हो कोयला कार्बन होते हुए भी कभी नहीं जलेगा क्योंकि वहां ऑक्सीजन का अभाव है। सेना के कार्य के लिए Fire proof गाड़ियां बनाई जाती हैं। दरवाजे पर Fire proof रंग-रोगन किया जाता है ताकि अग्निबम से जले नहीं। अस्पेस्टा पाषाण तंतु जिसको सीमेंट में मिलाकर छत की चद्दरें बनाते हैं वह भी आग में नहीं जलता। अग्नि पृथ्वी के कार्बनिक तत्त्वों को जलाती है। जल को वाष्प बना देती है किन्तु जलाती नहीं। वायु को गर्म करके फैला देती है जलाती नहीं। बड़ी से बड़ी आग भी आकाश को जला सकती नहीं। जब अग्नि

सभी भौतिक वस्तुओं को भी नहीं जला सकती तब अभौतिक, परम सूक्ष्म आत्मा को कैसे जला सकती है?

जल पृथ्वी तत्त्व की उन वस्तुओं को गीला कर सकता है जिनमें कुछ छिद्र हों। तोलिया गीला हो जाता है, किन्तु बरसाती का कोट गीला नहीं होता। उसमें छेद न होने के कारण पानी फिसल जाता है। प्लास्टिक, शीशा, बेकुलाइट, लोहा आदि धातुएं भी पानी से गीली नहीं होती। पानी अग्नि, वायु, आकाश आदि को भी गीला नहीं कर सकता। जब आत्मा में कोई शस्त्र छेद कर ही नहीं सकता तब पानी कैसे घुसेगा? जो पानी अनेक भौतिक तत्त्वों को गीला नहीं कर सकता वह अभौतिक और परम सूक्ष्म आत्मा को कैसे गीला कर सकता है?

वायु उन वस्तुओं को सुखा सकता है, जो पानी से गीली हो सकती हैं। जो आत्मा गीला ही नहीं हो सकता तो उसको सुखाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इस वैज्ञानिक विश्लेषण से भी आत्मा की अमरता एवं अविकारिता सिद्ध होती है। उपनिषदों, योगवासिष्ठ एवं अन्य भारतीय ग्रंथों में आत्मा की अविनाशिता का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। आत्मा की सत्ता का विनाश करने का प्रयास आत्महत्या ही है। क्योंकि आत्मा तो स्वयं ही है। इसलिए आत्मा की सत्ता से इनकार स्वयं की सत्ता से इनकार है। बड़े से बड़ा नास्तिक भी अपनी स्वयं की सत्ता से इनकार नहीं कर सकता।

चित्त—चेतना का मूलस्रोत, अक्षय भण्डार आत्मा ही है। मुझे अपनी चेतना से ही चेतना की चेतना है। अतः मेरी चेतना सिद्ध करने के लिए किसी बाहर के प्रमाण या किसी डॉक्टर के प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं है। चेतना एक स्वयंसिद्ध तथ्य है। इस चेतना ने ही सारे विश्व को प्रकाशित किया है। खनिज, वनस्पति जगत्, पशु-पक्षी जगत्, मानव, बौद्धिकता, नैतिकता और आध्यात्मिकता सभी चेतना से ही आलोकित हैं। चेतन तत्त्व के बिना विश्व के मुर्दाघाट में केवल महामृत्यु का ही नृत्य होता। इसे देखने वाला कोई भी नहीं होता। ऐसे विश्व की कल्पना भी असम्भव है। चेतना के सूर्य से ही पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह-नक्षत्र, बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् सभी कुछ आलोकित है। शरीर जड़ और आत्मा चैतन्य है। उस चेतन के संयोग से ही जड़ मुर्दा शरीर जो बिना चेतना के एक शब्द भी नहीं बोल सकता, ऐसा धाराप्रवाह भाषण करता है। यदि शरीर में बोलने का सामर्थ्य हो तो शरीर तो मुर्दे का भी है और कोई एक भी बोलकर दिखाये। शरीर तो अपने आप में गूंगा है। वह आत्मा के संयोग से इतना सुन्दर बोलता, गाता है। मुर्दा शरीर बिना आत्मा के एक कण भर भी हिल-डुल नहीं सकता। किन्तु आत्मा के संयोग से यही मुर्दा शरीर हिमालय की सर्वोच्च चोटियों पर चढ़ जाता है। सचमुच आत्मा की कृपा से गूंगे बोलने लगते हैं, पंगु पहाड़ की चोटी पर चढ़ जाते हैं—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम्,
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्।

जिसकी कृपा से मूक भी वाचाल बन जाते हैं और लंगड़े भी पहाड़ लांघ जाते हैं। उस परमानन्द माधव को नमस्कार हो। वह परमानन्द माधव आत्मदेव ही है।

आत्मा ही चेतना है और चेतना ही आत्मा है। इसलिए आत्मा में चेतना मानना त्रुटिपूर्ण होगा। आत्मा में चेतना का प्रश्न नहीं है, आत्मा ही चैतन्य रूप है। चेतना आत्मा का कोई गुण मात्र नहीं है। वरन् वह उसका सारतत्त्व ही है। चेतना का अर्थ है—ज्ञान, प्रकाश और ज्योति। अतः आत्मा ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, अंत:ज्योतिस्वरूप है। वह एक ऐसी ज्योति है जो विश्व की समस्त ज्योतियों का मूलस्रोत है। वह ज्योतियों की भी ज्योति है। वह शुद्ध ज्योति है। परम ज्योति है। संसार में जितने प्रकाश हम देखते हैं उनमें कुछ न कुछ अंधकार का मिश्रण होता ही है। एक कमरे में सौ वाट का बल्ब लगाने से प्रकाश तो होता है, किन्तु उस प्रकाश में कुछ अंधकार का मिश्रण रहता है। दो सौ वाट का बल्ब लगाने से अधिक प्रकाश होता है, फिर भी कुछ अंधकार का मिश्रण रहता है। इसी तरह, 500, 1000 वाट का बल्ब लगाने से भी उस प्रकाश में कुछ न कुछ अंधकार का मिश्रण रहता ही है। क्योंकि उस भवन में और अधिक प्रकाश वाले बल्ब की गुंजाइश बनी रहती है। यदि कोई प्याला लबालब दूध से भरा हो तो उसमें एक बूंद भी अतिरिक्त दूध नहीं समा सकता है। यदि भवन में पूर्ण प्रकाश हो तो और अधिक प्रकाश की गुंजाइश नहीं बचनी चाहिए। तारों के प्रकाश में अंधकार स्पष्ट मिला हुआ है, चन्द्रमा के प्रकाश में अंधकार स्पष्ट दिखाई देता है। सूर्य के प्रकाश के समय में भी आधी धरती पर काल-रात्रि रहती है। सूर्य के दिन के प्रकाश में भी अनेक स्थानों पर छाया, प्रकाश की न्यूनता और बंद कमरों एवं गुफाओं में अंधेरा रहता है। इसका अर्थ है सूर्य के प्रकाश में भी अंधकार का मिश्रण है। आत्मा ऐसा महासूर्य है जिसका प्रकाश पूर्ण प्रकाश है। वह सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तक को भी प्रकाशित करने वाला है। वह अंधकार से नितान्त परे है। वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। वही एकमात्र जानने योग्य वस्तु है। उसके जानने का साधन भी ज्ञान ही है और वह ज्योतियों की ज्योति, परम ज्योति सबके अन्तर् में आत्मरूप से विराजमान है। इस महान् सिद्धान्त का कथन भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में किया है—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। 13/17

इतना महानतम प्रकाश मानव के हृदय में ही गुम्फित है। यही राजविद्या है। यही राजगुह्य है (सबसे बड़ा रहस्य है)। साहित्य में आत्मा में परमात्मा के दर्शन,

आत्मा के परमात्मा से मिलन भावों को रहस्यवाद कहा जाता है। रहस्यवाद की महान् कवयित्री महादेवी वर्मा लिखती हैं—

बिन बिंदु मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं....
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं
बिन बिन्दु मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं
बिन्दु और रागिनी दोनों मैं ही हूं
जैसे नभ और चांदनी सब मैं ही हूं।

गुरु अर्जुनदेव ने अपने ग्रंथसाहब में इसी रहस्यवादी भाव को दर्शाते हुए लिखा है—

आपे गोपी, आपे काना, आपे गोऊ चरावे नाना
आपे रसिया, आपे रस, आपे रावण हार
आपे होवे चोल्डा, आपे सेज मतार।

महात्मा कबीर लिखते हैं—

ज्यों तिल माही तेल है ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साँईं तुझ्झ में जाग सके तो जागि।।

सब घट मेरा साँईंया सूनी सेज न कोय।
वा घट की बलिहारियां जा घट परगट होय।।

चेतना होते हुए भी सहस्रों लोग चेतना को भूले रहते हैं। सहस्रों में से कोई एक चेतना की वृद्धि से विवेक से परम सत्य को जानकर उसकी उपलब्धि के लिये साधना करता है। ऐसे हजारों साधकों में से कोई एक विरला आत्मानुभूति से साक्षात्कार करता है। भगवान् ने गीता में कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। 7/3

यदि हजारों के स्थान पर एक लाख की गिनती की जाए तब लाख में कोई एक सौभाग्यशाली विरला आत्मसाक्षात्कार का देव दुर्लभ लाभ पाता है। दूसरे शब्दों में लाख में से 99,999 लोग शरीर को ही मैं मानते रहते हैं। जो बुद्धि से आत्मा को प्रमाणित कर सकते हैं वे भी अनुभूति के बिना देहाध्यास में ही फंसे रहते हैं। लोकतंत्र में बहुमत की विजय मानी जाती है। ब्राजील के एक प्राध्यापक ने कहा कि जब लाख में से 99,999 लोग शरीर को ही मैं मान रहे हैं तो उन्हीं के सिद्धान्त को बहुमत के आधार पर सत्य माना जाना चाहिए। इसके उत्तर में

कहा गया यदि 99,999 लोग साक्षी देते हैं कि मैं शरीर हूं तो इन्हें न्यायालय में साक्षी के लिये प्रस्तुत करो। सबसे प्रथम और सरल न्यायालय सुषुप्ति का है। सुषुप्ति में ही दिनभर के थके-मांदे जीव को पुनः 18-18 घंटा परिश्रम करने के लिए शक्ति मिलती है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त मानव की क्षय हुई शक्तियों को पुनः पूर्ति करने का अक्षय साधन सुषुप्ति है। जैसे बैटरी डिस्चार्ज हो गई उसे पुनः रिचार्ज करना है। बिना सुषुप्ति की इस शक्ति परिपूर्ति के मनुष्य कुछ दिन में ही पागल हो जाएगा और फिर उसका शरीरपात हो जाएगा। अतः सुषुप्ति ही शक्ति का वह गुप्त खजाना है जिसे जाग्रत् में हम व्यय करके सब काम-धंधे और भोग विलास करते हैं। किन्तु सुषुप्ति की कचहरी की पहली शर्त है कि इसमें नाम-रूप, देश काल, पात्र-परिस्थिति सब संसार के झूठे लेबल छोड़कर प्रवेश करो तभी शक्ति मिलेगी अन्यथा नहीं। अब 99,999 को सुषुप्ति की कचहरी की मर्यादा रखते हुए पूछा गया। तुम कौन हो जो दिन भर चिल्लाते रहते हो कि हम शरीर हैं, हम शरीर हैं। उन्हें सुषुप्ति की कचहरी में ले गये। उनमें से एक भी नहीं बोलता कि मैं शरीर हूं। यदि कोई बोल उठे तो सुषुप्ति की कचहरी समाप्त हो जाए। यदि सुषुप्ति की कचहरी मर्यादा से चलती रहे तो उसके 99,999 गवाह जो शरीर में नयी शक्तियों का भण्डार तो प्राप्त कर रहे हैं तनिक भी नहीं बोल सकते हैं कि हम शरीर है। उनके शरीर तो पड़े ही हुए हैं। वे किसी महान् सत्ता से जुड़े हुए दिनभर परिश्रम के योग्य नयी ऊर्जा प्राप्त भी कर रहे हैं। किन्तु साक्षी नहीं दे सकते कि हम शरीर हैं। अतः सुषुप्ति की कचहरी में 99,999 गवाह झूठे सिद्ध हुए। अतः 99,999 लोगों को सेशन न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। वे ट्रक की ठोकर खाकर सड़क पर बेहोश पड़े हैं। पुलिस वाला और आने-जाने वाले राही पूछते हैं, आप कौन हैं? किन्तु इनमें से एक भी साक्षी नहीं देता कि मैं शरीर हूं। शरीर होते हुए भी शरीर नहीं बोलता कि मैं शरीर हूं। फिर 99,999 लोगों को उच्च न्यायालय के जज के पास प्रस्तुत किया गया। उनको बड़ी मात्रा में नशा पिलाकर बेहोश कर दिया गया। शराबी नाली में पड़ा हुआ है और कुत्ता मुख में पेशाब कर रहा हो तो उसे होश नहीं। अब शराब में बेहोश पड़े उन लोगों से पूछा जाता है तुम कौन हो? उनके शरीर तो सड़क पर पड़े हैं पर बोलता कोई नहीं कि मैं शरीर हूं। शरीर स्वयं शरीर का साक्षी हो ही नहीं सकता। जड़ शरीर का साक्षी तो कोई चेतन ही हो सकता है। बेहोशी के कारण चेतना विकृत हुई पड़ी है। फिर 99,999 लोगों को उच्च न्यायालय की फुल बेंच में प्रस्तुत किया जाता है। किसी औषधालय में उन्हें ईथर सूंघाकर चार घंटे के लिए शल्य चिकित्सा के लिए बेहोश कर दिया जाता है। फिर उन्हें पूछा जाता है कि तुम कौन हो? किन्तु एक भी उत्तर नहीं देता कि मैं शरीर हूं। जो चेतना जड़ शरीर

को जानती है वह औषधि के प्रभाव से चार घंटे के लिए दब गई है। मालिक के बिना खेत क्या उत्तर दे कि वह किसका है?

फिर इन 99,999 लोगों को श्मशान भूमि में महाकाल के सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया। वहां सबके शरीर प्राणहीन, संज्ञाहीन हुए पड़े हैं। उनसे अन्तिम बार पूछा गया तुम कौन हो? शरीर पड़े रहने पर भी एक भी नहीं उत्तर देता कि मैं शरीर हूं। वास्तव में शरीर तो खेत है और चेतना क्षेत्रज्ञ। खेत का मालिक, खेत को जानने वाला—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। 13/1 गीता

शरीर क्षेत्र है और चेतना क्षेत्रज्ञ। मालिक ही खेत को पहचानता है। खेत मालिक को तो पहचानता ही नहीं। यह शरीर मेरा है, यह मैं ही जान सकता हूं। शरीर न अपने आपको पहचाने, न मालिक को पहचाने। जो चेतना शरीर को पहचानती है वह सुषुप्तिकाल में आत्म केन्द्रित या हृदय केन्द्रित हो जाती है। इसलिए शरीर निश्चेष्ट, इन्द्रियां सुप्त, मन मरा हुआ, बुद्धि पंगु हो जाती है। किन्तु इन्हीं सबको उस बेहोशी की अवस्था में नव प्राण, नव शक्ति, नव उत्साह, नव ऊर्जा प्राप्त हो जाती है। ट्रक की ठोकर खाने से मस्तिष्क की चोट के कारण चेतना का नियंत्रण करने वाला शारीरिक यंत्र (मस्तिष्क) कुछ समय के लिए काम करना बंद कर देता है। इसलिए शरीर के रहते हुए भी शरीर की चेतना लुप्त हो जाती है। शराब के भीषण नशे से चेतना विकृत हो जाती है। इसलिए शराबी अपने देश, भेष, परिवेश को भूल जाता है। चिकित्सालय में औषधि के प्रभाव से लगभग चार घंटे के लिए शल्य चिकित्सा में चीरफाड़ करने की सुविधा हेतु चेतना को कृत्रिम रीति से दबा दिया जाता है। श्मशान भूमि में तो चेतना शरीर से विलग हो ही जाती है। इन पांचों परिस्थितियों में शरीर के रहते हुए भी चेतना के केन्द्रित हो जाने के कारण, अन्तर्मुखी हो जाने, आहत हो जाने, विकृत हो जाने, दब जाने और विलग हो जाने के कारण शरीर अपनी सत्ता की साक्षी बिल्कुल नहीं दे सकता। शरीर होने की साक्षी भी तो चेतना ही देती है। जिस चेतना के सहारे शरीर की सत्ता का भान होता है। शरीर के प्रति ममता प्रदर्शित होती है। शरीर जीवित एवं चेतन प्रतीत होता है। इन्द्रियों में प्रकाश, मन में संकल्प, बुद्धि में विचार, चित्त में चिन्तन और अहम् में अभिमान पैदा होता है। वह चेतना ही यदि विलग कर दी जाए तो इन सबका अस्तित्व लुप्त हो जाता है। अतः चेतन आत्मा ही सत् है। वही चैतन्य का मूलस्रोत, अक्षय भण्डार और अपने दृष्टिनिक्षेप मात्र से जगत् को आलोकित करने वाला तथा प्राणियों में प्राण भरने वाला मन को संकल्प शक्ति प्रदान करने वाला और जिज्ञासुओं को ज्ञान बांटने वाला परम तत्त्व है।

यह शरीर चेतना के बिना साढ़े तीन हाथ का मांस का लोथड़ा, मल-मूत्र का थैला, जन्म-मृत्यु और जरा-व्याधि से पीड़ित, मरणधर्मा, निरन्तर विकारशील और परिवर्तनशील, मिट्टी का पुतला मात्र है। यह नितान्त अपवित्र है। चेतन के अलग हो जाने पर शरीर के छूते ही मानव अपवित्र हो जाता है। देश भर में गोतिया-सम्बन्धी लोगों को किसी स्वजन की मृत्यु का समाचार मिलते ही सबके घर में 13 दिन का सूतक (अपवित्र अवस्था का तपस्या काल) लग जाता है। शरीर छोड़ने के पश्चात् भी जीवात्मा 13 दिन तक सूक्ष्म शरीर एवं कारणशरीर के साथ अपने पुराने परिवेश, स्वजनों, परिजनों-सम्बन्धीजनों के घरों एवं मनों में मंडराता रहता है। इसके लिए उन 13 दिनों में कुछ व्रत-नियम करके, वैराग्य के ग्रंथों का स्वाध्याय करके दिवंगत जीवात्मा के कल्याण के लिए प्रार्थनाएं करनी चाहिएं। उस काल में संसार का मोह पुनः जाग्रत करने वाली रोदन लीला अथवा भोग लीला का वातावरण नहीं बनाना चाहिए। इससे दिवंगत जीवात्मा की आगे की उत्तम गति में बाधा पड़ती है और मृत्यु के दंश से पैदा होने वाले वैराग्य से भी मानव वंचित रह जाता है।

शरीर एक ऐसी फैक्ट्री है जो उत्तम से उत्तम पदार्थों को खाकर संसार की गंदी से गंदी वस्तु पैदा करती है। अधिकांश लोगों ने इसे H.E.C. (Heavy eating corporation) बहुभोजी निगम बना रखा है। यह बहुभोजी निगम प्रचुर मल त्यागी निगम भी है। इस कारखाने में कच्ची धातु के रूप में संसार के उत्तम से उत्तम पदार्थ डाले जाते हैं। किन्तु इसका उत्पादन क्या है? संसार का सबसे घिनौना पदार्थ मल-मूत्र आदि। अतः भोगी-रोगी शरीर एक बहुत घाटे की फैक्ट्री है। संसारभर के खेत-खलियानों को चाट गया। ऊर्जा की सारी कमाई को खा गया। सारे कोष खाली कर दिए। पर पापी पेट कभी भरा नहीं और दुनिया को मल-मूत्र से गंदा कर दिया। भोगी खाने और पाखाने के सिवा अन्य कोई श्रेष्ठ काम इस शरीर से नहीं लेता। फिर भी चेतन के संयोग से यह शरीर सत्कार पाता रहता है।

शरीर के बहिरंग सौन्दर्य पर लोग मोहित हो जाते हैं। प्रेमी-प्रेमिका इसके लिए माता-पिता, समाज, धर्म और परमेश्वर सभी को लात मारने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। किन्तु शरीर को ढकने वाली पतली चमड़ी के पर्दे को तनिक उतारकर देखें तो अन्दर का दृश्य देखकर प्रेमी-प्रेमिका या स्नेही जनों को तुरन्त घृणा हो जाएगी। तब लैला के शरीर पर मजनूं दीवाने नहीं होंगे। मजनूं तो घृणा से भाग जाएंगे। तब कुत्ते, कौए, गिद्ध और गीदड़ ही इस पर मोहित होकर अपने झपट्टे मारेंगे—

बाहर की चकाचक के नीचे अन्दर की रुलाई को देखा,
सोने के वरक में लिपटी गोबर की मिठाई को देखा।

चेतना के प्रताप से यह अपवित्र एवं विनाशशील और विकारी शरीर भगवान् का मन्दिर बन जाता है। वेदों में चेतना की महिमा के कारण इस शरीर को ब्रह्मपुरी कहा गया है। इस शरीररूपी-पुर में वास करने के कारण ब्रह्म को पुरुष कहा गया है—

पुरे शयति इति पुरुषः

इसकी रक्षा के लिए इन्द्रियरूपी देवता पहरा दे रहे हैं। रात्रिकाल में शेष पहरेदार सो जाते हैं। किन्तु वायु देवता प्राणवायु के रूप में पहरा देता रहता है। इन इन्द्रियरूपी देवों का राजा देवराज इन्द्र हमारा मन है। वेद के एक अन्य मंत्र में शरीर को देवताओं की नगरी अयोध्या कहा गया है। जिसका भाव यह है—

यह आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली नगरी देवताओं की नगरी अयोध्या है। अयोध्या अर्थात् जिसे युद्ध में कोई जीत न सके। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक इड़ा-पिंगला आठ चक्र बनाती हैं। योगी शरीर संयम द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत् करते हैं। कुण्डलिनी के इन आठ चक्रों में क्रमशः ऊपर उठते जाने से योगी को अष्ट-सिद्धियां प्राप्त होती हैं। शरीर के नौ द्वार खुले हुए हैं। इसके हृदय के कमल में एक हिरण्य (सोने का सिंहासन) है जिस पर करोड़ों सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी आत्माराम विराजमान है। चेतन की महिमा ने इस अपवित्र से अपवित्र शरीर को पावन से पावन तीर्थ बना दिया है।

जब तक शरीर में चेतना है तब तक शरीर चेतना के कारण पुजता रहता है। मैसूर में सोने की खदानों में मिट्टी खोदी जाती है जिसमें सोने के कण छिपे हुए हैं। उन सोने के कणों के कारण वह मिट्टी भी मूल्यवान बन जाती है। उस मिट्टी पर पहरा रहता है। मिट्टी को चुराने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता है। उन खदानों में काम करने वाले श्रमिकों एवं वैज्ञानिकों को मिट्टी खोदने, घोलने के काम में मोटा वेतन देकर लगाया जाता है। सोने के अंश के कारण मिट्टी मूल्यवान बनी हुई है। जब सोना निकाल लिया है, तब मिट्टी को कूड़े के ढेर में फेंक दिया जाता है। तब न तो कोई उसका मूल्य बचता है, न कोई मान देता है और न सुरक्षा करता है। इसी प्रकार शरीर रूपी मिट्टी आत्मा रूपी सोने के कारण पूज्य बनी हुई है। इस शरीर को रोज नहलाते-धुलाते हैं। तेल-उबटन लगाते हैं, वस्त्रालंकार से विभूषित करते हैं। संसार की सब कपड़ा मिलें उसी की सेवा के लिए कपड़ा बना रही है। संसार के स्वर्णकार उसके श्रृंगार के लिए सुन्दर अलंकार बना रहे हैं। इसी के भोजन के लिए संसारभर के सब कृषक अन्न पैदा कर रहे हैं। इसी के निवास के लिए संसारभर के महल और मकान बने हैं। इसी के सम्मान के लिए चन्दन, केसर, तिलक, फूलमाला, आरती, पूजा आदि सब कर्मकाण्ड चल रहे हैं। इसी की

प्रसन्नता के लिए चित्रकार सुन्दर चित्र बना रहे हैं। गायक गान कर रहे हैं। नृतक नृत्य कर रहे हैं। कवि काव्य लिख रहे हैं और अभिनेता मनोरंजन कर रहे हैं। इसी के मन बहलाव के लिए बाग-बगीचे, नाटक, मेले, प्रदर्शनियां और खेल-तमाशे चल रहे हैं। इसी की सुरक्षा के लिए चौकीदार, पुलिस व सेना की व्यवस्था है। इसके शरीर और धन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए संसारभर के न्यायालय काम कर रहे हैं। इसकी स्वाधीनता के लिए संसारभर के राज्य कार्यशील हैं। इस प्रकार सब कुछ इस शरीर की सेवा-शुश्रूषा, पालन-पोषण और प्रतिष्ठा के लिए चल रहा है। किन्तु कब तक? केवल तभी तक जब तक इसमें चेतन आत्मा लीला कर रहा है। चेतना के विलग होते ही ये सब व्यापार बंद हो जाते हैं। कोई अपने बहुत सम्मान योग्य वृद्ध पिता या पितामह को चेतना अलग हो जाने के पश्चात् घर पर रखकर उसको दैनिक नहलाने-धुलाने, भोजन कराने, प्रणामांजलि देने और उसकी आरती उतारने के लिए नहीं रख सकता। सोने के अलग हो जाने के पश्चात् मिट्टी को संग्रह किये रखना मूर्खता ही है। चेतना के विलग हो जाने के पश्चात् इस विकारी शरीर की गंदी मिट्टी को जो कि रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, वीर्य, अस्थि, चर्म, मल-मूत्र से पूरित है, उसे रखना अथवा पूजना चेतना का तिरस्कार, रोगाणुओं का प्रसार ही होगा। भारतीय संस्कृति चिन्मय है, मृण्मय नहीं है। हम चेतन के पुजारी हैं, मिट्टी के नहीं। अतः पिता-पितामह के नित्य चरणों में सादर वंदना करते हैं। उनके दिवंगत हो जाने पर उन्हीं के शरीर को दस-बारह मन लकड़ी की चिता पर अपने हाथ से फूंक देते हैं और चिता पर जलते हुए शरीर का एक भारी लकड़ी से कपालभेदन करते हैं। जीवितावस्था में कपालभेदन की कल्पना ही महापाप होगी। किन्तु चेतना के अलग हो जाने के पश्चात् वह कपालभेदन मृतक संस्कार का आवश्यक अंग बन जाता है। हम तनिक विचार करें कि सारा वस्त्र-भोजन, अलंकार, पूजा-प्रतिष्ठा चेतन आत्मा के लिए थी या मर्त्य शरीर के लिए? यदि मर्त्य शरीर के लिए होती तो चेतना के विलग होने पर भी चलती रहती।

एक गांव से भगवान् विष्णु की मूर्ति को दूसरे गांव में ले जाना था। और कोई साधन न मिलने पर एक धोबी के गधे का प्रयोग किया गया। गधे पर रखी हुई विष्णु भगवान् की मूर्ति को देखकर लोग हाथ जोड़, शीश नवाकर प्रणाम करने लगे। गदहे ने सोचा मुझे रोज डण्डे पड़ते थे। आज मुझे सभी प्रणाम कर रहे हैं। मैं निश्चय ही महान् बन गया हूं। गधा घमण्ड से अकड़ कर चलने लगा। अगले गांव पर पहुंचने पर जब मूर्ति उतार दी गई तो धोबी ने अकड़ की चाल के कारण कसकर डण्डे लगाये। तब गर्व भंग हुआ कि सब वंदनायें किसी और की थीं! इसी प्रकार शरीर रूपी गदहा आत्माराम विष्णु भगवान् को धारण करने के कारण पूजा व प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहता है। किन्तु भ्रान्तिवश इसे अपनी पूजा समझकर

घमण्ड से अकड़ जाता है। पूज्य चेतन देव के अलग हो जाने पर इसे पुनः यम की मार पड़ती है और आग में झोंक दिया जाता है। विवेकी पुरुष जानता है कि सारी महिमा चेतन की और चेतन के कारण ही है। जो इसे जड़ शरीर की ही पूजा-प्रतिष्ठा मान बैठता है वह विवेकशून्य वैशाखनन्दन ही है।

चेतन के प्रताप से शरीर में भी कुछ ऐसी विशेषताएं आ जाती है जो किसी भी जड़ भौतिक वस्तु में अन्यत्र नहीं पाई जाती और वह भौतिक विज्ञान से विलक्षण है—

(क) भौतिक जड़ जगत् में वायु का स्वभाव छोटे से छोटा छिद्र मिलने पर भी बाहर आकाश की ओर भागने का होता है। किन्तु शरीर रूपी यंत्र में नौ बड़े द्वार और साढ़े तीन करोड़ बालों के रोमछिद्र, छोटे द्वार होने पर भी प्राणवायु कैसे टिका हुआ है। यह महान् आश्चर्य की बात है। यह सब चेतन आत्मा के प्रताप से ही है। चेतना के विलग होते ही प्राणवायु निकल जाता है। डॉक्टर लोग केवल प्राणवायु के निकलने को ही मृत्यु का कारण मान लेते हैं। किन्तु वह तो मृत्यु का लक्षण है। चेतना के लोप होने के क्षणों में ऊर्ध्व वायु गर-गर की ध्वनि के साथ शरीर से बाहर भागने लगती हैं।

(ख) भौतिक जगत् में किसी वायु भरे पात्र जैसे ट्यूब, बैलून में से वायु निकल जाने पर पुनः लौटकर उसी पात्र में नहीं आती। किन्तु चेतना के चमत्कार से जीवित मनुष्य का प्राणवायु दिन में 21,600 बार मुख या नासिका से बाहर निकलकर ब्रह्माण्ड की सैर करके पुनः शरीर में लौट आता है। श्वास का बाहर निकलना ही मृत्यु है और लौटकर आना ही जीवन है। जब तक चेतना का संयोग है तब तक 21,600 जीवन प्रतिदिन मिलते रहते हैं। किन्तु चेतना के विलग होते ही निकला हुआ श्वास लौटकर नहीं आता।

(ग) भौतिक जगत् में रगड़ने से या घर्षण करने से हर वस्तु घिसती है और दुर्बल बनती जाती है। किन्तु जीवित शरीर को मालिश करने, व्यायाम-कुश्ती करने से अंग दुर्बल बनने के बजाय मजबूत बनते हैं। बाहर के जगत् में वायु की गति सदा ऊपर की ओर रहती है। किन्तु मानव शरीर में वायु पूरे शरीर में संचार करती है और भोजन रस सर्वत्र पहुंचाती है।

(घ) बाह्य जगत् में जल अथवा कोई तरल पदार्थ नीचे की ओर बहता है किन्तु मानव शरीर में हृदय से रक्त सब ओर जाता है और ऊपर मस्तिष्क की ओर जाता है। भौतिक जगत् में किसी वस्तु को गर्मी में रखें तो गरम हो जाती है और ठण्डक में ठण्डी। किन्तु चेतना के प्रताप से शरीर का तापमान गर्मी तथा सर्दी में, राजस्थान की मरुभूमि तथा लद्दाख, तिब्बत के शून्य से भी 30 डिग्री नीचे वाले भयंकर शीत में भी साढ़े 99 डिग्री का बना रहता है।

(ङ) बाहर के जगत् में जो वस्तु कट-फट या टूट जाती है वह अपने आप मरम्मत होकर ठीक नहीं होती। चेतना के प्रताप से शरीर की प्रकृति बाहर की प्रकृति से विलक्षण है। टूटी हुई हड्डी अपने आप जुड़ जाती है और शरीर के व्रण-जख्म अपने आप ठीक हो जाते हैं।

इस प्रकार चेतन तत्त्व जड़ जगत् के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का उल्लंघन करके भी शरीर को बड़े विस्मयकारी ढंग से चलाता रहता है। शरीर में जो चेतना प्रतीत होती है वह आत्मा की ही है। यदि शरीर की अपनी चेतना होती तो मुर्दे को सूई चुभाने से मुर्दा चिल्लाता। इन्द्रियों की चेतना, ज्ञानेन्द्रियों की चेतना भी आत्मा के कारण है। अन्यथा मुर्दे की खुली हुई आँखें अपने भाई, बहिन, माता-पिता को पहचान सकती। कर्मेन्द्रियों की चेतना भी आत्मा के कारण है अन्यथा मुर्दा अपने ऊपर झपटने वाले कौओं, कुत्तों, गिद्धों आदि को भगा सकता। मन की चेतना भी आत्मा के कारण है। अन्यथा श्मशान भूमि में पड़ा हुआ कालिदास या रवीन्द्रनाथ कोई सुन्दर कल्पना का चित्र प्रस्तुत कर सकता। बुद्धि की चेतना भी आत्मा के कारण है अन्यथा श्मशान भूमि में पड़ा हुआ कोई योग्य वकील कोई सुन्दर तर्क सुना सकता। चित्त की चेतना भी आत्मा के कारण है अन्यथा मृतक पड़ा कोई कर्मवीर अपने चित्त का संकल्प बता सकता और कोई दार्शनिक चित्त का सुन्दर चिन्तन बांट सकता। अहम् की चेतना भी आत्मा के कारण ही है। अन्यथा मृतक पड़ा कोई अहंकारी अधिनायक या प्रशासक अपने अहंकार की पूर्ति का खेल दिखा सकता। इस प्रकार आत्मा ही एक अलौकिक तत्त्व है जिस पर चेतन, अवचेतन, अर्धचेतन, सीमित चेतन, पराचेतन, पूर्णचेतन सभी कुछ सूत्र में मणियों के समान पिरोये हुए हैं।

आनन्द—आनन्द का अर्थ है शाश्वत सुख। सब जीवों को इन्द्रियसुख का परिचय है। कामना की पूर्ति हो जाने से जो मन की अनुकूलता प्राप्त होती है उसे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने के कारण इन्द्रियसुख कहा जाता है। किन्तु इन्द्रियां अपने आप कुछ सुख नहीं दे सकती। वह विषय-भोगों को चरती है और उनसे सुख प्राप्त करती है। इसलिए इन्द्रियसुख को विषयसुख अथवा भोगसुख भी कहा जाता है। जैसे पशु चरने के लिए नरम घास खोजता रहता है। जहां दिखाई दे उधर ही भागने की चेष्टा करता है। उसी प्रकार इन्द्रियरूपी घोड़ा नये-नये सुन्दर एवं लुभावने विषयों को खोजता रहता है और जहां दिखाई दे वहां तुरन्त चरने के लिए दौड़ता है। वह विषयों के लोभ से शरीररूपी रथ को भी अपने साथ उधर ही दौड़ाकर ले जाता है। जब कामना की पूर्ति नहीं होती तब मन की जो प्रतिकूलता होती है उसे ही दु:ख कहा जाता है। इस दु:ख-सुख की चपेट में जीव संसार की लीला कर रहा है। सब सुख अन्ततोगत्वा दु:ख में बदल जाते हैं। सब संयोग-वियोग में बदल

जाते हैं। लाभ हानि में बदल जाता है। सब जीवन बुढ़ापे में, बुढ़ापा मृत्यु में, मृत्यु अनेक दु:खदायी जन्मों में बदल जाती है। इस प्रकार संसार के सब सुख क्षणिक एवं अस्थायी होते हैं। मनुष्य शाश्वत सुख पाना चाहता है जिसका कभी नाश न हो। वह ऐसी शांति लाभ करना चाहता है, जो स्थायी हो। इन्द्रियों की भोग लीला से प्रकट हो गया कि बाहर के विषयों का सुख स्थायी नहीं है। इसलिए उसे शाश्वत सुख बाहर न खोजकर अन्दर खोजना पड़ेगा। बाहर के सुख खोजते-खोजते दुनिया हार चुकी है। गुरु नानकदेव के शब्दों में—

सकल सृष्टि का राजा दुखिया, हरि का नाम जपत होय सुखिया।

सारी सृष्टि के सारे राजा, सारा का सारा ऐश्वर्य एकत्र करके भी दु:खी ही रहे। जिसने अपने अन्तर में बाहर की सारी झूठी माया को हरण करने वाले हरि, चेतन आत्माराम, पूर्णकाम को पहचान लिया वह सुखी हो गया। हम दैनिक अनुभव से जानते हैं कि सुख वस्तुओं में नहीं हमारे अन्दर से पैदा होता है। मन की एकाकार वृत्ति होने पर जिस वस्तु या व्यक्ति से सुख मिलता है, वृत्ति बदल जाने पर अथवा वातावरण बदल जाने से उसी वस्तु या व्यक्ति से घृणा या दु:ख की अनुभूति होती है। अत: सुख बाहर न होकर भीतर ही है। अब मन की चंचल वृत्तियों के बदलते रहने से मनुष्य सुख-दु:ख भोगकर हंसता-रोता रहेगा। शाश्वत सुख तो मन में भी नहीं मिला। कोई अच्छा विचार मिल जाने पर बौद्धिक सुख होता है, किन्तु वह भी स्थायी नहीं रहता। अच्छे विचारों की विस्मृति हो जाने पर उससे मिलने वाला बौद्धिक सुख भूल जाएगा। फिर मन और बुद्धि भी तो स्वत:-प्रकाश नहीं है। ये भी आत्मा के प्रकाश से थोड़ा प्रकाश उधार लेकर अपनी दुकानदारी चलाते हैं। तो जिस चेतना के अक्षय भण्डार से थोड़ा-थोड़ा सुख मन और बुद्धि प्राप्त करते हैं उस पूर्ण चेतना में आनन्द का कैसा अक्षय भण्डार होगा इसका विचार किया जा सकता है।

संसार के जिन विषयों को भोगने से मनुष्य को इन्द्रिय तृप्ति या मनोरंजन होता रहता है उन्हीं की मात्रा बढ़ जाने पर मनुष्य का मन उकता जाता है और कई बार उनसे घृणा ही हो जाती है। दिनभर मधुर सुरीले गानों के रिकार्ड सुन-सुन कर भी मन उकता जाता है और बंद करो यह राग-रागिनियां, मुझे शांति चाहिए वह चिल्ला उठता है। मनुष्य जब अपने आप में होता है तब अपने भीतर से बड़ी शांति मिलती है। दिनभर जाग्रतावस्था में विषय भोगों की लीला के लिए पागल बनकर भाग-दौड़ करने वाला व्यक्ति भी रात्रि को तंग आकर इन्द्रियसुख के सब दरवाजे बंद करके सुषुप्ति काल में आत्मा की गोदी में चला जाता है ताकि उसे सुख-शांति मिल सके। हर मानव का प्रतिदिन का अनुभव है कि उसे सुख-शांति, शक्ति और नवजीवन रात्रिकाल में सुषुप्ति के 5-6 घण्टों में ही मिलता है। अन्यत्र कहीं

नहीं। प्रात:काल वह जागकर कहता है मैं बहुत आनन्द से सोया। यदि क्लब के नाच-गान का आनन्द इससे ऊंचा होता तो सुषुप्ति को छोड़कर वह सदा नाचघर में ही बैठा रहता। आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है। जो सत् वस्तु है वही परम सत्य है। अपने आपको स्वयं प्रकाशित करने के लिए चैतन्य ही है और स्वयं प्रकाश है सत्य का चेतना द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन हो जाने पर, सृष्टि के महानतम रहस्य को साक्षात् जान लेने पर जो सर्वोच्च रहस्य के खुल जाने का आनन्द प्राप्त होता है उससे बढ़कर संसार के किसी भी क्षणिक भोग विलास या अल्पकालिक मनोरंजन का सुख नहीं है। इसलिए आत्मानन्द, निजानन्द, परमानन्द को ब्रह्मानन्द कहा जाता है। सर्वोच्च सत्ता स्वयं प्रकाश होने के कारण परम चैतन्यमय है और उस परम चैतन्य के प्रकाश से जब उसका साक्षात्कार हो जाता है तब परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

क्या आत्मा का कोई परिमाण है? क्योंकि आत्मा पूर्ण अभौतिक तत्त्व है इसलिए उसके परिमाण का प्रश्न पैदा नहीं होना चाहिए। लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई व आकार आदि केवल भौतिक वस्तुओं के होते हैं। सूक्ष्म अभौतिक वस्तुओं के नहीं। ज्यों-ज्यों वस्तु सूक्ष्म होती जाती है त्यों-त्यों उसकी इन्द्रियगोचरता कम होती जाती है। पृथ्वी सबसे स्थूल है इसलिए इसे पांचों इन्द्रियों से जाना जा सकता है। जल में चार का प्रवेश रह जाता है। अग्नि और अधिक सूक्ष्म होने से उसके रस और गंध लुप्त हो जाता है। वायु और अधिक सूक्ष्म होने से उसके शब्द और स्पर्श दो गुण ही बचते हैं। आकाश में केवल शब्द गुण ही बचता है अन्य कुछ भी नहीं। यह भौतिक तत्त्व भी ज्यों-ज्यों सूक्ष्म होते जाते हैं त्यों-त्यों उनकी इन्द्रियगोचरता कम होती जाती है।

भारतीय दर्शन में मन को भी सूक्ष्म भौतिक तत्त्व माना है। यहां बाहर की पांचों इन्द्रियां प्रवेश नहीं कर सकती। इसमें केवल अन्त:करण ही प्रवेश कर सकता है।

ज्यों-ज्यों वस्तु स्थूल से सूक्ष्म होती जाती है वह वस्तु से तत्त्व बनती जाती है। आत्मा पहले तो वस्तु ही नहीं और तत्त्वों में भौतिक तत्त्व न होकर सूक्ष्मतम आध्यात्मिक तत्त्व है। अत: विवेक कहता है कि इसका परिमाण नहीं होना चाहिए।

किन्तु जैन दर्शन आत्मा का परिमाण मानता है। उनका कथन है कि जिस जीव का जितना बड़ा शरीर है उतना ही बड़ा उसका आत्मा है। अत: हाथी का आत्मा चींटी से बहुत बड़ा है।

वेदान्त कहता है सब में ब्रह्म समान है—कीड़ी, कुंजर दोनों में। जैन दर्शन अपने मत की पुष्टि में दृष्टान्त देता है कि शरीर के एड़ी से चोटी तक किसी अंग

को कांटा चुभाने से तो जीव को कष्ट होता है। इसका अर्थ है उसकी चेतना एड़ी से चोटी तक पूरे शरीर में फैली हुई है। इसलिए जितना बड़ा शरीर उतनी बड़ी आत्मा है।

यहां जैन दर्शन दो भ्रान्तियों का शिकार होता है। यदि आत्मा भौतिक है तभी उसका परिमाण हो सकता है। एक ओर हम आत्मा को जड़ न मानकर चेतन मानें और दूसरी ओर उसका परिमाण भी मानते रहें। यह परस्पर विरोधी बातें होंगी। अग्नि प्रज्वलित भी हो और उसका ताप भी न हो, बर्फ जमी भी हो और ठण्डी भी न हो। यह तर्कविरुद्ध है। यदि आत्मा का परिमाण मान लिया जाए तो माता के गर्भ से लेकर और जीवन के अन्त तक एक ही जीव का आत्मा शरीर के बढ़ने के साथ बढ़ता रहेगा। आत्मा में घटने-बढ़ने का विकार आ जाए तो आत्मा विकारी एवं विनाशशील बन जाएगा।

पूरे शरीर में चेतना की व्याप्ति है इसमें कोई संदेह नहीं है। किन्तु यह व्याप्ति मन के द्वारा है आत्मा के द्वारा नहीं। जाग्रतावस्था में मन जो आत्मा से थोड़ी चेतना उधार लेकर इन्द्रियों का संचालन करता है। वह इन्द्रियों के द्वारा बाहर के विषयों का कुछ अनुभव प्राप्त कर दुःख-सुख की प्रतीति प्राप्त करता है। सुषुप्ति काल में यह मन तो मर जाता है और किसी भी इन्द्रिय को बाहर के विषय का ज्ञान नहीं होता। क्या उस समय शरीर से आत्मा लुप्त हो जाता है? चिकित्सालय में क्लोरोफार्म से बेहोश कर देने पर शरीर को कांटा चुभायें या तेज छुरा शरीर को काटे उसका ज्ञान नहीं होता। क्या जैन दर्शन उस काल में आत्मा का अस्तित्व नहीं मानता। जिस व्यक्ति को लकवा, फालिज, अधरंग या कुष्ठ रोग हो जाता है उसके शरीर के कुछ अंग चेतनाशून्य होकर मृतप्रायः से हो जाते हैं। क्या उस समय रोग के कारण आत्मा भी डर कर छोटा हो जाता है? ऐसा है तो संकुचित होने वाला आत्मा अजर, अमर, अविनाशी कैसे हो सकता है? एक ओर जैन दर्शन आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त सत्ता और अनन्त सुख मानता है और दूसरी ओर उसे परिमाण के बंधन में बांधकर उसके विकारी, विनाशी बनने का मार्ग खोल देता है।

कठोपनिषद् में आलंकारिक रूप में आत्मा को हृदय के केन्द्र में अंगुष्ठमात्र बताया गया है। वास्तव में आत्मा का शरीर में कोई विशेष स्थान नियत नहीं है, फिर भी दोनों फुप्फुस के बीच में जो अंगुष्ठमात्र के परिमाण वाला एक छोटा-सा गड्ढ़ा प्रतीत होता है वही समझाने के लिए हृदय का केन्द्र कहा जाता है। वह एक ऐसा मर्म स्थान है जहां सुख और दुःख की अनुभूति सबसे अधिक होती है। मनुष्य प्रेम में और प्रसन्नता में अपने स्नेहीजन, मित्र, पुत्र, जीवनसंगी को हृदय से लगाना चाहता है। सिर से या पैर से नहीं। इसलिए आत्मा का संस्फुरण सबसे अच्छा हृदय केन्द्र में होता है और वह केन्द्र अंगुष्ठमात्र है। इसलिए आलंकारिक रूप में

उसे अंगुष्ठमात्र कह दिया गया है। वस्तुतः वह परम सूक्ष्म होने से किसी भी भांति नापा-तौला नहीं जा सकता। गीता में भगवान् कहते हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि संन्निविष्टो। 15/15

मैं सबके हृदय में सन्निविष्ट हूं।

गीता में भगवान् पुनः कहते हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। 10/20

हे गुडाकेश (निद्रा को जीतने वाले) अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित आत्मा हूं। मैं ही सब भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी हूं। पानी, बुलबुले, वीचि, लहर, समुद्र, नदी, झील, तालाब, नाले, झरने, प्रपात सबमें जल रूप से प्रभु ही विलसित हो रहे हैं।

भगवान् पुनः कहते हैं—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। 13/17

वह ज्योति की परम ज्योति सबके हृदय में विराजमान है। यहां पुनः उसी का संकेत किया गया है।

18वें अध्याय में भगवान् पुनः कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। 18/61

हे अर्जुन! ईश्वर सब भूतप्राणियों के हृदय-देश में बैठा हुआ है।

इसी प्रकार शंकराचार्य भी कहते हैं—

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम्।

मस्तिष्क और हृदय में से कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है इस बारे में विचारकों में विवाद हो सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष जीवन में हम देखते हैं कि मस्तिष्क के बिगड़ जाने पर मनुष्य पागल तो हो ही जाता है, किन्तु जैसे-तैसे जीवित रह सकता है। किन्तु हृदय के बंद हो जाने पर जीवन तुरन्त समाप्त हो जाता है। खोपड़ी वाला व्यक्ति बुद्धि का चमत्कार दिखाकर लोगों को प्रभावित कर सकता है। किन्तु जीवन की रूपान्तरणकारी प्रेरणा कोई हृदयवान व्यक्ति ही कर सकता है। विचार एवं तर्क मस्तिष्क में ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु प्रेरणा एवं अनुभूति हृदय की वस्तु है। बुद्धिवादी मस्तिष्क से सत्य पर सुन्दर विचार करके पुस्तक या शोधप्रबन्ध लिख सकता है। किन्तु, सत्य की चमत्कारी जीवंत अनुभूति महात्मा गांधी या हरिश्चन्द्र जैसे किसी हृदय से सत्य के प्रति समर्पित

महापुरुष को ही हो सकती है। इसी कारण ईश्वर की सत्ता की अनुभूति, परम सत्य की अनुभूति, आत्मतत्त्व, आत्मा के चैतन्य आनन्द की अनुभूति हृदय में ही होती है, मस्तिष्क में नहीं।

हृदय उन दिव्य सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूतियों को ग्रहण करने वाला सर्वश्रेष्ठ यंत्र है। जिस प्रकार रेडियो का बक्सा अन्तरिक्ष से आने वाली रेडियो तरंगों को ग्रहण करने में समर्थ होता है। उसे भी रेडियो रिसीविंग सेट के स्थान पर रेडियो ही कह देते हैं। जो आतिशी शीशा सूर्य की किरणों को ग्रहण करके केन्द्रित करता है उसे सूर्य या अग्नि कहना उचित नहीं है। किन्तु उसे सूर्य की किरणों को केन्द्रित कर आग लगा सकने के कारण आतिशीशीशा (आग लगाने वाला शीशा) कहा जाता है। वह शीशा स्वयं न गर्म है और न स्वयं आग लगा सकता है। वह केवल सूर्य की किरणों को केन्द्रित करने में समर्थ है। इसी प्रकार मानव हृदय आत्मा की अनुभूति को ग्रहण करने और केन्द्रित करने में समर्थ है। इसलिए कठोपनिषद् में आलंकारिक रूप में आत्मा को हृदय में अंगुष्ठमात्र परिमाण में स्थित वर्णन किया गया। कठोपनिषद् में ही उसे अव्यक्त, अमूर्त, अविकारी, अविनाशी आदि वर्णित किया गया है। इसलिए वास्तव में आत्मा का कोई परिमाण नहीं है। कई ग्रंथों में जीवात्मा को भी अंगुष्ठमात्र वर्णन किया गया है। किन्तु उसका कोई आकार न होने के कारण और वायुरूप होने के कारण उसका परिमाण मापने का कोई भी साधन मनुष्य के पास नहीं है।

क्या आत्मा चेतना की धारा या शृंखला मात्र है—बौद्ध दर्शन मानव के अहंकार की निवृत्ति के लिए कहता है कि आत्मा एक चेतना या नदी की धारा के समान है जिसके घटनाबिन्दु स्मृति की शृंखला से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक घटना एक स्वतंत्र बिन्दु के समान है जो अगले बिन्दु से स्मृति-शृंखला से जुड़ जाती है और इस प्रकार की घटनाओं की शृंखला (स्मृति की बंधी हुई धारा) को मैं कह दिया जाता है। जब स्मृति की शृंखला टूट जाती है तो स्वयं अपनी ही बीती हुई घटना के मैं को आज का मैं पहचान ही नहीं पाता। यदि दस वर्ष पहले मैंने किसी से उधार लिया है या किसी का उपकार किया है और उस घटना को आज से जोड़ने वाली स्मृति की शृंखला कहीं से टूट जाए तो मैं स्वयं अपने बीते हुए मैं को न मानता हूं, न पहचानता हूं। दूसरा व्यक्ति कहता है आपने मुझसे रुपये उधार लिये। आपने मेरा तिरस्कार किया। किन्तु विस्मृति के कारण मैं मानता ही नहीं कि वह मैं ही था। भगवान् बुद्ध ने अनात्मवाद का विचार इस रूप में इसलिए दिया कि मानव को अपने कर्तापन का अहंकार करने का स्थान ही न बचे। जिसे वह मैं समझता है वह वास्तव में चेतना के क्षणों की स्मृति से जुड़ी शृंखलामात्र है। जब पक्का मैं ही नहीं तब अहंकार किसका करें?

भगवान् शंकराचार्य ने बौद्धों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पूछा, आप जो मानते हैं कि सब कुछ परिवर्तनशील है तो ये सत्य ज्ञान है या असत्य ज्ञान। यदि यह सत्य ज्ञान है तो इसका ज्ञाता कौन है? यदि शरीरधारी बुद्ध इसका ज्ञाता है तो बुद्ध के जन्म से पूर्व सब कुछ परिवर्तनशील था यह कैसे सिद्ध होगा और बुद्ध के शरीरांत के बाद भी सदा सब कुछ परिवर्तनशील रहेगा इसका क्या प्रमाण है? जो स्वयं परिवर्तनशील है वह सब कुछ के परिवर्तित होने की साक्षी कैसे दे सकता है? शरीरधारी बुद्ध एकदेशी होने से सीमित परिवर्तन का द्रष्टा हो सकता है। सारे विश्व ब्रह्माण्ड के परिवर्तनशील होने का नहीं। शरीरधारी बुद्ध अल्पजीवी एवं नश्वर होने के कारण सीमित काल के परिवर्तनों का साक्षी हो सकता है, त्रिकाल अथवा सर्वकाल के परिवर्तन का कभी नहीं। सर्व देश और सर्वकाल के समस्त परिवर्तनों का साक्षी वह अमर आत्मा ही हो सकता है जो स्वयं अजर, अमर, अविनाशी, अखण्ड, एकदेशी, अपरिवर्तनीय, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक चेतन सत्ता है।

किसी तीस मील लम्बी दौड़ में सर्वप्रथम स्थान का निर्णय वही निर्णायक कर सकता है जो दौड़ प्रारम्भ होने से पहले भी वर्तमान हो। सारी दौड़ के बीच भी जागरूक निरीक्षक बना रहे और दौड़ के अन्त में भी सर्वप्रथम आने वाले व्यक्ति से पहले ही लक्ष्य बिन्दु पर वर्तमान रहे। यदि रैफरी या निर्णायक स्वयं मील आध मील दौड़कर हांफ कर गिर जाने वाला हो तो वह निर्णय क्या करेगा? सृष्टि के चरम और परम सत्य को और उसके रहस्यों को वही ठीक-ठीक जान सकता है जो सृष्टि की लीला प्रारम्भ होने से पहले भी चेतन सत्ता के रूप में वर्तमान है। सृष्टि की सारी लीला के बीच में भी निरन्तर वर्तमान है और सृष्टि के महाप्रलय की लीला का भी अमर साक्षी है। वरन् अनेकों महाप्रलयों का भी तमाशा देख चुका है।

यदि बौद्धों के मतानुसार कोई जीवात्मा या अमर आत्मा है ही नहीं तो कर्मफल किसको मिलता है? कर्म चेतना का एक कण करेगा और फल दूसरे कण को मिल जाएगा। इस प्रकार नैतिक न्याय नहीं हो सकेगा। यदि मैं पक्का न माना जाए तो पुनर्जन्म किसका होगा और निर्वाण किसको मिलेगा? इन समस्याओं का समुचित उत्तर बौद्ध दर्शन में न होने के कारण शंकराचार्यजी ने बौद्धों पर दार्शनिक विजय प्राप्त की।

शंकर ने अहंकार से मुक्ति के लिए मैं की सत्ता को नकारा नहीं वरन् यह कहा कि शुद्ध मैं की विस्मृति और अशुद्ध मैं का अध्यास होने के कारण ही मन रूपी चन्द्रमा को अहंकाररूपी राहु ग्रस लेता है।

अहंकाररूपी अशुद्ध मान्यता को इस विपरीत मान्यता से हटाया जा सकता है कि मैं शरीर, मन-इन्द्रिय आदि जीवात्मा नहीं हूं। अथवा यह सही मान्यता लानी पड़ेगी कि मैं निर्लिप्त शुद्ध आत्मा हूं। मैं शरीर-इन्द्रियादि की समस्त क्रियाओं का

साक्षी हूं। मैं स्वयं कुछ न करते हुए बाह्य प्रकृति की लीला और अन्त:प्रकृति की कर्मलीला का साक्षी हूं। गीता में भगवान् ने ऐसी ही मान्यता का उपदेश दिया है—

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्। 5/8

क्या आत्मा का कोई भार है? अथवा इसको बैठाकर परीक्षण करने का कोई यांत्रिक साधन है? कुछ वैज्ञानिकों ने मानव शरीर को एक शीशे के बाक्स में बंद कर दिया। उसकी मृत्यु पर कांच का बाक्स टूट जाता है। बाक्स में मानव शरीर को रखते समय वजन करके रखा गया था। उसका वजन जितना घटता है शरीर छोड़ने पर उसे आत्मा का भार माना गया। पर वास्तव में देहांत के समय जो प्राणवायु निकलता है उसके वेग के कारण कांच का बाक्स टूट सकता है। वायु के दबाव से वस्तु का वजन बढ़ जाता है। खाली ट्यूब में जब हवा भरी जाती है उसका भार बढ़ता ही है और हवा निकलने पर निश्चय ही घटता है। अत: शरीर में संचार करने वाली वायु के भार को आत्मा का भार मान लेना एक भ्रान्ति है। जो वस्तुएं वजन रखती है वह भौतिक कोटि में आ जाती हैं। किसी वस्तु की वायु जब अकस्मात् वेग से निकलती है तो उसके कारण वायुमण्डल में धक्का पड़ने से गति होती है। उसे आत्मा की गति मानना भी भ्रान्ति है। अत: आत्मा में न गति है और न भार है।

क्या आत्मा पूर्णतया अचल एवं गतिहीन है?

ईशावास्योपनिषद् में कहा है—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात् यह आत्मा चलता है और बिल्कुल नहीं चलता है। वह दूर से दूर है और निकट से निकट है। वह सबके अन्दर में है फिर भी इसी के अन्दर बंदी न होकर सबके बाहर भी है।

गति और स्थिरता, दोनों सापेक्ष स्थितियां हैं। बिना किसी स्थिर वस्तु की तुलना में किसी अन्य चल वस्तु की गति को जाना ही नहीं जा सकता है। प्रत्येक वस्तु अपने आप में स्थिर प्रतीत होती है। वह किसी अन्य वस्तु की तुलना में चलायमान है। डॉ. आइंस्टाइन ने भी कहा है कि निरपेक्ष गति और निरपेक्ष स्थिरता दोनों तत्त्वत: एक ही हैं। अपूर्ण एवं जड़ वस्तु यदि स्थिर हो तो उन्हें गतिमान नहीं कहा जा सकता। किन्तु आत्मा पूर्ण एवं अभौतिक तत्त्व होने के कारण वह भौतिक जगत् के नियमों के बंधन से मुक्त है। इसलिए वह एक साथ अचल और गतिमान हो सकता है। यदि शरीर एकदेशीय है तो आत्मा सार्वदेशिक है। शरीर अल्पकालिक

आत्मा सार्वकालिक इसलिए वह एक साथ भूत, भविष्य, वर्तमान में हो सकता है। भौतिक वस्तु एकदेशीय होती है इसलिए यदि वह अन्दर हो तो बाहर नहीं हो सकती और बाहर हो तो भीतर नहीं हो सकती। आत्मा शुद्ध चैतन्य रूप होने के कारण बाहर और भीतर एक साथ हो सकता है। उदाहरणस्वरूप आकाश एक ही समय में सब घटों और मठों के बाहर और भीतर हो सकता है। जब आकाश जैसा सूक्ष्म भौतिक तत्त्व भी अपनी सूक्ष्मता के प्रताप से बाहर और भीतर एक साथ हो सकता है तब परम सूक्ष्म आत्मा के लिए इसमें क्या बाधा हो सकती है? भौतिक वस्तुएं सापेक्ष हैं और आत्मा निरपेक्ष। भौतिक वस्तुएं देश-काल परिच्छिन्न हैं आत्मा देश-काल से मुक्त। बाहर और भीतर, निकट और दूर सब देश-काल के बंधन की दीवारें है। ज्यों-ज्यों हम सूक्ष्मता की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों देश-काल के बंधन लुप्त हो जाते हैं। तन की कारा में बंदी होने पर भी मन को जेल की दीवारें बंदी नहीं बना सकती। बुद्धि और अधिक सूक्ष्म होने के कारण और अधिक मुक्त है और आत्मा परम सूक्ष्म होने के कारण देश-काल के बंधन से पूर्ण मुक्त है। वास्तव में वहां देश-काल की सत्ता बचती ही नहीं। भौतिक जगत् में देश-काल की सीमायें अविद्याजनित विकार हैं। अंधेरे में भासने वाले छायारूप भूत तभी तक डरा सकते हैं जब तक सूर्य का प्रकाश नहीं हुआ। आत्मा सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक होने के कारण वह पहले से ही सब देशों एवं कालों में विद्यमान है। उसे कोई गति करने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि वह पहले ही उन सब देशों और कालों में वर्तमान है। अत: न देश उसको सीमित कर सकता है, न काल खा सकता है। देश और काल की सीमाएं नाम और रूप में बंटे हुए इस संसार में भेद एवं पृथक्ता दिखाने के लिए है। आत्मा में कोई भेद है ही नहीं अत: देश-काल के बंधन लुप्त हो जाते हैं।

सृष्टि का सर्वव्यापक तत्त्व मैं—एक बच्चा पूछता है कि हमारे घर में जो अतिथि आये हैं वह कौन हैं? पिता कहता है—रामदास! तुम्हीं बता दो कि तुम कौन हो? अतिथि कहता है, मेरे प्यारे बच्चे! मैं तुम्हारा चाचा हूं। बच्चा विस्मय से पूछता है मैंने प्रश्न किया यह कौन है? आपने कहा रामदास तुम्हीं बता दो तुम कौन हो? और अतिथि ने उत्तर दिया मैं तेरा चाचा हूं। मैंने जिन्हें यह कहा, आपने तुम कहा, फिर स्वयं वे अपने आपको मैं कह रहे हैं। चाहे दुनिया में सबके कल्पित नाम रखे हुए हैं, किन्तु नाम से कोई दूसरा ही उन्हें बुलाता है। कोई भी स्वयं को 'मैं' के अलावा अन्य संबोधन से नहीं बुलाता। नाम परायों के व्यवहार के लिए है स्वयं अपने व्यवहार के लिए 'मैं' ही है। अत: सब मानवों का वास्तविक एवं सबसे प्रिय नाम 'मैं' (आत्मा) ही है। केवल मानवों का ही नहीं सब प्राणियों में भी यह 'मैं' या 'स्वयं' समानरूप से व्याप्त है। जैसे मैं स्वयं बोल रहा हूं। तू स्वयं प्रश्न करने के लिए आ गया। वह स्वयं जाग उठा। वे स्वयं पहुंच गए। वे नारियां

स्वयं पनघट से पानी ला रही हैं। बच्चे स्वयं खेलने लगे। वृद्ध स्वयं चिन्तामग्न हैं। कुत्ता स्वयं भौंकने लगा। गाय स्वयं रम्भाने लगी। कोयल स्वयं गाने लगी। तोता स्वयं राम-राम बोलने लगा। मच्छर स्वयं घुस आए। मक्खियां स्वयं भिनभिनाने लगी। कीटाणु ने स्वयं काट लिया। बादल स्वयं बरसने लगा। सूर्य स्वयं तपने लगा। चांद स्वयं शीतलता बिखेरने लगा। इस प्रकार सारी सृष्टि में मैं तत्त्व पिरोया हुआ है।

आत्मा कार्य-कारण से परे है—भौतिक जगत् में प्रत्येक वस्तु का कोई कारण अवश्य होता है। यह कार्य-कारणवाद की श्रृंखला पीछे से पीछे वहां तक चलती जाती है जहां सृष्टि के प्रथम कारण तक हम पहुंच पाते हैं। किन्तु प्रथम का भी कारण खोजना तर्क का उपहास मात्र है। कार्य-कारणवाद भौतिक जड़ जगत् में अनिवार्य है किन्तु परम सत्य ने सारी सृष्टि को उत्पन्न किया, उसके पहले उसका भी कारण होगा ऐसा सोचना उचित नहीं है। इससे यह प्रकट होता है कि या तो सृष्टि का अन्तिम कारण नहीं था या वह चेतन तत्त्व न होकर भौतिक तत्त्व था। आत्मा चरम सत्य एवं परम सूक्ष्म होने के कारण वह स्वयं अपना आप ही कारण है उसे Causal (स्वकारण) कहा जाता है। वह सबका स्रष्टा है और उसका कोई स्रष्टा नहीं। वह सबका कारण है पर उसका कोई कारण नहीं। वह सबका जनक है। उसका कोई जनक नहीं है।

कार्य-कारणवाद दो प्रकार के होते हैं—

(1) Transient Causality नश्वर कार्य-कारणवाद—इसके अनुसार Cause produce the effect कारण कार्य को पैदा करता है। जैसे बीज वृक्ष को, अग्नि ताप को, जल स्नेह को। सामान्य लोग इसी कार्य-कारणवाद को मानते रहते हैं। इसमें दो बड़ी कठिनाइयां हैं—

(क) आधुनिक विज्ञान ने खोजा है कि सृष्टि में पदार्थ एवं ऊर्जा का भण्डार सदा एकसमान रहता है। उसमें न कुछ बढ़ाया जा सकता है और न कुछ घटाया जा सकता है। कहीं पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है और कहीं ऊर्जा पदार्थ में। किन्तु दोनों को मिलाकर कुल मात्रा सदा बराबर ही बनी रहती है। इसलिए Cause produces the effect यह वाक्य विज्ञान के Law of Indestructability of matter and Energy के विरुद्ध पड़ता है।

Transient Causality के विरुद्ध वेदान्त दर्शन की भी बड़ी ठोस आपत्ति है कि जब परम तत्त्व 'एकमेवाद्वितीयम्' है तो कार्य और कारण का भेद कैसे हो सकता है। अद्वैत तत्त्व में द्वैत कैसे हो सकता है। यह पैदा करने वाला कारण और पैदा होने वाला कार्य यदि दो वस्तुएं सिद्ध हो जाए तो अद्वैतवाद का भवन डगमगा जाएगा।

(2) आधुनिक विज्ञान एवं प्राचीन वेदान्त दोनों की दृष्टि से कार्य-कारणवाद का सही सिद्धान्त है Immanent causality अर्थात् अन्तर्भूत कार्य-कारणवाद। इसके अनुसार कार्य कारण में ही बीजरूप में छिपा रहता है। वही उचित प्रयास एवं अवसर से कार्य रूप में प्रकट हो जाता है। अतः cause doesnot produce the effect but become the effect. कारण कार्य को प्रकट नहीं करता वरन् कारण ही कार्य बन जाता है। इसी दृष्टि से आत्मा जगत् को पैदा नहीं करता स्वयं ही जगत् बन जाता है।

एकोऽहं बहु स्याम हो जाता है। कार्य कारण का विस्तार, विकास अथवा विकार है। क्योंकि आत्मा पहले से ही पूर्ण है। उसमें विकास या विस्तार का स्थान नहीं और विकार सम्भव नहीं। इसलिए आत्मा के क्षेत्र में कार्य-कारणवाद का कोई वश नहीं चलता। इसलिए आत्मा कार्य-कारण से परे है।

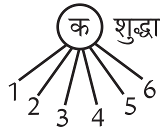
आत्मदर्शन का नैतिक महत्त्व—आत्मवान् पुरुष सब भूत प्राणियों को अपना आत्मा ही मानकर व्यवहार करता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अन्य या पर को कष्ट दे सकता है किन्तु स्वयं अपने आपको नहीं सताना चाहता है। जब सब प्राणी मेरी ही आत्मा हैं तो मैं किसकी जेब काटूं, किसका गला काटूं? किस पर व्यभिचार या बलात्कार करूं? हिंसा करूं? गुरु नानकदेव कहते हैं—

बिखर गई सब तात परायी, ना कोई वैरी ना ही बेगाना,
सकल संग हमरी बन आयी, बिसर गयी सब तात परायी।

आत्मवादी व्यक्ति इतना उदार होता है कि वह स्वयं सबके दुःख को अपना दुःख मानकर दूसरे के क्लेशहरण हेतु एवं दूसरों की सेवा हेतु सदैव सचेष्ट रहता है। कोई बंधुभाव से, पुत्रभाव से, कोई खुदा का बंदा मानकर जीव भाव, प्रेम, करुणा, सहयोग, रक्षा भाव, परोपकार का बदला चुकाने के लिए करता है। किन्तु आत्मवादी दूसरे का उपकार वास्तव में दूसरे का परोपकार न मानकर स्वयं अपना ही उपकार मानता है।

आत्मा एक है अथवा अनेक?—आकाश में एक सूर्य का प्रकाश जैसे धरती के करोड़ों घटों में प्रतिबिम्बित होता है और घड़े के आकार-प्रकार और उसमें स्वच्छ-अस्वच्छ जल के अनुसार प्रतिबिम्ब पड़ता है पर उससे सूर्य अनेक नहीं हो जाते। सूर्य तो एक ही होता है। उसका प्रतिबिम्ब पात्रों के अनुसार पड़ता है। कुछ लोग तर्क करते हैं कि यदि आत्मा एक ही है तो एक के दुःख से सभी दुःखी हो जाने चाहिए और एक के सुख से सभी को आनन्दित हो जाना चाहिए। एक की भूल से सभी को भूल का शिकार हो जाना चाहिए और एक की मुक्ति से सभी को मुक्त हो जाना चाहिए। ऐसा अनुभव में आता नहीं। इसलिए आत्मायें अनेक सिद्ध होती हैं।

यह सत्य है कि व्यावहारिक जगत् में चिदाभासरूप जीवात्मा अनेक हैं। अन्त:करण में चिद्वस्तु (चेतन सत्ता) का आभास या प्रतिबिम्ब पड़ने से उसे आत्मा तो कहते हैं किन्तु जिस अन्त:करणरूपी शीशे में परम चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है उस अन्त:करण में ही मैल होने के कारण प्रतिबिम्ब स्वच्छ, निर्मल, शांत एवं पूर्ण नहीं पड़ता। इसलिए इस स्थिति में उसे आत्मा न कहकर जीवात्मा कहना ही उचित प्रतीत होता है। सुख-दु:ख, हानि-लाभ, भ्रान्ति एवं भूल अन्त:करण में ही होती है। इसलिए एक घड़े के प्रतिबिम्ब के गंदला हो जाने से सारे प्रतिबिम्ब गंदले नहीं हो जाएंगे। एक घड़े के फूट जाने से उसका प्रतिबिम्ब लुप्त हो जाएगा। सबके प्रतिबिम्ब लुप्त नहीं हो जाएंगे। एक के अहंकार का लय हो जाने से सबका अहंकार लय नहीं हो सकता। चिदाकाश (शुद्धात्मा) एक है और चिदाभास (जीवात्मा) अनेक हैं। व्यावहारिक स्तर पर अनेक चिदाभासों का खेल चलता रहता है। पारमार्थिक स्तर पर परमार्थ के साधक को सर्वत्र एक चिदाकाश या शुद्ध आत्मा का दर्शन होता है। भले ही जिनमें वह शुद्धात्मा देखता है वे सब अपना आत्मा मलिन होने के कारण अपने में और अन्यों में अलग-अलग जीवात्माओं का अस्तित्व मानते रहें।



शुद्धात्मा—सबमें शुद्धात्मा का दर्शन

मलिन अन्त:करण
अपने में भी शुद्धात्मा का दर्शन नहीं
दूसरों में भी नहीं।

जो सूर्य की आँखों से सब घड़ों को देखेगा उसे सबमें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई देगा।

सर्वभूतस्थमात्मानं। 6/29, गीता

किन्तु जो अलग-अलग घड़ों की दृष्टि से देखेगा उसे प्रतिबिम्ब अलग-अलग दिखायी देंगे और भ्रान्ति से सूर्य भी अनेक समझ बैठेगा।

आत्मा शब्द भाषा की लाचारी के कारण कभी शरीर के लिये प्रयोग हो जाता है, जैसे—आत्मरक्षा, आत्महत्या। कभी मन के लिए प्रयोग हो रहा है, जैसे—आत्मसम्मान, मान-अपमान। भगवद्गीता में कहते हैं—

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:। 6/5, गीता

यह आत्मा अर्थात् मन अपना आप ही बंधु है। अपना आप ही शत्रु है। यहां आत्मा शब्द मन के लिए प्रयोग हो रहा है। क्योंकि शुद्धात्मा अपना वैरी तो क्या किसी का भी वैरी नहीं हो सकता।

इसी प्रकार कहीं आत्मा शब्द बुद्धि के लिए भी प्रयोग होता है। जैसे— आत्म समाधान। इसलिए अन्तःकरण से युक्त आत्मा भले ही अनेक प्रतीत हो, किन्तु शुद्धात्मा एक ही है। जैसे नीली, पीली, लाल, हरी, बिजलियां। मेरे घर की बिजली, तेरे घर की बिजली, पतरातू की बिजली, दामोदर की बिजली आदि। सब भिन्न-भिन्न मानी जा रही हैं। किन्तु रंगों, रूपों, यंत्रों, कारखानों से परे जो शुद्ध विद्युत् है चाहे वह अंतरिक्ष में चमकने वाली बिजली हो, चाहे बल्बों में प्रकाशित होने वाली बिजली हो। चाहे हीटर, फ्रीज, मशीनों को, रेलगाड़ियों, टार्च बैटरी आदि को चमकाने वाली बिजली हो। वह सारे विश्व में एक ही है।

ज्यों-ज्यों अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है त्यों-त्यों जीव के अन्तर में स्वयं प्रकाश बढ़ता जाता है। यदि सब आत्मायें अलग-अलग होती तो योगी अपने शुद्ध अन्तःकरण से दूसरों के मन की बात कैसे जान पाते? सामान्य जीवन में भी अनेक बार हमें हमारे अन्तर में अन्तर्यामी दूसरों के मन में उठने वाले भावों का पहले ही संकेत कर देता है। बुढ़िया माय की कथा हम सब जानते हैं। वह अपनी गठरी लेकर गांव जा रही है। रास्ते में घुड़सवार मिला। बुढ़िया माय चाहती थी घुड़सवार उसकी गठरी को गांव ले जाय वहां वह उसे ले लेगी। पर घुड़सवार ने इन्कार कर दिया और आगे बढ़ गया। तब अचानक बुढ़िया माय को होश हुआ वह घुड़सवार गठरी लेकर गायब भी हो सकता था। उसी समय घुड़सवार को लगा उसने गठरी को अस्वीकार कर गलती की। वह गठरी लेकर चम्पत हो जाता। वह पुनः वापस लौटकर बुढ़िया से क्षमा मांगता हुआ गठरी चाहता है, तब बुढ़िया ने कहा जिसने तुझे बोध दिया उसने ही मुझे भी दर्शा दिया। हमें स्वप्न में अनेक भावी घटनाओं का पूर्व संकेत भी मिल जाता है। मन को मन पहचान लेता है। आत्मा को आत्मा। इसलिए एक व्यक्ति के मन से वैर या द्वेष निकल जाने पर अपने आप दूसरों का मित्र बन जाता है। इसके लिए उसे मित्रता गांठने का प्रयास भी नहीं करना पड़ता। स्वामी रामतीर्थ के अमेरीका पहुंचने पर डॉ. हिलर ने उन्हें अपने आत्मीय बंधु या घर के स्वजन से भी अधिक मान-सत्कार किया। बिना पाई-पैसों के अपनी आत्मीयता के आधार पर सारे विश्व में उन्होंने प्रेम और सत्कार पाया।

अमेरीका का दार्शनिक थोरो शत्रुओं से भी आत्मीयता रखता था। इसलिए गिलहरियां उसके कंधों पर नाचती। मछलियां जल में स्नान करते समय हाथों में फुदकती रहती थी। इमर्सन यह दृश्य देखकर विस्मित हो गया। इमर्सन थोरो का मित्र व शिष्य था। थोरो ने कहा, तुम सब जीवों के प्रति वैरभाव त्यागकर शाकाहारी भोजन का व्रत लोगे तब मछलियों को तुमसे कोई भय नहीं होगा। चिड़िया गाय, भैंस की पीठ पर बैठ जाती है क्योंकि उसको उससे भय नहीं है। किन्तु मनुष्य के हाथ पर बैठने से हिचकती है। स्वामी रामतीर्थ टिहरी राज्य के

जंगलों में बर्बर शेरों का आलिंगन करते रहते। सबमें आत्मरूप का दर्शन करने वालों को भला भय कैसे हो सकता है? अपने आप से किसी को भय नहीं होता।

द्वितीयाद्वै भयं भवति।

भय दूसरे या परायों से लगता है।

गुरु नानकदेव कहते हैं—

न कोई वैरी ना कोई बेगाना, सकल संग हमरी बन आयी।

मानसिक दूरदर्शन द्वारा योग साधक अपने मन के भावों को दूर तक भेज सकता है और दूसरे के मन के भावों को दूरी के उपरान्त भी तुरन्त जान लेता है। आत्मा की (मूल चेतना की) एकता हुए बिना कौन-सी डोरी से हजारों मील दूर दो मनों में संचार सम्पर्क हो जाता है।

यदि चेतना की मूलभूत एकता न होती तो कभी भी दूसरे के भावों को जान न सकते और दूसरों को अपने व्यवहार से कभी भी सच्चा सुख या आनन्द नहीं दे सकते। हम जानते हैं कि कौन से व्यवहार हमारी आत्मा को प्रिय लगते हैं, वैसा ही व्यवहार हम दूसरों के प्रति करते हैं तो सारा संसार हमें अपना दिखाई देता है और हम सारे विश्व के मित्र बन जाते हैं। यदि आत्मा मूलभूतरूप में भिन्न-भिन्न होती तो हमारी सज्जनता के व्यवहार से भी दूसरे लोग हमारे वैरी बन जाते और नैतिकता का विश्वव्यापी मापदण्ड कोई न बन सकता। आत्माओं की अन्तर्भूत एकता ही नैतिकता को जीवित रखे हुए है। यदि हमें अत्याचार दु:ख देता है तो दूसरों को भी दु:ख देगा। यदि हम अन्याय नहीं चाहते तो हमें किसी के प्रति अन्याय नहीं करना चाहिए। यह नैतिकता की सबसे बड़ी कसौटी है।

यदि आत्मायें भिन्न होती तो कोई अन्याय सहने से दु:खी होता और कोई सुखी भी होता। कोई शाश्वत सुख को आदर्श मानता कोई शाश्वत दु:ख को। कोई आत्मशोषण को भला मानता और कोई आत्मपोषण को।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहविदीन् महती विनष्टिः।

यदि इसी जीवन में ब्रह्म को जान लिया, तब तो ठीक है, यदि इसी जीवन में नहीं जाना, तो बड़ी हानि है।

Self

सब दर्शन का मूल बिन्दु 'मैं' ही है। यदि मैं ही नहीं तो दर्शन का जिज्ञासु कौन है? द्रष्टा कौन है? प्रश्नकर्ता और समाधान का इच्छुक कौन है? सब दर्शन 'मैं' को मानकर या 'मैं' को सिद्ध करके आगे बढ़ते हैं।

मानवता की साधना का मूल बिन्दु मैं ही है। मैं जो कुछ पाना चाहता है जो भी उसके जीवन का लक्ष्य है उस लक्ष्य की ओर बढ़ने की चेष्टा कौन करेगा। यदि यात्री ही नहीं तो यात्रा कैसी? यदि ईश्वर प्राप्ति की साधना अनेक जन्मों में पूरी होने वाली है तो साधक को साधना के प्रारम्भ से अन्त तक रहना चाहिए। यदि साधक बीच में ही लुप्त हो जाए तो साधना निरर्थक और सिद्धि कल्पनामात्र रह जाएगी। यदि स्वर्णपदक प्राप्त करने के लिए दौड़ने वाले सभी धावक मार्ग में ही दम तोड़ जाएं तो पदक एवं प्रतियोगिता दोनों निरर्थक हो जाएंगे। अतः साधना के लिए भी साधक में 'मैं' का होना और सदा बना रहना अनिवार्य है।

सब जीवों में सबसे पहला और प्यारा नाम मैं ही है। संसार ने उन्हें कोई भी अलग-अलग नाम दिये हों और प्रकृति ने कितने भी भिन्न-भिन्न रूप दिए हों, किन्तु सब कोई अपने आपको मैं ही जानते और मानते हैं। मैं के बिना न जगत् का व्यवहार चल सकता है और न आध्यात्मिक चिन्तन या साधना। जब कोई व्यक्ति निकट है तो हम उसे यह कहकर सम्बोधन करते हैं। दूर होने पर वह कहकर सम्बोधन करते हैं। आमने-सामने उपस्थित होने पर तू कहते हैं। किन्तु किसी व्यक्ति को ये सब सर्वनाम आत्मीयता प्रदान नहीं कर सकते। उसका अपना नाम है मैं। जिसमें उसे प्रेम, आत्मीयता और आत्मगौरव का बोध होता है। जिस व्यक्ति का जैसा-जैसा विकास होता है वह इसमें वैसा-वैसा अर्थ लगा लेता है।

देहाध्यासी एवं आसुरी सम्पद वाले इस स्थूल शरीर को ही मैं मानकर इसी के अहंकार में निबद्ध रहते हैं। इसे वेदान्त दर्शन में देहाध्यास कहा जाता है—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।। 16/8, गीता

आसुरी प्रकृति वाले कहते हैं जगत् में सत्य की प्रतिष्ठा नहीं है। बिना ईश्वर के आधार के स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ शरीर केवल भोग भोगने के लिए है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।। 16/18, गीता

अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोध के परायण हुए, दूसरों की निन्दा करने वाले और अपने हृदय मन्दिर में और दूसरों के हृदय मन्दिर में स्थित परमेश्वर से द्वेष करने वाले, पापाचारी, क्रूरकर्मी-नराधामों को मैं संसार में आसुरी योनियों में तथा नीच कूकर-सूकर की योनि में पटक देता हूं।

कुछ लोग इन्द्रियों और इन्द्रियों के कार्यव्यापार को ही मैं मानते रहते हैं। इन्द्रियां शरीर का अंग होते हुए भी कुछ सूक्ष्म हैं। अतः उनकी शक्ति और व्याप्ति शरीर से अधिक है। भगवान् गीता में कहते हैं—मात्राओं का विषयों से स्पर्श शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि देने वाला, आने-जाने वाला तथा अनित्य अनुभव है। जो इनसे व्यथित नहीं होता वह तितिक्षापरायण पुरुष अमृतपद का अधिकारी बनता है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। 2/14, गीता

इन्द्रियध्यासी से ऊपर मनाध्यासी लोग हैं। जो मन को ही अपना मैं मानकर सब कार्य व्यवहार करते हैं। गीता में अर्जुन ने भगवान् के सामने निवेदन किया है कि मन बड़ा चंचल है जो पक्के, बलवान इरादे का भी मंथन कर डालता है। इसको बांधना तेज आए हुए तूफान को बांधने के समान कठिन है। अतः मन को मैं मानने वाला कभी स्थिर एवं शांत नहीं रह सकता। वह दुःख-सुख, हानि-लाभ के, निन्दा-स्तुति के द्वन्द्वमय थपेड़ों की मार सहता हुआ सदा मानसिक क्लेश भोगता रहता है। अन्तःकरण से संयुक्त आत्मा ही जीवात्मा कहलाता है। वही तीन ताप और पंचक्लेशों को भोगता है। वही सूक्ष्म शरीर के रूप में जीवनभर संकल्प-विकल्प करता है। कल्पना के पुलाव पकाता है। मन के मोदक खाता है। कल्पित इच्छाओं की पूर्ति के लिए स्वप्न लेता है। तथा शरीर के मर जाने के पश्चात् भी अपनी अतृप्त कल्पनाओं की पूर्ति हेतु अगले जन्मों में जन्म से ही वैसी प्रवृत्ति लेकर प्रकट होता है और पिछले जन्मों के कर्मों के फल भोगता है। यह अन्तःकरणयुक्त आत्मा ही व्यक्तिगत आत्मा है। जब हम दुरात्मा, पापात्मा, महात्मा, पतितात्मा, पवित्रात्मा आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वह व्यक्तिगत जीवात्मा के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है, शुद्धात्मा के अर्थ में नहीं। जब हम कहते

हैं कि उसकी आत्मा क्लेश पा रही है या भूखे को अन्न देने से उसकी आत्मा को बड़ा सुख मिलता है तो भी हम जीवात्मा की ही बात कर रहे हैं। यह जीवात्मा ईश्वर का ही अंश है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। 15/7, गीता

इस देह में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इस त्रिगुणमयी माया में स्थित हो मन सहित पांचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है। जैसे सिन्धु का बिन्दु सिन्धु के जल का ही अंश है। किन्तु उसका छोटा रूप है और उसका नाम भी कल्पना से बिन्दु कहा गया है। किन्तु तत्त्वतः जल ही है। उसी प्रकार जीव कल्पित नाम, पंचभूत का शरीर, मन और इन्द्रिय सब कल्पित एवं आरोपित है। वह अहम् भाव से अपने को मैं कहता रहता है। इस अहंता के भाव से ही ममता का भाव पैदा होता है जिससे वह अपने सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं और व्यक्तियों को मेरा-मेरा मानता रहता है। इस अहं भाव संयुक्त आत्मा को जीवात्मा कहा जाता है। यदि शुद्धात्मा शरीर की उपाधि में रहता है और उसमें मन और पंच-ज्ञानेन्द्रियां न होती तो जीवभाव कदापि प्राप्त न होता। जैसे सुषुप्ति काल में शरीर में आत्मा रहता है। इन्द्रियां और मन काम नहीं करते इसलिए जीवभाव लुप्त रहता है। जब पंच-ज्ञानेन्द्रियों और मन से नाना भोगों को भोगने का कार्य करता है तब उसे अनुभव होता है कि मैं भोक्ता हूं। यही जीवभाव है। यदि इन्द्रियां रहे और मन न रहे तब भी जीवभाव नहीं रहेगा। जैसे क्लोरोफार्म सुंघाकर मन को सुला दिया जाता है तब जीवभाव लुप्त हो जाता है। इसलिए मन को ही जीव का बंधन और मोक्ष का हेतु कहा गया है। मन ही विषयों के बंधन और मोक्ष का कारण है।

आत्मा सदा अखण्ड-एकरस है। अतः उसका कहीं आना-जाना, प्रवेश करना, निकलना आदि शब्दप्रयोग उचित नहीं बनता। यदि दस करोड़ घड़े बनाये जाएं तो तत्क्षण उनमें आकाश समा जाता है। किन्तु यह कहना अशुद्ध होगा कि आकाश उसमें प्रवेश कर गया या घड़ा फूटने पर आकाश निकल गया। आकाश सर्वत्र है, सर्वव्यापक है। अतः उसका प्रवेश और निकास सम्भव ही नहीं है। इसलिए आत्मा का शरीर में प्रवेश और शरीर से निकल जाना शुद्ध शब्दप्रयोग नहीं है। यह जीवात्मा का प्रवेश अथवा निकास कहा जा सकता है।

आकाश तो सर्वत्र ही है, आकाश में ही सारे कार्यव्यापार हो रहे हैं। आकाश में कुम्हार घड़े को बना रहा है। वैसे ही आत्मा सर्वत्र व्याप्त है। आत्मा में ही या आत्मा की उपस्थिति में ही सारे जड़-चेतन का खेल चल रहा है।

भगवान् ने 15वें अध्याय के दसवें श्लोक में कहा है कि शरीर को छोड़ने वाले, शरीर के विषयों को भोगने वाले अथवा गुणों से युक्त इस जीव को मूढ़जन

नहीं देखते किन्तु ज्ञानीजन ही इसे देखते हैं। प्रश्न है कि ज्ञानीजन उस जीवात्मा को कैसे देखते हैं। निश्चय ही शरीर, इन्द्रिय और मन के क्रियाकलाप से वे अनुमान लगाते हैं कि इसके भीतर कोई चेतन तत्त्व है जो सब कार्य व्यवहार, अनुभव आदि करने में सहायक है। जब शरीर कुछ भी जानने में समर्थ नहीं रहता तब अनुमान लगाया जाता है कि जीवात्मा शरीर को त्याग कर चला गया। कृतात्मा और योगी ज्ञानचक्षु से इसको देखते हैं। स्थूल नेत्रों से जीवात्मा दिखाई नहीं देता। किन्तु ज्ञानचक्षु से इसके विषय में तर्क द्वारा निष्कर्ष निकाला जाता है। कृतात्मा वे लोग हैं जो शास्त्रों के अनुष्ठान से विद्या प्राप्त करके यम, नियम आदि साधन, गुरु सेवा, श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा अपने को विद्या का योग्यपात्र बनाते हैं। जो अज्ञानी अपने उद्धार के लिए योग अनुष्ठान नहीं करते वे आत्मघाती अकृतात्मा कहे जाते हैं। आत्मा के ज्ञान का योग करने वाला योगी अथवा ज्ञानयोगी कहा जा सकता है। इसके विपरीत अयोगी कहा जाएगा। कृतात्मा और योगी तो जीवों के शरीर की हलचल और अनुभूति को देखकर और मृतकों की हलचल और अनुभूति के समाप्त हो जाने को देखकर ज्ञानचक्षु से समझ लेते हैं कि जीवात्मा शरीर में है या निकल गया है। किन्तु जो अज्ञानी हैं वे जीवों के शरीर की हलचल और अनुभूति देखकर और मृतकों की हलचल और अनुभूति लुप्त होती जानकर भी जीवात्मा को न जानते हैं और न मानते हैं।

बुद्धि का अध्यास—जो कोई बुद्धि को ही अपना मैं मानते हैं वे मनध्यायी से ऊपर कुछ जरूर हैं। किन्तु वे विज्ञानमय कोश या आनन्दयमय कोश में ही बंधे रहते हैं। वे दार्शनिक विचारक बन सकते हैं, शास्त्री एवं पण्डित बन सकते हैं। किन्तु आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान से नीचे ही रहते हैं। उन्हें बुद्धि का अहंकार हो जाए तो वह भी ब्रह्मज्ञान के मार्ग में एक भारी बाधा बन जाता है। जैसे कर्तापन का अहंकार बंधन का कारण है उसी प्रकार ज्ञानी होने का अहंकार अज्ञान का कारण है। इस अवस्था तक जीव जीव ही रहता है। जीवात्मा शुद्धात्मा से अलग ही रहता है—

शुद्धात्मा की, निर्लिप्त-असंगात्मा की बड़ी महिमा गीता में गाई गई है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोन हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 2/20, गीता

यह अज है, नित्य है, शाश्वत है, पुराण है, सर्वगत है, सनातन है। एकमात्र सत् वस्तु सृष्टि का चरम परम सत्य है। सबके अन्तर में रहते हुए भी निर्लिप्त है। यह ज्योतियों की ज्योति है। विभक्तों में अविभक्त, विषमों में सम है, द्वन्द्वों में निर्द्वन्द्व है, द्वैतों में अद्वैत है, क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ है, सृष्टि के तूल का मूल है, सब जीवों का जीवन है, सब भूतों का मूल बीज है, परिवर्तनों में अपरिवर्तनीय है,

नामों में अनामी है, रूपों में अरूप है, प्रकृति की परिधि का केन्द्र है, अजर-अमर अविनाशी है। यह सब साधनाओं की अन्तिम सिद्धि है और सारी अध्यात्म यात्रा का अन्तिम लक्ष्य है।

जब तक नाम-रूप के आवरण में लिप्त मन-बुद्धि-चित्त-अहंकाररूप अन्तःकरण चतुष्टय से युक्त मैं का भाव है तब तक यह शुद्धात्मा भी अनेक जीवात्माओं के रूप में भासता है। प्रत्येक जीव का नाम अलग और रूप अलग है। उसका अन्तःकरण और कर्मों का लेखा-जोखा अलग-अलग है। किन्तु शुद्धात्मा सारे विश्व का एक ही है। वह सब जीवों का निर्लिप्त, निर्विकार, असंग मैं-पने का भाव है। सब जीवों में पिरोया हुआ जो मैं है वही विश्वात्मा, जगतात्मा, सकलभूतान्तरात्मा, असंगात्मा, पवित्रात्मा व परमात्मा है।

आत्मा एक है अथवा अनेक है इस विषय पर दार्शनिकों में बड़ा शास्त्रार्थ चलता है। वे आपत्ति करते हैं कि यदि आत्मा एक ही है तो एक के मरने से सबको मर जाना चाहिए। एक के दुःख से सबको दुःखी होना चाहिए। वास्तव में देखा जाए तो मरना, जन्मना शरीर का धर्म है—आत्मा का नहीं। अतः शरीरों के मरने-जन्मने से आत्मा में कोई अन्तर पड़ता ही नहीं। अनेक शरीर बनें या मिट जाएं, आत्मा अखण्ड व एकरस है। जल में लाखों बुलबुले बनें या मिट जाएं जल तत्त्व का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। दुःखी-सुखी होना अन्तःकरण का धर्म है, आत्मा का नहीं। अतः एक के दुःखी-सुखी होने से सबके दुःखी-सुखी होने का तर्क यहां नहीं चल सकता। शास्त्रज्ञान या मूढ़ता बुद्धि का धर्म है। अतः एक के ज्ञानी होने से सब ज्ञानी नहीं हो सकते। एक के मूर्ख होने पर सब मूर्ख नहीं हो सकते। वास्तव में ज्ञान-अज्ञान का भेद अनेकता में ही रहता है और अनेकता स्वयं में बहुत बड़ा अज्ञान है। जब तक जीवात्मा भाव रहता है तब तक अनेकता, अज्ञान, कर्मफल भोग, पुनर्जन्म आदि त्रिगुणमयी माया का बंधन बना रहता है। ज्योंही जीव शुद्धात्मा की शरण में जाता है वह माया के भवसागर को पार कर आत्मानन्द-ब्रह्मानन्द का लाभ करता है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 7/14, गीता

मेरी दैवी गुणमयी माया बड़ी दुस्तर है। किन्तु जो मेरी (शुद्ध मैं की) शुद्धात्मा की शरण में आ जाते हैं वे इसे तुरन्त पार कर जाते हैं।

पूर्ण तथा अपूर्ण

(1) गणित की जितनी संख्याएं हैं वे मानव की बुद्धि से निकली हैं। और मानव की बुद्धि सीमित है। इसलिए मानव की बुद्धि से निकली हुई संख्याएं पूर्ण नहीं हो सकती है। क्योंकि मनुष्य की बुद्धि पूर्ण नहीं है और बुद्धि से प्रकट है संख्या।

(2) जितनी संख्याएं हैं सभी अपूर्ण हैं। क्योंकि वे विकारी हैं। उनमें परिवर्तन या विकार हो सकता है।

(3) गणित में 4 प्रकार के परिवर्तन या विकार होते हैं—

(क) योग = जो संख्या बढ़ सकती है वह न्यून है।

(ख) शेष = जो संख्या घट सकती है वह क्षयशील है।

(ग) भाग = जो संख्या बंट सकती है वह खंडित, टुकड़े, विभाग।

(घ) गुणा = जो संख्या गुणा, दर अपने समान अनेक अन्य संख्या बनाए।

(4) कोई बड़ी से बड़ी संख्या लें तो उसमें भी 1 बढ़ाया जा सकता है।

1000 ....+1=1001

अतः वह पूर्ण नहीं थी। इसलिए बढ़ायी जा सकी। उसे घटाया भी जा सकता है।

1000 .... - 1=999

उसका भाग भी किया जा सकता है÷

टुकड़े हो सकते हैं। उसे गुणा भी किया जा सकता है।

(5) पूर्ण में कोई विकार नहीं हो सकता। अपूर्ण ही विकारी होता है।

(6) भौतिक जगत् की प्रत्येक वस्तु अपूर्ण है।

(7) आत्मा एक पूर्ण चैतन्य सत्ता है। यदि वह पूर्ण है तो वह कभी अपूर्ण नहीं रह सकती। पूर्ण कभी घटता, बढ़ता, बंटता या गुणन होता नहीं—वह सदा पूर्ण रहे तभी पूर्ण कहलाने का अधिकारी है।

(8) पूर्ण = अनन्त Infinite अविकारी ∞

अपूर्ण = सान्त विकारी

(9) infinite अनन्त पर लौकिक गणित का कोई सूत्र लागू नहीं होता।

$\infty+\infty=\infty$

$\infty-\infty=\infty$

$\infty\div\infty=\infty$

$\infty\times\infty=\infty$

(10) पूर्ण योग (जोड़) से परे है।

पूर्ण अक्षय है

पूर्ण अविभक्त है

पूर्ण गुणन से परे है, निर्गुण है।

(11) Causality कार्य-कारणवाद दो प्रकार का होता है। (क) साधारण विज्ञान में सामान्य व्यवहार में Transient Causality अस्थायी कारण परम्परा Cause produces the effect.

(ख) उच्च विज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान (वेदान्त में) Immanent causality अन्तर्भूत कारणवाद ही Cause does not produce the effect cause become the effect. कारण स्वयं कार्य बन जाता है। विज्ञान में Ice disolve produce water but Ice become water by Heat.

वेदान्त में God does not produce the world but become the world. ईश्वर स्वयं जगत् बन जाता है—

'हरिरेव जगत् जगदेव हरिः।'

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह सब कुछ ब्रह्म ही है।

सब घट मेरा साईंया
सूनी सेज न कोय
वा घट की बलिहारियां
जा घट प्रकट होय।

बर्फ में पानी विद्यमान है, बिजली में शक्ति विद्यमान है। जीव में ईश्वर विद्यमान है। पर जब वह प्रकट हो जाता है तब पूजा जाता है।

पूर्ण से ही पूर्ण प्रकट होता है।

आकाश = खाली स्थान

पूर्ण की आकाश से उपमा

महाकाश- अनन्त

10 करोड़ मठाकाश

प्रत्येक मठ में 10 करोड़ घट बनाए- घटाकाश 10 करोड़ × 10 करोड़

आकाश बिना कटे, बिना बंटे अनन्त घटों में समा गया, निर्लिप्त।

आकाश एक अखण्ड। पूर्ण रहते हुए भी अनेकानेक घटों में, मठों में समा जाता है—

1000000000000000 घट बनने पर महाकाश में क्षति नहीं हुई।

1000000000000000 घटों के टूटने पर आकाश में वृद्धि नहीं हुई।

महाकाश का विभाजन भी नहीं हुआ। उसको गुणन से बढ़ाया भी नहीं जा सकता।

घटाकाश घट फूटने पर मठाकाश में मिल गया।

मठ टूटने पर मठाकाश महाकाश से मिल गया।

महाकाश में न न्यूनता हुई न वृद्धि हुई।

अनन्त (पूर्ण) + पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण - पूर्ण = पूर्ण

आम का बीज लगाने पर आम का वृक्ष हुआ। वृक्ष में पुनः पूरे आम लगे।

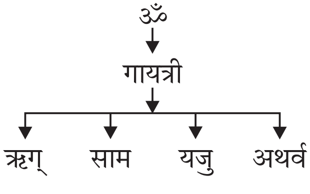
ब्रह्म से सृष्टि- मानव। मानव में पुनः ब्रह्मज्ञान का प्रकाश होने पर मानव पुकार उठा- अहं ब्रह्माऽस्मि।

पूर्ण आम से पूर्ण आम का फल लगा (बीज)।

ॐ- अ+उ+म्

सत्-चित्-आनन्द

त्रिलोक, त्रिकाल, तीन गुण, तीन देव, वेदत्रयी। वैदिक साहित्य में रहस्यमय ध्वनि जो ब्रह्म का प्रतीक है।



वेद एवं गीता में प्रतिपादित प्रणव (ओम्कार) ॐ विश्वव्यापी स्वाभाविक दिव्य ध्वनि है। जो शंखनाद, प्रणव ध्वनि, योगियों के अनहद नाद से लेकर लैटिन भाषा के Omni present,

omniscent, omnipotent शब्दों में भी सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान के पीछे के 'सर्व' का सूचक है। तथा ईसाई एवं इस्लामी प्रार्थना के अन्त में उच्चारित हिब्रू (यहूदी) शब्द आमीन में भी गूँज रहा है।

(2) ईशावास्यंयमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

विश्व में जो कुछ भी है, सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है।

(क) सब कुछ ईश्वर का है।

(ख) सब कुछ ईश्वर द्वारा निर्मित है।

(ग) सब कुछ ईश्वर से व्याप्त है।

(घ) सब कुछ ईश्वर में ही है।

'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (वेद)

उसने सृष्टि की रचना की। वह स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया या ईश्वर ही जगत् बन गया है।

(3) तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।

उस परमेश्वर के लिए समर्पण करके विषयों को भोगो।

(4) मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।

किसी के धन की ओर लोभ की दृष्टि मत रखो।

वेद—विभाजन के पूर्व वेद प्रणव (ओम्) रूप में था।

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।

कठ उ., 1/3/14

अर्थात्

आर्य अध्यात्म-मार्ग के पथिको!

उठो! जागो!

श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो! तत्त्वज्ञानी उस दुर्गम अध्यात्म-मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण तथा दुस्तर धार के समान बतलाते हैं।

जीवों का वैज्ञानिक वर्गीकरण

मांसाहारी जीव	शाकाहारी जीव
1. मांसाहारी जीव प्रायः जीभ से लप-लप के पानी पीते हैं जिससे उनके पानी पीने से आवाज होती है। जैसे-कुत्ता, बिल्ली आदि।	1. शाकाहारी जीव को लपलपाकर नहीं अपितु घूंट भर कर पानी पीते हैं। जिससे आवाज (चट पट की) नहीं होती।
2. मांसाहारी जीवों को प्रायः पसीना नहीं आता। उनके शरीर में उत्पन्न होने वाले विषमय पदार्थ थूक तथा श्वास के रास्ते बाहर निकलते हैं।	2. शाकाहारी जीवों को पसीना आता है जिससे अंदर के विष बाहर निकलते हैं।
3. मनुष्य की खोपड़ी कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया आदि मांसाहारी जीवों से नहीं मिलती।	3. मनुष्य की खोपड़ी शाकाहारी बंदर की खोपड़ी के अति निकट है।
4. मनुष्य की थूक कुत्ते, बिल्ली आदि मांसाहारी जीवों से भिन्न होती है।	4. मनुष्य की थूक शाकाहारी जीवों से मिलती है। इसमें Ptyalin नामक एक तरल खमीर होता है जो Starch को हजम करता है।
5. कुत्ते, बिल्ली आदि मांसाहारी जीवों के पेट में मनुष्य की अपेक्षा दस गुना (Hydrochloric acid हाइड्रोक्लोरिक एसिड नमक का तेजाब) अधिक पैदा होता है जो मांस को पचाने के लिए आवश्यक है।	5. मनुष्य तथा अन्य शाकाहारी जीवों के पेट में नमक का तेजाब बहुत कम मात्रा में पैदा होता है क्योंकि शाक, फल, अन्न को पचाने में इसकी अधिक आवश्यकता नहीं होती।

6. कुत्ते, बिल्ली आदि जीवों की आंतें (intestines) छोटी होती हैं। वे उनके शरीर से केवल 4'' या 5'' लंबी होती है।

7. मांसाहारी जीवों को शौच जल्दी आ जाता है ताकि मांस के गलने-सड़ने से तथा रक्त को विषाक्त करने से पहले मल त्याग कर दिया जाय।

8. यदि बिल्ली के बच्चे के सामने मांस का टुकड़ा फेंका जाय तो वह बड़े चाव से झपट कर ले लेता है क्योंकि वह मूलतः मांसाहारी है।

9. मांसाहारी स्वभाव से क्रूर होते हैं। उन्हें रक्तपात तथा हिंसा में आनन्द आता है।

10. मांसाहारी समाज के लिए विशेष उपयोगी नहीं होते। प्रायः समाज-द्वेषी होते हैं। जैसे शेर, भेड़िये, लकड़बग्घा, समाजोपयोगी कोई काम नहीं कर सकते।

11. इनमें बल कम, धीरज कम, परिश्रम शक्ति नगण्य, केवल हिंसक वृत्ति की पोषक, कपट-घात वृत्ति विशेष होती है।

6. मनुष्य तथा शाकाहारी जीवों की आंतें उनके शरीर से 10-12 गुणा अधिक लंबी होती हैं। यदि मनुष्य मांसाहार करे तो मांस लंबी आंत में से गुजरने के कारण गलना-सड़ना आरंभ हो जाता है जिससे कई बार आंत में जहरीले कीड़े हो जाते हैं।

7. स्वस्थ मनुष्य को शौच दिन में एक बार आता है। यदि मनुष्य मांसाहार करे तो अधिक देर तक मल के शरीर में रहने से अनेक विष पैदा हो जाते हैं जिससे भयानक रोग होने का डर रहता है।

8. मानव शिशु के सामने यदि मांस का टुकड़ा फेंका जाय तो उसे स्वाभाविक घृणा होती है। यदि उसके आगे सेव या नारंगी रखे जायें तो वह उन्हें चाव से ले लेता है क्योंकि वह मूलतः शाकाहारी है।

9. शाकाहारी स्वभाव से शान्त होते हैं। इन्हें हिंसा से स्वाभाविक घृणा होती है।

10. शाकाहारी समाज के लिए उपयोगी बन सकते हैं। समाज के अंग बन सकते हैं। बैल कृषि में परमोपयोगी, गाय से दूध, घोड़ा, ऊंट, हाथी, गैंड़ा, आदि सवारी खेती, माल ढोने के कार्य में उपयोगी है।

11. इनमें बल धीरज, परिश्रम शक्ति अधिक होती है।

Nature's Verdict प्रकृति का निदेश :
The Difference of Teeth दांतों का भेद

मांसाहारी (Carnivorous Animals)	शाकाहारी (Frugivorous Animals)
1. तेज और नुकीले दांत।	1. चपटे तथा बिना नोक वाले।
2. दांतों के बीच की जगह में खाली जगह छूटी हुई है।	2. दांत मोतियों की लड़ी के समान सटे हुए।
3. पूरा दांत मांस को भीतर से काट सकता है।	3. दांत अन्न, फल और सब्जियां चबाने के लिए हैं, छोटे हैं।
4. दाढ़ें कम या बिलकुल नहीं होती हैं।	4. मनुष्य के मुख में आठ दाढ़ें होती हैं।

पारिवारिक परम्परा के अनुसार मांस-मछली, रवीन्द्रनाथ ठाकुर खाते थे। एक बार वे नौका विहार कर रहे थे। एक मछुआरा नदी में जाल फैलाकर मछली पकड़ रहा था। एक मछली कई बार जाल में फंसी फिर निकल गयी। मछली के जाल से मुक्त होने की जो तड़प, कष्ट, वेदना को देखा जीने की चाह को देखा उस दिन से रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मांस-मछली खाना छोड़ दिया।

दलाईलामा के पास डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी के साथ एक प्रतिनिधिमंडल यह निवेदन करने गया कि आप मांसाहार छोड़ देवें। भगवान् बुद्ध एवं बौद्धदर्शन पशु हिंसा का निषेध करता है। इस पर दलाईलामा ने कहा तिब्बत में तो मांसाहार आवश्यक था। यहां आवश्यक नहीं है। पर अभ्यासवश मांसाहार करता हूं। मैं तो पशुवध करता नहीं, मेरा भोजन बनाने वाला नौकर करता है। इस पर डॉ. ओबरायजी ने कहा—वह तो आपके लिए करता है। आप मांसाहार बंद कर देवें, तो वह पशुवध नहीं करेगा।

एक दिन संयोग से दलाईलामा छत पर टहल रहे थे, उनका नौकर मुर्गी को काट रहा था। उस समय मुर्गी की तड़पन व वेदना को देखकर उसी दिन से मांस खाना छोड़ दिया।

जीव-विज्ञान में हिंसा-अहिंसा

आदरणीय श्री नापानीजी,

सादर प्रभु वंदना!

आशा है मेरा यह तुच्छ पत्र सर्वत्र प्रभु कृपा का साक्षी होगा। आशा है पूज्य स्वामी शरणानंदजी का स्वास्थ्य भी प्रभु कृपा से अच्छा होगा। 16 जून से 21 जून 1974 तक उनके संस्कृति विहार रांची में प्रवचन नियत थे। तदर्थ प्रचार भी बहुत हुआ था किन्तु उनके अस्वस्थ हो जाने के कारण सभी दिन पूज्य बहन देवकीजी के प्रवचन हुए तथा माननीय बुधियाजी की आज्ञानुसार मुझे भी प्रतिदिन एक-एक वेद मंत्र की व्याख्या का कर्तव्य भार सौंपा गया था। प्रवचनमाला का कार्यक्रम सफल रहा। रांची के सभी नागरिक पूज्य स्वामीजी के दर्शन एवं प्रवचन हेतु उत्सुक हैं।

विकास विद्यालय, रांची में जीव विज्ञान का विषय प्रारंभ करने के विषय में माननीय बुधियाजी एवं मान्यवर प्राचार्य महोदय, दोनों की मेरे से बातचीत हुई है। आप जानते हैं कि हमारा परिवार शुद्ध शाकाहारी है जहां प्याज, लहसून आदि भी प्रयोग नहीं होता। अतः अकारण जीव हिंसा का समर्थन हम कभी नहीं कर सकते। किन्तु जन-कल्याण की पवित्र भावना से यदि बच्चों को जीव विज्ञान, औषधि विज्ञान, शल्य चिकित्सा, शरीर विज्ञान आदि की शिक्षा देने हेतु यदि अनिवार्यतः कुछ जीवों का नाश होता हो तो भारतीय शास्त्र एवं शास्त्रज्ञ मनीषी उसे पाप नहीं मानते।

मैंने पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज से लगभग एक मास पूर्व बोकारो स्टील सिटी में इस विषय में परामर्श किया था। उन्होंने भी कहा कि 'इस विषय में भाव ही प्रधान है। हिंसा के लिए हिंसा अक्षम्य अपराध है किन्तु जनकल्याण अथवा उपचार अथवा शिक्षा के लिए हिंसा पाप नहीं मानी जाती।'

भारतीय शास्त्रों में हिंसा के चार भेद माने गये हैं।

क. आकस्मिक हिंसा : जब मानव की भावना जीव हत्या की न हो तथा आकस्मिक अथवा दुर्घटना से जीव हत्या हो जाय। जैसे मानव के पांव के नीचे अनेक चींटियां दब कर मर जाती हैं, मानव के श्वास से अनेक जीवाणु मरते हैं, न

चाहते हुए भी आकस्मिक दुर्घटना से कोई जीव या मानव हमारे यान से टकराकर मर जाता है। भारतीय धर्मशास्त्र में तथा वर्तमान विधिशास्त्र में भी इसे क्षम्य माना गया है।

ख. व्यावसायिक हिंसा : जिस कृषक का व्यवसाय हल चलाना है उसके हल चलाने से, खेत की सिंचाई से, खेती को काटने से, धान कूटने, पीसने से, पकाने से भी अनेक दृश्य एवं अदृश्य जीव मरते हैं किन्तु क्योंकि उसकी भावना जीव हत्या की न होकर समाज के अधिक से अधिक लोगों को अन्न देने की है इसलिए इस कर्म से होने वाली हिंसा भी क्षम्य है। राष्ट्रसंत विनोबा भावे ने अपने प्रसिद्ध गीता प्रवचन के पृष्ठ 284 पर लिखा है, खेती का स्वधर्म ही लो। यह एक शुद्ध-सात्त्विक क्रिया है; लेकिन इस यज्ञमय स्वधर्मरूप खेती में भी हिंसा तो होती ही है। हल जोतने आदि में कितने ही जंतु मरते हैं। कुएं के पास कीचड़ न होने देने के लिए उसे पक्का बनाने में भी कितने ही जीव-जन्तु मरते हैं। सवेरे दरवाजा खोलते ही सूर्य का प्रकाश घर में प्रवेश करता है, उससे असंख्य जंतु नष्ट हो जाते हैं। जिसे हम शुद्धीकरण कहते हैं, वह एक मारण क्रिया ही हो जाती है।....मध्ययुग में एक ऐसी कल्पना चली कि खेती में हिंसा होती है, इसलिए अहिंसक व्यक्ति उसे न करे। वह व्यापार करे। अन्न उपजाना पाप है, पर कहते थे कि अन्न बेचना पाप नहीं। लेकिन इस तरह क्रिया को टालने से तो हमारा हित नहीं हो सकता। यदि मनुष्य इस तरह कर्मसंकोच करता चला जाय, तो अंत में आत्मनाश ही हो रहेगा।.... आपके इस धान्य के व्यापार के लिए क्या किसी को खेती न करनी पड़ेगी? तब क्या उस खेती से होने वाली हिंसा के आप हिस्सेदार न होंगे? अगर कपास उपजाना पाप है, तो उस उपजे हुए कपास को बेचना भी पाप है। कपास पैदा करने में दोष है, इसलिए उस कर्म को ही छोड़ देना बुद्धिदोष होगा। सब कर्मों का बहिष्कार करना....यह कर्म भी नहीं, वह कर्म भी नहीं, कुछ भी मत करो, इस प्रकार देखने वाली दृष्टि में कहना होगा कि सच्चा दयाभाव शेष नहीं रहा। बल्कि वह मर गया।....खेती का अनाज नष्ट होने से हजारों मनुष्य मर जायेंगे। इसलिए त्याग विवेकयुक्त होना चाहिए। (गीता प्रवचन, विनोबा भावे, पृ. 284, 28)

इसी प्रकार जब एक शल्य चिकित्सक 'सर्जन' किसी रोगी का प्राण बचाने हेतु उसके पेट को चीरता है तथा संयोगवशात रोगी की मृत्यु हो जाती है तो उसे पेट में छुरा चलाने वाले हत्यारे के समान अपराधी मानना स्वयं सबसे बड़ा अपराध होगा।

भाव-संशुद्धि ही गीता का सबसे बड़ा संदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि भावसंशुद्धि सहित तू सारे लोकों को मार डाले तब भी तू निष्पाप होगा।

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।। 18/17, गीता

ग. आत्मरक्षार्थ हिंसा : यदि हम किसी की हिंसा नहीं करते, किन्तु कोई अन्य हमारी हिंसा पर तुल जाता है तो उस समय आत्मरक्षार्थ हिंसा भी शास्त्र एवं विधि दोनों में क्षम्य है। रोगाणुओं के शरीर पर आक्रमण करने की स्थिति में, औषधि या टीके द्वारा रोगाणुओं का नाश, घर की शुद्धि हेतु गोबर अथवा डीटीटी द्वारा कीटाणु का नाश, यज्ञ होम द्वारा वायुमण्डल की शुद्धि हेतु अनेक कृमि-कीटाणुओं का नाश, देशरक्षार्थ, शत्रुनाश इत्यादि कर्मों को अपराध नहीं माना जा सकता।

घ. क्रूरभाव हिंसा : जब मनुष्य हिंसा के लिए हिंसा, अथवा अन्य जीवों को सताने के लिए हिंसा अथवा अपनी जिह्वा की दासता के लिए जीव हिंसा करता है तब निश्चय ही वह अपराध अक्षम्य है।

वैदिक प्रमाण :

आयुर्वेद वेद का महत्त्वपूर्ण अंग है। उसमें लोक कल्याण की भावना से, शरीर के अंगों का अध्ययन, अन्य जीवों के शरीरों एवं अंगों के छेदन, भेदन, विभाजन आदि के द्वारा पूर्णतः समर्थित है।

स्वयं वेद के अनेक मंत्रों में शरीर के छोटे से छोटे अंगों का बहुत सूक्ष्म वर्णन है। ऋग्वेद—10/97/1 में ऋषि कहता है 'मैं चिकित्सक शरीर के 107 मर्म स्थानों को जानता तथा 107 भूरे रंग की जड़ी-बूटियों को भी जानता हूँ जो उन मर्मांगों पर प्रयोग होते हैं।' अथर्ववेद के 10वें काण्ड के 9वें सूत्र के मंत्र 15 से 18 में शरीर के निम्नलिखित अंगों का वर्णन है : क्लोम (फेफड़े), हृदय, सहकंथिका पुरोतत् (छोटी आंत), (प्लाशीह भोजन वाली आंत, वनिस्थूहः (भोजन एवं रक्त को बांटने वाली आंत) कुक्षि (पेट की एक दि चर्मयकृत (जिगर), मातस्नी (गुर्दा), आंत्रम् (अंतड़ियां), गुदा, मज्जा, अस्थि, मांसम् लोहितम (रक्त)। इस अथर्ववेद के काण्ड 10, सूक्त 2, मंत्र 1 से 8 में निम्नलिखित शरीरांगों का वर्णन है: परस्नी (एड़ी), गुल्फा (टखने), अंगुली, खनि, उत्स्लांका (पाद का निम्न भाग), उत्तर अस्थिवन्त (ऊपर का घुटना), जंघा, जानुनीह संधि (जंघा का जोड़) कबंधः उरः (छाती), स्तना (स्त्री का स्तन), कपाल, स्कन्ध, पृष्टिः (कान की हड्डी) बाहु, अंस (कंधे की सीधी हड्डी) सप्तखान (शिर के 7 छिद्र, हनु (जबड़ा), मस्तिष्क, ललाटम्, काकतिक्ता (सिर का पृष्ठ भाग), कपालम्।

अथर्ववेद में प्रथम मंडल के 17 वें सूक्त में शिरा, छिरा तथा धमनी नामक सूक्ष्म नाड़ियों का वर्णन है जो रक्तवाहिनी, वायुवाहिनी तथा स्राववाहिनी नाड़ियों

का काम करती हैं। ऋषि कहता है कि 'मैं तुम्हारी सहस्रों नाड़ियों से रक्तस्राव को औषधि द्वारा तथा व्रण को सिलाई द्वारा बंद करता हूँ।' स्त्री के गर्भ तथा पुरुष के आमाशय का सूक्ष्म वर्णन यजुर्वेद के मण्डल 19 तथा ऋग्वेद के मण्डल 3 में है। क्षत्र (अ.वे. 7/76/4); विद्रधि (6/127/1); छिन्न-भिन्न (4/12); व्रण (2/3) आदि रोगों का वेद में उल्लेख है। टूटी या फटी अस्थियों को जोड़ने; जुड़े हुए या कटे हुए अंग को ठीक करने तथा पृथक् हुए मांस और मज्जा को स्वस्थ करने की औषधि से प्रार्थना अथर्ववेद में है।

अस्थि संख्या : अत्रिपुत्र ने शरीर के अंगों का विभाजन छः भागों में किया है। दो बाहु, दो टांगें, एक शिर, ग्रीवा; तथा अंतराधि 'मध्यभाग'। अस्थियों की संख्या तीन सौ साठ बताई गई है।

'त्रीणि षष्टीनि शतान्यस्थ्नां दन्तालूखनखेन' ..... चरक शा. अ. 7/6

सुश्रुत में यह तीन सौ साठ की संख्या वेदवादियों के नाम से कही गयी है। याज्ञवल्क्य स्मृति एवं शतपथ ब्राह्मण में भी अस्थियां की संख्या तीन सौ साठ मानी गयी है। शरीर के अंगों के नाम शतपथ ब्राह्मण में विशेष रूप से मिलते हैं।

वेद शल्य चिकित्सा : अश्विनीकुमारों ने आथर्वण ऋषि के सिर को काट कर घोड़े का सिर लगाया। उसने जब मधुविद्या का उपदेश अश्विनीकुमारों को दिया तब एक शाप के कारण उसका सिर गिर पड़ा। तब अश्विनीकुमारों ने पुनः आथर्वण ऋषि का सिर जोड़ दिया। अश्विनीकुमारों ने यज्ञ देवता का सिर जिसे रुद्र ने काट दिया था उसे पुनः जोड़ दिया। 'यज्ञस्य हि शिरच्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम् ..... चरक चि. अ. 1/4।

चीर-फाड़ की रीति एवं शस्त्र : कल्याण, गोरखपुर के हिन्दू संस्कृति अंक के पृष्ठ 548 पर वर्णित है, 'चीर-फाड़ में हिन्दू वैद्यों ने बड़ी उन्नति की थी। सुश्रुत ने चीर-फाड़ की रीतियां तथा चीर-फाड़ के शस्त्रों का विस्तार से वर्णन किया है।

राजवैद्य जीवक : राजगृह के राजा बिंबिसार के राज-चिकित्सक जीवक भगवान् बुद्ध एवं बौद्धसंघ दोनों के शल्य चिकित्सक थे। राजगृह के एक श्रेष्ठी को सात वर्ष से सिरदर्द था एक वैद्य ने कहा पांचवें दिन मर जायेगा तथा दूसरे ने कहा सातवें दिन। जीवक ने सिर के चमड़े को फाड़कर खोपड़ी खोल दी तथा दो कीड़े निकालकर लोगों को दिखलाये। एक जंतु पांच दिन में श्रेष्ठी की गुद्दी को चाट लेता तथा दूसरा जंतु सात दिन में। जीवन ने खोपड़ी को जोड़कर, शिर के चमड़े को सी कर लेप कर दिया तथा श्रेष्ठी स्वस्थ हो गया।

बनारस के एक श्रेष्ठी-पुत्र को खेलते हुए अंतड़ी में गांठ पड़ जाने का रोग हो गया था। इससे वह कृश, रूक्ष, दुर्बल हो गया था। जीवक ने श्रेष्ठी पुत्र को खंभों

से बंधवा कर भार्या के सामने, उनके पेट के चमड़े को फाड़कर, आंत की गांठ निकालकर भार्या को दिखायी तथा गांठ सुलझाकर, आंतों को भीतर डालकर, पेट के चमड़े को सी कर लेप लगा दिया जिससे श्रेष्ठी पुत्र निरोग हो गया।

आचार्य चाणक्य : आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में शव परीक्षा का सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है मृतक के हृदय के पास का कुछ टुकड़ा काटकर उसे अग्नि में डालें, इसमें से यदि चिट-चिट शब्द आए एवं वर्षाकालिक इन्द्रधनुष के समान नीला लाल रंग दिखाई दे तो मृत्यु का कारण विष को माना जाय।

बौद्ध ग्रंथ—बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दप्रश्न में राजा, नागसेन नामक भिक्षुक से प्रश्न पूछता है। नागसेन समझाते हुए कहते हैं, एक अनुभवी वैद्य और शल्य चिकित्सक किसी रोगी के व्रण को नश्तर से चीर देता है और क्षार से जला देता है, फिर लेप लगा देता है और घाव भर जाता है। हे राजन्! नश्तर से चीरना, क्षार से जलाना, क्षार से धोना, क्या यह सब कार्य हिंसा से प्रेरित होकर किये गये थे? 'निश्चय ही नहीं।' पुनः नागसेन कहते हैं, 'कोई वैद्य किसी गुरु को खोजकर उससे सारी विद्या सीखता है... छुरी कैसे पकड़ी जाती है, कैसे चीरा जाता है, कैसे निशान लगाया जाता है, कैसे छुरी चलायी जाती है, चुभे हुए को कैसे निकाला जाता है, घाव को कैसे धोना चाहिए, उसे कैसे सुखाना चाहिए, यह सब सीखना अनिवार्य है।'

सुश्रुत संहिता—सुश्रुत संहिता केवल भारत का ही नहीं वरन् विश्व का प्राचीनतम एवं महानतम शल्य चिकित्सा ग्रंथ है। इसके उपदेष्टा काशीराज धनवन्तरि हैं। शल्यशास्त्र में निपुण वैद्यों को धनवन्तरि की उपाधि से सम्मानित किया जाता है। शल्य तंत्र के क्रियात्मक ज्ञान से संबंध अधिक होने के कारण इसकी शिक्षा देने के लिए 'योग्यासूत्रीय' अध्याय सुश्रुत में दिया गया है। हेयकर्म : सिखाने के लिए पुष्पफल, अलाबू, कालिन्दक, त्रपुस या सुर्वारुक (कुम्ह्डा, लौकी, तरबूज, पैठा, फूट, ककड़ी आदि के समान फलों) का आश्रय लेना चाहिए। इन फलों में उत्कर्तन 'ऊपर काटना' और अपकर्तन 'नीचे काटना' सिखाना चाहिए। मसक या चमड़े आदि के किसी थैले में पानी या कीचड़ भर कर भेद्यकर्म (incisions) सिखाना चाहिए। खुरचने का कार्य किसी तने हुए चमड़े पर जिसमें बाल भी हों सिखाना चाहिए। 'लेख्यकर्म। वेध्यकर्म (venesection of perforation) किसी मृतपशु की सिरा (vein) लेकर या उत्पलनाल 'कमलनाल लेकर सिखाना चाहिए। एष्यकर्म (probing) किसी घुन खाई लकड़ी या बांस की नल, नाल या शुष्क अलाबू (bottle ground) पर सिखाना चाहिए। आहायर्यकर्म (extraction) पनस, बिम्बो या बिल्वफल की मज्जा में से बीज निकलवाकर सिखाना चाहिए अथवा मृत पशु के दांत निकलवा कर। विस्राव्यकर्म (draming

or evacuation) शाल्मली के तख्ते पर मोम लगाकर सिखाना चाहिए। सीव्यकर्म (stitching or sewing or saturing) पतले, मोटे कपड़ों या मृदुचर्म पर सिखाना चाहिए। बन्धनकर्म (bandaging or ligaturing) किसी पुरुष के अंगों पर या किसी पुस्तकमय पुरुष (dummy or model of man) के अंगों पर पट्टियां बांध कर सिखाना चाहिए। कर्णसन्धिबन्धकर्म (plastic surgery of ear) मृदुचर्म या मांसपेशी पर या उत्पल नाल पर सिखाना चाहिए। अग्निक्षारकर्म (cauterizing, or causticizing) मृदुमांसखण्ड पर सिखाना चाहिए। नेत्रप्रणिधानवस्तिकर्म (inserting catheter into the bladder) या व्रणवस्तिपीडनकर्म (inserting tube into an ulcerated/channel) उदकपूर्ण घट के पार्श्व में, या अलाबू के मुख में कराके सिखाना चाहिए।

शवच्छेद शिक्षा : सुश्रुत ने मानव के शव के एक-एक अंग को छेदकर, काट कर उसके अंग-प्रत्यंग को प्रत्यक्ष देखने और शास्त्र के वर्णन के साथ मिलान करके समझने पर बहुत बल दिया है। सुश्रुत के वर्णन के अनुसार, 'संपूर्ण संपूर्ण अंगों वाले, विष से न मरे हुए, बहुत लंबी बीमारी से न मरे, एक सौ वर्ष की आयु से कम व्यक्ति के शव में से आंत्र और मल निकाल कर पुरुष के शव को बहते हुए जल वाली नदी में पिंजरे के अंदर मूंज, वल्कल, कुश, सन आदि से लपेट कर एकांत स्थान में रख कर गलायें। भली प्रकार नरम हो जाने पर इनको निकालकर सात दिन तक खस, बाल, बांस, वल्वज की बनायी किसी एक कूच्चों (ब्रश) से धीरे-धीरे रगड़ते हुए त्वचा से लेकर अंदर-बाहर के प्रत्येक अंग, प्रत्यंग को देखना चाहिए।' (शा. भ. 5/47/49)

अंगपुनर्निर्माण शल्य क्रिया : लंदन यूनिवर्सिटी के डॉक्टर ए. एल. बाशम ने लिखा—

'Plastics surgery was developed for beyond anything known elsewhere at the time. Ancient Indian surgeons were expert at the repair of noses, ears and lips, lost or injured in battle or by judicial mutilation. In this respect Indian surgery remained ahead of European until the 18th century. When the surgeons of the East Indian company were not ashamed to learn the art of rhinoplasty from the Indians.'

Indian Inheritance, vol-III, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, page 10.

अर्थात् 'अंगपुनर्निर्माण शल्य क्रिया प्राचीनकाल में भारत में इतनी विकसित थी कि संसार में उस काल में कोई अन्य देश भारत की तुलना में ठहर नहीं सकता था। प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सक नाकों, कानों, ओंठों की मरम्मत में बहुत सिद्धहस्त थे जो कि युद्ध भूमि में कट, फट जाते थे या दंड-विधान द्वारा काटे

छेदे जाते थे। इस विषय में भारत की शल्य चिकित्सा यूरोप की शल्य चिकित्सा से अठारहवीं सदी तक आगे रही जब इस्ट इंडिया कंपनी के सर्जनों ने भारतीय चिकित्सकों से प्लास्टिक सर्जरी सीखी।'

मान्यवर श्री नापानीजी, इस लंबे पत्र द्वारा मैंने आपका बहुत-सा मूल्यवान समय अवश्य लिया है। आशा है आप, उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश तथा भारतीय वैज्ञानिक परंपरा के प्रमाणों के आलोक में, अपने सब दृष्टि से सुव्यवस्थित एवं विकसित विकास विद्यालय, रांची में बच्चों को योग्य डॉक्टर बनकर, समाज की अधिकाधिक सेवा करने हेतु जीव विज्ञान का विषय पढ़ने की कृपापूर्ण अनुमति प्रदान करने की अनुकम्पा करेंगे।

पूज्य स्वामी जी को हमारे कोटिशः नमन समर्पित करेंगे।

अतीव धन्यवाद सहित,

संस्कृति सेवा में सदा आपका हो,
(प्रो. हरवंशलाल ओबराय)
निदेशक,
संस्कृति विहार, अपर बाजार, रांची।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजति।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

मुण्डक उ., 3/1/1

साथ-साथ रहने वाले, परस्पर सख्य रखने वाले दो पक्षी (जीव और परमात्मा) एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमें से एक (जीव) उस वृक्ष के फल का स्वाद लेकर उपयोग करता है। और दूसरा भोग न करता हुआ केवल देखता रहता है।

कर्म सिद्धान्त

1. हिन्दू दर्शन के चार आधारभूत सिद्धान्त :

हिन्दू धर्म के लगभग सभी मत-सम्प्रदायों के निम्नलिखित चार सामान्य दार्शनिक आधार हैं—

(क) आत्मा अमर है। (सच्चा मानव आत्मा ही है Soul in the Real Man within man)

(ख) जीवन का अन्तिम लक्ष्य है अमरत्व अथवा मोक्ष।

(ग) जब तक मोक्ष प्राप्ति नहीं तब तक पुनर्जन्म।

(घ) कर्म सिद्धान्त—मनुष्य के किये हुए अच्छे-बुरे कर्मों का फल जन्म-जन्मान्तर तक उसके साथ जाता है।

इनमें से प्रथम दो सिद्धान्त शाश्वत हैं—

आत्मा का अमरत्व एवं मोक्ष

दो सिद्धान्त व्यावहारिक एवं अस्थायी हैं—पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त।

जब तक मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता तब तक बीच के पड़ाव की तरह दोनों सिद्धान्त कार्य करते हैं। जब मोक्ष प्राप्त हो जाता है तब पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त दोनों के चक्र से मुक्ति मिल जाती है। मुक्ति ही है इन दोनों से छुटकारा।

आत्मा स्वरूप से जो अमर ही है जब अपने अमरत्व के जन्मसिद्ध अधिकार को पा लेता है तब उसी को मोक्ष कहा जाता है। अंत में अमर अमर में मिलकर एक अमरत्व का सिद्धान्त बचता है। भारतीय संस्कृति उसी अमरत्व की साधना एवं अमरत्व की सिद्धि है।

2. कर्म सिद्धान्त सूत्र

अवश्यमेव हि भोक्तव्यं—कृतं कर्म शुभाशुभम्।

किये हुए शुभ या अशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलता है।

3. गति, क्रिया और कर्म

(क) गति—किसी निर्जीव वस्तु का हिलना डुलना गति कहलाता है (Motion)। गाड़ी का चलना, घड़ी के पेंडुलम का हिलना, पंखा चलना ये गति है, क्रिया नहीं।

(ख) क्रिया—किसी सजीव वस्तु का बिना संकल्प के गति करना या चलना फिरना क्रिया कहलाता है (Activity)। हृदय का धड़कना, सांस का चलना, आंख की पलकों का गिरना आदि।

(ग) कर्म—किसी सजीव चेतन प्राणी का जान-बूझकर संकल्प से कुछ भी करना कर्म कहलाता है। जैसे, चालाकी से आंख मारना, श्रद्धा से आंख बन्द करना, नमस्कार में हाथ उठाना, अथवा ताड़ना के लिए हाथ उठाना।

गति + जीवन = क्रिया

क्रिया + संकल्प = कर्म

4. संकल्प की दृष्टि से कर्म के प्रकार

कर्म

संकल्पहीन कर्म Unwilled Action Involuntary Action	संकल्पित कर्म Willed Action Voluntary Action

1. Reflex Action : सहज शारीरिक-क्रिया

इसमें मस्तिष्क काम नहीं करता। रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) से ही प्रतिक्रिया होती है। आंख की पलक का हिलना, धूप में आंख का तनिक बंद होना, सुप्तावस्था में मच्छर उड़ाना, खुजली करना, करवट बदलना।

2. Accidental Action : आकस्मिक घटना

अपघटना के कर्म जैसे मार्ग चलते किसी महिला से टकरा जाना, किसी भीड़ में पांव के नीचे आकर

संकल्पित कर्म वह है जिनमें जानबूझकर अपने होश हवास में किसी स्पष्ट भावना के साथ कर्म करता है।

उदाहरण—

1. भूखे को अन्न, प्यासे को जल, वस्त्र विहीन को वस्त्र देना।
2. राजा हरिश्चन्द्र द्वारा राज्य दान करना।
3. राजा शिवि का कबूतर की रक्षार्थ अपने हाथ का मांस देना।

भावुक कर्म और भावनामय कर्म—Centimental Action and Devoted action :

बच्चे का दब जाना, कुंभ के मेले में किसी का दब जाना।

3. Hypnotic Action : सम्मोहन कर्म

जब मनुष्य के मन को सम्मोहित कर दिया जाता है और जब मनुष्य स्वतंत्र संकल्प नहीं कर सकता उस अवस्था में किये जाने वाले कर्म को सम्मोहन कर्म कहते हैं। जैसे आनन्दमार्गी बाबा द्वारा अपने चेलों को सम्मोहित करके हत्याएं करवाना, पाखण्डी साधुओं द्वारा स्त्रियों एवं बच्चों से अनुचित कर्म करवाना। भड़का कर करवाने वाले कार्य।

4. Forced Action : बाध्य कर्म

वह कर्म जिसमें मनुष्य का अपना संकल्प न हो किन्तु किसी दूसरे के संकल्प द्वारा मजबूर होकर उसे कर्म करना पड़े। जैसे—राजनीतिक बंदियों को जेल में भूखा-प्यासा, सता कर माफीनामा लिखवाना, झुकाना आदि। हिटलर द्वारा Eachman को मजबूर कर, भय दिखाकर उसके द्वारा यहूदियों का सर्वसंहार कराना।

5. क्षणिक आवेश में कर्म

ये ऐसे कर्म हैं जो किसी क्षणिक आवेश में कर दिये जाते हैं। किन्तु उसमें स्पष्ट भावना का अभाव ही रहता है। जैसे—क्षणिक जोश में आकर हत्या या आत्महत्या कर बैठना, क्षणिक आवेग में घर छोड़कर साधु बन जाना, क्रोध में कुछ अनुचित कर

(क) भावुकता मन की एक लहर है जो स्थायी नहीं होती। इसकी लहर में किया हुआ कर्म अधिक महत्त्व नहीं रखता। ऐसे कर्म के लिए कर्ता की बाद में रुचि पलट जाती है तथा कई बार पछताना भी पड़ जाता है। भावुकता में क्रान्ति के नारे लगाना पर पुलिस का डण्डा देखकर भाग खड़ा होना। भावुकता में सम्पत्ति दान करना बाद में केस लड़ना।

(ख) भावनामय कर्म अच्छी प्रकार सोच विचार कर सुस्पष्ट दृढ़ भावना के साथ किया जाता है। ऐसे कर्म के लिए न स्वयं को पछताना पड़ता है और न समाज को ऐसे कर्म की प्रतिक्रिया में ग्लानि होती है तथा न की हुई तपस्या का नाश होता है।

1. JP आंदोलन में सहभागी होना।
2. देश की मांग पर सुभाष बोस का सर्वस्व त्याग। राणा प्रताप का अकबर के विरुद्ध स्वाभिमान और स्वधर्म की रक्षार्थ आजन्म संघर्षरत रहना।

3. Habitual action : अभ्यस्त कर्म

ये ऐसे कर्म हैं जो प्रारम्भ में किसी संकल्प से आरम्भ किये जाते हैं पर धीरे-धीरे स्वभाव बन जाते हैं तथा संकल्पहीन कर्मों की तरह बिना प्रयास के स्वतः अपने आप होने लगते हैं। Habit are willed actions in

बैठना। जिनके संवेग वश में नहीं रहते वे ऐसे कर्म करते हैं। संवेगों पर विवेक, विचार का अंकुश रहने से मनुष्य ऐसे कर्मों से बच जाता है।

beginning and become unwilled later on. जुआ खेलना, शराब पीना Eachman द्वारा प्रथम में कठिनाई से 1-2 यहूदियों को मारना। बाद में स्वभाव बन जाने से लाखों की हत्या करना।

लोकमान्य तिलक द्वारा प्रारम्भ में निष्काम सेवा प्रयत्नपूर्वक करते-करते निष्काम सेवा का स्वभाव बन जाना।

5. कर्म एवं कर्ता

कोई भी कर्म किसी कर्ता द्वारा ही होता है अतः कर्म और कर्ता में कर्ता का ही महत्त्व अधिक ठहरता है।

(क) मीमांसा दर्शन में कर्म को ही सबसे बलवान माना गया है। वे कर्म अथवा यज्ञ को ही भगवान् मानते हैं।

(ख) न्याय दर्शन में कर्ता को कर्म से अधिक महत्त्व दिया गया। जो उचित ही है। कर्ता चेतन है कर्म जड़। कर्ता ही कर्म को पहचानता है कर्म कर्ता को नहीं पहचानता। हत्यारा हत्याकर्म को पहचानता है पर हत्याकर्म कर्ता (हत्यारे) को नहीं पहचानता।

व्यवहार जगत् में जीव (पुरुष) Individual soul ही कर्मों का कर्ता है। ब्रह्माण्ड में ईश्वर ही सृष्टिकर्ता है। (कर्तेति नैयायिकाः) वही कर्मों के विधान का शासक भी है।

(ग) जैन दर्शन भी आत्मा को कर्ता मानता है।

(घ) बौद्ध दर्शन आत्मा की सत्ता के बारे में स्पष्ट नहीं पर वह चैतन्य की धारा को ही कर्ता मानते हैं। Soul is series of state linked by chain of memory आत्मा चेतना के भिन्न-भिन्न कणों की धारा है जो स्मृति की शृंखला से बंधे हुए हैं।

आलोचना

यानी स्मृति की विस्मृति होने से चेतना की धारा उस अच्छे या बुरे कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरती है। जैसे कोई शराब पी कर हत्या करे, थप्पड़ मारे। अपमान करके भूल जाने से क्या वह उस फल से वंचित हो जाएगा? इससे तो सारा कर्म विधान बिगड़ गया, नष्ट हो जाता है। अतः स्थायी पुरुष को कर्ता माने बिना कर्म विधान नहीं चल सकता।

(ङ) वेदान्त दर्शन आत्मा को ही साक्षात् ब्रह्म मानता है अतः आत्मा को केवल साक्षी और अकर्ता मानता है। गीता की शब्दावली कर्म में अकर्म को देखती है। वेदान्त के मत में कर्मों का कर्ता आत्मा नहीं अन्तःकरण है। वही कर्मफल के रूप में सुख-दुःख भी भोगता है।

6. कर्म के पांच हेतु

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।। 18/13, गीता

और हे महाबाहो! सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के सिद्ध होने में यह पांच हेतु सांख्य सिद्धान्त में कहे गये हैं। उनको तू मेरे से भली प्रकार जान।।13।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।। 18/14, गीता

हे अर्जुन! इस विषय में आधार (जिसके आश्रय से कर्म किये जायें, उसका नाम 'आधार' है।) और कर्ता तथा न्यारे-न्यारे करण (इन्द्रिय) और नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा एवं वैसे ही पांचवां हेतु दैव (पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों के संस्कारों का नाम दैव है) कहा गया है।।14।।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।। 18/15, गीता

क्योंकि मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्र के अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरम्भ करता है। उसके यह पांचों ही कारण हैं।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।। 18/16, गीता

परन्तु ऐसा होने पर भी अशुद्ध बुद्धि सत्संग और शास्त्र के अभ्यास तथा भगवत् अर्थ कर्म और उपासना के करने से, मनुष्य की बुद्धि शुद्ध होती है। इसलिए जो उपरोक्त साधनों से रहित है, उसकी बुद्धि अशुद्ध है। ऐसा समझना चाहिए। शुद्ध होने के कारण उस विषय में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्ता देखता है, वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं देखता है।

अधिष्ठान का अर्थ है आधार या आश्रय। कर्म के लिए सबसे प्रथम हेतु अधिष्ठान कहा गया है। अधिष्ठान शब्द की व्याख्या तीन प्रकार से की गयी है—

1. शरीर—संत ज्ञानेश्वरजी के मत में देह ही अधिष्ठान कारण है। क्योंकि इस देह में ही भोक्ता अपने भोग्य विषयों के साथ निवास करता है।

नोट—भोक्ता का अर्थ क्या है?

बिना शरीर के कर्म होने में कठिनाई है।

(i) लोकमान्य तिलक के मत में अधिष्ठान का अर्थ है वह स्थान या देश जिसका आश्रय लेकर कर्म किया जाता है।

(ii) वेदान्त के मत में आत्मा या ब्रह्म ही सारे विश्व का अधिष्ठान है।

यह स्पष्ट है कि बिना आत्मा के (चैतन्य के) भी कर्म नहीं हो सकता। बिना ब्रह्म की सत्ता के भी कर्म नहीं हो सकता। बिना देह के आधार पर कर्म नहीं हो सकता तथा बिना स्थान विशेष के भी कर्म नहीं हो सकता।

कर्म का भौतिक अधिष्ठान शरीर है। जागतिक अधिष्ठान पृथ्वी है तथा आध्यात्मिक अधिष्ठान आत्मा या ब्रह्म है। कर्ता वह जीवित चेतन संकल्पवान जीव है जो कर्म करता है।

2. सांख्य के मत में कर्ता पुरुष। जैन दर्शन में आत्मा कर्ता है। वेदान्त के अनुसार कर्ता आत्मा नहीं वरन् जीवात्मा है। जिस प्रकार तालाब के ऊपर से बादल उठते हैं तथा आकाश में तैरते हुए पुनः तालाब में प्रतिबिम्बित भी होते हैं। उसी प्रकार शुद्ध आत्मा अन्तःकरण रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हो जीवात्मा का रूप धारण कर लेता है। जब तक कर्तापन का अहंकार बना रहता है तब तक वह जीवात्मा के रूप में कर्ता एवं भोक्ता बना रहता है। ज्ञान होते ही वह अहंकार से मुक्त हो शुद्ध आत्मरूप में स्थित हो जाय तब जीवत्व का जीवत्व लय होकर वह ब्रह्मरूप बन जाता है।

3. करण—करण का अर्थ इन्द्रिय। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और चार अंतःकरण ये चौदह करण हैं। इनके बिना भी कर्म नहीं हो सकता।

4. चेष्टा—इन्द्रियों द्वारा कुछ करने का प्रयास चेष्टा है। कर्म के लिये यह भी आवश्यक है।

5. दैव—दैव शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की जाती है— (क) तिलकजी के मत में दैव का अर्थ भाग्य है, जो पिछले संचित कर्मों का फल ही है। हमारे वर्तमान कर्मों के परिणाम को हमारे पहले के संचित कर्मों का फल भी प्रभावित करता है। हम जो आज कर्म कर रहे हैं उस पर भी पिछले कर्मों का संस्कार हमें प्रेरित कर रहा है तथा पिछले कर्मों का योगफल हमें भोगना है। उसके अनुसार हम तदनुरूप कर्मों में प्रेरित किये जाते हैं।

(ख) ज्ञानेश्वरजी के मत में दैव का अर्थ है इन्द्रियों के पीछे उन्हें बल देने वाले देवता। जैसे चक्षु के पीछे सूर्य देवता। रसना के पीछे जल देवता, स्पर्श के पीछे वायु देवता।

(ग) कुछ विचारक दैव का अर्थ दैवी शक्ति या ईश्वरीय शक्ति से लेते हैं। उसके बिना भी कर्म नहीं हो सकता।

7. तीन कर्मचोदना—व्याकरण शास्त्र में चुद् धातु प्रेरणार्थक है। कर्म के प्रेरक तीन हैं। इसे गीता में कर्मचोदना कहा गया यानी कर्म को प्रेरित करने वाला कहा गया है। ये तीन हैं—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। किसी भी कर्म के करने से पहले उस कर्म के विषय में ज्ञान अनिवार्य है। बिना ज्ञान के कर्म असम्भव है। ज्ञान के लिए कोई ज्ञाता भी अनिवार्य है। जो जानने योग्य वस्तु है, वह है ज्ञेय। इन तीनों की प्रेरणा से ही कर्म हो सकता है। जैसे—हनुमानजी सीताजी को राम का संदेश देना चाहते हैं। बिना सीता को जाने संदेश नहीं दिया जा सकता है अतः सीता ज्ञेय है। हनुमानजी ज्ञाता हैं और सीता को पहचानना ही ज्ञान है। इन तीनों के मेल के बाद हनुमानजी सीताजी के सामने प्रकट होकर बात करते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार की कर्म प्रेरणा है—

(क) ज्ञान—विषय का ज्ञान, लक्ष्य का ज्ञान, क्रिया का ज्ञान, मार्ग का ज्ञान।

(ख) ज्ञेय—जानने योग्य वस्तु।

(ग) ज्ञाता—परिज्ञाता अन्तःकरण उपाधि से परिकल्पित भोक्ता।

8. कर्म के तीन संग्रह—गीता की परिभाषा में गीता में तीन संग्रह है—कर्ता, करण (इन्द्रियां) और क्रिया। जैसे विद्यार्थी (कर्ता) अपने अन्तःकरण की प्रेरणा के अनुसार अपने हाथ रूपी करण से परीक्षा भवन में उत्तर लिखने की क्रिया करता है। इन तीनों के मेल (संग्रह) से कर्म बनता है। इनमें से एक भी कम होने से कर्म नहीं बन सकता है।

कर्म के तीन संग्रह या आश्रय

(क) करण—इन्द्रिय 5+5+4

(ख) कर्म—वास्तविक क्रिया

(ग) कर्ता—अहंकारयुक्त अन्तःकरण

6 कारक

कर्म संग्रह {	कर्ता-1	कर्ता राम ने
	कर्म-2	कर्म रावण को
	करण-3	करण धनुष द्वारा (से)
	ज्ञेय-4	सम्प्रदान मर्यादा स्थापन के लिए
	ज्ञान-5	उपादन प्राण से वंचित कर
	ज्ञाता-6	अधिकरण शान्ति का राज्य स्थापित किया।

इन कारकों से आत्मा निर्लिप्त एवं असङ्ग रहता है। सूर्य सारे जगत् को प्रकाशित करता है। सबके नेत्रों को प्रकाश देता है। सबको कर्मों में प्रेरित करता है किन्तु लोगों के नेत्र के दोषों से सदा निर्लिप्त रहता है। उसी प्रकाश में कोई आध्यात्मिक स्वाध्याय करता है, और कोई अपवित्र पुस्तकें पढ़ता है, पापकर्म करता है। सूर्य कमल को भी प्रकाशित करता है और मल को भी प्रकाशित करता है पर मल और कमल दोनों से अलिप्त रहता है। इसी प्रकार सबके अन्तर में जो आत्मारूपी चैतन्य है वह उन्हें सत्ता, स्फूर्ति देता है किन्तु उनके अच्छे-बुरे कर्मों से लिप्त नहीं होता है।

9. कर्म का सिद्धान्त है 'अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। मैंने जो अच्छे या बुरे कर्म किये हैं उसका फल मुझको भोगना ही पड़ेगा। यदि कर्म के इस नियम को नहीं मानें तो दो प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। पहला कृत-विप्रणाश या कृत हानि। जो अच्छे-बुरे कर्म मनुष्य ने किये हैं उसे उनका फल नहीं मिलेगा। दूसरा अकृताभ्युगम् अर्थात् कर्म मनुष्य ने नहीं किये हैं उनका फल उसे मिलने लग जायेगा। इन दोनों दोषों के परिहार के लिये कर्म के इस सिद्धान्त को मानना आवश्यक है कि बिना भोगे कर्म के फल का नाश नहीं होता। हमारा दैनिक अनुभव है कि जन्म से ही असमानता शरीरगत, मनगत, बुद्धिगत, धनगत आदि होती है। इसका कारण पूर्वजन्म कृत कर्म है, नहीं तो जन्म से ही विषमता की व्याख्या नहीं हो सकेगी और बिना किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ जायेगा। हम वर्तमान जीवन में इतने अच्छे-बुरे कर्म कर लेते हैं जिसका फल वर्तमान जीवन में और वर्तमान शरीर से भोग नहीं सकते। इसके लिये मृत्यु के पश्चात् भी जीवन अन्यान्य देह (नारकीय शरीर, अधम शरीर, स्वर्गीय शरीर आदि अनेक योनियां) और अन्यान्य लोकों (जैसे स्वर्ग, नरक व अन्य देवों के लोक आदि) को मानना अनिवार्य है।

सञ्चित कर्म—जन्म-जन्मान्तर के अभुक्त कर्मों का संग्रह है। प्रारब्ध कर्म- इस संचित कर्म का छोटा-सा हिस्सा जिसने अपना फल देना प्रारम्भ कर दिया है। क्रियमाण कर्म उसको कहते हैं जो हम इस जन्म में कर रहे हैं। जिसमें कुछ का फल हमें वर्तमान में मिल जाता है और कुछ कर्म का फल वर्तमान में नहीं मिलता। वह संचित में जमा होते जाते हैं। कर्म का फल भी तीन प्रकार का होता है—दृष्ट, अदृष्ट और दृष्टादृष्ट। जैसे आपने मन लगाकर जी-जान से सेवा की तो पिता ने आपके नाम वसीयत कर दी। यह दृष्ट फल है। उसका अदृष्ट एवं दृष्टादृष्ट फल भी होता है, जो संचित में शामिल हो जाते हैं। अति उग्र पाप-पुण्य का फल शीघ्र मिलता है। अति उग्र सकाम जप, तप, अनुष्ठानादि का फल इसी जीवन में प्राप्त होता है—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।।

तीन वर्ष, तीन महीने, तीन पक्ष या तीन दिन में ही अत्यन्त उग्र पाप या पुण्यों का फल इसी जीवन में जीव प्राप्त कर लेता है। कर्म के दो रूप हैं बाह्य कर्म और आन्तरिक कर्म। कर्म का बहिरंग रूप तो शारीरिक क्रिया है उससे भ्रान्ति पैदा होती है। जैसे एक सर्जन और एक डाकू दोनों छुरे द्वारा किसी व्यक्ति का पेट चीरते हैं, पर दोनों की आन्तरिक भावना भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों का कर्म भिन्न-भिन्न माना जायेगा और भिन्न-भिन्न फल मिलेगा। बाह्य कर्म की तुलना में आन्तरिक कर्म का महत्त्व अधिक है। तभी एक कथा बड़ी प्रचलित है। एक साधु और एक वेश्या आमने-सामने रहते थे। दोनों की साथ-साथ मृत्यु हुई तो वेश्या को स्वर्ग और साधु को नरक मिला। साधु ने प्रतिवाद किया तो उसे बताया तुम ऊपर से तो जप-तप करते थे पर तेरा मन सदा वेश्या में पड़ा रहता था कि वह कैसे-कैसे गुलछर्रे उड़ा रही है, आनन्द भोग रही है। वेश्या सदा पश्चात्ताप से भरी रहती थी कि किस पाप का फल भोग रही हूं और उसका मन सदा आपमें लगा रहता था कि वह कैसे भगवान् के भजन में निमग्न है। उसका आनन्द ले रहा है।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ—जीव अनन्तपथ का यात्री है। जीव अनादिकाल से चला आ रहा है। असंख्य बार उसने मनुष्य योनि प्राप्त की। एकमात्र मनुष्य योनि में कर्म करने की स्वतंत्रता है और जब-जब मनुष्य कर्म करता है तो उसका फल उत्पन्न होता है। वह फल संचित होता-होता अमाप ढेरी बना हुआ है। इस संचित ढेरी में से कुछ कर्म को लेकर यह मनुष्य शरीर को प्राप्त होता है। इसको प्रारब्धकर्म कहते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक प्रारब्धकर्म अपना कार्य करता रहता है। प्रारब्ध मनुष्य को माता-पिता, परिवार आदि देता है। एक परिस्थिति देता है और अन्तःकरण में उस परिस्थिति से जुड़ने के लिए एक वृत्ति को उत्पन्न करता है और उसके पश्चात् मनुष्य को सुख व दुःख की अनुभूति होती है। उस सुख-दुःख की अनुभूति को हम कैसे स्वीकारते हैं। यह हमारे विवेक व पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। ताश के पत्ते प्रारब्ध के आधार पर मिलते हैं। प्राप्त पत्ते से अच्छा-बुरा खेलना हमारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। अच्छे पत्ते प्राप्त कर बुरा खेलकर हम हार भी सकते हैं। बुरे पत्ते प्राप्त कर अच्छा खेलकर जीत सकते हैं। फिर मनुष्य की योनि चूंकि कर्म-स्वातंत्र्य की योनि है इसलिए मनुष्य नूतन कर्म करता है। जन्म से होश संभालने तक प्रारब्ध प्रधान होता है। फिर कर्म प्रधान होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ के लिए कर्म करता है। वृद्धावस्था में शरीर के असमर्थ हो जाने पर प्रारब्ध प्रधान हो जाता है। प्रारब्धानुसार सुख-दुःख भोगता है।

प्रौढ़ावस्था से कामनाएं पुनः छिपने लगती हैं। बीज बनने लगती हैं। युवावस्था तक सभी कामनाएं प्रकट हो जाती है और पुरुषार्थ के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय होता है। प्रौढ़ावस्था से कर्म की शक्ति क्षीण होने लगती है।

प्रारब्ध का प्रभाव बाह्य क्षेत्र (अर्थ और काम) में ज्यादा होता है। अन्तःकरण के क्षेत्र में प्रारब्ध का प्रभाव कम होता है। इसलिए अन्तःकरण के क्षेत्र में (धर्म और मोक्ष के क्षेत्र में) पुरुषार्थ का विशेष प्रयोग करना मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य को अधिक पुरुषार्थ का प्रयोग आन्तरिक चेतना के उत्थान में, दिव्य गुणों की प्राप्ति और भगवद् भजन में करना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि अर्थ और काम के क्षेत्र में पुरुषार्थ का प्रयोग नहीं करें। भारतीय संस्कृति जन्म से ही पांच ऋणों की बात करती है—देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, मनुष्य ऋण और भूत ऋण। इन पांचों ऋणों को उतारे बिना चित्त शुद्ध नहीं होगा। षड्विकार क्षीण नहीं होंगे, चित्त में दैवी सम्पत्ति प्रकट नहीं होगी। बुद्धि में परमात्म प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी। मनुष्य योनि मनुष्य को इसलिए प्राप्त हुई है कि हम इसी जीवन में 'ईश्वर' को प्राप्त कर मुक्त हो जायें। इसके लिए कामनापूर्ति को गौण और कर्तव्य भावना को मुख्य रखने से हम स्वतः क्रमशः ईश्वरोन्मुखी होते जाएंगे। हमारा आचरण इसके विपरीत न जाये। ऐसा होने से हम मनुष्य जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य (प्रभु प्राप्ति) से च्युत हो जाएंगे। और, दुर्भाग्य से आज ऐसा ही कुछ हो रहा है।

समष्टि प्रारब्ध और व्यष्टि प्रारब्ध—जो सुख-दुःख समष्टि रूप से प्राप्त होता है उसे समष्टि प्रारब्ध कहते हैं। जैसे—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, सुनामी की लहरें, प्राकृतिक प्रकोप, बाह्य शत्रुओं का देश पर आक्रमण आदि से जो दुःख, कष्ट, गुलामी की स्थिति प्राप्त होती है। सम्यक् वृष्टि, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में देश की उन्नति से जो सारे देश को सुख-सम्पन्नता एवं सम्मान इसी जीवन में प्राप्त होता है। यह सब समष्टि प्रारब्ध कहलाता है। देश-समाज के प्रति हम सब सम्यक् रूप से कर्तव्य का पालन नहीं करेंगे तो देश अराजकता, पराधीनता की ओर जाएगा और उसका परिणाम हमें सामूहिक रूप से भोगना पड़ेगा। व्यष्टि रूप से जो हमको सुख-दुःख एवं उसके अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होती हैं उसे हम व्यष्टि प्रारब्ध कहते हैं। यह सब व्यष्टि कर्म का परिणाम है।

स्वेच्छा प्रारब्ध, परेच्छा प्रारब्ध—जब हम स्वयं संकल्पपूर्वक सुख-दुःख, पद, प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते हैं और उसके परिणामस्वरूप प्राप्त सुख-दुःख, पद, प्रतिष्ठा को सहर्ष स्वीकार करते हैं तो उसे स्वेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। और, जब बिना स्वयं की कामना के सुख-दुःख, पद, प्रतिष्ठा को अन्यों के आग्रह के वशीभूत होकर हमें स्वीकारना पड़ता है उसे परेच्छा प्रारब्ध कहते हैं।

कर्मफल का नियामक ईश्वर—चार्वाक को छोड़कर भारतीय दर्शन की सभी धाराएं कर्म के सिद्धान्त को उचित प्रतिष्ठा देती है। कर्म के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा के लिए कर्मफलदाता ईश्वर को मानना आवश्यक है। जो व्यक्ति सदा ईश्वर को हाजिर-नाजिर मानता है। जो यह अटल विश्वास रखता है कि प्रभु सर्वसाक्षी, सर्वसमर्थ एवं सर्वान्तर्यामी है। वह पाप या कुकर्म से बचा रहता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

राम झरोखे बैठ के, सबका मुजरा लेत।
जैसी जाकी भावना, वैसा ही फल देत।।

अर्थात् मानो कि परमेश्वर इन्द्रियरूपी झरोखे में ही बैठा हुआ है और अन्दर की इन्द्रिय अन्त:करण में ही बैठा हुआ सब खेल-तमाशा देख रहा है और उसको उसकी भावना के अनुसार फल दे रहा है।

विश्वव्यापी न्याय के लिए आवश्यक है सृष्टि में नैतिक नियम की प्रतिष्ठा और नैतिक नियम के नियामक ऐसे परम पुरुष अथवा परमशक्ति की अनिवार्यता जो कर्म के मूल उत्स को भी जाने। जहां कहीं छिपकर कर्म किया जाय वहां पहले से ही मौजूद हो। और, जहां कहीं भाग कर जाय वहां भी मौजूद हो। और, वह इतना शक्तिशाली हो कि कोई व्यक्ति उसके अनुशासन का उल्लंघन करने एवं कर्म के अच्छे-बुरे फल को न भोगने की धृष्टता न दिखा सके। अत: कर्म सिद्धान्त के विश्वव्यापी नैतिक नियम के नियामक के लिए और विश्वव्यापी न्याय की तुला को स्थिर रखने के लिए अन्तर्यामी, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान सत्ता आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

जर्मनी के दार्शनिक कांट ने भी बहुत विचारमंथन करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि नैतिकता के लिए ईश्वर इतना अनिवार्य है कि यदि ईश्वर न हो तो भी हमें ईश्वर की सत्ता में विश्वास करना ही पड़ेगा। क्योंकि इसके बिना नैतिकता टिक नहीं सकती।

भारत में चार्वाक दर्शन में ईश्वर की सत्ता का स्थान नहीं है, तो वहां कर्म के सिद्धान्त को भी स्थान नहीं है।

बौद्ध दर्शन ईश्वर की सत्ता के विषय में मौन है। गांधी, राधाकृष्णन् आदि बुद्ध को ईश्वर विश्वासी ही मानते हैं। कोटि-कोटि हिन्दू उन्हें ईश्वर का अवतार ही मानते हैं। किन्तु कुछ बौद्ध दार्शनिकों ने उनके मौन का विपरीत अर्थ लगाकर उन्हें निरीश्वरवादी सिद्ध करने की चेष्टा की। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि इतना महान् नैतिक आन्दोलन अनैतिकता की गर्त में गिरकर गलने-सड़ने लगा। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के मठों में खुलकर व्यभिचार चलने लगा। अंगदेश (मुंगेर,

भागलपुर) के बौद्ध सिद्धों कणहपा-सिरहपा आदि ने बौद्ध दर्शन में अपने धर्मग्रंथ की वाणियों में पंचमकार—मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन—की प्रशंसा लिखनी प्रारंभ कर दी तथा इस अति सीमा तक लिखने लगे कि डोमनी या रजकी के साथ सम्भोग करने पर तुरत निर्वाणपद की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसे भ्रष्ट बौद्ध सिद्धों की वाणियों को उद्धृत किया है। इससे पता चलता है कि बिना दृढ़ ईश्वर विश्वास के कर्म का सिद्धान्त भी कैसे सर्वनाश को प्राप्त हो जाता है।

जैन दर्शन साधना के आदर्श के रूप में ईश्वर को स्वीकारता है किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता है और न कर्मफलप्रदाता, नैतिकता के नियामक ईश्वर को ही। जैन दर्शन अहिंसा, जीवदया का बड़ा सूक्ष्म विवेचन तथा कठोर पालन करता है। किन्तु उनकी दार्शनिक मान्यता यह है कि कर्मफल अपने आप प्राकृतिक सिद्धान्त के रूप में मिलता है, उसके लिए किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं। आग में डालने से हाथ जलेगा ही। ईश्वर चाहे या न चाहे। विष खाने पर मृत्यु होती है। ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा इसमें कोई बाधा नहीं डालती। शुद्ध दार्शनिक आधार पर जैन दर्शन नैतिक नियम की रक्षा नहीं कर सकता है।

शंकराचार्यजी का प्रश्न है कि यदि देवदत्त ने सोमदत्त की हत्या कर दी तो उस हत्या का, कर्मफल का विधान कौन करेगा? मृतक तो गवाही दे नहीं सकता कि हत्या किसने की। खून भी गवाही नहीं दे सकता और छुरा भी साक्षी नहीं दे सकता। क्योंकि वह जड़ है। हत्यारा भाग जाता है और पकड़े जाने पर भी अपने को दोषी नहीं मानता। हत्या कर्म भी जड़ है। न वह हत्यारे को पहचानता है, न हत्या के पात्र को न शस्त्र को। अब कौन निर्णय करे कि दोषी कौन है। हत्यारा चेतन है किन्तु बचने के लिए अपने को हत्यारा घोषित नहीं करता। यदि कर्मफल का निर्णय उसी पर छोड़ दिया जाये तो कोई भी हत्यारा अपने आपको फांसी लगवाना नहीं चाहेगा। इस तरह कर्म के दोषी का निर्णय और कर्मफल का निर्णय कर्म भी नहीं करता, उपादान (यंत्र) भी नहीं करता, सम्प्रदान भी नहीं कर सकता। केवल कर्ता कर सकता है यदि वह निष्पक्ष हो। कर्म, करण, क्रिया आदि सब जड़ हैं। कर्ता चेतन है पर निष्पक्ष कर्ता का मिलना ही दुष्कर है। अब मान लें सोमदत्त ने सौ व्यक्तियों की हत्या करके स्वयं की हत्या कर ली। उसे तो दुनिया का कोई विधान दण्ड नहीं दे सकता। इसलिए कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा रहनी है तो कर्म का नियामक निष्पक्ष, न्यायकर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान सत्ता होनी चाहिये।

जो जैन बंधु व्यक्तिगत रूप में कुछ नैतिक आचरण का पालन करते रहते हैं। वे धीरे-धीरे सनातन हिन्दू धर्म की इस मान्यता को मानने लगते हैं कि भगवान्

सब कुछ देखता है और सब कर्मों का फल देता है। वे भगवान् महावीर को ही भगवान् (ईश्वर) मानकर अपना काम निकाल लेते हैं। जो जैन बंधु नैतिकता का कठोरता से पालन करने का इच्छुक नहीं है उन्हें तो नैतिकता के नियामक ईश्वर के बिना अनैतिक कर्म का खुला मार्ग मिल जाता है। इसलिए समाज में प्रचलित धारणा है कि जैन लोग छोटे से छोटे जीवों को कष्ट न देने का आडम्बर रचते हैं किन्तु निर्धनों का रक्त शोषण कर जीवित मानवों को खा जाते हैं। जैन-धनपतियों के निर्धनों के शोषण और बड़े व्यापक आधार पर भ्रष्टाचार के अंग प्रकाश में आये हैं। निष्कर्ष यह है कि निरीश्वरवादी की नैतिकता अधिक देर तक टिक नहीं सकती।

कर्म-अकर्म और विकर्म

शास्त्रसम्मत धर्मयुक्त कर्तव्य कर्म को ही कर्म कहा गया है जो हमें अभ्युदय और नि:श्रेयस की ओर ले जाता है। विकर्म का अर्थ शास्त्रनिषिद्ध अधर्मयुक्त कर्म से है जो हमें मनुष्योचित लक्ष्य से च्युत कर पतन की ओर, अधोगति की ओर ले जाता है। अकर्म वह कर्म है जिसमें कर्तापन का अभाव हो जाता है। इसमें ब्रह्मज्ञानियों द्वारा ईश्वर की प्रेरणा से कर्म किये जाते हैं। जिसमें व्यक्तिगत अहंकार का लोप हो जाता है और व्यक्ति विश्व चेतना से जुड़ जाता है। जैसे—रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि आदि द्वारा किये गये कर्म।

सृष्टि कर्ममयी है

ब्रह्मसूत्र कहता है—महाप्रलय के पश्चात् जीवों के कर्मानुसार भगवान् सृष्टि करते हैं। पूर्वकल्प के जीवों के कर्म पड़े हुए थे, उनकी सिद्धि के लिए भगवान् सृष्टि की रचना करते हैं। आज जो यम, वरुण, कुबेर, इन्द्र, प्रजापति के पद पर प्रतिष्ठित हैं वह पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के आधार पर बने हैं, तो सृष्टि का आधार मनुष्यकृत कर्म है। कर्म के आधार पर सृष्टि टिकी रहती है। बिना कर्म के शरीर और संसार का निर्वाह नहीं हो सकता। अत: कर्म अनिवार्य है। पर कर्म मनुष्य को चार प्रकार से बांध देता है। कर्म कर्ता को रंग देता है। साधुकर्म हमें साधु बना देता है और दुष्ट कर्म हमें दुष्ट, असुर, पापाचारी बना देता है। इसके साथ-साथ वह जीवात्मा को कर्मासक्ति, फलासक्ति और अहम्कृति में बांध देता है।

इससे जन्म-मरण का चक्र चल पड़ता है। जन्म के गर्भ से कर्म, और कर्म के गर्भ से जन्म निकल पड़ता है। इस प्रकार जन्म-मृत्यु का चक्रव्यूह अनन्त-काल तक चलता रहता है। इससे मुक्त होने के लिए कर्म को निष्काम बनाना आवश्यक है। क्योंकि कर्म ही मनुष्य को बांधता है और वही मनुष्य के मन-बुद्धि (चित्त) को धोता है, मुक्त करता है। निष्काम कर्म मनुष्य के चित्त को शुद्ध

करता है। इसके लिए प्रथम में विकर्म का, शास्त्र विरुद्ध कर्म का त्याग आवश्यक है। फिर शास्त्रसम्मत कर्म को कर्तव्य की भावना से, निष्काम भाव से करना आवश्यक है।

> **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
> **मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।** 2/47, गीता

इसमें निष्काम कर्मयोग की चतु:सूत्री दी गई है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते—हे मानव! कर्म करने में तेरा अधिकार है। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है अत: वही उसका अधिकार भी है। प्रकाश करना सूर्य का धर्म है अत: वही उसका कर्म एवं अधिकार भी है। मानव कर्म करने में स्वाधीन है।

मा फलेषु कदाचन—कर्मफल पर तेरा अधिकार नहीं है।

(क) परीक्षार्थी स्वयं परीक्षक बन जाये तो मूल्यांकन में न्याय कभी नहीं होगा। कर्मफल नियंता परमेश्वर है।

(ख) सूर्य प्रकाश दूसरों के लिए देता है। नदियां जल तथा वृक्ष फल दूसरों के लिए देते हैं। उनका कर्मफल पर अधिकार नहीं। शरीर के अन्दर भी आंख शरीर की भलाई के लिए देखती है। कान शरीर की भलाई के लिए सुनते हैं केवल स्वयं के लिए नहीं। यदि पेट सारा अन्नरस अपने लिए रख ले और उसका रस पूरे शरीर को न भेजे तो बिना पोषण के शरीर मरने लगेगा। अत: मानव का कर्मफल पर अधिकार नहीं। यदि पेट अन्न को मात्र अपने लिए रखना चाहे तो अन्न विष बन जायेगा। यदि वृक्ष फल को अपने लिये ही रखना चाहे तो फलों में कीड़े पड़ जायेंगे। यदि मनुष्य कर्म का फल मात्र अपने स्वार्थ के लिए रखना चाहे तो वह कर्मफल ही उसके लिए फांसी बन जायेगा। जिससे उसे 84 लाख योनियों में भटकना पड़ेगा।

मा कर्मफल हेतुर्भू—फल की वासना से कर्म करने वाला मत बन। फल के लोभ में किया हुआ कर्म स्वार्थ कर्म है, यज्ञार्थ कर्म नहीं। जब फल पर अपना अधिकार ही नहीं तो उसकी अभिलाषा करना पागलपन है।

(क) परीक्षार्थी (उत्तीर्ण होने की आशा से) < सफलता में (प्रसन्न) / असफलता में (आत्महत्या)

(ख) परीक्षार्थी (कर्तव्य भाव से परीक्षा) < सफलता में (गंभीर) / असफलता में (पुन: कर्म में लगना)

फल की तुला पर कर्तव्य को कभी नहीं तौलना चाहिये। कर्तव्यपालन कर्तव्य के भाव से ही होना चाहिये।

र्मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि—अकर्म में भी तू संग मत रख। निकम्मापन जीवन में पतन का कारण है। अग्नि अपने जलाने के स्वभाव को ही छोड़ दे तो वह अपने धर्म से च्युत हो जायेगी। तो उसे अग्नि कौन कहेगा?

जो कर्मफल को त्यागता है वह ऊपर उठता है पर जो कर्म को त्यागता है वह नीचे गिरता है। वास्तव में कर्म का त्याग होता नहीं। कर्म का मूल कारण वासना है। वासना जब तक है तब तक कर्म त्याग नहीं हो सकता है। भले ही हम बाह्य रूप से कर्म का परित्याग कर दें पर हमारी वासना का नाश नहीं होने के कारण हम अपने मन में ही कर्मों, विषयों का चिन्तन करने लग जाते हैं। बाहर से तो हम कर्म नहीं कर रहे हैं पर अन्दर से कर्म चल रहा है। इसी को गीता में मिथ्याचारी कहा गया है—

इसमें निम्न हानियां है

1. कर्म से जो कर्तव्य कर्म करते हैं उससे च्युत हो जाते हैं।

2. कर्म से जो समाजसेवा होती है। वह रुक जाती है।

3. भीतर में कर्मों का चिंतन करते रहने के कारण चित्त मलिन का मलिन ही रह जाता है। वरन् और अधिक मलिन हो जाता है।

4. कर्म से हमारी वासनाओं की तृप्ति होती है वह रुक जाती है। कुंठित हो जाती है। वासना समाप्त नहीं होने के कारण वे गलत-अश्लील रूप में प्रकट होती हैं जिसकी पूर्ति लोग छिप-छिप कर करते हैं। अतः गीता इस प्रकार के कर्म त्याग की कठोर निंदा करती है।

अतः हमारी अकर्म में रुचि न हो। कर्तव्य कर्म अवश्य करें। कर्म निष्फल न हो किन्तु कर्म निष्काम अवश्य हो। यदि कर्म निष्फल होगा तो सारा श्रम व्यर्थ चला जायेगा। अतः कर्म का फल अवश्य निकलना चाहिये। समाज के लिए कल्याणकारी अवश्य होना चाहिये पर हमें उस फल की रत्ती भर इच्छा न हो। उदाहरणार्थ—पानी का बिलोना निष्फल है। यह सारे परिश्रम को बेकार नष्ट करना है। यदि पानी बिलोने वाला ये कहे कि मेरे परिश्रम का कोई फल नहीं तो चिन्ता नहीं क्योंकि भगवान् ने कहा है फल की फिक्र न करें तो उसके कथन को पागलपन कहा जायेगा। जो परिश्रम न करे वह आलसी है, जो परिश्रम को वृथा नष्ट करे वह मूर्ख। जो परिश्रम का दाम पहले चुकाये वह दलाल। जो परिश्रम के बाद पारिश्रमिक मांगे तो वह व्यवसायी है और जो परिश्रम के फल को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दे वह निष्काम कर्मयोगी है।

कर्मसंन्यास—कर्मसंन्यास का अर्थ कर्म से संन्यास नहीं। वरन् फलासक्ति, कर्मासक्ति, अहंभाव यानी कर्तापन के भाव के परित्याग से है। कर्म मनुष्य को न लिप्त करता है और न बांधता है। कर्म में निहित फल की वासना, कर्म के प्रति

आसक्ति एवं कर्तापन का भाव बांधता है। कर्मसंन्यास में इन तीनों का नाश हो जाता है।

निष्काम कर्म में फलासक्ति शिथिल हो जाती है पर कर्मासक्ति एवं अहम्कृति (कर्तापन का भाव) बनी रहती है। पर निष्काम कर्मयोग के द्वारा कर्मों के फल एवं फूल भगवान् के चरणों में चढ़ाते-चढ़ाते धीरे-धीरे चित्त शुद्ध होने लगता है। कर्तापन के अहंकार का मैल धुल जाता है और व्यक्ति को यह अनुभूति होने लगती है कि कर्मों का वास्तविक कर्ता मैं हूं ही नहीं। प्रभु के दिये तन, मन, धन से, प्रभु की ही दी हुई ज्ञानेन्द्रियों से, प्रभु की दी हुई कर्मेन्द्रियों से, प्रभु के दिए हुए मन व बुद्धि से, चित्त व अहम् से, प्रभु के रचे हुए जगत् में प्रभु के रचे हुए जीव के प्रति, प्रभु की प्रेरणानुसार, प्रभु के दिये हुए साधनों से जो कर्म हो रहा है वह समस्त कर्म प्रभु का ही है। उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। अतः प्रभु ही प्रभु का कर्म कर रहे हैं। तत्त्वतः प्रभु अकर्ता ही हैं। प्रभु को कर्ता कहें, अकर्ता कहें बात एक ही है। क्योंकि वे समस्त कर्मों के स्वामी होकर भी कर्मों से अलिप्त हैं। जो कर्ता बनेगा उसे भोक्ता भी बनना पड़ेगा। तत्त्वतः प्रभु न कर्ता हैं और न भोक्ता हैं। उनकी आज्ञा अनुसार प्रकृति ही सब लीला कर्म कर रही है। वे उसके साक्षी, द्रष्टामात्र हैं।

इस प्रकार कर्मसंन्यास में कर्तापन का अहंकार भी गल जाता है। चित्त शुद्ध हो जाता है। शुद्ध चित्त में ब्रह्मज्ञान प्रकाशित हो जाता है।

इस प्रकार कर्मयोग की साधना के परिणाम निम्नलिखित हैं—

(i) कर्म की रंगत चढ़ी नहीं
(ii) कर्मासक्ति से बचाव
(iii) कर्मफल की फांसी से बचाव
(iv) कर्तापन के अहंकार से बचाव
(v) कर्म में प्रभु की विशेष कृपा, विशेष शक्ति का प्रवेश हो गया।
(vi) कर्म उत्तम और चमत्कारी हो गया।
(vii) असम्भव को सम्भव कर दिया।
(viii) विश्व का भरपूर कल्याण हुआ और अपना मोक्ष (प्रभु-प्राप्ति) सिद्ध हो गया।

इस प्रकार कर्मयोग कर्म करने की ऐसी कला है जिसमें कर्म अच्छे से अच्छा, भरपूर शक्ति सम्पन्न और परम कल्याणकारी होता है और कर्मबंधन की एक भी रज्जु उसे बांध न सकती। और जीवन के दोनों उद्देश्य—जग का भला और अपना मोक्ष-सिद्ध हो जाते हैं। यही कर्मयोग है। कर्म का रहस्य है। कर्म-सिद्धान्त है।

मृत्यु रहस्य

जिस प्रकार जीवन एक रहस्य है उसी प्रकार मृत्यु उससे भी बड़ा रहस्य है। जो जीवन को थोड़ा बहुत भी समझ पाते हैं वे भी मृत्यु के रहस्य के सामने चकरा जाते हैं। जीवन आजीविका से भिन्न है। आजकल की भौतिकवादी एवं समाजवादी सरकारें जब जन कल्याण के द्वारा जीवन का स्तर ऊंचा उठाने की बात करती हैं तो वास्तव में वे रोटी, कपड़ा, मकान द्वारा आजीविका का स्तर ऊंचा कर पाती हैं, जीवन का स्तर नहीं। जीवन आजीविका से भिन्न है। आजीविका में हजारों रुपया वेतन पाने वाला अधिकारी या ऐश्वर्य में जीने वाला लखपति व्यापारी जीवन में क्षुद्र, कमीना और स्वार्थी हो सकता है। दूसरी ओर धनहीन, साधनहीन, आजीविकाविहीन विवेकानन्द या रामतीर्थ जीवन में अत्यन्त महान् हैं। जिस तरह आजीविका जीवन नहीं है, उसी प्रकार मात्र हृदयगति का बंद होना या साँस का निकल जाना ही मृत्यु नहीं है।

मरना जीवन की एक बड़ी लाचारी है।
इसके आगे दुनिया ने मानी हार है।।

वास्तव में देश एवं विदेश को विजय करने वाले बड़े-बड़े योद्धा एवं विजेता भी मृत्यु के सामने हार जाते हैं। यहां किसी का वश नहीं चलता।

सृष्टि को रचकर परम पुरुष परमात्मा ने जीवन की डोर तो मानव को थमा दी है, किन्तु मृत्यु की डोरी अपने हाथ में ही रखी है। मृत्यु की नकेल पर सारी जीवसृष्टि बनी हुई है। इसी शासन के द्वारा सारी सृष्टि उस परम शक्ति के वश में है। यदि मृत्यु का अंकुश न रहता तो मानव को कुकर्म अथवा स्वेच्छाचार से रोकने का कोई उपाय ही नहीं बचता। अतः शासन की दृष्टि से जीवन से भी मृत्यु का महत्त्व अधिक है।

आज विज्ञान ने बहुत बड़ी प्रगति की है। पदार्थ का अणु एवं परमाणु तक विश्लेषण करके और जीवन को जीवकोषों के रूप में सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करके परखा जा रहा है। किन्तु मृत्यु तत्त्व पर कोई वैज्ञानिक परीक्षण या विश्लेषण सफल नहीं हो सका। मृतक की शव परीक्षा भी मृत्यु का विश्लेषण नहीं कर

सकती। अधिक से अधिक वैज्ञानिक यही बता सकते हैं कि मृत्यु कैसे हुई? चोट द्वारा, हृदयगति के बंद हो जाने से, विष द्वारा, रोग द्वारा आदि। किन्तु मृत्यु कैसे हुई कि व्याख्या करने वाले वैज्ञानिक यह नहीं बता सकते कि मृत्यु क्यों हुई? अर्थात् व्यक्ति मरता ही क्यों है? Science can explain how but not why? अन्तिम क्यों का उत्तर वैज्ञानिक के पास नहीं है। वे इस प्रश्न को टालने के लिए कह देते हैं कि सभी लोग मरते हैं। All men are mortal. किन्तु सब लोग क्यों मरते हैं? इसका कोई वैज्ञानिक उत्तर उनके पास नहीं है। मृत्यु वह रहस्यमयी घाटी है जहाँ वैज्ञानिक परीक्षण करने वाले बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की वाणी मूक हो जाती है। स्वयं वैज्ञानिक भी मृत्यु की चपेट में आकर धूल में मिल जाते हैं। उस घाटी से लौटकर कोई संसार को बताने के लिए नहीं आता कि मृत्यु क्या है?

हृदयगति और श्वासगति का चलना जीवन का लक्षण मात्र हो सकता है, स्वयं जीवन ही नहीं। इसी प्रकार हृदयगति और श्वासगति का बंद होना मृत्यु का लक्षणमात्र है स्वयं मृत्यु ही नहीं। हृदय एक यंत्र है जो रक्त को पम्प करके सब अंगों को भेजता रहता है। रक्त के इस पंप के चलते रहने से हृदय में स्पन्दन होता है। उसी स्पन्दन से नाड़ी की गति भी चलती है। रक्त को शोधन करने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। हमारे फुप्फुस (फेफड़े) नासिका के द्वारा शुद्ध वायु को भीतर खींचते हैं और रक्त के शोधन के पश्चात् दूषित वायु को बाहर निकालते हैं। हृदय की गति और नाड़ी की गति लगभग साठ से सत्तर कंपन प्रति मिनट है। इसे लगभग एक सेकंड प्रति स्पन्दन माना जा सकता है। इसकी तुलना में श्वास का भीतर जाना और लौट कर आना चार सेकंड में पूरा होता है। एक दिन में औसतन 21,600 श्वास मनुष्य लेता है। दिनभर में हृदय का स्पन्दन औसतन 86,400 हो जाता है। वैज्ञानिक यह नहीं बता सकते कि हृदय स्पन्दन क्यों करता है? और श्वासगति क्यों चलती है? उनके वैज्ञानिक परीक्षण अधिक से अधिक यही बता सकते हैं स्पन्दन कैसे चलता है? और श्वासगति कैसे चलती है? इसी प्रकार वे यह नहीं बता सकते हैं कि हृदयगति और श्वास की गति बंद क्यों हो जाती है? मृतक का परीक्षण कर वे जांचते हैं कि क्या हृदयगति चल रही है या श्वासगति चल रही है अथवा नहीं और दोनों गति बंद होने पर वे घोषणा कर देते हैं कि रोगी मर गया है। इस प्रकार हृदयगति और श्वासगति का बंद होना मृत्यु का लक्षणमात्र हुआ, मृत्यु का कारण नहीं। हृदयरूपी यंत्र यदि एक मृतक के शरीर से निकालकर दूसरे हृदयरोगी के शरीर में Heart Plantation Operation द्वारा लगा दिया जाये तो वहां वह काम करने लगता है। यह वैसे ही है जैसे एक बिजली की लाइन में विद्युत् प्रवाह बंद होने के कारण बल्ब बुझ जाये और वही बल्ब जहां विद्युत् का प्रवाह चलता हो वहां लगाने से पुनः काम करने लगे। इसी प्रकार Eye

Plantation के Operation आजकल सफल हो रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि हृदय का स्पन्दन किसी अदृश्य जीवनीशक्ति द्वारा चल रहा है। विद्युत् जैसी उस जीवनीशक्ति का सम्बन्ध टूट जाने से स्पन्दन बंद हो जाता है और पुनः जीवनी-शक्ति वाले शरीर से सम्पर्क होने पर चलने लगता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि हृदय अपने आप स्पन्दन नहीं करता। जीवनी-शक्ति से स्पन्दन करता है और हृदय अपने आप बंद नहीं होता, चेतन जीवनी शक्ति के लोप होने पर स्पन्दन बंद हो जाता है। इस चेतन जीवनीशक्ति के शरीर से विलग होने को ही मृत्यु कहा जा सकता है।

मृत्यु क्या है? यह जनसाधारण के लिए ही नहीं वरन् वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों के लिए भी सबसे बड़ी चुनौती है। जैसे Potassium Cynide का स्वाद आज तक पता नहीं चल सका। क्योंकि जिह्वा से कुछ बोलने या लिखने से पहले जीवन लीला समाप्त हो जाती है। उसी प्रकार मृत्यु के चुंबन के पश्चात् कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक यह बताने में समर्थ ही नहीं रहता कि मृत्यु क्या है?

मृत्यु एक बड़े रहस्यमय ढंग से छाया की तरह जीवन का पीछा करती रहती है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे बिल्ली कबूतर का पीछा करते-करते अंत में उसे थकाकर खा जाती है। उसी प्रकार मृत्युरूपी बिल्ली जीवनरूपी पक्षी को दौड़ा-दौड़ाकर, थकाकर उसे अपना कलेवा बना लेती है।

जनसाधारण मृत्यु को एक आकस्मिक विभीषिका के रूप में देखता है जो अकस्मात् न जाने कहां से, किस दिशा से, किस क्षेत्र से, किस स्थान पर और किस समय घात लगाकर एक डायन के समान मारक (मारने वाली) काली छाया से जीवन को दबोच लेगी। साँसों के दुर्बल पक्षी को एक ही झपट्टे में मारकर खा जायेगी। मृत्यु के इस रूप ने मानवता को इतना भयभीत कर रखा है कि सामान्य मानव मृत्यु को ही सबसे बलवान मान लेता है। वह मृत्यु के एक हलके दांव से ही प्रतिदिन जीवन को हारता देखता है। इसलिये एक कवि ने लिखा है—

'जिन्दगी थक गयी मौत चलती रही'

जीवन तो कुछ समय के बाद दम तोड़ जाता है। किन्तु मृत्यु न थकती है और न ही दम तोड़ती है। मृत्यु इतनी निश्चित है कि लोगों ने निश्चितता के लिए मृत्यु को उपमान (जिससे उपमा दी जाये) मान लिया है। अंग्रेजी का मुहावरा As sure as Death यही बात प्रकट करता है। एक दूसरे मुहावरे Man is mortal से भी यही ध्वनि निकलती है। जीवन एक अनिश्चित वस्तु मान ली गई है और मृत्यु निश्चित है। यह वैसा ही लगता है कि प्रकाश तो असत् है और अंधकार ही सत् है। मृत्यु की निश्चितता होते हुए भी मृत्यु का क्षण अनिश्चित है। यही मृत्यु को

अधिक भयावह बना देता है किन्तु—

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाप्यकृतं पुनः।

मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती कि आपका काम पूरा हुआ कि नहीं। वृक्ष फल पकने पर गिरे तो किसी को दुःख नहीं होता किन्तु मृत्युरूपी आंधी कच्चे-पके फल, फूल, बीज आदि किसी को भी क्षणभर में धराशायी कर देती है। इसी कारण मानव मृत्यु से भयभीत रहता है।

काल के दो अर्थ हैं, दोनों सम्बन्धित हैं। एक समय, दूसरा मृत्यु। वास्तव में जितनी वस्तुएं काल में हैं वे वास्तव में काल के गाल में ही हैं। काल उन्हें खा जाता है। हमारे शरीर काल में जीते हैं। एक समय था जब शरीर नहीं था। एक समय है जब शरीर है। एक समय होगा जब शरीर नहीं होगा। इस प्रकार जो समय (काल) में जी रहा है वह काल के पैने दांतों तले ही जी रहा है। काल उसे कब खा जाये उसका उसे क्या भरोसा? कबीर के शब्दों में :

कबीरा गर्व न कीजिये काल गहे कर केश।
न जाने कब मारिहैं, क्या घर क्या परदेश।।

मृत्यु, शत्रुओं का भी महाशत्रु है और जीवन में ही छिपकर बैठा है। काल रूप वह भविष्यत् को केशों से पकड़कर वर्तमान में घसीट कर लाता है और वर्तमान को खाकर, उसकी सूखी हड्डियां अतीत में फेंकता जाता है। इस प्रकार हर आगे आना वाला क्षण पलक झपकते ही वर्तमान बन जाता है और पलक खोलते ही अतीत में चला जाता है। अतीत प्रशांत महासागर के समान है जहां जाकर वर्तमान के शव शांत हो जाते हैं। भविष्यत् अंध महासागर के समान है जिसका कोई निश्चय नहीं है। अतीत तो स्वयं मृत होने से शांत है और भविष्यत् अनिश्चित होने से गहरे अंधेरे में पड़ा हुआ है। अतीत के प्रशांत महासागर और भविष्यत् के अंध महासागर के मिलनबिन्दु का नाम ही वर्तमान का क्षण है। वर्तमान की सत्ता एक क्षण के समान क्षणिक है—

जगत चबैना काल का कछु मुख में कछु हाथ में।

काल के स्वरूप को समझना काल पर विजय पाने के लिए अनिवार्य है। काल की भयानकता का सारा जोर उन्हीं वस्तुओं पर लगता है जो देश और काल में हैं। अर्थात् जो भौतिक हैं। मानव का शरीर और मन एवं बुद्धि से सम्बन्धित मोह का संसार सबकुछ भौतिक होने के कारण काल में हैं अर्थात् काल के गाल में है। मनुष्य को इस तन-मन एवं जगत् के मोह से मुक्त करने के लिए उसके मन में इनके प्रति वैराग्य पैदा करना अनिवार्य है। जब तक जगत् का राग है तब तक मानव मोह में बंधा रहता है। जगत् की वस्तुएं नश्वर होने के कारण मरती या नष्ट होती हैं तब

वस्तुतः हमें कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि नाश होना उनका स्वभाव ही है। प्रतिक्षण लाखों बुलबुले फूटते हैं, हजारों फूल झड़ते हैं, अनेक जीव मरते हैं पर हमें कोई शोक नहीं होता। प्रभु की सृष्टि में किसी वस्तु के टूटने से हमें शोक नहीं होता। हमें शोक तब होता है जब उस वस्तु या व्यक्ति की हमारे मन में बनी हुई मोह की तसवीर टूटती है। मोह शब्द मुह धातु से बना है जिसका अर्थ है मूर्च्छित करना, मुग्ध करना, ज्ञान पर पर्दा डालना। नशे से, चोट से मनुष्य मूर्च्छित होता है। इन्द्रजाल या जादू से उसकी बुद्धि चकरा जाती है। अतिशय सौंदर्य या ऊंचा पद, अधिक धन लोभ, लाभ आदि से भी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है, और मनुष्य मोहांध एवं मदांध (मस्ती में अंधा) हो जाता है। किसी वस्तु के प्रति अज्ञानजनित अतिशय आकर्षण मोह है। किसी व्यक्ति के प्रति ज्ञानजनित आकर्षण प्रेम है। प्रेम मुक्त करता है और मोह बांधता है। यह मोह ही शोक का कारण है। जो व्यक्ति देह, गेह (घर) और जगत् के मोह में अंधे रहते हैं उन्हें ही मृत्यु का भय सबसे अधिक होता है।

मानव के मन में देह, गेह के प्रति वैराग्य पैदा करने हेतु संतों ने काल अथवा मृत्यु का वर्णन किया है। उनका उद्देश्य मानव को डराना नहीं है। वरन् मानव का मोहनाश करके उसे निर्भय बनाना है। शास्त्र में कहा है—

गृहीत इव केशैष, मृत्युना धर्ममाचरेत्।

अर्थात् यह मानकर कि मृत्यु ने केशों से पकड़ रखा है, मनुष्य को धर्माचरण करना चाहिये। भाव यह है कि मृत्यु ने जब केशों से पकड़ा हुआ है तब न जाने किस क्षण मृत्यु शरीर को मार डाले? इसलिए एक भी क्षण नष्ट न करते हुए वर्तमान के क्षण को धर्मपरायण कर लो। जैसे घर में आग लगने पर, घर में डाकुओं का हमला होने पर मनुष्य सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य को तत्काल करना चाहता है।

उसी प्रकार देहरूपी गेह पर मृत्यु का हमला जारी है, यह विचार कर तत्काल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धर्म का पालन करना चाहिये। कबीर के शब्दों में—

पानी केश बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा प्रभात।।

माली आवत देखिके, कलियां करे पुकार।
फूली-फूली चुन लियो, कल ही हमारी बार।।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मानव देह की नश्वरता बताने के लिए उसकी कुशा की तेज नोक पर टिकी हुई ओस की बूँद से उपमा दी है।

श्मशान भूमि में जाकर प्रायः लोगों की बुद्धि को ठोकर लगती है कि देह और गेह को वे सबकुछ समझ बैठे थे। वह कितना क्षणभंगुर है। किन्तु श्मशान वैराग्य प्रायः थोड़ी देर ही रहता है और संसार पुनः मानव को अपने मोह में बांध

लेता है। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? उत्तर में युधिष्ठिर महाराज ने कहा कि मानव रोज अपनी आंखों के सामने अपने पड़ोसियों एवं घर के स्वजनों को मरते देखता है। स्वयं श्मशान भूमि तक ले जाता है और उनका अन्तिम संस्कार करता है, फिर भी वह समझता रहता है कि मैं नहीं मरूंगा। इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है? एक ओर मृत्यु की भयंकर विभीषिका और दूसरी ओर माया का प्रबल जाल। इनके बीच में मानव सुख-दुःख की आंख मिचौनी खेलता रहता है। मृत्यु के आंसुओं के ऊपर माया का पर्दा डालकर अपनी कृत्रिम मुसकान बिखेर देता है। मनुष्य अपने अन्दर के दुःखों को भुलाने के लिए ऊपर से बनावटी हँसी हँसता है और लोगों को माया भरे शब्दों से सूचना देता है कि यहाँ सब कुछ कुशल मंगल है, जबकि वास्तव में उसका शरीर प्रतिक्षण मर रहा है।

भारत सेवा संघ के संस्थापक आचार्य स्वामी प्रणवानंदजी जब बचपन में ब्रह्मचारी विनोद के नाम से पहचाने जाते थे तभी वह श्मशान भूमि से एक खोपड़ी उठा लाये थे। उस खोपड़ी को सामने रखकर उसके ऊपर उन्होंने अपनी कई पीढ़ी के पूर्वजों की सूची टांग रखी थी। वे रोज अपने मन को यह संस्कार देते थे कि जिस प्रकार इन सब पूर्वजों के शरीर को मृत्यु खा गयी इसी प्रकार मेरे शरीर की भी गति होगी। इससे उनके मन में देह और गेह के प्रति दृढ़ वैराग्य उत्पन्न हो गया। बिना वैराग्य के विवेक विचार उत्पन्न नहीं हो सकता। मृत्यु के विषय में विवेकपूर्वक विचार करने से स्पष्ट होता है कि मृत्यु जीवन की एक स्वाभाविक अवस्था है जिससे भय खाने का कोई कारण नहीं है। परिवर्तन के क्रम में जैसे माता के गर्भ में शुक्र बीज कई रूप परिवर्तित करता है। अपने भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) रूप का फोटो देखकर कोई अपने को पहचान नहीं सकता। स्वयं अपने ही जन्म के समय का फोटो बिना किसी साथी के पहचान नहीं सकता कि मैं ही हूं। जिस प्रकार शुक्र से भ्रूण, भ्रूण से शिशु, शिशु से बाल, बाल से किशोर, किशोर से तरुण, तरुण से नवयुवक, फिर युवक, फिर प्रौढ़, फिर वृद्ध, फिर रोगी, परिवर्तन की स्वाभाविक अवस्थाएं हैं। उसी प्रकार वृद्धावस्था एवं रुग्णावस्था के बाद अगली स्वाभाविक अवस्था देहांत है। जिससे चिंतित या दुःखी होने का कारण ही नहीं है। जैसे जन्म की खुशी के लड्डू बांटे जाते हैं। शैशवावस्था में मुंडन संस्कार के लड्डू बांटे जाते हैं। बाल्यावस्था में शालाप्रवेश पर लड्डू बंटते हैं। किशोरावस्था में यज्ञोपवीत संस्कार पर खुशियां मनाई जाती है। तरुणाई में सगाई एवं विवाह के लड्डू बंटते हैं। प्रौढ़ावस्था में संतान उत्पत्ति पर लड्डू बांटे जाते हैं। हर जन्म दिन पर खुशियां मनाई जाती है। षष्ठीपूर्ति पर उत्सव मनाये जाते हैं। स्वर्ण जयंतियां, हीरक जयंतियां मनाई जाती हैं। उसी प्रकार वृद्धावस्था के बाद

अगला पड़ाव देहांत का आने पर भी उत्सव मनाना चाहिये। क्योंकि उसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। भगवान् ने गीता में इसी भाव को समझाते हुए कहा है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। 2/13, गीता

अर्थात् जैसे शरीर कौमार्य, यौवन और जरावस्थाओं में परिवर्तित होता रहता है उसी प्रकार देहांत की अवस्था है। उसमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।

बिना हेमंत (पतझड़) के बसंत आ ही नहीं सकता। बिना सड़े-गले वृद्ध रोगी शरीरों के देहांत के प्रकृति का परिवर्तन चक्र ही रुक जायेगा और सारा संसार हाय हाय की चीत्कार से भरा हुआ एक विराट् अस्पताल बन जायेगा। खेत में झाड़ी-झंखाड़ को साफ किये बिना उत्तम खेती असंभव हो जायेगी।

इस प्रकार मरण तो जीवन के लिए अनिवार्य पूर्वावस्था है। उदाहरण के लिए हमारे सामने एक सुन्दर लाल कश्मीरी सेब है। उसकी सुन्दरता, उसकी लालिमा, उसका रूप जब तक अपना बलिदान न दे तब तक सेब हमारा आहार नहीं बन सकता। सेब के सौंदर्य, लालिमा एवं रूप को हम छुरी की धार एवं दांतों की मार से स्वयं मृत्यु देते हैं। तब वह सेब अपनी शक्ति से हमें जीवन देता है। शैशव के मरे बिना कोई बालक नहीं बन सकता और बालपन के मरे बिना युवक नहीं बन सकता।

भारतीय दर्शन एवं समस्त भारतीय धर्म सम्प्रदायों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त माना गया है। भगवान् गीता में कहते हैं—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। 2/27, गीता

जन्मे हुए का मरना निश्चित है और मरे हुए का पुनर्जन्म। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त सारी सृष्टि में विज्ञान द्वारा प्रतिष्ठित एवं प्रमाणित है। बीज परिपक्व होने पर गिरता है और अपने जैसे वृक्ष और अनेक बीज पैदा कर जाता है। मानव सृष्टि में भी पुनर्जन्म के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण देश और विदेश में उपलब्ध होते हैं। अम्बाला के छोटे से शिशु अश्वनी कुमार को जन्म से ही सूर एवं तुलसी के अनेक पद कंठस्थ थे। जो वह तुतली भाषा में सारे उत्तर भारत के मंचों पर गा-गा कर सुनाता था। श्रीमती सरोज बाला नामक बाल-विदुषी को, शैशव से ही अनेक वेदमंत्र एवं धर्मशास्त्रों पर बिना किसी विद्यालय में पढ़े ही असाधारण अधिकार था। उसने पूर्वजन्म का परिचय भी बताया जो पूर्णतया प्रमाणित हुआ। ये दोनों अभी तक पुनर्जन्म के जीवित प्रमाण हैं। अतः मृत्यु केवल एक विश्राम स्थल के समान है जहाँ थका-हारा जीव पुराने थके हुए शरीर को त्याग कर नये युवा तन-मन से

आगे की मोक्षयात्रा प्रारम्भ करता है। एक स्थान पर स्वामी रामतीर्थ विनोद में कहते हैं—

मृत्यु तो एक नौकरानी है जो हाथ में नये सुन्दर वस्त्र लिए खड़ी है और प्रार्थना करती रहती है कि मालिक, कपड़े बदल लीजिये। मैं उस नौकरानी की ओर देखता भी नहीं।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि जीवन और मृत्यु प्रकृति माता के दो स्तनों के समान हैं। जब माता जीवनरूपी स्तन से दूध पिलाते थक जाती है तो मृत्युरूपी स्तन पर लगा देती हैं।

यहूदी, ईसाई और मुसलमान धर्म में एक ही जन्म माना गया, वे पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। अत: वे तथा भौतिकवादी दोनों ही मृत्यु को जीवनरूपी नाटक का अन्तिम काला पर्दा मानते हैं। मृत्यु की भयावह घाटी के उस पार भी जीवन है ऐसा वे नहीं मानते जैसा कि आर्य धर्म में माना जाता है। सेमिटिक धर्म में इतना तो मानते हैं कि कयामत (महाप्रलय) के दिन तक मृतकों के शव (रूहों के रूप में जो आत्मा से मिलता-जुलता शब्द है) कब्रों में पड़े रहेंगे और कयामत के दिन उनके भले-बुरे कर्मों का न्याय होगा। किन्तु भौतिकवादी नास्तिक न कयामत को मानते हैं और न अन्तिम ईश्वरीयन्याय को। इसलिए मृत्यु उनके लिए जीवन की पूर्ण समाप्ति अथवा सर्वनाश की घड़ी है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मृत्यु की चपत लगने पर मनुष्य भविष्यत् के बारे में सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। भविष्यत् की स्पष्ट कल्पना न होने के कारण नास्तिकों को अन्तिम घड़ी में भयंकर मनोवैज्ञानिक क्लेश होता है। एक महान् नास्तिक जो आत्मा-परमात्मा में विश्वास नहीं करता था, मरते समय बोलने लगा O God, If there is God! Save my soul if there is Soul. इसी प्रकार चीन के दिवंगत राष्ट्रपति माओ ने अपनी स्त्री को जो मृत्यु का वसीयतनामा लिखा उसमें लिखा Now both of us are being separated. We are moving in two different world. जब कम्यूनिज्म की मान्यता में परलोक है ही नहीं तो दूसरे लोक में जाने का अर्थ ही क्या होता है?

परलोक और पुनर्जन्म दोनों अन्योन्याश्रित हैं। यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सेमिटिक धर्म पुनर्जन्म नहीं मानते परन्तु कयामत के बाद स्वर्ग-नरक की कल्पना करते हैं जो तर्कसंगत सिद्ध नहीं होता। बराकपोर्ट (न्यूयार्क, अमेरीका) के First Beptist Mission के महापुरोहित रेबरेन्ड डाइक्लर्क (जिनके निवास पर मैं अतिथि के रूप में लगभग एक मास तक ठहरा था।) एक दिन कहने लगे कि आप हिन्दू लोग मृतक का शव जलाकर बड़ा अन्याय करते हैं। मेरे पूछने पर उन्होंने कहा

कि जिन बड़ों का सारी उमर सम्मान करते हैं मरने पर उनको स्वयं आग लगाकर जला देते हैं। यह बड़ा क्रूर दिखाई देता है। उसने कहा कि हम मृतकों के लिए सुन्दर कफन और बक्सा बनवाकर उसमें सुरक्षित रखते हैं। ऊपर सुन्दर पत्थर का स्मारक बना देते हैं। मैंने कहा, प्रतिव्यक्ति की कब्र के लिए कम से कम तीन फुट चौड़ी और आठ फुट लम्बी भूमि अवश्य लगती है। संसार में सारी जनसंख्या के लगभग ढाई अरब ईसाइयों में, लगभग 75 करोड़ मुसलमानों में, कुछ बौद्ध देशों में भी गाड़ने की प्रथा है, आदिवासियों में भी गाड़ने की प्रथा है। कभी-कभी हिन्दू महात्माओं को समाधि दी जाती है। लगभग 25 वर्ष में संसार की आधी जनसंख्या बदल जाती है। अत: प्रत्येक 50 वर्ष में लगभग पौने चार अरब लोगों को कब्रें चाहिये। ईसाइयत प्रारम्भ हुए 2000 वर्ष और इस्लाम को प्रारंभ हुए 1400 वर्ष हो चुके हैं। यदि 2000 वर्षों में 1400 अरब लोगों की कब्रें और उनकी भूमि का हिसाब लगाया जाय तो धरती पर एक चींटी के भी रहने का स्थान नहीं बचता। फिर कयामत के दिन तो अभी तक बहुत दूर हैं। 10,000 वर्षों के 10,000 युग बीतने के बाद कयामत का दिन आयेगा, तब तक सारी धरती तो कब्रिस्तान बन चुकी होगी और जिस चन्द्रमा, मंगल ग्रह पर जाने का प्रयास करते हैं वहां भी कब्रिस्तान बन जायेगा। क्योंकि धरती पर जगह बचेगी ही नहीं। फिर वैज्ञानिक दृष्टि से कोई शरीर धरती के भीतर इतनी लम्बी अवधि तक सुरक्षित रह ही नहीं सकता। अनेक पुराने कब्रिस्तान बाद में खेत बन जाते हैं या नगर बस जाते हैं। धरती पर हल के फाल से अनेक खोपड़ियां निकलती हैं। जिनको बच्चे फुटबाल समझ कर खेलने लगते हैं। अंग्रेजी की एक कविता में एक बच्चा अपने बूढ़े दादा से हल द्वारा निकली एक खोपड़ी के विषय में कहता है कि यह फुटबाल मुझे दे दो। मैं इससे खेलूंगा। पर दादाजी ने कहा, नहीं बेटा! यह फुटबाल नहीं है। यहां युद्ध में बहुत सैनिक मारे गये हैं। और यह कब्रिस्तान है। इसी प्रकार बहुत सी कब्रें खुली हुई मिलती हैं जिनकी भुजा, टांग जंगली पशु खींचकर ले जाते हैं। कयामत के दिन कीड़ों से खाये शरीर और पशुओं के पेट में गई हुई मांस-मज्जा, फुटबाल की तरह निकली हुई खोपड़ियां आदि सब मिलकर पुन: मानव शरीररूप धारण कर अन्तिम न्याय में स्वर्ग या नरक में जायेंगे। आर्य धर्म में शरीर को केवल जड़ मिट्टी माना जाता है। इसलिये उसको जला देने से शरीर का न भयंकर तिरस्कार होता है और न पशुओं द्वारा नोच-नोच कर खाने की नौबत आती है और न उपजाऊ धरती जीवित मानवों से छीनकर मुर्दों के लिए सुरक्षित की जाती है। चेतन आत्मा को न मिट्टी का भय है। न आग की ज्वालाओं का भय है। उसे कर्मफल के लिए लम्बे समय तक प्रतीक्षा भी नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार सेमिटिक धर्मों का कर्म सिद्धान्त बिना पुनर्जन्म सिद्धान्त के अवैज्ञानिक, तर्कशून्य सिद्ध होता है।

भारतीय दर्शन की पुनर्जन्म की मान्यता मनुष्य को आशावादी बनाती है। एक बूढ़े मौलवी साहब एक दूसरे मौलवी साहब से रो-रो कर कह रहे थे कि इस जन्म में तो बहुत गुनाह किये हैं अब मौत सिर पर नाच रही है। कयामत के दिन तक कब्र में रहना पड़ेगा। सुधार की कोई गुंजाइश भी नहीं रही। हाय! मेरा क्या होगा? इसकी तुलना में आर्यधर्मी जानता है कि इस जन्म में यदि इस लक्ष्य तक नहीं पहुंचे तो भगवान् अगला जन्म देंगे। जब तक मनुष्य परीक्षा पास नहीं करता उसे पुनः-पुनः परीक्षा में बैठने का अधिकार होना ही चाहिये। अतः हिन्दू आशावादी है कि आज की भूल का कल सुधार कर लूंगा। इस जन्म की बाजी अगर मैं हार भी गया तो अगले जन्म में पुनः नये सिरे से प्रयत्न करने का सुअवसर मिलेगा।

पुनर्जन्म तभी तक होता है जब तक मनुष्य मोक्ष के योग्य नहीं बनता। वेद में प्रार्थना है —

मृत्योर्माऽमृतं गमय्

हे भगवान्! मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ। अतः पुनर्जन्म का सिद्धान्त मोक्ष जैसे अन्तिम लक्ष्य पर पहुंचने से पहले बीच के पड़ाव के समान है। कोई कैलास यात्रा के मार्ग में कितने पड़ाव करता है यह उसके मनोबल और साधना पर निर्भर करता है। इसी जन्म में मोक्ष का अधिकारी बन जाना सर्वोत्तम है। पर यदि किसी कारण हम अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये तो पिछले जन्म की सारी कमाई हमारे साथ चलेगी और योगभ्रष्ट के रूप में उत्तम परिवार के उत्तम संस्कारों के साथ अगला जन्म होगा जिससे भावी यात्रा सुगम हो जायेगी। अतः कर्म सिद्धान्त के लिए पुनर्जन्म का सिद्धान्त अनिवार्य है।

सेमिटिक धर्म कर्म सिद्धान्त को अन्तिम कयामत के दिन न्याय के रूप में मानता है पर परलोक एवं पुनर्जन्म को न मानने से उनके कर्म सिद्धान्त का आधार ही कच्चा रह जाता है।

Justic delayed is Justic denyed. विलम्बित न्याय अन्याय जैसा बन जाता है। अमेरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरहुड ने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों वर्षों के बाद कयामत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर में विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा कि ऐसे ईश्वर से कोई धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है। जो हमें कुछ मास या कुछ वर्ष में न्याय तो देता है। यदि किसी आदमी ने आज मुझे चोट मारी है और उसे दण्ड लाखों वर्षों के बाद मिलेगा तो यह घोर अन्याय है। अतः ईशरहुड गीता के प्रभाव से पुनः अपनी आस्था एवं जीवन बचा सका। आर्य धर्म मानता है कि ईश्वरीयन्याय अनवरत रूप से चलता रहता है। भगवान् का न्यायालय एक क्षण के लिए भी बंद नहीं होता। अतः कर्म हमें इस जन्म में भी

उत्तम मानव बनाता हुआ अगले जन्म में हमें उत्तम योनि में उत्तम संस्कारों के साथ पैदा करता है।

भौतिकवादी और सेमिटिक धर्म मानव के व्यक्तित्व का सूक्ष्म विश्लेषण करने में समर्थ नहीं हो सके। आर्य धर्म कहता है बाहर दिखने वाला मानव स्थूल शरीर है। उसे देखकर भले-बुरे की तुरत पहचान नहीं हो सकती। चोर के माथे पर कोई पट्टी नहीं लगी कि वह चोर है और संत बाहरी शरीर पर, बाहरी वेश-भूषा से संत नहीं कहलाता। सज्जन और दुर्जन के लिए मानव का सूक्ष्म शरीर मनुष्य का मन ही है। वास्तव में सब कर्मों का उद्‌गम इसी मन से होता है। यही मनुष्य को उठाता अथवा गिराता है। उससे भी अधिक सूक्ष्म एक कारणशरीर है जो एक जन्म की मूल वासनाओं को लेकर दूसरे जन्म में पहुंचाता है। स्थूल शरीर धान्य का बोझा ढोने वाले के समान है। सूक्ष्म शरीर का मन उतने ही धन या धान्य के हलके नोट ढोने वाले के समान है। और कारणशरीर विदेश जाना लाखों रुपये की हुण्डी या Travellor's cheque के समान होगा। मकान जलने पर कोई व्यक्ति रोता है, कोई हाय हाय करता है। पर समझदार व्यक्ति मकान बीमा पॉलिसी को सुरक्षित कर मकान से अलग हो जाता है। न रोता है, न हाय हाय करता है, क्योंकि उसे पॉलिसी द्वारा नया मकान मिलने वाला है।

इसी प्रकार शरीर के मरने या जलने पर स्थूल वस्तुओं के मोह में पड़े हुए लोग रोते हैं और हाय हाय करते हैं। किन्तु, उत्तमकर्मरूपी बीमा पॉलिसी वाले लोग शांत एवं संतुलित रहते हैं।

पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त मोक्ष से पूर्व अनिवार्य होते हुए भी अन्तिम नहीं है। जैसे साबुन से कपड़े का मैल चला जाता है और अन्त में स्वयं साबुन को निकाल देना भी अनिवार्य होता है। उसी प्रकार अच्छे कर्मों द्वारा खोटे संस्कारों को धोने के पश्चात् कर्मरूपी साबुन को भी निकाल देना अनिवार्य हो जाता है। जो साबुन मैल को निकालता है उसकी झाग कपड़े में रह जाये तो वह स्वयं मैल बन जाती है। इसलिए कर्मों के चक्कर से छुटकारा ही मोक्ष है। कर्म की धन्यता इसी बात में है कि वे हमें कर्म चक्र से छुड़ा दें। जैसे फूल की सार्थकता इसी बात में है कि वह स्वयं खिल-झड़ कर फल के लिए स्थान बना दे—

फल कारण फूले बन राय,
फल लागे सो फूल बिलाय,
जाने कारण कर्म ही विकास
उपजे ज्ञान तो कर्म ही नाश

—रविदास

मृत्यु पर विजय पाने के लिए मृत्यु को अन्तिम अतिथि माना गया है।

सम्मान्यः सादरं मृत्युः जीवनस्य अन्तिमोऽतिथिः

आदरसहित मनुष्य को मृत्यु का सम्मान करना चाहिये क्योंकि जीवन का अन्तिम अतिथि है। जैसे जीवन भर अतिथि को देवता मानकर हम जीवन निर्वाह करते रहे हैं, इसी प्रकार इस जीवनलीला का अन्तिम अतिथि मृत्यु देवता है। उससे भयभीत होने के स्थान पर हमें सम्मान करते हुए जीवन की भेंट चढ़ा देनी चाहिये। इस पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—

हे रुद्र! जब आप अपना भिक्षापात्र लेकर मेरे द्वार पर आ जायें तो मैं आपके महाकाल विकराल रूप को देखकर डर न जाऊं। मैं मुसकराते हुए अपने प्राण रूपी पुष्प को आपके चरणों में डाल दूं।

इस प्रकार से सबका जाना निश्चित ही है। पर कब जाना है यह निश्चित नहीं है। प्रत्येक यात्रा के लिए मनुष्य कई दिन पहले से तैयारी करता है और मार्ग के लिए कुछ पाथेय तैयार कर लेता है। किन्तु, इस मृत्यु की यात्रा निश्चित है और अकस्मात् कब एक क्षण दिये बिना जाना पड़ेगा यह नियत नहीं है।

महायात्रा के लिए उचित तैयारी का न होना कितना बड़ा अभिशाप है। वास्तव में जीवन उसी का उत्तम है जो अपने समस्त साधन एवं सुकर्म इस महायात्रा हेतु लगाता है। आर्य धर्म में मृत्यु एक डरावनी डायन न होकर वह मृत्युदेव अथवा यमराज अथवा मृत्यु के शासक प्रलयंकारी शिव के रूप में वर्णित है। दुष्टों के लिए प्रलयंकर हैं, वही सज्जनों के लिए कल्याणकारी शिव हैं। कबीर कहते हैं—

जिण मरणे से जग डरे, मेरे मन आणंद।
कत मरिहौं कत जाहिहौं, पूरण परमानन्द।

अतः मृत्यु जीवन का अभिशाप न होकर प्रभु मिलन की वेला है। मोक्ष का महापर्व है, निर्वाण का महोत्सव है। इस महोत्सव का अधिकारी वही हो सकता है जिसने काल में जीते हुए भी कालातीत अमर आत्मा की साधना की है। जिसने अपने सच्चे स्वरूप को पहचाना है तथा अपनी अनुभूति से अमरत्व का आनन्द लाभ किया है।

कठोपनिषद् में भारत का छोटा-सा बालक नचिकेता साक्षात् मृत्युदेव से वार्तालाप करता है और मृत्युदेव द्वारा वर मांगने के लिए कहने पर आत्मविद्या और ब्रह्मविद्या का रहस्य पूछता है।

दूसरे शब्दों में वह आदर्श जिज्ञासु मृत्युदेव से ही मृत्यु का रहस्य पूछता है। अर्थात् मृत्यु से ही पूछता है कि आप मरेंगे कैसे? जिससे मृत्यु मर जाये और मैं

अमर हो जाऊं। अन्त में यमराज को हारकर उसे अमरत्व की विद्या बतानी पड़ती है। मृत्युदेव स्वयं कहते हैं—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं, तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं, निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।। 1/3/15

अर्थात् शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध रहित और अक्षय-नित्य, अनादि-अनंत एवं महत्-तत्त्व से श्रेष्ठ ऐसा जो आत्मतत्त्व है, उसे जानकर जीव मृत्युमुख से छूटता है।

केन उपनिषद् कहता है—

श्रोतस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच (ँ) स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषच्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकदमृता भवन्ति।। 1/2

अर्थात् जो श्रोत का श्रोत, कर्णेन्द्रिय का भी कर्णेन्द्रिय, मन का भी मन, वाणी का वाणी, प्राण का भी प्राण, चक्षु का भी चक्षु और सब इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि के मूल प्रेरक एवं अधिष्ठान मूल चैतन्यरूप आत्मा को जान लेता है वह इस लोक से शरीर को त्याग कर जाने पर अमृत हो जाता है।

आद्यशंकराचार्यजी ने ठीक ही कहा है—

सच्चा जीवन क्या है? जिसकी मृत्यु न हो। और सच्ची मृत्यु वह है जिसका पुनर्जन्म न हो।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

मुण्डक उ., 2/2/8

अर्थात् परावर (कार्यकारण-रूप) ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर इस जीवात्मा के हृदय की अविद्या-ग्रन्थि खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं।

भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान में तत्त्वों का तुलनात्मक तत्त्वावलोचन

प्राय: आधुनिक विज्ञान से तनिक परिचित होने वाले अध्येता तथा आलोचक यह प्रश्न उठाते हैं कि भारतीय दर्शन में जिन पांच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को सारी सृष्टि का आधारभूत मसाला माना गया है वे आधुनिक विज्ञान की खोजों से तत्त्व ही नहीं माने जा सकते हैं। उदाहरण के रूप में, भारतीय दर्शन में जल को तत्त्व माना गया है। उसे विज्ञान तत्त्व न मानकर दो तत्त्वों का (ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन का) मिश्रण मानता है। इसी प्रकार विज्ञान में पृथ्वी कोई एक तत्त्व है ही नहीं। पृथ्वी पर प्राप्त होने वाली धातु और अधातु में अनेक तत्त्व हैं। पृथ्वी उन सबका सम्मिश्रण है। आधुनिक विज्ञान ने अग्नि को भी तत्त्व नहीं माना है। हां, भौतिकी में ताप को ऊर्जा का एक प्रकार माना गया है। विज्ञान ने वायु को भी एक तत्त्व नहीं माना है। वरन् उसमें अनेक गैसों का सम्मिश्रण माना है। विज्ञान की शब्दावली में आकाश नाम का कोई तत्त्व नहीं है। किन्तु भौतिकी में Space (देश), Empty space (खाली स्थान), Vacuum वायु शून्य स्थान, Ether ईथर (तारों और ग्रहों के बीच का खाली स्थान) आदि शब्द प्रयोग किये जा रहे हैं। जो आकाश तत्त्व की ओर इंगित करते हैं।

भारतीय दर्शन में पद, प्रत्यय एवं शब्दावली में अन्तर—वास्तव में भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विज्ञान के दृष्टिकोण और अध्ययन शैली में अन्तर है। दोनों के अध्ययन के उद्देश्य एवं पद, प्रत्यय, शब्दावली एवं परिभाषा में भी अन्तर है। अत: दोनों के मौलिक तत्त्वों को अलग-अलग समझ लेने से तुलना से पैदा होने वाली भ्रान्ति दूर हो जाती है। विज्ञान में Element शब्दप्रयोग किया गया है। तत्त्व शब्द नहीं। उसका हिन्दी अनुवाद तत्त्व शब्द कर देने से और भारतीय दर्शन के साथ मिलान करने से भ्रान्ति पैदा हो जाती है। जैसे अंग्रेजी के Lady finger का शाब्दिक अर्थ नारी की उंगली लगाने से तथा petty coat का अर्थ छोटा कोट लगाने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। विज्ञान का Element शब्द और भारतीय दर्शन का तत्त्व शब्द दोनों भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए भिन्न-

भिन्न दृष्टिकोण से प्रयोग किये गये शब्द हैं। यूनान में प्रारम्भिक काल में सब ज्ञान-विज्ञान philosophy के अन्तर्गत ही माना जाता था। अत: पाइथोगोरस, आर्कीमिडिज और आइंस्टीन अपनी वैज्ञानिक खोजों के उपरान्त भी दार्शनिक माने जाते थे। अरस्तू ने भिन्न-भिन्न विज्ञानों का वर्गीकरण किया। किन्तु मध्यकाल तक वैज्ञानिक विषयों को भी philosophy नाम दिया जाता रहा। न्यूटन के बाद यूरोप में जब विज्ञान का पुनर्जन्म हुआ तब धीरे-धीरे विज्ञान को दर्शन से अलग विषय के रूप में विकसित किया जाने लगा। विज्ञान ने भौतिक जगत् की वस्तुओं का विश्लेषण कर भौतिक सत्य खोजने का प्रयास किया। विज्ञान को दो वर्गों में बांट दिया गया—

(क.) Positive Science=तथ्यपरक विज्ञान

(ख.) Normative Science=Norm Standamal, Ideal आदर्शपरक विज्ञान।

इसके आगे तीन मान दिये गये—

Ideal of truth का अध्ययन करने वाला Logic

Goodness=Ethics

Beauty=Aesthetic

उन्होंने Normative Science (Logic, Aesthetics, Ethics) को विज्ञान न मानकर केवल philosophy या दर्शन ही माना। और केवल Positive Science तथ्यपरक विज्ञान को दर्शन से अलग कर विज्ञान कहना प्रारम्भ किया। वैसे विज्ञान शब्द विशेषज्ञान, अनुभूति के ज्ञान, प्रत्यक्ष उपलब्धि के ज्ञान, अन्तर्ज्ञान intuition, तर्कातीत ज्ञान, बुद्धि से भी ऊपर वाला ज्ञान, सत्य के साक्षात्कार के अर्थ में वेद, उपनिषद, गीता आदि में बार-बार प्रयोग हुआ है। किन्तु आधुनिक काल में विज्ञान (Science) केवल भौतिक जगत् में तथ्यों के अनुसंधान का अध्ययन माना जाता है। इस अर्थ में इसका परम सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तथ्य Facts

तथ्य देश और काल में होने वाली वस्तुएं हैं या घटने वाली घटनाएं हैं। यह देश (Space) में आबद्ध होता है। देश इसे सीमित बनाता है। भौतिक वस्तुएं एकदेशीय होती है। क्योंकि उसकी परिभाषा है कि जो वजन रखे और स्थान घेरे। उदाहरणस्वरूप—

सत्य Truth

सत्य सार्वदेशिक वस्तु या घटना को कह सकते हैं। जांच करने पर कोई वस्तु सार्वदेशिक नहीं हो सकती। कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सब स्थानों पर नहीं हो सकता है। कोई भी घटना एक ही समय सभी स्थानों पर नहीं घट सकती। केवल चेतन तत्त्व ही

फूल, अटल बिहारी वाजपेयी, मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण आदि। तथ्य एकदेशीय सत्य है। एक स्थान में सुख है तो दूसरे स्थान पर इसके विपरीत दु:ख है।

सार्वदेशिक, सर्वव्यापक अत्र सत्यम्, तत्र सत्यम्, यत्र सत्यम् और सर्वत्र सत्यम् है।

तथ्य सार्वकालिक न होकर किसी एक काल विशेष की सीमा में आबद्ध होता है। वह काल से घिरा होता है। इसलिए काल उसे खा जाता है। तथ्य क्षणिक, परिवर्तनशील एवं नश्वर होता है, जैसे—रामनवमी उत्सव, जे.पी. आन्दोलन, शरीर, राजा ययाति का यौवन।

सत्य सार्वकालिक होता है। किसी काल विशेष में आबद्ध नहीं होता।

आदि सत्यम्, युगादि सत्यम्, भवति सत्यम्, भविष्यति सत्यम्।

सत्य सब कालों में, काल के तीनों विभागों भूत, वर्तमान, भविष्यत् में सदा एकरस बना रहता है। इसलिए काल उसे खा नहीं सकता। इसी कारण उसे अकाल भी कहते हैं। सत् श्री अकाल का भी यही अर्थ है।

शरीर नित्य परिवर्तनशील है। शुक्र के कीड़े से लेकर श्मशान की धूलि तक। पर उसमें अनुस्यूत मैं तत्त्व प्रारम्भ से अन्त तक एकरस बना रहता है।

तथ्य एकरूप या कुछ रूप होता है यानी वह दूसरी वस्तु या रूप से कट जाता है।

सत्य सर्वरूप होता है। वही सभी में अनुस्यूत होता है। अत: वह किसी दूसरे रूप से कटता नहीं। इसलिए उपनिषदों में एक को जानने से सबको जानने की प्रतिज्ञा है।

तथ्य सार्वजनीन न होकर एकजनीन अर्थात् किसी व्यक्तिविशेष या कुछ व्यक्तिविशेष या कुछ वस्तुओं या घटनाओं से सम्बन्धित यानी सीमित होता है जैसे सुशीलजी का विवाह, इन्दिराजी की पराजय, जनता पार्टी की विजय आदि।

सत्य सार्वजनीन होता है। सूर्य का प्रकाश बिना किसी भेदभाव के सबको ज्योति देता है। सत्य पर एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं है।

अत: तत्त्व वही है, जो सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वरूप एवं सार्वजनीन हो। विचार करने पर वह चेतन आत्मा या ब्रह्म ही ठहरता है।

विज्ञान मात्र तथ्यों का अध्ययन करता है सत्य का नहीं। तथ्य सत्य की अपेक्षा कुछ स्थूल होने के कारण वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में, उसकी परखनली में, उसके यंत्रों में, उसके मापन और तौलन में कुछ मात्रा में आ सकता है। किन्तु सत्य वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में, उसकी परखनली, उसके यंत्रों और मापन-तोलन के उपकरणों की पकड़ में न आकर स्वयं परखने वाले और जांचने वाले वैज्ञानिक के भीतर उस चेतना के रूप में है जो उसे आगे तथा और आगे, ऊंचे तथा और ऊंचे अनुसंधान की प्रेरणा देता रहता है। तथ्य तो वैज्ञानिक की प्रयोगशाला की वस्तु है। किन्तु, सत्य तो प्रयोग करने वाले की मूल चेतना है। जो वैज्ञानिक के भीतर है। तथ्य यंत्रों में है, किन्तु सत्य तो यंत्री में है। वैज्ञानिक तथ्यों से खेल करता है। किन्तु सत्य वैज्ञानिक की इस सारी अनुसंधान लीला को शक्ति प्रदान करता है। वैज्ञानिक तथ्यों को नचा रहा है। किन्तु सत्य वैज्ञानिकों को नचा रहा है। वैज्ञानिक के लिए जिस प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएं, धातु और अधातु उसके खेल खिलौने के समान है। उसी प्रकार परम सत्य (चेतन सत्ता) के लिए पाइथोगोरस, आर्कीमिडिज, न्यूटन, आइंस्टीन, श्रोडिंजर, ओपनहाइमर आदि कठपुतलियों के समान हैं। जो चेतना के प्रकाश से बड़े-बड़े अनुसंधान करते हैं और चेतना के विलग हो जाने पर धूल में मिल जाते हैं। प्रयोगशाला में तथ्य स्वयं कुछ भी रहस्य नहीं बतलाते। उन पर प्रयोग करके, जांच-पड़ताल करके अनुसंधान करना पड़ता है। किन्तु मापन-तोलन एवं परीक्षण के यंत्र बिना वैज्ञानिक अपने आप कुछ भी अनुसंधान नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिक भी बिना चेतन सत्ता के सहयोग के (सुप्त अथवा मृत) कुछ भी अनुसंधान नहीं कर सकता। अतः चेतन सत्ता ही सच्चा वैज्ञानिक है जिसकी कृपा से सब वैज्ञानिक अनुसंधान सम्भव होते हैं। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण उसे तथ्य तो दिखलाई देते हैं, किन्तु तथ्यों को दिखलाने वाला, तथ्यों के सम्बन्ध समझाने वाला, तथ्यों का विश्लेषण-संश्लेषण करने वाला, तथ्यों का अनुसंधान कर विज्ञान का भण्डार भरने वाला सत्य नहीं दिखाई देता।

पराविद्या-अपराविद्या—भारतीय दर्शन ने तथ्यों से परे, उस परम सत्य की खोज के लिए धन, जन, यौवन, राजवैभव, परिवार, ऐश्वर्य एवं सर्वस्व को न्योछावर करने की महान् साधना की है। जगत् के तथ्यों के ज्ञान को अपराविद्या कहा गया है और स्वयं ज्ञाता के ज्ञान को पराविद्या कहा गया है। महर्षि रमण का कथन है कि जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान है। स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती का सहज सरल उपदेश है—**Eat a little, drink a little, sleep a little, think a little, serve a little, meditate a little, enquire who am I and be free, know the knower, see the seer, perceive the perciever and be free.**

आधुनिक विज्ञान के भौतिक तत्त्वों का वर्गीकरण—प्रारम्भ में विज्ञान ने भौतिक वस्तुओं को सत्य मान लिया। विज्ञान ने पदार्थ की परिभाषा की—जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है उन्हें पदार्थ कहते हैं। धीरे-धीरे वैज्ञानिकों ने खोजा कि जो पदार्थ जैसा दिखाई देता है मूल रूप में वैसा नहीं है। प्रयोगशाला में उनका विश्लेषण करने पर उनमें दो या अधिक वस्तुओं का मिश्रण पाया गया। जिन वस्तुओं का आगे विश्लेषण प्रयोगशाला में सम्भव नहीं हो सका उसे मौलिक वस्तु, बुनियादी वस्तु Elementry substance या element कहा गया है। जैसे सोने के आभूषण को तपाने, गलाने या तेजाब में डालने से उसमें मिश्रित अन्य धातुएं जल जाती हैं, घुल जाती हैं या काली पड़ जाती हैं। किन्तु सोना सोना ही रहता है। उसका और आगे विश्लेषण सम्भव नहीं होता। इसलिए इस सरल मौलिक वस्तु सोना को एक Element मान लिया गया। इस प्रकार चांदी को, तांबा को, लोहा को Element माना गया। इन आधारभूत भौतिक वस्तुओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया धातु और अधातु (Metals and Non metals)। शेष सब धातुएं ठोस हैं, केवल पारा द्रव है। पिघलने पर ठोस धातुएं द्रव बन जाती हैं। किन्तु अभी तक कोई धातु गैस के रूप में उपलब्ध नहीं हुई है।

अधातुओं में तीन प्रकार की वस्तुएं हैं—ठोस, द्रव और गैस। गंधक, कार्बन, मैंगनीज आदि ठोस अधातु हैं। अमोनिया द्रव (Liquid) अधातु है तथा हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, हीलियम आदि गैसें अधातु हैं।

धातु शब्द का मूलार्थ—भारतीय दर्शन में धातु शब्द का अर्थ भिन्न है। धातु का अर्थ है धारण करने वाला। कुछ दार्शनिकों ने शरीर को धारण करने में सप्त धातु और कुछ ने अष्ट धातु माने—रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, त्वचा, चर्म और वीर्य। पश्चिमी विज्ञान के धातु भारतीय दर्शन की धातु से भिन्न हैं। भारतीय कोश में भी मूर्तियों के धारण करने के कारण सोना, चांदी आदि के आभूषणों को धातु कहा गया है। किन्तु भारत में धातु का अर्थ जितना व्यापक है उतना पश्चिम के Metal शब्द का नहीं। जिस प्रकार मानव शरीर अष्ट धातु का बना हुआ है, उसी प्रकार देवताओं की मूर्तियां भी अष्ट धातु की बनायी जाती थी जिसमें लाल रंग का तांबा, वीर्य के श्वेत रंग की चांदी, त्वचा के रंग का सोना आदि-आदि आठ धातुएं मिलाकर बनाई गई मूर्ति बड़ी शुभ एवं शक्तिशाली मानी जाती थी।

Element सरल वस्तु तथा Compound मिश्रण—पश्चिम में रसायन विज्ञान ने भिन्न-भिन्न रसायन बनाने के लिए वस्तुओं की खोज की। जो रसायन एक से अधिक वस्तुओं के मिश्रण से बने उसे मिश्र या मिश्रण compound कहा जाने लगा। मिश्रण के विश्लेषण से जो सरल वस्तु या रसायन बच जाती है उसे simple element सरल वस्तु, बुनियादी वस्तु कहा जाने लगा।

अतः पश्चिमी विज्ञान का उद्देश्य रसायनों के मिश्रण के विश्लेषण का ही था। प्रकृति की अन्तिम व्याख्या का नहीं था। विज्ञान की ही दूसरी शाखा भौतिकी में इन पदार्थ और ऊर्जा का अध्ययन किया जाता है। पदार्थ चाहे element हो या compound और ऊर्जा चाहे पृथ्वी से प्राप्त हो या जल से या अग्नि से, वायु से या ब्रह्माण्ड की किसी अन्य शक्ति से। भौतिकी पंच महाभूतों के प्रयोग और सदुपयोग में अधिक रुचि लेती है। जीव विज्ञान में भी रसायन के elements का विशेष महत्त्व नहीं है। नक्षत्र विज्ञान, गणित विज्ञान, भूगोल विज्ञान में भी element की विशेष चर्चा ही नहीं है। औषधि विज्ञान में इसकी मामूली चर्चा है किन्तु महत्त्व औषधि का अधिक है element का कम। कोई भी element शुद्ध धातु या अधातु रूप में औषधि में काम नहीं आता। औषधियां कई elements के मिश्रण से बनती हैं।

Element का अध्ययन मुख्य रूप से रसायन विज्ञान का ही विषय है—elements का अध्ययन मुख्य रूप से रसायन शास्त्र के लिए ही उपयोगी है। उसमें भी प्रारम्भ में 30-32 की सूचि बनाई गई, धीरे-धीरे 50-52 तक। आजकल यह 92-94 या इससे भी अधिक की हो गई। कभी हीलियम नाम की गैस का वैज्ञानिकों को पता ही नहीं था। इसी प्रकार यूरेनियम, रेडियम आदि के नाम भी पिछले कुछ वर्षों में ज्ञात हुए हैं। रसायन विज्ञान की elements की सूचि नयी-नयी खोजों के साथ और भी बढ़ती जाएगी। क्योंकि सृष्टि के रहस्यों का क्षेत्र काफी बड़ा है और मूल वस्तुओं की कोई कमी भी नहीं है।

भारतीय दर्शन में प्रकृति के तत्त्वों का विश्लेषण पिण्ड और ब्रह्माण्ड की व्याख्या के लिए—रसायन विज्ञान की elements की सूचि की तुलना में भारतीय दर्शन का प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण किसी और उद्देश्य से है। यह उद्देश्य है पिण्ड और ब्रह्माण्ड की व्याख्या, न कि किसी रसायन के निर्माण या विश्लेषण की आवश्यकता। यहां हमारा उद्देश्य सच्चे अर्थ में तात्त्विक है न कि मात्र व्यावहारिक। पश्चिमी विज्ञान प्रकृति के एक-एक अंग का अलग-अलग अध्ययन कर अलग-अलग विज्ञान की शाखाएं रच लेता है। किन्तु समग्र प्रकृति की न चर्चा करता है और न व्याख्या। विज्ञान प्रकृति के कैसे (How) का उत्तर देने का प्रयास करता है। किन्तु प्रकृति के क्यों अर्थात् Why का कोई उत्तर न देता है न देने का प्रयास करता है और न ही दे सकता है।

पश्चिमी विज्ञान में प्रकृति का खंडशः अध्ययन, भारतीय दर्शन में प्रकृति का समग्र अध्ययन—प्रकृति के खण्डों के अध्ययन से समग्र प्रकृति का चित्र सामने नहीं आता। जैसे कि पृथ्वी के खण्डों के अध्ययन से पृथ्वी कहीं चपटी दिखलाई देती है। कहीं पर्वत हैं। कहीं गहरे खड्डे हैं। कहीं समुद्र है। किन्तु,

अन्तरिक्ष में रॉकेट से चित्र लेने पर सारी पृथ्वी एक सुन्दर गोले के रूप में दिखलाई पड़ती है। हाथी के अंगों को छूकर अनुमान लगाने वाले 6 अंधे जिस प्रकार हाथी की सूंड, कान, जंघा, पेट, पूंछ आदि को अपने-अपने अनुमान से अजगर, पंखा, स्तम्भ, दीवार, रस्सी आदि मानते रहे हैं। उसी प्रकार समस्त प्रकृति को दर्शन की समग्र दृष्टि से देखे बिना उसके अंगों के आंशिक अध्ययन से विज्ञान की शाखाओं की रचना निश्चय ही त्रुटिपूर्ण रह जाती है।

विज्ञान द्वारा प्रकृति के जड़ रूप का अध्ययन तथा भारतीय दर्शन द्वारा उसके मूल में छिपे चेतन तत्त्व की खोज—विज्ञान प्रकृति के प्रकृत जड़रूप से ही संतुष्ट रहता है। उसे प्रकृति के मूल में छिपे किसी चेतन तत्त्व की खोज न रुचती है न पचती है। यदि वे चेतन तत्त्व की खोज में रुचि लें तो तथ्यवादी विज्ञान से परे चला जाए और यदि प्रकृति के गर्भ में छिपे हुए किसी चेतन तत्त्व को जान लें और मान लें तो उनका भौतिकवाद का सारा भवन ही धराशायी हो जाएगा।

परा और अपरा प्रकृति—इसलिए वैज्ञानिक अपरा प्रकृति के किसी एक अंश का अध्ययन करके ही संतुष्ट रहता है और विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं की अलग दुकान बिना किसी एकसूत्रीकरण के चलती रहती है। अपरा का समग्र रूप भी उनके सामने आता ही नहीं और अपरा से परे परा प्रकृति की उनको कल्पना भी नहीं जो कि परमेश्वरीय शक्ति, भगवती शक्ति, अदिति माता, महालक्ष्मी, महादुर्गा, महासरस्वती, गायत्री माता, सावित्री माता, ईश्वर की सर्जन शक्ति आदि भिन्न-भिन्न नामों से मानी जाती है। जिस प्रकार सूर्य से उसका प्रकाश, चन्द्र से चाँदनी, नभ से नीलिमा, अग्नि से तेज अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार परमेश्वर की परा प्रकृति परमेश्वर से विलग करके जानी ही नहीं जा सकती।

प्रकृति परमेश्वर की सर्जन शक्ति—परमेश्वर का जब संकल्प होता है 'एकोऽहं बहु स्याम्' तो उसकी संकल्प शक्ति ही परा प्रकृति है। वह कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की रचना करती है और तीन गुणों और पंच महाभूतों से अनेक वस्तुओं एवं व्यक्तियों को रचकर उनके स्थूल कार्य-व्यापार का नियमन तीन गुणों एवं पंचभूतों को सौंपकर स्वयं उपराम हो छिप जाती है। साधारण व्यक्ति को जड़ जगत् की जड़ वस्तुएं दिखाई देती है, भौतिक वैज्ञानिक इस जड़ जगत् का नियमन करने वाली अपरा प्रकृति के एक-एक अंश का अध्ययन कर अपने-अपने दृष्टिकोण से विज्ञान की शाखाएं रच लेता है। समग्र अपरा प्रकृति का अध्ययन भी वह नहीं कर पाता। समग्र अपरा प्रकृति के अध्ययन के लिए सांख्य और वैशेषिक दर्शन की शरण में जाना होगा। विज्ञान तथ्यों को प्रयोगशाला में लाकर परखनली में परीक्षण करके अपना निष्कर्ष निकालता है। सारी प्रयोगशाला तो इस विशाल

प्रकृति के छोटे-छोटे खण्डों में है। यदि समग्र प्रकृति का ही अध्ययन करना हो तो उसके लिए वैज्ञानिक प्रकृति से अधिक बड़ी प्रयोगशाला कहां से लाएगा? इसका अध्ययन तो शुद्ध चिन्तन से ही हो सकता है, जो दर्शन का मार्ग है।

प्रकृति में नैतिक उद्देश्य—जब विज्ञान प्रकृति में कोई आध्यात्मिक मूल को नहीं मानता तब प्रकृति में नैतिक उद्देश्य को वह कैसे मान सकता है। नैतिकता आध्यात्मिकता की ही सीढ़ी है। प्रकृति में एक नैतिक उद्देश्य का भाव यह है कि प्रकृति मात्र जड़, अंध-शक्ति नहीं है जो बिना किसी नैतिक उद्देश्य के और बिना किसी सर्वोच्च भलाई का विचार किये ऊटपटांग व मनमानी उथल पुथल मचाती रहती है। वरन् उस पर विश्व की नियामक किसी चेतन सत्ता का शासन है। और वह जीवों की भलाई के लिए और उनके विकास एवं शोधन के लिए भले को भला और बुरे को बुरा फल देते हुए अपनी लीला कर रही है।

(क) बच्चे के जन्म से पहले माता के स्तनों में जो दूध उतार देती है और बच्चे के दांत निकल आने पर माता के स्तनों की धारा को सुखा देती है।

(ख) जो सज्जनों की बड़े विचित्र ढंग से रक्षा करती है और दुष्टों को बड़े अनोखे ढंग से दण्ड दे देती है। वह प्रकृति मात्र जड़, अंध-शक्ति नहीं है वरन् नैतिक शासनकर्त्री, कर्मफलदात्री शक्ति है।

(ग) महाभारत के महासमर में जहां 18 अक्षौहिणी सेना धरती में समा गई। हाथी, घोड़े, रथों की भाग-दौड़ से, सैनिकों की मारधाड़ से, लोथों के अम्बार से और रक्त की कीचड़ भरी नदी से सारा कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र, संकट क्षेत्र बन गया था। वहां एक टिटिहरी ने अण्डे दिये थे और दौड़ते हुए हाथियों के पांव के नीचे मेरे अण्डे दब न जाएं इसके लिए प्रभु से मूक प्रार्थना की थी। वहीं पर एक वेग से भागते हुए हाथी के गले का बड़ा घण्टा गिर गया जो अण्डों पर न गिरकर अण्डों को चारों ओर से सुरक्षित रखने के लिए कवच बन गया और संसार का सबसे बड़ा युद्ध समाप्त होने के पश्चात् रक्तभरी लोथों के नीचे से घण्टे को उठाने पर अण्डों से प्रकटे टिटिहरी के बच्चे सुरक्षित व जीवित बच गये।

(घ) एक व्याध ने एक टिटिहरी को मारने हेतु बाण साधा। उधर एक बाज भी उस छोटे पक्षी को दबोचने के लिए झपट्टा मार रहा था। यदि टिटिहरी उड़े तो बाज की पकड़ में आ जाए। यदि वृक्ष के पत्तों में वहीं बैठी रहे तो व्याध के तीर से मर जाए। ऐसी अवस्था में पक्षी ने प्रभु से विनती की। अचानक जंगल से एक सर्प निकला। उसने व्याध को डस लिया। व्याध का निशाना चूक गया तथा तीर बाज को लग गया। नन्हे पक्षी को जो प्रकृति बचा रही है क्या वह जड़ अन्ध-शक्ति ही है?

(ङ) मेरे मित्र श्री हिंगोरानी कराची में इंजीनियर थे। बहुत वर्षों के पश्चात् एक बार शिमला में संन्यासी रूप में एक व्यक्ति को देखकर मुझे लगा कि कहीं यह हिंगोरानी तो नहीं है। कुछ क्षण ध्यान से देखने पर दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। संन्यास की कहानी पूछने पर उन्होंने जो बताया वह प्रकृति के नैतिक उद्देश्य का ज्वलंत प्रमाण है। विभाजन से पूर्व कराची से बम्बई एक बहुत तेज गाड़ी चलती थी जिसे कराची बम्बई मेल कहते थे। एक बार वे उसमें यात्रा कर रहे थे। प्रथम श्रेणी के डिब्बे में उनके साथ एक धनी सेठ अपनी पत्नी एवं नन्हे बच्चे के साथ बैठा था। गाड़ी जब पूरे वेग में थी और आगे 50-60 मील तक कोई स्टेशन नहीं था। अचानक डिब्बे के शौचालय वाले कोष्ठ से एक लम्बे-चौड़े शरीर का पठान निकला जिसने पिस्तौल लटका रखी थी और दोनों हाथों में छुरा लिए हुए था। उसने तुरन्त सेठ की पत्नी को छुरा दिखाकर गहनों का बक्सा छीनकर गाड़ी की खिड़की से बाहर पटक दिया। दूसरे क्षण सेठानी की गोद से दुधमुंहा बच्चा छीनकर उसके गले की सोने की कंठी के लोभ में उसे भी खिड़की से बाहर पटक दिया। तीसरे क्षण वह स्वयं उछलकर तेज दौड़ती गाड़ी से छलांग लगाकर निकल गया। यह तीनों कार्य तीन क्षणों में इतनी जल्दी में हुए कि इसके पहले कि श्री हिंगोरानी गाड़ी की जंजीर खींचकर उसे रोक सकें पठान उछलकर भाग भी गया। जंजीर खींचकर गाड़ी रुकते-रुकते कई मील आगे निकल चुकी थी। सेठ-सेठानी मानसिक आघात से बेहोश पड़े थे। बीच-बीच में होश आने पर सेठानी भयंकर चीत्कार करती थी। गाड़ी पीछे ले जाने पर सबसे प्रथम वह स्थल आया जहां पठान छलांग लगाकर चलती गाड़ी से कूदा था। किन्तु प्रकृति का अद्भुत विधान देखा। पठान छलांग लगाते ही सामने एक सिगनल के खम्भे से टकराकर चूर-चूर हो खून से लथपथ मृत पड़ा था। थोड़ा और पीछे जाने पर आभूषण का बक्सा मिला जो पिचक तो गया था, किन्तु टूटा नहीं था। गाड़ी को बार-बार आगे-पीछे ले जाने पर भी बच्चे का अता-पता नहीं मिला। माता की चीत्कार, पिता के आघात और अन्य यात्रियों की चिन्ता से उस काल-रात्रि में जंगल का दृश्य और भी भयावना बन रहा था। अन्त में जब सबने मान लिया कि जंगल में बच्चे को कोई पशु उठाकर ले गया होगा और अब विवशतावशात् गाड़ी को आगे बढ़ाना ही होगा। तब गाड़ी चलने से पूर्व हिंगोरानी रेलवे लाइन के एक ओर लघुशंका करने के लिए बैठा। उसे यह अनुभव हुआ कि निकट में कुछ दूरी पर 'कोई जीव साँस ले रहा है। उसने गाड़ी से टार्च निकालकर उस दिशा में बीस-पचीस कदम जाने पर एक अद्भुत चामत्कारिक दृश्य देखा। मां ने बच्चे के एक छोटे से कपड़े की लंगोट लगा रखी थी, जिसको ऊपर एक सेफ्टीपिन से टांका हुआ था। बच्चे की उस लंगोट का पिन बाहर फेंकने पर रेल लाइन के पास वाली

एक झाड़ी के कांटे में अटक गया था जिससे वह लंगोटी एक झूले की तरह बन गयी थी और उस झूले में झूलता हुआ बालक अपना अंगूठा चूस रहा था। उस नन्हे दुधमुंहे शिशु को एक साधारण खरोंच तक भी नहीं लगी थी। उस शिशु के इस बालमुकुन्द रूप में दर्शन कर हिंगोरानी की जीवनधारा ही बदल गई। उसने निश्चय किया कि जिस परमेश्वर की परमेश्वरी शक्ति सृष्टि के कण-कण पर शासन कर रही है मैं उसी की खोज के लिए यह जीवन उत्सर्ग कर दूंगा।

प्रकृति के नैतिक उद्देश्य का परिचय जीवन के पग-पग पर मिलता है और संसार के इतिहास में ऐसे अनन्त उदाहरण हैं और महापुरुषों का जीवन इसका अकाट्य साक्ष्य है।

सृष्टिक्रम ऊर्ध्व से अधः—सृष्टि रचना के क्रम को तैत्तिरीय उपनिषद् में इस प्रकार बताया गया है—'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।' उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियां, औषधियों (वनस्पति) से अन्न, अन्न से पुरुष। भारतीय चिन्तन धारा ऊर्ध्व से अधः की तरफ गति करती जाती है। ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में ऊर्ध्व का अर्थ केन्द्र है, अधः का अर्थ परिधि है। ऊर्ध्व ब्रह्म है और अधः प्रकृति है।

केन्द्र और परिधि, परिधि में तीन गुण है—सत्त्व, रज और तम प्रकृति रूपी परिधि के तीन रंग के घेरे हैं। केन्द्र की ओर का भीतर वाला वृत्त श्वेत-शुभ्र रंग का है। वह सत्त्वगुण का चक्र है। उसके बाहर वाला वृत्त लाल रंग का है। वह रजोगुण के कर्म—संघर्ष, भाग-दौड़ का वृत्त है। सबसे बाहर वाला चक्र काले रंग का है। वह आलस्य, निद्रा, प्रमाद (तमोगुण) का चक्र है। केन्द्र और श्वेत दायरे के बीच में परा प्रकृति का प्रकाश है। सृष्टि सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ती जाती है। ब्रह्म सूक्ष्मतम होने से अलक्ष्य एवं अगोचर है। वह बिन्दु रूप है जो अपने केन्द्र पर सारी प्रकृति को घुमा रहा है। बिन्दु की लम्बाई-चौड़ाई, मोटाई कुछ नहीं होती। किन्तु उसका अस्तित्व अकाट्य है क्योंकि उसके बिना न कोई रेखा बन सकती, न परिधि और न आकार ही। वह निराकार होते हुए भी सब आकारों का आदिकारण है। ब्रह्म सबसे सूक्ष्मतम है। परा प्रकृति उसी का प्रकाश है जो अपने प्रभाव से पहचानी जाती है। सूर्य के प्रकाश से ही सूर्य का निश्चय होता है। परा प्रकृति का ज्ञान सूक्ष्म बुद्धि तथा आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा होता है। त्रिगुणमयी अपरा प्रकृति का ज्ञान बुद्धि द्वारा होता है। तीन गुणों का अनुभव मन द्वारा होता है और तीनों गुणों से पंच तन्मात्रायें प्रकट होती हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। इनका ज्ञान मन द्वारा ही होता है और इनकी अनुभूति इन्द्रियों द्वारा होती है। इन्हीं पांच

तन्मात्राओं से पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि स्थूल रूप में प्रकट होते हैं।

पंच तत्त्वों का प्रपंच—पंच महाभूत ब्रह्माण्ड में भी व्याप्त है और पिण्ड में भी हैं। इनके पंचीकरण से ही विश्व ब्रह्माण्ड बना है। इसलिए जितना कुछ दृश्य जगत् है उसे पंचभूतों के पंचीकरण का खेल होने के कारण प्रपंच कहते हैं। भौतिक विज्ञान में उनके Element तो अलग-अलग प्राप्त होने वाले सरल पदार्थ है, किन्तु भारतीय दर्शन में पंच महाभूत जिनसे सारी सृष्टि बनी हुई है, एक-दूसरे से मिले हुए समवाय के रूप में ही मिलते हैं। बिना जल के पृथ्वी, बिना अग्नि के जल, बिना वायु के अग्नि और बिना आकाश के वायु कभी नहीं मिलते। अत: पांचों तत्त्व मिले-जुले ही मिलते हैं।

पश्चिम का विकासवाद—भारतीय चिन्तनधारा में हम ब्रह्म से जीव तक के सृष्टि विस्तार को ऊर्ध्व से अध: की ओर गति के रूप में समझते हैं। पश्चिमी विज्ञान में अध: से ऊर्ध्व की ओर विकास माना जाता है। प्रश्न उठता है कि यदि प्रकृति में विकास चल रहा है तो विकास का स्वरूप, विकास का प्रतिरूप Model या मानक (Standard) और विकास की प्रेरक शक्ति और विकास का चरम लक्ष्य क्या है? विकास का दूसरा अर्थ है प्रगति। जिसका शाब्दिक अर्थ है—प्र+गति अर्थात् लक्ष्य की ओर गति। जो गति लक्ष्य के निकट ले जाए उसे ही प्रगति कहा जा सकता है। अन्य किसी को नहीं। लक्ष्य के विपरीत गति को पुच्छ गति, दुर्गति, क्षुद्र गति, अवगति, अपगति, विगति, चक्रगति, कुष्ठ गति, भ्रष्ट गति, नष्ट गति कहा जा सकता है, प्रगति कभी नहीं। अंग्रेजी का Progress शब्द भी प्रगति से बना है तथा समान अर्थ वाला है। Pro का अर्थ प्र (अर्थात् आगे) तथा Gress का अर्थ गति है। लक्ष्य की ओर गति होने पर ही Progress नाम सार्थक होगा। अन्यथा Regress अवनति या Digress चक्र गति। यदि एक मीनार या शिखर निर्माण का उद्देश्य हो तो ज्यों-ज्यों निर्माण कार्य ऊपर की ओर होता जाएगा त्यों-त्यों प्रगति मानी जाएगी और यदि लक्ष्य कुआं खोदने का हो तो जितनी-जितनी खुदाई नीचे की ओर होती जायेगी उतनी कार्य में प्रगति मानी जाएगी। इन दोनों प्रकार के कार्यों में धरती के ऊपर निर्माण और धरती के नीचे खुदाई दोनों विपरीत दिशा में हैं। किन्तु दोनों अपने-अपने लक्ष्य के अनुकूल होने पर प्रगति ही गिनी जाएगी। यदि शिखर निर्माण का लक्ष्य हो और धरती के ऊपर निर्माण की अपेक्षा धरती के नीचे खुदाई करते जाएं तो यह विपरीत गति या अवनति होगी। अत: सिद्ध हुआ प्रगति या विकास लक्ष्यसापेक्ष गति है। बिना लक्ष्यनिर्धारण के किसी भी गति को प्रगति नहीं कहा जा सकता। यात्रा किसी विशेष लक्ष्य को सामने रखकर की जाती है और आवारागर्दी निरुद्देश्य होती है।

यदि डार्विन तथा पश्चिमी विज्ञान प्रकृति में अनिवार्य विकासवाद को मानता है, तो प्रश्न उठता है इस विकास या प्रगति का लक्ष्य या उद्देश्य क्या है? यदि प्रकृति जड़ और अंधी है और गति सोद्देश्य नहीं है तब विकास का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यदि विकास है तब प्रकृति की सारी गति, क्रियाकलाप का कोई उद्देश्य मानना पड़ेगा—किसी भी यात्रा या गति से पहले लक्ष्य या उद्देश्य पूर्वनिश्चित होना चाहिए। यदि प्रकृति में जड़ पदार्थ तत्त्व (धातु-अधातु) आदि ही अन्तिम सत्य हैं, तो अन्तिम लक्ष्य या उद्देश्य किसने निश्चित किया। जड़ वस्तु तो स्वयं धीरे-धीरे गति कर रही है, उसकी लक्ष्य की ओर गति को भी प्रगति या विकास कहते हैं। लक्ष्य से च्युत होने की गति विकास नहीं विनाश है। यदि विकास माना जावे तो जड़ तत्त्व अपनी सारी गति के अन्त में अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुंच पाएगा, किन्तु लक्ष्य का निर्धारण सारी यात्रा के प्रारम्भ होने से पूर्व ही हो जाना चाहिए। अन्यथा प्रगति प्रगति ही नहीं कही जा सकती। रेलगाड़ी की यात्रा प्रारम्भ होने से पहले उसका गन्तव्य स्थान निश्चित होना चाहिए। चन्द्र यात्रा का रॉकेट छोड़ने से पूर्व लक्ष्य चन्द्रमा अस्तित्व में होना चाहिए। रेलगाड़ी या रॉकेट जड़ होने के कारण यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व ही लक्ष्य का निर्माण, निश्चय या निर्धारण नहीं कर सकते। लक्ष्य पूर्वनिश्चित ही होना चाहिए। लक्ष्य गति करने वाले पदार्थ के अतिरिक्त किसी और सत्ता द्वारा निर्धारित होना चाहिए। जो सत्ता गति करने वाली वस्तु उसके प्रारम्भिक रूप, उसकी गति के मार्ग, गति के स्वरूप एवं गति के अन्तिम लक्ष्य तीनों को एक साथ जानता है। अतः विश्वव्यापी चेतन सत्ता के बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य का निर्धारण नहीं हो सकता और लक्ष्य या उद्देश्य के निर्धारण के बिना गति को प्रगति भी नहीं कहा जा सकता।

प्रगति या विकास के लिए मात्र उद्देश्य का निर्धारण ही पर्याप्त नहीं। लक्ष्य के ज्ञान या लक्ष्य की पहचान बिना भी गति दुर्गति बन जाती है। जड़ पदार्थ को कौन बताये कि उसका लक्ष्य किस दिशा में है। दिल्ली से मुम्बई जाने वाली गाड़ी पर भले ही लिख दिया जाए दिल्ली-मुम्बई। किन्तु बिना किसी चेतन चालक के गाड़ी अपने आप मुम्बई पहुंचने वाली नहीं है। रॉकेट स्वयं जड़ होने के कारण न चन्द्रमा को पहचानता है, न शुक्र को और न ही मंगल को। बिना यात्री के यंत्र ठीक गति, अनुकूल गति, लक्ष्य की ओर गति या प्रगति नहीं कर सकता। अतः उद्देश्य की पहचान के लिए जड़ को परिचालित करने वाली चेतन सत्ता की आवश्यकता पड़ती है अथवा जड़ तत्त्वों (अपरा प्रकृति) के पीछे छिपी हुई परा प्रकृति को मानना पड़ता है।

प्रगति या विकास के लिए मात्र उद्देश्य निश्चित होना और उद्देश्य की पहचान ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए उद्देश्य का आकर्षण भी परमावश्यक है। पीछे के

धक्के से आगे बढ़ जाने को अकस्मात् गति कह सकते हैं। किन्तु आकस्मिक गति अंधी होने के कारण एक धक्का आगे और चार धक्के पीछे भी लगा सकती है। अतः इसे प्रगति या विकास नहीं कहा जा सकता। हवा के थपेड़ों से इधर-उधर हिलने वाली घण्टाघर की सूइयों को घड़ी की प्रगति नहीं कहा जा सकता। पीछे के धक्के की अपेक्षा लक्ष्य का आकर्षण जब अपनी ओर खींचता है तभी सच्चे अर्थ में प्रगति कही जा सकती है अन्यथा नहीं। यदि कोई कहे कि मैं इसलिए B.A. की कक्षा में हूं क्योंकि मैंने I.A. पास कर लिया है तो यह कथन इतना अर्थपूर्ण नहीं है जितना यह कि मैं इसलिए B.A. की कक्षा में हूं क्योंकि मैं B.A. पास करना चाहता हूं। I.A. का धक्का खाकर B.A. में आने वाला निरुद्देश्य गति कर रहा है। क्योंकि I.A. पास करने के बाद कई लोग B.A. में प्रवेश नहीं भी लेते हैं तथा दूसरी दिशाओं में चले जाते हैं। इसकी तुलना में जो M.A. करने के उद्देश्य से, M.A. के आकर्षण से B.A. पढ़ रहा है। सोद्देश्य यात्रा ही प्रगति कहलाती है। यदि लक्ष्य भी जड़, गति करने वाला भी जड़ जैसा आधुनिक विज्ञान मानकर चलता है तब जड़ तत्त्व न लक्ष्य को पहचान सकेगा और न जड़ लक्ष्य जड़ तत्त्व को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। तब प्रकृति में विकास सम्भव ही कैसे होगा? उदाहरणार्थ—विज्ञान के तत्त्वों को कार्बन, सल्फर, गंधक, लोहा, ऑक्सीजन आदि को क्या पता कि उन्हें किस दिशा में गति करनी है और उनका अन्तिम गन्तव्य या लक्ष्य क्या है? ये सारी गति तो **'अंधेनैव नीयमाना' यथाऽन्धाः** (अंधा अन्धे को अन्धेरे में रास्ता दिखाने चला) के समान दुर्गति बन जाएगी।

प्रगति या विकास के लिए विकास का मानक या standard पहले से सामने रहना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों कोई वस्तु अपने मानक के निकट पहुंचती जाती है त्यों-त्यों उसमें सुधार या विकास माना जाता है। एक स्वस्थ शरीर का मानक निश्चित होने से रोगी के धीरे-धीरे उस ओर गति करने को प्रगति कहा जाएगा। इसके विपरीत गति अवगति कहलाती है। कोई कलाकार मूर्ति बनाना चाहता है तो सामने Model रखता है। भवन निर्माण के लिए मानचित्र रखकर प्रगति की जा सकती है। घड़ी को ठीक करने के लिए भी मानक घड़ी चाहिए। जिससे मिलान कर घड़ी के समय का मिलान किया जाए और यंत्र भी ठीक किया जाए। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन का मानक माना गया। इसको 24 में विभाजित करके 24 घण्टा माना गया। इसी मानक को आधार मानकर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे घड़ी बनाने में तो प्रगति मानी जाएगी। यदि प्रकृति के तत्त्वों में या जीवों में अपने आप प्रगति हो रही है, विकास हो रहा हो तो उसका मानक क्या है? यह विकास या प्रगति का क्रम यदि तब तक चलने वाला है जब तक सृष्टि है तब तत्त्वों का सबसे बड़ा मानक परम तत्त्व ही हो सकता है और जीवों का परम

मानक परब्रह्म ही हो सकता है। यह मानक पहले से है और सदा रहने वाला है। तभी प्रकृति में प्रगति सम्भव है। अन्यथा कभी नहीं। डार्विन किसी परम मानक को मानता ही नहीं। गति करने वाले तत्त्व, वस्तु या जीव में किसी चेतन प्रेरणा, लक्ष्य की ओर आकर्षण होना मानता ही नहीं। फिर भी कहता है प्रकृति में विकास हो रहा है। फ्रांस के महान् दार्शनिक हेनरी बर्गसां जो गीता भक्त एवं भारतीय दर्शन का प्रशंसक था पूछता है कि बिना मानक के पूर्वनिश्चित हुए प्रगति कैसे हो रही है और किस दिशा में हो रही है? वास्तव में जड़ वस्तु अपने आप बिना चेतन की प्रेरणा के चेतन मानक के आकर्षण के, चेतन मानक के पूर्वनिर्धारण के प्रगति कर ही नहीं सकती।

अतः विकासवाद अशुद्ध एवं तर्कहीन सिद्धान्त है। विकास जड़ द्वारा जड़ में जड़ की ओर नहीं हो सकता। जड़ जीवन की ओर, जीवन नैतिक उद्देश्य की ओर, नैतिकता आध्यात्मिकता की ओर आगे गति करते जाएं तो प्रगति कहा जा सकता है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता बर्गसां के शब्दों में Elan vital (शाश्वत जीवनधारा) है। भारतीय दर्शन के शब्दों में शाश्वत, अमर, नित्य चेतन आत्मा है।

प्रकृति का स्वरूप तथा तत्त्वों का प्रकृति से सम्बन्ध—प्रकृति का अर्थ है प्रथम कृति अथवा आगे की कृति। इसे यूरोपीय भाषाओं में Nature कहा जाता है। सामान्य रूप में लोग प्रकृति का यही अर्थ मानते हैं। जो कुछ दृश्यमान जगत् में है या हो रहा है वह सब प्रकृति है। चन्द्र, सूर्य, तारागण, हवा, पानी, पर्वत, नदी आदि सब प्रकृति के अन्तर्गत गिने जाते हैं। किन्तु प्रकृति के दो अर्थ हैं—बाह्य प्रकृति दृश्यमान जगत् के रूप में दिखाई देती है। कुछ ऐसी वस्तुएं भी हैं जो भौतिक होते हुए भी सहज इन्द्रियगोचर नहीं है। जैसे—वायु, आकाश, अणु, परमाणु आदि। वे इन्द्रियगोचर न होकर सूक्ष्मयंत्र गोचर हैं। कई बार सूक्ष्मयंत्रों की प्रत्यक्ष पकड़ में न आने वाली वस्तुओं के प्रभावों को यंत्रों द्वारा जानकर उनके अस्तित्व के विषय में गणना, कलना, आकलन या अनुमान लगाया जाता है। वास्तव में सब यंत्र इन्द्रियों की सहायता के लिए बनाये गए हैं। इसलिए जहां तक इन्द्रियों या यंत्रों की पहुंच है वहां तक सब माया का कारोबार है।

'गो गोचर जंहलग जगमाही, माया कृत परमारथ नाही।।'

प्रकृति का दूसरा अर्थ अन्त:प्रकृति है। किसी से पूछने पर कि प्रकृति कैसी है वह बाहर की गर्मी, सर्दी, वर्षा, सौन्दर्य, शांत दृश्य का वर्णन करने लगता है। हम उसे कहते हैं—नहीं, ये तो प्रकृति बाहर की है, आपकी अपनी प्रकृति कैसी है? यह सम्भव है कि बाह्य प्रकृति में शीतलता होने पर भी व्यक्ति की अन्त:प्रकृति में जलन, कुढ़न या अशांति हो और बाहर जलती हुई लू में भी उसका मन शांत हो। इसलिए अन्त:प्रकृति बाह्य प्रकृति की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं अधिक महत्त्वपूर्ण

है। अंग्रेजी भाषा में भी व्यक्ति की Inner Nature जगत् की Outer Nature की अपेक्षा अधिक महत्त्व की मानी जाती है। ब्रह्माण्ड की प्रकृति की अपेक्षा पिण्ड अधिक आधारभूत है। किसी भी कृति के बाहर के जगत् में प्रकृति के रूप में प्रकट होने से पहले वह उसके अन्तर में, उसके मन में, कल्पना में, बुद्धि में, संकल्प में प्रथम कृति के रूप में प्रकट होती है। इस अन्त:प्रकृति को अन्दर की इन्द्रियों (अन्त:करण चतुष्टय) मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार द्वारा जाना जाता है। इस प्रकार पिण्ड और ब्रह्माण्ड में जो कुछ घट रहा है वह अन्तर इन्द्रियों द्वारा या बाहर की इन्द्रियों द्वारा या सूक्ष्मयंत्रों द्वारा जानने योग्य है। पश्चिम के विचारकों ने मन और मन के संकल्प-विकल्प, विकार, विचार आदि को अभौतिक कहकर जड़ पदार्थ से भिन्न बताया है। किन्तु भारतीय दर्शन ने मन और मन के समस्त क्रियाकलाप को अन्त:प्रकृति का अंग होने के कारण अन्दर की इन्द्रियों द्वारा जानने योग्य होने से भौतिक ही माना। पश्चिम के बड़े-बड़े दार्शनिक भी सृष्टि को Mind and Matter में विभाजित कर संतोष मान लेते हैं। किन्तु भारतीय दर्शन मन से परे किसी इन्द्रियातीत अमर तत्त्व को खोजता है।

पश्चिम के विज्ञान ने प्रकृति को एक रहस्यमय जादू की छड़ी बना रखा है। किसी भी सिद्धान्त का अन्तिम कारण या अन्तिम तार्किक व्याख्या न कर सकने पर वे प्रकृति के जादू भरे शब्द से समस्त तर्क को शांत करने की चेष्टा करते हैं। प्रत्येक जीव मरता है यह विज्ञान मानता है। वह किस प्रकार मरता है इसकी भी खोज करता है। कौन से रोग मारक हैं, किन औषधियों से रोग का निवारण हो सकता है। किन्तु विज्ञान न यह जानता है न जानने की चेष्टा करता है कि प्रत्येक जीव मरता ही क्यों है? उसका लगा-बंधा उत्तर है यह प्रकृति का नियम है। जब किसी तथ्य की व्याख्या नहीं हो सकती है तब विज्ञान प्रकृति का रहस्यमय नाम लेकर अध्याय को बंद कर देता है। पश्चिमी विज्ञान ने जिन तत्त्वों की खोज की है वे तत्त्व संख्या में उतने ही हैं या उससे अधिक हैं इस विषय में विज्ञान निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। भिन्न-भिन्न तत्त्वों में जो गुण या विशेषताएं हैं, वे क्यों हैं? इसके उत्तर में भी विज्ञान प्रकृति का रहस्यमय शब्द बोलकर चुप हो जाता है। ऑक्सीजन गैस जीवों के श्वसन के लिए क्यों उपयोगी है, वह वस्तुओं के जलने में क्यों सहायक है तथा नाइट्रोजन का गुण इसके विपरीत क्यों है? इस विषय में विज्ञान कोई समाधानकारक उत्तर न देकर प्रकृति का रहस्यमय पर्दा गिरा कर कहता है कि ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन की प्रकृति ही ऐसी है। विज्ञान प्रकृति में एकरूपता के सिद्धान्त को मानता है। जैसे जल सदा नीचे की ओर बहता है, वायु सदा सुखाता है, अग्नि सदा तप्त है, अग्नि की ज्वाला ऊपर उठती है, अम्ल Acid सदा नीले लिटमस को लाल कर देता है।

इस प्रकार प्रकृति में एकरूपता है। किन्तु यह एकरूपता क्यों है, किसके शासन से सब वस्तुएं और तत्त्व अपने-अपने नियम में बंधे हुए चल रहे हैं इसके विषय में विज्ञान मौन है। सारे ब्रह्माण्ड में सारी प्रकृति को कुछ नियमों में बांध कर रखने वाला कोई नियामक है या अन्ध प्रकृति अपने अंधे नियमों से बंधी हुई अंध गति से चल रही है। इस विषय में विज्ञान के पास कोई समाधान नहीं है। यदि प्रकृति प्रथम कृति है तो यह किसी कर्ता की कृति होनी चाहिए, यह कर्ता कौन है? यदि अंत:प्रकृति वह सूक्ष्म बीज है जो अदृश्य रहता है किन्तु वही बाह्य जगत् में बाह्य प्रकृति के रूप में प्रकट होता है तब विज्ञान द्वारा जिस बाह्य प्रकृति का अध्ययन किया जाता है उसके पीछे की बीजरूपा अन्त:प्रकृति कहां है? और विज्ञान उसके प्रति क्यों नैन मूंदे हुए है? प्रत्येक युद्ध पहले मानव के मन में प्रारम्भ होता है वह उसका सूक्ष्म रूप है, बाहर के समरांगण में होने वाला युद्ध तो अन्तर के क्रोध एवं कलह का प्रकट रूप है। विज्ञान के सभी आविष्कार पहले वैज्ञानिकों के अन्तर में स्फुरित हुए। बाद में वे जड़ जगत् में भौतिक वस्तुओं के रूप में प्रकट हुए। आइंस्टीन का सापेक्षतावाद का सिद्धान्त पहले उसके अन्तर में अन्तर्ज्ञान के रूप में संस्फुरित हुआ तथा बाद में उसे वाणी एवं भाषा प्रदान की गई। डॉल्टन की Atomic theory पहले डॉल्टन के मन में अंकुरित हुई बाद में उसे विज्ञान जगत् ने जाना। जैसे बिना वैज्ञानिक के विज्ञान का अस्तित्व ही प्रकट न होता, उसी प्रकार बिना अन्त:प्रकृति के बाह्य प्रकृति का खेल तथा उसमें विज्ञान प्रतिपादित तत्त्वों का नियमबद्ध चलन सम्भव ही नहीं हो सकता। यदि बिना अन्त:प्रकृति के बाह्य प्रकृति का खेल सम्भव ही नहीं है तो प्रश्न उठता है सारे ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुओं का नियमन करने वाली बाह्य प्रकृति के पीछे की अन्त:प्रकृति किसके अन्त: की प्रकृति है या उसे यदि विश्व ब्रह्माण्ड का नियमन करना है तो वह अन्त:प्रकृति किसी विश्वव्यापी अन्तर्चेतना की प्रकृति होनी चाहिए। वह विश्वव्यापी चेतना Universal Mind वैश्वानर या विश्वात्मा ही परम पुरुष है जिसकी अन्त:प्रकृति में सृष्टि लीला हेतु संकल्प उठता है। **'एकोऽहं बहु स्याम्'** अर्थात् मैं एक हूं अनेक हो जाऊं। सर्जना की यह संकल्प शक्ति ही मूल प्रकृति है। अन्त:प्रकृति है। यह प्रथम कृति है और ब्रह्माण्ड में उसका तत्त्वों में खेल या जड़ जगत् में उसकी लीला आगे की कृति है।

आधुनिक विज्ञान की नयी खोजों के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन—अल्बर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा विज्ञान जगत् में एक अभूतपूर्व हड़कम्प मचा दिया। उस मेधावी एवं अलौकिक प्रतिभासम्पन्न वैज्ञानिक ने मात्र 16 वर्ष की अवस्था में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि विज्ञान ने अभी तक जो कुछ खोजा है वह सापेक्ष ज्ञान ही है। निरपेक्ष सत्य का ज्ञान नहीं। सापेक्ष

का भाव यह है कि वह तथ्य या तथ्यों पर आधारित सिद्धान्त किसी दूसरे तथ्य या सिद्धान्त की अपेक्षा करता है। यदि अपेक्षित तथ्य या सिद्धान्त अशुद्ध या त्रुटिपूर्ण निकलता है तो उस पर आधारित सिद्धान्त भी त्रुटिपूर्ण होगा। विज्ञान ने आज तक जो कुछ खोजा है वह किसी तथ्य या सिद्धान्त को ठीक मानकर उस पर आधारित है। यदि आधार स्वयं अशुद्ध है तो आधेय अपने आप अशुद्ध हो जाएगा। विज्ञान में तो आधार आधेय का, सापेक्ष-सापेक्षित का अन्तहीन तारतम्य चल रहा है। इसलिए विज्ञान उस मूल आधार को नहीं जान सकता जो स्वयं सत्तावान है और किसी अन्य पर आधारित नहीं है, किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। निरपेक्ष स्वयं सत्य है।

सामान्य व्यवहार में पति एवं पत्नी का सापेक्ष सम्बन्ध है। बिना एक के दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि कोई कहे कि अमुक व्यक्ति पति है तो प्रश्न उठेगा किसका पति और इसी प्रकार किसी महिला का परिचय देते हुए कहा जाए कि यह पत्नी है तो परिचय अधूरा है। पति शब्द पत्नी की, पत्नी शब्द पति की अपेक्षा रखता है। एक मूर्ख व्यक्ति को किसी ने कहा तुम्हारी पत्नी विधवा हो गई है। वह रोने लगा। लोगों के बहुत समझाने पर भी कि तेरे जीते-जी तुम्हारी पत्नी विधवा कैसे हो सकती है। वह मूर्खतावश बोला, मेरे जिन्दा रहते मेरी माता विधवा हो सकती है, बहन विधवा हो सकती है, भाभी विधवा हो सकती है तो पत्नी क्यों नहीं? इसी प्रकार पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा सभी सापेक्ष सम्बन्ध हैं। वे अन्योन्याश्रित हैं। इसी प्रकार लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई (जो भौतिक वस्तुओं के परिमाण हैं) सभी सापेक्ष हैं। विज्ञान आज तक निरपेक्ष लम्बाई नहीं खोज सका। इसी प्रकार निरपेक्ष मोटाई, ऊंचाई आदि विज्ञान की पकड़ के बाहर हैं। स्वामी रामतीर्थ ने कक्षा में एक रेखा क ख खींची और छात्रों से कहा इस रेखा को बिना मिटाये छोटा कर दो। इस पर सभी विद्यार्थी असमंजस में पड़ गये। स्वामीजी ने रेखा अ ब पहली रेखा से लम्बी बना दी, उससे रेखा क ख अपने आप छोटी हो गई। अतः छोटापन, बड़ापन के सापेक्ष है। इसलिए विज्ञान का सारा मापन सापेक्ष है। हलकापन, भारीपन के सापेक्ष है इसलिए विज्ञान का सारा तोलन सापेक्ष है। धरती पर जिस व्यक्ति का भार दो-ढाई मन होगा वह चन्द्रमा पर भारविहीन होकर आकाश में तैरने लगेगा। इसलिए विज्ञान के Law of gravitation (न्यूटन) specific gravity (आर्कीमिडिज) सभी सापेक्ष रह जाते हैं। इनमें से कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जो सारे विश्व की सब परिस्थितियों में, सब ग्रहों में, सब देश में और सब काल में सत्य सिद्ध हो सके।

आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि गति और स्थिरता तथा न्यूटन के गति सिद्धान्त सभी सापेक्ष हैं। आइंस्टीन उदाहरण देता है कि वह लंदन में एक ट्रेन कार पर यात्रा कर रहा है। ट्रेन में एक होटल का बेयरा हाथ में चाय का ट्रे लेकर घूम रहा है। आइंस्टीन

सोचता है कि वह स्वयं स्थिर है और बेयरा गतिमान है। तनिक विचार करने पर वह अपनी मूर्खता पर हंसता है। क्योंकि पचास मील प्रति घंटे की गति से दौड़ने वाली ट्राम कार में बैठे वह दोनों गतिमान हैं। बेयरे की अपेक्षा आइंस्टीन स्थिर प्रतीत होता है और आइंस्टीन की अपेक्षा बेयरा गतिमान प्रतीत होता है किन्तु ट्रेन की अपेक्षा से दोनों गतिमान हैं और ये गति बेयरा के चलने से भिन्न गति है। लंदन शहर में आकर ट्रेन रुकती है और दूसरी ट्रेन चलने लगती है, आइंस्टीन सोचता है हमारी गाड़ी खड़ी है और दूसरी गाड़ी चल रही है। वह पुनः अपनी मूर्खता पर हंसता है। क्योंकि समूचा लंदन शहर धरती के साथ एक हजार मील प्रति घंटे की गति से घूम रहा है। धरती स्वयं धरती की अपेक्षा स्थिर नजर आती है इसलिए धरती का एक नाम स्थिरा है। पर सूर्य की अपेक्षा से धरती दो गतियां कर रही हैं—एक अपने अक्ष पर चौबीस घंटे की परिक्रमा और दूसरी सूर्य के चारों ओर 365 दिन 5 घण्टे 48 मिनट 45.97 सेकण्ड में वार्षिक गति। इस गतिशीलता के कारण धरती का एक नाम गो है। इसी प्रकार सूर्य भी अन्य तारों या महासूर्यों की अपेक्षा से गतिमान है। गति और स्थिरता सभी सापेक्ष ही हैं। सारा ब्रह्माण्ड ही गतिमान है। किन्तु उस गति की जांच और मापन असम्भव ही है। जब सब कुछ गतिमान हो। मापने वाला स्वयं भी एक छोटे से धूलिकण के समान ब्रह्माण्ड के साथ घूम रहा हो तो गति को कौन जांचे और कैसे मापे? इसलिए निरपेक्ष गति को न मानव जान सकता है और न मानव द्वारा आविष्कृत विज्ञान। आइंस्टीन का मत है कि निरपेक्ष गति और स्थिरता दोनों एक ही हैं। निरपेक्ष दूरी और निरपेक्ष निकटता दोनों एक है। निरपेक्ष सूक्ष्मता और निरपेक्ष विराट्‌रूपता दोनों एक है। पूर्ण में जाकर सभी विपरीत गुण एक हो जाते हैं। जहां तक द्वन्द्व है, द्वैत है, वहां तक बाह्य जगत् है और वहीं तक विज्ञान की कुछ मात्रा में पहुंच सम्भव है। किन्तु जहां द्वैत, द्वन्द्व बचता ही नहीं, उस पूर्ण या अनन्त को विज्ञान नहीं जान सकता। उसके लिए हमें भारतीय ऋषियों की शरण में जाना पड़ेगा। जिन्होंने विज्ञान के भौतिक जगत् से परे विज्ञान के भौतिक मापन, तोलन के यंत्रों को छोड़कर विज्ञान के सापेक्ष तथ्यों एवं सिद्धान्तों का दुराग्रह छोड़कर अपनी अन्तर्चेतना से निरपेक्ष पूर्ण तत्त्व का साक्षात्कार किया। यजुर्वेद के ईशावास्योपनिषद् में गाया है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

अर्थात् वे परमेश्वर अचल एवं (और) मन से अधिक तीव्र गति युक्त हैं, सबके आदि ज्ञानस्वरूप तथा सबको जानने वाले हैं। इन परमेश्वर को; इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सके या जान सके हैं, वे (परब्रह्म पुरुषोत्तम) दूसरे दौड़ने वालों को (स्वयं) स्थिर रहते हुए ही अतिक्रमण कर जाते हैं; उनके होने पर ही और

उन्हीं की सत्ता शक्ति से वायु आदि देवता, जलवर्षा आदि क्रिया सम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात् वे चलते हैं, वे नहीं भी चलते। वे दूर से भी दूर हैं। वे अत्यन्त समीप हैं। वे इस समस्त जगत् के बाहर भी हैं।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कठोपनिषद्—2-20

अर्थात् आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, बड़े से भी बड़ा है। प्राणी के हृदय में वह स्थित है। निष्काम पुरुष विधाता के प्रसाद से आत्मा की महिमा से शोक रहित होकर देखता है।

देश-काल का बंधन—विज्ञान ने जो कुछ खोजा है वह देश काल परिच्छिन्न है। संसार में जो कुछ है वह देश-काल से ढका हुआ और बंधा हुआ है। क्या कोई ऐसी वस्तु या ऐसा तत्त्व भी है जो देश-काल के बंधन से मुक्त है। तर्क प्रमाणित करता है कि बंधन का ज्ञान ही सिद्ध करता है कि बंधन से मुक्त अवस्था अवश्य है। यदि सर्वत्र बंधन ही बंधन है और सब कुछ एवं सब कोई बंधन में ही हो तो बंधन का परिज्ञान ही असम्भव हो जाएगा। जब पग-पग पर हमें देश-काल का बंधन अखरता है तो निश्चय ही हमारे भीतर की कोई सत्ता देश-काल के बंधन को तोड़कर मुक्त होने के लिए तड़पती है। कोई प्राणी जब अपने वश में होता है तो उसे मुक्त माना जाता है और परवशता का दुःख भोगने वाले को बद्ध, पराधीन माना जाता है। भगवान् मनु ने कहा है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम्।।

परवशता ही दुःख है, आत्मवशता ही सुख है। हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं कि देश (स्थान) Space हमारे शारीरिक व्यक्तित्व को सीमित एवं बद्ध कर देता है। हम शरीरधारी रूप में एक ही समय में यत्र-तत्र सर्वत्र नहीं हो सकते। यदि हम कुर्सी पर हैं तो चौकी पर नहीं, चौकी पर हैं तो आसन पर नहीं, आसन पर हैं तो गाड़ी में नहीं, गाड़ी में हैं तो कार्यालय में नहीं, भारत में हैं तो अमेरीका में नहीं, धरती पर हैं तो चन्द्र पर नहीं हैं। इस प्रकार देश हमारे शरीर को सीमाबद्ध कर देता है। जो सीमा बड़ी अप्रिय और अखरने वाली प्रतीत होती है। विशेष रूप से तब जब मनुष्य को एक ही समय में दो दूरस्थ स्थानों पर समान रूप से महत्त्वपूर्ण प्रेम की पुकार या कर्तव्य की पुकार आ जाए तब उसे देश का बंधन सबसे अधिक

दु:खदायी एवं गला घोंटने वाला लगता है। उसके अन्तर की प्रेरणा यही होती है कि काश! दोनों स्थानों पर उड़कर पहुंच पाता। इससे सिद्ध होता है कि मानव की अन्तरात्मा देश के बंधन से समझौता करने को तैयार नहीं है। देश की दीवार तोड़कर सर्वव्यापक होना चाहती है।

इसी प्रकार मानव की अन्तरात्मा काल के बंधन को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं है। जहां देश हमारे शारीरिक व्यक्तित्व को सीमित करता है वहां काल हमारे शारीरिक व्यक्तित्व को खा जाता है। एक काल था जब हम शरीरधारी रूप में नहीं थे। एक काल है जब हम शरीरधारी रूप में हैं। एक काल पुनः होगा जब हम शरीरधारी रूप में नहीं रहेंगे। मृत्यु सभी प्राणियों के लिए निश्चित गति होते हुए भी कोई प्राणी मरना नहीं चाहता। सबके अन्तर्मन की यही कामना है कि हम सदा जीवित रहें अर्थात् हम अमर हो जाएं। मनुष्य देश की दीवारों को तोड़कर तथा काल के दांतों को तोड़कर सर्वव्यापी एवं सार्वकालिक होना चाहता है। मानव के अन्दर की यह कामना ही मोक्ष की इच्छा है।

दिक्-काल एकत्व—जहां अन्य दार्शनिक देश और काल को दो वस्तुएं (पद, term) मानते आए हैं। वहां आइंस्टीन जैसे क्रान्तदर्शी विचारक ने कहा कि देश और काल दो सत्ताएं नहीं है। देश काल मिलकर एक ही सत्ता है। अत: Space and time न कहकर वह space time continun देश-काल अविच्छिन्न धारा कहता है। उसके मत में देश और काल में तत्त्वत: कोई अन्तर नहीं। न्यूटन दिक् एवं काल को निरपेक्ष मानता था। आइंस्टीन से पूर्व मिनकावस्की ने भी दिक्-काल को एक माना था। आइंस्टीन ने इससे बड़ा लाभ उठाया। देश काल में परिवर्तित हो जाता है और काल देश में। देश दो बिन्दुओं के बीच का सम्बन्ध है। जैसे क और ख के बीच छह इंच अन्तर है तो उसे कहा जाएगा छह इंच स्थान (देश) है। इसी प्रकार काल भी दो बिन्दुओं के बीच का सम्बन्ध है। जैसे एक सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक एक दिन, सूर्योदय से सूर्यास्त तक आधा दिन, सूर्योदय से मध्याह्न तक एक-चौथाई दिन, 12 बजे से 6 बजे तक दो बिन्दुओं का अन्तर 6 घंटे। इस प्रकार देश और काल दोनों ही बिन्दुओं के बीच के सम्बन्ध हैं। यदि देश ही न हो तो काल की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि न सूर्य हो, न धरती, न नवग्रह, न धरती की परिक्रमा, न सूर्योदय, न सूर्यास्त, न काल, न काल विभाजन तब वेद के नासदीय सूक्त के समान सृष्टि शून्य होगी। किन्तु ब्रह्म की सत्ता तब भी अक्षुण्ण रहेगी। आइंस्टीन का मत है कि विज्ञान ने जो कुछ खोजा है और जो कुछ खोज सकता है वह देश-काल से सीमित एवं सापेक्ष ही है। देश-कालातीत सत्य को विज्ञान नहीं जान सकता।

4. आयाम देश काल 1. लम्बाई 2. चौड़ाई 3. मोटाई 4. काल— आइंस्टीन ने भौतिक वस्तुओं के चार परिमाण माने हैं देश के तीन आयाम हैं— (क) लम्बाई (ख) चौड़ाई (ग) मोटाई और (काल का एक आयाम है)—काल।

हर व्यक्ति की एक लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई है और एक विशेष काल में अस्तित्व रखता है। आइंस्टीन ने सब वैज्ञानिकों को विस्मित करते हुए सिद्ध किया कि देश-काल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और एक में परिवर्तन से दूसरे में स्वतः परिवर्तन हो जाता है। धरती पर रहने वाले मानवों को एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन मानकर कालगणना करनी पड़ती है, किन्तु तीव्र गति के रॉकेट में बैठकर 24 घंटे में धरती की 17 परिक्रमा करने वाले व्यक्ति को 17 सूर्योदय, 17 सूर्यास्त के दर्शन होंगे। इस प्रकार देश पर विजय पाने पर काल पर विजय पाई जाती है। भारत से अमेरीका जाने वाले विमान में 24 घंटे की यात्रा में एक भी रात्रि नहीं आती तथा अमेरीका से भारत आने वाले विमान में 24 घंटे में दो-दो बार रात्रि आ जाती है। इस प्रकार देश के बदल से काल बदल जाता है। आइंस्टीन के सिद्धान्तानुसार यदि हम super Lux (प्रकाश से अधिक गति वाला रॉकेट) बना लें और उससे किसी तारे पर चले जाएं तो हम धरती के हजारों वर्ष के इतिहास को पुनः देखेंगे। भगवान् कृष्ण के गीतोपदेश को और शिवाजी का राज्यतिलक फिर देख सकेंगे। (यदि कोई वस्तु बहुत तेज चलती है तो उसके सन्दर्भ में घड़ी धीरे-धीरे चलने लगती है और मापदण्ड सिकुड़ जाता है।)

आइंस्टीन ने वैज्ञानिकों की नाप-तौल की प्रणालियों को झटका देते हुए कहा है कि गति के बढ़ने के साथ भार में अन्तर पड़ जाता है। प्रारम्भ में किसी वस्तु के वेग के साथ उसकी शक्ति बढ़ जाती है। किन्तु बहुत तीव्र हो जाने पर उसका भार कम होने लगता है। धीरे-धीरे वह भारहीनता की ओर बढ़ने लगता है। पदार्थ की परिभाषा की गई थी—जो चीजें जगह घेरती, वजन रखती हैं उन्हें पदार्थ कहते हैं। आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि जगह (देश) भी सापेक्ष है। काल के परिवर्तन के साथ देश भी बदल जाता है और भार भी सापेक्ष एवं परिवर्तनशील है। इसलिए पदार्थ की परिभाषा के बाट-माप ही सापेक्ष परिवर्तनशील एवं अविश्वसनीय निकलते हैं। आधुनिक विज्ञान ने जो तत्त्वों की खोज की है, उनका Atomic weight (आणविक भार) भी निश्चित किया है जैसे Hydrogen गैस का आणविक भार 1 माना गया है। जब भार ही सापेक्ष है तो देश-काल में गति के परिवर्तन के साथ तत्त्वों का आणविक भार भी परिवर्तित होता रहेगा। तब विज्ञान की गणना कैसे विश्वसनीय मानी जाएगी।

आइंस्टीन ने यह भी रहस्योद्घाटन किया कि गणित एवं ज्यामिति का सारा ज्ञान-विज्ञान भी सीमित एवं सापेक्ष है। किसी वस्तु का सीधापन मापने के लिए उसे धरती के समानान्तर रखकर जांचा जाता है। यदि मापदण्ड (scale) के सब

बिन्दु धरती के सब बिन्दुओं को स्पर्श करें तो उसे समरेखा मान लिया जाता है। किन्तु जब धरती स्वयं गोलाकार है तब धरती के समानान्तर रेखा कुछ न कुछ मात्रा में गोलाई अवश्य लिये होगी। अतः सरल रेखा सापेक्ष रूप से सरल कही जा सकती है। पूर्ण निरपेक्ष सरलता दुर्लभ है। लोवट चेमस्की बोलाई, गौस, रीमेन ने यूक्लिड की ज्यामिति को अशुद्ध मानकर नई ज्यामिति की रचना की। क्योंकि यूक्लिड की ज्यामिति सरल रेखाओं पर आधारित है और धरती के गोले पर कोई सरल रेखा ही नहीं बनाई जा सकती। आइंस्टीन ने भी यही मत माना। सरल रेखा की परिभाषा की जाती है दो बिन्दुओं के भीतर का सबसे छोटा अन्तर। किन्तु बिन्दु की परिभाषा में बताते हैं कि जब दो रेखायें एक-दूसरे को काटती हैं तब बिन्दु का निर्माण होता है। इस प्रकार रेखा की परिभाषा बिन्दु पर अवलम्बित है और बिन्दु की परिभाषा रेखा पर। यह चक्राकार, अन्योन्याश्रयी सापेक्षतावाद है। जैसे दो व्यक्तियों का पता-ठिकाना पूछा जाए—क कहे ख के मकान के सामने रहता हूं और ख कहे मैं क के घर के सामने रहता हूं और पुनः पूछने पर कि दोनों कहां रहते हैं? तो उत्तर मिले—आमने-सामने रहते हैं। तो इससे हमें कुछ भी पता-ठिकाना ज्ञात नहीं हो सकेगा। सरल रेखा की परिभाषा की जाती है। उसमें केवल लम्बाई है। न मोटाई है न चौड़ाई। ऐसी शुद्ध रेखा कल्पना मात्र ही रहेगी। क्योंकि पतली से पतली रेखा की कुछ मोटाई तो अवश्य होगी। यदि पुस्तक के पतले पृष्ठ की धार को सबसे पतली रेखा मानकर उसकी मोटाई को लगभग शून्य मान लिया जाए तो एक हजार पृष्ठों की मोटाई भी शून्य होनी चाहिए और संसार भर की पुस्तकों का कोई फैलाव होना ही नहीं चाहिए। यदि ब्लेड की पतली धार को लगभग शून्य मोटाई का मान लिया जाए तो ब्लेडों के पार्सल पैकेट गोदामों के स्थान के लिए कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। इसी प्रकार शुद्ध निरपेक्ष रेखा केवल कल्पना ही है। इसी प्रकार बिन्दु की परिभाषा की जाती है कि उसमें लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई कुछ भी नहीं है। ऐसा शुद्ध बिन्दु भी केवल कल्पना मात्र रहेगा। क्योंकि पतली से पतली कलम, पिन और कांटे से भी बनाया गया तो कम से कम कलम या कांटे की नोक के बराबर मोटा अवश्य है। अतः ज्यामिति में सापेक्ष और कल्पित बिन्दुओं से रेखाओं, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि आकारों से काम चलाया जाता है। शुद्ध बिन्दु, रेखा आकार गणित के विज्ञान की पहुंच के बाहर है।

गणित सापेक्ष—गणित की जितनी संख्यायें हैं वे अपूर्ण एवं काम चलाऊ हैं। पूर्ण वह है जिसमें न कुछ बढ़ाने की और न घटाने की सम्भावना हो। गणित में जमा, बाकी, गुणन और भाग का व्यापार चलता है। गणित में चाहे जितनी बड़ी से बड़ी संख्या लिख दें वह भी अपूर्ण है। क्योंकि उसमें एक घटाया जा सकता है या एक बढ़ाया जा सकता है। जो क्षतिग्रस्त हो सकती है वह पूर्ण नहीं

है। क्योंकि उसका पूर्णत्व-घट सकता है। जिसमें वृद्धि हो सकती है वह भी पूर्ण नहीं है। क्योंकि पूर्ण में कुछ बढ़ाया ही नहीं जा सकता। यदि कोई पात्र लबालब दूध से भरा हो तो उसमें एक भी बूंद दूध और समाने का स्थान ही नहीं बचता। यदि पूर्ण में कुछ बढ़ सकता है तो वह पहले अपूर्ण ही था। यदि पूर्ण में कुछ घट सकता है तो वह क्षति का भार सहने वाला, नष्ट हो जाने वाला है, सच्चा पूर्ण नहीं है। यदि पूर्ण को गुणित करके अनेक गुणा किया जा सकता है तब भी वह पूर्ण नहीं माना जा सकता। क्योंकि पूर्ण तो उपमान विहीन, अद्वितीय, अतुलनीय होना चाहिए। यदि गुणन द्वारा और भी पूर्ण बन सकते हैं तो उसे पूर्ण ही नहीं माना जा सकता। यदि पूर्ण का विभाजन किया जा सकता है। उसके टुकड़े करके खण्डित किया जा सकता है तो वह अखण्ड नहीं रहता। अतः पूर्ण वह है जो जोड़-घटाव से परे, गुणन व भाग से परे, एक-अखण्ड, स्वतः एवं सर्वदा परिपूर्ण सत्ता है, वह अनन्त है। Infinite है।

पूर्ण अनन्त—वह पूर्ण घटावरहित, अक्षय है।
वह पूर्ण वर्द्धनरहित परिपूर्ण है, निर्योग है।
वह पूर्ण गुणनरहित, निर्गुण है।
वह पूर्ण भागरहित, अखण्ड-अविभाज्य है।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। 18/20, गीता

जिस ज्ञान के द्वारा सब भूतप्राणियों में नाम-रूप में विभक्त अनेकता भरे संसार में उस एक अविभक्त, अव्यय, अविनाशी, पूर्ण तत्त्व को देखता है वही ज्ञान सात्त्विक है। सब जड़ एवं प्राणियों के जड़-चेतन वस्तुओं के नाम तथा रूप भिन्न हैं। इस कारण से सब अलग बंटे हुए दिखाई देते हैं, किन्तु सब मनुष्य अपने को मैं कहते हैं। सब प्राणियों के लिए स्वयं शब्द प्रयोग होता है इससे परे जड़ वस्तुओं के लिए भी स्वयं शब्द प्रयोग होता है। बादल स्वयं बरस पड़ा। सूर्य स्वयं तपने लगा। दीपक स्वयं बुझ गया। इस प्रकार विश्व की अनन्तानन्त जड़-चेतन वस्तुओं में जो एक मैं (स्वयं) छिपा हुआ है, वस्तुओं के अनेक वर्गों या प्राणियों में बंट जाने पर भी मैं स्वयं नहीं बंटा। इन विभक्तों में जो उस अविभक्त को देखता है, अव्यय और पूर्ण को देखता है उसका ज्ञान सर्वोपरि, श्रेष्ठ व सात्त्विक ज्ञान है। इस प्रकार गणित पूर्ण या अनन्त की गणना नहीं कर सकता। गणित विज्ञान केवल अपूर्ण की गणना करके ही तृप्त हो जाता है। गणना मनुष्य की सीमित बुद्धि ने करनी प्रारम्भ की है और पूर्ण या अनन्त मन-बुद्धि से परे है। इसलिए मनुष्य की बुद्धि उसकी गणना कर ही नहीं सकती।

(क) जो बुद्धि उसी पूर्ण से थोड़ा-सा प्रकाश प्राप्त कर संसार की अन्य अपूर्ण वस्तुओं की गणना करती है वह स्वयं अपने प्रेरक और जनक को कैसे गिन सकती है?

(ख) डॉक्टर के थर्मामीटर से हम सूर्य का ताप नहीं माप सकते। सूर्य का ताप मापने की चेष्टा में थर्मामीटर और डॉक्टर दोनों ही जल जाएंगे।

(ग) **गई पूतरी नौन की, थाह सिन्धु की लेन।**
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन।।

(घ) जो बिजली का बल्ब स्वयं विद्युत् से प्रकाशित होता है और अपने इर्द-गिर्द की छोटी-मोटी वस्तुओं को प्रकाशित करता है। उसमें यह सामर्थ्य नहीं कि वह विद्युत् को ही प्रकाशित कर सके या उसकी व्याख्या कर सके। विद्युत् अदृश्य शक्ति है, उसकी तारें, बल्ब आदि दृश्य हैं। बल्ब का प्रकाश दृश्यों को ही दर्शा सकता है। अदृश्य द्रष्टा या सृष्टा को नहीं दर्शा सकता।

(ङ) कोई व्यक्ति अपने सगे पिता को दूल्हे के रूप में बरात में सजा हुआ कभी नहीं देख सकता। जब उसका अपना अस्तित्व ही पिता के विवाह के पश्चात् हुआ तो वह पिता का विवाह कैसे देख सकता है? मनुष्य को गणना की बुद्धि जिस परम शक्ति से प्राप्त हुई है वह उसे ही गिनने का सामर्थ्य कैसे प्राप्त कर सकता है? जो कुछ गिनने में आ जाए वह सभी अपूर्ण होता है। तो पूर्ण यदि सचमुच पूर्ण है तो उसे कैसे गिना जाए?

(च) जिसमें घटने, बढ़ने, भाग व गुणन की गुंजाइश है ही नहीं। वहां गणित के सभी बाट-माप बेकार हो जाते हैं। अनन्त का गणित भी अनन्त एवं निराला है।

अनन्त (पूर्ण) + पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण – पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण × पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण ÷ पूर्ण = पूर्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

इस प्रकार गणित विज्ञान भी सापेक्ष है। गणना केवल अनेकता में हो सकती है। गणना के लिए कम से कम दो सत्ताएं अवश्य चाहिएं। एक गणक दूसरी कलन-वस्तु (जिसे गिना जाए)। इस प्रकार द्वैत के बिना गणना हो ही नहीं सकती और गणक, गणित और गणना तीनों को गिना जाए तो त्रेत बन जाता है। जब 'परमतत्त्व' एकमेवाद्वितीयम् हो तो उसकी गणना स्वयं उसके सिवा और कौन कर

सकता है। यदि गणना सम्भव मान लें तो वह अद्वैत नहीं बचता। यदि अद्वैत सत्ता है तो गणना की सम्भावना नहीं। भारतीय दर्शन ने परम तत्त्व को एक कहने में भी संकोच किया। क्योंकि एक भी गिनती है। इसलिए उसे अद्वैत, अनन्त आदि नामों से समझाया गया। अनन्त मन-वाणी से परे है। मुनि मौन धारण करके आनन्दित होते हैं। किन्तु उस आनन्द का बखान नहीं कर सकते।

आत्म अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात।
गूंगा गुड़ खाय के कहे कौन मुख स्वाद।। (कबीर)

गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

कथना कथी ना आवे तोटि,
कथी कथी कथी कोटि-कोटि-कोटि।

अर्थात् करोड़ों-करोड़ों जबानों से करोड़ों युगों तक उसका कथन करता रहे फिर भी कोई उसका पार नहीं पा सकता। इसलिए वेद के ऋषि भी अन्त में हार मानकर नेति-नेति कहते हैं। अर्थात् हमने जिस ब्रह्म का बखान किया है वो वाणी तक सीमित नहीं है। वाणी के बंधन में नहीं है। वाणी के कथन में आ नहीं सकता और जितना हमने वर्णन किया है उतना मात्र ही नहीं है। मुनियों ने जब अपनी आत्मानुभूति को प्रसादी वाणी द्वारा मानव कल्याण के लिए अन्य मानवों को बांटी तब वे मुनि से ऋषि बन गए। क्योंकि मानव के पास मन, वाणी, बुद्धि के अतिरिक्त और कोई भाव प्रकाशन का साधन नहीं है। इसलिए बाध्य होकर मानव को वाणी से बखान करना पड़ा। किन्तु शंकराचार्य जैसे उच्च दार्शनिकों ने परम तत्त्व के कोई विधायक गुण नहीं बखान किए। क्योंकि उससे परम तत्त्व गुणों में सीमित हो जाता है, गुणों में बंध जाता है। उन्होंने निषेधात्मक गुण बताये ताकि मनुष्य को समझ भी आ जाए, गुण और वाणी का बंधन भी न रहे। अर्थात् अजर (जो बूढ़ा नहीं होता), अमर (जो मरता नहीं, अविनाशी), अक्षय (जिसका क्षय नहीं होता), अव्यय (जिसका व्यय नहीं होता), अक्षर (जिसका क्षरण नहीं हो), अगोचर (जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता), अवाङ्मनस्गोचर (मन, वाणी और इन्द्रियों से परे), अद्वैत (जो दो नहीं है), अद्वय, अद्वितीय (जिसकी तुलना का कोई है नहीं), अशेष (जिसके पीछे कुछ शेष नहीं बचता), निराकार, निर्विकार, निर्गुण, निरुपाधि (उपाधियों से परे), अविभक्तम् (जो बंटा हुआ नहीं है), निष्कलंक, अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद्य, अदृश्य आदि। इस तरह शंकराचार्य ने ब्रह्म की निषेधात्मक गुणों से व्याख्या की। कहीं-कहीं प्रारम्भिक शिक्षा के लिए उस पूर्ण अनन्त को एक कहा गया किन्तु शीघ्र ही सुधार करके उसे अद्वैत कह दिया गया। क्योंकि एक की संख्या मनुष्य की बुद्धि द्वारा आविष्कृत गणना का अंक है। यदि ब्रह्म मनुष्य की तुच्छ बुद्धि की गिनती में आ सके तो फिर वह सीमित हो

जाएगा। यदि एक को मान लिया जाए तो एक के सब गणना परिवार को मानना पड़ेगा। 1+1 मिलकर दो बन जाएंगे। इसी प्रकार एक और जोड़ देने से तीन और सारी गिनती बनती जाएगी। इसलिए शुद्ध तर्क की भाषा में उसे एक कहना भी उचित नहीं है। भाषा की लाचारी से उसे कभी एक कह भी दिया जाए तो भी दार्शनिक शब्दावली में अद्वैत कहने में ही पूर्णत्व के भाव की कुछ रक्षा होती है।

आधुनिक विज्ञान में जिन तत्त्वों की गणना है वे सब गणना योग्य एवं गिनती के आणविक भार वाले होने के कारण गणित एवं रसायन के सीमित क्षेत्र के लिए उपयोगी हैं। परम तत्त्व या पूर्णत्व के ज्ञान के लिए कोई उपयोगी नहीं है। गणना केवल शांत की हो सकती है अनन्त की नहीं। आइंस्टीन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त ने वैज्ञानिकों के अहम्भाव को एक बड़ा धक्का दिया और उनको यह अनुभव होने लगा कि उनकी अब तक की सारी साधना परम सत्य, पूर्ण एवं अनन्त सत्ता की खोज के लिए नितान्त व्यर्थ हुई है। प्रकृति के बहिरंग के कुछ तथ्यों एवं सिद्धान्तों का अपूर्ण व सापेक्ष अध्ययन मात्र ही हो सका है।

न ईथर न तरंगें, केवल ऊर्जा—माइकेलसन और मोरली नामक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि आकाश में ईथर नाम का कोई पदार्थ नहीं है। उन्होंने प्रकाश की दो किरणों को दो भिन्न दिशाओं में भेजा। एक ईथर की अनुकूल दिशा में, दूसरी प्रतिकूल दिशा में। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि प्रकाश की लहरों के अनुकूल एवं प्रतिकूल दिशाओं में चलने के और एक ही दूरी तक पहुंचने में समान समय लगता है। इससे पहले न्यूटन यह मानता था कि ईथर समस्त दिशाओं में व्याप्त है। कुछ वैज्ञानिक मानते थे कि जिस प्रकार समुद्र में जलयान को चलाने पर लहरें उठती हैं उसी प्रकार आकाश में ग्रहों-उपग्रहों या अन्य वस्तुओं के चलने से ईथर में लहरें उठती हैं। अनुकूल दिशा में गति सुगम एवं तेज होती है तथा प्रतिकूल दिशा में गति कठिन और धीमी हो जाती है। माइकेलसन और मोरली ने सिद्ध किया कि ईथर नाम की कोई चीज नहीं है और आकाश में ईथर की लहरें नहीं बनती। आइंस्टीन इससे प्रभावित हुए तथा उन्होंने यह सिद्धान्त दिया कि आकाश में विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा Radio Active या Electro Magnetic Energy के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आधुनिक विज्ञान जिन भौतिक तत्त्वों की गिनती करता है वे तत्त्व अन्त में अलग-अलग 105 पदार्थों के रूप में बचते ही नहीं हैं। वे अन्तिम विश्लेषण पर मात्र विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा ही रह जाते हैं। वहां सोना और कोयला, गंधक और पारा, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन का कोई भेद बचता ही नहीं है। सब तत्त्वों की ऊर्जा नाम-रूप या तत्त्वभेद रहित, एक-अभेद-अविभाज्य, असंग-निर्लिप्त ऊर्जा है। यदि स्थूल तत्त्व सत्य है तो उनकी सत्ता सदा बनी रहनी चाहिए और यदि ऊर्जा ही सत्य है तो विज्ञान द्वारा खोजे गये सौ से

अधिक तत्त्व परम सत्य नहीं है। सत् वस्तु का लय, लोप या विनाश कभी नहीं हो सकता है।

आइंस्टीन ने यह भी सिद्ध किया कि जो वस्तु ऊपर से स्थिर प्रतीत होती है वह वास्तव में बड़ी तीव्र गति से गतिमान है। प्रत्येक वस्तु के सबसे सूक्ष्म कण को Atom या परमाणु कहा जाता है। उस परमाणु में एक केन्द्रीय बिन्दु है जिसे न्यूक्लियस या Proton कहा जाता है। उसके चारों ओर अनेक सूक्ष्म कण Electron बड़े वेग से परिक्रमा कर रहे हैं। अतः इस विश्व में सर्वत्र गति ही गति है। स्थिरता केवल माया या आँख का धोखा है। इस खोज से पदार्थ के स्थूल रूप और पदार्थ की परिभाषा (जगह घेरना और वजन रखना) को भी भारी आघात लगा। आइंस्टीन ने यह भी बताया कि परमाणु को Electron और proton में तोड़ा जा सकता है। बाहरी परिधि में परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रॉन अनेक परिधियों में बड़ी तीव्र गति से घूमते रहते हैं। जब इलेक्ट्रॉन एक परिधि से दूसरी परिधि तक छलांग लगाता है तब बहुत बड़ी ऊर्जा का विस्फोट होता है, जिससे परमाणु बम तैयार किया जा सकता है। यह ऊर्जा भौतिक पदार्थों के कोई गुण नहीं रखती। न उसमें कोई वजन है और न वह जगह घेरती है।

मैडम क्यूरी नामक महिला ने रेडियम नामक धातु को खोजा जिसमें से निरन्तर ऊर्जा निकलती रहती है। इस विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा को रेडियम से निकलने के कारण रेडियोधर्मी ऊर्जा (Radio Active Energy) कहा गया। ऐसे ही ऊर्जा यूरेनियम नामक धातु से भी निकलती रहती है। भौतिकी के वैज्ञानिकों ने खोजा कि यह रेडियोधर्मी ऊर्जा ही अन्तिम तत्त्व के रूप में बचती है। ऊर्जा के आविष्कार को देखकर बर्ट्रेंड रसेल ने कहा पदार्थ (Matter) की जिन ईंटों से भौतिकवाद का भवन निर्मित हुआ था अब वे ईंटें ही झूठी साबित हो गई हैं। भौतिकवाद ने घोषणा की थी कि सृष्टि का परम तत्त्व पदार्थ ही है। किन्तु विज्ञान की आधुनिक खोजों ने सिद्ध किया कि अन्तिम विश्लेषण पर पदार्थ बचता ही नहीं। केवल ऊर्जा बचती है जिसमें पदार्थ के कोई गुण ही नहीं बचते। इस तरह पदार्थवाद या भौतिकवाद का भव्य भवन भौतिक विज्ञान की आधुनिक खोजों से स्वयं ही धराशायी हो गया है।

बर्ट्रेंड रसेल ने भौतिकवाद के भवन को धराशायी करने के पश्चात् भी अपने को अध्यात्मवादी घोषित करने का साहस नहीं दिखाया। रसेल कहता है कि ऊर्जा न भौतिक गुण वाली है और न चेतन गुण वाली। वह जड़ और चेतन दोनों से परे है। उसका स्वरूप क्या है यह हम नहीं कह सकते। किन्तु उसी में से जड़ और चेतन दोनों का प्राकट्य हुआ है। ऊर्जा का स्वरूप अनिर्वचनीय है। क्योंकि बर्ट्रेंड रसेल स्वयं जीवनभर एक नास्तिक एवं इहलोक-यथार्थवादी रहा। इसलिए उस अभौतिक गुणों वाली ऊर्जा को सहसा चेतन घोषित करने का साहस उसमें नहीं हुआ। किन्तु

भौतिकवाद की पराजय की घोषणा अपने आप चेतन तत्त्व की विजय की घोषणा सिद्ध हो जाती है। जड़ और चेतन दोनों से परे किसी तीसरे तत्त्व की कल्पना केवल बौद्धिक दुस्साहस मात्र है। जो अन्य विज्ञानवेत्ताओं को मान्य नहीं है।

विज्ञान और भारतीय दर्शन के दृष्टिकोण में मौलिक भेद—

(क) पेरिस विश्वविद्यालय के प्रख्यात दार्शनिक श्री रने गेनों के मत में भारतीय दर्शन की दृष्टि सनातन एवं शाश्वत है। किन्तु पाश्चात्य दर्शन की दृष्टि मात्र आधुनिक है।

(ख) भारत में सभी विज्ञान आध्यात्मिक परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए सहायक एवं मार्गदर्शक सीढ़ियों के रूप में रहे हैं। किन्तु, आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान आध्यात्मिक परम तत्त्व के प्रति विद्रोह करके मानव को उससे विमुख करने हेतु ही प्रयत्नशील है। इस प्रकार विज्ञान विद्या का सहायक सिद्ध न होकर शत्रु सिद्ध हो रहा है।

(ग) विज्ञान विषय का सरलीकरण करने के लिए उसका विग्रह (व्यास या विभाजन, वर्गीकरण) आदि करता है, जिससे एक-एक विज्ञान एक-एक खण्डित तथ्य का अध्ययन मात्र बनकर रह जाता है। दर्शन (विशेष रूप से भारतीय दर्शन) समस्त तथ्यों को समेटकर सब तथ्यों से ऊपर सत्य के प्रति समग्र दृष्टि रखता है। इसे खण्ड दृष्टि स्वीकार्य नहीं।

(घ) विज्ञान अनेकता को एक बार मानकर विश्लेषण द्वारा उसका बौद्धिक संस्थापन कर पुनः संश्लेषण की बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा उसे एक सिद्ध करना चाहता है, किन्तु बहुतों में एकत्व की दृष्टि न होने के कारण उसे मूलभूत एकत्व का प्रमाण मिलना असम्भव-सा हो जाता है। भारतीय दर्शन एक से अनेक की व्याख्या करता है और अनेकता में भी एकता की दृष्टि को ओझल नहीं होने देता। इसलिए नाम-रूप की अनेकता के पीछे छिपी हुई परम तत्त्व की एकता को खोज लेता है।

(ङ) कुछ लोगों की धारणा है कि यदि समस्त विज्ञानों को एकत्र किया जाए तो सम्भवतः भारतीय दर्शन की दृष्टि प्राप्त हो जाएगी। किन्तु, यह भी सम्भव नहीं। बहुत से अलग-अलग टुकड़ों को इकट्ठा रख देने से कोई यंत्र नहीं बन जाता। शरीर के अवयवों का संग्रह करने से कोई जीवित मनुष्य नहीं बन जाता। भारतीय दर्शन की मौलिक दृष्टि उस परम सत्य को खोजने में लगी है, जो मात्र बाह्य दृश्य न होकर दृश्य की सत्ता का साक्षी द्रष्टा है। प्रत्येक दृश्य अपनी सत्ता और सत्यता के लिए किसी द्रष्टा पर, द्रष्टा के दर्शन पर निर्भर करता है। अतः द्रष्टा को जानना दृश्य को जानने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब तक द्रष्टा को नहीं देखा तब तक सब दृश्य धोखा है। जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान

है। विज्ञान दृश्य को खोजता है दर्शन द्रष्टा को खोजता है। अतः दोनों की दृष्टियों में मौलिक मतभेद है।

(च) अरस्तू को उसके गुरु प्लेटो ने समझाया कि फिजिक्स (भौतिकी) से ऊपर एक और विज्ञान है, जिसे तत्त्व ज्ञान कहा जाता है। भारत में सनत्कुमारजी ने देवर्षि नारद को यही समझाया कि दृश्य का ज्ञान अपराविद्या है और द्रष्टा का ज्ञान पराविद्या है। किन्तु आज का विज्ञान भौतिकी से ऊपर किसी अतिभौतिकीविद्या या तत्त्वविद्या को मानता ही नहीं।

(छ) भारतीय दर्शन एक आधारभूत तत्त्वविद्या है। परम तत्त्व या परम सत्य की अनवरत साधना है। परम तत्त्व परम चैतन्य रूप है। प्रकृति में उस परम तत्त्व का प्रतिबिम्ब मात्र पड़ता है। क्योंकि प्रकृति स्वयं जड़ है। इसलिए वह अपने आप में किसी सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकती। प्रकृति में पुरुष का जो क्षीण-सा प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी से प्रकृति अपने रहस्यों को थोड़ा-थोड़ा खोलने लगती है। विज्ञान सीधे पुरुष का अध्ययन न कर प्रकृति पर पड़ने वाले पुरुष के आभास मात्र का अध्ययन करता है। प्लेटो की उपमा में वैज्ञानिक ऐसे हाथ बंधे हुए कैदियों के समान हैं जिन्होंने प्रकाश की ओर पीठ कर रखी है और सामने की दीवार पर पड़ने वाली अपनी ही छाया में सृष्टि के रहस्यों की खोज करते हैं।

(ज) विज्ञान ने परम तत्त्व के विषय में मान रखा है कि वह या तो है ही नहीं या अज्ञेय है। विज्ञान से प्रभावित चिन्तकों ने Logical positivism के नाम से एक नया दर्शन ही गढ़ लिया है जिसके अनुसार परम तत्त्व चूंकि इन्द्रियज्ञान और तर्कशक्ति से परे है इसलिए उसकी सत्ता है, या है ही नहीं, या जानी ही नहीं जा सकती। इस तरह आधुनिक विज्ञान अपने अज्ञान को भी गर्व का विषय मान बैठा है।

(झ) पश्चिमी विज्ञान का उद्देश्य सत्य नहीं अर्थ (Money) है। आज की प्रायः सभी खोजें उद्योग के लिए हो रही है। वे आज विज्ञान का प्रयोग अधिक धन कमाने के लिए और मिलों, कारखानों में उत्पादन को बढ़ाने के लिए, व्यापारिक मण्डियों पर एकाधिकार जमाने के लिए, उत्पादन और अर्थ संचय की प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए, घातक हथियारों के निर्माण द्वारा छोटे एवं दुर्बल राष्ट्रों की भूमि, सम्पत्ति एवं स्वाधीनता को छीनने के लिए और निर्धन, दुर्बल राष्ट्रों को परस्पर में लड़ाकर अपने हथियारों के विक्रय की मंडी का विस्तार करने में कर रहे हैं। आज यंत्रकार या अभियन्ता (इंजीनियर) को अधिक बड़ा वैज्ञानिक माना जाता है। क्योंकि वह उत्पादन एवं अर्थोपार्जन करने के लिए अधिक उपयोगी है। इसकी तुलना में भारतीय दर्शन का उद्देश्य सत्य की प्राप्ति है—निष्काम, निर्लोभ, निःस्वार्थ भाव से सत्य का अनुसंधान। पाश्चात्य अनुसंधान काम और अर्थ प्रेरित है। जबकि भारतीय दर्शन का अध्ययन धर्म-मोक्ष प्रेरित है।

(ञ) परम तत्त्व निर्विकार है, किन्तु संसार विकारी है। जहां दर्शन परम तत्त्व की खोज करता है वहां विज्ञान का अध्ययन विकाररूप संसार में सीमित रहता है। इसलिए विज्ञान का कोई स्थिर आधार नहीं है। आज जिसे तथ्य मानकर अध्ययन किया जाता है कल वही अतथ्य सिद्ध हो जाता है। बहुत सारे तथ्यों को बटोर लेने पर भी सत्य का दर्शन फिर भी नहीं होता। तथ्य देश-काल की दया पर रहने के कारण परिवर्तनशील है और सत्य देश-कालातीत होने कारण अखण्ड, एकरस अपरिवर्तनीय है।

(ट) आधुनिक विज्ञान की प्रमाण प्रणाली काल्पनिक एवं अयुक्त संगत है। विज्ञान कल्पना पर कल्पना लादता जाता है तथा इस प्रकार विज्ञान की मिथ्या कल्पना का भण्डार बढ़ता जाता है। जैसे पदार्थ की कल्पित परिभाषा, फिर यह कल्पना की पदार्थ ही अन्तिम सत्य है। फिर यह कल्पना की सृष्टि में कोई नैतिक नियम नहीं है। फिर यह कल्पना कि कोई सृष्टिकर्ता चेतन सत्ता नहीं है। फिर यह कल्पना कि जो कुछ प्रयोगशाला या परखनली से न जांचा जा सके वह सब मिथ्या है आदि-आदि। कल्पना पर कल्पना के पत्तों से ताश का महल खड़ा किया जा रहा है। यदि कोई चोर किसी के धन को या स्त्री को चुराकर ले जाए तो वह कौन से वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार गलत है? प्रेम, देशभक्ति, स्नेह, सौन्दर्य आदि कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनके लिए वैज्ञानिक अपने जीवनभर की सारी कमाई एवं जीवन तक समर्पित करने के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु, वह वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उनकी सत्ता किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकता।

(ठ) क्लोड Claud Bernurd जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने माना है कि कोई भी विज्ञान बिना पूर्वकल्पना axiom या Pre supposition के एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। जैसे ज्यामिति में बिन्दु, रेखा आदि के विषय में कुछ पूर्व कल्पनाएं कर ली गई हैं। जो न सिद्ध की जा सकती हैं और न सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। केवल इन्द्रिय अनुभव से विज्ञान का कोई काम नहीं बन सकता।

(ड) आधुनिक विज्ञान इन्द्रियगत दृश्यसंसार का विज्ञान है। स्थूल का विज्ञान है, जिसके प्रयोग से यंत्र आदि के लाभ प्राप्त हो सकते हैं। फलस्वरूप लोगों का अंध-विश्वास स्थूल वस्तुओं में तथा उन पर आधारित विषय-भोगों एवं स्वार्थों में बढ़ गया है। आधुनिक विज्ञान का आधुनिक सभ्यता को यही सबसे विचित्र वरदान है। भारतीय दर्शन में और प्राचीन भारतीय परम्परा में विषय-लोलुपता तथा स्वार्थ भोग आदि को तुच्छ एवं त्याज्य माना गया है। जीवन का मुख्य उद्देश्य विषय भोग न होकर विश्वनाथ, विश्वंभर अथवा वैश्वानरपद की प्राप्ति है। आधुनिक विज्ञान ने भगवान् का तिरस्कार कर भोगों का पुरस्कार दिया है। मानव जीवन के प्रधान उद्देश्य को ठुकराकर गौण पशु प्रवृत्तियों की पूर्ति (रोटी,

कपड़ा, मकान, भोग विलास) में लग गया है। सर्वोच्च उद्देश्य में मानव मात्र की एकता निहित है। विषय भोग में मानव-मानव में स्वार्थ, स्पर्धा, संघर्ष, युद्ध, अशांति का विस्फोटक (बारूद) भरा हुआ है।

(ढ) भारतीय दर्शन परम्परा में विज्ञान के उन रूपों को जो जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकते हैं गौण समझकर छोड़ दिया गया था। आधुनिक विज्ञान में ऐसे ही गौण विषयों को खुला अवकाश मिला है और आज के वैज्ञानिक उन्हीं विषयों के अध्ययन में अपनी सारी शक्ति का क्षय कर रहे हैं। इसलिए पिछली दो शताब्दियों में इन्द्रियज्ञान पर आधारित विज्ञानों की बाढ़-सी आ गई है। प्राचीनकाल में ज्योतिष नामक विज्ञान वैदिक अध्यात्मज्ञान में सहायक होने के कारण एक उपवेद के रूप में प्रतिष्ठित था। किन्तु आधुनिक विज्ञान ने ज्योतिष के दो अंग कर दिए—फलित और गणित ज्योतिष। विज्ञान ने गणित ज्योतिष का इतना विस्तार किया कि इसका फलित ज्योतिषरूप अंग सर्वथा नष्ट हो गया। इसी प्रकार प्राचीन रस विज्ञान, विश्व ब्रह्माण्ड की रचना का ही विज्ञान था। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के समानधर्मी होने के कारण इसका प्रयोग मानव जीवन पर होता था। भौतिक जीवन के प्रयोग को आध्यात्मिक जीवन में भी उतारा जाता था।

नागार्जुन रसशास्त्र का भी प्रणेता था और दार्शनिक शून्यवाद का भी। महर्षि पतंजलि ने शरीर के उपचार के लिए आयुर्वेदशास्त्र दिया। वाणी के उपचार के लिए व्याकरणशास्त्र दिया और मन के उपचार के लिए योगशास्त्र दिया। शिक्षा, छन्द, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, कल्प यह छह वेदांग हैं। इन छह अंगों सहित जो वेद को जाने उसे षड्-अंगी कहा जाता था। इसी प्रकार उपवेद भी वेद विद्या में सहायक थे। आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य वेद (यांत्रिक), गंधर्व वेद (संगीत)—ये चारों वेद हैं। भारत में सभी विज्ञान वेद वेदांत विद्या में सहायक, ब्रह्मविद्या के आज्ञाकारी अनुचर बनकर सेवा करते थे। आधुनिक विज्ञान अध्यात्म के प्रति विद्रोह करके अपनी भोगवाद की अलग दुकान चला रहा है। आज का रसायन विज्ञान प्राचीन रस विज्ञान से उत्पन्न नहीं हुआ। वेद में कहा गया—'रसो वै सः।' अर्थात् वह परब्रह्म परमेश्वर साक्षात् रसरूप है। वहां रस ब्रह्मानन्द रस के अर्थ में है। जब वह रस रूप परमेश्वर अपने रस का स्वयं रसास्वादन करने के लिए अपने अनेक रूप बनाकर आनन्द लीला करने लगता है तब उसे महारस लीला कहते हैं। इस आध्यात्मिक रस में सहायक विचार सागर का बौद्धिक तत्त्व ज्ञानरस है। दर्शन में विचार की गांठ खुल जाने पर या किसी समस्या का समाधान हो जाने पर जो समाधानकारक रस मिलता है। वह बौद्धिक रस, अध्यात्म रस में सहायक माना गया। मन में प्रेम, भक्ति, स्नेह, आत्मीयता से जो सुख मिलता है वह भक्ति रस भी अध्यात्म रस में सहायक माना गया। मानव शरीर में जो रसना नामक ज्ञानेन्द्रिय

है उसका उद्देश्य भी शरीर के पोषण के लिए आवश्यक भोज्य पदार्थों का रस चखना और अन्तर के सुख के लिए रसना द्वारा हरिनाम रसामृत का पान करना है। संतों ने कहा है—

सोई रसना जो हरि गुण गावे।

गुरुनानकदेव कहते हैं—

आखां जीवां विसरे मर जावां।

अर्थात् तेरे नाम स्मरण करने में जीता हूं और विसरने पर मर जाता हूं। इस प्रकार पंच महाभूतों में रसतत्त्व (जल), मात्राओं में रस तन्मात्रा, इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, सबका उद्देश्य उस परमरस को पाना है। शरीर के भीतर अनेक प्रकार के द्रव्य हैं जिन्हें रस कहा जाता है। शरीर का पोषण करने वाला अन्नरस, फलरस, वनस्पति रस, गोरस आदि सभी का उद्देश्य एक ही है। तन को पुष्ट करके, मन को तुष्ट करके, बुद्धि को सुष्ट, आत्मा को सन्तुष्ट करके परमरस को पाना। रस का अर्थ अमृत भी है। शरीर को दीर्घजीवी बनाने वाले अमृत का उद्देश्य भी यही है कि मृत्यु पर सदा विजय प्राप्त करने वाला सच्चा अमृतपद प्राप्त करे। अमृत स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर के रस का पान करे।

नौव निधि अमृत प्रभु का नाम
देही में तिसका विश्राम।

अर्थात् नवनिधि के समान सबसे मूल्यवान और सच्चा अमृत स्वरूप प्रभु का नाम है तथा वह अमृत प्रभु मानव के हृदय मन्दिर में विराजमान है।

योगी लोग खेचरी मुद्रा में अपनी जिह्वा को उलटाकर ऊपर तालु में लगा देते हैं और ब्रह्मरंध्र से टपकने वाले अमृत रस का पान करते हैं।

शरीर में कोई रोग लग जाने पर शरीर के उपचार के लिए आयुर्वेद में अनेक औषधियों का शोधन करके निर्माण किया जाता है। उन्हें रसायन कहते हैं। उनका उद्देश्य भी तन को रस द्वारा स्वस्थ करके उसे अध्यात्म रस के लिए पात्र बनाना है। आयुर्वेद में पारे को भी रस कहते हैं। पारे के शोधन से जो रसायन बनता है वह शरीर को विशेष पुष्टि प्रदान करता है। **भारत में समस्त रसों का अन्तिम उद्देश्य परमरस को प्राप्त करना ही रहा है।** इसी प्रकार काव्य रस, संगीत रस, नाट्य रस आदि सभी परमरस की ओर उन्मुख रहे हैं।

इसकी तुलना में आधुनिक रसायन विज्ञान Chemistry का ब्रह्मानन्द रस से दूर-दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। मध्यकाल में कुछ ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं जो रस विज्ञान का मूल उद्देश्य भूलकर धौंकनी और कोयला भट्टी के कई निरर्थक प्रयोग करके कुछ भौतिक वस्तुएं बनाने या पारे से सोना बनाने के लोभ में क्रियाकलाप करते रहे। ऐसे

ही धौंकनी में धौंकने वाले, कोयला फूंकने वाले लोभी आधुनिक रसायन विज्ञान के जनक बन बैठे। इसी रसायन विज्ञान ने ही खोज करते-करते लगभग सवा सौ तत्त्व Element खोज निकाले हैं। जहां भारतीय रस विज्ञान का उद्देश्य ब्रह्मानन्द रस की प्राप्ति में सहायता करना था। परम तत्त्व की उपलब्धि रहा। वहां आज के रसायन विज्ञान ने कोयला, गंधक, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन जैसे जड़ तत्त्वों की खोज में ही अपने विज्ञान की सर्वोच्च उपलब्धि मान ली है। विज्ञान ने हरि-सा हीरा छोड़कर जड़ता का कोयला खोज निकाला। महात्मा रविदास ने कहा है—

हरि सा हीरा छाड़ि के, करे और की आस,
ते नर यमपुर जाइबे, सत भाखे रविदास।।

(त) वर्तमान मनोविज्ञान भी अंग्रेजों के इन्द्रियानुभववाद तथा 18वीं शताब्दी के यूरोपीय भोगवाद का फल है। भारतीय दर्शन में मनोविज्ञान योग के मनन-चिन्तन, ध्यान, एकाग्रता, समाधि आदि के रूप में ब्रह्म-दर्शन या आत्मदर्शन के लिए साधना की सरणी है। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान अध्यात्म की पूर्ण उपेक्षा कर मानव को तुच्छ भोग विलास, स्वार्थ की ओर प्रवृत्त करने वाला विज्ञान बन गया है। फ्रॉयड जैसे मनोवैज्ञानिकों ने तो मनोविज्ञान में कामुकता का नग्न एवं अमर्यादित विश्लेषण करके मन को विशेष ज्ञान की ओर प्रवृत्त करने के स्थान पर मन को विकृत ज्ञान की ओर उन्मुख कर दिया है। फ्रॉयड कहता है—'बहुत समय से लोग सृष्टिकर्ता परमेश्वर की खोज करते चले आये हैं। किन्तु आज तक उसे पा नहीं सके। मैंने ईश्वर को कान से पकड़कर सिंहासन से नीचे गिरा दिया। उसके स्थान पर काम Sex को प्रतिष्ठित किया जो वास्तविक सृष्टिकर्ता है।' इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान के उद्देश्य भ्रष्ट होने से मानवता के पतन का राजमार्ग खुल गया है।

वर्तमान गणित विज्ञान भी प्राचीन पाइथोगोरस के गणित की बाहरी छाल के सिवा और कुछ नहीं है। प्राचीन भारत के भी सभी गणितज्ञ गणित को ब्रह्म प्राप्ति का सहायक साधन मानते थे। गणित की शान्त गणना के पश्चात् वे अनन्त की पहचान के लिए साधना में लग जाते थे। शून्य का एक पूरा तत्त्व दर्शन यहां विकसित हुआ है। गणित के प्रश्नों एवं ज्यामिति के प्रमेयों को गणित के सिद्धान्तों के अनुसार हल करते हुए एक मानसिक अनुशासन प्राप्त होता है। जिसका सदुपयोग मन की एकाग्रता तथा भगवान् के मनन-चिन्तन में किया जा सकता है। पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारतीय कृष्णतीर्थ ने स्वयं वेदान्त का महान् चिंतक होते हुए भी चौदह सूत्रों के वैदिक गणित की रचना की जिससे गणित का बड़ा से बड़ा और कठिन से कठिन प्रश्न तुरत हल हो जाता है। स्वामी रामतीर्थ ने गणित और वेदान्त पर कई व्याख्यान करके एक ग्रंथ ही रच डाला। पाइथोगोरस

एक ओर ज्यामिति के प्रमेय प्रस्तुत करता था और दूसरी ओर आत्मा की अमरता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता था। भारत में ज्योतिष और गणित मिले-जुले थे। क्योंकि जो गणित धरती की वस्तुओं की गणना के लिए प्रयोग होता वही गणित आकाश की ज्योतियों की गणना के लिए प्रयोग किया जाता। आकाश के ग्रह-नक्षत्रों एवं ज्योतियों की अनन्तर गतियां, कोणों एवं दिशाओं का आकलन करते-करते भारत का ज्योतिषी उस परम ज्योति के दर्शन के लिए भी साधना करता था। गणित के अंकों में सबसे प्रथम अंक एक ही है। वह सरलतम अंक है। उसी एक को दो बार गिनने से दो बना, एक बढ़ाने से तीन फिर 4, 5, 6, 7, 8, 9 आदि बने।

अतः विचार कर देखने से रहस्य खुला कि एक ही एक से नौ तक समस्त अंकों में तथा इन अंकों से बनने वाली लाख, करोड़, अरब, बड़ी से बड़ी राशियों में निर्लिप्त भाव से समाया हुआ है। समस्त राशियां एक पर विभाजित हो जाती हैं। क्योंकि इकाई सबमें व्याप्त है। सभी राशियां दो पर, तीन पर या 4, 5, 6, 7, 8 और 9 पर विभाजित नहीं होती हैं। विभाजन का रहस्य यही है कि हर राशि को तोड़ते-तोड़ते अन्त में एक ही बचता है। इस प्रकार एक ही सबकी रचना करता है। सब राशियां एक पर टिकी हुई हैं। एक ही सब में व्याप्त है और टूटने पर अन्त में सब राशियां एक ही में समा जाती हैं। इस प्रकार गणित के इस पाठ से अनेकता में एकता का बोध होता है। इस विश्व के बहुत्व के पीछे जो छिपा हुआ एकत्व है। उसकी खोज में प्रेरित करना यही गणित का उद्देश्य है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणस्च।।

नौ का अंक सबसे बड़ा अंक है। जो सबसे बड़ा है उसी को वृहत् या ब्रह्म कहते हैं। वह नाना रूप परिवर्तन करने के उपरान्त भी अपरिवर्तनीय रहता है। नौ के दो गुणा करें तो 9×2=18 इसमें दो अंक है। एक और आठ का योग करने पर 9 ही बनते हैं। इस प्रकार 3 की गुणा

9×3=27	2+7=9
9×4=36	3+6=9
9×5=45	4+5=9
9×6=54	5+4=9
9×7=63	6+3=9

9×8=72 7+2=9

9×9=81 8+1=9

इस प्रकार सबसे बड़ा अंक अविकारी है। एक सबसे सरल है। नौ सबसे वृहत् है। एक से अधिक सरल या छोटा कोई अंक हो नहीं सकता। 9 को जितना चाहे गुणा करें अनेक गुणा होकर भी वह 9 का 9 बना रहता है। इसी प्रकार आत्मा या ब्रह्म अणु से अणु और विराट् है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निर्हितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कठ. उ. 1/2/20

शून्य की अपनी ही महिमा है। शून्य का चिह्न गोलाकार बनाया जाता है। मानो वह भूगोल, खगोल या ब्रह्माण्ड का प्रतीक हो। किन्तु उसका अर्थ है नितान्त अभाव अर्थात् कुछ नहीं। जो दीख रहा है, भास रहा है। किन्तु तत्त्वतः कुछ नहीं है। यह जगत् प्रपंच, शून्य या माया कहा जाता है। जो वस्तु प्रतिभासिक सत्ता है वह केवल आँख का धोखा है। वह सदा टिकने वाली नहीं है। वह देखते-देखते शून्य में लीन हो जाएगी। यदि इस शून्य (माया) के पीछे मनुष्य जीवन भर दौड़ता रहे तो उसके हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। गणित में एक के अंक के पहले शून्य लगाने से उसका मूल्य कुछ भी नहीं होगा। और एक के बाद में जितने शून्य लगाते जाएंगे उतना ही मूल्य बढ़ता जाएगा। इसका दार्शनिक अर्थ यही है कि ईश्वर से पहले माया की उपासना करने से उसका मूल्य शून्य ही रहेगा। और ईश्वर की उपासना करके ईश्वर के अधीन माया को देखेंगे तो उसका मूल्य 10 गुणा, 100 गुणा, लाख गुणा..... बढ़ता ही जाएगा। अतः पुरुष के अधीन ही प्रकृति का मूल्य है। पुरुष से पहले या पुरुष से अलग होकर उसका मूल्य शून्य है। लक्ष्मी के पीछे पागल होकर दौड़ने की अपेक्षा यदि हम नारायण की उपासना करें तो लक्ष्मी उनके चरणों में विराजमान मिल जाएगी। गिनती की सुविधा के लिए परमतत्त्व को एक कहने से काम चल जाता है। किन्तु, गंभीर चिन्तन करने पर पता चलता है कि उसे एक कहने में भी हम उसे सीमाबद्ध कर रहे हैं। मनुष्य द्वारा आविष्कृत गिनती का प्रथम अंक एक है उस अनादि अनन्त परमतत्त्व को यदि मनुष्य अपनी सीमित वाणी से गिन सके तो यह असीम का अपमान होगा और एक की कल्पना भी उसे अनेकता से अलग एक स्थूल वस्तु जैसा एक बना देगी। वास्तव में वह अनेक में एक के समान सर्वव्यापक, अलौकिक सत्ता है। जब वह सब कुछ है तब उसे एक कहने में सीमा का बंधन बन जाएगा। यदि उसे दो कह दें तो परमतत्त्व का अपमान होगा। क्योंकि उसकी तुलना करने वाला कोई दूसरा है ही नहीं। इसलिए भगवान् शंकराचार्य ने और उससे भी पहले वेद ने भी परम तत्त्व को अद्वैत कहा। 'शान्तम् शिवम् अद्वैतम्' कहा।

सब गिनतियां शांत है। किन्तु प्रभु अनन्त है। इसलिए शांत की गणना के पश्चात् भारतीय चिन्तन अनन्त (Infinite) की खोज में प्रवृत्त होता है। वह अनन्त ही पूर्ण है। अनन्त का गणित है—

अनन्त + अनन्त = अनन्त

अनन्त – अनन्त = अनन्त

अनन्त × अनन्त = अनन्त

अनन्त ÷ अनन्त = अनन्त

इसी प्रकार ज्योतिर्विज्ञान में जिन ज्योतियों का अध्ययन किया जाता है उनकी ज्योति सीमित एवं शांत होती है। सूर्य की ज्योति भी बादल से ढक जाती है, रात्रि में दिखाई नहीं देती। पूर्ण सूर्यग्रहण में दिन के समय धरती पर काला अंधेरा छा जाता है। अतः सीमित है। इन ज्योतियों के परे जो परम ज्योति है जिससे सब ज्योतियां ज्योतित होती हैं। उसको जानना जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। किन्तु आधुनिक गणित विज्ञान में केवल गणित का बाहरी छिलका बचा है, अन्दर का सार लुप्त हो गया है। आज का गणितज्ञ संख्या के महत्त्व और अर्थ को न समझ कर न सांख्य के 25 तत्त्वों में रुचि लेता है। न अद्वैत, द्वैत, त्रेत में रस लेता है। न ही अनेकता में एकता खोजता है, न परम दूरी में परम निकटता खोजता है। न शून्य और शून्यवाद को समझता है, न अनन्त के लिए जिज्ञासा रखता है और न परम ज्योति की दर्शन की इच्छा रखता है। वह मात्र अंक, रेखा और भिन्न-हर रूपी सूखी हड्डियों को चबाता रहता है।

(थ) ब्रह्मविद्या के इच्छुक व्यक्ति के लिए विज्ञानों का मूल्य वहीं तक है जहां तक वे ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित, उसमें प्रेरक एवं सहायक हों। जो व्यक्ति ज्ञान की उच्च भूमिका पर पहुंच चुका है उसके लिए निम्न श्रेणी के साधारण विज्ञानों का कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। जिस अपराविद्या की सीढ़ी से जिन विज्ञानों की पेड़ियों पर चढ़कर साधक पराविद्या या आत्मज्ञान की उच्च भूमिका पर पहुंचता है वहां पहुंचने के पश्चात् उसके लिए सीढ़ी या पेड़ी का महत्त्व समाप्त हो जाता है। अनित्य, अस्थिर फल के लिए शाश्वत एवं सर्वव्यापी विद्या को छोड़ना मूर्खता मात्र है। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि जिस व्यवहार की सीढ़ी से मैं परमार्थ की छत पर पहुंचा हूं अब उस सीढ़ी को ठोकर मारकर गिरा देता हूं क्योंकि मुझे पुनः नीचे नहीं उतरना है। भारतीय परम्परा में विज्ञान, आत्मज्ञान में सहायक था। फिर भी आत्मज्ञानी लौकिक विज्ञान के जंजाल को ठुकरा देता था। पश्चिमी विज्ञान तो आत्मज्ञान की ओर सीढ़ी लगाता ही नहीं। उसकी सीढ़ी तो भोग विलास के गर्त की ओर जाने वाली है। अतः आध्यात्मिक साधक को इस विकृत ज्ञान से सदा सावधान रहना पड़ता है।

(द) सनातन विद्या के अन्तर्गत जिन विज्ञानों को पढ़ाया जाता था। उनके परस्पर दो सहकारी कार्य थे—

(i) तत्त्व विद्या का अंग होने से संसार के समस्त क्षेत्रों की आधारभूत एकता प्रकट करना।

(ii) ब्रह्मविद्या की ओर ले जाने वाली ऐसी सीढ़ियों का काम करना जिनके द्वारा बुद्धि क्रमशः जड़ संसार को छोड़कर ब्रह्मविद्या की ओर अग्रसर हो सकती है। इन दोनों दृष्टियों से वर्तमान विज्ञान लगभग व्यर्थ है।

(iii) ब्रह्मविद्या की प्रवृत्ति जड़ से चेतन की ओर ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति है। किन्तु आधुनिक विज्ञानों की प्रवृत्ति चेतन से जड़ की ओर अधोगामी प्रवृत्ति है।

विश्व की परिधि में जगत् या प्रकृति है। उसके केन्द्र में जगदीश्वर या परम पुरुष है। अध्यात्म अन्तर्मुखी साधना से हमें परिधि से केन्द्र की ओर ले जाता है। आधुनिक विज्ञान की बहिर्मुखी प्रवृत्ति हमें केन्द्र से परिधि की ओर ले जाती है।

(ध) भारतीय दर्शन परम्पराओं में विज्ञान ब्रह्मविद्या की शिक्षा में सहायक था। जब विद्या के किसी रूप की स्थापना ऊपर से नीचे के क्रम से हुई हो अर्थात् ब्रह्म से जीव, पुरुष से प्रकृति की लीला का विकास हुआ हो तो उसकी शिक्षा नीचे से ऊपर के क्रम से हो सकती है। अर्थात् प्रकृति के अध्ययन के लिए भिन्न शास्त्रों एवं विज्ञानों की रचना कर धीरे-धीरे परम तत्त्व की ओर अग्रसर करना। यही सनातन भारतीय विद्या का उद्देश्य था। इस प्रकार अनेक विद्याएं एक तत्त्व के दर्शन में दृष्टान्त रूप बनती हैं जिनकी सहायता से विविध प्रकार की बुद्धियों को तत्त्व दर्शन में सुविधा हो। बहुविध प्रकृति के वश में रहते हुए जीव की बुद्धि बहुतों में लीन रहती है। इसलिए उसको एक तत्त्व की ओर ले जाने के लिए बहुविध रूपों की सहायता लेनी पड़ती है। दृष्टान्त रूप से प्रकृति के पांच तत्त्वों का अध्ययन कुछ संदेश एवं संकेत देता है—

(i) पृथ्वी तत्त्व या मिट्टी, पत्थर की कोई वस्तु पृथ्वी की ओर ही वापस लौटाना चाहती है। जल समुद्र की ओर ही बढ़ता है। अग्नि की लपट सूर्य की ओर बढ़ती है। वायु आकाश की ओर बढ़ती है। आकाश अपने आप में अखण्ड-अविभाजित और सर्वव्यापक ही रहता है। प्रकृति के इन दृष्टान्तों से जीव को यह शिक्षा मिलती है कि उसे परम शान्ति केवल अपने मूलस्रोत परब्रह्म परमेश्वर में मिलने पर ही प्राप्त हो सकेगी।

(ii) स्थूल से सूक्ष्म अधिक व्यापक और अधिक शक्तिशाली है। जल पृथ्वी को अपने में लय कर लेता है। अग्नि जल को खा जाती है। वायु अग्नि का ताप उतार देता है और आकाश समस्त वायु को एक ही ग्रास में खाकर खाली

पेट पड़ा हुआ है। आकाश से अधिक सूक्ष्म मन है। मन से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार और अहंकार से सूक्ष्म आत्मा है। इस प्रकार जो आत्मा सबसे सूक्ष्म है वही सबसे शक्तिशाली और सर्वव्यापक है।

(iii) सूर्य सारे जगत् का चक्षु है। किन्तु वह किसी के व्यक्तिगत चक्षुदोष से लिपायमान नहीं होता। वह मल को भी प्रकाशित करता है, कमल को भी। परन्तु न मल से दूषित होता है, न कमल से सुवासित। वह सबका प्रकाशक सदा निर्लिप्त रहता है। उसी प्रकार ब्रह्म सर्वप्रकाशक एवं सर्वथा निर्लिप्त है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।

कठ.उ. 2/2/11

(iv) जिस प्रकार आकाश सब ओर व्याप्त है। अखण्ड है। वह घटाकाश-मठाकाश में बंटा हुआ दीखने पर भी वास्तव में अविभक्त, अनबंटा ही रहता है। जिस प्रकार आकाश सूर्य के ताप से, काले बादलों की कालिमा से, वर्षा के जल से, विषैली गैसों के धुएं से सदा निर्लिप्त ही रहता है। सारा ब्रह्माण्ड उसकी गोदी में सोता है। किन्तु वह स्वयं किसी की गोदी में नहीं सोता। इस प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापक, अखण्ड, निर्लिप्त एवं सबका अन्तिम आश्रय है। इसलिए उपनिषद् में ऋषि ब्रह्म का स्वरूप समझाने के लिए प्रारम्भ में आकाश की उपमा देते हैं। इसलिए कहा गया है—

खम् ब्रह्म अर्थात् आकाश ही ब्रह्म का रूप है। जीव लक्ष्य के जितना समीप पहुंचता है विभिन्न विज्ञानों के भिन्न-भिन्न मार्ग उतने ही एक-दूसरे में लीन होते जाते हैं। जिस प्रकार सभी वस्तुओं की तात्त्विक एकता के कारण जड़ वस्तु भी (देवता की मूर्ति, शिवलिङ्ग) तत्त्व की प्रतिमा बन सकती है। इसी प्रकार कोई भी विज्ञान यदि उसका प्राकट्य सनातन विद्या के अनुसार हुआ है तो वह आत्मविद्या की प्रतिमा बन सकता है।

जिस प्रकार विज्ञान आत्मविद्या में सहायक था उसी प्रकार भारतीय कलाएं भी आत्मविद्या में सहायक थी। दुर्भाग्य से आधुनिक पाश्चात्यों को और पश्चिम से प्रभावित पौरस्त्यों (पूरब के आधुनिक जन) को भारत की उन प्राचीन कलाओं का और उसके मर्म का कोई ज्ञान नहीं है।

श्री रेनो गेनो के शब्दों में—'वर्तमान विज्ञान को अज्ञानरूप ज्ञान कहा जा सकता है। वह जड़ ज्ञानरूप है और जड़ संसार से अतीत सूक्ष्मलोकों से किसी प्रकार भी परिचित नहीं है। यह एक ऐसा विचित्र ज्ञान है जो अपनी सीमा से परे रहने वाली वस्तुओं के अस्तित्व तक को नहीं मानता। किसी भी आधारभूत

तत्त्व को नहीं जानता एवं अपने उद्देश्य को छोड़कर कोई दूसरा लक्ष्य नहीं देख सकता।' श्री रेनो गेनो विज्ञान का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं—'आत्मविद्या और परम सत्य से उसका कोई सम्बन्ध न होने के कारण यह विज्ञान निरर्थक एवं भ्रान्त प्रत्यय के अतिरिक्त कुछ नहीं। वह न कहीं से आता है न कहीं जाता है। इन्द्रियानुभूति की जड़ सीमाओं से घिरा हुआ यह नवविज्ञान अपने को स्वतंत्र मानता है।' वे पुनः कहते हैं—'वह विज्ञान, जिस पर वर्तमान संसार इतना गर्व करता है वास्तविक विज्ञान का जो आत्मविद्या या सनातनी विद्या से भिन्न नहीं है—एक उच्छिष्ट, भ्रमपूर्ण अंशमात्र है।' वर्तमान विज्ञान ज्ञान को अधम जड़ वस्तुओं के अध्ययन में आबद्ध करके निरर्थक एवं बुद्धिहीन बन गया है।

आधुनिक युग के वैज्ञानिकों की पदार्थ एवं ऊर्जा के विषय में नवीनतम खोजें—आधुनिक भौतिकी ने पता लगाया कि भौतिक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म है और नित्य परिवर्तनशील है। उसके केन्द्र में प्रोटोन और बाहरी परिधि में इलेक्ट्रॉन तीव्र गति से घूमते रहते हैं।

बेक्रेल ने एक्सरे X-Ray किरणों की गवेषणा करते समय देखा कि यूरेनियम से विकिरणें स्वतः निकलती रहती हैं।

मैडम क्यूरी ने सिद्ध किया कि रेडियम से स्वतः विकिरणें निर्गत होती रहती हैं और अन्त में रेडियम शीशा में रूपान्तरित हो जाता है।

रदरफोर्ड ने कहा कि परमाणु के केन्द्रक को तोड़ा जा सकता है तथा उसके टूटने पर केन्द्रक से विकिरण निर्गत होते समय उसमें अत्यन्त प्रबल ऊर्जा प्रकट होती है। विकिरण कणों की गति कई हजार मील प्रति सेकंड तक होती है। इस ऊर्जा को Radio Active Energy कहा गया।

मैक्स प्लांक ने कहा कि ऊर्जा का विकिरण पुंज के रूप में होता है। उसे ऊर्जा पैकेट कहा जाता है। इस सिद्धान्त को क्वांटम थ्योरी कहा जाता है।

नील्सबोर ने खोज की कि परमाणु में Electron केन्द्रक के चारों ओर कई कक्षाओं में चक्कर लगा सकता है।

जब Electron एक कक्षा से दूसरी कक्षा में छलांग लगाता है तब प्रबल ऊर्जा का विकिरण होता है।

लुइडी ब्रोगली ने खोज की कि प्रकाश ऊर्जा तरंगों में प्रवाहित होता है जो कणिका की गति को निर्देश देती है।

हाइजनबर्ग ने कहा कि भौतिक पदार्थ के दो पहलू सदा पाये जाते हैं। किसी समय कणिका के रूप में और किसी समय तरंग के रूप में।

हाइजनबर्ग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि किसी भी तरह से किसी कणिका अथवा तरंग की स्थिति एवं वेग का निश्चित रूप से एक साथ मापन नहीं किया जा सकता।

श्रोडिंजर ने क्वांटम सत्ताओं की एक मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की। सारी क्वाटंम सत्ताओं को तरंग कहा जा सकता है। उस पर ब्रोगली एवं हाइजनबर्ग के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ चुका था।

प्रत्येक प्रकार के कण मूल रूप से तरंग हैं। कणिका एवं तरंग को अलग नहीं किया जा सकता।

यदि किसी कण और उस पर विभिन्न बलों का ज्ञान हो तो उसका विभिन्न प्रकार की तरंगों और उनकी ऊर्जाओं के तरंग-फलन के प्रयोग द्वारा परिकलन किया जा सकता है।

किसी भी भौतिक सत्ता के दो पहलू अनिवार्य रूप से होते हैं—कणिका एवं तरंग। इलेक्ट्रॉन केवल मात्र कणिका के रूप में कभी नहीं पाया जा सकता। इलेक्ट्रॉन को सतत विद्युत् आवेश के रूप में पाया जाता है और वह विद्युत् आवेश परमाणविक केन्द्रक के चारों ओर वैद्युतिक क्षेत्र के रूप में फैला हुआ रहता है। इसमें सदा कम्पन होता रहता है।

भौतिक सत्ताएं तरंगों से बनी हैं। वे अत्यन्त गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील हैं। न्यूटन युग के भौतिकी के प्रत्ययों में मूलभूत परिवर्तन हो चुका है। भौतिक पदार्थों में तरंग ब्रह्म की चेतना की अभिव्यक्ति है। चेतना भौतिक पदार्थों में भी स्पन्दन के रूप में अन्तर्निहित है।

इस प्रकार भौतिकी की खोजें अणु-परमाणु, केन्द्रक (नाभि), इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रान आदि कणों से होते हुए तरंगकणिका तक पहुंच गई। अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि तरंगकणिकाओं में स्वतंत्र इच्छाशक्ति है, उनकी गति के यांत्रिक नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते। अर्थात् वे एक चेतन सत्ता हैं। फलस्वरूप भौतिकी में जड़-चेतन का आत्यंतिक विभाजन मिट गया। इसलिए श्रोडिंजर ने स्वयं लिखा है—'अब तत्त्वज्ञान के रहस्यवाद से दूर न रहकर मैं उनका पूरा उपयोग करूंगा। वे आगे कहते हैं सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं कि समान वातावरण में जीवन के अनुभव की व्याख्या करने के लिए वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।

वेदान्त दर्शन की स्वीकृति करते हुए वे कहते हैं कि चिद्बिन्दु एक ही है। वह मानते हैं कि चिद्बिन्दुओं का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में परिणत हो जाता है। इस दर्शन के अनुसार, हम सभी चेतन प्राणी एक ही सत्ता के अनेक रूप हैं। वह एक तत्त्व पाश्चात्य शब्दावली में God और उपनिषद् की शब्दावली में ब्रह्म है।

श्रोडिंजर लिखते हैं अद्वैत सिद्धान्त के निम्नलिखित नैतिक निष्कर्ष को हमें स्वीकार करना चाहिए—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।

गीता, 13/27-28

समस्त विनाशशील प्राणियों में समभाव से स्थित विनाशरहित परमेश्वर को देखता है वही (यथार्थतः) देखता है। क्योंकि सर्वत्र समभाव से अवस्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला अपने द्वारा अपने को नहीं मारता। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है। प्राणी मात्र के प्रति दया और करुणा के भाव यहां चरम लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है और मूलभूत एकता ही सत्य है।.... साधना का क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्ततः साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त को ग्रहण कर मुक्त हो सके। इस प्रकार श्रोडिंजर ने पदार्थ से विकिरण होने वाली ऊर्जा को भौतिक ऊर्जा न कहकर आध्यात्मिक ऊर्जा कहा। एक नोबल पुरस्कार विजेता विश्वविख्यात वैज्ञानिक द्वारा पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर चेतन एवं अभौतिक सत्ता की स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि आधुनिक विज्ञान अब वेदान्त की ड्योढ़ी पर मस्तक झुकाने के लिए आतुर हो उठा है।

1933 में भौतिकविदों को परमाणु के 6 भिन्न-भिन्न प्रकार के कणों के विषय में ज्ञान हो गया था—इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन, पाजिट्रॉन, न्यट्रीनो और फोटोन। 1947 तक 14 कणों का पता लगाया जा चुका है। 1957 तक 30 कणों का, 1967 में 230 कणों का या तो पता लग चुका है या उनके अस्तित्व की प्राक्कल्पना हो चुकी है। दो परमाणुओं के संयुक्त होने पर एक अणु बनता है। एक ग्राम पानी में 30300000000000000000000 अणु होते हैं। एक इलेक्ट्रॉन का भार 0.000000000000000000000000000911 ग्राम होता है। भौतिक जगत् में पदार्थ के सूक्ष्म कणों एवं तरंगों में एक स्वतःस्फूर्त गति है जिसे किसी चेतन सत्ता का स्पन्दन माना जा रहा है। कुछ वैज्ञानिकों ने जड़ पदार्थ और चेतन स्पन्दन दोनों को सत् मानकर चरम तत्त्व को द्विध्रुवीय माना है अर्थात् वे जड़ चेतन के द्वैत को मानते हैं। रसेल जड़ और चेतन से परे किसी तीसरी

अज्ञात सत्ता की कल्पना करता है। डार्विन और कार्लमार्क्स चेतन को जड़ का ही स्थान्तरण मानते हैं।

श्रोडिंजर, जेम्सजीन्स और एडिंगटन आदि चेतन सत्ता को सर्वोपरि व श्रेष्ठ मानकर उसी का एकछत्र राज्य मानने लगे हैं। सर जेम्सजीन्स के अनुसार भौतिक जगत् का मूल विचार बुद्धियुक्त चेतन स्वरूप है। भौतिक जगत् की घटनाएं बिना किसी सिद्धान्त के मनमाने ढंग की नहीं है। उनमें सामंजस्य, एकरूपता तथा विश्वव्यापी अनुशासन है। उन्हें गणित की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। जेम्सजीन्स के शब्दों में 'भौतिक जगत् में सामंजस्यपूर्ण घटनाओं की रचयिता कोई विचार-बुद्धियुक्त सत्ता है। वह महान् गणितज्ञ प्रतीत होता है जिसको परमेश्वर कहा जा सकता है।' भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुरूप जेम्सजीन्स मानता है कि समग्र विश्व का विराट् रूप तथा सूक्ष्म रूप चेतन स्वरूप ही है। समग्र भौतिक जगत् परमेश्वर द्वारा रचित है। भौतिक जगत् और उसकी घटनाएं परमेश्वर के मन में प्रत्यय के रूप में विद्यमान रहती हैं। यह इस भारतीय मान्यता का समर्थन है कि सारी सृष्टि परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई है। जेम्स जीन्स ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के आधारभूत स्वरूप में कोई अन्तर नहीं मानता। ये सभी चेतन स्वरूप हैं। चेतना की तीन विधाएं (रूप) हैं। इस प्रकार जेम्सजीन्स ने स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी विज्ञान के अन्तिम तार्किक निष्कर्ष में चैतन्य के प्रतिपादक प्रत्ययवाद अथवा भारतीय वेदान्त का समर्थन किया।

सर आर्थर एडिंगटन ने भी प्रकृति की प्रत्येक घटना में व्यवस्था का निरूपण करते हुए कहा कि भौतिक जगत् एक विश्वव्यापी मनस् (Universal mind) कहा जा सकता है। अनुभव के द्वारा मानव मन के स्वरूप को जाना जाता है। अनुभव के आधार पर मानव मन को यह ज्ञात होता है कि भौतिक जगत् का स्वरूप भी चेतन स्वरूप है। अतः ज्ञाता (चेतन मन) और ज्ञेय (भौतिक जगत्) में कोई अन्तर नहीं है। अतः भौतिक जगत् को मूल रूप से आत्मनिष्ठ कहा जा सकता है। भौतिक तत्त्व का स्वरूप केवल इन्द्रियों या यंत्रों द्वारा नापने से नहीं जाना जा सकता है। उसके स्वरूप को जानने के लिए अर्थ निर्णय की आवश्यकता होती है एवं ज्ञाता अपने चेतन मन की सहायता से भौतिक तत्त्वों का अर्थ निर्णय करता है। अतः भौतिक जगत् के विषय में हम जो कुछ भी खोजते और निष्कर्ष निकालते हैं वह सब हमारी अभौतिक चेतना का ही प्रसाद है। अतः भौतिक जगत् को विश्वव्यापी चेतना कहा जा सकता है। भौतिक जगत् में परिव्याप्त सार्वत्रिक चेतना को अलौकिक ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है।

रसेल और सुलिवेल ने जेम्सजीन्स और एडिंगटन की आलोचना की। क्योंकि उन्हें विज्ञान में चैतन्य तत्त्व की स्थापना न रुचती थी और न पचती थी।

किन्तु जेम्सजीन्स, एडिंगटन और श्रोडिंजर आदि की साहसपूर्ण खोजों से यह सर्वमान्य हो गया कि ज्ञाता और ज्ञेय के बीच ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में कोई बाधा नहीं होती। यह तभी है जब ज्ञाता और ज्ञेय के स्वरूप में कोई मूलभूत एकता है। भौतिकी के क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन के कारण मानव विचारधारा में भारी क्रान्ति आ रही है।

पदार्थ और ऊर्जा का सम्बन्ध अन्योन्याश्रयी है। आइंस्टीन ने कहा कि पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है और ऊर्जा पदार्थ में। प्रारम्भ में स्थूल दृष्टि से वैज्ञानिक मानते थे कि जब पदार्थ पदार्थ पर क्रिया करता है तब ऊर्जा प्रकट होती है। जैसे हाथों को रगड़ने से ताप ऊर्जा, अरणियों का मंथन करने से अग्नि, वस्तुओं के टकराने से ध्वनि ऊर्जा, चक्के के घूमने से डायनमो में चुम्बक या विद्युत् ऊर्जा, ताप ऊर्जा के ज्वलंत होने पर प्रकाश ऊर्जा। मोटे तौर पर यह ठीक प्रतीत होता है। किन्तु, पदार्थ के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि पदार्थ के अन्तर में एक प्रचण्ड ऊर्जा भरी हुई है, जो निरन्तर गतिशील है। पदार्थ जड़ और साकार है। ऊर्जा गतिशील एवं निराकार है। दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं। साकार इन्द्रिय ग्राह्य है और निराकार इन्द्रियातीत है। साकार स्थिर है और निराकार प्रचण्ड गतिमान है। जो दृश्य पदार्थ हैं उसका दृश्य रूप एक माया है, छलना है, धोखा है। क्योंकि तत्त्वत: वह अदृश्य ही है। अत: शंकर का मत कि दृश्य जगत् माया प्रत्यय है विज्ञान द्वारा भी सिद्ध हो रहा है। पदार्थ और ऊर्जा का एक-दूसरे में बदल जाना सिद्ध करता है कि साकार और निराकार में अंततोगत्वा कोई अन्तर नहीं—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।। 1/115/1, मानस

जो परमाणु शांत है वह अपने भीतर प्रचण्ड शक्ति लिए भयंकर शक्तिमान भी है। परमाणु शक्ति द्वारा कृषि कार्य में बहुत अधिक उत्पादन का चमत्कार हो रहा है। कृषि उत्पादन को परमाणु शक्ति के प्रयोग से शतगुणा, सहस्रगुणा बढ़ाया जा सकता है। उसी परमाणु शक्ति से अनेक असाध्य रोगों का उपचार कर जीवों का रक्षण एवं पालन हो सकता है। रेडियम किरणों द्वारा कैंसर का उपचार भी किया जाता है। उसी परमाणु शक्ति के भयंकर सर्वसंहारक रूप से परमाणु बम बनाकर मानवता का सर्वनाश किया जा सकता है। इस प्रकार परमाणु ऊर्जा में सृष्टि, स्थिति और संहार—तीनों की सम्भावनाएं निहित हैं। इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और संहारकर्ता शिव तीनों एक ही परम तत्त्व के तीन रूप सिद्ध होते हैं। एक का दूसरे में रूप परिवर्तन भी हो जाता है जैसे वैज्ञानिक अपनी योग्यता से परमाणु ऊर्जा को संहारक के स्थान पर कल्याणकारक रूप में बदल सकता है। उसी प्रकार भक्त अपने श्रद्धा के चमत्कार से कृष्ण को राम रूप में और शिव को

विष्णु रूप में बदल सकता है। इस प्रकार आधुनिक परमाणु विज्ञान भारतीय दर्शन की मान्यताओं को अपने ढंग से पुनः प्रकाशित-प्रमाणित कर रहा है।

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने कहा—सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अथवा सर्वम शक्तिमय जगत् अथवा सर्वभूत विष्णुमय जगत् या सर्वम कृष्णमय जगत्। कबीर ने गाया—'ब्रह्मबीज का सकल पसारा।' तुलसी ने मानस में वंदना की—'सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी' सारे विश्व का मूल बीज जो एक परम तत्त्व है। जो सारी सृष्टि का सृष्टा है, नियामक है और सृष्टि में व्याप्त होने के साथ सृष्टिमय है, विश्वरूप है, और विश्वातीत भी है। उसे जानना ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। आधुनिक विज्ञान भौतिकवाद का भवन खड़ा करके उसमें भौतिक प्रयोगशालाएं रचकर उनमें भौतिक पदार्थों का विश्लेषण, परीक्षण कर अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि सृष्टि का अन्तिम सत्य भौतिक पदार्थ नहीं वरन् एक विश्वव्यापी ऊर्जा है जो भौतिक पदार्थों के रूप में साकार भी हो जाती है, उनमें व्याप्त भी है। उनका सारतत्त्व भी है और स्वयं अभौतिक स्वरूपवाली है। अतः Materialism के स्थान पर ऊर्जावाद Energism का सिद्धान्त घोषित किया जा रहा है। यह पराशक्ति महाशक्ति ब्रह्मशक्ति की ही वैधानिक स्वीकृति है। भारतीय दर्शन के समान विज्ञान भी मानता है कि सूर्य, चन्द्र, तारे, जीव-जन्तु, वनस्पति, समस्त धातु एवं अधातु तत्त्व परमाणुओं का ही समूह मात्र है और उनकी गतिशीलता से उत्पन्न विकिरण ऊर्जा, प्रकाश, ताप, चुम्बकत्व, विद्युत् ऊर्जा एवं गुरुत्वाकर्षण आदि शक्ति के भिन्न-भिन्न रूपों (ऊर्जाओं) द्वारा संचालित है। भारतीय दर्शन में इन शक्तियों की समष्टि को ब्रह्म कहा जाता है। जिस प्रकार एक ही मूल शक्ति जब भिन्न-भिन्न देश-काल निमित्त से होकर गुजरती है तो वह भिन्न-भिन्न नामों एवं रूपों में पहचानी जाती है। जैसे ताप ऊर्जा ज्वलंत होने पर प्रकाश ऊर्जा में बदल जाती है। घर्षण से पहले ताप ऊर्जा फिर चुम्बक फिर विद्युत् ऊर्जा से प्रकाश ऊर्जा इस तरह भिन्न-भिन्न ऊर्जाएं परस्पर एक-दूसरे में रूपान्तरित होती रहती हैं। यह उसी प्रकार है जैसे महालक्ष्मी, महासरस्वती, महादुर्गा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं। एक ही ब्रह्म शक्ति वस्तु जगत् में देश, काल निमित्त से नाना रूपों में भासने लगती है। प्रत्येक भौतिक वस्तु देश-काल निमित्त से आबद्ध होती है। इसलिए हम उनकी अलग-अलग पहचान के लिए निमित्त के अनुसार नाम और देश-काल के अनुसार रूप मान लेते हैं। वास्तव में देश-काल निमित्त का मन से पृथक् कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ये मन के कल्पित भाव ही हैं। नाम तो स्पष्ट कल्पना ही है। देश-काल मोटे तौर पर कल्पित प्रतीत न होकर यथार्थ प्रतीत होते हैं। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु इनसे परिच्छिन्न है। किन्तु यदि देश-काल अन्तिम सचाई होते तो इन पर कोई विजय नहीं पा सकता। अथवा इनके बंधन से, इनकी

सीमा से मुक्त कभी न हो सकता। किन्तु हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं कि सुषुप्ति काल में देश-काल निमित्त सब लय हो जाते हैं। समाधि काल में देश-काल लुप्त हो जाते हैं। मन की एकाग्रता में, मन की तल्लीनता में मन को काव्यानन्द या संगीत रस से मिलने वाले सुख में भी देश-काल लुप्त हो जाते हैं। योगी की सारी साधना मन को जीतने की अर्थात् देश-काल पर विजय पाने की साधना है। इसलिए योगी अपनी चेतना द्वारा यत्र-तत्र सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। और काल की सीमाओं को तोड़कर त्रिकालदर्शी बन जाता है। मोक्ष तो देश-काल पर विजय का नाम ही है। अतः इस विश्व की माया रूप अनेकता के पीछे जो एकता है वही महेश्वर है। प्रकृति के नानात्व के पीछे जो एकत्व छिपा हुआ है उसे ही परम पुरुष कहते हैं।

बाह्य जगत् का ज्ञान हमारे मन, इन्द्रिय और मस्तिष्क पर निर्भर करता है। अतः वह सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं। भारतीय मनीषियों ने घोषणा कर दी थी कि परमतत्त्व इन्द्रियातीत, मन-वाणी व बुद्धि से परे है।

विज्ञान ने खोजा है कि परमाणु की हलचल में आरम्भ में इलेक्ट्रॉन नामक सूक्ष्म कण ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी होता है। जब यह सूक्ष्म कण ताप या घर्षण के प्रभाव से इधर-उधर भागने लगता है तो उस क्रिया को परमाणुओं का विद्युतीकरण कहते हैं। जब हम हथेलियां रगड़ते हैं तब पैदा होने वाली गर्मी इलेक्ट्रॉन कणों के भागने से पैदा होती है। जब हम नाइलॉन और सिल्क का कपड़ा उतारते हैं तो यह चटचट की आवाज इसी कारण होती है। पानी के उबालने से बुलबुलों का फटना, बादलों में बिजली का चमकना भी इसी कारण होता है। सूर्य के ताप से यही क्रिया विभिन्न वस्तुओं—वनस्पति, जीव-जन्तु और मनुष्यों के शरीर में—निरन्तर होती रहती है। इसके फलस्वरूप रीढ़ के तंतुओं में गतिशीलता उत्पन्न होती है। इस क्रिया द्वारा मनुष्य में रजोगुण वर्तमान रहता है और उसमें जीवन संचार होता रहता है। वेदान्त के शब्दों में हम क्रिया को आत्मा पर प्रकृति का बंधन कहते हैं। प्रकृति में रजोगुण के प्रभाव से ही जगत् का सारा क्रियाकलाप चलता है। तमोगुण में प्रकृति मृत एवं जड़ बनी रहती है। सत्त्वगुण में वह शांत एवं क्रियाहीन बन जाती है। संसार का संसरण रजोगुण से ही चलता है। प्रकृति की अनवरत प्रक्रिया को ही हम माया कहते हैं। इसी क्रिया द्वारा बीज वृक्ष का रूप धारण करता है और शुक्राणु तथा अण्डाणु मिलकर जीवों के शरीर की रचना करते हैं।

मायाधीश ईश्वर प्रकृति या माया के बंधन में नहीं—माया का एक अर्थ है सर्जना शक्ति। परमेश्वर इस सर्जना शक्ति माया द्वारा ही सृष्टि को रचता है। किन्तु वह मायापति होने के कारण माया से भ्रमित या बंदी नहीं होता। जादूगरी अपने जादू से स्वयं जादूगर को नहीं बांध सकती है। जीव भी इसी माया शक्ति के

सहारे संसार सृष्टि, भवन सृष्टि, कला सृष्टि, निर्माण सृष्टि आदि-आदि करता है। किन्तु यह माया से भ्रमित एवं बद्ध हो जाता है। जीव का माया से विवश हो जाने से वह प्रकृति के बंधन में पड़कर दु:ख पाता है। उसे माया से मुक्त करके महेश्वर से मिलाना यही दर्शन का प्रयोजन है।

विज्ञान अपने बाह्य भौतिक साधनों द्वारा प्रकृति की इस रजोगुणमयी (परमाणुओं के विद्युतीकरण की) क्रिया को कभी नहीं रोक पाएगा। क्योंकि विज्ञान किसी क्रिया को पदार्थ का स्वाभाविक गुण मानता है जिसके द्वारा समस्त जगत् की रचना होती है। इसकी तुलना में वेदान्त एवं योगशास्त्र का मत है कि मनुष्य आत्म शक्ति एवं योग साधना द्वारा प्रकृति की इस प्रक्रिया को रोककर उसके बंधन से मुक्त हो सकता है। योगी अपने योगबल से शरीर की क्रियाओं को अपने संकल्प से रोककर उन पर वश कर लेता है। वह अपने मन के नियंत्रण से संकल्प को भी रोककर निर्विकल्प समाधि में चला जाता है। वह भूत, भविष्यत्, वर्तमान के बंधन से भी मुक्त हो जाता है। इस प्रकार विज्ञान जहां समाप्त होता है दर्शन वहीं से प्रारम्भ होता है। Metaphysic का स्थान Physic के बाद ही है।

परमाणुओं में गति का मूल प्रेरक कौन है? विज्ञान मानता है कि विद्युत् चुम्बकीय शक्ति अथवा Radio Active waves का अविरल प्रवाह ही अन्तिम सत्य के रूप में खोजा जा सका है। यह विद्युत् तरंगें विद्युत् कणों से बनती हैं जिन्हें इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रोन कहते हैं। इन तरंगों का प्रवाह सर्पगति से न चलकर मंडूक गति से चलता है। अब प्रश्न पैदा होता है कि मंडूक के समान विद्युत् तरंगों का प्रवाह निरन्तर न चलता हुआ कुछ छलांगें लगाकर रुक जाता है तथा पुन: अकस्मात् छलांगें भरने लगता है। भारतीय दर्शन पश्चिमी विज्ञान को ललकार कर पूछता है कि विद्युत् तरंगों का प्रवाह शुरू ही क्यों हुआ? उसको प्रारम्भिक गति किसने दी? फिर विच्छेद पड़ जाने पर वह पुन: गतिमान कैसे हुआ? विज्ञान स्वयं मानता है कि बिना गति देने वाले के गति हो ही नहीं सकती। भारतीय दर्शन में संसार का अर्थ गति है। **'संसरति इति संसार:'** जगत् का भी यही अर्थ है **'गच्छति इति जगत्'** चल रहा है वह ही जगत् है। इस जगत् की गति विच्छिन्न होकर फिर पुन: गति इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान के पास नहीं है। दर्शन कहता है कि संसार किसी सृष्टा की संकल्प शक्ति से गतिमान हो रहा है। जड़ को कोई चेतन ही स्पन्दन दे सकता है। श्रोडिंजर ने भी इसी आधार पर कणिका तरंगों के पीछे एक चेतन सत्ता को माना है।

रसायन ने जो 105 मूल तत्त्व खोजे हैं उनकी क्रमबद्ध तालिका में किसी विश्वव्यापी गणितीय प्रतिभा का संकेत मिलता है। रूस के प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डी.एस. मोडिलिएफ ने तत्त्वों की क्रमबद्ध तालिका तैयार की है। यदि मूल तत्त्व में

79 इलेक्ट्रॉन तथा 79 प्रोटोन हैं तो तालिका के अगले मूल तत्त्व में 80 इलेक्ट्रॉन और 80 प्रोटोन होंगे। इस प्रकार एक इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन के विद्युत् कण घट-बढ़ जाने से मूल तत्त्व बदल जाता है। इससे प्रकट होता है कि मूल तत्त्वों की रचना भी किसी चेतन गणितज्ञ प्रतिभा का ही वरदान है। सौरमण्डल, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की गतियां इतनी नियमित एवं गणित शुद्ध हैं कि ज्योतिषशास्त्री सैकड़ों वर्ष पहले और पीछे का हिसाब लगाकर सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि की तिथियां एवं उनके छाया प्रभाव क्षेत्र की शुद्ध गणना कर लेते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित संसार की सभी घड़ियां एवं कालमापक यंत्र बिगड़ सकते हैं किन्तु ग्रह-नक्षत्रों की विश्वव्यापी घड़ी कभी धोखा नहीं देती। सारी सृष्टि के ग्रह-नक्षत्रों को लयबद्ध, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित, नियमित करने का काम किसी विश्वव्यापी चेतन शक्ति या बौद्धिक प्रतिभा शक्ति के बिना नहीं हो सकता।

जहां तक रसायन के खोजे हुए तत्त्वों का प्रश्न है कई ऐसे तत्त्व हैं जिन्हें मूल तत्त्व गिना जाता था। अब उन्हें मूल तत्त्व की सूची से निकाल दिया गया। रेडियम मूल तत्त्व था परन्तु देखा गया कि इसका परमाणु समय बीतने के साथ झड़ते-झड़ते (lad) शीशा और हीलियम गैस में परिवर्तित हो जाता है। उन दोनों को भी मूल तत्त्व माना जाता है। प्रश्न उठता है एक मूल तत्त्व दूसरे तत्त्व में कैसे परिवर्तित हो सकता है? यदि बदल जाता है तो मूल तत्त्व नहीं वह कुछ अन्य तत्त्वों का सम्मिश्रण है।

आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि पदार्थ और ऊर्जा में कोई अन्तर नहीं है। किसी पदार्थ के कण विघटित होकर यदि प्रकाश की गति (एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकंड) प्राप्त कर ले तो वह पदार्थ रेडियोधर्मी ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। इसके विपरीत जब ऊर्जा केन्द्रीभूत होकर जम जाए तो उसे पदार्थ कहते हैं। आइंस्टीन के इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को सांख्य दर्शन की भाषा में ऐसे कहा जा सकता है कि प्रकृति जब अव्यक्त रूप धारण करती है तो ऊर्जा कहते हैं और जब व्यक्त रूप धारण करती है तो उसे पदार्थ कहते हैं। गीता की शब्दावली में पदार्थ क्षर प्रकृति है और ऊर्जा अक्षर प्रकृति है।

मनुष्य के शरीर का निर्माण पदार्थ के परमाणुओं से ही हुआ है। विज्ञान बाहर के पदार्थ परमाणु में एक प्रचण्ड शक्ति को खोज सकता है जिसके अनुसार लगभग एक किलो कोयले को पूर्णतया परमाणु ऊर्जा में बदल देने पर उससे करोड़ों किलोवॉट बिजली पैदा हो सकती है। जिससे हजारों कल-कारखाने महिनों तक कार्य कर सकते हैं। इसी प्रकार दार्शनिक साधना द्वारा स्वयं मनुष्य की आन्तरिक शक्ति को लाखों गुणा बढ़ाकर असीम शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। विज्ञान ने पदार्थ शक्ति का दैत्य खड़ा करके उसके सामने स्वयं मानव को

भयभीत, हताश, निराश, मरणापेक्षी, तुच्छ मुर्गे के समान खड़ा कर दिया है। विज्ञान के पदार्थ ऊर्जा के अनुरूप मानव के अभ्यन्तर विकास का कार्य वेदान्त या योगदर्शन कर सकता है। वैज्ञानिक बिजली पैदा कर कल-कारखाने चला सकता है। किन्तु मानव के अन्तर में बिजली की शक्ति पैदा नहीं कर सकता। विज्ञान की सबसे बड़ी कमजोरी है उसे जड़ प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ेगा। भारतीय दर्शन का कहना है कि मनुष्य स्वयं ब्रह्म है। वह अपने भीतर की विराट् शक्ति को पहचान ले तो प्रचण्ड शक्तिशाली महाप्रकृति स्वयं उसके चरणों की दासी बन जाएगी ।

जीवनी शक्ति का मूलस्रोत जड़ अथवा चेतन—पदार्थ ऊर्जा से भी अधिक रहस्यमयी जीवनी शक्ति है। जिसका मूलस्रोत विज्ञान के लिए अभी तक रहस्य बना हुआ है। भौतिकवाद का कथन है कि जीवात्मा जैसी कोई सत्ता नहीं है। जड़ से ही चेतन का आविर्भाव हो जाता है। आधुनिक विज्ञान का कथन है Protoplasm (जीवद्रव्य) ही जीवन की इकाई है जिससे जीवन का आरम्भ होता है।

Protoplasm में निम्नलिखित द्रव्य पाये जाते हैं—

कार्बन 55 प्रतिशत

ऑक्सीजन 23 प्रतिशत

नाइट्रोजन 14 प्रतिशत

हाइड्रोजन 7 प्रतिशत

गंधक, पोटेशियम, सोडियम 1 प्रतिशत = कुल 100 प्रतिशत

Protoplasm के सबसे छोटे कण को Cell या जीवकोष कहा जाता है। केवल एक जीवकोष वाले प्राणी को अमीबा कहा जाता है।

मनुष्य के शरीर में असंख्य जीवकोष हैं। पेन्सिल बनाते समय यदि अचानक ब्लेड उंगली को लग जाए तो एक बूंद रक्त में 33 करोड़ जीवकोष होंगे। अमीबा इतना सूक्ष्म है कि बारीक सूई की नोक पर सैकड़ों अमीबा उठाये जा सकते हैं। अरबों वर्ष पहले पार्थिव तत्त्वों के सम्मिश्रण से अचानक अमीबा बन गया होगा। अमीबा में त्वचा के अतिरिक्त कोई इन्द्रिय नहीं है। वह उसीसे खाता, पीता, सांस लेता और चलता-फिरता है। विज्ञान का यह मत है कि इस प्रकार भौतिक पदार्थों से ही जीवन की उत्पत्ति हुई। यही Protoplasm धीरे-धीरे विकसित होते हुए लाखों-करोड़ों वर्षों में भिन्न जीवों की योनियों से बदलते हुए मनुष्य बन गया। चार्ल्स डार्विन ने अपने विकासवाद के सिद्धान्त में यह प्रतिपादित किया कि जीव जलचर में मछलियों, मेढकों, कछुओं और थलचर में पशुओं, बंदरों, लंगूरों आदि के रूप में विकसित होते-होते धीरे-धीरे मनुष्य के रूप में पूर्ण विकसित हो गया। चाहे डार्विन का क्रमिक विकासवाद भारतीय दर्शन को मान्य नहीं है

फिर भी डॉ. एनीबेसेन्ट और कुछ अन्य चिन्तकों ने भारत के अवतारों की क्रम शृंखला में डार्विन के विकासवाद की पूर्व कल्पना का बीज खोजने का प्रयास किया है। मत्स्यावतार, केवल जलचर जीव का प्रतीक है। कच्छप अवतार जलचर सह थलचर जीव कोटि का प्रतीक है। वराह (शूकर) पूर्ण थलचर जीव का प्रतीक है। नृसिंह नरपशु का प्रतीक है। वामन छोटे-बौने मनुष्य का, परशुराम रौद्ररूपी प्रचण्ड क्रोधवाले मनुष्य का, श्रीराम पूर्ण मर्यादित मनुष्य का, श्रीकृष्ण तत्त्वद्रष्टा रूढिमुक्त विचारक्रान्ति वाले महामानव का तथा कल्कि-अवतार भावी युग के आदर्श मानवों का प्रतीक है।

विज्ञान ने जीवन एवं जीवों पर बड़े रोचक परीक्षण किये हैं। गर्मी की ऋतु में मेढक आदि अनेक जलचर तालाबों के सूख जाने के कारण अदृश्य हो जाते हैं। कुछ तो मर जाते हैं और कुछ सूखे तालाबों एवं सूखी नदियों के तल में घुसकर खाना-पीना, श्वसन क्रिया त्याग कर मृतक की तरह निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। मानो वे किसी योगी के समान भूमिगत समाधि लगाये पड़े हों। वर्षा का पहला छींटा पड़ते ही वे टर्राते हुए पुनः प्रकट हो जाते हैं। वे मृतक जैसे सूखे हुए कंकाल पुनः जीवित एवं चैतन्य हो उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे सूखे हुए धान के बीज के समान आठ-नौ मास तक पड़े रहते हैं और वर्षा का छींटा पड़ते ही तुरन्त अंकुरित होकर जीवन से लहलहाने लगते हैं। यदि मानव मेढक की अपेक्षा अधिक विकसित प्राणी है तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि जो जीवनी शक्ति की क्षमता एक छोटे मेढक में है वह अभी तक न डार्विन में विकसित हुई न उसके पूर्वजों में और न उसके वंशजों में। मनुष्य भोजन के बिना कुछ दिन जी सकता है, पानी के बिना कुछ घण्टे निर्वाह कर सकता है, किन्तु वायु के बिना उसका निर्वाह कुछ क्षणों में ही दूभर हो जाता है। विज्ञान जहां हार जाता है वहां आध्यात्मिक साधना द्वारा योगी लोग कई-कई मास की लम्बी समाधि ले लेते हैं। जिसमें वे भूख, प्यास, श्वसन क्रिया को वश में कर लेते हैं। अपनी नाड़ी गति एवं हृदय गति बंद कर बैठते हैं। वैज्ञानिक परीक्षण से वे मृत घोषित किये जाते हैं किन्तु वे जीवित रहते हैं और अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक विकसित एवं महान् जीवन जीते हैं। मेढक की लम्बी समाधि के आधार पर भी भारतीय दर्शन में एक माण्डूक्योपनिषद् है।

रूस की विज्ञान-पण्डिता एक महिला ने हाइड्रा नामक एक सूक्ष्म प्राणी को खरल में पीस लिया। इस जीवनरहित मैटर को एक परखनली में भर लिया गया। परखनली में कुछ पोषक तत्त्व डाल दिये गये। कुछ समय बाद देखा गया कि हाइड्रा के पिसे-पिसाये अजीवित शरीर से जीवित हाइड्रा के चिह्न प्रकट होने लगे। वैज्ञानिक इससे यह सिद्ध करते हैं कि जीवन जड़ पदार्थों से बना है। किन्तु वास्तव में इससे यह सिद्ध हो रहा है कि जीवन बड़ा रहस्यमय तत्त्व है जिसके मूल बीजों

को खरल में पीस देने पर, धूप और वायु में सुखा देने पर भी नष्ट नहीं किया जा सकता। गीता में इसी को इंगित करते हुए कहा गया है कि वास्तविक जीवन (आत्मा) को शस्त्र काट नहीं सकते। आग जला नहीं सकती। पानी गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती।

जड़ पदार्थ से जीवन निर्माण के कई प्रयोग किये जाते हैं। भौतिकवादी कहते हैं गंदे पानी में अपने आप अमीबा हो जाते हैं। गोबर में अपने आप कीड़े हो जाते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि गंदे पानी में या गोबर में पहले से ही कुछ जीव-जीवाणु, कीटाणु वर्तमान रहते हैं। कुछ जीवाणु बैक्टीरिया आदि के रूप में वायुमण्डल में भी रहते हैं। इसलिए यह कहना तर्कसम्मत नहीं है कि गंदे पानी या गोबर में से अपने आप जीव पैदा हो जाते हैं। यदि पानी और गोबर को विधिपूर्वक कीटाणु मुक्त कर दिया जाए और उसे वायु रहित स्थान Vacuum में या शीतल यंत्र (फ्रीज) में रख दिया जाए तो उसमें कोई जीव पैदा नहीं होंगे। हम प्रतिदिन देखते हैं कि बाहर के वायुमण्डल में जो खाद्य वस्तु गल-सड़ जाती है वह बर्फ में या शीतल यंत्र में विकृत नहीं होती। इसी प्रकार अचार एवं मुरब्बे तेल में या खाण्ड के पाक में रखने पर उसमें भी कीड़े नहीं पड़ते। जो शर्बत बाहर के साधारण वायुमण्डल में कुछ घंटों में बदबू मारने लगता है उसको कीटाणुनाशक औषधि डालकर बोतलों में बंद करके कई मास अथवा वर्ष रखा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव जीव से ही जीवन प्राप्त करता है। चाहे वह जीव उसमें पहले से सुप्त पड़ा हो या वायुमण्डल से आ जाए या अन्य वस्तु के स्पर्श से। जड़, अजीव में से जीव पैदा होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

वैज्ञानिकों ने Protoplasm (जीवद्रव्य) का विश्लेषण तो कर लिया है। किन्तु, कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि के सम्मिश्रण से वे आज तक कृत्रिम रूप से बना नहीं सके। वैज्ञानिक केवल विश्लेषण कर सकता है। जीवन तत्व को उत्पन्न नहीं कर सकता। मजदूर केवल भवन को गिरा सकता है, उसका निर्माण तो इंजीनियर ही कर सकता है। गीता के श्लोकों को स्वर और व्यंजनों में बांट देने से गीता का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। कालिदास के काव्य को छपाई के काले अक्षरों में क ख आदि में जोड़ने वाला या तोड़ने वाला छापेखाने का श्रमिक कालिदास के काव्य का आनन्द नहीं ले सकता। इसी प्रकार हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के विश्लेषण से जीवन द्रव्य का रासायनिक रूप समझा जा सकता है। किन्तु, जीवन का रहस्य नहीं पाया जा सकता। नवीनतम खोजों में Protoplasm को वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उत्पन्न करने की चेष्टा चल रही है। कहा जाता है कि रूस में थोड़ी सफलता भी मिली है। किन्तु, अभी तक उसे विश्व के वैज्ञानिकों की मान्यता नहीं मिली है। यदि जड़ रसायनों से जीव द्रव्य बनता तो

बिना जीवित मनुष्य के हाथ लगाये, बिना उनकी उचित मात्रा तौलकर मिलाये, बिना उसमें किसी जीवित के सहयोग के अपने आप जीवद्रव्य बनता। किन्तु ऐसा असम्भव है। जीवित वैज्ञानिक अपनी चेतना के द्वारा जीवद्रव्य का विश्लेषण करता है और अनेक वर्षों के लगातार प्रयोग के बाद उन रसायनों को उचित मात्रा में नाप-तौलकर, मिलाकर एक कृत्रिम जीवन बनाने की चेष्टा करता है। क्योंकि वायुमण्डल में भी अनेक जीवाणु तैरते रहते हैं। इसलिए उन्हीं में से कोई जीवन का बीज यदि हमारे रासायनिक घोल को छू जाए तो जीवद्रव्य के लक्षण प्रतीत होने लगेंगे। किन्तु यदि न वायुमण्डल के किसी जीव का सम्पर्क होने दिया जाए और न जीवित वैज्ञानिक अपनी चेतन बुद्धि का सहयोग दे तो जड़ रसायनों के अपने आप मिश्रण से जीवद्रव्य का निर्माण असम्भव ही होगा। इसी प्रकार परखनली में (Test tube babies) बच्चे का प्रयोग आधुनिक विज्ञान का चमत्कार माना जाता है। किन्तु, वीर्य किसी जीवित पुरुष का ही बीज है और रज भी किसी जीवित स्त्री का अंश है। उनका मिश्रण प्राकृतिक रूप में गर्भाशय में हो अथवा कृत्रिम गर्भाशय (परखनली) में हो इसका कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर केवल यही पड़ता है कि प्राकृतिक ढंग से प्रसव होने के स्थान पर बिना प्रसवपीड़ा के प्रयोगशाला में एक कृत्रिम, दुर्बल, अविकसित, अभागा अनाथ बच्चा जन्म लेता है जो कुछ मास के अन्दर ही मर जाता है।

अब तक विज्ञान जड़ से चेतना उत्पन्न नहीं कर सका। जहां भी जीवन दिखाई देता है वह पहले किसी विद्यमान जीवन से आया है। हाइड्रा को पीस देने पर भी उसका सूक्ष्म जीवाणु बना रहा। इसलिए रसायनों के प्रयोग से उसका पिसा हुआ जीवकोष पुनः सक्रिय होकर कार्य करने लगा। जिस महिला वैज्ञानिक ने हाइड्रा को पीसकर यह प्रयोग किया यदि स्वयं उसे ही पीसकर यह प्रयोग किया जाए तो वह कभी पुनर्जीवित नहीं हो सकेगी। जिस परिस्थिति में मेढक पुनर्जीवित हो जाता है उसमें मेढकों पर प्रयोग करने वाला वैज्ञानिक एक क्षण भी जी नहीं सकेगा। मनुष्य के मृत हो जाने पर कई बार निर्धन वनवासी अग्नि संस्कार के लिए उचित आर्थिक व्यवस्था होने तक कुछ मास के लिए मृतक को धरती में गाड़ देते हैं। उसके बाद में अग्नि संस्कार के लिए जब निकाला जाता है तो यह देखकर विस्मय होता है कि उसके नख एवं बाल बढ़ गये हैं। उसका कारण यह है कि मनुष्य के शरीर के मर जाने पर भी उसके शरीर के कोषों में बहुत निम्न स्तर का जीवन कुछ समय तक बना रहता है जिससे नख एवं बाल बढ़ सकते हैं। किन्तु हृदय एवं मस्तिष्क में प्राण संचार एवं रक्त संचार पुनः नहीं हो सकते। प्रकृति में जो बहुत छोटे स्तर के जीव हैं virus नामक रोगाणु (बैक्टीरिया, अमीबा आदि।) वे मनुष्य की अपेक्षा अधिक कष्टसहिष्णु, अधिक गर्मी-सर्दी सहने योग्य तथा

अधिक तीव्र गति से प्रजनन करने वाले होते हैं। इसी प्रकार हाइड्रा और मेढक, मच्छर और मक्खी आदि भी निम्न स्तर के जीव हैं। जो अधिक बड़े संकटों में भी जीवन को बनाए रखने की चेष्टा करते हैं। उनकी तुलना में कष्टसहिष्णुता में मानव का विकास न मानकर ह्रास ही मानना पड़ेगा।

डार्विन के विकासवाद से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव की रचना परमेश्वर द्वारा विशेष रूप से नहीं की गई। अपितु सरल प्रकारों के प्राणियों से ही उसका क्रमबद्ध विकास हुआ है। डार्विन विकास की प्रक्रिया के लिए ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता। उसके मत में विकास चार नियमों के अनुसार चल रहा है। जीवन संग्राम, योग्यतम की रक्षा, शारीरिक परिवर्तन और आनुवंशिकता। किन्तु सृष्टि में सबसे पहला जीव का बीज कहां से आया। इस विषय में वह और कोई भौतिकवादी समाधान न मिलने पर विवश होकर मान लेता है कि किसी तरह ईश्वर ने ही निर्जीव जड़ तत्त्वों में प्राण देकर आदिम जीवकोषों को उत्पन्न किया और जब जीवित कोष बन गये तब से अपने आप प्राकृतिक नियमों द्वारा विकसित होते रहे हैं। इस प्रकार डार्विन ने जीवन लीला के उद्घाटन के लिए ईश्वर को मान लिया। किन्तु, जीवन लीला के पूरे नाटक से ईश्वर को बहिष्कृत कर दिया।

वर्तमान युग में जीन पर विशेष शोधकार्य हो रहा है। डॉ. हरगोविन्द खुराना को इसी के शोध पर नोबल पुरस्कार मिला है। जीन एक प्रकार की कणिका है और इसी के प्रभाव से गर्भ में बढ़ते हुए भ्रूण की विशेषताएं निर्धारित होती हैं। यही कारण है कि जिस प्रकार के जीन माता-पिता में पाये जाते हैं उसी प्रकार के जीन संतानों में भी आ जाते हैं। वंश परम्परा का प्रभाव जीव विज्ञान की शब्दावली में जीन का प्रभाव ही है। वास्तव में शरीर की रचना तो जीन नामक जीवन-कणिका से वंश परम्परा के क्रम से चलती रहती है। इसलिए मंगोल जाति के बच्चे मंगोल मुखाकृति वाले, नीग्रो जाति के लोग नीग्रो जाति की मुखाकृति वाले और आर्य जाति के लोग आर्य मुखाकृति वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे अपने माता-पिता से कुछ मानसिक संस्कार एवं श्रद्धाएं भी वंश परम्परा से प्राप्त करते हैं। जिसकी उचित व्याख्या जीन से नहीं हो सकती।

यदि किसी कारण से एक जीन से कुछ परमाणु टूटकर निकल जाएं तो उस स्थिति में कुछ जीवित तंत्र की अभिवृद्धि में परिवर्तन हो जाता है। जीन मुख्य रूप से न्यूक्लयो प्रोटीन (अमीनो अम्ल) से बने होते हैं। प्रत्येक जीन के साथ एक विशेष प्रकार के एन्जाइम का सम्पर्क होता है। एन्जाइम जैव उत्प्रेरक है। जिसकी सहायता से शरीर के अन्दर रासायनिक पदार्थों से प्रतिक्रियाएं होती है। उदाहरण के तौर पर दही में एन्जाइम बहुत अधिक होते हैं जो पाचन क्रिया में बड़े सहायक होते

हैं। एक जीन में लगभग 2 हजार चरणों की सीढ़ी बनी होती है। मानव शरीर के एक क्रोमोसोम में लगभग 6 लाख 10 हजार ऐसे चरणों की सीढ़ी होती है। माता और पिता के कौन-कौन से जीन बच्चे के निर्माण में कितना-कितना सहयोग करेंगे यह सब अनिश्चित है। जीन उत्परिवर्तन के माध्यम से नवीन प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति होती है। डा. खुराना के शोध से सम्भवतः इच्छानुसार माता और पिता के जीन मिलाकर इच्छित प्रकार की संतान उत्पन्न की जा सकेगी। ऐसी सम्भावनाएं वैज्ञानिक प्रस्तुत करते हैं। इसमें मनुष्य को कितनी सफलता मिलती है यह तो भविष्य ही बताएगा। यदि डा. खुराना का जीन किसी वैज्ञानिक विधि से उसकी संतान में जा सके तो सम्भवतः उनका पुत्र भी उन जैसा Genius बन जाए। किन्तु भारतीय दर्शन मानता है कि सन्तान में जो गुण सम्पदा है उसमें माता-पिता की नस्ल, उनके विचार-संस्कार तथा जीव के अपने पूर्व जन्मों के कर्म संस्कार सब मिलकर संयुक्त प्रभाव डालते हैं। जुड़वा बच्चों में माता-पिता के जीन समान होते हैं। जन्म का काल लगभग समान होता है। शरीर की रचना एवं आकृति आदि भी समान होती है। उनका आयुष्य भी लगभग समान होता है, जीवन की रुचियां भी लगभग समान होती है। किन्तु, उनकी कर्म संस्कार परम्परा भिन्न होने के कारण दोनों की नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक प्रवृत्तियां भिन्न होती हैं। इसके लिए जीव विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं है। फिर जीन की नवीनतम खोजों से भी जड़ से जीवन की उत्पत्ति कहीं प्रमाणित नहीं हो रही है। जीवित माता-पिता के जीन उनकी संतान में जाते हैं। यही सिद्ध हो रहा है।

जीवित तत्त्व भौतिक तत्त्वों के समान ही क्रिया करते हैं। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि ये पर्यावरण से कुछ भौतिक तत्त्वों को अपने अन्दर शामिल करने की क्षमता रखते हैं और उन भौतिक तत्त्वों को अपने शरीर के लिए उपयोगी जीवित सत्ताओं के रूप में रूपान्तरित कर देते हैं। रूपान्तरित होने पर उनमें कुछ नूतन गुण-धर्मों की भी उत्पत्ति होती है। उदाहरण के रूप में एक पौधा या वृक्ष मिट्टी, जल, नाइट्रोजन आदि भौतिक तत्त्वों को अपने जीवन के लिए उपयोगी तत्त्वों में रूपान्तरित कर लेता है। कई कीटाणु मिट्टी में ही पैदा होते हैं और मिट्टी खाकर जीते रहते हैं। मनुष्य जड़ खनिज पदार्थों को तथा जीवित खाद्य पदार्थों को पचाकर अपने जीवन के लिए उपयोगी बना लेता है। जीवित तंतु में भौतिक तंतुओं के साथ मनोभौतिक सत्ताएं भी विद्यमान रहती हैं। जीवित तंत्रों का निकटतम लक्ष्य अपनी तथा अपनी प्रसूतियों की अधिकाधिक अतिजीविता है। वे परिवर्तनशील पर्यावरण के साथ अनुकूलन के माध्यम से अतिजीवित रहने में समर्थ होते हैं। ये अतिजीवित रहने पर अन्य ऊंचे स्तरों के मूल्यों की रचना कर सकते हैं। विकास के क्रम में ऊंचे उठते जाने से प्रसूतियों की संख्या कम होती

जाती है। कीड़े-मकोड़ों की प्रसूतियां अधिक संख्या में होती है और उनके विनष्ट होने की सम्भावना भी अधिक होती है। इसकी तुलना में मनुष्य की प्रसूतियां कम होती है। किन्तु, विनाश होने की सम्भावनाएं भी उनकी अपेक्षाकृत कम हो जाती है। जीवन का स्तर जड़ पदार्थ से ऊंचा और पशु जीवन से नीचा है। पेड़-पौधे में जीवन तो भारतीय मनीषी सदा से मानते आये हैं जिसे आधुनिक काल में डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने पुनः वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध किया। किन्तु पेड़-पौधे में मानसिक चेतना है या नहीं इस प्रश्न पर विज्ञान मौन है तथा प्रायः यही मान लिया जाता है कि उनमें मानसिक चेतना नहीं है। किन्तु भारतीय दर्शन मानता है कि उनके भीतर चेतना घनी सुषुप्ति के स्तर पर रहती है। बिना चेतना के पौधा कैसे जानेगा कि उसके लिए क्या खाद्य है और क्या अखाद्य है और खाद्य को प्राप्त करने के लिए कैसा प्रयास करना है?

भारतीय दर्शन में षड्दर्शनों की श्रृंखला में सांख्य दर्शन विज्ञान की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। पंडित भगवत दत्त Reaserch Scholar ने अंग्रेजी के Science शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के सांख्य शब्द से बताई है। सांख्य शब्द ही अपभ्रंश होकर सास्य और साइंस बन गया। प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक विल डुरेन्ट का कथन है कि 'दर्शनशास्त्र विज्ञान का चरम बिन्दु है। इस दृष्टि से देखा जाए तो विज्ञान दर्शनशास्त्र का प्रारम्भिक बिन्दु या मूल है। सांख्य दर्शन का महाभारत में स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। गीता में भगवान् कृष्ण सांख्य का बहुत महत्त्वपूर्ण उल्लेख करते हैं और सांख्य के रचयिता महर्षि कपिल को स्वयं अपनी विभूति बताते हैं। **'सिद्धानां कपिलो मुनिः'**। कपिल मुनि ब्रह्मा के मानसपुत्र माने जाते हैं। कपिलजी महाभारत एवं पुराणों में देवहूति और कर्दम ऋषि के पुत्र बताये गये हैं। श्री गुरुदत्त के मत में त्रेतायुग को प्रारम्भ हुए 21,65,076 वर्ष हो चुके हैं। लगभग इतने ही वर्ष महर्षि कपिल को हुए माने जाते हैं। अतः कपिल मुनि को संसार का प्रथम दार्शनिक माना जाता है। क्योंकि उनका दर्शन विज्ञानसम्मत है। अतः वे संसार के प्रथम वैज्ञानिक भी माने जाते हैं।

वेदों में भी सांख्य दर्शन के बीज वर्तमान है। सांख्य के विषय को (संक्षेप में) निम्नलिखित बिन्दुओं में कहा जा सकता है—

(1) जगत् की रचना से पूर्व क्या था और कैसे रचना आरम्भ हुई?

(2) रचना आरम्भ करने वाला कौन था?

(3) रचना का क्रम कैसा था?

(4) जगत् में प्राणी की रचना सर्वोत्कृष्ट कार्य है।

(5) प्राणी क्या है?

(6) जड़ से प्राणी भिन्न है। भिन्नता चेतना की है। चेतना स्वयं जड़ नहीं है। किन्तु वह मन-बुद्धि और इन्द्रिय से प्रकट होती है। जो प्रकृति के ही रूप हैं। प्रकृति बिना चेतन पुरुष स्वतः कार्य नहीं कर सकती।

(7) मन, बुद्धि, इन्द्रिय शरीर के अतिरिक्त प्राणी में जीवात्मा है। जो शरीर की क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है तथा शरीर के कर्मों का उत्तरदायी है।

(8) धर्म युक्त कर्म का फल सुख और अधर्म युक्त कर्म का फल दुःख होता है।

(9) जीवात्मा संसार में व्याप्त एक शक्ति का प्रयोग करता है। जब यह शक्ति इन्द्रियों में कार्य करती है तो प्राण कहलाती है।

(10) जीवात्मा नित्य है। वह विनाश को प्राप्त नहीं होता। इसकी मुक्ति दो प्रकार से होती है—

(क.) साधना करके विवेक प्राप्त होने पर।

(ख.) प्रलय में जब पूर्ण जगत् परमाणु भूत हो जाता है तब यह निष्क्रिय हो जाता है।

(11) एक कोषाणु वाले जीव (अमीबा) से लेकर सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य तक नीचे से ऊपर जाने को उत्क्रमण कहते हैं और ऊंची योनि से नीचे की योनि में आने को अवक्रमण कहते हैं। ये कर्मफलों के कारण ही होता है। केवल अंधप्रकृति के धक्केमात्र से नहीं। जीवात्मा सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ एक योनि से दूसरी योनि में कर्मफल की डोरी से बंधा हुआ जाता है। ब्रह्मलोक में जीवात्मा सूक्ष्म शरीर के बिना जाता है और महाप्रलय में भी वह सूक्ष्म शरीर से रहित हो जाता है।

(12) मुक्तावस्था विवेक से प्राप्त होती है। विवेक प्रकृति-पुरुष के भेद का यथार्थ ज्ञान है। मुक्ति में त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है और परमात्मा की प्राप्ति होती है।

नासदीय सूक्त—

वेद के नासदीय सूक्त में उस अवस्था का चित्र बड़ा कवित्वमय एवं विस्मयकारी चित्रित किया गया है—

प्राण और आकाश तब उसी अनन्त पुरुष में सुप्त भाव में थे किन्तु किसी प्रकार का प्रकट प्रपंच नहीं था। इस स्पन्दन रहित अप्रकाशित अवस्था को अव्यक्त कहते हैं। कपिल मुनि ने उस अवस्था को प्रकृति की साम्यावस्था कहा है। अव्यक्त से व्यक्त की प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म, वैज्ञानिक प्रक्रिया है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में प्राण के बार-बार आघात के द्वारा आकाश से वायु और उसके द्वारा ही वाष्पीय

भूत की उत्पत्ति होती है। स्पन्दन के क्रमशः द्रुत से द्रुततर होने पर उत्ताप अथवा तेज की उत्पत्ति होती है। क्रमशः उत्ताप कम होकर शीतल होता रहता है तब यह वाष्पीय पदार्थ तरल भाव ग्रहण करता है। उसे आपः (जल) कहते हैं। अन्त में वह कठिन आकार प्राप्त करता है उसका नाम पृथ्वी है... ठीक इसके विपरीत क्रम में सब अव्यक्तावस्था को प्राप्त होते हैं। सब कठिन वस्तुएं तरल आकार में परिणत होती हैं। तरलावस्था लुप्त होकर केवल उत्तापरोधी के रूप में परिणत होती है। वह फिर धीरे-धीरे वाष्पीय भाव धारण करती है। फिर परमाणु समूह विश्लिष्ट होना आरम्भ करते हैं और सबसे अन्त में सब शक्तियों की सामंजस्य अवस्था उपस्थित होती है। तब स्पन्दन बंद होता है—इसी प्रकार से कल्पान्त होता है।

2. सृष्टिकर्ता कौन?—जड़वादी मानते हैं कि सृष्टि बिना किसी सृष्टिकर्ता के अपने आप उत्पन्न हुई है। यहां कोई सृष्टिकर्ता नहीं है। सांख्य दर्शन के विषय में भी कुछ विचारकों ने यह भ्रान्ति फैलाई है कि चाहे यह दर्शन वेदमूलक है। किन्तु, प्रकृति के गुणों से ही सृष्टि की रचना मानता है और किसी सृष्टिकर्ता की आवश्यकता नहीं मानता। सांख्य तो दो प्रधान तत्त्व मानता है—प्रकृति और पुरुष। प्रकृति पांच तत्त्वों और तीन गुणों के रूप में अपना खेल तभी कर सकती है जब उसका पुरुष से संयोग होता है। पुरुष जीवात्मा है जो अनेक है। अतः सृष्टिकर्ता किसी एक पुरुष को माना जाए। इसी पर सांख्य के भाष्यकर्ताओं में मतभेद है। वास्तव में प्रारम्भ में सांख्य दर्शन वेदमूलक होने के कारण सृष्टिकर्ता ईश्वर को मानता था। किन्तु, बाद के कुछ भाष्यकारों ने सृष्टिकर्ता ईश्वर की आवश्यकता नहीं मानी। जैन दर्शन भी चाहे मुक्तावस्था में आत्मा के परमात्मा बन जाने के आदर्श को स्वीकार करता है। किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता। अर्थात् ईश्वर हमारा प्रारम्भिक मूल न होकर केवल अन्तिम लक्ष्य है। सांख्य दर्शन के तीसरे अध्याय के 55वें सूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि—

'अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्।'

अर्थात् यह जगत् ईश्वर का कार्य परिणाम न होने पर भी परवश होने के कारण ईश्वर से सम्बद्ध है। चराचर जगत् परवश है। ईश्वर इसका कर्मफलदाता एवं नियामक है—

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता।।56।।

अर्थात् वह ईश्वर सर्वान्तर्यामी और सबका कर्ता है।

ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा।।57।।

इस प्रकार ईश्वर की सिद्धि इस दर्शन में दृढ़ता से की गई है। तात्पर्य यह है कि सांख्य ईश्वर को जगत् का उपादान कारण तो मानता ही नहीं निमित्त कारण

मानने में भी लगभग मौन है। किन्तु ईश्वर को जगत् का नियंता, अधिष्ठाता एवं जीवों की मुक्ति का लक्ष्य अवश्य मानता है। इसी भाव को गीता में भगवान् ने इन शब्दों में कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। 9/10

अर्थात् मेरी अध्यक्षता में प्रकृति चराचर जगत् को रचती है। इसी कारण प्रकृति का बनना-बिगड़ना होता रहता है।

परमेश्वर की अध्यक्षता में प्रकृति जगत् को रचती है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि परमेश्वर सृष्टि के नियामक शासक हैं। उसे सांख्य दर्शन मानता है।

दूसरी व्याख्या यह हो सकती है कि परमेश्वर प्रकृति के कामों की उचित देखरेख एवं परीक्षा करने वाले निरीक्षक के समान हैं। अध्यक्ष का अर्थ है अधि+अक्ष अर्थात् जो अपने से नीचे वालों पर नजर रखे। जैसा आजकल Observer का काम होता है। अध्यक्ष का अधिक व्यापक भाव स्वामी के अर्थ में भी है। जो अपने आदेश से अथवा अपने संकल्प मात्र से प्रकृति रूपी चेरी को आदेश देकर चराचर जगत् की सृष्टि कराता है। न्याय-वैशेषिक-सांख्य, योग, मीमांसा सभी ने प्रकृति को जगत् का उपादान कारण माना है और ईश्वर को निमित्त कारण। इनमें से सांख्य की व्याख्या में मतभेद है अन्यों में नहीं। सांख्य ईश्वर को सृष्टि का नियामक तो मानता ही है। वेदान्त परम पुरुष को ही सृष्टि का निमित्त कारण, उपादान कारण और नियामक कारण सभी कुछ मानता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सांख्य का मत अधिक सरल एवं सहज बुद्धिगम्य प्रतीत होता है।

रचना क्रम

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
महत्तोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः। 1/61

अर्थात् सत्त्व, रजस, तमस की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्र और दोनों प्रकार की इन्द्रियों और तन्मात्राओं से स्थूल महाभूत बनते हैं। इनके साथ पुरुष है। यह पचीस (का) गण है।

प्रकृति के गुण—प्रकृति में तीन गुण हैं। सत्त्व, रज और तम। वैशेषिक ने शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध को द्रव्य में रहने वाले गुण कहा है। किन्तु सांख्य ने द्रव्य में रहने वाले इन गुणों को पांच तत्त्वों की पंच तन्मात्रायें कहा है। सांख्य ने गुण सत्त्व, रज, तम को माना है जो वस्तुतः द्रव्यरूप है। गुण का शाब्दिक अर्थ

रस्सी, डोरी, बांधने वाला है। ये तीनों गुण पुरुष या जीवात्मा को बांधने वाले हैं। जो मनुष्य गुणातीत या निस्त्रैगुण्य हो जाता है वह मुक्त हो जाता है।

वाचस्पति मिश्र ने गुण का अर्थ किया है अंग अथवा सहायक। सत्त्व, रज, तम ये प्रकृति के स्वरूप को निस्पंद करने वाला अंग है। व्यवहार की दृष्टि से तीन गुण प्रकृति के अंग है और मोक्ष साधना की दृष्टि से यही जीवात्मा के बंधन का कारण है। उदाहरणस्वरूप—यदि उद्यान में मीठा आम गिरता हुआ तीन व्यक्ति देखते हैं—फल प्राप्त करने वाला आनन्दित होता है, फल न पाने वाला दुःखी होता है और दोनों की गतिविधि को देखने वाला उदासीन रहता है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ में केवल तीन गुण की सत्ता वर्तमान रहती है। सत्त्वगुण हलका, प्रकाशक एवं आनन्ददायक होता है। जैसे, अग्नि ज्वाला। उपासना के बाद साधक का चित्त बड़ा हलका होता है। उसे आनन्द प्राप्त होता है। हर्ष, संतोष, सुख आदि मधुरभाव सत्त्वगुण के कारण होते हैं। रजोगुण चंचलता का प्रतीक, क्रिया का प्रवर्तक है। इसीसे निष्क्रिय सत्त्व तथा तम में क्रिया का संचार होता है। यह सुख के प्रलोभन में जीव को नचाकर अन्त में दुःख में डाल देता है। जगत् की सारी भाग-दौड़ तथा विश्व की सारी हलचल इसी कारण से है।

तमोगुण—यह भारी, रोकने वाला, निद्रा, आलस्य, प्रमाद, मोह, अज्ञान आदि का कारण माना जाता है।

इन तीनों गुणों का शुद्ध रूप और मलिन रूप भी होता है। इन तीनों गुणों का आपस में विरोध भी है और परस्पर में सम्बन्ध भी है। इन तीनों के मेल से ही प्रकृति कार्य करती है तथा पुरुष का अर्थ सिद्ध करती है। तीनों मिलकर एक साथ रहते हैं। कभी प्रथम गुण बाकी दो गुणों को दबाकर प्रबल हो जाता है। कभी दूसरा, कभी तीसरा। दूसरे गुणों को दबाने की वृत्ति का नाम अभिभववृत्ति है। इन गुणों में परस्पर आश्रयवृत्ति भी है। उदाहरण—दीपक में तेल, बाती और आग परस्पर विरोधी होते हुए भी एक-दूसरे के सहायक होकर ही दीपक को दीपक बनाते हैं। इनमें से एक के भी नहीं होने से दीपक का दीपकत्व संकट में पड़ जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में सत्त्वगुण बाकी दोनों गुणों को दबाकर प्रबल हो जाता है। दिन में रजोगुण प्रबल हो जाता है और रात्रि में तमोगुण।

युद्ध रजोगुण का कार्य है। किन्तु उसे सूझ-बूझ रूपी सत्त्वगुण का आश्रय लेना पड़ता है और रात्रिकाल में शत्रु को असावधान रखने वाले तमोगुण का समय आक्रमण के लिए चुनना पड़ता है। कोई भी गति तभी हो सकती है जब उसकी भूमि स्थिर हो यानी बहुत चिकनी धरती पर, फिसलने वाली भूमि पर गति कठिन हो जाती है। पतले कीचड़ वाले स्थान पर बस का चक्का फंसकर घूमता रहता है।

किन्तु, बस आगे नहीं बढ़ती है। क्योंकि पहिये के नीचे की भूमि स्थिर नहीं है। तमोगुण की धारणाशक्ति (जड़ता) gnertia के बिना कोई गति सम्भव ही नहीं है। न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार कोई भी वस्तु जितने वेग से अपने आधार को पीछे की ओर ढकेलती है। उतने ही वेग से वह स्वयं आगे बढ़ जाती है। हम पांवों से धरती को पीछे धकेलते हैं, तब हम स्वयं आगे चलते जाते हैं। हम चप्पू से जल को पीछे धकेलते हैं तब नौका आगे बढ़ जाती है। कोई पक्षी या हैलिकौप्टर जितने वेग से वायु को नीचे धकेलता है उतने वेग से स्वयं ऊपर उठता जाता है। विमान जितने वेग से वायु को पीछे की ओर फेंकता जाता है उतने वेग से आगे बढ़ता जाता है। रॉकेट गर्म गैस को अपने पृष्ठ-छेद से जितने वेग से नीचे फेंकता है। वह स्वयं उतने ही वेग से स्वयं ऊपर उड़ जाता है। अतः तमोगुण के आश्रय के बिना रजोगुण काम नहीं कर सकता। गति के दिशा-निर्धारण के लिए सत्त्वरूपी ज्ञान चाहिए।

ये तीनों गुण सततपरिणामी होते हैं। प्रतिक्षण इनमें कुछ परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में इन तीन गुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया से संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं। कभी व्यक्ति शांत एवं सुखी होता है। कभी उद्विग्न, चिन्तातुर एवं दुःखी हो जाता है। कभी वही निकम्मा होकर बैठ जाता है। तीनों गुण अन्य दो गुणों को अपने वश में करके प्रधान बनने की ताक में लगे रहते हैं।

गुणों की साम्यावस्था

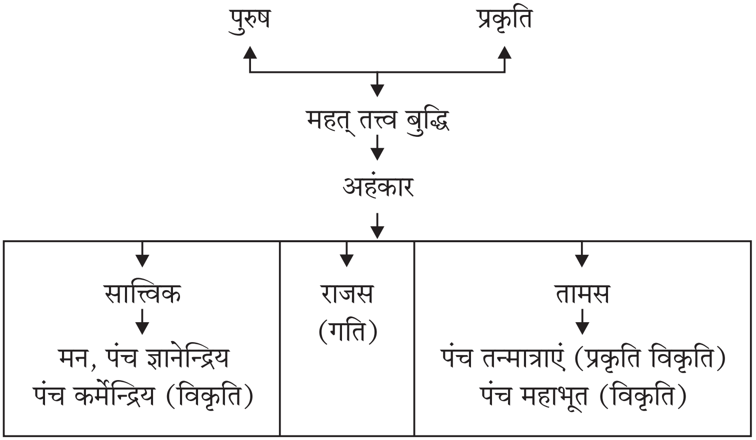
प्रकृति में तीन गुण मूलतः विद्यमान रहते हैं। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। मूल प्रकृति जड़ तथा एक है। इसे ही प्रधान, अव्यक्त या प्रकृति कहा जाता है। जब गुणों की साम्यावस्था होती है तब सृष्टि नहीं होती। एकमात्र प्रकृति का ही साम्राज्य रहता है विकृति का नहीं। प्रकृति के अन्तर्गत निम्नलिखित भेद हैं—(1) मूल प्रकृति (केवल कारण, कार्य नहीं) (2) प्रकृति-विकृति (कार्य-कारण दोनों) (3) विकृति (केवल कार्य)।

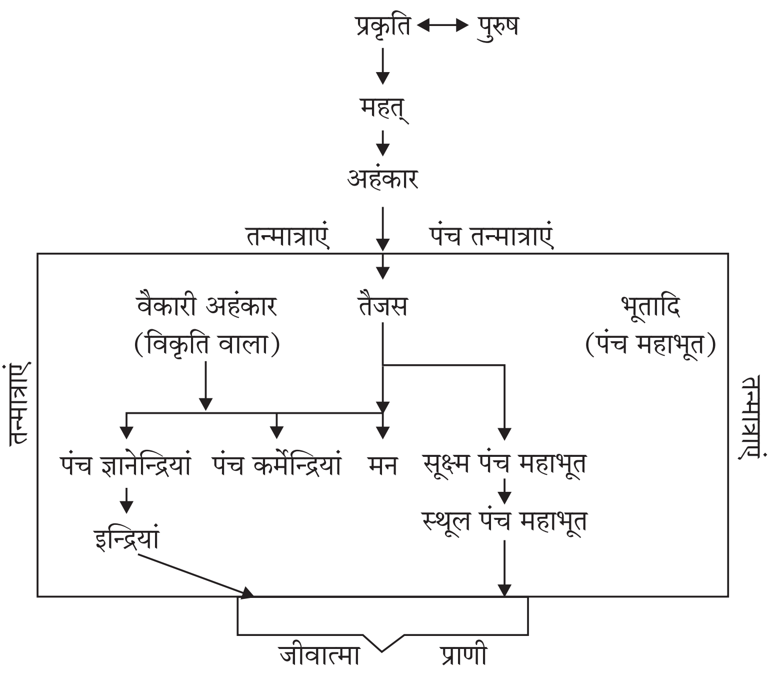
मूल प्रकृति एक है। प्रकृति-विकृति सात पदार्थ हैं—महत् तत्त्व, अहंकार और पंच तन्मात्राएं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विकृति—विकृति में 16 तत्त्व हैं। पंच महाभूत, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और मन। इस प्रकार प्रकृति के अन्तर्गत 24 तत्त्व हैं और 25वां तत्त्व पुरुष है।

प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से सृष्टि उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं। न अकेली प्रकृति विश्व की सृष्टि कर सकती है और न अकेला पुरुष। प्रकृति क्रियाशील होने पर भी जड़ है और पुरुष चेतन होने पर भी निष्क्रिय है। जड़-चेतन

के समन्वित संयोग को सांख्य दर्शन में अंधे और लंगड़े के दृष्टान्त से समझाया गया है। गांव में आग लग जाने पर अन्धा मार्ग नहीं देख सकता। किन्तु अंधा लंगड़े को कंधे पर बैठा ले तो दोनों अग्नि से बच निकलते हैं। प्रकृति अंधी है किन्तु उसके पास गति है। पुरुष के पास दृष्टि है किन्तु गति नहीं, निष्क्रिय है। दोनों के संयोग से ही सृष्टि का क्रम चलता है।





श्री गुरुदत्त ने अहंकार के तीन भेद माने हैं। वैकारी अर्थात् विकृति के रूप में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और मन को सत्ता देने वाला वैकारी अहंकार है। पंच महाभूतों को प्रकट करने वाला भूतादि अहंकार है और स्वयं अपनी प्रशंसा पर मुग्ध होने वाला तैजस अहंकार है। अहंकार के ये भेद आयुर्वेद की सुश्रुत संहिता के आधार पर किये गये हैं। अहंकार के मलिन या शुद्ध होने की मात्रा के अनुसार अहंकार के अनेक भेद हो सकते हैं। अहंकार ही जगत् का भ्रमजाल रचता है। सात्त्विक अहंकार का ही परिभाषित नाम विकारी है। राजस अहंकार का परिभाषित नाम तैजस है और तामस अहंकार का परिभाषित नाम भूतादि है। चूंकि पंचमहाभूत जड़ हैं अतः वे तामस अहंकार से ही प्रकट होते हैं। मन, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां चूंकि चेतना युक्त हैं इसलिए वे सात्त्विक अहंकार से प्रकट होती हैं। पंचमहाभूत जब अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व के रूप में होते हैं तब उन्हें पंच तन्मात्राएं कहा जाता है।

(1) शब्द तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श + रूप तीनों के मेल से तेज उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श + रूप + रस चारों के मेल से जल उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श + रूप + रस + गंध पांचों के योग से पृथ्वी उत्पन्न होती है।

जितनी तन्मात्राएं अधिक मिलती जाती हैं उतना ही तत्त्व अधिक स्थूल होता जाता है। आकाश सबसे सूक्ष्म और पृथ्वी सबसे स्थूल तत्त्व है। इन्हें पंच महाभूत कहा जाता है। कभी-कभी पंच तत्त्व भी कहा जाता है। किन्तु सांख्य के मत में तत्त्व केवल पांच ही नहीं वरन् पचीस हैं। पंच महाभूतों के मेल से प्रकृति में पंचीकरण होता है। इन पांचों के मेल से बना हुआ यह जगत् प्रपंच कहलाता है। जिसका शाब्दिक अर्थ पांच तत्त्वों के अच्छी प्रकार के मेल से रचा हुआ जगत् है। वेदान्त में जगत् प्रपंच को माया कहा गया है। क्योंकि यह देखते-देखते आँख से लुप्त हो जाता है। इसलिए प्रपंच का मूल अर्थ तो पांच तत्त्वों का बना हुआ जगत् है। किन्तु, यह अकस्मात् लुप्त हो जाने के कारण धोखा प्रतीत होता है। इसलिए प्रपंच का अर्थ माया या धोखा रूढ़ हो गया। वेदान्त के मत में जगत् व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक सत्ता नहीं। यह प्रतीत होते हुए भी अन्तिम विश्लेषण में सत्य के रूप में नहीं टिकता। इसलिए इस प्रपंच की धोखा, माया या इन्द्रजाल से उपमा दी जाती है।

प्रकृति को प्रधान या अव्यक्त नाम से भी पुकारा जाता है। प्रकृति के कई अर्थ किये जाते हैं। प्र+कृति अर्थात् प्रथम कृति। भाव यह है कि सृष्टि रचना का प्रथम बिन्दु प्रकृति ही है। कृति का प्रथम चरण प्रकृति है। यदि मूल प्रकृति ही न हो

तो न तीन गुण हों, न पांच तत्त्व। न पंच ज्ञानेन्द्रियां जिनसे कुछ जाना जा सके, न पंच कर्मेन्द्रियां जिनसे कुछ किया जा सके। इसलिए सब जीवों की समस्त कृतियों का मूल प्रकृति अर्थात् प्रथम मूल कृति है। पुरुष तो निष्क्रिय है उसमें केवल चेतना है, कृति नहीं। प्रकृति का दूसरा अर्थ किया जाता है प्रचुर कृति अर्थात् अनेकता का विस्तार। भाव यह है कि परब्रह्म परमेश्वर तो एक है। किन्तु उसने जब संकल्प किया **'एकोऽहं बहु स्याम्'** इस संकल्प से नाना नामों और रूपों वाली प्रकृति की लीला प्रारम्भ हो गई। प्रकृति का एक अन्य अर्थ किया जाता है प्रयोजन वृत्ति (कृति) अर्थात् किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए होने वाली कृति। सृष्टि के कण-कण तथा पग-पग पर हमें एक प्रयोजन, एक व्यवस्था, एक नैतिक उद्देश्य का दर्शन या अनुभव होता है। शिशु के जन्म से पहले मां के स्तनों में दूध का आ जाना और बच्चे के दांत निकलते ही मां की छाती का दूध सूख जाना, प्रकृति के किसी महान् प्रयोजन का संकेत है। मानवों द्वारा नि:श्वास में छोड़ी हुई विषैली गैसें (कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन) वृक्ष, वनस्पतियों का अनिवार्य भोजन बन जाना तथा वृक्ष एवं वनस्पतियों द्वारा छोड़ी हुई ऑक्सीजन गैस का मानवों के लिए प्राणदायिनी वायु बन जाना, सृष्टि के एक विश्वव्यापी प्रयोजन अथवा विश्वव्यापी महायज्ञ का संकेत है। पश्चिमी विज्ञान अथवा जड़ भौतिकवाद प्राकृतिक शक्तियों को निरुद्देश्य, प्रयोजनहीन, अंधशक्ति मात्र मानता है। जो भारतीय दर्शन को स्वीकार्य नहीं है।

प्रकृति का एक अन्य अर्थ है स्वभाव या स्थिति। जैसे आपकी कैसी प्रकृति है अथवा भारतीयजन प्रकृति से ही अहिंसक होते हैं। इसी प्रकार लोभी प्रकृति वाला, कभी नि:स्वार्थ, अथवा त्यागी नहीं हो सकता। इन सब प्रयोगों में प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। यहां प्रकृति का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार लिया जाता है कि व्यक्ति या वस्तु की प्रथम रचना के समय ही उसमें जो गुणविशेष आ गया वह प्रकृति का गुण ही उसका स्वभाव है। जैसे केशर की प्रकृति रंग, चन्द्र की प्रकृति ठण्डी है और सूर्य की प्रकृति गरम है। दूध प्रकृति से रेचक है, दही प्रकृति से पाचक है। स्वभाव का अर्थ है शुरू से बना हुआ अपना भाव। प्रभाव का अर्थ है विशेष प्रयास से बनाया हुआ या बढ़ाया हुआ भाव। अभाव का अर्थ है भाव का लुप्त हो जाना। बाली अहंकार से राम का प्रभाव देखना चाहता था अत: उसे दण्ड मिला। किन्तु उसके पुत्र अंगद को भगवान् ने अपना लिया है। सुग्रीव भगवान् का स्वभाव देखना चाहता था। भगवान् ने अपने भक्तवत्सल स्वभाव से दुर्बल एवं राज्यच्युत सुग्रीव को भी मित्र बनाकर हृदय से लगा लिया। रावण भगवान् राम का अभाव करना चाहता था। किन्तु, भगवान् के प्रभाव से उसका वंश समेत अभाव हो गया। अपने शरणागत की रक्षा का स्वभाव होने के कारण भगवान् ने विभीषण

को अपनाया और उसे सोने की लंका का स्वामी बना दिया—

जो सम्पत्ति सिव रावनहि, दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ।

5/49 रामचरितमानस

ऐसो को उदार जग माही

भगवान् के स्वभाव में अतिशय उदारता, भक्तवत्सलता, शरणागतरक्षा, दीनदयालुता और अहैतुकि-कृपा है। यह भगवान् की प्रकृति है। गीता के अनुसार भगवान् की प्रकृति के दो रूप हैं—प्रथम अपरा प्रकृति अर्थात् बहिरंग प्रकृति जो आठ अंगों वाली है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। 7/4, गीता

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इस प्रकार यह मेरी आठ प्रकार से विभक्त प्रकृति है।

दूसरी—परा प्रकृति जो चेतन जीवरूपा है। इसके संयोग के बिना अपरा प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती। इसे ही सांख्य में पुरुष नाम दिया गया है। अतः प्रकृति का अर्थ भी दो प्रकार का है—बाह्य-स्थिति और अन्तःस्थिति। बाह्य स्थिति या परिस्थिति पांच तत्त्व, तीन गुण का खेल है और अन्तःस्थिति में चेतन जीवात्मा है। इसी के अनुरूप बाह्य प्रकृति का स्वभाव सत्त्व, रज, तमरूपा है और अन्तःस्थिति का स्वभाव (आत्मभाव) सच्चिदानन्द स्वरूप है। स्वभाव का व्यावहारिक अर्थ तीन गुणों के प्रभाव से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की स्थिति है। स्वभाव का आध्यात्मिक अर्थ (परा प्रकृति मूलक अर्थ) आत्मभाव, सच्चिदानन्द भाव है। स्वास्थ्य का व्यावहारिक अर्थ तन-मन की स्थिति या स्वास्थ्य का ऊंचा आध्यात्मिक अर्थ स्व (आत्मा) में स्थित होना है। पर स्वस्थ वही है जो आत्मस्थ है। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा Disease is to be dis at ease with God ईश्वर के साथ स्वाभाविक सामंजस्य का टूट जाना ही रोग है। इसी प्रकार स्वस्थ का आध्यात्मिक अर्थ है अपना रूप। और व्यावहारिक अर्थ है बाह्य आकृति या गुणवाचक रूप। ईर्ष्या का स्वरूप है दूसरों की उन्नति या गुण सम्पदा को देखकर अकारण ही जलते रहना। यह हुआ मन का रूप। तन-मन, बुद्धि, अहंकार के रूप को स्वरूप कह देते हैं। समस्त देवताओं के प्रचलित रूप का वर्णन करने के लिए रूप शब्द को प्रयोग न करके स्वरूप शब्द प्रयोग किया जाता है। जैसे विष्णु का स्वरूप, भगवान् शंकर का स्वरूप, अग्नि का स्वरूप आदि। इसका कारण यही है कि सब देवता आत्मरूप ही हैं। आत्मा ही एकमात्र

सर्वोपरि श्रेष्ठ देवता है। श्रेष्ठ शब्द उसी की सीमित अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार स्वस्ति का शाब्दिक अर्थ है सु+अस्ति अर्थात् कल्याण है या कल्याण हो। वास्तव में परम कल्याण उस अस्ति को पा लेने में है जो अजर-अमर, अविनाशी है।

स्वस्तिक शब्द और स्वस्तिक चिह्न प्राचीन काल में सूर्य का प्रतीक माना जाता था। इस प्रतीक का प्रचलन सारे संसार भर में हुआ। यूनानी लोग इसे ग्रीक क्रॉस कहते थे। ईसाई धर्म का क्रॉस भी इसी में से निकला। जर्मनी का हिटलर अपने को शुद्ध आर्य कहता था और अपने राष्ट्रीय झण्डे पर स्वस्तिक के चिह्न को सम्मान देता था। स्वस्तिक का प्रचलित अर्थ कल्याण, मंगल या मंगली का देवता गणपति रूढ हो गया है। किन्तु स्वस्तिक का ऊंचा आध्यात्मिक अर्थ है स्व+आस्तिक अर्थात् जो अपनी आत्मा में आस्था रखने वाला है। ईश्वर को न मानने वाला नास्तिक है। ईश्वर की परोक्ष सत्ता को मानने वाला आस्तिक और ईश्वर का अपरोक्षानुभूति-वाला स्वस्तिक है।

मूल प्रकृति का अर्थ है मूल स्थिति। गुणों की साम्यावस्था में गुणों की प्रकृति शांत एवं स्पन्दहीन रहती है। इसलिए उसमें कोई भी आकृति-विकृति प्रकट नहीं होती। सारी सृष्टि मूल प्रकृति में लुप्त-गुप्त, सुप्त पड़ी रहती है। उसी प्रकार जैसे विशाल वटवृक्ष धरती के नीचे दबे हुए एक बहुत छोटे सरसों के दाने के परिमाण के वटवृक्ष के बीज में छिपा रहता है। इसलिए मूल प्रकृति को अव्यक्त कहा जाता है अर्थात् जो अभी प्रकट नहीं हुआ। गीता में भगवान् ने कहा है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। 2/28, गीता

अर्थात् सब प्राणी प्रारम्भ में अव्यक्त ही रहते हैं। मध्य काल में व्यक्त हो जाते हैं। अंत में पुनः अव्यक्त ही हो जाते हैं। अतः इस विषय में चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। व्यक्त होने का अर्थ है नाम-रूप में प्रकट होना, रचित होना, स्पष्ट होना, दृश्यमान होना आदि। व्यक्ति को इसलिए व्यक्ति कहा गया है कि निराकार, निर्विकार परमेश्वर की उस रूप में अभिव्यक्ति हुई है। यह वेदान्त की दृष्टि है। सांख्य दृष्टि से निराकार पुरुष (जीवात्मा) अव्यक्त प्रकृति के सहारे से व्यक्ति के रूप में प्रकट हो जाता है।

इस मूल प्रकृति को अव्यक्त और प्रधान भी कहा जाता है। प्रधान का शाब्दिक अर्थ है मुख्य, बड़ा या सर्वश्रेष्ठ। और मूल सांख्य में प्रधान मूल के अर्थ में प्रयोग हुआ है। यह भौतिक सृष्टि का स्रोत है। जैसे मूल पहले होता है और तूल बाद में है। वृक्ष की जड़ पहले होती है और तना, डाली या पत्ते बाद में। इसी प्रकार सारी सृष्टि का आदि वह मूल प्रकृति है जिसके गर्भ से सारी सृष्टि प्रकट होती है।

प्रकृति का एक अर्थ माया या रचना शक्ति या प्रसवधर्मी भी है। वेदान्त की दृष्टि से यह परमेश्वर की संकल्प शक्ति ही है जो सृष्टि रचना का सामर्थ्य रखती है। सांख्य के मत में यह सृष्टिरचना का सामर्थ्य रखने वाली विराट् शक्ति है जो पुरुष रूपी चेतन की चाबी लगाने से खुल जाती है और अपना सृष्टि रचना का खेल खेलने लगती है।

बड़ी विस्मयकारक-सी प्रतीत होने वाली बात यह है कि गुण साम्यावस्था में जिसमें सृष्टि होती ही नहीं वह मूल प्रकृति, वही प्रधान (मूल), वही अव्यक्त, वही मूल स्थिति है। सृष्टि या जीवन तो प्रकृति की विकृति है। जीवन सबको प्यारा लगता है और विकृति शब्द सबको अप्रिय एवं अशोभन लगता है। अतः जीवन या सृष्टि को विकृति कहने में बड़ा विचित्र एवं अनुपयुक्त-सा लगता है। किन्तु सांख्य दर्शन में सृष्टि या जीवन को विकृति ही माना गया। भले ही विकृति शब्द को विशेष कृति के अर्थ में मान लिया गया है और विपरीत कृति के अर्थ में नहीं। जिस प्रकार जागृत एवं स्वप्नावस्था में मन विकृत होकर विषयों में फंसता है और सुषुप्ति में अनजाने अपने मूल की ओर लौटता है। समाधि में अपने मूल स्वभाव में प्रतिष्ठित होता है। इस विश्लेषण के अनुसार हम जागृत को विकृति एवं समाधि को मूल प्रकृति कह सकते हैं। शांति मूल प्रकृति है और संघर्ष एवं संग्राम विकृति है। इसी अर्थ में महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् महाकाव्य में लिख दिया है—

मरणं प्रकृतिर् भूतानाम्।
जीवनं विकृति उच्यते।।

अर्थात् मरण जीवों की मूल प्रकृति है और जीवन तो अल्पकालिक विकृति मात्र है। बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त ने भी जन्म एवं आवागमन के चक्र को विकृति (परमेश्वर से अथवा अपने स्वरूप से वियोग अथवा पतन) कहा है। जीव संसार के भव बंधन में पड़ा हुआ दुःख-क्लेश भोगता है। इसे विकृति कहना ही उचित प्रतीत होता है। निर्वाण या मोक्षपद परमशांति का पद है। जहां सब विकृतियां एवं बंधन समाप्त होकर जीवन अपनी मूल स्थिति में लौटता है। वेदान्त में उस मूल स्थिति को मूल प्रकृति न कहकर उसे ब्राह्मीस्थिति कहा गया है। एकोऽहं मूल प्रकृति है और बहु स्याम् विकृति। एकता अर्थात् पुरुषोत्तम पद ही हमारा सच्चा स्वरूप है तथा अनेकता में स्वार्थ एवं संघर्ष में ईर्ष्या-द्वेष की वृत्तियां करना निश्चय ही विकृति कहलायेगी। शांति मूल प्रकृति है और अशांति विकृति है। सारी आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य यही है कि मनुष्य अपने मूलस्वरूप (अपनी प्रकृति) को पुनः प्राप्त कर सके। जल प्रकृति है और लहर, बूंद, भाप, बादल, वर्षा, हिमपात, नदी, नाला, कूप, तालाब आदि सब उसी की विकृतियां हैं। सांख्य उन्हें प्रकृति का विकार कहता है और वेदान्त उन्हें ब्रह्मतत्त्व के ही नाना विकृत रूप कहता है। आकाश से

बरसने वाली नन्ही बूंद यदि अपनी मूल प्रकृति भूल जाए तो चिन्तित होती है कि अथाह महासमुद्र में डूब मरूंगी। किन्तु, अपने स्वरूप का ज्ञान होते ही वह भय और चिन्ता से मुक्त होकर आनन्द से तरंगायमान हो उठती है—

नन्ही बूंदें रोयी कि सागर में क्या होगा,
सागर बोला प्रिये बिन्दु से सिन्धु बनोगी।

यदि जगत् और जीवन में विकृति न होती तो इसमें तीन ताप, पंच क्लेश क्यों होते और इससे मुक्ति की साधना के मार्ग भिन्न-भिन्न दर्शनों द्वारा क्यों दिग्दर्शित कराये जाते? भगवान् बुद्ध कहते हैं कि मानव जीवन दु:खपूर्ण जगत् की अति विचित्र यात्रा है। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। 9/33

अर्थात् यह सारा जगत् अनित्य एवं दु:खदायी है। अत: (मनुष्य) लोक को पाकर तू मेरा (ही) भजन कर।

भारतीय अद्वैत परम्परा एवं आधुनिक विज्ञान दोनों स्वीकार करते हैं सृष्टि एक समय में नहीं थी। वर्तमान में है पर भविष्य में पुन: नहीं रहेगी। जिसका आदि और अन्त में अस्तित्व नहीं केवल मध्य में अस्तित्व है उसको परम सत्य नहीं कहा जा सकता। अत: उसकी व्यावहारिक सत्ता ही अद्वैत वेदान्त को मान्य है।

अन्य भारतीय दर्शन परम्पराएं संसार को अनित्य तो मानती हैं पर असत्य नहीं मानती। पर उन दर्शनवेत्ताओं के विचारों का अध्ययन करने पर उनके यहां भी जगत् की सत्ता व्यावहारिक स्तर की ही सिद्ध होती है न कि पारमार्थिक।

त्रेतवादी तीन सत्ताओं को मानता है पर जगत् को केवल सत् मानता है। जीव को सत्-चित् एवं ब्रह्म को सत्-चित्-आनन्द स्वरूप मानता है। स्पष्ट है जगत् को ब्रह्म की स्थिति नहीं प्रदान करता और जीव को जगत् से न जोड़कर ब्रह्म से जोड़ता है। जगत् में तो केवल जड़ता है अत: चेतना व आनन्द पाने के लिए ब्रह्म की उपासना पर जोर देता है।

ऐसे द्वैतवादी आचार्य भी मुमुक्षु को, साधक को प्रकृति से छुड़ाकर प्रभु से, आत्मा से जोड़ते हैं। जितने भी वैष्णवाचार्य हुए हैं वे संसार से परमविरक्त हुए हैं और वे सभी साधकों को जगत् को त्यागकर भगवद् प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं।

ऋषि अरविन्द ने भी जगत् को अवास्तविक वास्तविकता Unreal reality ही कहा है।

अब अगर इन सब विचारकों के मत में जगत् की वास्तविक सत्ता होती या ब्रह्म के समान महत्ता होती तो जगत् को त्यागकर ब्रह्म को अपनाने की बात क्यों करते? इन्हें भी वास्तविक जगत् की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार नहीं है।

विज्ञान भी जगत् की सापेक्ष सत्ता ही स्वीकारता है निरपेक्ष नहीं।

हम सबकी अनुभूति भी है कि हम संसार व उसकी धन-सम्पत्ति को कितना भी पकड़कर रखें, चिपका कर रखें। समय आता है सब हाथ से निकल जाता है चाहे राजा हो या फकीर। संसार अंत तक टिकता नहीं। इसलिए संसार हमें छोड़े उससे पूर्व हम ही संसार को छोड़ देवें तो कष्ट के स्थान पर आनन्द होगा। इसलिए हमारे मनीषियों ने हमारे जीवन की ही रचना ऐसी की है जिससे हम स्वयं धीरे-धीरे संसार को छोड़ सकें। इसके लिए ही वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की व्यवस्था की है।

संसार में तात्कालिक, सामयिक सुख है, स्थायी सुख नहीं। स्थायी सुख की तो भ्रान्ति मात्र ही है। इसके लिए पागल गीदड़ी का दृष्टान्त दिया जाता है। एक पागल गीदड़ी थी। जंगल से एक भलामानस जा रहा था, उसके पीछे पड़ गई। वह भागने लगा। भागते-भागते एक पेड़ के चारों तरफ चक्कर काटने लगा। हिम्मत करके उसने पेड़ की आड़ में होकर उसका एक कान पकड़ लिया और दूसरे हाथ से दूसरा कान पकड़ लिया। छोड़े तो गीदड़ी काट खाये। कान पकड़ते समय उसके कुछ नोट गिर गए। देर तक वह गीदड़ी के कान पकड़कर खड़ा रहा। इतने में एक आदमी पास से गुजरा, उसने पूछा—क्या कर रहे हो? वह बोला—यह गीदड़ी नोट देती है, इसलिए इसके कान पकड़े खड़ा हूं। वह बोला—तब तो बड़ा मजा है। कान पकड़ने वाला बोला—आओ, तुम भी मजा लो। उसने गीदड़ी का एक कान पकड़वाया, खुद हटकर दूसरा कान भी उसके हाथ में दे दिया। अब अलग होकर कहने लगा ये नोट-वोट कुछ नहीं देती, सिर्फ काटती है। तुम भी जो कोई मिले, उसको इसके कान पकड़वा देना और खुद अलग हो जाना। संसार का भी यही हाल है। हम संसार रूपी गीदड़ी के कान पकड़े खड़े हैं और लड़के की सगाई करके इसका एक कान पकड़ा देते हैं। इस प्रकार यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। वास्तव में संसार में सुख नहीं है। पर हम परम्परा से, पूर्वसंस्कारवश, स्वभाववश मान लेते हैं कि इसमें सुख है और संसार चक्र में फंसे रहते हैं।

इस प्रकार न संसार में स्थायी सुख है और न इसकी तीनों कालों में सत्ता ही है। अतः संसार की व्यावहारिक सत्ता मानकर इसका सदुपयोग होना चाहिए। सांख्य प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता मानता है पर अद्वैत वेदान्त प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता नहीं स्वीकारता है। वेदान्त के अनुसार शक्ति सदा किसी शक्तिमान की शक्ति होती है। प्रकृति पुरुष पर निर्भर है। माया महेश्वर के अधीन है। लक्ष्मी सदा नारायण के चरणों में है। शक्ति शिव की उपासिका है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। 1/10, गीता

प्रकृति जगत् की रचना करती है। किन्तु, सर्वशक्तिमान प्रभु के नियंत्रण में रहकर ही। अतः जिसके वश में प्रकृति भी रहती है उस मायावशवर्ती महेश्वर

की सर्वोच्च सत्ता मानना ही युक्तिसंगत है। प्रकृति को ही पुरुष की सहचरी और कहीं उसकी आज्ञावशवर्ती दासी कहा गया है। सम्राट् को छोड़कर दासी की वंदना करना यह भी उचित प्रतीत नहीं होता। सती नारी विनय में अपने आपको स्वामी की दासी वर्णन करती है। यदि प्रकृति को परम पुरुष की रानी भी माना जाए तो भी रानी अपने गौरव के लिए राजा के पद पर पूर्णतया अवलम्बित है। रानी राजा के कारण रानी है, यदि राजा ही न हो तो उसे रानी कौन कहेगा? अमेरीका के राष्ट्रपति केनेडी की पत्नी को तभी तक राजकीय सम्मान मिलता था जब तक राष्ट्रपति केनेडी जीवित था। पति के स्वर्गवास के पश्चात् उसे कौन पूछता है? रानी का गौरव राजा के पद पर अवलम्बित है। उसी प्रकार प्रकृति की सत्ता एवं महत्ता परमेश्वर की सत्ता एवं महत्ता पर पूर्णतया अवलम्बित है।

शक्ति और शक्तिमान एक-दूसरे से पृथक् दो अलग तत्त्व नहीं माने जा सकते। नभ से उसकी नीलिमा को अलग कौन कर सकता है? अग्नि से ताप, जल से शीतलता, आकाश से व्याप्ति अलग हो ही नहीं सकती। अग्नि का ताप अग्नि के कारण ही है। जल की शीतलता जल के कारण ही है। चीनी की मिठास चीनी के कारण ही है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।

बालकाण्ड।।18।। (मानस)

अर्थात् वाणी और उसका अर्थ दो तत्त्व नहीं हैं। जैसे वाणी और उसका अर्थ, जल और लहर एक-दूसरे से पृथक् नहीं कहे जा सकते। दोनों तत्त्व एक हैं। नाम दो हैं। उसी के समान सीता और राम केवल वाणी के दो नाम हैं तत्त्व से एक ही हैं। मैं उन एकीभूत हुए सीताराम को नमस्कार करता हूं।

शिव-शक्ति की तात्त्विक एकता दर्शाने के लिए ही कलाकारों ने अर्धनारीश्वर की मूर्तियां बनाई। जिसमें एक ही मूर्ति के बायें भाग में शक्ति और दायें भाग में शिव को दिखाया गया।

प्राचीन विज्ञान का दुराग्रह था कि भौतिक जड़ तत्त्व ही सृष्टि का अन्तिम सार पदार्थ है। पदार्थ की परिभाषा है जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है उसे पदार्थ कहते हैं। आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ को Molecule में, Molecule को Atom में, Atom को इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटोन आदि में तोड़कर यह पाया कि अन्त में पदार्थ न बचकर केवल ऊर्जा ही बचती है। रसेल जैसे प्रखर यथार्थवादी दार्शनिक ने भी कह दिया कि भौतिकता का भवन सदा के लिए गिर चुका है। जड़ पदार्थ की जिन ईंटों से भौतिकवाद का भवन खड़ा हुआ था वे ईंटें ही कच्ची

प्रमाणित हुई, और भौतिकवाद का महल ध्वस्त हो गया है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता ऊर्जा शक्ति को मानकर Materialism के स्थान पर Energism का नारा लगाया जा रहा है।

अब इस Energy का स्वरूप क्या है? जड़ है या चेतन। इस पर वैज्ञानिकों में ऊहापोह चल रहा है। रसेल जैसे पुराने भौतिकवादी दुराग्रह के कारण अभी तक उस ऊर्जा को आध्यात्मिक शक्ति तो नहीं मान सका। किन्तु, वह कहता है यह शक्ति अत्यन्त रहस्यमयी है जो अभौतिक शक्ति है। सम्भवतः जड़ और चेतन दोनों से परे है। जिसने जड़ और चेतन, दोनों को प्रकट किया है।

रसेल का यह विचार भी नितान्त अनुकूल ही है। जहां तक जड़-चेतन का भेद है वह सीमित जड़ और चेतन का ही भेद है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार सब सीमित चेतना के खेल हैं। परमतत्त्व सच्चिदानंदघन-ब्रह्म जड़ चेतन के द्वन्द्व से परे है, निर्द्वन्द्व है।

साधना की सीढ़ी के रूप में जड़-चेतन का भेद अनिवार्य है। जड़ को छोड़कर चेतन की ओर बढ़ना साधना है। साधना की सिद्धि हो जाने पर यह रहस्य खुलता है कि जिसे हम जड़ समझे बैठे थे वह चेतन की तमोगुणी लीला है। वही आत्मा पत्थर में सो रही है, पेड़ में स्वप्न ले रही है और पशुओं में ऊंघ रही है। तथा मानव में जागृत है। वही चराचर स्थावर-जंगम में, सारे विश्व में एक ही सत् का दर्शन होता है—

सीयराम मय सब जग जानी।
'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'
हरिरेव जगत् जगदेव हरिः।

साधनाकाल में—ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या।

सिद्धि में—सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

साधना में—

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा। 2/248/4 (मानस)

सिद्धि में—

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहिं नचावत रामु गोसाईं।। 4/10/7 (मानस)

सबको भगवान् कठपुतली की तरह नचा रहे हैं—रामकृष्ण परमहंस

सब करन-करावन आप ही आप—गुरु नानकदेव

जिसका अहम् बना हुआ है वह अपने अहंकार से कर्म करता है। अतः वह कर्म के लिए उत्तरदायी है। पर जिसका कर्तापन का अहंकार या भाव गल गया है, भगवान् में लय हो गया है उसे कर्मफल नहीं भोगना पड़ता। क्योंकि वह भगवान् की प्रेरणा से कर्म करता है। अहंकार (कर्तापन) का लय करना ही साधना है। सृष्टि जगत् रूप से मिथ्या है। पर ब्रह्म रूप से सत्य है। अधिष्ठान रूप से सत्य है, अधिष्ठित रूप से मिथ्या है। जैसे फेन बूंद, लहर, वीचि, समुद्र, नदी, नाला रूप से असत्य है, जल रूप से सत्य है। और हम ब्रह्म को प्राप्त करें यही सृष्टि का प्रयोजन है।

जेम्सजीन्स, श्रोडिंजर, ओपनहाइमर, फ्रिटजाफ, केपरा आदि पश्चिम के चोटी के वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं और घोषणा करने लगे हैं कि पदार्थ के विश्लेषण से प्रकट होने वाली ऊर्जा का स्वरूप जड़ नहीं चेतन ही है। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान वेदान्त के गर्भगृह की ड्योढ़ी में चरण रख रहा है। अभी तक वेदान्त के गर्भगृह में प्रवेश नहीं किया। परम चैतन्य की झलक मिल जाने पर पूरे विज्ञान जगत् का रूपान्तरण हो जाएगा। वह विज्ञान ही न रहकर दर्शन में परिणत हो जाएगा।

मैक्समूलर ने हिन्दू जाति की विशेषता का उल्लेख करते हुए ईमानदारी के साथ यह स्वीकार किया है कि भारतेत्तर देशों में ज्ञान-विज्ञान या चिन्तन शक्ति की जहां परिसीमा होती है वहां से हम हिन्दुओं के ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन का आरम्भ पाते हैं।

पाश्चात्य विज्ञान तीन कारणों से भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है

यूरोप का मध्य युग ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा की दृष्टि से अंधकार युग कहा जाता है क्योंकि उस समय बाइबिल से स्वतंत्र चिंतन-मनन संभव नहीं था। शिक्षा का दायित्व चर्च के ऊपर था। चर्च ने शिक्षा से यूनानी और लैटिन भाषाओं का अध्ययन निकाल दिया था क्योंकि इस अध्ययन का चर्च की शिक्षाओं से कोई सम्बन्ध न था बल्कि चर्च की विचारधारा से विरोध ही था। इसलिए सिकन्दर द्वारा स्थापित 'ऐलिग्जेन्ड्रिया' का विशाल पुस्तकालय जिसमें सात लाख पुस्तकें थी जो ग्रीक एवं भारतीय विद्याओं के अध्ययन का यूरोप में सबसे बड़ा केन्द्र था, उस पुस्तकालय को आग दिखा दी गई। चर्च ही शिक्षक, गुरु सब था। उस समय धार्मिक अंधविश्वास से समाज इस तरह जकड़ गया था कि बाइबिल से स्वतंत्र चिंतन-मनन की प्रवृत्ति ही समाप्त हो गई थी। बाइबिल एवं पोप के आप्तवाक्य से जुदा स्वतंत्र अनुभव एवं निरीक्षण की प्रयोगात्मक विधि से भी ज्ञानार्जन हो सकता है, इससे वे मानो अनजान ही थे। इस विषय में प्रसिद्ध दार्शनिक बेकन का दिया गया दृष्टान्त बड़ा रोचक है—

अनुभवात्मक या प्रयोगात्मक विधि का अभाव—हमारे प्रभु (ईसा) के 1432 वें वर्ष में कुछ भाइयों के बीच इस बात पर बड़े जोर से बहस छिड़ गयी कि घोड़े के मुँह में कितने दांत होते हैं। यह बहस 13 दिन तक अनवरत चलती रही। सभी प्राचीन पुस्तकें और वृत्तांत निकाले गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित करने वाला ऐसा विद्वत्तापूर्ण तथा मननशील प्रदर्शन हुआ जैसा इस क्षेत्र में पहले कभी नहीं हुआ था। 14वें दिन के आरम्भ में एक नवयुवक कुशल पादरी ने अपने सुयोग्य वरिष्ठों से कुछ कहने की आज्ञा मांगी। वह उनके गहरे ज्ञान से खीज गया था और उसने सब शास्त्रार्थ करने वालों को महान् आश्चर्य में डालते हुए उनसे अपनी विधि बदलने को कहा तथा ऐसी बात बताई जिसके विषय में पहले न कभी सुना गया था और न देखा गया था। उसने कहा, आप लोग घोड़े का मुंह खोलकर क्यों नहीं देख लेते जिससे आपके प्रश्नों का सरलता से उत्तर मिल जाये। इससे

उन सबकी प्रतिष्ठा को गहरी क्षति पहुंची। वे उस पर टूट पड़े। उसे खूब पीटा और तुरन्त भवन से बाहर फेंक दिया। उनका विचार था कि निश्चय ही शैतान ने इस साहसी नौसिखिये को फंसा लिया है जिससे वह सत्य को खोजने की अत्यन्त अपवित्र—पहले कभी न सुनी और देखी गई—तथा पवित्र पूर्वजों की शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत विधि बताने लगा। फिर कुछ दिन चर्चा चलाकर उस विषय को स्थगित कर दिया गया। क्योंकि इस विषय में शास्त्रों में लिखित नहीं होने से उस विषय को व्यर्थ मान लिया गया। इस प्रकार मध्ययुग के अन्त तक ईसाइयत को इस जकड़न ने ज्ञानांधकार में डुबा कर रखा।

जब यूरोप ज्ञानांधकार में खोया हुआ था तब अरब में भारत के सम्पर्क से ज्ञान का दीपक टिमटिमा करके जल रहा था। और जब अरब के माध्यम से यूरोप भारतीय एवं ग्रीक ज्ञान से परिचित हुआ तब निरीक्षण और परीक्षण की प्रयोगात्मक विधि से ज्ञानान्वेषण में प्रवृत्त हुआ। विज्ञान के नये-नये आविष्कार सामने आये। जो नक्षत्र विज्ञान एवं जीव विज्ञान से विशेष सम्बन्धित थे।

बाइबिल के अनुसार पृथ्वी चपटी है। पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ चक्कर लगाता है। टॉलमी ने खगोलशास्त्र पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की थी। जिसके अनुसार पृथ्वी स्थिर है और सूर्य, चन्द्र व विविध ग्रह उसके चारों ओर घूमते हैं जिसे ईसाई धर्माचार्यों ने बाइबिल की मान्यता से समर्थित होने के कारण स्वीकार कर लिया था और इसे वे धार्मिक सिद्धान्त के समान सत्य मानने लगे थे। इस सिद्धान्त का प्रभाव 15वीं शती तक रहा। पर नक्षत्र विज्ञान और जीव विज्ञान में नयी खोज प्रारम्भ हुई जिसका बाइबिल के सिद्धान्त से मेल नहीं था। बाइबिल के अनुसार पृथ्वी चपटी है। पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। और सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ चक्कर लगाता है। सृष्टि का रचयिता प्रकृति से बाहर वास करता हुआ 'कुछ नहीं' से सब कुछ निर्माण कर देता है और स्वर्ग से अपनी आज्ञाएं प्रसारित करता रहता है। और मनुष्य के विषय में उनकी धारणा है कि ईश्वर ने मनुष्य को प्रारम्भ में ऐसा ही बनाया था जैसा वह आज है। उनकी तो मान्यता है कि मनुष्य को भगवान् ने अपनी आकृति-प्रकृति के अनुरूप बनाया। इसके विरुद्ध विज्ञान ने खोज की कि पृथ्वी गोल है। सूर्य स्थिर है। और पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ चक्कर लगाती है। इसका विरोध पादरियों ने किया। उनके अनुसार अगर पृथ्वी गोल है तो नीचे के लोग उलटे कैसे खड़े होंगे और अगर वह घूमती है तो कयामत के दिन ईसा के आसमान से उतरने पर सब उसे कैसे देख सकेंगे? विज्ञान का विरोध दोनों सम्प्रदायों ने करना प्रारम्भ कर दिया।

1473 ई. में निकोलस कोपरनिकस द्वारा आधुनिक खगोलशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। उसने ग्रीक साहित्य के अनुशीलन विशेषकर अरिस्टाशंस के ग्रंथ

का पारायण एवं सूर्यमण्डल के ग्रहों का सूक्ष्म अध्ययन किया और अनेक प्राचीन सिद्धान्तों का खण्डन कर यह मत प्रतिपादित किया कि सूर्य ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है तथा पृथ्वी सहित सभी ग्रह उसका चक्कर लगाते हैं। यह क्रान्तिकारी सिद्धान्त बाइबिल के विरुद्ध होने से अत्याचार के भय से अपने जीवनकाल में नहीं छपाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित भी हुआ तो लैटिन भाषा में जो जन साधारण की भाषा नहीं थी। मात्र विद्वानों की भाषा रह गई थी। पर जब यह रहस्य उद्घाटित हुआ तो इसका विरोध पादरियों द्वारा प्रारम्भ हुआ। पर सोलहवीं सदी में अनेक विचारक हुए जिन्होंने इस मत का समर्थन किया। इसमें केपलर (1571 ई.-1630 ई.) और गैलेलियो (1564 ई.-1642 ई.) के नाम उल्लेखनीय हैं। केपलर जर्मन नागरिक था। गैलेलियो इटालियन था।

प्रयोगात्मक विज्ञान सर्वप्रथम गैलेलियो से प्रारम्भ होता है। 1609 ई. में गैलेलियो ने नक्षत्रों के अध्ययन के लिए टेलीस्कोप का विधिवत प्रयोग किया। उसने टेलीस्कोप द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ब्रह्माण्ड में बड़े पिण्ड केन्द्र में रहते हैं और छोटे-छोटे उपग्रह उनकी परिक्रमा करते हैं। उसने यह भी कहा कि हमारी धरती गोल है और सूर्य की परिक्रमा करती है। यह मान्यता धर्माचार्यों को मान्य न होने से उसे अपराधी घोषित करके कारागार में डाल दिया गया। तब गैलेलियो ने राजा से प्रार्थना की कि उसे अपनी बात सिद्ध करने का एक अवसर दे। प्रथम में राजा ने धर्माचार्यों के प्रबल विरोध के कारण अनुमति नहीं दी पर बाद में दे दी।

रोम में विशाल टॉवर है। टॉवर के झुक जाने पर भी नहीं गिरने के कारण वह संसार के सात आश्चर्यों में से एक है।

गैलेलियो ने टेलीस्कोप की सहायता से टॉवर के ऊपर से ईसाई पादरियों को दिखाया कि एक ग्रह के चारों तरफ छोटे-छोटे उपग्रह बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। इसी तरह पृथ्वी से कई गुणा बड़ा होने के कारण सूर्य ग्रह है और पृथ्वी उपग्रह है। और सूर्य के चारों तरफ परिक्रमा करने के कारण पृथ्वी गोल है।

ईसाई पादरी ने टेलीस्कोप से इस तथ्य को देखते हुए भी नहीं स्वीकारा और कहा, तुम्हारा यंत्र ही घूमता है और हमारी आंखों को धोखा देकर हमें ठगना चाहते हो। उसे पुनः कारागार में डाल दिया गया। और उसे अपनी स्थापनाएं वापस लेने तथा स्वयं की निन्दा करने को बाध्य किया गया। कोपरनिकस और गैलेलियो के समान अन्य भी अनेक विचारक इस समय यूरोप में उत्पन्न हुए। जो परीक्षणों के द्वारा सत्य की खोज कर नये-नये तथ्यों का पता करने में तत्पर थे। उस समय के ईसाई धर्माचार्य इनका न केवल उपहास करते थे, अपितु उन्हें धर्मद्रोही और काफिर समझते थे। इन्हें चर्च की ओर से भयंकर दण्ड दिये गये। ब्रूनो (Bruno)

को चौराहे पर जीवित जलाया गया। जीनो (zeno) नामक दार्शनिक, वैज्ञानिक को घर समेत फूंक दिया। हियोकिया नामक रोमन महिला को ज्यामिति पढ़ाने के अपराध में नंगा करके, रोम के बाजारों में कोड़े मार-मार कर मार डाला गया। 1481 ई. में विज्ञानवादियों का दमन करने के लिए ईसाइयों ने Court of inguistion नाम की विशेष अदालत स्थापित की थी, जिसमें ईसाई मत के विरुद्ध विज्ञान के किसी सिद्धान्त का प्रचार करने वाले वैज्ञानिकों पर अभियोग लगाकर उन्हें सजा दी जाती थी। यही नहीं, नाना तरह की यंत्रणाएं देकर उनसे स्वीकार कराया जाता था कि उनका सिद्धान्त झूठा है। जो स्वीकार नहीं करते थे, उन्हें जीते जी जला दिया जाता था। उक्त अदालत की आज्ञा से प्रथम वर्ष में ही 2000 विद्वान् जलाये गये। अदालत का अध्यक्ष 'तारकी माडा' नामक व्यक्ति 18 वर्षों तक रहा। इसके समय 10,220 और उनके भक्त जीते जी जलाये गये और 87,327 मनुष्यों को अन्य प्रकार के दण्डों से दंडित किया गया। इस प्रकार ईसाइयत के अंधविश्वास ने पश्चिम में विज्ञान का गला घोंट कर रखा। करीब अरस्तू एवं आर्किमिडिज के काल से लेकर ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन के काल तक (लगभग दो हजार वर्षों तक) पश्चिम में विज्ञान मृतप्राय हो गया था। तब भी भारत में उच्चकोटि की वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। भारत में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, जीवक वैद्य, वैद्यराज चरक, सुश्रुत (शल्य चिकित्सक), शालिहोत्र, बोधायन, लगथ, मेधातिथि, ब्रह्मगुप्त, नागार्जुन, उमास्वाति जैसे महान् वैज्ञानिक विश्व को ज्ञानालोक बांट रहे थे। पृथ्वी गोल है यह गैलेलियो के पूर्व पश्चिम के लिए तो अज्ञात था वहीं भारत की वैदिक परम्परा में ही भूगोल (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्डमण्डलाकार शब्द भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहे हैं।

इस प्रकार विज्ञान की शोधों एवं वैज्ञानिकों पर किये गये अत्याचार के कारण विज्ञान धर्म से अलग ही नहीं हो गया वरन् धर्म का विरोधी हो गया।

हेगेल के वामपंथी विचारक डेविस, स्ट्रास, ब्रूनो, बोरे (Baure) तथा लुडविन फयूरबाख (Feurbach) ने बाइबिल का स्वतंत्र अध्ययन किया। इससे पूर्व दो विद्वानों ने बाइबिल का गंभीर अध्ययन करके यह परिणाम निकाला था कि ईसाइयत का आरम्भ एक कपोल कल्पना (Myth) से हुआ। फयूरबाख ने इससे भी आगे बढ़कर यह परिणाम निकाला कि भगवान् की वास्तविक सत्ता नहीं है यह केवल मनुष्य की आशाओं और अभिलाषाओं द्वारा की जाने वाली मनोरम मानसिक कल्पना है। इसका प्रभाव मानव मस्तिष्क और विचार पर पड़ा और इसके पश्चात् का ईसाई धर्म का इतिहास ही बड़ा कलंकित है। ईसाई धर्मावलम्बी व्यक्ति में ईसा प्रेरित मनुष्य का बहुत कम, शैतान प्रेरित मनुष्य का दर्शन ही

अधिक हुआ। इसलिए तो H.G. Wells ईसाइयत के सारे इतिहास का सर्वे करते हुए कहते हैं—

सच्चा ईसाई एक ही हुआ है और वह स्वयं ईसा मसीह थे जिसे सूली पर लटकना पड़ा।

इस प्रकार धर्म से विज्ञान अलग हो गया और विज्ञान को किसी भी प्रकार से धर्म से सम्बन्ध रखना नागवार लगने लगा जो कि ईसाइयों द्वारा वैज्ञानिकों पर हुए अत्याचारों के कारण स्वाभाविक था। एक समय तो ऐसा आया कि पश्चिम का विज्ञान कह रहा था यदि ईश्वर की सत्ता है तो उसे अपने अस्तित्व का प्रमाण वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में आकर उसकी परखनली में देना होगा।

लाप्लॉस नामक वैज्ञानिक ने पुस्तक लिखी कि सम्पूर्ण विश्व कैसे चलता है? उसकी एक प्रति नेपोलियन को भेंट की। नेपोलियन ने उस पुस्तक को पढ़ने के बाद कहा, 'लाप्लॉस महाशय! मैं सारी पुस्तक पढ़ गया पर कहीं भी आपने भगवान् का उल्लेख नहीं किया है।' उसने कहा, 'मुझे इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी।' विज्ञान की विभिन्न शाखाओं द्वारा समस्त सृष्टि की, विकासवाद के द्वारा समस्त जीव सृष्टि की व्याख्या हो जाती है।

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण एवं गति के सिद्धान्त के आधार पर विश्व की यांत्रिक व्याख्या प्रस्तुत की। उसके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र है जो कार्य-कारण नियम से चल रहा है। जिसमें किसी प्रेरक शक्ति या ईश्वरीय शक्ति का हाथ दृष्टिगोचर नहीं होता है। इस सिद्धान्त का उस समय के वैज्ञानिकों पर विशेष प्रभाव पड़ा। उन वैज्ञानिकों ने सृष्टि की लम्बाई, चौड़ाई, वजन, आकार आदि निश्चित करके जन्म-मरण तथा साम्राज्य के उत्थान-पतन की भी प्रकृति के यांत्रिक नियम से व्याख्या करने का प्रयास हुआ। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स ने अपनी Mysterious universe' नामक पुस्तक में इन वैज्ञानिकों के द्वारा निर्माण किये गये दृष्टिकोण का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। वे कहते हैं—सारे भौतिक विश्व को एक यंत्र के रूप में मानने की एक प्रवृत्ति शुरू हुई जो प्रबल होती गई। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के पश्चात् में वह पराकाष्ठा तक पहुंच गई। उसी समय हेल्म होल्टस ने यह घोषणा की थी कि 'सारे प्रकृति विज्ञान (या भौतिकवाद) का अन्तिम यंत्र विज्ञान (या यंत्र युग) के रूप में परिणत होना है। और लार्ड केल्विन ने तो यह भी कह दिया कि वे ऐसी किसी बात को नहीं समझ सकते जिसका वे यांत्रिक मॉडेल न बना सकें। प्रकाश व गुरुत्वाकर्षण को भी यांत्रिक गुणों वाला सिद्ध करने की चेष्टा हुई पर सफलता नहीं मिली। सफलता के अभाव में यह विश्वास अटल रहा कि अंत में विश्व की यांत्रिक व्याख्या सम्भव हो सकेगी। ऐसा मालूम हो रहा है कि केवल अधिक परिश्रम से ही सारी जड़ प्रकृति ठीक-ठीक कार्य करने

वाले एक यंत्र के रूप में प्रकट की जा सकेगी। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि प्राचीन काल के वैज्ञानिक पदार्थ का अध्ययन ऐसे बड़े टुकड़ों पर ही करते थे जो सीधे इन्द्रियगोचर होते थे। उसमें लाखों-करोड़ों अणु विद्यमान थे जिनका आचरण निश्चय ही यंत्र जैसा था। परन्तु उसके आधार पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि पृथक्-पृथक् अणुओं का आचरण भी इसी प्रकार यंत्रवत होगा। यह तो सभी जानते हैं कि किसी जन समूह के आचरण और उस पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के आचरण में भारी अंतर होता है। पृथक्-पृथक् अणुओं, परमाणुओं, इलेक्ट्रॉन के आचरण का अध्ययन पहले-पहल उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ही सम्भव हो सका। उसी शताब्दी के अन्तिम महिनों में बर्लिन के मैक्सप्लांक ने विकिरण की कुछ ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जो न केवल अयांत्रिक थी वरन् किसी यांत्रिक विचार पद्धति से उसका सम्बन्ध जोड़ना असम्भव मालूम पड़ा। बाद में विकसित होकर 'क्वांटम सिद्धान्त' के रूप में परिणत हुई और दूसरा सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आइंस्टीन ने सापेक्षतावाद का प्रस्तुत किया। इन दोनों सिद्धान्तों से मशीनी ब्रह्माण्डवाद की जड़ें हिल गई।

क्वांटम सिद्धान्त के अनुसार जब किसी पदार्थ या पिण्ड (सूर्य आदि) में अत्यधिक ताप (Heat) के फलस्वरूप जो विकिरण पैदा होती है वह अटूट प्रवाह के रूप में न होकर पृथक्-पृथक् सूक्ष्म कणों के रूप में होती है, जिसे क्वांटम कहते हैं। विकिरण का प्रवाह विच्छेदयुक्त, सर्पगति से न होकर मंडूक गति से होता है। इससे कार्य-कारण की शृंखला टूट जाती है। कारण-कार्य के नियम के अनुसार विकिरण की गति अबाध रूप से, बीच में व्यवधान रहित, विच्छेद पड़े बिना निरन्तर चलती रहनी चाहिए। क्योंकि कारण-कार्य की शृंखला में पहला कदम (कारण) अगले कदम कार्य को उत्पन्न करेगा। वह कार्य फिर कारण बनकर अगले कार्य को उत्पन्न करेगा। यह शृंखला आगे बढ़ती जाएगी। परन्तु ऐसा होता नहीं है। विकिरण की प्रवाह की गति में अबाध के स्थान पर विच्छेद पड़ जाता है। वहां विकिरण के प्रवाह का कोई निशान नहीं होता है, शून्य होता है, कुछ नहीं होता है। विकिरण कूद-कूद कर चलता है, बीच में टूट जाता है, फिर चल पड़ता है। कारण-कार्य के नियम के अनुसार बीच में जो आवश्यक लगातार गति बनी रहनी चाहिए वह टूट जाती है। इस बात को इस तरह समझ सकते हैं कि सर्प की गति हर स्थान को छूती हुई चलती है। उसकी गति में निरन्तरता है। मेढक की कुदान एक भिन्न प्रकार की गति है जिसमें मेढक हर स्थान को छूता हुआ नहीं चलता। कूदकर, बीच में चार-पांच हाथ के स्थान में कोई सम्पर्क स्थापित किये बिना नये स्थान पर पहुंच जाता है। इसे संस्कृत में 'मंडूक प्लुप्ति' कहते हैं। विकिरण की भी गति मंडूक की तरह होती है। इससे कारण-कार्य की शृंखला खंडित हो जाती है।

प्रो. प्लांक के सिद्धान्त के आधार पर जो नई खोज हुई है उसके अनुसार 'रेडियेशन' में अगर 'क' को हम 'ख' का कारण कहें तो 'रेडियेशन' के प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि 'क' के पीछे 'ख' आता तो है परन्तु यह बात निश्चित नहीं है 'क' के पीछे 'ग' भी आ सकता है 'घ' भी आ सकता है। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि 'क' के पीछे 'ख' के आने की ज्यादा सम्भावना (Probability) है, अनिवार्यता नहीं है। इस दृष्टि से 'क' के पीछे 'ख' का आना अनिवार्य नहीं। तब कारण-कार्य का नियम अटूट नहीं रहता।

आइंस्टीन ने अपने अनुसंधान द्वारा क्वांटम को और व्यापक रूप प्रदान किया। उसके अनुसार सिर्फ विकिरण ही नहीं पदार्थ के अन्य नाम-रूप भी पृथक्-पृथक् कणों के रूप में आगे चलते हैं। प्रकाश, ऊर्जा, ताप, चुम्बकीय तरंगें, एक्स-रे, गैस, वायु, रंग-रूप, स्वाद, गंध आदि। शक्तियां भी आकाश में अलग-अलग सूक्ष्म कणों के रूप में चलती है। यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त विज्ञान में फोटो-विद्युत् प्रभाव के नाम से प्रसिद्ध है। जिस पर आइंस्टीन को नोबेल पुरस्कार मिला। पर यह फोटो विद्युत् नियम, प्रचलित तरंग सिद्धान्त से टकरा गई जिसके अनुसार प्रकाश का निर्माण तरंगों से होता है। वास्तव में प्रकाश के सम्बन्ध की कुछ ऐसी बातें हैं जिसकी व्याख्या तरंग सिद्धान्त से ही हो सकती है। और वस्तुतः इस मौलिक प्रश्न का उत्तर अब तक नहीं मिला कि प्रकाश तरंगों से बना है या कणों से? इससे वास्तविक प्रकृति के विषय में एक बड़ी उलझनपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई है। जिसके फलस्वरूप प्रकृति के घटना-चित्रों में 'अनिश्चयवाद' का समावेश हो जाता है जिनकी व्याख्या सिर्फ गणितीय संकेतों के द्वारा ही हो सकती है।

जीन्स अपनी पुस्तक The Mysterious Universe में कहते हैं कि जब हम परमाणुओं और इलेक्ट्रॉन कणों का बड़े-बड़े समूह के रूप में अध्ययन करते हैं तो निश्चयवाद का औसत गणितीय नियम लागू हो जाता है जिसे पूर्ववर्ती भौतिक शास्त्र पकड़ नहीं पाया अथवा उस रहस्य को समझ नहीं पाया। उदाहरण के लिए एक सिक्का हवा में उछाला जाय तो यह निश्चित नहीं है वह चित गिरेगा या पट। लेकिन यह विचित्र बात है कि यदि लाखों टन सिक्के एक साथ उछालें जाय तो विज्ञान के अनुसार उनमें से आधे चित होंगे और आधे पट होंगे। इस प्रयोग को सैकड़ों बार दोहराया जाय तो भी वही फल प्राप्त होगा। यहां जीन्स का तात्पर्य यह है कि कुछ थोड़े परमाणुओं पर अनिश्चयवाद का नियम लागू होता है। जबकि असंख्य परमाणुओं के समूह पर निश्चयवाद का गणितीय नियम लागू हो जाता है। सर जेम्स जीन्स अपनी पुस्तक New world of Modern Physics में लिखते हैं—कारण-कार्य के नियम के स्थान पर अनिश्चितता के सिद्धान्त के कारण हम नहीं कह सकते कि किस कारण के पीछे कौन-सा कार्य अवश्यंभावी

रूप में आयेगा। यह बात शायद परमात्मा के ही हाथ में हो। भले ही वह किसी तरह का परमात्मा है।

इसे व्यावहारिक उदाहरण से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं—वस्तुविशेष या व्यक्तिविशेष के व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वह कब, किस तरह का व्यवहार करेंगी। भीड़ या व्यक्तियों और वस्तुओं के समुदाय के बारे में तो फिर भी अनुमान लगाये जा सकते हैं और करीब-करीब सही होते हैं। लेकिन व्यक्तिविशेष या वस्तुविशेष के सम्बन्ध में अनुमान लगाना तो दूर रहा, कल्पना तक नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई जैसे शहरों में प्रतिदिन दस-पांच दुर्घटनाएं होती हैं। 20-25 व्यक्ति इन दुर्घटनाओं में मारे भी जाते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि एक वर्ष में तीन-चार हजार दुर्घटनाएं होंगी और पांच-सात हजार व्यक्ति मरेंगे। इस तरह के आंकड़े इकट्ठे किये भी जाते हैं। इनकी घोषणा भी की जाती है कि इस वर्ष इतनी दुर्घटनाएं घटने की सम्भावना है। ये आंकड़े करीब-करीब सही होते हैं। लेकिन व्यक्तिविशेष या वाहनविशेष के सम्बन्ध में विचार किया जाये कि वह किसी दुर्घटना का शिकार होगा अथवा नहीं। तो इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन दुर्घटनाओं में से कौन-सी दुर्घटना किस व्यक्ति के साथ या किस वाहन से घटेगी।

इस प्रकार क्वांटमवाद पुरातन विज्ञान के दो आधार स्तम्भों कारण-कार्यवाद तथा निश्चयवाद को समाप्त कर देता है।

सापेक्षतावाद—अलबर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा विज्ञान जगत् में एक अभूतपूर्व भूकम्प मचा दिया। उसके अनुसार विज्ञान ने अभी तक जो कुछ खोजा है, वह सापेक्ष ज्ञान ही है। निरपेक्ष सत्य का ज्ञान नहीं। सापेक्ष का भाव यह है कि वह तथ्य या तथ्यों पर आधारित सिद्धान्त है, किसी दूसरे तत्त्व या सिद्धान्त की अपेक्षा करता है। यदि अपेक्षित तथ्य या सिद्धान्त अशुद्ध या त्रुटिपूर्ण निकलता है तो उस पर आधारित सिद्धान्त भी त्रुटिपूर्ण होगा। विज्ञान ने आज तक जो कुछ खोजा है वह किसी न किसी तथ्य-सिद्धान्त को ठीक मानकर उस पर आधारित है। यदि आधार स्वयं अशुद्ध है तो आधेय अपने आप अशुद्ध हो जायेगा। विज्ञान में आधार-आधेय का सापेक्ष-सापेक्षित का अन्तहीन तारतम्य चल रहा है। इसलिए विज्ञान उस मूल आधार को नहीं जान सकता जो स्वयं सत्तावान है और किसी अन्य पर आधारित नहीं है। किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रखता है। निरपेक्ष-स्वयंभू सत्य है।

सामान्य व्यवहार में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा सभी सापेक्ष सम्बन्ध हैं। वे अन्योन्याश्रित हैं। इसी प्रकार निरपेक्ष लम्बाई, मोटाई,

ऊंचाई विज्ञान की पकड़ के बाहर है। इसलिए विज्ञान का सारा मापन सापेक्ष है। हलकापन, भारीपन भी सापेक्ष है। इसलिए विज्ञान का सारा तोलन सापेक्ष है। धरती पर व्यक्ति का भार दो-ढाई मन होगा, वह चन्द्रमा पर भार विहीन होकर आकाश में उड़ने लगता है। इसलिए विज्ञान का Law of gravitation (न्यूटन), Specific gravity (आर्कीमिडिज), Atomic Weight आदि सभी सिद्धान्त सापेक्ष रह जाते हैं। इनमें से कोई-सा भी ऐसा सिद्धान्त नहीं है जो सारे विश्व में सब परिस्थितियों में, सब ग्रहों में, सब देशों में, सब कालों में सत्य सिद्ध हो सके। आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि गति, स्थिरता एवं न्यूटन के गति के सिद्धान्त सभी सापेक्ष हैं। आइंस्टीन ने दिक्-काल को भी सापेक्ष सिद्ध किया। गणित का सारा ज्ञान-विज्ञान भी सीमित एवं सापेक्ष है।

आइंस्टीन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त से वैज्ञानिकों के अहंभाव को एक बड़ा धक्का लगा और उनको यह अनुभव होने लगा कि उनकी अब तक की सारी साधना परम सत्य, पूर्ण अनन्त सत्ता की खोज के लिए नितान्त व्यर्थ हुई। प्रकृति के बहिरंग के कुछ तथ्यों, सिद्धान्तों का अपूर्ण सापेक्ष अध्ययन मात्र ही हो सका है।

रसायनशास्त्र की दृष्टि से विश्व का स्वरूप—पहले वैज्ञानिक वस्तु के छोटे-छोटे टुकड़ों पर अध्ययन करते थे जिसमें लाखों-करोड़ों Molecule मिले रहते थे। यह अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्ध न था। क्योंकि जैसे व्यक्ति का एकांत व्यवहार उसके भीड़ के व्यवहार से भिन्न होता है, उसी प्रकार एक Molecule का गुण लाखों Molecule के समूह के गुण से भिन्न होगा।

Molecule Theory—जिसमें कोई वस्तु प्रकृति में टिक सकती है जैसे पानी जिसमें हाइड्रोजन के दो Molecule तथा ऑक्सीजन का एक Molecule मिलकर पानी बनता है और पानी, पानी के रूप में टिक सकता है।

Atomic Theory—जिसमें Molecule को पुनः Atom में विभाजित किया जा सकता है। जैसे हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, लोहा, सोना, रेडियम, यूरेनियम, आदि हैं।

Elements of Atomic Weight—जिसमें प्रत्येक तत्त्व का Atomic weight या Number खोजा गया। Atomic weight या Number में परिवर्तन करने से अन्य तत्त्व में परिवर्तित हो जाता है।

Nuclear Theory—जिसमें Atom को पुनः इलेक्ट्रॉन-प्रोटोन में तोड़ा गया। प्रोटोन नाभिक के केन्द्र में रहता है। इलेक्ट्रॉन उसके चारों तरफ बड़ी तीव्र गति से घूमता है। विज्ञान की खोज के अनुसार इलेक्ट्रॉन-प्रोटोन तथा न्यूट्रॉन आदि भी भौतिक कण न होकर अन्ततोगत्वा वैद्युतिक शक्ति तरंगों के पुंज के रूप में ही बचते हैं।

Radio Active Energy—इस प्रकार रसायन की दृष्टि से भी अन्त में Radio Active Energy ही बचती है। Matter Energy में और Energy Matter में रूपान्तरित हो सकती है। Energy में मैटर के कोई गुण नहीं बचते। बर्ट्रेण्ड रसेल कहते हैं Energism के सिद्धान्त से भौतिकवाद का महल सदा के लिए ढह गया। क्योंकि भौतिकवाद का महल जिन ईंटों पर और चूने पर खड़ा था वह कच्ची प्रमाणित हुई। Matter उसे कहते हैं जो वजन रखता है और स्थान घेरता है। Energy में ये दोनों गुण ही नहीं बचते। अत: Energy को कोई Spiritual माने या न माने भौतिकवाद का महल ढह चुका है।

अब प्रश्न उठता है कि उस Energy का स्वरूप क्या है—वह जड़ है या चेतन। इस पर वैज्ञानिकों में ऊहापोह चल रहा है। मार्क्सवादी एवं भौतिकवादी चिन्तक ऊर्जा का स्वरूप जड़ भौतिक ही मानते हैं। कुछ विचारक पदार्थ और ऊर्जा दोनों को सत्य मानकर द्वैतवादी विचार को मानते हैं और कुछ चोटी के वैज्ञानिक जिनमें सर जेम्स जीन्स, श्रोडिंजर, आइंस्टीन, ओपेनहाइमर, एडिंगटन तथा प्लांक आदि हैं। जो ऊर्जा के स्वरूप को चेतन मानने लगे हैं। आज विज्ञान वेदान्त की ड्योढ़ी में, मन्दिर के गर्भ-गृह में खड़ा है। जिस दिन Energy के चेतन स्वरूप की उपलब्धि कर लेगा उस दिन विज्ञान की स्वतंत्र सत्ता न रहकर दर्शन में रूपान्तरित हो जायेगा।

विश्व के वैज्ञानिक अध्ययन का सर्वेक्षण

रसायनशास्त्र में	भौतिकी में
↓	↓
वस्तु	वस्तु
↓	↓
Molecule (बड़े अणु)	कण
↓	↓
Atom-Elements	प्रकाश का कण
	↓
↓	प्रकाश की लहर प्रकाश की रंगीन पट्टिका Spectrum
प्रोटोन/इलेक्ट्रॉन	↓
↓	प्रकाश ऊर्जा
Radio Active Energy	↓
	रेडियोधर्मी ऊर्जा

भौतिकी, रसायन-शास्त्र एवं सापेक्षतावाद के प्रकाश में विश्व की व्याख्या के तीन दार्शनिक निष्कर्ष निकलते हैं जो अद्वैत वेदान्त के सर्वथा अनुकूल हैं।

(क.) जब Quantum Theory आयी, विज्ञानी जब अंत:पारमाणविक जगत् में पहुंचे अर्थात् परमाणु के अन्दर क्या हो रहा है इसे आंक कर (Sub atomic world); झांक कर देखने का प्रयास किया तो उन्होंने देखा कि आजतक सूक्ष्मतम माने जाने वाले परमाणु के अन्दर भी छोटे-छोटे कई प्रकार के विद्युत् कण हैं जिन्हें इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, टेट्रोन, न्यूट्रोन, हेड्रोन आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इनके अकल्पनीय गति से घूमने, जुड़ने, बिछड़ने, नष्ट होने, पुनः जन्म लेने आदि बातों का जब उन्होंने अध्ययन किया तो वे अवाक् रह गये। वहां की वस्तुस्थिति का वर्णन करने में विज्ञानी अपने-आपको असमर्थ पाते हैं। न तो वे ये बता पाते हैं कि 'इस समय' क्या हो रहा है और न ये बता पाते हैं कि आगे क्या होगा। वहां एक विचित्र प्रकार की द्वंद्वात्मक स्थिति का उन्हें अनुभव होता है। ओपनहाइमर जिसने प्रथम अणु बम का विस्फोट किया था, कहता है कि अगर हमसे कोई पूछे कि क्या इलेक्ट्रोन्स स्थिर है? तो हम कहेंगे 'नहीं' और यदि कोई पूछे कि क्या वे चलायमान हैं? तो भी हम कहेंगे 'नहीं'। यदि किसी ने पूछा, क्या वे शाश्वत हैं? तो हमारा उत्तर होगा 'नहीं'। और यदि किसी ने पूछा कि क्या परिवर्तनशील हैं? तो भी हमारा उत्तर रहेगा 'नहीं'। कोई पूछे कि क्या वे केवल तरंगें हैं? तो हम कहेंगे 'नहीं' और किसी ने पूछा कि क्या वे ऊर्जापुंज है? तो भी हमारा उत्तर होगा 'नहीं'। कभी तो ये विद्युत् कण तरंगों जैसा व्यवहार करते हैं तो कभी ऊर्जापुंज जैसा।

इसी को सर विलियम ब्राग ने इसमें कहा था कि ऋणात्मक विद्युत् कण हर सोमवार, बुधवार, शुक्रवार को तरंग से दीख पड़ते है और मंगलवार, गुरुवार शनिवार को कणों के रूप में दिखलायी पड़ते हैं।

इसलिए एक मसखरे ने इसे कण-तरंग की संज्ञा दी।

इन्द्रिय या यंत्र के द्वारा सृष्टि का ठीक-ठीक मूल स्वरूप नहीं जाना जा सकता क्योंकि इस ज्ञान की सीमाएं हैं। इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं यंत्रों से वस्तु जगत् में सत्य न देखकर केवल छायाचित्रों को ही देखता है और भ्रमवश उसी को सत्य मान लेता है। सर जेम्स जीन्स ने प्लेटो के रिपब्लिक का निम्न रूपक देकर कहा है कि भौतिक विज्ञान का ज्ञान केवल सांकेतिक है, सत्य नहीं है। कुछ कैदी एक ही पंक्ति में इस प्रकार शृंखलाबद्ध हैं कि वे केवल सामने ही देख सकते हैं। उनके पीछे अग्नि जल रही है। उनके और अग्नि के बीच में मंच पर व्यक्ति आ-जा रहे हैं। कैदियों को सामने की दीवार पर केवल उनकी छाया ही दिखलाई देती है, असली व्यक्ति दिखलाई नहीं देते। इस उपमा में जीन्स ने भौतिक वैज्ञानिकों को उन शृंखलाबद्ध कैदियों के समान कहा है जो सत्य को नहीं देखते पर उनकी मंद-मंद छाया मात्र को ही सत्य मान लेते हैं। सभी

वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि वे इस जगत् के व्यापार को समझते नहीं और शायद कभी समझ भी नहीं सकेंगे। वर्तमान ज्ञान की प्रगति आइन्स्टीन के अनुसार एक जटिल समस्या में से सम्भवतः दूसरी जटिल समस्या उत्पन्न करने के समान ही है। विज्ञान इस यथार्थ के कारण सर्वथा किंकर्तव्यविमूढ हो गया है कि इस भौतिक संसार का प्रत्येक रहस्य अपने से परे एक और रहस्य की ओर संकेत करता दीखता है।

स्पष्ट है कि इन्द्रिय, मन, बुद्धि और यंत्रों के द्वारा परम सत्य या यथार्थ जगत् को नहीं समझते। विज्ञान की इस सीमा को जानकर बहुत से वैज्ञानिक दर्शन की ओर झुके और वैज्ञानिक के साथ-साथ दार्शनिक बन सृष्टि के मूल में चेतन सत्ता को स्वीकारने लगे हैं। इन्द्रियज्ञान की सीमा को समझने के कारण बहुत से वैज्ञानिक अन्तःप्रज्ञा (Intuition) की बात कहने लगे हैं। मानव की चेतना को भी एक पैरामीटर की तरह जोड़ना होगा तभी ज्ञान सम्भव होगा। क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय वस्तु आपस में जुड़े हुए हैं। प्रथम में वैज्ञानिक एक वस्तु को अन्य वस्तु से पृथक् मानकर अध्ययन व परीक्षण कर रहे थे। पर अब वे इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे हैं कि इस अखिल ब्रह्माण्ड में सब कुछ परस्पर जुड़ा है, परस्पर निर्भर, एक-दूसरे से सम्बन्धित एवं परस्पर पूरक है। अतः ज्ञान की पूर्णता के लिए मानव-चेतना को भी एक पैरामीटर की तरह उसमें सम्मिलित करना होगा।

(ख.) भौतिकी विश्व आभास का क्षेत्र है यथार्थ का नहीं। यथार्थ उसकी पृष्ठभूमि में है, जिसे विज्ञान नहीं जान सकता है। अर्थात् विश्व की व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक यथार्थ सत्ता नहीं है।

एक सामान्य व्यक्ति के लिए यह संसार रूप-रंग, ध्वनि, ताप आदि का समन्वित स्वरूप है। किन्तु एक आधुनिक वैज्ञानिक की दृष्टि में यह सृष्टि रंग-रहित, गंधरहित, ध्वनिरहित है। उसकी दृष्टि में प्रकृति में वस्तुतः द्रव्य है ही नहीं। वह सिर्फ दिक्-काल का और विद्युत् प्रवाहों का ऐसा विस्तार है जिन्हें सम्भावनाओं की अज्ञात तरंगों के द्वारा ही वर्णित किया जा सकता है अर्थात् ऐसी तरंगों का खेल है यह संसार जिनमें अनन्त सम्भावनाएं विद्यमान हैं और जिसका मूल स्वरूप अज्ञात है। यह ठोस दिखने वाला विश्व जब भलीभांति विश्लेषित किया जाता है तो एक ऐसे रहस्यमय परिमाण का रूप लेता है जिसका वर्णन असम्भव है। कुछ गणितीय प्रतीकों द्वारा संकेतमात्र दिया जा सकता है।

आर्थर एडिंगटन ने 'नेचर ऑफ फिजिकल वर्ल्ड' (भौतिक संसार का स्वभाव) पुस्तक में अपने काम में आने वाली मेज का उदाहरण दिया है। एक तो वह पुराने जमाने की मेज है। जिस पर लिखते समय लेखक की कुहनी जमी हुई है और दूसरी पदार्थ की बनावट के बारे में। भौतिक-शास्त्र की खोज से मेल खाती मेज है जो

अस्तित्वहीन है, सूने पड़े क्षेत्र में कुछ छोटे-छोटे कणों से बनी है। और ये छोटे-छोटे कण भी विलक्षण हैं। वे एक यष्टि के चारों ओर घूमते ऋणात्मक विद्युत्कण है। उन विद्युत्कणों की दूरी उस यष्टि से निज के आकार से भी लाखों गुना अधिक है और उनके बीच का हिस्सा सर्वथा खाली है। इन छोटे-छोटे कणों को छोड़कर परमाणु का शेष सारा अंतःस्थल तो खोखला है। ऐसे खोखले परमाणुओं से बनी दूसरी मेज की कल्पना एडिंटन ने की। एडिंटन ने निष्कर्षात्मक रूप में कहा, 'भौतिकी के संसार में हम सर्वथा परिचित जीवन का छायारूप ही देखते हैं। छायारूप कागज पर छायारूप स्याही से लिखा जा रहा है, छायारूप मेज पर छाया रूप ही केहुनी (कुहनी) विराजमान है। भौतिकशास्त्र पूरी तौर पर छाया संसार का ही व्यापार है।

इस प्रकार इस भौतिक विश्व का पूरा ढांचा नाना रूपों, नाना वेशों वाली नक्षत्रमालाओं, पर्वत शृंखलाओं, नर-नारियों, पशु-पक्षियों, प्राणियों और वस्तुओं से भरपूर, ध्वनियों और रंगों, ताप और गंध से भरपूर यह पूरा का पूरा ढांचा अन्तिम विश्लेषण में मात्र विद्युत् प्रवाहों अथवा अन्तिम शून्य आकाश यानी अनन्त सम्भावनाओं से भरी तरंगों का समुच्चय मात्र रह जाता है। 'मैटर' रह ही नहीं जाता। ठोस दीखने वाला यह संसार वाष्प की तरह उड़कर अदृश्य हो जाता है और वस्तुएं विलीन हो जाती हैं। बहुत्व की ओर बढ़ता-सा दीख रहा, विभिन्न रूपों और नामों में अभिव्यक्त हो रहा यह ब्रह्माण्ड एक ही अति सूक्ष्म मूल सत्ता में, शक्ति के उस मूल रूप में समाहित हो जाता है, जहां से कि उसका उद्गम होता है।

भारतीय मनीषी सृष्टि के मूल स्वरूप से हजारों वर्ष पूर्व से परिचित रहे हैं। वेदान्त की सृष्टि की व्याख्याएं आज भौतिकी के अनुसंधानों द्वारा भी प्रमाणित और पुष्ट हो रही हैं।

इस प्रकार आज विज्ञान भी यथार्थ एवं आभास का अन्तर कर भारतीय अद्वैत वेदान्त की मान्यता को स्वीकृत कर रहा है। वैज्ञानिकों द्वारा यथार्थ की यह परीक्षा कि सृष्टि की मूल सत्ता उस रूप में नहीं है जैसे कि व्यवहारतः हम जानते और मानते हैं। माया का अर्थ वेदान्त में इसी अर्थ में किया गया है कि जिसमें जो भासित होता है वह तत्त्वतः यथार्थ नहीं है। जगत् को इसी स्तर का माना गया है क्योंकि जैसा प्रतीत होता है वैसा है नहीं। इसको हम इस रूप में समझ सकते हैं कि वेदान्त के अनुसार जगत् है ही नहीं। ब्रह्म की ही सत्ता है। पर ब्रह्म की माया शक्ति के कारण आवरण और विक्षेप से वह ब्रह्म को ढककर जगत् की प्रतीति कराती है। विज्ञान ने खोजा कि पदार्थ सत्य नहीं वरन् विद्युत् तरंग की सत्ता है। पर यह तरंग भी अपने मूल में क्या है? यह जान सकना बहुत कठिन हो गया है क्योंकि ये तरंग समूह वस्तुतः मूल सत्ता नहीं कही जा सकती। अपितु इलेक्ट्रॉनिक कार्य-विधि से इसकी हम को जो जानकारी मिली है उसी की मानसिक संरचना

है। इस तरह विज्ञान विद्युत् तरंग समूह या ऊर्जा तक पहुंच गया है। कुछ वैज्ञानिक ऊर्जा का स्वरूप चेतन मानने लगे हैं। पर जिस दिन यह सिद्ध हो जाएगा उस दिन विज्ञान विज्ञान न रहकर दर्शन में बदल जाएगा।

यह ध्यान रहे कि वैज्ञानिक यह कतई नहीं मानते कि विश्व कुछ है ही नहीं और सब शून्य है।

एडिंगटन ने 'न्यू पाथ वेज इन साइंस' नामक ग्रंथ में स्पष्ट कहा है कि मेरा तात्पर्य यह कथमपि नहीं कि भौतिक विश्व का अस्तित्व ही नहीं है। वस्तुतः भौतिक विश्व व्यवहारतः पूर्ण सत्य है। उसमें एक निश्चित व्यवस्था है। क्रमबद्धता है। अनिश्चय के सिद्धान्त का भी यह अर्थ नहीं कि इस दुनिया में सभी कुछ अनिश्चित है। इसके सर्वथा विपरीत वैज्ञानिकों और वेदान्तियों का यह मत है कि सृष्टि में सर्वत्र कार्य-कारण भाव विद्यमान है। प्रत्येक कार्य का एक निश्चित कारण है। अनिश्चय के सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा हम सृष्टि की मूल सत्ता को पूरी तरह कभी नहीं जान सकते क्योंकि प्रयोग के उपकरण और माध्यम भी उसी सृष्टि के अंश हैं जिसका कि परीक्षण किया जा रहा है।

जब भौतिकी का आरम्भ हुआ, उसके हाथ की चीजें ठोस थी। पानी हवा की चोट से नीचे बहता था तथा वह गुरुत्वाकर्षण तथा हाइड्रोडायनिमिक्स के नियमों के अधीन था। किन्तु, वस्तुओं का यह ठोसपना माया के समान निस्सार निकला। तरल में से हमने ठोस तत्त्व परमाणु निकाला, फिर उसे इलेक्ट्रॉन में विभक्त कर दिया। किन्तु, इलेक्ट्रॉन बनते ही ठोस चीज हमारे हाथों से गायब हो गई। संतोष इतना ही है कि इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन के रूप में चीजों का सूक्ष्मतम रूप अब भी वर्तमान है। किन्तु क्वांटम का सिद्धान्त इन्हें भी बहुत स्थूल समझता है। अतएव इनसे आगे वह हमें एक ऐसी जगह ले जा रहा है जहां गणित के प्रतीकों के सिवा और कुछ भी नहीं है। जो ठोस था वह गल कर शून्य हो गया और हम आकार का हिसाब निराकार के पट पर लिख रहे हैं। पंडित नेहरू के शब्दों में, 'ठोस दुनिया पिघलकर गणित का कोई विचार अथवा छलना बन गई है जो माया सिद्धान्त के बहुत ही समीप है।

(ग.) व्यावहारिक जगत् या ब्रह्माण्ड का मूल कारण सम्भवतः अति सूक्ष्म चेतन सत्ता है। इसे बहुत से वैज्ञानिक मानने लगे हैं। सर जगदीशचन्द्र बसु के प्रयोगों On the Similarity of responses in inorganic and Living matter ने जड़ की सीमारेखा को ही समाप्त कर दिया है। विज्ञान पदार्थ को जड़ मानकर अनुसंधान करता रहा पर पदार्थ का विश्लेषण करते-करते वैज्ञानिक वहां तक पहुंच गए कि पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं बचा। जड़ की परिभाषा की जाती है जिसका वजन होता है, जगह घेरता है और निश्चित स्वरूप होता है। लेकिन

पदार्थ का सूक्ष्मतम विश्लेषण करने पर यह परिभाषा ध्वस्त हो गई। Energism का सिद्धान्त सामने आया। फिर जड़ पदार्थ के सम्बन्ध में निश्चित धारणा थी कि अमुक परिस्थितियों का पदार्थ पर अमुक तरह का प्रभाव पड़ेगा और उस पर अमुक तरह की प्रतिक्रिया होगी। लेकिन इस सम्बन्ध में नवीन तथ्य सामने आये हैं और कहा जा रहा है कि सब कुछ अनिश्चित है। इस सम्बन्ध में हाइजनबर्ग के अनिश्चिततावाद की बड़ी चर्चा हुई। उनके अनुसार एक ही समय में एक साथ एक ही तरह के कण किस तरह का व्यवहार करेंगे, यह नहीं जाना जा सकता। कण विशेष की गति एवं परिस्थिति के सम्बन्ध में भी कुछ कह पाना सम्भव नहीं है। केवल अनुमान लगाया जा सकता है और अनुमान कोई सही निकले यह जरूरी नहीं है। अनेक प्रयोग किए गए कि किन परिस्थितियों में कौन से कण किस तरह का व्यवहार करते हैं? एक ही परिस्थिति में एक ही प्रक्रिया से एक ही तरह के कणों का हजारों बार अध्ययन किया गया। लेकिन यह जानकर हैरानी हुई कि प्रत्येक बार हर कण का व्यवहार अनुमान से भिन्न था। यही नहीं, पिछली प्रतिक्रिया भी नहीं दोहराई गई।

इस आधार पर घोषणा की गई कि पदार्थ की जैसी परिभाषा की जाती रही वैसा कोई पदार्थ इस जगत् में है ही नहीं। दूसरे शब्दों में, यह घोषणा की गई कि पदार्थ मर गया है। पहले कभी नास्तिकवादी विचारक नीत्शे की घोषणा थी कि ईश्वर मर गया है। लेकिन अब विज्ञान को घोषणा करनी पड़ रही है कि पदार्थ मर गया है। अब वैज्ञानिकों को यह कहना पड़ रहा है कि पदार्थ विज्ञान से बाहर भी एक अत्यन्त विशाल, दुरूह और अज्ञात क्षेत्र रह जाता है जिसे खोजने के अभी तक कोई उपाय नहीं ढूंढ़े जा सके हैं। लेकिन वह क्षेत्र विज्ञान की सभी ज्ञात धाराओं का मूलस्रोत और नियंत्रणकर्ता है।

वैज्ञानिक मैक ब्रॉइट का कथन है कि विश्व के परोक्ष में किसी ऐसी सत्ता के होने की पूरी और निश्चित सम्भावना है जो ज्ञानयुक्त और इच्छायुक्त हो। उसी के कारण विश्व की गतिविधियां अनियंत्रित और अनिश्चित रूप से चल रही हैं। डॉ. मोर्डल का कहना है कि अणु और पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों के इस विचित्र व्यवहार से यह सिद्ध होता है कि कोई चेतन शक्ति है अवश्य, जिसके प्रभाव से ही अणु अथवा कणों का स्वभाव पकड़ में नहीं आता। वह कौन-सी शक्ति है और किस प्रकार काम करती है? उसके क्या नियम हैं? कैसे वह पदार्थ को प्रभावित करती है? आदि प्रश्नों का उत्तर विज्ञान के पास अभी नहीं है। इस सन्दर्भ में विख्यात वैज्ञानिक इगोल्ड का कथन है कि 'जो चेतना इस सृष्टि में काम कर रही है उसका वास्तविक स्वरूप समझने में अभी हम असमर्थ हैं। इस सम्बन्ध में हमारी वर्तमान मान्यताएं अधूरी, अप्रमाणित और असंतोषजनक हैं।'

सर जेम्स जीन्स, श्रोडिंजर, एडिंगटन, आइंस्टीन, प्लांक प्रभृति बहुत से वैज्ञानिक आभासमय जगत् के आदि कारण के रूप में चेतन सत्ता को स्वीकारने लगे हैं।

श्रोडिंजर ने स्वयं लिखा है—अब तत्त्वज्ञान के रहस्यवाद से दूर न रहकर मैं उनका पूरा उपयोग करूंगा। वे आगे कहते हैं—सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं कि समान वातावरण में जीवन के अनुभव की व्याख्या करने के लिए वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।

वेदान्त दर्शन की स्वीकृति करते हुए वे कहते हैं कि चिद्बिन्दु एक ही है। वे यह मानते हैं कि चिद्बिन्दुओं का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में परिणत हो जाता है।

इस दर्शन के अनुसार हम सभी चेतन प्राणी एक ही सत्ता के अनेक रूप हैं। वह 'एक' तत्त्व पाश्चात्य शब्दावली में God और उपनिषद् की शब्दावली में 'ब्रह्म' है। श्रोडिंजर लिखते हैं—अद्वैत सिद्धान्त के निम्नलिखित नैतिक निष्कर्ष हमें स्वीकारने चाहिए।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27, गीता

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। 13/28, गीता

समस्त विनाशशील प्राणियों में समभाव से स्थित विनाशरहित परमेश्वर को जो देखता है वही (यथार्थतः) देखता है। क्योंकि सर्वत्र समभाव से अवस्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला अपने द्वारा अपने को नहीं मारता। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

प्राणीमात्र के प्रति दया और करुणा के भाव यहां चरम लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है। मूलभूत एकता ही सत्य है।....साधना का क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्त में साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त ग्रहण कर मुक्त हो सके।

सर जेम्स जीन्स के अनुसार भौतिक जगत् का मूलरूप विचार-बुद्धियुक्त चेतन स्वरूप है। भौतिक जगत् की घटनाएं बिना किसी सिद्धान्त के मनमाने ढंग की नहीं हैं। उनमें सामंजस्य, एकरूपता तथा विश्वव्यापी अनुशासन है। उन्हें गणित की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। सर जेम्स जीन्स के शब्दों में—भौतिक जगत् की सामंजस्यपूर्ण घटनाओं का रचयिता कोई बुद्धियुक्त सत्ता है। वह महान्

गणितज्ञ प्रतीत होता है जिसको परमेश्वर कहा जा सकता है। भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुरूप जेम्स जीन्स मानता है कि समग्र विश्व का विराट् रूप तथा सूक्ष्म रूप चेतन स्वरूप ही है। समग्र जगत् परमेश्वर द्वारा रचित है। भौतिक जगत् और उसकी घटनाएं परमेश्वर के मन में प्रत्यय के रूप में विद्यमान रहती हैं। यह इस भारतीय मान्यता का समर्थन है कि सारी सृष्टि परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई है। जेम्स जीन्स ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के आधारभूत स्वरूप में कोई अन्तर नहीं मानता। यह सभी चेतन स्वरूप है। चैतन्य की तीन विधाएं (रूप) हैं। इस प्रकार जेम्स जीन्स ने स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी विज्ञान के अन्तिम तार्किक निष्कर्ष में चैतन्य के प्रतिपादक प्रत्ययवाद अथवा भारतीय वेदान्त दर्शन का समर्थन किया है।

इसी तरह अनेक वैज्ञानिक सृष्टि में नियामक तत्त्व के अस्तित्व पर बल डाल रहे हैं। प्रमुख वैज्ञानिकों ने अपने लेखों के द्वारा यह विचार स्पष्ट किया है कि प्रकृति में व्यवस्था है, नियमों में सार्वभौमता है। विश्व में महान् अभिकल्प (डिजाइन) है तथा समग्र प्रकृति में एक प्रतिकृति (पैटर्न) है। जिससे यह सिद्ध होता है कि कोई एक अनन्त बुद्धि है जो विश्व में एक व्यवस्था रखती है तथा विश्व कोई स्वतंत्र यंत्र नहीं है वरन् इसका कोई हितकारी उद्देश्य है। यह विचार दो पुस्तकों का सार है जिनमें प्रमुखतम वैज्ञानिकों के लेखों का संकलन हुआ है। 'हैज साइन्स डिस्कवर्ड गॉड? ए सिम्पोजियम ऑफ मार्डन साइटिंफिक ओपीनियन' नामक पुस्तक में मिलिकन, मेथर, एडिंगटन, आइंस्टीन, जुलियन हक्सले, मैकडूगल, जीन्स आदि सोलह प्रमुख वैज्ञानिकों के विचारों का संकलन है तथा इसी प्रकार से 'द ग्रेट डिजाइन' में रोबर्ट ऐटकीन्स, लॉयड मोर्गन, सर आलिवर लाज, हेन्स डीश आदि चौदह प्रमुख वैज्ञानिकों के विचारों को संकलित किया गया है।

इसी प्रकार की एक पुस्तक The Evidence of God in Expending Universe में चालीस वैज्ञानिकों ने ईश्वरसम्बन्धी अपने विचार प्रकट किए हैं। इन वैज्ञानिकों में भौतिकविद् हैं, रसायनविद् हैं, प्राणीविद् हैं, भूगर्भविद् हैं, कृषि और वृक्ष-वनस्पतिविद् हैं, कीट और जन्तुविद् हैं, ज्योतिर्विद् हैं। और भी विज्ञान की अन्य अनेक शाखाओं के अध्येता और विशेषज्ञ हैं। सबका मूल स्वरूप प्रायः यही है कि उन्होंने विज्ञान की जिस-जिस शाखा का अध्ययन किया है, उसमें सर्वत्र उन्हें क्रम, व्यवस्था और इतनी सुघड़ नियमबद्धता दिखाई देती है कि वे मान ही नहीं सकते कि यह संसार बिना किसी नियामक के, बिना किसी कर्ता के, बिना किसी व्यवस्थापक के स्वयमेव और अकस्मात् पैदा हो गया। वह नियामक, व्यवस्थापक और रचयिता ही परमात्मा है। यही इन सब वैज्ञानिकों का सर्वसम्मत निष्कर्ष है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में वैज्ञानिक जगत् में जो अनेक बड़े धमाके हुए उनमें क्वांटमवाद और सापेक्षतावाद के अतिरिक्त

एक ऐसा धमाका भी हुआ था जो महान् भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र वसु (1858 ई.-1937 ई.) द्वारा यूरोप में किया गया। अपने प्रयोगों द्वार वसु ने यह सिद्ध कर दिया कि चेतना का संयोग पदार्थ के कण-कण से है तथा निर्जीव तथा सजीव पदार्थों के बीच वस्तुतः कोई सीमा रेखा नहीं है। दूसरे शब्दों में, बाह्य रूप से जो हमें जड़ दिखाई देता है वह आन्तरिक रूप से पूर्णतया चेतन है। यद्यपि इन्द्रियों द्वारा पदार्थ हमें जड़ दिखाई देता है लेकिन इन्द्रियों से परे वह पूर्णतया चेतन है। वेदान्त का यह सिद्धान्त 'चेतन सत्ता पत्थर में सोयी हुई, वनस्पतियों में ऊंघ रही है, पशुओं में स्वप्न ले रही है। वह मनुष्य में जागृत है। वसु द्वारा प्रमाणित हो चुकी है। सन् 1900 ई. में पेरिस की अन्तरराष्ट्रीय भौतिकी कांग्रेस में उन्हें सादर आमन्त्रित किया गया और उस कांग्रेस में उनके द्वारा जो शोधपत्र पढ़ा गया उसका शीर्षक इस प्रकार था—निर्जीव और सजीव पदार्थों के प्रत्युत्तर में समानता' (On the similarity of responses in inorganic and living matter)। वसु का यह सिद्धान्त भौतिकवादी विचारधारा पर प्रत्यक्ष प्रहार था। इस सिद्धान्त से यह प्रमाणित होता है कि चेतना से ही पदार्थ प्रतिभासित होता है ('तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति')। अपना शोधपत्र पढ़ते हुए वसु ने अन्त में कहा कि निर्जीव और सजीव पदार्थों के बीच कोई सीमा रेखा खींचना कठिन है क्योंकि हम यह नहीं कह सकते कि अमुक सीमा पर भौतिक प्रक्रिया समाप्त होती है और उस सीमा से जैविक प्रक्रिया शुरू होती है। दूसरे शब्दों में, निर्जीव और सजीव वस्तुतः एक ही तत्त्व है जो परस्पर एक में ही (प्रकृति और पुरुष) गुंथे हुए हैं। ('मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्र मणिगणा इव') वसु ने इस तथ्य पर जोर दिया कि हमें प्रकृति की भिन्नता में एकता का दर्शन होता है।

अध्यात्म के क्षेत्र में जो कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया, विज्ञान के क्षेत्र में वही कार्य सर जगदीशचन्द्र वसु द्वारा सम्पन्न हुआ।

नैतिक कारण—विज्ञान मूल्यनिरपेक्ष अध्ययन है। वैज्ञानिक उपलब्धियों का उपयोग किस प्रकार करेगा यह मानव के विवेक पर निर्भर करता है। विज्ञान न तो मानव मन का निर्माण कर सकता है और न दिशा दे सकता है। सर जेम्स जीन्स के शब्दों में—विज्ञान गूंगा और बहरा है। वह अपनी एक हथेली पर पेनिसिलिन और दूसरी पर परमाणु बम रखकर तुम्हारे पास आता है। अब यह तुम पर निर्भर है कि तुम किसे पसन्द करते हो और उठाते हो। तात्पर्य यह है कि मानव चाहे तो विज्ञान द्वारा सारे विश्व का दु:ख, दैन्य, अशिक्षा को दूर कर सकता है और चाहे तो बटन दबाते ही सृष्टि का ध्वंस भी। अत: विज्ञान मानव मन को संस्कारित कर दिशा नहीं दे सकता। आइंस्टीन ने कहा था, 'विज्ञान प्लूटोनियम के स्वभाव को बदलने में सक्षम हो सकता है परन्तु मानव हृदय की दुष्प्रवृत्तियों को नहीं

बदल सकता।' मैक्सिम गोर्की के शब्दों में—विज्ञान हमें पक्षियों की भांति उड़ना, मछलियों की भांति तैरना तो सिखा सकता है पर पृथ्वी पर मानव की भांति रहना नहीं सिखा सकता।'

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि संस्कारित व्यक्ति (सज्जन) के पास विद्या अशिक्षा को दूर करने के लिए होती है। धन दूसरों की सेवा के लिए एवं शक्ति दुर्बलों की रक्षा के लिए होती है। पर असंस्कारित, दुर्जन व्यक्ति के पास विद्या अपने अहम् को बढ़ाने, धन दूसरों के शोषण के लिए और शक्ति दुर्बलों पर अन्यायपूर्ण शासन के लिए होती है। जब विज्ञान मन को संस्कारित नहीं कर सकता तब असंस्कारित मन द्वारा गलत पथ पर चलना स्वाभाविक है। असंस्कारित मन न स्वयं सुखी रह पाते हैं और न दूसरों को सुखी रहने देते हैं। विज्ञान ने जहां आधिभौतिक सुख-वैभव का अम्बार लगा दिया वहां उसने अपना आतंक जमाने के लिए अणु बम, परमाणु शक्ति को भी जन्म दिया। परमाणु शक्ति का उपयोग लोक कल्याण के लिए भी हो सकता है। पर असंस्कारित मन ने दुरुपयोग किया जिसकी विभीषिका प्रथम विश्वयुद्ध, द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में चल पड़ी जिससे विश्व के मनीषियों को बड़ा धक्का लगा और उन्हें आत्म मंथन के लिए, आत्म परीक्षण के लिए बाध्य कर दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार एवं दर्शन के तत्त्ववेत्ता स्पेन्गलर ने मानवीय तथा आध्यात्मिक मूल्यों की कब्र पर उपजी पाश्चात्य सभ्यता के पतन की भविष्यवाणी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Decline of the West (पश्चिम के पतन) में की। सन् 1969 में क्लब आफ रोम में वैज्ञानिकों ने इस ओर दुनिया का ध्यान खींचा था। फिर से क्या मानव प्रस्तर युग में प्रवेश करे? March of India में प्रकाशित India and Europe लेख में श्री हडाधानी लिखते हैं—यूरोप में आज तत्परता के साथ आत्मपरीक्षण चल रहा है और जिज्ञासु व्यक्तियों के मन में अनेक प्रश्न उठ रहे हैं। क्या हमने मानव की भौतिक विपदाओं पर विजय पाई सिर्फ पूर्णरूप से नष्ट हो जाने के लिए? क्या हम अपने सामने के आतंकों को पराभूत करके स्थायी शांति स्थापित कर सकते हैं अथवा क्या हमें भविष्य में जमीन में छिपकर चूहों आदि का-सा जीवन बिताना पड़ेगा? क्या हमारी वैज्ञानिक प्रणाली ने जीवन की कला की अवहेलना कर दी है? क्या हमारे स्वायत्त प्रशासन में आत्मा का शासन नहीं है? हमारा भौतिक ज्ञान विकसित होकर आत्मज्ञान में और हमारी महानता शालीनता में क्यों नहीं परिणत हो जाती है?

21 जून, 1981 को दुनिया भर के 53 नोबल पारितोषिक प्राप्त विद्वानों को जिनेवा, रोम, ब्रुसेल्स, बर्न, पेरिस, ओटावा तथा न्यूयार्क, इन सात महानगरों से अपील निकालनी पड़ी कि सभी जगह केन्द्रीय राजसत्ता और अर्थसत्ता ने

मिलकर सामान्य आदमी के खिलाफ षड्यंत्र रचा है। यह केन्द्रीय व्यवस्था करोड़ों आदमियों को कुचल रही है। इस व्यवस्था को बदलने में आनाकानी करने से सारी दुनिया के नष्ट हो जाने की पूरी सम्भावना है। दुनिया के लोग हवा का रुख समझ कर बदलें। यह बहुत ही अच्छा होगा अन्यथा गांधीप्रणीत शान्तिमय आन्दोलन का सहारा लेकर दुनिया के दुर्बलों को यह आत्मघात रोकना ही होगा।

सन् 1986 में विज्ञान और धर्म के समन्वय पर दुनिया की कांग्रेस भारत में हुई। उसमें आये हुए विश्वविख्यात मैसाच्युसेटस इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी के कम्प्यूटर विज्ञान तंत्र के प्रोफेसर जोसेफ बेझवान ने कहा कि हमें विज्ञान का नशा चढ़ गया है, जिसे उतारने की जरूरत है। विज्ञान का उपयोग गत पचास-सौ वर्षों में सुरक्षा के नाम पर लोगों को मारने के लिए हुआ है और यह बन्द होना चाहिए।

प्रो. बेझवान ने पुनः अन्यत्र प्रश्न उठाया है—नोबल प्रॉइज के लिए इतिहास में अपना नाम लिखवाने के लिए वैज्ञानिक चाहे जो प्रयोग करेगा, किन्तु इसके लिए मनुष्य जाति को कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी। कहीं बंदर के पंजे Monkey paw की तरह भयानक स्थिति को तो नहीं भुगतना पड़ेगा। कहीं हमें सम्पूर्ण नरसंहार से मूल्य तो नहीं चुकाना पड़ेगा? इसके लिए सांस्कृतिक पुरुषों (जिसको सारी मानव जाति से प्रेम है) का नियंत्रण विज्ञान के प्रयोग पर होना चाहिए।

बर्ट्रेण्ड रसेल ने Impact of Science on Society पृष्ठ 120-21 में कहा है—'हम एक ऐसे जीवन प्रवाह के बीच में हैं जिसका साधन है मानवीय दक्षता और साध्य है मानवीय मूर्खता।' अगर मूर्खता लक्ष्य हो तो उसकी सिद्धि के लिए कुशलतावृद्धि की दिशा में उठाया गया प्रत्येक कदम बुराई की ओर ले जाता है। मानव-जाति अब तक जीवित रह सकी है तो अपने अज्ञान व अक्षमता के कारण ही। परन्तु अगर ज्ञान व क्षमता मूढता के साथ युक्त हो जाए तो उसके बचे रहने की कोई सम्भावना नहीं है। ज्ञान शक्ति है पर यह शक्ति जितनी अच्छाई के लिए है उतनी ही बुराई के लिए भी है। निष्कर्ष यह है कि जब तक मनुष्य में ज्ञान के साथ-साथ विवेक का भी विकास नहीं होता, तब तक ज्ञान की वृद्धि दुःख की वृद्धि ही साबित होगी।

इस प्रकार विज्ञान नैतिक कारण से भी धर्म की ओर झुक रहा है, उसके मार्गदर्शन की अपेक्षा करने लगा है। यह मार्गदर्शन निश्चय ही ईसाई धर्म नहीं कर सकता जिसके स्वयं के ही मानवीय या बौद्धिक दर्शन के अभाव में आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा मानवीय मूल्यों की ठोस चट्टान से टकराकर विश्वासों एवं अंध-विश्वासों के तिनके बिखर गये। परिणाम यह है कि आज ईसाई देशों में भी ईसाइयत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अलग होकर रह गयी है। अतः ईसाई

दर्शन मार्गदर्शन नहीं कर सकता (जो स्वयं ही मानवमूल्य विरोधी, विज्ञान विरोधी है)। पश्चिम में जो ज्ञान-विज्ञान की उन्नति सम्भव हुई है वह ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ही। इस दृष्टि से हिन्दू धर्म ही आशा का केन्द्र है और उसी में यह क्षमता है। हिन्दू धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष का न होकर मानव मात्र का धर्म है, दर्शन है और वैज्ञानिक प्रक्रिया का समर्थक है।

मैक्समूलर कहता है—यदि मुझसे पूछा जाए कि किस गगन के नीचे मानव मन ने ऊंची से ऊंची प्रतिभाओं का विकास किया है, जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर विचार कर ऐसे ऊंचे हल ढूंढ़े हैं कि जो प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने वाले विद्वानों के ध्यान को भी आकर्षित करने का अधिकार रखते हैं तो वह महान् देश, भारत है। अगर मैं अपने से पूछूं कि हम—यूरोप के वासी—जो अब तक केवल ग्रीक, रोमन तथा यहूदी विचारों में पलते रहे, किस साहित्य से वह प्रेरणा ले सकते हैं जो हमारे भीतरी जीवन का परिशोधन करे, उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करे, व्यापक बनाये, विश्वजनीन बनाये, सही अर्थों में मानवीय बनाये जिससे हमारे इस पार्थिव जीवन को ही नहीं हमारी सनातन आत्मा को प्रेरणा मिले, तो वह भारत देश है।

Sir W. Hunter के शब्दों में—भारतीय दर्शन ने उन समस्त दार्शनिक गुत्थियों के सम्भावित समाधान खोज लिए थे जो गुत्थियां प्रारम्भ में यूनानियों, रोमनों, मध्यकालीन यूरोपीय चिन्तकों को परेशान करती रही हैं और आज तक वैज्ञानिकों को उलझन में डाले हुए है।

Mrs. Manning के शब्दों में—'हिन्दुओं के मन एवं चिंतन का उतना अधिकतम विस्तार हो चुका था जितना मानव के लिए कभी सम्भव हो सकता है।'

Prof. Schegal (जर्मनी) कहता है—'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन बौद्धिक अध्यात्मवाद जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनन्त प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर तेज के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही हो और किसी समय भी बुझ सकती है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन पश्चिमी दर्शन की तुलना में श्रेष्ठ एवं सार्वभौम है और इसका आधुनिक विज्ञान के साथ पूरा मेल है। जैसा कि फ्रिटजाफ केपरा की **(The Tao of physics)** आदि पुस्तकों से स्पष्ट है। अतः यही विज्ञान को नियंत्रित रख सकता है। यथोचित मार्गदर्शन दे सकता है।

इसलिए आज चोटी के वैज्ञानिक वेदान्त का हवाला देना नहीं भूलते। जैसे यदि आप एडिंगटन, जेम्स जीन्स, मैक्सप्लांक तथा श्रोडिंजर आदि की पुस्तकों को पढ़ें तो उनमें वेदान्त और पतंजलि के योगसूत्र का हवाला पाएंगे।

संस्कृत भाषा एवं हिन्दू अध्यात्मपरम्परा से परिचित होना—संस्कृत भाषा से परिचित होने से पूर्व वे सेमिटिक धर्म विशेषकर ईसाई तत्त्वज्ञान से परिचित थे जिसका विज्ञान के साथ सीधा विरोध था। पर जैसे-जैसे संस्कृत भाषा से परिचित हुए, हिन्दू तत्त्वज्ञान से परिचित हुए तब उन्हें यह जानकर भी आश्चर्य हुआ कि जिन तथ्यों को पाश्चात्य विज्ञान ने खोजा है वे एकदम नये नहीं वरन् हिन्दू परम्परा बहुत पहले से ही इनसे परिचित है। उदाहरणार्थ—श्री जकेलियट नामक प्रसिद्ध विद्वान् ने अपने The Bible in India नामक ग्रंथ में अनेक मतों की सृष्टि व्युत्पत्तिविषयक कल्पनाओं का उल्लेखकर वैदिक विचार के बारे में निम्न उद्‌गार प्रकट करते हैं—'बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि ईश्वरीय धर्मग्रंथों में एकमात्र वेद ही ऐसे हैं जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्ण साम्य रखते हैं क्योंकि वेद में ही विज्ञान के अनुसार विश्व की क्रमिक रचना का विचार प्रतिपादित है।'

अमेरीकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स कहती हैं—'हम लोगों ने भारत के प्राचीन धर्म के विषय में पढ़ा है और सुना है। भारत महत्त्वपूर्ण वेदों की भूमि है जिसके अन्दर न केवल जीवन के पूर्णत्व के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है वरन् उन तथ्यों का भी निर्देश है जिनको सारे विज्ञानशास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत् शक्ति, रेडियम, इलेक्ट्रॉन तथा वायुयान आदि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।'

न्यूटन ने एक बार कहा था, 'यदि मैं दूसरों से आगे देख सका हूं तो इसका कारण यह था कि मैं महामानवों के कंधों पर खड़ा था।' यही दत्तोपंत ठेंगड़ीजी कहते हैं—पश्चिम इन महामानवों को जन्म इस कारण दे सका था कि पुनर्जागरण काल में यूरोप का समूचा बुद्धिजीवी वर्ग हिन्दू महामानवों के कंधों पर खड़ा था।

इस प्रकार हिन्दू तत्त्वज्ञान का विज्ञान के साथ अद्‌भुत मेल है इसलिये वे भारतीय दर्शन की ओर झुकने लगे।

शोपेनहावर ने भविष्यवाणी की थी कि 'मैं विश्वास करता हूं कि जो पन्द्रहवीं शती में ग्रीक साहित्य के पुनर्जागरण ने किया था, उससे कम गहरा प्रभेदकारी प्रभाव संस्कृत साहित्य का न रहा होगा।' शोपेनहावर की यह उक्ति सत्य होती हुई दिखाई देती है। प्रथम अणु विस्फोट के समय ओपेनहाइमर को विज्ञान या बाइबिल का वचन न याद आकर गीता का श्लोक याद आता है। विख्यात भौतिकशास्त्री एवं वैज्ञानिक श्रोडिंजर एवं एडिंगटन अपनी अनेक पुस्तकों में सांख्य, वेदान्त और योगदर्शन का हवाला देते हैं। वर्तमान समय में फ्रिटजाफ केपरा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Tao of physics में आधुनिक विज्ञान के निष्कर्षों के साथ वेदान्त का साम्य दर्शाते हुए योगदर्शन, वेदान्त की वकालत की है।

इस प्रकार इन तीनों कारण से विज्ञान भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है।

सृष्टि-रहस्य

यह विराट्, अनन्त सृष्टि क्या है? इसका स्वरूप क्या है? इसका तत्त्व क्या है? इसका कोई सृष्टा है या नहीं आदि प्रश्न विज्ञान एवं दर्शन के अनादि प्रश्न हैं। जब तक जीव पशुओं के समान सिर झुकाये हुए चार पांव पर धरती पर चलता रहा तब तक उसने सृष्टि और सृष्टा के बारे में कोई जिज्ञासा नहीं की। किन्तु, मानव के रूप में जब वह दो पांवों पर खड़ा हो गया और उसने अपने ऊपर अनन्त आकाश और उसमें फैली हुई असंख्य ज्योतियों को देखा तो वह विस्मय से भर गया। यह अनन्तानन्त तारों से खचित विश्व क्या है? प्रसिद्ध दार्शनिक कांट पहले भूगोल एवं नक्षत्र विज्ञान का अध्यापक था। अनन्त आकाश के अनन्त ज्योति पिण्डों को देखकर उसे जो विस्मय हुआ उसी से वह दार्शनिक बन गया। अरिस्टोटल ने ठीक ही कहा है Philosophy is born in the lap of wonder. अर्थात् विस्मय की गोदी में दर्शन का जन्म होता है।

क्या यह सृष्टि महान् शक्ति की सर्जना है अथवा यह स्वयं ही प्रारम्भ से अपने आप है। इस प्रश्न पर भी वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों में आज तक बड़ा ऊहापोह चलता रहा है। सृष्टि शब्द से यही प्रतीत होता है कि यह किसी सृष्टा द्वारा सृष्ट की गई है। आंग्ल भाषा में Creation शब्द भी किसी Creator की अपेक्षा रखता है। बिना Creator के Creation नहीं हो सकती। आंग्ल भाषा में Universe का शाब्दिक अर्थ भी यही है किसी एक शक्ति द्वारा समान नियमों में बंधा हुआ संतुलित काव्य। वेद में भी इसे देवता का काव्य कहा गया है—

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

अर्थात् उस देवता के काव्य को तो देखो न यह मरता है और न पुराना होता है।

Verse या काव्य का हार्द है उसमें लयबद्धता (Rhythm)। यदि काव्य से लय निकाल दी जाए तो काव्य, काव्य ही नहीं रहता। यदि सृष्टि से लय या नियमबद्धता निकाल दी जाए तो सृष्टि ही न रहे। इसे आंग्ल भाषा में Cosmos भी कहते हैं। जिसका अर्थ है एक व्यवस्थित संतुलित विश्व। बिना व्यवस्था अथवा

नियम के यह Cosmos Chaos हो जाएगा। अतः दार्शनिक Design designer का तर्क लगाकर सिद्ध करते हैं कि इस विराट् सृष्टि का सृष्टा अवश्य है।

विज्ञान सृष्टि को किसी सृष्टा की रचना न मानकर अपने आप प्रकृति का खेल मानता है। प्रश्न पैदा होता है कि क्या यह जड़ प्रकृति का खेल है? इससे कई गम्भीर प्रश्न खड़े हो जाते हैं जिनको रहस्य कहकर विज्ञान टाल देता है। यदि सृष्टि में व्यवस्था है तो उसमें कुछ नैतिक उद्देश्य सन्निहित है जो जड़ की परिधि के बाहर है।

प्रकृति शब्द भी बड़ा रहस्यमय है। यदि सृष्टि प्रकृति की लीला है तो इस लीला का प्रेरक एवं नियंता कौन है? यह बड़े गंभीर प्रश्न हैं। सांख्य दर्शन कहता है पुरुष की इच्छानुसार प्रकृति नटी (नर्तकी) नृत्य करती है। न्याय दर्शन में भी प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि सत्ताएं माना गया है। इनके अनुसार जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष दोनों के मेल के बिना कोई सृष्टि नहीं हो सकती। वेदान्त दर्शन के मत में प्रकृति माया की ही सर्जन शक्ति का नाम है। ब्रह्म के संकल्प से ही ब्रह्म की शक्ति माया या प्रकृति के रूप में अनन्त ब्रह्माण्ड रच देती है। उसे रचने के लिए किसी बाह्य पदार्थ या साज सामान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस दृष्टिकोण से ब्रह्म सृष्टि को पैदा नहीं करता वरन् अपने संकल्प से स्वयं सृष्ट रूप बन जाता है। जहां सामान्य जगत् में Transient नश्वर एवं भिन्न कार्य-कारणवाद का सिद्धान्त चलता है वहीं ऊंचे अध्यात्म की चर्चा में immanent causility अभिन्न-निमित्तोपादान कार्य-कारणवाद का सिद्धान्त चलता है। जैसे प्रकाश उष्णता को पैदा नहीं करता वरन् उष्णता बन जाता है। बर्फ पानी पैदा नहीं करता वरन् पानी ही बन जाता है। बिजली प्रकाश को पैदा नहीं करती वरन् प्रकाश बन जाती है। उसी प्रकार ब्रह्म सृष्टि को पैदा नहीं करता वरन् स्वयं सृष्टि रूप ही बन जाता है। इसलिए सृष्टि को ब्रह्माण्ड कहा गया है जिसका अर्थ है ब्रह्म का शरीर। सृष्टि ब्रह्म के विराट् रूप का दर्शन है। यही साकार ब्रह्म है—

हरिरेव जगत् जगदेव हरि

हरि ही जगत् है और जगत् ही हरि है।

इस सृष्टि का विस्तार कितना बड़ा है इस विषय में वैज्ञानिक अभी तक विस्मय विमुग्ध होकर कुछ भी निश्चित रूप से कहने योग्य नहीं हो सके हैं। अनन्त आकाश का ओर-छोर जान पाना मानव की शक्ति से परे है। यदि आकाश के तारों को धरती के सब समुद्रों के बालू कणों के समान माना जाए तो हमारी धरती एक बालू कण के दस लाखवें हिस्से के बराबर होगी और उसमें मानव धरती के साढ़े चार अरब मनुष्यों में से एक असंख्य पदम मील असंख्य जीवों में से एक धरती का कई अरब-खरब गुणा छोटा अंश ठहरता है। यदि यह छोटा-सा मानव

इस अनन्त सृष्टि को मापने का प्रयास करे तो वह ऐसा ही है जैसे एक नमक की पुतली सागर की थाह पाने का प्रयास करे—

गई पूतरी नौन की, थाह सिन्धु को लेन,
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन। कबीर

हमारी धरती सूर्य के ग्रहों में से एक है। सूर्य का व्यास धरती से 110 गुणा बड़ा है। सूर्य का भार धरती से 3 लाख 33 हजार गुणा अधिक है। सूर्य का भार अपने समस्त उपग्रहों के सम्मिलित भार से हजार गुणा अधिक है। सूर्य की पृथ्वी से दूरी नौ करोड़ 17 लाख मील है। सूर्य के प्रकाश को धरती तक पहुंचने में 8 मिनट 18 सेकंड लग जाते हैं। सूर्य की आयु लगभग 6 अरब वर्ष है। सूर्य का तापमान 16 करोड़ डिग्री सेन्टीग्रेड है। सूर्य से निकटस्थ आकाशगंगा के केन्द्र की दूरी तीस हजार प्रकाशवर्ष है। प्रकाश की गति एक सेकंड में एक लाख 86 हजार मील है। एक मिनट उससे 60 गुणा एक घण्टे में उससे 60 गुणा, एक दिन में उससे 24 गुणा और एक वर्ष में उससे 365 गुणा। इस प्रकार एक वर्ष में प्रकाश 94 खरब 63 अरब किलोमीटर की यात्रा करता है। सूर्य को आकाशगंगा के केन्द्र की एक परिक्रमा पूरी करने में 25 करोड़ वर्ष लग जाते हैं। एक आकाशगंगा में ढाई अरब से अधिक अनगिनत तारे हैं। कुछ तारों का आकार इतना बड़ा है कि वे हमारे सूर्य से भी हजारों गुणा बड़े हैं। कुछ तारे कई अरब प्रकाशवर्ष की दूरी पर हैं। उनका प्रकाश जब से सृष्टि बनी है तब से अभी तक धरती पर पहुंचा नहीं। ये तो एक आकाशगंगा की बात है। ऐसी अनन्त आकाशगंगाओं का विचार करते हुए मनुष्य की तुच्छ बुद्धि चकरा जाती है और अनन्त के सामने नतमस्तक हुए बिना उसके पास कोई चारा ही नहीं बचता।

जिस प्रकार सृष्टि के विस्तार की थाह पाना सम्भव न हो सका उसी प्रकार सृष्टि के आकार या रूप के विषय में भी वैज्ञानिकों एवं विचारकों में मतभेद हैं। क्या सृष्टि एक प्याले के समान खुली है या छत्र के समान उलटी है या गोल आवरण के समान चारों ओर लपेटी हुई है या घोड़े की पीठ की काठी के समान बीच में धंसी हुई है और दोनों तरफ तिरछी बाहर फैलती हुई है। ये सब भिन्न-भिन्न विचारकों की कल्पनाएं हैं। जो सृष्टि के आंशिक अध्ययन के फलस्वरूप पैदा होती है। किसी वस्तु का आकार निरूपण तभी सम्भव है जब हम आकार को बनाने वाली और बांधने वाली सीमारेखाओं की out line को जान सकें। वास्तविकता तो यह है कि सृष्टि के ओर-छोर या बाह्य रेखाओं को किसी भी साधन से आज तक जाना नहीं जा सका। इसलिए सृष्टि के आकार की कल्पना किसी तथ्य के आधार पर नहीं हो सकती। चन्द्रमा, धरती, सूर्य, सौरमण्डल, नवग्रह, महासूर्य एवं आकाशगंगाओं की नियमित गतियों से यही तर्कसम्मत

निष्कर्ष निकलता है कि सृष्टि एक विशाल गोलाकार अथवा अण्डाकार ब्रह्माण्ड के रूप में होगी।

सृष्टि के अध्ययन में वैज्ञानिकों ने जो खोज की है उन तथ्यों को जानकर तत्त्व विज्ञान अपना कुछ निर्णय दे सकता है। विज्ञान jury के समान है जो fact finding committee के समान तथ्य खोजते हैं। फिर दर्शन उन तथ्यों के आधार पर एक जज के समान अपना निर्णय बनाता है। यदि भिन्न-भिन्न विज्ञान jury के सदस्य हैं तो दर्शन एक जज के समान है। जो jury के ऊपर है किन्तु बिना jury की सहायता के निर्णय नहीं दे सकता। सृष्टि के अध्ययन में भी विज्ञानों की खोजें दर्शन के अध्येता के लिए भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

समस्त विज्ञानों के लिए आज तक जो सबसे बड़ा प्रश्न मुंहबाये खड़ा है वह यह है कि धरती पर जीवन कैसे प्रकट हुआ और इतनी विराट् सृष्टि में अभी तक केवल इसी धरती पर जीवन के प्रमाण मिलते हैं ऐसा क्यों? जब सृष्टि इतनी विराट् है तो जीवन उसके एक छोटे से कण पर सीमित है ऐसा क्यों है? फिर यह सृष्टि जितनी बननी थी बन चुकी या अभी भी विकासमान है। पुराने धार्मिक मत के अनुसार सृष्टि आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व बनी। महाप्रलय में पुनः ब्रह्म में लय हो जाएगी। वेद में एक नासदीय सूक्त है जिसमें उस स्थिति का वर्णन है जब न सूर्य था, न चन्द्र, न आकाश, न तारागण, न दिन और रात कुछ भी न था, पर ब्रह्म था। खुली आंखों से विश्व को देखते हुए हम उस स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते कि कोई ऐसा काल भी रहा होगा जब स्वयं काल भी नहीं था, देश भी नहीं। पात्र-परिस्थिति कुछ भी नहीं था। इसके विपरीत एक ध्यानयोगी अपनी निर्विकल्प समाधि में उस नासदीय सूक्त में वर्णित स्थिति का प्रत्यक्ष अपने भीतर दर्शन कर लेता है। निर्विकल्प समाधि में देश-काल, पात्र-परिस्थिति, सूर्य-चन्द्र, तारागण सहित समस्त सृष्टि शून्य में विलीन हो जाती है और शुद्ध आत्मज्योति या ब्रह्म ज्योति की अनुभूति होती है। अतः विज्ञान जिस स्थिति की कल्पना को भी असम्भव मानता है उसे अध्यात्मवादी प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखता है। सृष्टि के पहले से रचित होने के विपरीत विज्ञान कहता है कि सृष्टि अभी भी विकसित हो रही है। आकाश में काले स्थान (ब्लैकहोल) शून्य के स्थान हैं जहां अनेक बड़े-बड़े तारे जाकर विलीन हो जाते हैं और वहां पदार्थ अपदार्थ बन जाता है। उस शून्य में से पुनः अनेक तारे, नक्षत्र पैदा हो जाते हैं। कई तारे टूटते हैं कई नये बनते रहते हैं। यह वैसे ही है जैसे धरती पर पुराने मानवों के मरण के साथ नये जीवों का जन्म होता रहता है। अध्यात्म भी इस तथ्य को स्वीकार करता है। जगत् का अर्थ ही है जो गतिमान है। संसार का अर्थ—

संसरति इति संसारः।

जो संसरण करता रहता है। बढ़ता रहता है, चलता है वही संसार है। चलने के दोनों अर्थ हैं, संसार से चले जाना और चलकर आगे बढ़ना। अतः सृष्टि चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है। इसलिए वेद ने कहा—

न ममार न जीर्यति।

(क.) अपनी लघुता का भय—सृष्टि की विराटता और उसकी लघुता को देखकर मानव केवल विस्मित नहीं होता वरन् भयभीत भी हो जाता है। कहां मानव से करोड़ों गुणा बड़ी धरती, कहां पृथ्वी से लाखों गुणा बड़ा सूर्य, कहां सूर्य से लाखों गुणा बड़ा महासूर्य, कहां अरबों महासूर्यों के पुंजवाली आकाशगंगा और अनन्त आकाशगंगाएं हैं और इस अनन्तानन्त विश्व के बीच में छोटा-सा मानव।

(ख.) दूरी का भय—इस विराट् आकाश में यदि दो तारों को समुद्र में चलने वाला जहाज माना जाए तब दो तारों की औसतन दूरी लगभग दस लाख मील होगी। मानव को इस दूरी का भय है।

अति उष्णता में जीवन असम्भव—सूर्य एवं सब तारे इतने भीषण गर्म हैं कि उनमें कठोर से कठोर वस्तु पिघल जाएगी और जल जाएगी।

जीवन के योग्य क्षेत्र बहुत ही कम है—उनके बाहर के खाली आकाश का तापमान absolute zero (पूर्ण शून्य) 484 डिग्री फॉरेनहाइट से भी कहीं अधिक नीचे है, जहां गर्मी और शीत का मिलन होता है। उसी थोड़ी-सी परिधि में ही जीवन सम्भव है। संयोगवशात सूर्य से लगभग 9 करोड़ मील की दूरी पर हमारी धरती सूर्य की परिक्रमा कर रही है, जहां सूर्य का ताप घटते-घटते इस सीमा तक पहुंच गया कि जीवन सम्भव हो सका।

अन्य ग्रहों पर जीवन का पता नहीं—किन्तु सूर्य के ही अन्य ग्रहों में जीवन का आज तक कोई पक्का प्रमाण नहीं मिला है।

फिर लाखों तारों में से कोई एक ही होता है जिसके सूर्य के समान उपग्रह हों। इस सृष्टि में जीवन जीने योग्य तापमान की पट्टियां जमा की जाए जहां जीवन सम्भव है तो ऐसा क्षेत्र पूरे विश्व का 1/10,00000 (1 बटा दस लाख वर्ग) अंश होगा। अर्थात् जीवन योग्य क्षेत्र बहुत ही कम है। अतः जीवन और चेतना का जो प्रकाश हमारी धरती पर है वैसा आज तक अन्यत्र कहीं अभी तक प्रमाणित नहीं हो सका।

एक जीवित शरीर के रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि उसमें निम्नलिखित रसायन परमाणु हैं—कार्बन (जैसे कोयला में), हाइड्रोजन और ऑक्सीजन (जैसे पानी में), नाइट्रोजन जैसे हवा में। इन परमाणुओं के मेल से जीवित पदार्थों के Molecule (बड़े अणु) बनते हैं। किन्तु केवल इन्हीं के मेल

से जीवन प्रकट हो गया होगा यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जीवन का चैतन्य गुण इनके मिश्रण से प्रकट नहीं होता। रसायन शास्त्र हमें जीवन का रहस्य वैसे ही खोलकर नहीं बता सकता जैसे चुम्बकीय शक्ति और रेडियो Activity की व्याख्या नहीं कर सकता।

जब हम भविष्य की ओर देखते हैं तो दूर भविष्य में उस स्थिति का विचार कर निराश हो जाते हैं जब धीरे-धीरे यह सूर्य अपने प्रकाश को देते-देते ठण्डा हो जाएगा और धरती जो धीरे-धीरे सूर्य से कुछ दूर होती जा रही है, ठण्डी हो जाएगी और इस पर जीवन है जो अब तक के ज्ञात विश्व में केवल इसी धरती पर ही है अन्यत्र नहीं। वह भी एक भीषण हिम प्रलय में समाप्त हो जाएगा। नक्षत्र विज्ञान और भौतिकी दोनों का यही भविष्य कथन है।

क्या ब्रह्माण्ड का उद्भव हुआ? इस विषय में बड़ी रोचक गवेषणा चल रही है। सन् 1826 में वियना के डॉक्टर ओल्बर्स ने एक प्रश्न उठाया कि जब आकाश में इतनी अधिक ज्योतियां हैं तब रात्रि में हमें आकाश में अंधेरा क्यों दिखता है। इसके उत्तर में यह कहा गया कि चूंकि तारे असीमित दूरी तक फैले हुए हैं। इसलिए उनका प्रकाश सम्मिलित रूप से सूर्य के प्रकाश से भी बढ़कर होना चाहिए चाहे दिन हो या रात। अमरीकी खगोलशास्त्री एड्विन हबल ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि आकाशगंगाएं निरन्तर दूर छितराती जा रही हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड फैल रहा है। हमारे निकट की आकाशगंगा जिसमें हमारा सूर्य भी सम्मिलित है, उसमें लगभग एक खरब तारे हैं। इसकी दूरी हमसे 20 लाख प्रकाशवर्ष है। अर्थात उनका प्रकाश हम तक पहुंचने में 20 लाख प्रकाशवर्ष लग जाते हैं। बीच में अनन्त शून्य आकाश अंधकार से भरा है इसलिए आकाश में अंधेरा दिखता है। फ्रीडमान के मत में ब्रह्माण्ड की सृष्टि एक भीमकाय विस्फोट से हुई और धीरे-धीरे इसका फैलाव जारी है। उसके मत में यह विस्फोट 10-15 अरब वर्ष पूर्व हुआ। यह उनकी कल्पना मात्र है, जो गणित या अन्य किसी विज्ञान से अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी। यदि ब्रह्माण्ड में विस्फोट हुआ तो इसमें नियमबद्धता, कालबद्धता और लयबद्धता नहीं रह सकती।

तीन अंग्रेज वैज्ञानिक हरमोन बोंडी, टोमस गोल्ड और फ्रेड हायल ने एक दूसरा सिद्धान्त दिया कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई ही नहीं। यह अनादि और अनन्त है। प्रो. नारलीकर ने टाटा अनुसंधान केन्द्र मुम्बई में कहा कि महाविस्फोट का सिद्धान्त अभी तक स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस विषय में और बहुत अधिक खोज की अपेक्षा है।

भौतिक विज्ञान भूत एवं ऊर्जा का विज्ञान है। इस विज्ञान ने भी सृष्टि एवं जीवन की व्याख्या का अच्छा प्रयास किया है। 17वीं शताब्दी में गैलिलियो तथा

न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने एक नया युग आरम्भ किया। गैलिलियो ने प्रथम बार रोम में एक विशाल दूरवीक्षणयंत्र द्वारा यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया कि इस ब्रह्माण्ड में बड़े ग्रहपिण्ड केन्द्र में रहते हैं और छोटे उपग्रह उनकी परिक्रमा करते हैं। उसने यह भी कहा कि हमारी धरती गोल है तथा यह सूर्य की परिक्रमा करती है। रोम के पोप तथा पादरी बाइबिल के अंध-विश्वास के अनुसार यह मानते थे कि धरती चपटी है और यह घूमती या परिक्रमा नहीं करती। उन्होंने गैलिलियो को अपराधी घोषित करके कारागार में डाल दिया। गैलिलियो ने पादरियों से दूरबीन से प्रत्यक्ष दिखाने के लिए अवसर मांगा और एक ऊंची मीनार पर दूरबीन लगाकर स्पष्ट कर दिया कि शनिग्रह (मुख्यपिण्ड) बीच में है और उसके उपग्रह उसके इर्द-गिर्द तेज गति से घूम रहे हैं। अभी तक आकाश में शनिग्रह देखने से एक सुदर्शन चक्र जैसा चक्र दिखाई देता है, जिसमें बाहर उपग्रह के तेजी से घूमने के कारण एक प्रकाश का वृत्त बन जाता है। किन्तु पादरियों ने अन्ध-विश्वास के कारण इसे भी सत्य नहीं माना और गैलिलियो को जादूगर कहकर कहा कि ग्रहों के घूमने के स्थान पर गैलिलियो का यंत्र ही घूमता होगा। इस प्रकार गैलिलियो को इस महान् वैज्ञानिक आविष्कार के पुरस्कार स्वरूप कारागार में सता-सता कर मारा गया। एक-दूसरे वैज्ञानिक कोपरनिकस ने भी गैलिलियो के समान धरती की गोलाई एवं परिक्रमा का निष्कर्ष निकाला था पर गैलिलियो की दुर्गति को देखकर अपने सिद्धान्त और पुस्तक को जीवनभर प्रकाशित नहीं किया। इसकी तुलना में भारत में भूगोल (भूमि गोल), भू-परिक्रमा एवं खगोल, ब्रह्माण्ड आदि शब्द विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में ही पाये जाते हैं। 17वीं शताब्दी में ही इंग्लैंड के वैज्ञानिक सर इस्साक न्यूटन ने अचानक एक वृक्ष के फल को नीचे गिरता देखकर विस्मय से विचार करना शुरू किया कि फल ऊपर से नीचे क्यों गिरता है? उसने कई प्रयोग करने के बाद एक कल्पित सिद्धान्त दिया कि सम्भवतः प्रत्येक वस्तु धरती के केन्द्र की ओर खींची जाती है। इसे hypothesis gravitation गुरुत्वाकर्षण का कल्प नियम कहा गया है। न्यूटन के लगभग 100 वर्ष बाद Theory of gravitation कहा गया। उसके पुनः 100 वर्ष बाद इसे Law of gravitation माना गया। 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में इसकी तुलना में भारत के महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य ने प्रथम शताब्दी में ही इस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की घोषणा कर दी थी—

आकृष्टि शक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं
गुरु स्वामिमुखं स्वशक्त्या
आकृष्यते तत्पततीव भाति
समेसमन्तात् क्व पतत्वियं खे।।6।।

धरती की आकर्षण शक्ति है। उसी के द्वारा आकाश में हर वस्तु को अपनी भार की शक्ति से धरती अपने केन्द्र की ओर खींचती है। वह वास्तव में आकर्षित की जाती है पर प्रतीत होती है कि वह गिर रही है। जब चारों ओर आकाश समान रूप से फैला हुआ है और धरती गोल है तब आकाश में किसी वस्तु का गिरना हो ही कैसे सकता है।

भारत में जो व्यक्ति दो पांव पर खड़ा है उसकी तुलना दक्षिण गोलार्द्ध (आस्ट्रेलिया) में उलटा खड़ा दिखाई देता है पर दोनों उछलकर धरती पर ही आते हैं। दोनों अपने को सीधा मानते हैं। उसी प्रकार पूर्व-पश्चिम में लोग अपने को सीधा ही मानते हैं और लौटकर धरती की ओर ही आते हैं।

न्यूटन ने गति के तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये—

(क) Law of Inertia—प्रत्येक वस्तु अपनी स्थिरता में या गति में तब तक जारी रहती है जब तक कोई अन्य शक्ति उसकी गति या स्थिरता में बाधा न डाले।

(ख) Law of Force—किसी वस्तु के वेग परिवर्तन की दर उस पर लगाये गये बाह्य बल की मात्रा एवं दिशा के अनुपात में होगी (गाड़ी पर जितना बल जिस दिशा से लगेगा उसके अनुपात में गाड़ी की गति होगी)।

(ग) Law of Action Reaction—प्रत्येक क्रिया की उसके बराबर प्रतिक्रिया होती है। जब हम आगे चलते हैं वस्तुतः हम धरती को पांव से पीछे धकेलते हैं। इसी से हम आगे बढ़ते जाते हैं। नौका चलाने में चप्पू से पानी को पीछे धकेला जाता है, नौका आगे बढ़ जाती है।

न्यूटन को आधुनिक विज्ञान का जनक माना जाता है। पश्चिम में यूनान में ईसा से लगभग 3 शती पूर्व अर्शमेदस (Arcnimedes) नामक वैज्ञानिक हुआ था। जिसने एक राजा के ताज में लगे हुए सोने की शुद्धता की जांच के लिए अर्शमेदस का सिद्धान्त खोजा था। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु को जल में डालने पर वह उतना ही पानी ऊपर उठा देती है जितना की उस वस्तु का परिमाण Volume हो। इसे उस वस्तु की Specific gravity विशिष्ट भार कहा जाता है।

अर्शमेदस के काल से न्यूटन के काल तक लगभग दो हजार वर्षों तक पश्चिम में विज्ञान मृत हो गया था। क्योंकि ईसाइयत अंधविश्वास के कारण Bruno (ब्रूनो) को चौराहे पर जीवित जलाया गया। Zeno (जीनो) नामक दार्शनिक को घर समेत फूंक डाला गया। गैलिलियो को सता-सता कर मारा गया। कोपरनिकस को आतंकित किया गया। इस प्रकार ईसाइयत के अंधविश्वास ने पश्चिम में विज्ञान का गला घोंट रखा था। एक लम्बी कालावधि के बाद न्यूटन ने

गुरुत्वाकर्षण एवं गति का सिद्धान्त दिया। इसलिए उसे आधुनिक विज्ञान का जनक माना जाता है। जिस काल में पश्चिम में विज्ञान मृतप्राय था उस काल में भारत में बहुत उच्चकोटि की वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। यहां भास्कराचार्य, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, श्रीधर, लीलावती आदि अनेक वैज्ञानिक हुए।

न्यूटन के पश्चात् Helmhotz हेल्महोट्ज, लार्ड केल्विन ने प्रकृति को एक बड़े यंत्र के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की। प्रकृति एवं सृष्टि की यांत्रिक व्याख्या से ठोस, द्रव और गैस आदि को भी यांत्रिक गुण वाला बताया गया। जब सारी सृष्टि एक विशाल यंत्र के समान है जो कार्य-कारण सिद्धान्त में बंधी हुई है, तब जीवन भी इसी सृष्टि रूपी मशीन की उपज है।

इस विचार के विपरीत दार्शनिक विचार यह है कि यांत्रिक सृष्टि में जहां हर वस्तु यंत्र के अनुसार विवश बंधी हुई चल रही है वहां मानव के स्वतंत्र संकल्प के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता। अत: मानव भी सृष्टि रूपी मशीन का एक असहाय कलपुर्जा बन जाता है। जबकि सृष्टि में जड़ की अपेक्षा चेतन अधिक महत्त्वपूर्ण है। जो जड़ को रचता है, तोड़ता है, फोड़ता है, परिवर्तन करता है और उसकी व्याख्या करता है। दार्शनिकों ने यांत्रिकों से पूछा कि क्या यंत्र न्यूटन के विचार पैदा कर सकता है। इस प्रकार यांत्रिक व्याख्या अपर्याप्त सिद्ध हुई। इसमें मनुष्य के स्वतंत्र संकल्प के लिए स्थान नहीं है। और जड़ तो विचार कर ही नहीं सकता।

न्यूटन के मत में सारे विश्व में एक तत्त्व व्याप्त है जिसे ईथर कहते हैं। इस ईथर में कण हैं जो गति के नियमों के अनुसार चलते हैं। न्यूटन की इस मान्यता को आधुनिक भौतिक विज्ञान ने अस्वीकार कर दिया है। आधुनिक भौतिकी ने खोजा कि कण अत्यन्त सूक्ष्म है जिनकी गति बहुत तेज और चक्राकार है। 1895 में रोण्ट जेन ने X-Ray किरणों के आविष्कार से सिद्ध किया कि पदार्थ से निकलने वाली किरणें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि वे मानव शरीर एवं लौह आदि चद्दर को भी भेदकर निकल सकती हैं। बेक्रेल ने खोज की कि यूरेनियम से तीन प्रकार की किरणें निकलती रहती हैं। अल्फा किरणें, बीटा किरणें और गामा किरणें X-Ray से भी अधिक भेदन करने वाली है। थोड़ी देर तक त्वचा पर पड़ने से गहरे घाव हो जाते हैं। आजकल कैंसर का इलाज इन्हीं गामा किरणों के द्वारा होता है। इसे रेडियम Theory कहा जाता है। मैडम क्यूरी (Kuri) ने रेडियम की खोज से सिद्ध किया कि रेडियम नामक धातु से अपने आप विकिरण होता रहता है। जिससे रेडियम अपने आप शीशा में परिवर्तित हो जाता है। रेडियम अथवा यूरेनियम से निकलने वाली गामा किरणें प्रकाश की गति (एक सेकंड में एक लाख 86 हजार मील की गति) से चलती है। रेडियम से निकलने वाला विकिरण यूरेनियम की अपेक्षा चार

गुणा अधिक है। सन् 1911 में श्रीमती क्यूरी को रेडियम की खोज के लिए नोबल पुरस्कार मिला।

न्यूटन की आलोचना

न्यूटन का विचार था कि प्रकाश छोटे-छोटे कणों के रूप में है जो ईथर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक, सीधी रेखा में बंदूक की गोली के समान, गति के सिद्धान्त के अनुसार चलते हैं—

(क) बाद में वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि प्रकाश कण-रूप में नहीं वरन् तरंग-रूप में चलता है। इसकी तरंगें समुद्र की तरंगों के समान सीधी, आडी-तिरछी, घुमावदार, छोटी लहर-बड़ी लहर कई प्रकार की हो सकती है।

(ख) यदि प्रकाश केवल सीधी रेखा में चलता होता तो वास्तविक सूर्योदय से एक-दो घण्टा पूर्व में जो प्रकाश होता है वह असम्भव हो जाता। नहीं होता। वास्तव में प्रकाश की किरणें धरती की गोलाई के गिर्द घूमकर सूर्योदय से पहले भी कुछ प्रकाश कर देती हैं।

(ग) प्रत्येक वस्तु की धूप के सामने आने पर छाया पड़ती है। पर उसी वस्तु के दूर होते जाने से छाया धुंधली होती जाती है। क्योंकि उस वस्तु की छाया पड़ने के स्थान पर प्रकाश दायें-बायें से होकर पहुंच गया। एक पतले धागे को धूप के सामने दीवार के पास रखने से उसकी छाया दिखलाई देती है। किन्तु उसी धागे को दीवार से दो गज पर ले जाने पर धागे की छाया लुप्त हो जाती है। क्योंकि प्रकाश की किरणें धागे के दायें-बायें से घूमकर आगे पुनः मिल जाती है।

(घ) यदि एक कमरे में छिद्र हो तो प्रकाश की रेखा सीधी आती दिखलाई देती है। किन्तु यदि छिद्र पिन होल, यानी सूई की नोक के बराबर का हो तो पिन होल में कैमरा के समान बाहर की वस्तुओं के चित्र दिखलाई देंगे जो कमरे के छिद्र से बहुत बड़े आकार के होंगे। इसका अर्थ है कि बाहर की वस्तुओं से चला हुआ प्रकाश छिद्र में आकर संकुचित हो गया और छिद्र के बाहर पुनः फैल गया। वैसे ही जैसे सिनेमा हॉल के बाहर खड़ी भीड़ एक छोटे दरवाजे से कठिनाई से भीतर प्रवेश करके अन्दर फिर फैल जाती है या दूध की बोतल का दूध रबर की निपल के छिद्र से निरन्तर निकल कर बच्चे के मुख में पुनः फैल जाता है। अथवा पिचकारी के छिद्र से रंग छूटकर पुनः फैल जाता है।

(ङ) यदि पिन होल रूपी कैमरा के छिद्र को प्रकाश की ओर किया जाए तो उस बारीक छिद्र से आने वाला प्रकाश एक चक्र के रूप में दिखलाई देगा जिसके चारों ओर एक हलका सा छाया चक्र होगा। फिर पुनः प्रकाश पर चक्र, फिर पुनः प्रकाश पर चक्र आदि। इससे भी न्यूटन की इस मान्यता का खण्डन होता है कि

प्रकाश केवल सीधी रेखा में चलता है। और जितना छिद्र मिले उतने ही आकार का प्रकाश का कण उसमें से पार होगा।

(च) न्यूटन ने कहा कि प्रकाश की किरण शीशे या ठोस चमकदार धरातल पर टकराने से समकोण (90 डिग्री) पर मुड़ जाती है। इसी के द्वारा उसने प्रकाश के सूर्योदय से पहले दिखलाई देने की व्याख्या की। यह Reflection of Light (प्रकाश का प्रतिबिम्ब) का सिद्धान्त ठीक है किन्तु शून्य आकाश में कोई दर्पण नहीं है जिससे प्रतिबिम्बित होकर सूर्य का प्रकाश सूर्योदय से पहले दिखलाई दे।

(छ) न्यूटन की ईथर की कल्पना भी मात्र कल्पना ही है। क्योंकि ईथर ना कोई वस्तु है ना पदार्थ। ना ऐसी वस्तु जिस पर प्रयोगशाला में कोई प्रयोग किया जा सके। यह तो खाली आकाश का नाममात्र है। अतः न्यूटन की कल्पना कि ईथर के माध्यम से पुनः प्रकाश के कण चलते हैं यह आज के विज्ञान को मान्य नहीं है।

(ज) न्यूटन की धारणा कि हर वस्तु, प्रकाश भी गति के नियमों के अनुसार चलता है। न्यूटन का दूसरा सिद्धान्त है कि किसी वस्तु की गति का वेग उसे चलाने वाली शक्ति और दिशा पर निर्भर करता है। किन्तु प्रकाश की किरण जो एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकंड की गति से चल रही है उसे बाहर की कौन सी शक्ति चला रही है और किस दिशा से शक्ति आ रही है। प्रकाश तो किसी दिशा का अनुशासन न मानते हुए सब दिशाओं में फैलने का प्रयास करता है। न्यूटन उत्तर दे कि क्या प्रकाश स्वतः चालित है या परतः चालित।

(झ) न्यूटन का गति का तीसरा सिद्धान्त है कि प्रत्येक क्रिया की समान प्रतिक्रिया होती है। जब प्रकाश एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकंड की गति से एक दिशा में दौड़ता है तो क्या उतनी ही गति से विपरीत दिशा में भी उसका प्रकाश जाता है। यदि Search Light की रोशनी पूर्व दिशा की ओर फेंकी जाए तो क्या पश्चिम की दिशा में भी मीलों तक प्रकाश होगा?

(ञ) न्यूटन को 17वीं शती में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त सूझा और इस खोज के लिए पश्चिम ने न्यूटन को विज्ञान का जनक होने का सम्मान दिया। किन्तु न्यूटन से 16 शती पूर्व भारत के भास्कराचार्य ने जिस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की स्पष्ट चर्चा की थी, क्या उनके सम्मुख इस सिद्धान्त की खोज का यश न्यूटन को मिल सकता है? विज्ञान के इतिहास की दृष्टि से गुरुत्वाकर्षण की खोज का श्रेय भारत को ही मिल सकता है। किसी पाश्चात्य वैज्ञानिक को नहीं।

(ट) न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को पूर्ण अकाट्य एवं विश्वव्यापी बताने की चेष्टा की। किन्तु आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि गुरुत्वाकर्षण का

सिद्धान्त सापेक्ष है, पूर्ण नहीं है। धरती का गुरुत्वाकर्षण हर वस्तु को 32 फुट प्रति सेकंड की गति से अपनी ओर खींचता है। हम धरती के केन्द्र से चार हजार मील की ऊंचाई पर हैं (हम धरती के तल से ऊपर हैं)। यदि हम पृथ्वी के तल से चार हजार मील और आकाश की ओर चले जाएं तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कम हो जाने से हमारे शरीर का भार भी चार गुणा कम हो जायेगा। चन्द्रमा की ओर जाते हुए एक स्थिति आती है जहां धरती की आकर्षण शक्ति समाप्त हो जाती है और उसके बाद चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति प्रारम्भ होती है। जहां धरती और चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्तियां परस्पर एक-दूसरे को परस्पर संतुलित करती हैं वहां न धरती अपनी ओर खींचती है और न चन्द्रमा अपनी ओर। चन्द्र यात्री वहां पहुंचकर रॉकेट से बाहर निकल तैरने लगते हैं। चन्द्रमा पर पहुंच कर भी चन्द्र यात्री यह अनुभव करते हैं कि उनका भार नगण्य हो गया है। वे धरती की अपेक्षा बहुत अधिक ऊंची छलांग लगा सकते हैं। इसी प्रकार सब ग्रहों एवं सूर्य आदि की आकर्षण शक्तियां भिन्न-भिन्न है। इसलिए न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मात्र धरती के धरातल पर ही लागू होता है। वह सापेक्ष है, पूर्ण नहीं है।

रदरफोर्ड—रदरफोर्ड से पहले डॉल्टन का Atomic theory का कथन कि Atom या परमाणु अविभाज्य है। रदरफोर्ड ने परमाणु को तोड़ने में सफलता पाई। सौरमण्डल के समान परमाणु के केन्द्र में प्रोटोन तथा बाहर की परिधि में इलेक्ट्रॉन बहुत तीव्र गति से घूम रहे हैं। परमाणु के केन्द्रक (न्यूक्लिअस) को शक्तिशाली केन्द्रक ऊर्जा द्वारा तोड़ा जा सकता है। परमाणु के केन्द्रक से विकिरण निकलते समय उसमें अत्यन्त प्रबल शक्ति प्रकट होती है। इसे Radio Active Energy कहते हैं।

Cosmic Rays

इस शताब्दी के प्रारम्भ में मेकलेनून तथा रदरफोर्ड आदि ने सृष्टि में Cosmic Ray की खोज की। जो प्रति सेकंड में हमारे वायुमण्डल के प्रत्येक घन इंच स्थान पर 20 परमाणु को तोड़ रही है और हम सबके शरीर में प्रति सेकंड में लाखों परमाणुओं को तोड़ रही है। यदि ये किरणें जो आकाश से आ रही हैं अधिक मात्रा में आने लगे तो बहुत बड़ा विनाश कर सकती हैं। सम्भवत: इन्हीं किरणों के कारण रेडियम और यूरेनियम में विकिरण होता है। ऐसा सोचा गया। किन्तु यह प्रमाणित नहीं हो सका। क्योंकि एक कोयले की खदान के भीतर चारों ओर से बाहर के आकाश से ढककर रखने पर भी रेडियम से विकिरण जारी रहा।

Maxplanck's Quantum Theory—मैक्सप्लांक की Quantum Theory सन् 1900 में प्रकाश में आई। मैक्सप्लांक ने यह सिद्धान्त रखा कि

भौतिक पदार्थों से विकिरण लगातार नहीं होता रहता, पर वह छोटे-छोटे ऊर्जा के पुंजों के रूप में कुछ-कुछ काल बाद होता रहता है। इसे वह ऊर्जा पैक्ट कहते हैं। क्योंकि यह ऊर्जा एक मात्रा में निकलती है इसलिए इस सिद्धान्त को Energy की Quantity के कारण Quantum Theory कहा गया। इस Theory से भौतिक विज्ञान में भारी क्रान्ति हुई। इसकी विशेष मान्यता यह है कि भौतिक तत्त्व भिन्न-भिन्न सत्ताओं से बनता है। सारी भौतिक सत्ताएं मूल रूप से ऊर्जा (Quantum) द्वारा बनी हुई है। जिसके यथार्थ वेग व स्थिति को एक ही समय पर नहीं जाना जा सकता। अतः ऊर्जा (Quantum) की भविष्य में होने वाली अवस्थाओं के विषय में कुछ भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

Neils Bohr 'इलेक्ट्रॉन की कंगारू छलांग'—डेनमार्क के नील्स बोर ने रदरफोर्ड के विचार पर आगे कार्य किया। इलेक्ट्रॉन परमाणु के केन्द्रक के चारों ओर कई कक्षाओं में चक्कर लगा सकता है। वह एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कूदकर जा सकता है। उसकी यह कूद बन्दूक की गोली की तरह तेज है। बोर के मत में इलेक्ट्रॉन जिस समय बाहर की कक्षा से अन्दर की ओर कूदता है उस समय वह Quantum ऊर्जा विकिरण करता है। जब वह बाहर से ऊर्जा प्राप्त करता है तब भीतर की कक्षा से बाहर की ओर जाता है। उसकी बाहर से भीतर ओर भीतर से बाहर की छलांग को कंगारू छलांग कहा गया है (आस्ट्रेलिया का कंगारू नामक जानवर मनमानी छलांगें लगाता है।)

अनिश्चितता—किसी भी समय पूर्वकथन करना असम्भव है कि Atomic तंत्र की अनेक ऊर्जाओं में से कौन-सी छलांग लगेगी। बोर भी Quantum Theory की अनिश्चितता का समर्थन करता है।

प्रो. हाइजनबर्ग

Inderminacy Due to Loose Jointedness of the Machinery of Universe.

प्रो. हाइजनबर्ग ने कहा कि Quantum Theory अनिश्चितता पर बल देती है। उसने कहा कि सृष्टि की मशीन सम्भवतः पुरानी होने से इसके जोड़ ढीले हो गए हैं। इसलिए Science का Law of causation यहां पूर्ण रूप से लागू नहीं होता और निश्चित कार्य-कारण के आधार पर निश्चित भविष्य कथन नहीं किया जा सकता। इसके उत्तर में सर जेम्स जीन्स तथा अन्य वैज्ञानिकों का कथन है कि सृष्टि के जोड़ ढीले नहीं हो गये वरन् अभी तक मनुष्य की बुद्धि और उसके आविष्कृत यंत्र ही ढीले हैं। विश्व में प्रत्येक वस्तु जड़ प्रकृति के कार्य-कारण से बंधी हो यह अनिवार्य भी नहीं है। हाइजनबर्ग के मत पर टिप्पणी करते हुए

एडिंगटन का कथन है कि प्रकृति के विषय में मानव को सापेक्ष एवं अपूर्ण ज्ञान ही हो सकता है, पूर्ण ज्ञान नहीं।

Light waves theory

(क) Newton corpuscle theory—न्यूटन ने प्रकाश को सीधी रेखा में चलने वाले सूक्ष्म कणों की धारा माना था। जैसे द्वार के छेद से आने वाली धूप की रेखा में धूप के छोटे-छोटे कण चमकते हुए दिखाई देते हैं। न्यूटन इन्हें light corpuscle या प्रकाश के कण कहता है।

(ख) हायगेन्स Light wave theory—डच वैज्ञानिक हायगेन्स के मत के अनुसार प्रकाशोत्पादक कणों के कम्पन से विशेष प्रकार की तरंगें उठती हैं। उसने कहा कि प्रकाश सीधी रेखा में कणों में नहीं चलता वरन् Light waves प्रकाश तरंगों के रूप में चलता है जो ठोस वस्तुओं के अणुओं के भीतर से भी होकर निकल जाता है।

(ग) प्रो. क्लार्क मैक्सवेल Light waves are Electromagnetic—सन् 1873 में प्रो. क्लार्क मैक्सवेल ने प्रमाणित किया कि प्रकाश विद्युत् तथा चुम्बकीय क्षेत्रों के कम्पन से उत्पन्न तरंग है। दूसरे शब्दों में Light is Radio Active Energy.

लुई डी ब्रोगली ने सिद्ध किया कि केवल इलेक्ट्रॉन एवं प्रकाश ऊर्जा का एक पहलू ही लहरदार नहीं है वरन् प्रत्येक भौतिक पदार्थ मूल रूप से तरंगों से ही बना हुआ है। उसके अनुसार भौतिक पदार्थ और प्रकाश दोनों तत्त्वत: एक ही हैं। भौतिक पदार्थ कण रूप है और प्रकाश लहर रूप है। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म, वस्तु और ऊर्जा दोनों एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। आइंस्टीन के मत से भी इसकी पुष्टि हुई है। आइंस्टीन के अनुसार पदार्थ को ऊर्जा में और ऊर्जा को पदार्थ में परिवर्तित किया जा सकता है—

$E = MC^2$

E = ऊर्जा है, M संहति, C प्रकाश का वेग है।

ऊर्जा = वस्तु की संहति (Mass) × प्रकाश की गति (1,86,000 मील प्रति सेकंड)

ऊर्जा = वस्तु का वजन ×1,86,000 मी. × 1,86,000 मील प्रति सेकंड

(घ) Spectrum theory of Light—प्रकाश की Wave Theory के विरोध में Spectrum Theory प्रस्तुत की गई है। spectrum का अर्थ है सूर्य के सात इन्द्रधनुषी रंगों की पट्टिका। यदि सूर्य की रश्मि के सम्मुख एक तिपहला शीशा (प्रिज्म) रखा जाए तो सूर्य की श्वेत किरण अपने आप सात रंगों में विभाजित हो जाती है। जिसमें सबसे ऊपर लाल रंग होता है और सबसे

नीचे बैगनी रंग। इन रंगों का क्रम नीचे से ऊपर इस प्रकार होता है—बैगनी, नील, नीला, हरा, पीला, नारंगी, लाल। इसे spectrum या इन्द्रधनुष कहते हैं। आकाश में वर्षा के तुरत बाद जो इन्द्रधनुष बन जाता है। उसका भी कारण यही है। जैसे वायु और कांच दो भिन्न माध्यमों के भीतर से गुजरने पर सूर्य की रश्मि अपने आप मुड़ जाती है और तिपहले शीशे (प्रिज्म) के कारण सात रंगों में विभाजित हो जाती है। उसी प्रकार आकाश में सूक्ष्म जलकणों के कारण प्रकाश की रेखा दो माध्यमों से गुजरने पर तिरछी हो जाती है। (Refract हो जाती है) तथा सूक्ष्म जलकणों के तिपहले शीशे के समान पारदर्शी होने से सूर्य की किरण सात रंगों में विभाजित भी हो जाती है। इसी से आकाश में spectrum या इन्द्रधनुष दिखाई देता है। मनुष्य की आंख को केवल सात रंग दिखाई देते हैं। इसमें बैगनी की wave length सबसे छोटी है और लाल की wave length सबसे अधिक। लाल से अधिक एक और रंग Infrared जो बहुत अधिक गर्मी देने वाला है पर मनुष्य की आंख उसे देख नहीं सकती। उसे मनुष्य की हड्डियों के एवं जोड़ों के दर्द को सेंक द्वारा उपचार करने के लिए औषधालयों में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार बैगनी रंग से नीचे एक और रंग है जिसे Ultra Violet रंग कहते हैं। यह भी मनुष्य को दिखाई नहीं देता। किन्तु सूर्योदय से पहले सूर्य की अदृश्य रश्मि तरंगों में पराकाशनी Ultra Violet रंग होता है जो मानव के स्वास्थ्य के लिए बड़ा गुणकारी है। अब Light Wave Theory के विरुद्ध Spectrum Theory की यह आपत्ति कि यदि प्रकाश लहरों में चलता हो तो तिपहले शीशे से पार होने के पश्चात् प्रकाश को नीचे के बैगनी रंग की ओर ही केन्द्रित होना चाहिए। उसे ऊपर की ओर लाल रंग की दिशा में फैलना नहीं चाहिए। लहर सदा ऊपर से नीचे गिरती है। वह फव्वारे की तरह आगे फैलती नहीं जाती।

इस तरह Spectrum Theory से Wave Theory की त्रुटि प्रकट होती है। Spectrum Theory फ्रान होफर ने खोज की। उसके बाद बुनसन किरसॉफ ने मिलकर इन्द्रधनुषी रंगों के मध्य में दिखने वाली काली रेखाओं पर अनुसंधान करते हुए भिन्न-भिन्न तत्त्वों elements के spectrocope test किये तथा पाया कि भिन्न-भिन्न तत्त्वों को जलाने से जो प्रकाश का रंग निकलता है उसके इन्द्रधनुष तथा उनमें काली रेखाओं के नमूने भिन्न-भिन्न होते हैं। किरसॉफ ने सूर्य में तीस तत्त्वों के होने का निश्चित ज्ञान किया। इसी Spectrocope test के द्वारा विलियम क्रुक्स ने थेलियम नामक तत्त्व खोजा। लोकियर ने सूर्य में हीलियम नामक गैस का पता लगाया। इसी विधि से मंगल एवं शुक्र ग्रह पर पाये जाने वाले तत्त्वों के किरण चित्र संग्रह किये गये।

विश्व के वैज्ञानिक अध्ययन का सर्वेक्षण

रसायन शास्त्र में	भौतिकी में
वस्तु	वस्तु
↓	↓
Molecule (बड़े अणु)	कण
↓	↓
Atom—Element	प्रकाश कण
↓	↓
प्रोटोन/ इलेक्ट्रॉन	प्रकाश की लहर
↓	↓
Radio Active Energy	प्रकाश की रंगीन पट्टिका
	↓
	प्रकाश ऊर्जा
	↓
	रेडियोधर्मी ऊर्जा

Problems of sc. for discussion in Philosophy—

Law of Causation, Concept of time, concept of space, Determin of freewill.

प्राचीन यूनानी वैज्ञानिक—थेलिस का मत है कि अन्तिम तत्त्व जल है।

एनेग्जिमेंडर का मत है कि सृष्टि का अन्तिम तत्त्व वायु है।

हेराक्लाइटस का मत है कि अन्तिम तत्त्व अग्नि है।

एम्पिडोकिल्स का मत है कि विश्व में चार मूल तत्त्व हैं। पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु।

एनेक्सगोरस के मत में मन ही अन्तिम तत्त्व है।

पाइथोगोरस ने कहा कि विश्व में लय Rhythm अथवा समन्वय है। उसने आत्मा के अस्तित्व का भी संकेत दिया है।

डेमोक्रेटिस ने विचार दिया कि शून्य में Atom या परमाणु विचरण करते हैं।

प्लेटो ने विचार को वस्तु से अधिक शक्तिशाली बताया।

अरस्तू को समस्त विज्ञानों का प्रेरक एवं पिता माना जाता है। उसने जीव विकास की कल्पना डार्विन से हजारों वर्ष पूर्व दे दी थी।

यूनानी दर्शन की तुलना में भारतीय विज्ञान एवं दर्शन अधिक विकसित था। महर्षि कपिल ने अपने सांख्य दर्शन में प्रकृति का सुन्दर विश्लेषण किया और सृष्टि

को बनाने वाले तत्त्वों की संख्या गिनाई। महर्षि कणाद ने यूनान के डेमोक्रेटिस से भी पहले अणु-परमाणु का दर्शन संसार के सामने प्रस्तुत किया।

Lump Theory of matter—पश्चिम में विज्ञान की हजारों वर्ष लम्बी कालरात्रि के पश्चात् जब पुनः विज्ञान का जागरण होने लगा तो पहले वैज्ञानिक वस्तु के छोटे टुकड़ों का अध्ययन करते थे। जिन टुकड़ों में लाखों-करोड़ों Molecule मिले रहते थे। यह अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्ध नहीं बन सका। क्योंकि जैसे व्यक्ति का एकांत व्यवहार उसके भीड़ के व्यवहार से भिन्न होता है। उसी प्रकार एक Molecule का गुण लाखों Molecule के समूह के गुण से भिन्न होगा।

Molecule theory—19वीं शती के अन्त में पदार्थ के Molecules का अध्ययन किया। Molecule वह छोटा-सा अंश है जिसमें कोई वस्तु प्रकृति में टिक सकती है। जैसे हाइड्रोजन के दो Molecule तथा ऑक्सीजन का एक Molecule मिलकर पानी का एक Molecule बनाते हैं। इसलिए पानी का H_20=Hydrogen 2 Oxygen 1 कहते हैं। पानी पानी के रूप में टिक सकता है। इसमें द्रवता, गीलापन और रस मिलते हैं। यदि उसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के रूप में तोड़ा जाए तो न वह दिखाई देगा न उसमें द्रवता होगी न ही गीला और न रस।

Atomic Theory—Molecule को पुनः Atoms में विभाजित किया जा सकता है। डॉल्टन ने Atomic theory द्वारा विज्ञान में एक नये युग का सूत्रपात किया। उसने कहा कि जल को विद्युत् की धारा के स्पर्श से ऑक्सीजन और हाइड्रोजन में विभाजित किया जा सकता है। अतः जल तत्त्व नहीं वरन् दो तत्त्वों की मिलावट है। अतः वैज्ञानिक विश्लेषण ऐसी Elements या तत्त्व खोजने में है जिन्हें आगे विभाजित न किया जा सके। इस प्रकार हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हीलियम, कार्बन, सल्फर, सोना, चांदी, शीशा, तांबा, जस्ता, लोहा, सोडियम, पोटेशियम, रेडियम, बेरियम, यूरेनियम, आयोडिन आदि-आदि अनेक तत्त्व (Elements) खोजे गये।

Elements & Atomic Weight—प्रत्येक तत्त्व का Atomic weight (परमाणु भार) भी खोजा गया। अब तक 92 तत्त्व खोजे जा चुके हैं। हाइड्रोजन का परमाणु भार एक है और ऑक्सीजन का परमाणु भार 16 है। यूरेनियम का परमाणु भार 238, लिथियम का 7, सोडियम का 27 और पोटेशियम का 39 है। यदि एक तत्त्व में जितने Atom होते हैं उसमें परिवर्तन किया जा सके तो एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में रूपान्तरित किया जा सकता है। यदि रांगा जिसका परमाणु भार 46 है उसमें से 3 परमाणु निकाले जा सकें तो वह चांदी में रूपान्तरित हो जाता है,

जिसमें 43 परमाणु भार है। इसी प्रकार परमाणुओं को परिवर्तित करने से पारे को सोने में परिवर्तित किया जा सकता है। इसमें सफलता मिली है किन्तु इसकी विधि इतनी खर्चीली पड़ती है कि उपलब्ध सोने की अपेक्षा बनाया हुआ महंगा पड़ता है। आधुनिक रसायन शास्त्र का कथन है कि सृष्टि का अन्तिम तत्त्व Atom ही है। उसी Atom के भिन्न-भिन्न मिश्रणों से भिन्न परमाणु भार वाले तत्त्व Elements बन जाते हैं और परमाणु भार बदलने से एक तत्त्व को दूसरे में बदला जा सकता है। इसको प्रयोग द्वारा सिद्ध करने में विज्ञान को आंशिक सफलता भी मिली है। अनेक वर्षों तक यही माना जाता रहा कि Atom ही सृष्टि का सूक्ष्मतम कण है जिसे सामान्य इन्द्रियों द्वारा जाना नहीं जा सकता। किन्तु, सूक्ष्म यंत्रों द्वारा जाना जा सकता है। इसी से सारी सृष्टि बनी हुई है।

Nuclear Theory—इस Atomic theory के बाद रसायन और भौतिकी दोनों ने Nuclear Theory को मान्यता दी। जब Atom को पुनः इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन में तोड़ा जा सका तो परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म अंशों का पता लगा। केन्द्रक (Nuclear) में प्रोटोन रहता है और nuclear के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रॉन बहुत तेज गति से घूमते रहते हैं। Nuclear का भार इलेक्ट्रॉन्स की अपेक्षा दो हजार गुणा अधिक रहता है। Nuclear के गिर्द इलेक्ट्रॉन्स की इस तीव्र परिक्रमा के कारण इसे Nuclear theory कहा गया है। इसके प्रतिपादक नील्स बोर आदि वैज्ञानिक हैं। इसी ने कहा कि इलेक्ट्रॉन कंगारू छलांग के समान मनमाने तौर पर भीतर की कक्षा से बाहर और बाहर की कक्षा से भीतर छलांग लगा सकता है। जैसे सौरमण्डल में सूर्य ग्रहपति होने से सबसे भारी है और नवग्रह उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। उसी प्रकार सृष्टि में ऊपर से स्थिर दिखने वाले प्रत्येक कण के भीतर अदृश्य Atoms है और उनके भीतर अदृश्य केन्द्रक। इर्द-गिर्द सूक्ष्म अदृश्य इलेक्ट्रॉन बहुत तीव्र गति से परिक्रमा कर रहे हैं। इस दृष्टि से सृष्टि की हर वस्तु जो ऊपर से स्थिर दिखाई देती है, वास्तव में बहुत भीषण गति से गतिमान है। यह बाह्य इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। पर सूक्ष्म वैज्ञानिक यंत्रों से परखा जा सकता है। इसी भाव को ईशोपनिषद् में दर्शाया गया—

'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके'

वह चलता है और वह बिल्कुल नहीं चलता। वह दूर से दूर में और निकट से निकट में है। यह कथन आत्मतत्त्व और Atom तत्त्व दोनों पर लागू रहता है।

Radio Active Energy—लुई डी ब्रोगली ने कणिका को प्रकाश में रूपान्तरित करने और प्रकाश को कण में रूपान्तरित करने का सिद्धान्त रखा। जो वस्तु हमें दिख रही है उसके दिखने का प्रमाण केवल मात्र यही है कि उससे चलकर आने वाला प्रकाश हमें दिख रहा है। प्रत्येक वस्तु को छू कर हम उसकी

सत्ता की जांच नहीं कर सकते। आकाश के दूरस्थ तारों को हम छू नहीं सकते। केवल प्रकाश के रूप में देख सकते हैं। आकाश को तो हम किसी इन्द्रिय द्वारा नहीं जान सकते। कुछ तारे इतनी दूरी पर हैं कि उनका प्रकाश हम तक लाखों प्रकाशवर्षों में पहुंचता है। आज हम जिन प्रकाश पिण्डों को आकाश में देख रहे हैं हो सकता है उन तारों के पिण्ड नष्ट हो चुके हों और उनसे चला हुआ प्रकाश हमें लाखों वर्षों के बाद आज दिखाई दे रहा है। इसलिए पिण्ड प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। आइंस्टीन की शब्दावली में Mass energy में परिवर्तित होता है। इसके उलट ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित हो सकती है।

$E = MC^2$

Radium Radiation–Radio Active Energy—रेडियम के Atom अपने आप समय बीतने के साथ टूटते रहते हैं और रेडियम से निकलने वाली ऊर्जा रेडियोधर्मी ऊर्जा (Radio Active Energy) के रूप में निकलती रहती है। इस प्रकार रेडियम अथवा यूरेनियम की मात्रा कम होती जाती है। अर्थात् रेडियम Lad शीशा नामक धातु तथा हीलियम नामक गैस में परिवर्तित होता रहता है। रेडियम के समान ही जो ऊर्जा केन्द्रक के इर्द-गिर्द घूमते हुए इलेक्ट्रॉन के एक कक्षा से दूसरी कक्षा तक छलांग लगाने में विकिरणित होती है उसे भी रेडियम के नाम पर Radio Active Energy (रेडियोधर्मी ऊर्जा) कहा गया।

Indeterminacy अनिश्चितता—रेडियम के Atoms के टूटने का कारण रदरफोर्ड ने Cosmic Rays को माना था किन्तु यह सिद्ध नहीं हो सका। अतः विज्ञान के सामने यह अनिश्चितता बनी हुई है कि किस अदृश्य कारण से रेडियम के किस अज्ञात Atom को कब टूटना पड़ेगा। वैसे ही जैसे किस अज्ञात कारण से, किस अज्ञात व्यक्ति को कब मरना पड़ेगा। जैसे मानव सम्बन्ध में इस अनिश्चितता का कारण अदृश्य भाग्य को मान लिया जाता है। उसी प्रकार विज्ञान के सम्मुख भी ऐसी ही समस्या मुंहबाये खड़ी है।

इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन के समान न्यूट्रोन का भी आविष्कार हुआ। न्यूट्रोन, पोजिट्रोन का भी आविष्कार हुआ। न्यूट्रोन एक बड़े आकार का कण है जो प्रोटोन के बराबर होता है पर उसमें कोई विद्युत् का आवेश नहीं होता। इलेक्ट्रॉन में Negative charge होता है, प्रोटोन में Positive charge होता है। एक कण का आविष्कार हुआ जिसे मेसोन कहा गया जिसका अर्थ है मध्यवर्ती। इसका Mass परिमाण प्रोटोन और इलेक्ट्रॉन के मध्यवर्ती भार का होता है। एक मेसोन का विच्छेदन होने पर एक इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रोन की उत्पत्ति होती है। यदि न्यूट्रोन शून्य में रहे तो 15 मिनट के भीतर नष्ट हो जाता है तो उसमें से एक इलेक्ट्रॉन, एक प्रोटोन और एक न्यूट्रोन की पुनः उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार वैज्ञानिकों को

1933 तक 6 प्रकार के कणों का ज्ञान हो चुका था—इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रोन, फोटान, पोजिट्रोन और न्यूड्रोन। 1947 तक 14 कणों का, 1957 तक 30 कणों का और 1967 तक 230 का पता लग चुका है।

परमाणु स्तर पर पहले 92 तत्त्व खोजे गये थे। अब 103 तत्त्व माने जा रहे हैं। हाइड्रोजन के परमाणु में एक प्रोटोन और छह इलेक्ट्रॉन होते हैं। लोरेसियम के परमाणु में 10, प्रोटोन 103 इलेक्ट्रॉन और 154 न्यूट्रोन होते हैं।

श्रोडिंजर की तरंग यांत्रिकी—श्रोडिंजर का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक कण मूल रूप में तरंग ही है। जिसे हम वस्तु समझते हैं। वह वास्तव में प्रकाश की लहर होती है। कणिका एवं तरंग को अलग नहीं किया जा सकता। यदि किसी कण और उस पर विभिन्न बलों का ज्ञान हो तो उसकी विभिन्न प्रकार की तरंगों और उनकी ऊर्जाओं का तरंग-फलन के प्रयोग द्वारा परिकलन किया जा सकता है।

किसी भी भौतिक सत्ता के दो पहलू अनिवार्य रूप से होते हैं—कणिका एवं तरंग। इलेक्ट्रॉन केवल मात्र कणिका के रूप में कभी नहीं पाया जा सकता। इलेक्ट्रॉन को सतत विद्युत् आवेश के रूप में पाया जाता है और वह विद्युत् आवेश परमाणविक केन्द्रक के चारों ओर वैद्युतिक क्षेत्र के रूप में फैला हुआ रहता है। इसमें सदा कम्पन होता रहता है।

भौतिक सत्ताएं तरंगों से बनी है। वे अत्यन्त गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील है। न्यूटन के भौतिकी के प्रत्ययों में मूलभूत परिवर्तन हो चुका है। भौतिक पदार्थों में तरंग ब्रह्म की चेतना की अभिव्यक्ति है। चेतना भौतिक पदार्थों में स्पन्दन के रूप में अन्तर्निहित है।

इस प्रकार भौतिकी की खोजें अणु-परमाणु केन्द्रक (नाभि) इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रान आदि कणों से होते हुए तरंग कणिका तक पहुंच गई। अंत में यह निष्कर्ष निकला कि तरंग कणिकाओं में स्वतंत्र इच्छाशक्ति है, उनकी गति के यांत्रिक नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते। अर्थात् वे एक चेतन सत्ता है। फलस्वरूप भौतिकी में जड़-चेतन का आत्यंतिक विभाजन मिट गया। इसलिए श्रोडिंजर ने स्वयं लिखा है—'अब तत्त्वज्ञान के रहस्यवाद से दूर न रहकर मैं उनका पूरा उपयोग करूंगा।' वे आगे कहते हैं—'सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं कि समान वातावरण में जीवन के अनुभव की व्याख्या करने के लिए वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।'

वेदान्त दर्शन की स्वीकृति करते हुए वे कहते हैं कि चिद्‌बिन्दु एक ही है। वह मानते हैं कि चिद्‌बिन्दुओं का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में परिणत हो जाता है। इस

दर्शन के अनुसार हम सभी चेतन प्राणी एक ही सत्ता के अनेक रूप हैं। वह एक तत्त्व पाश्चात्य शब्दावली में God और उपनिषद् की शब्दावली में ब्रह्म है।

श्रोडिंजर लिखते हैं—अद्वैत सिद्धान्त के निम्नलिखित नैतिक निष्कर्ष स्वीकार करने चाहिए—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27, गीता

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। 13/28, गीता

समस्त विनाशशील प्राणियों में समभाव से स्थित विनाश रहित परमेश्वर को देखता है वही (यथार्थतः) देखता है। क्योंकि सर्वत्र समभाव से अवस्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला अपने द्वारा अपने को नहीं मारता। इससे वह परमगति को प्राप्त होता है। प्राणीमात्र के प्रति दया और करुणा के भाव यहां चरम रूप में प्रतिष्ठित है।

उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है और मूलभूत एकता ही सत्य है।....साधना क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्ततः साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त को ग्रहण कर मुक्त हो सके। इस प्रकार श्रोडिंजर ने पदार्थ से विकिरणित होने वाली ऊर्जा को भौतिक ऊर्जा न कहकर आध्यात्मिक ऊर्जा कहा। एक नोबल पुरस्कार विजेता, विश्वविख्यात वैज्ञानिक द्वारा पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर चेतन एवं अभौतिक सत्ता की स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि आधुनिक विज्ञान अब वेदान्त के निकट पहुंच गया है।

श्रोडिंजर के समान सर जेम्स जीन्स, ओपनहाइमर, एडिंगटन, डॉ. एलेक्सिस कैरल और वर्तमान के फ्रिटजाफ केपरा आदि पश्चिम के चोटी के वैज्ञानिक यह घोषणा करने लगे हैं कि ऊर्जा का स्वरूप जड़ न होकर चेतन ही है।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान वेदान्त के मन्दिर की ड्योढ़ी में चरण रख रहा है। अभी तक वेदान्त मन्दिर के गर्भ गृह में नहीं पहुंचा। परम चैतन्य की झलक मिल जाने पर पूरे विज्ञान जगत् का रूपान्तरण हो जाएगा। विज्ञान ही न रहकर दर्शन में परिणत हो जाएगा।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान भारतीय दार्शनिक मान्यता के निकट पहुंच रहा है। सांख्य दर्शन सृष्टि को प्रकृति की लीला मानता है। प्रकृति पुरुष की इच्छानुसार सृष्टि की रचना करती है। वेदान्त के मत में प्रकृति या माया स्वतंत्र सत्ता न होकर ब्रह्म की सर्जना या रचना शक्ति का ही नाम है। ब्रह्म के संकल्प से ही ब्रह्म की

शक्ति माया (या प्रकृति) अनन्त ब्रह्माण्ड रच देती है। उसे रचने के लिए किसी बाह्य पदार्थ या साज-सामान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस दृष्टिकोण से ब्रह्म सृष्टि को पैदा नहीं करता वरन् अपनी संकल्प शक्ति से स्वयं सृष्ट रूप बन जाता है। इसे ही अभिन्ननिमित्तोपादान कारण, इसे ही Immanent Causality (अर्थात् अन्तर्भूत कार्य-कारणवाद) कहते हैं। यही साकार ब्रह्म है।

'हरिरेव जगत् जगदेव हरि।' हरि ही जगत् और जगत् ही हरि है।

इसी आधार पर प्राचीन ऋषियों ने कहा—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अथवा 'सर्वं शक्तिमयं जगत् अथवा 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' या 'सर्वं कृष्णमयं जगत्'। कबीर ने गाया—'ब्रह्म बीज का सकल पसारा।' तुलसीदास ने मानस में वंदना की—'सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।' सारे विश्व का मूल बीज जो एक परम तत्त्व है जो सारी सृष्टि का सृष्टा है, नियामक है और सृष्टि में व्याप्त होने के साथ-साथ सृष्टिमय है, विश्वरूप है तथा विश्वातीत भी है, उसे जानना ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

आधुनिक विज्ञान भौतिकवाद का भवन खड़ा करके उसमें भौतिक प्रयोगशालाएं रचकर उसमें भौतिक पदार्थों का विश्लेषण-परीक्षण कर अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि सृष्टि का अन्तिम सत्य भौतिक पदार्थ नहीं वरन् एक विश्वव्यापी ऊर्जा है, जो भौतिक पदार्थों के रूप में साकार भी हो जाती है। इसमें व्याप्त भी है उसका सारतत्त्व भी है और स्वयं अभौतिक स्वरूप वाली है। अतः Materialism के स्थान पर ऊर्जावाद Energism का सिद्धान्त घोषित किया जा रहा है। यह पराशक्ति, महाशक्ति, ब्रह्मशक्ति की ही वैधानिक स्वीकृति है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूथात्सत्यमप्रियम।
प्रियं च नानृतं बूयादेष धर्मः सनातनः।।

मनुस्मृति, 4/138

'सत्य बोले, प्रिय बोले, सत्य भी अप्रिय न बोले और प्रिय असत्य न बोले, यह सनातन धर्म है।'

पश्चिमी सभ्यता का बुरा हश्र क्यों?

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहां से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरें जमां हमारा।

रोम, यूनान, मिस्र, असीरिया, बेबिलोनिया, ग्रीक आदि की सभ्यताएं जिसने एक समय अपने साम्राज्य का विस्तार विश्व के बड़े भूभाग में स्थापित किया। ऐसी विश्वव्यापी सभ्यताएं कोई 20 वर्ष के थपेड़ों में तो कोई 50 वर्षों के थपेड़ों में तो कोई 100 वर्षों के थपेड़ों में, तो कोई 200 वर्षों के थपेड़ों में सदा के लिए समाप्त हो गईं। देश नष्ट होने का तात्पर्य वहां की भूमि या जन समाज नष्ट नहीं हो गया। वरन् उनकी सभ्यता, संस्कृति नष्ट हो गई। उनका प्राचीन संस्कृति की धारा से, दर्शन से कोई सम्पर्क नहीं रह गया। अब इन सभ्यता-संस्कृति का मात्र नामशेष है। उनकी सभ्यता-संस्कृति को जानने के लिए म्यूजियमों में, पुस्तकालयों की पुस्तकों के पृष्ठों में जाना होगा। मिस्र के वर्तमान निवासियों का मजहब और संस्कृति का अपने देश के उन प्राचीन लोगों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, जिन्होंने नील नदी की घाटी में गगनचुम्बी विशाल पिरामिडों का निर्माण कराया था और जिन्होंने अपने पितरों को अमर जीवन प्रदान करने के लिए उनके शरीरों की ममी बनायी थी।

ग्रीस और रोम के मजहबों का आज कोई अनुयायी नहीं है। जो विचारधारा प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगों को देवी-देवताओं के रूप में प्राकृतिक शक्तियों की पूजा के लिए प्रेरित करती थी, ग्रीस एवं इटली के वर्तमान निवासियों के लिए वह कोई अर्थ नहीं रखते। आज ग्रीक में रहने वालों का प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, पाइथोगोरस से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। उनके प्रेरणास्रोत वो नहीं रह गये। जो यूनान यूरोपीय विचारों की जननी माना जाता है उस विचार से आज के यूनानवासी का कोई सम्पर्क नहीं है। सम्बन्ध नहीं है। उनके प्रेरणा के वे स्रोत नहीं रहे।

युग पर युग बीत गए, युग पर युग बीत रहे हैं तथा युग पर युग बीतते चले जाएंगे पर भारत की मृत्युंजयी संस्कृति भूत-भविष्य तथा वर्तमान के लिए चुनौती

बनी हुई आज तक जीवित है। काल और दुर्भाग्य के सभी प्रकार के थपेड़े खाकर भी आज न केवल जीवित है वरन् यशस्वी है। आज स्वतंत्र भारत में अपने देश के सत्ताधीशों एवं बुद्धिजीवियों द्वारा अपनी संस्कृति सब प्रकार से उपेक्षित एवं प्रताड़ित होने के बावजूद भी विश्व के सुलझे हुए मनीषियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। आज भी हमारी प्रेरणा के स्रोत—वेद, उपनिषद्, गीता ही हैं। राम भी इनसे प्रेरणा पाते थे। उनके पितृपुरुष रघु, हरिश्चन्द्र भी प्रेरणा पाते थे।

ऐसी कौन-सी विशेषताएं हैं जिससे भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है? जबकि विश्व की बड़ी-बड़ी विशाल सभ्यताएं नष्ट हो गई। एक अमेरीकन John B. Sparks ने एक विशाल मानचित्र 'The Histomap of history' The Rise and fall of peoples and nations four thousand years में जन समाज एवं देशों का चार हजार वर्षों का उत्थान एवं पतन का इतिहास दर्शाया है। जिसमें प्राचीनतम सभ्यताओं का नक्शा बनाते हुए दिखाया गया है कि ग्रीक, यूनान, रोम व मिस्र, असीरिया, बेबीलोन की सभ्यताएँ उदित हुई, फली-फूली, विकसित हुई और अपने वैभव और राजनीतिक उत्कर्ष काल में राजनीतिक साम्राज्य के अन्तर्गत विश्व के अधिकांश देशों पर छा गयी। अपने अंक में ले लिया। इस प्रकार इनका इतना पेट फूला कि शेष में पेट फट कर वह सभ्यता सदा के लिए विलीन हो गई। पर भारत का पेट न इतना पिचका कि अनाहार से मर जाय और न इतना फूला कि पेट फट जाय।

प्रारम्भ से आजतक निरन्तर अविच्छिन्न धारा बनी रही और अपने राजनीतिक उत्कर्ष काल में भी उसने कभी भी विश्व पर न अपना राजनीतिक साम्राज्य विस्तार किया, न किसी के अर्थ पर डाका डाला है, न किसी की स्वाधीनता छीनी, न धर्म ही छीना और न किसी के शील पर ही डाका डाला। हमने दिया तो संस्कृति का दान दिया। सभ्यता का, कला का, विज्ञान का दान दिया और आज भी हमारा सांस्कृतिक साम्राज्य अनेक अंशों में अक्षुण्ण है। सुरक्षित है।

ये बड़ी-बड़ी विशाल सभ्यताएँ आखिर नष्ट क्यों हो गई और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति आज भी जीवित क्यों है? इसका रहस्यमय कारण है कि जो सभ्यता मात्र भौतिकता पर आधारित होती है वह नश्वर होती है और आध्यात्मिकता पर आधारित सभ्यता-संस्कृति चिरंजीवी होती है। सिर्फ भौतिकता के आधार पर जीवन में कोई महत् लक्ष्य या परोपकार की कोई प्रेरणा नहीं रहती। उनके पास लक्ष्य अर्थ और काम रह जाता है। ये दो ही प्रेरणायें रह जाती हैं। उस राष्ट्र के व्यक्ति का जीवन निरा भोगवादी बन जाता है। उसके जीवन में दो ही आकर्षण शेष रहते हैं—अर्थ और काम। रोम में बड़े-बड़े गुसलखाने (वमन कक्ष Vomiting Room) बने हुए थे। जहां खाना और वमन करना ही उनका कार्य था।

रोम गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। और गुलामों का सबसे बड़ा देश था। कालान्तर में वहां के मूल निवासी सभी के सभी भोगी विलासी, लम्पट बन गए एवं अकर्मण्य बन गए। सारा कार्य व्यापार गुलाम ही चलाते थे और मूल निवासी भोग-विलास में मत्त रहते थे। ऐसी अवस्था में विदेशी आक्रमणों के छोटे-छोटे झटकों में ही ये राष्ट्र समाप्त हो गए। गुलामों में राष्ट्र की रक्षा की प्रेरणा नहीं थी। वे तो गुलामी से मुक्त होना चाहते ही थे एवं मूल निवासी अकर्मण्य, निकम्मे बन जाने से यह दुर्गति हुई। अतः केवल भौतिकता का आश्रय लेकर हम अपने राष्ट्र जीवन को चिरंजीवी, दीर्घजीवी नहीं बना सकते। जबकि भारत सब प्रकार के संकट झेलकर, उसका सामना कर जीवित है। सब प्रकार के संकट झेलने की प्रेरणा सदैव धर्म एवं संस्कृति ने दी। चाहे हम वर्तमान स्वाधीनता आन्दोलन के कर्ता पुरुषों को ही देख लेवें—गांधी, तिलक, विवेकानन्द, मालवीयजी आदि सब धार्मिक पुरुष थे।

आधुनिक युग में बिना आध्यात्मिक आधार के कम्यूनिज्म का सिद्धान्त असफल हो गया। लोक कल्याण में प्रवृत्त फिर अपने स्वार्थ पोषण में लगकर कैसे अत्याचारी एवं हत्यारों में परिणत हो गये। फलतः आज कम्यूनिज्म धारा विश्व से समाप्त हो गई। भारत में तो नमूने के तौर पर आतंक के बल पर टिकी है। जो ज्यादा नहीं चल सकती। क्योंकि वैचारिक आधार समाप्त हो गया है। ऐसा आदर्श शोषण मुक्त समाज कि जिसमें सब आवश्यकतानुसार पायेंगे एवं योग्यतानुसार कार्य करेंगे। ऐसे साम्यवाद के लिए साम्यबोध आना चाहिए। एवं साम्यबोध आता है धर्म से।

सकल जीव सृष्टि में एक ही चेतन सत्ता, आत्मा सत्ता, ईश्वरीय सत्ता विराज रही है। तभी सारी सृष्टि के प्रति हमारी आत्मीयता का भाव जागृत होता है। हम व्यक्ति जीवन, परिवार जीवन से उठकर समष्टिगत हो सकते हैं। जैसे किसी अपरिचित व्यक्ति से परिचय के दौरान रक्त सम्बन्ध निकल आने पर तुरन्त उसके प्रति आत्मीयता उपज जाती है। और व्यक्ति सब प्रकार के सहयोग के लिए प्रस्तुत हो जाता है। यह मनुष्य का स्वभाव है। जैसे-जैसे धर्म भाव का हमारे अन्दर उदय होता जाता है हमारी चेतना विकसित होती जाती है। पहले अपने तक, फिर परिवार, समाज, जाति, राष्ट्र, विश्व के प्रति बनती जाती है।

चेतना का विकास कार्य धर्म या अध्यात्म के आधार पर ही सम्भव होगा जिसको वह अविचारणीय बता कर उपेक्षा कर देता है। फलतः वह चरित्र से पतित हो जाता है, स्वकेन्द्रित हो जाता है, स्वार्थी हो जाता है, परिवार तक सीमित हो जाता है। प्रथम-प्रथम में थोड़ा लोक कल्याण होता है, पर कालान्तर में कम्यूनिज्म की नास्तिक आस्था के आधार पर एक प्रतिक्रिया पैदा होती है। ईश्वर है ही नहीं।

यदि है तो ईश्वर किसी उचक्के, बदमाश का नाम है। नैतिक मूल्य पुराने जमाने के बाट या सिक्के के समान हैं जो नये युग में अप्रचलित हो जाते हैं। धर्म जनसाधारण को नशे में भुलाए रखने के लिए अफीम मात्र है। यदि कर्मफलदाता कोई है ही नहीं, इस जन्म के बाद कोई जन्म नहीं, यही प्रथम और अन्तिम जन्म है। यह जन्म अकस्मात् मिला और अकस्मात् ही अनन्त में विलीन हो जाएगा। अच्छे-बुरे, सज्जन-दुर्जन दोनों की अन्तिम गति मिट्टी में ही मिल जाना है तो किसी का भला क्यों करूं? जब तक जीवन है तब तक मस्ती कर लूं। जब तक अवसर है मस्ती ले लूं। इसी आधार पर यह विचार स्वपोषण एवं पर-अत्याचार में लगकर समाप्त हो गया। अतः बिना धार्मिक, आध्यात्मिक आधार के कोई वाद या सिद्धान्त अपने आदर्श को अधिक दिन तक कायम नहीं रख सकता। वह आदर्श से च्युत होने के लिए बाध्य है। वे शोषण मुक्त समाज की क्या स्थापना करेंगे जो स्वयं सबसे बड़े शोषक बन जाते हैं। देखें—वर्तमान, नेताओं एवं कार्यकर्ताओं के चरित्र को।

बिना धार्मिक या आध्यात्मिक आधार के मनुष्य का कितना पतन होता है इसकी कोई सीमा नहीं है।

मनुष्य और पशु में एक मौलिक अन्तर है। पशु को जितना ज्ञान अपने व्यवहार सम्पादन के लिए, जीवन धारण के लिए आवश्यक होता है वह उसे नैसर्गिक रूप से या भगवान् के घर से लेकर ही आता है और जन्म से ही उसे प्राप्त रहता है। अर्जित नहीं करना पड़ता। वह न अपना उससे अधिक विकास करता है और न पतन ही। वह किसी प्रकार का भी विकास चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक, करने में अक्षम है। आदिकाल से आज तक उसके जीवन का क्रम एक-सा है। वह जैसे गुफा में, जंगल में रहता आया है वैसे ही अब तक रहता आया है। वह दो कारणों से ही हिंसा में प्रवृत्त होता है। एक भूख के कारण, दूसरा आत्मरक्षार्थ। यानी पशु का जीवन स्थिर है।

मनुष्य का जीवन स्थिर नहीं है। जैसे दूध को संस्कारित कर उससे दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी प्राप्त कर घी को दीर्घ समय तक रखा जा सकता है। दूध को प्राकृत अवस्था में ही छोड़ दें तो विकृत हो जाएगा। वैसे ही मनुष्य का चरित्र है। मनुष्य धर्म संस्कारों के द्वारा अपना सर्वोच्च विकास कर सकता है। वह नर से नरत्व, नरत्व से देवत्व, देवत्व से ब्रह्मत्व तक पहुंच सकता है। जैसा राम, कृष्ण, राणा प्रताप, शिवाजी, गांधीजी, तिलक, सुभाष बोस आदि में पाते हैं। राम ने बंदर, भालुओं एवं वनवासी जाति को संस्कारित करके धर्मवीर बना दिया, जो त्रिभुवनजयी रावण को परास्त करने में सक्षम हुए। राणा प्रताप ने जंगली भीलों को, शिवाजी ने पहाड़ी मावलों का संस्कारों के द्वारा कायाकल्प कर दिया। जो धर्म युद्ध में सहायक बने। अतः एक राम के या शिवाजी के

निर्माण ने करोड़ों राम शिवाजी को उत्पन्न कर दिया। वैसे एक दुष्ट रावण ने करोड़ों रावण को उत्पन्न कर दिया। और धर्म संस्कारों के अभाव में वह नर से नर पशु, नर पशु से नर पिशाच बना यानी पतन की भी कोई सीमा नहीं है। उदाहरण के लिए शक, हूण आदि जातियां धर्म संस्कारों के अभाव में निरी पशु थी। उन्हें मनुष्य को भीषण कष्ट दे-देकर मारने में बड़ा आनन्द आता था। उनकी सन्धि की शर्तें होती थी—अपना सिर काट कर अपनी रानी सहित दस सुन्दरियों को भेज दो, अन्यथा युद्ध का सामना करो। उन्हें राजाओं की खोपड़ी को फुटबाल बनाकर खेलने, उनकी खोपड़ी को प्याला बनाकर उसका ही रक्तपान करने में आनन्द आता था। एक बादशाह को पहाड़ से हाथी गिरवाकर उसकी चीत्कार सुनने में आनन्द आता था। Eachman जो प्रथम अपनी रक्षार्थ मजबूरी से हिटलर के आदेश से हत्या करता था, कालान्तर में उसी कार्य में उसे आनन्द आने लगा और हिटलर को उसने मनुष्य के चमड़े की सोफासेट, मनुष्यों के आंखों की माला भेंट की। रोम, गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। जिन्हें नग्न-अर्द्धनग्न रखा जाता था। गले में सांकल बांधकर। घर के दरवाजे पर या गली-कूचों में सोना पड़ता था। अपराध होने पर समुद्र में मगरमच्छ के आगे फेंक दिया जाता था। निरपराध होने पर हिंसक पशुओं से लड़ना पड़ता था। हारने पर रथ में शरीर को फंसाकर घसीटा जाता था।

इस प्रकार धर्म के संस्कारों के अभाव में मनुष्य नरपिशाच बन जाता है और अपने जैसे नरपिशाचों की फौज तैयार कर लेता है। इस प्रकार पतन की कोई सीमा नहीं है।

अत: धर्म के अभाव में मनुष्य न अपने जीवन का निर्माण कर सकता है और न सुदृढ़ राष्ट्र जीवन और न कोई वाद ही चला सकता है। आज पश्चिम ने अध्यात्म को तिरस्कृत करके और कोरी भौतिकता पर बल देकर भौतिक सुखों का अम्बार तो लगा दिया पर जीवन कला के अभाव में, उसके उपयोग की यथार्थ बुद्धि के अभाव में भौतिक सुखों के शैल पर खड़ा होकर दु:खी है। आज उसका सुख ही उनके लिए नरक बन गया है। सारे विश्व के लिए संकट बन रहा है।

जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे। विवेकानन्द भी अपनी पहली यात्रा में अमेरीका और यूरोप के शौर्य, संगठन और मिथ्या लोकतंत्र के भुलावे में आ गए थे। पर दूसरी यात्रा में पश्चिमी सभ्यता की निरर्थकता समझ में आ गई थी। विवेकानन्द पहले व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अनुभव किया कि यूरोपीय सभ्यता के ऊपर संकट की छाया चुपचाप घिरी आ रही है। बाहर से वह सभ्यता अपनी सफलता के चरम शिखर पर थी। उस समय के अधिकांश भारतीय लेखकों ने पश्चिम में समृद्धि, आशावाद, विज्ञान

और तकनीकी प्रगति के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा था। क्योंकि अर्थ, काम और शक्ति के सिद्धान्त ने मनुष्य को बहिर्मुखी बनाकर अहर्निश कर्म करने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप अपार भौतिक वैभव प्राप्त हुआ जो किसी भी युग में इसके पूर्व शायद सम्भव नहीं हुआ था। पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने के बजाय पृथ्वी को ही स्वर्ग में परिणत कर दिया और यह आशा की जाने लगी कि अब एक पूर्ण जगत् का आगमन होने ही वाला है। दु:ख, दैन्य, अज्ञानता की सदा के लिए समाप्ति होने ही वाली है। प्रगति की शताब्दी की इस मनोदशा को प्रकट करते हुए ब्राऊनिंग ने गाया था—

ईश्वर अपने स्वर्ग में है और
संसार में सब कुछ ठीक ठाक है।

जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे उस समय विवेकानन्द ने पश्चिमी सभ्यता की दुर्दशा को दूरदृष्टि से देखकर भौतिकता के गढ़ में ही घुसकर यह सावधान वाणी दी तो उस समय कुछ लोगों को विवेकानन्द के विचार अमंगल सूचक लगे थे। उन्होंने घोषणा की कि पश्चिम की जीवन यात्रा एक अट्टहास है। किन्तु उसके पीछे रुदन है और रुदन में ही इसकी परिसमाप्ति होगी।

पश्चिमी राष्ट्र ज्वालामुखी पर्वत पर टिका हुआ है जो अपने होंठों में लिपिस्टिक लगाए हुए कृत्रिम मुस्कान बिखेर रहा है। जिसके अन्दर रुदन ही भरा है। जबकि भारत में (गरीबी के मार से अंग्रेजों के कारण) ऊपर में तो रुदन है, पर भीतर में आमोद-प्रमोद समाया हुआ है। यदि 50 वर्षों के अन्दर आध्यात्मिक आधार को नहीं अपनाया तो यह सभ्यता फटकर चिथड़े-चिथड़े में बिखर जाएगी। कुछ वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी उस आसन्न संकट को अनुभव किया था जिसे उन्होंने अपनी एक कविता में अभिव्यक्त भी किया। स्वामी रामतीर्थ को भी पश्चिमी सभ्यता की व्यर्थता का बोध हो गया था—

सभ्यता एक उद्देश्यहीन सपना भर
ऊपर से ऊंचे नाम-रूप पर क्या भीतर?
तुम में अपना ही ज्ञान रहा नहीं बाकी
तुम शैल शिखर पर.......

स्वामीजी पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक की तुलना गोबर में लिपटी हुई मिठाई से करते हैं।

गांधीजी ने भी पाश्चात्य यंत्रकौशल पर आधारित भौतिकवादी सभ्यता के विषय में निराशाजनक भाव ही 'हिन्द स्वराज्य' में व्यक्त किए।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने पर बहुत से यूरोपीय बुद्धिजीवियों ने इन मनीषियों की आशंकाओं को याद किया था। पाश्चात्य मनीषियों का भौतिकता पर आधारित सभ्यता एवं जीवन-दर्शन पर प्रथम मोहभंग सन् 1914-18 के विश्वयुद्ध से हुआ। किन्तु प्रथम विश्वयुद्ध वाला संकट युद्ध समाप्त हो जाने पर भी दूर नहीं हुआ वरन् संकटों की एक मालिका के रूप में कभी बोलशेविक क्रान्ति, कभी फासिस्ट एवं नात्सी प्रभाव एवं लोभ, असहिष्णुता तथा हिंसा के बढ़ते हुए ज्वार के रूप में व्यक्त हुआ और अन्ततोगत्वा सन् 1939-1945 के द्वितीय विश्वयुद्ध के अभूतपूर्व संकट के रूप में फूट पड़ा। इसी महायुद्ध के अन्त में स्वयं सभी आविष्कारों को खाने वाला दावानल रूप अणु बम नागाशाकी और हिरोशिमा में प्रयुक्त हुआ। इन विश्वयुद्धों एवं संकटों ने पाश्चात्य विचारकों में आत्मशोध एवं आत्मपरीक्षण का एक आन्दोलन ही चला दिया। हमारी सभ्यता में कौन-सी बुराई आ गई। गम्भीर आलोचना एवं टीकाएं होने लगी। फिर कम्यूनिज्म के अवसान ने आत्मशोध की प्रक्रिया को और भी तीव्र कर दिया।

आज पश्चिम में परिवार जीवन समाप्तप्राय है। आज जितने भी प्रकार के अपराध हैं उसमें सबसे सिरमौर अमेरीका है। कमोबेश यही हाल सारे यूरोपीय देशों का है। आज वहां बच्चे स्नेह से वंचित हैं, वहां बुढ़ापा सम्मानहीन बोझ के तुल्य है, old House में कटता है। वहां जवानी चंचल और अस्थिर है। वहां सारे रिश्ते समाप्त हो गए हैं सिर्फ पति-पत्नी का रिश्ता बचा है। यह रिश्ता भी बहुत कच्चे धागे से बंधा है। जिस सभ्यता का बचपन बीमार हो, बुढ़ापा बेकार व सम्मानहीन हो, जवानी अस्थिर एवं चंचल हो। उसका भविष्य क्या हो सकता है?

डॉ. राधाकृष्णन् ने पश्चिम यात्राओं में कई बार कहा—यह ठीक है आप समुद्र में मछली की भांति तैर सकते हैं, आकाश में पक्षी की भांति विचरण कर सकते हैं, पर पृथ्वी पर मनुष्य की भांति रहने के लिए भारत से सीखना होगा। आज यूरोपीय राष्ट्र इन दुर्दशाओं से बचने के लिए हिन्दू धर्म पर शोध कर रहे हैं। उनसे मार्गदर्शन प्राप्ति की आशा लगाए हुए हैं।

यो वै भूमा तदमृतम्। अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।

छा.उ., 7/24/1

जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य अर्थात् मरणशील अथवा विनाशशील है।

मार्क्स के धर्मविषयक विचार की समीक्षा

आधुनिक भारत के युवा मानस पर पाश्चात्य विचारधारा का पंचमुखी प्रहार हुआ है। जो ऊपर से देखने पर दिखाई नहीं देता, किन्तु गम्भीरता और सूक्ष्मता से विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है—

(क) पशुता का आक्रमण—भारत के ऋषियों ने 'अमृतस्य पुत्राः' अमृत पुत्र कहा है। किन्तु चार्ल्स डार्विन ने घोषणा की कि मनुष्य भगवान् का नहीं पशुओं—बंदर, लंगूर आदि की संतान है। इस प्रकार मानव पशु संतति होने के कारण उसकी पशुता को मानवता का पूर्वज होने का गौरव मिल गया। भारत में विज्ञान के नाम पर यही स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ाया गया। तब युवा मानस पर यही छाप पड़ी कि हम अमृतस्य पुत्राः न होकर वानरस्य पुत्राः हैं। इससे मानव मन की पशुता जाग उठी।

(ख) नग्नता का आक्रमण—पश्चिम के साहित्यकारों D.H. Lorens, Pope, Dryden, Keats, Byron आदि ने कहा कि जब हम मूलतः पशु ही हैं तो पशु अपनी पशु लीला पर सभ्यता का कोई आवरण नहीं डालते। तो हमें भी किसी पर्दे की आवश्यकता नहीं है। जो क्रियाकलाप हैं उसका नग्न रूप से वर्णन किया जाय। इससे पश्चिमी साहित्य में नग्नतावाद का बोलबाला हो गया। Keats की Lost Sonate इतनी अश्लील है कि पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों लज्जा से संकुचित हो जाते हैं। D.H. Lorens के नॉवलों (उपन्यासों) की आजकल पुस्तक की दुकान पर धूम है। क्रिस्टीन किलर काण्ड तथा नंगे नॉवल खूब बिकते हैं। नग्नता का यह हमला फिल्मों में भी आया, नाचघरों में भी आ गया, कैबरे नृत्य होने लगे, चित्रों-कैलेण्डरों में भी आ गया है। नग्न चित्र खूब बिकने लगे हैं। धीरे-धीरे धार्मिक चित्रों में भी नग्नता बढ़ने लगी। फैशन में, वेश-भूषा में नग्नता आने से वस्त्र छोटे और नग्न अंगों का प्रदर्शन अधिक होने लगा। अमेरीका में टोपलेस का फैशन चला। चित्रकला मूर्तिकला में भी नग्नता आ गई। Nude क्लब का चलन बढ़ने लगा। भारत में भी रजनीश ने नग्न नर-नारियों के सम्मेलन करवाए। भारत के युवा मानस पर इस नग्नता के हमले ने इतना भीषण आघात किया है कि गुण्डों

को अपनी गुण्डाई में लज्जा ही नहीं रही। 50 प्रतिशत से अधिक युवा छात्र-छात्रा फिल्मी हीरो या चरित्रभ्रष्ट अभिनेत्रियों को अपना आदर्श मानने लगे हैं।

(ग) कामुकता का आक्रमण—फ्रॉयड ने कहा कि कामवासना ही एकमात्र जीवनप्रवृत्ति है। इसके विपरीत जो कुछ है वह मृत्युप्रवृत्त death instinct है। फ्रॉयड सब प्रवृत्तियों के पीछे कामप्रवृत्ति का ही दर्शन करता है। वह माता-पुत्र, पिता-पुत्री और भाई-बहन के प्रेम को भी कामवासना ही मानता है। इसका मत है कि हर बच्चे के अचेतन मन में एक प्रवृत्ति सुप्त रहती है जिसे Odipus complex कहते हैं। Odipus नाम का यूनानी योद्धा था जिसने न जानते हुए अपने पिता को मारकर उसी की रानी से विवाह किया। भेद खुलने पर Odipus ने अपनी आंखें फोड़ ली और रानी ने आत्महत्या कर ली। फ्रॉयड का मत है कि हर बच्चे के मन में माता के प्रति प्रेम के पीछे यही प्रवृत्ति सोयी पड़ी रहती है। वह पिता को निरस्त कर अपनी माता से काम तृप्ति चाहता है। इस प्रकार फ्रॉयड ने बहन-भाई और माता-पुत्र के पवित्र प्रेम को भी कामुकता के चश्मे से देखकर सारी मानवता को मां और बहन की गाली निकाल दी। किन्तु इसी फ्रॉयड को विज्ञान के नाम पर जब भारतीय युवा मानस को पढ़ाया जाता है तो छात्रों के मन पर निर्बन्ध कामुकता का आक्रमण होता है। डार्विन द्वारा आध्यात्मिकता का निराकरण हो जाने पर केवल पशुता बची। पशुता द्वारा सभ्यता का पर्दा फट जाने पर नग्नता आ जाती है। और नग्नता द्वारा नैतिकता और मर्यादा का बंधन टूट जाने पर कामुकता आ जाती है।

(घ) आर्थिकता का आक्रमण—पशुता, नग्नता और कामुकता के भोगवादी आक्रमणों को भौतिक साधनों का पूर्ण सहयोग देने के लिए कार्लमार्क्स ने मानव मन पर आर्थिकता का आक्रमण किया। काम और अर्थ मिलकर भोगवाद की लीला पूरी कर देते हैं। काम द्वारा जिन सुखों की कामना की जाती है वह सुख-साधन अर्थ द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अर्थ के आधिक्य से ऐश्वर्य की इच्छा पैदा होती है जिससे कामुकता का खेल नग्न रूप से होने लगता है। कामुकता अर्थ की अपेक्षा रखती है और आर्थिकता कामुकता को बढ़ावा देती है। एक कंचन और कामिनी दोनों माया के छलीरूप भोगविलास के माध्यम हैं। आर्थिकता के हमले से युवा मानस के मन पर ये संस्कार पड़ा कि अर्थ ही जीवन का सारतत्त्व है और जीवत्व अध्यात्म, नैतिकता, सभ्यता, धर्म, राजनीति सभी कुछ अर्थ के ही अधीन है। इस आर्थिकता के आक्रमण ने मानव मन के स्वार्थ को जगा दिया और मनुष्य अर्थ के लिए धर्म, नैतिकता, देशहित, स्वजन-सम्बन्धी सभी कुछ को बेचने के लिए उद्यत हो गया। अर्थ को सर्वोपरि मानने से अर्थ-प्राप्ति के सब साधन नैतिक-अनैतिक, भ्रष्ट एवं निन्दित मार्ग सभी उचित बन गए।

(ङ) ऐतिहासिकता का आक्रमण—विदेशियों ने भारत को सदा पराधीन, पददलित रखने के लिए इतिहास के नाम पर भारतीय युवा मन को यह कुसंस्कार का विष पिलाना शुरू किया कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं थे। वे मध्य एशिया के मैदानों से आक्रान्ता बनकर भारत में आए। वेद गड़रिये के गीत हैं और वैदिक ऋषि गड़रिये हैं जो भेड़ों के झुण्ड को चराते हुए नई सबल घास की खोज में भारत में आ धमके। भारत का संस्कारक्षम युवा मानस इन बातों को इतिहास के नाम पर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में पढ़ता रहा, परीक्षा के लिए याद करता रहा। जिससे उसके मानस पर यही विपरीत संस्कार दृढ़ीभूत हुआ और वह स्वाभिमान-शून्य आज का युवा मानस पश्चिमी विचारधारा के इस पंचमुखी आक्रमण से बहुत बुरी तरह क्षत-विक्षत हुआ पड़ा है।

कार्लमार्क्स—कार्लमार्क्स यहूदी जाति के व्यक्ति थे जिनका जर्मनी में जन्म 1818 ई. में हुआ। इनके दार्शनिक सिद्धान्त का नाम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। इसके अनुसार सृष्टि की अन्तिम सत्ता जड़ पदार्थ या भूत (Matter) ही है। किन्तु जहां जड़ में अपने आप कोई गति नहीं हो सकती वहां मार्क्स जड़ में द्वन्द्वात्मक पद्धति से गति का स्थान बनाता है। जो कुछ जल या थल पर विद्यमान है वह किसी न किसी प्रकार की गति से ही सम्भव है। द्वन्द्वात्मक पद्धति यह है कि प्रत्येक वस्तु एक वाद (Thesis) के रूप में प्रकट होती है। फिर उस वाद के समस्त दोषों को प्रकट करने वाला एक विरोधी विचार प्रतिवाद सामने आता है—Antithesis फिर वाद एवं प्रतिवाद के परस्पर संघर्ष द्वारा एक समन्वय विचार सामने आता है, जिसे सम्वाद कह सकते हैं। फिर इस सम्वाद (Synthesis) का सम् (Syn) हटा देने से शेष वाद (Thesis) ही बनता है। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक पूर्ण सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जाती।

वाद Thesis ↔ प्रतिवाद Antithesis
↓
सम्वाद Synthesis (समन्वय) ↔ प्रतिवाद Antithesis
↓
सम्वाद 2 ↔ प्रतिवाद 2
↓
सम्वाद 3 ↔ प्रतिवाद
↓
सम्वाद

इस द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति का अन्त पूर्ण सत्य में होगा।

कार्लमार्क्स के गुरु जर्मन दार्शनिक हीगेल थे जिनका सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद था। इसके अनुसार वाद, प्रतिवाद एवं सम्वाद की प्रक्रिया द्वारा विचार करते-करते हम अन्त में परम सत्य को पा लेते हैं। मार्क्स ने अपने गुरु

हीगेल को सर के बल पर उलटा खड़ा कर दिया है। मार्क्स ने हीगेल से द्वन्द्वात्मक पद्धति तो ली किन्तु उनका अध्यात्म तत्त्व नहीं लिया।

मार्क्स का कथन है कि जड़-पदार्थ ही अन्तिम सत्य है। मार्क्स ने हीगेल के द्वन्द्व नियम और फ़ूयरबर्ग के जड़ नियम का समन्वय किया। मार्क्स ने आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त सभी को मिथ्या ढकोसला कहा है। मार्क्स ने अपने नए दर्शन को अर्थवाद और समाजवाद के लिए प्रयोग किया। अतः इसे समाजवाद या वैज्ञानिक समाजवाद भी नाम दिया गया है।

मार्क्स का मत है कि अर्थ ही सब सामाजिक व्यवस्थाओं और सामाजिक संघर्षों का मूल कारण है। समाज में दो वर्ग हैं धनी और निर्धन। धनी निर्धनों का शोषण कर ही धनी बने हैं। यह पूँजीपति वर्ग है। दूसरे निर्धन या सर्वहारा वर्ग के लोग हैं जो बहुत समय से शोषण एवं अभाव के शिकार रहे हैं। जब तक इन दो वर्गों में भेद रहेगा तब तक संघर्ष चलता ही रहेगा। यह वर्गसंघर्ष समाजवाद की स्थापना के लिए अनिवार्य है। चूंकि निर्धन अभाव व शोषण एवं अन्याय के शिकार रहे हैं इसलिए उन्हें यह पूरा अधिकार है कि वे धनिकों के धन एवं परिवार को लूटें। इसे ही क्रान्ति कहते हैं।

रक्त क्रान्ति—अनिवार्य रूप से क्रान्ति रक्तिम ही होनी चाहिए। ऐसा मार्क्स का कथन है। Force in midwife that attends on a Society Pregnant with a new Social Order. रक्तपात एक दाई है जो किसी समाज के गर्भ में छिपी हुई नयी सामाजिक व्यवस्था के जन्म में सहायक होती है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति—मार्क्स व्यक्तिगत सम्पत्ति को भी अनुचित मानता है। उसका मत है कि सभी सम्पत्ति पूरे समाज Commune की होनी चाहिए। व्यक्तिगत सम्पत्ति से धनी-निर्धन का भेद बना रहता है।

व्यक्तिगत परिवार—मार्क्स के मत में व्यक्तिगत परिवार व्यक्तिगत सम्पत्ति के समान मानव के अहंकार का पोषण करने वाला है। अतः व्यक्तिगत परिवार भी नष्ट होना चाहिए। ऐसे Commune बनने चाहिए जिनमें सब स्त्रियां समाज की, सब पुरुष समाज के और इनसे पैदा होने वाले सब बच्चे भी समाज के माने जाय। जिस प्रकार गरीबों को अमीरों की धन-सम्पत्ति को लूटने का अधिकार है उसी प्रकार उन्हें अमीरों के परिवारों को भी लूटने का अधिकार है। वे अधिक धन से बड़े आदमी बन गए हैं और बड़े परिवारों में सम्बन्ध करके वे निर्धनजनों को छोटा मानकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं तथा अपना अहंकार प्रदर्शन करते हैं।

अध्यात्म—मार्क्स जड़वादी या भौतिकवादी दार्शनिक हैं, अध्यात्मवादी नही। अध्यात्मवाद का कथन है कि आत्मा ही परम सत्य है। इसके विपरीत

जड़वाद मानता है कि जड़ पदार्थ ही परम सत्य है। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। किन्तु आत्मा का शाब्दिक अर्थ 'मैं' है अत: अध्यात्मवाद का शाब्दिक अर्थ बन जाता है मैं का दर्शन। प्रो. रामजी सिंह ने अपने एक लेख में मार्क्स और अध्यात्म में यह नयी व्याख्या प्रस्तुत की है कि मार्क्स को मानव के मैं (स्वाभिमान) का उन्नायक होने के कारण मानव के अहम् का नया दर्शन प्रस्तुत करने वाला अध्यात्मवादी माना जा सकता है। वह गरीब मजदूर को सारी उम्र नौकरी करने वाला मिल का नौकर न रहकर मिल का मालिक बना देना चाहता है। वह निर्धन को धनी, अपने भाग्य का निर्माता, राज्य का स्वामी बनाना चाहता है। वह कार्य के लिए जनता को ईश्वर की कृपा का मुहताज न रखकर स्वयं सृष्टि को अपने अनुरूप बदल देने वाला बनाना चाहता है। वह मानव को ईश्वर के सामने सदा भिक्षा मांगने वाला न छोड़कर स्वयं ईश्वर (स्वामी) बनाना चाहता है। इसलिए मार्क्स का नये प्रकार का अध्यात्म है जो परम्परागत अध्यात्म से भिन्न है।

वास्तव में यदि जड़वाद को भी अध्यात्मवाद मान लिया जाय तो उन दोनों शब्दों की अभी तक प्रचलित परिभाषा ही बदलनी पड़ेगी। जड़ (अचेतन) की अन्तिम सत्ता मानने वाला सिद्धान्त जड़वाद और चेतन की अन्तिम सत्ता मानने वाला सिद्धान्त अध्यात्मवाद कहलाता है। यही सर्वमान्य परिभाषा है। यदि परिभाषा ही बदल दी जाय तो सारा शास्त्रार्थ ही अनर्गल हो जाता है।

मार्क्स और ईश्वर—मार्क्स ईश्वरवाद का कट्टर विरोधी था। कुछ लोग अध्यात्मवाद और ईश्वरवाद को समानार्थक मानते हैं। किन्तु वास्तव में अध्यात्मवाद ईश्वरवाद से अधिक व्यापक विचारधारा है। अधिकांश धर्म ईश्वरवाद पर टिके हैं। किन्तु, दार्शनिक विचारधाराएं या तो ईश्वर को आत्म रूप में स्वीकार करती है या आत्मा को ही परमात्मा कहकर समझती है या ईश्वर शब्द को निरर्थक मानकर केवल आत्मा की ही व्याख्या करती है और मार्क्स जैसे जड़वादी न आत्मा को, न जीवात्मा को, न परमात्मा को मानते हैं। वे केवल जड़ पदार्थ को ही परम सत्य मानते हैं। जैन एवं बौद्ध दर्शन ईश्वरवादी नहीं हैं। किन्तु वे अध्यात्मवादी अवश्य हैं। मार्क्स न अध्यात्मवादी हैं, न ईश्वरवादी हैं, न कर्मवादी और न परलोकवादी। उसके मत में ईश्वर एक ऐसी काल्पनिक सत्ता का नाम है जो मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति का, उसके अभावों की पूर्ति का प्रतीक है। मानव जो कुछ बनना चाहता है, जो सद्‌गुण प्राप्त करना चाहता है और जो उसके जीवन के आदर्श हैं उन्हीं को अपने से पृथक् एक अन्य विभूति मानकर उसे पूजने लग जाता है। इससे उसके जीवन में एक अन्यता (परायापन) का भाव आ जाता है। फयूरबर्ग ने भी धर्म के इस रूप की कड़ी आलोचना की थी जिसका प्रभाव मार्क्स पर पड़ा। फयूरबर्ग का कथन है कि इस लोक में रहकर भी मनुष्य की

आँखें परलोक की ओर लगी रहनी चाहिए। यह सिद्धान्त मनुष्य में व्यक्तित्व में अपराग की भावना पैदा कर देता है। मनुष्य अपने आपको संसार में मुसाफिर या अजनबी समझने लगता है। उदाहरण—**रहना नहीं देश विराना है (कबीर)**। इस आत्मविराग ने मनुष्य को भूतल से प्यार नहीं करने दिया। वरन् स्वर्ग की कामना में ही मनुष्य का सारा ध्यान लगा रहा। ईश्वर की धारणा का मूल संसार को बंधन रूप में समझना है और संसार के बंधन से मुक्ति को ही भगवान् मान लेना है। वह यह भूल जाता है वास्तव में वह संकल्प कर रहा था कि यदि मनुष्य सर्वज्ञ हो जाय तो उसका कैसा स्वरूप होगा। अपने ही आदर्श को अपने से अलग मानकर उससे भयभीत रहकर उसको पूजना यह मानव की दुर्बलता है। फयूरबर्ग ईश्वर को पुनः मनुष्य के रूप में रूपान्तरित कर दे तब मनुष्य को बोध हो जायगा कि उसने ईश्वर को बनाया था। वह फिर अपने स्वरूप को पहचान जाएगा और उसे धर्म की आवश्यकता नहीं रहेगी। फयूरबर्ग पुनः कहता है ईश्वर लोगों से मैत्री करने के बजाय मानव का मित्र बना दूं, श्रद्धालु के स्थान पर विचारक बना दूं।

फिर फयूरबर्ग के विचारों में मार्क्स के साम्यवाद के बीज छुपे हुए हैं। किन्तु जहां फयूरबर्ग संसार को धार्मिक और पार्थिव दो भागों में विभाजित कर देते हैं वहां मार्क्स उनसे सहमत नहीं है। फयूरबर्ग सारे धार्मिक जगत् को परिवर्तित कर उसके आधार को इहलौकिक बना देते हैं। इसकी तुलना में मार्क्स इहलोक को ही सब कुछ समझता है। मनुष्य जिन-जिन गुणों का अर्जन करना चाहता है उन जीवनमूल्यों का आकार भगवान् बनकर मनुष्य के सामने एक प्रेरणा का सम्बल बन जाता है। यदि आदर्शों को इस लोक में प्राप्त करके योग्य बना दिया जाय तो स्वर्ग आदि की सारी गुत्थी सुलझ सकती है। मार्क्स के शब्दों में—यह पता लग जाने के पश्चात् कि स्वर्ग के परिवार का रहस्य पृथ्वी के परिवार में निहित है कोई व्यक्ति स्वर्ग को सिद्धान्ततः तथा व्यवहारतः ध्वस्त करने के लिए कदम उठा सकता है। वे पुनः कहते हैं कि समाज के प्राप्तव्यों की पूर्ति हो जाने पर धर्म की आवश्यकता नहीं रहेगी। मनुष्य जब तक स्वयं देवता नहीं बन जाता तब तक देवताओं की आवश्यकता होती है तथा उसके सामने गिड़गिड़ाकर वंदना किया करता है, अंधविश्वास तथा मूर्ति पूजा के कारण मनुष्य अपने आपको पतित बनाता है। इसलिए भगवान् में आस्था न रखने वाला व्यक्ति ही सम्मानित व्यक्ति हो सकता है। मानवता के सार से वंचित होकर मनुष्य भगवान् को पूजता है। यदि मानवता का सार उसे प्राप्त हो जाय, मनुष्य में मानवता भर दी जाय तो मनुष्य स्वयं भगवान् हो जाएगा। उसे पता लग जाएगा कि मानवता से परे कोई भगवान् नहीं है। इसलिए धर्म अपने आप नष्ट हो जाएगा।

मार्क्स का कथन है कि धर्म के द्वारा भ्रम तो वास्तविकता बन जाता है और वास्तविकता भ्रम बन जाती है। काल्पनिक ईश्वर को सत् मान लेता है और

सत् जगत् को मिथ्या। इस प्रकार धर्म जनता के लिए अफीम है क्योंकि वह उसे काल्पनिक सुख में फंसाये रखता है जो वास्तविक सुख के लिए संघर्ष करने से रोकता है। पूर्व जन्मों का फल मानकर निर्धनता में कष्ट भोगते हुए संतोष मान लेना, इस जन्म के कर्मों में शोषण और अन्याय के अत्याचारों को यह मानकर सहते रहना कि इनका फल भगवान् अगले जन्म में देंगे। भगवान् के दरबार में देर है किन्तु अंधेर नहीं। ईश्वर न्यायकारी है, वह स्वयं देखता है। अत्याचारी को वही दण्ड देगा। हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य को अकर्मण्य एवं क्रान्तिविरोधी, प्रतिगामी एवं ईश्वर के नाम पर अत्याचार-सहिष्णु बना देता है इसलिए ईश्वर का निराकरण और धर्म का खण्डन अत्यावश्यक है।

मार्क्स के मत में धर्म मनुष्य को कर्मशील न बनाकर अकर्मण्य एवं स्वप्नदर्शी बना देता है। वह यह मानने लगता है सब कुछ भगवान् ही करता है। इसलिए मुझे करने की क्या आवश्यकता है। मलुकदास के शब्दों में—

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

कबीर के शब्दों में—

कुछ लेना न देना मगन रहना......

धर्म-विश्वासी को समाज में जिन-जिन मूल्यों का अभाव प्रतीत होता है वह उन्हीं मूल्यों का एक आदर्श कल्पित कर लेता है और उसे ईश्वर कहता है। जैसे भूखा व्यक्ति रोटी के सपने लेता है उसी प्रकार समाज में अन्याय, अत्याचार, प्रेम, समता का अभाव देखने वाला व्यक्ति एक न्यायकारी, समतावादी, प्रेममूर्ति ईश्वर के सपने लेता रहता है। वह कर्म से दूर हो सपने लेता रहता है। वह कर्म से दूर और स्वप्नों में मसरूफ (लगा हुआ) रहता है।

धर्म मनुष्य को अपने ही मस्तिष्क की कल्पना से पराभूत किए रहता है। यानी कल्पना भी हमारी और बंदी भी हम उसी के हो गए। मार्क्स के शब्दों में जैसे धर्म के क्षेत्र में मनुष्य अपने ही मस्तिष्क से उत्पन्न कल्पित आदर्श द्वारा पराभूत रहता है। उसी प्रकार पूँजीवादी उत्पादन में वह अपने हाथों द्वारा उत्पादित की गई वस्तुओं मिलों, फैक्टरियों, शस्त्रों एवं पूँजी से पराभूत रहता है। धर्म के क्षेत्र में जिस ईश्वर से वह डरता है उसको उसने स्वयं अपनी कल्पना से उत्पन्न किया है। आर्थिक क्षेत्र में मजदूर ही अन्न भण्डार, खाद्य भण्डार, वस्तु भण्डार, शस्त्र का एवं धन के भण्डार का उत्पादन करता है। किन्तु उसका स्वामित्व पूँजीपति के हाथ में सौंप देता है। जब वह शोषण के विरुद्ध अपने अधिकारों के लिए वर्गसंघर्ष के लिए नारा लगाता है तब उस अधभूखे, अधनंगे मजदूर पर उसी के हाथ से

उत्पादित धन एवं शस्त्र द्वारा आक्रमण किया जाता है। इस प्रकार जो पूँजी अपने हाथ से निर्माण की वह उसके विरुद्ध ही प्रयोग होने लगी। जब तक ये पूँजीवादी उलटी अर्थव्यवस्था रहेगी तब तक मनुष्य अपने द्वारा कल्पित भगवान् से भी पराया बना रहेगा और अपने द्वारा उत्पादित पूँजी से भी स्वयं वंचित एवं प्रताड़ित होता रहेगा। समाज में उसे अन्याय, अत्याचार, शोषण, विषमता एवं दुःख मिलेगा और कोई चालाक धर्मोपदेशक उसे धर्म की नशे की गोली खिलाकर एक ऐसे कल्पित ईश्वर का स्वरूप दिखाएगा जहां अभाव, अन्याय, विषमता, दुःख नहीं रहेगा। और मानव नए-नए भगवानों की कल्पना में फंसता रहेगा। इसलिए जब तक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था है तब तक धर्म का कल्पनाप्रसूत आडम्बर फैला रहेगा और धर्म का काल्पनिक स्वप्नमय जगत् गरीब मजदूर को इस लोक में समानता के लिए क्रान्ति करने नहीं देगा। इस प्रकार पूँजीवाद और धर्मवाद दोनों एक-दूसरे के सहायक एवं पूरक बने हुए फलते-फूलते रहते हैं। मुख्य समस्या आर्थिक है। अर्थ धर्म को चलाता है और धर्म अर्थ के क्षेत्र में मनुष्य को मिथ्या संतोषी बनाकर क्रान्ति से रोके रखता है। इसलिए समाजवाद लाने के लिए धर्म के ऊपर तोप का गोला लगाना अनिवार्य है। जब मनुष्य अपने सामर्थ्य को पहचान लेता है तब धार्मिक अंधविश्वास के बादल छंट जाते हैं। विज्ञान और अन्य शास्त्रों के विकास के साथ ही अंधविश्वास की शृंखलायें टूटती जाती हैं। धर्म के नशे से होश में लाने के लिए जनता को शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान की चटनी खिलानी चाहिए।

धर्म तर्कबुद्धि का प्रतिद्वन्द्वी है, अंधविश्वास पर टिका है। धर्म मतिभ्रम का परिचायक है। आभासों की पूजा, अंधविश्वास और हठधर्मिता इसके लक्षण हैं। मार्क्स ने यूरोप के इतिहास में पोप की पाप एवं पाखण्ड लीला देखी और इतिहास से जानी थी। इसलिए उसे ईसाई अंधविश्वासों के प्रति घृणा हो गई।

धर्म इतिहास का अनादर करता है। धार्मिक व्यक्ति इतिहास की सारी प्रगति को प्रभु कृपा कहकर मानव के पुरुषार्थ एवं तर्कबुद्धि का निरादर करता है। यदि मनुष्य ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभु कृपा कहकर छोड़ देगा तो उसे कभी नहीं पता चल सकेगा कि कौन-से तत्त्व मानव प्रगति में साधक और कौन-से बाधक हैं। ऐसा व्यक्ति इतिहास में परिवर्तन या इतिहास निर्माण कैसे कर सकता है? वह सदा ही दबा हुआ इतिहास की मार खाता रहेगा।

धर्म मानव के स्वाभिमान का निरादर है। धर्म मानव को स्वाभिमान, स्वावलम्बन तथा गरिमा से वंचित कर देता है। मनुष्य में दासभाव उत्पन्न हो जाता है। उसमें क्रान्ति का बीज मर जाता है। धार्मिक कथाओं में दुःखद एवं करुणामय दृश्यों को सुनकर भक्त आंसू तो बहाते हैं, परन्तु जिन परिस्थितियों से दुःख आया उनको बदलने के लिए कुछ प्रयास नहीं करते। पादरी कहता है—धन्य हैं वे लोग

जो गरीब हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हें ही मिलेगा। बेचारे भोले-भाले निर्धन लोग गरीबी में ही रचते-पचते स्वर्ग की आस लगाए सारा जीवन एड़ियां रगड़-रगड़ कर काट देते हैं, किन्तु उन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष नहीं करते जिनके कारण उनकी दैन्यावस्था है। इसलिए मार्क्स कहता है यह तो जनता के लिए अफीम है, जनता की काल्पनिक खुशी के रूप में जो धर्म है उसको समाप्त करना ही जनता की वास्तविक खुशी के लिए आवश्यक है।

धर्म भीरु एवं परावलम्बी बनाता है। धर्म के नाम पर जो कुछ दान या सहायता दी जाती है उससे मानव में आत्मविश्वास पैदा नहीं होता। वह भगवान् के दलालों की दया पर रहने लगता है। मार्क्स के शब्दों में ईसाइयत के सामाजिक सिद्धान्त भीरुता, अपने आप से घृणा, दासभाव सिखाते हैं, जबकि सर्वहारा के लिए दिन-प्रतिदिन की रोटी की अपेक्षा उसका साहस, आत्मविश्वास, अपना स्वाभिमान, स्वावलम्बन की भावना अधिक आवश्यक है। मार्क्स का आग्रह है कि केवल अपनी महानता की अनुभूति ही किसी समाज का रूप बदलकर उसको स्वतंत्र मनुष्यों के समुदाय में बदल सकती है। यदि मानव को बोध हो जाए कि अपने भाग्य का अन्धकार मिटाने के लिए उसे स्वयं ही चांद-सितारों से रोशनी छीननी पड़ेगी। इसी पुरुषार्थ में उसकी गरिमा है तो वह दैव का सहारा छोड़ देगा।

धर्म पाखण्ड का पोषण करता है। अधिकांश धार्मिक लोगों की कथनी-करनी में बड़ा अन्तर होता है। वह बाहर से पानी का प्रचार करते हैं और अन्दर से शराब पीते हैं। गरीबों को गरीब रहने का उपदेश दिया जाता है। किन्तु आदर-सत्कार धनिकों को दिया जाता है। धनी संगमरमर के मन्दिर, गिरजाघर, सोने-चांदी के पालने एवं पूजा पीठ बनाते हैं, बढ़िया भोग-चढ़ावा चढ़ाते हैं। भगवान् और भगवान् के दलालों को प्रसन्न रखते हैं। पोप एवं पण्डे भी ऐसे धर्मध्वजी, पाखण्डी-पापी पैसे वालों को दानवीर कहकर सम्मान देते हैं।

धर्म व्यवसाय बन जाता है। मार्क्स ने ईसाइयत का उपहास करते हुए कहा है चर्च ऑफ इंग्लैंड अपने 39 अवतरणों में से 38 पर प्रहार करने वालों को तो क्षमा कर देगा किन्तु अपनी आय के 1/39 भाग पर प्रहार करने वालों को कभी क्षमा नहीं करेगा। धर्म के नाम पर कमाई के धंधे और दुकानें चलाई जाती हैं। पैसे वालों को धर्मात्मा एवं धर्मवीर, दानवीर गिना जाता है। चर्चों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा भी इस कारण से होती है क्योंकि प्रत्येक चर्च अपने चढ़ावे एवं दान से प्राप्त आय को बढ़ाने के लिए संघर्षशील रहता है। अतः ईसाइयत का ही प्रचार करने वाले दूसरे चर्च आर्थिक स्पर्धा से उसे वैरी प्रतीत होते हैं। ईसाइयत एवं इस्लाम दोनों अंधविश्वासी पंथ होने के कारण मार्क्स की आलोचना से बहुत उद्विग्न हो उठे। पोप (ग्यारहवें) ने घोषणा की कि कम्यूनिज्म तो स्वभावतः अनिष्ट है अतः किसी

को भी जो ईसाई सभ्यता को नष्ट होने से बचाना चाहता है इसके किसी भी प्रकार के उद्यम में इसकी सहायता नहीं करनी चाहिए। इस्लाम के अनुयायी भी यही समझते हैं कि कम्यूनिज्म पाप एवं पापाश्रित उद्यम का पोषण करता है। इस्लाम के अनुसार कुरान के एक शब्द में भी अविश्वास करने वाला काफिर माना जाता है।

मार्क्स के मत में धर्म अर्थ पर अवलम्बित है। जब तक आर्थिक विषमता रहेगी तब तक धर्म पर पूँजीपतियों का शासन रहेगा। वही धर्मवीर, दानवीर, धार्मिक न्यासों के अधिकारी, मन्दिर-मठों के निर्माता बने रहेंगे। एक ओर समाज का शोषण करते रहेंगे और दूसरी ओर धार्मिक देवालय भगवान् को ठगते रहेंगे और जनता को अफीम की गोली देकर स्वयं के धर्मात्मा होने का अहंकार बढ़ाते रहेंगे।

(ख) अर्थ लोभ से पण्डागिरी, पोप लीला फैलती है। पोप या पण्डे को न धर्म से मतलब है न जनता से। उसे तो केवल अपनी दान-दक्षिणा का लोभ है।

(ग) पुरोहित समाज ऐसी पूजा पद्धतियां एवं धार्मिक क्रियायें आविष्कृत करता है जिससे जनता की जेब का अधिक से अधिक पैसा पण्डा, पुरोहितों की जेब में आ सके।

(घ) पोप मोटी-मोटी रकमें लेकर स्वर्ग के मुक्तिपत्र बांटता रहता था।

समाज की आर्थिक स्थितियां बदलने के साथ-साथ धार्मिक और नैतिक नियम भी बदलते जाते हैं। जब देश में आर्थिक सम्पन्नता होती है तब सर्वदेवेभ्यो अतिथि माना जाता है। जब समाज में आर्थिक दुर्बलता आ जाती है तब अतिथि सत्कार के नियम एवं मुहावरे बदल जाते हैं। तब पहले दिन का मेहमान दूसरे दिन का बेईमान गिना जाने लगता है। धनी समाज के दान एवं स्वर्ण दान को धार्मिक पूजा-पाठ के विधान बनाता है। निर्धन समाज कहता है अभावे शालीचूर्णम् अभाव में चावल के आटे से काम चला लेते हैं।

कम्यूनिस्ट आलोचकों का कथन है कि धर्म राजनीति पर अंकुश लगाने की चेष्टा से रक्तपात एवं हिंसा को बढ़ावा देता है। सारे यूरोप के इतिहास में चर्च और State का धार्मिक शासन और राज्य शासन में परस्पर स्पर्धा, संघर्ष चलता रहा। राज्य शासन की चेष्टा रही धर्म शासन उसके अधीन रहे और धर्म शासन राज्य को अपने अधीन रखकर चलाना चाहता था। इसलिए चर्च और सरकार में परस्पर संघर्ष चलते रहते हैं और चर्च को खुलकर राजनीतिक शक्ति संतुलन के लिए स्पर्धा, संघर्ष व षड्यंत्र, हत्या, रक्तपात, सामूहिक हत्याकाण्ड, अग्नि होम आदि का सहारा लेना पड़ा। पहले चर्च ने गैर-ईसाइयों को मारना, जलाना प्रारम्भ किया। फिर राजनीतिक विरोधियों को नष्ट करने का अभियान चलाया। फिर गैर-ईसाई

राष्ट्रों के विरुद्ध जेहाद प्रारम्भ किए तथा गैर-ईसाई राष्ट्रों को धरती से उच्छेद करने का अन्तर्राष्ट्रीय अभियान चलाया। फिर ईसाई मत के ही भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के स्त्री-पुरुषों को तेल छिड़ककर सामूहिक रूप में जलाना प्रारम्भ किया। पोप ने अपने धार्मिक न्यायालय बना लिए जो तनिक भी विरोध करने वाले या भिन्न मत रखने वाले लोगों को चर्च का शत्रु कहकर सामूहिक रूप से जलाने या मारने का दण्ड देता था। Blood Council ने हजारों-लाखों लोगों को फांसी पर चढ़ा दिया। धार्मिक न्यायालय (inquisition) ने पोप के एक वाक्य पर सन् 1568 में निदरलैण्ड (हालैण्ड) के तीन लाख निवासियों को तेल छिड़ककर सामूहिक रूप से जला दिया। सारे यूरोप और अमेरीका के चर्च का इतिहास इसी प्रकार की हिंसा व हत्या के कुकर्मों से रक्तरंजित है।

इस्लाम का इतिहास भी कम दर्दनाक नहीं है। उन्होंने गैर-मुस्लिम (काफिर) देशों के विरुद्ध जेहाद बोलकर भयंकर रक्तपात किए। नारी जाति का घोर अपमान किया। धन और इज्जत को लूटा, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में चुनवाया। विधर्मियों की आंखें निकलवायी, बोटी-बोटी नुचवायी, आरों से चिरवाया, चर्खियों पर कटवाया, दो-दो पैसे में सिर बिकवाये, जलते हुए तवों पर जलाया, उबलती हुई देग में जलवाया, खून के खांखरे जलवाये, मंदिरों-मठों को तोड़ा, पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों को जलाया, देव प्रतिमाओं को अपने शौचालयों में औंधे मुख लगवाया। दुर्लभ ग्रंथों को जलाकर अपने हमाम गर्म करवाये और देश के नर-नारी को विदेशों में गुलाम बनाकर बेचा। यह सब दुर्भाग्य से धर्म के विस्तार के लिए घोर अधर्म होते रहे। इसलिए इनको देखकर आलोचकों को धर्म से घृणा हो गई। उनका अनुमान है कि धर्म ने मानव के हित की अपेक्षा अहित ही अधिक किया है।

मार्क्स के धर्म विचार की आलोचना—वास्तव में मार्क्स ने अथवा उसके प्रेरक फयूरबर्ग ने जो आलोचना की है वह कुछ मात्रा में पंथ (Religion) की आलोचना हो सकती है, धर्म की नहीं। धर्म का मूल अर्थ है कर्तव्य। धर्म उन शाश्वत विश्वव्यापी नैतिक कर्तव्यों का बोध कराता है जिसका किसी पंथ अथवा व्यक्ति से कोई विरोध नहीं है। यह उन शाश्वत मूल्यों का आख्यान है जो मानव समाज की सत्ता एवं व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। इसलिए भारत के ऋषियों ने कहा कि धर्म वह शाश्वत तत्त्व है जो समाज को धारण कर रहा है। **'धर्मो धारयते प्रजा'।** उदाहरणार्थ—यदि एक विद्यालय में प्राचार्य अपने धर्म (कर्तव्य) का उचित पालन करे, अध्यापक अपने-अपने कर्तव्यों का उचित पालन करें, छात्र एवं आदेशपाल भी अपने धर्म में सचेष्ट रहें तो उस विद्यालय की स्थिति एवं व्यवस्था बनी रहेगी। यदि उस विद्यालय में से धर्म तत्त्व को निकाल दिया जाए

अर्थात् न प्राचार्य अपना कर्तव्य पालन करे, न शिक्षक, न छात्र, न आदेशपाल तो वह विद्यालय एक क्षणभर में विनष्ट हो जाएगा। अतः स्पष्ट हुआ कि विद्यालय की स्थिति न ईंटों पर निर्भर है, न फर्नीचर पर और न किसी दफ्तर के कागज, फाइलों पर। विद्यालय की वास्तविक स्थिति तो कर्तव्य पर है। कर्तव्यपरायण गुरु और श्रद्धापरायण शिष्य भारत के प्राचीन गुरुकुलों में जंगल में वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ी-बड़ी ज्ञान साधनायें कर पाये थे और महान् ग्रंथों की रचना कर सके थे। आज देश की 110 यूनिवर्सिटी और संसार के हजारों विश्वविद्यालय बड़े-बड़े वैभवशाली भवन, ऊंचे वेतन वाले प्राध्यापक और वैभवशाली वेश-भूषा पहने छात्र होने पर भी कर्तव्य भावना के अभाव से शिक्षा या ज्ञान में विशेष प्रगति नहीं हो रही है। इसी प्रकार यदि परिवार, पिता-माता, पुत्र-पुत्री, सेवक-स्वामी सभी अपने-अपने कर्तव्यों का उचित पालन करें तो परिवार टिका रहेगा अन्यथा धर्म के लोप से परिवार क्षणभर में ध्वस्त हो जाएगा। इसी प्रकार समाज, राज्य, राष्ट्र और मानवता सभी धर्म तत्त्व पर टिके हुए हैं।

धर्म शब्द संस्कृत भाषा का है और Religion आंग्ल भाषा का। मार्क्स Religion शब्द से परिचित था धर्म से नहीं। Religion पंथ या सम्प्रदाय जो किसी व्यक्तिविशेष द्वारा किसी देशविशेष में किसी तिथिविशेष को स्थापित किया जाता है। इसमें एक पैगम्बर (धर्म संस्थापक या ईश्वर का देवदूत), एक धर्म पुस्तक और एक धार्मिक विश्वास अनिवार्य है। One Prophet One book and one dogma. धर्म में किसी व्यक्ति, देश-काल, पात्र, पुस्तक और विश्वास की अनिवार्यता नहीं है। इसलिए धर्म सारी मानवता का एक ही है, पंथ अनेक हो सकते हैं। धर्म व्यक्तियों द्वारा स्थापित न होकर व्यक्तियों एवं समाजों की स्थापना का कारण बनता है। पंथ किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित होने के कारण संस्थापक के जन्म अथवा प्रेरणा से पहले अस्तित्व में नहीं रहता। स्वाभाविक रूप से ईसा के माता-पिता एवं पूर्वज ईसाई नहीं हो सकते और मुहम्मद के बाप-दादा मुहम्मदी नहीं। इसकी तुलना में हिन्दू धर्म पंथ नहीं धर्म है। यह राम-कृष्ण की कृति नहीं वरन् राम कृष्ण हिन्दू धर्म की फुलवारी के सुन्दरतम फूल हैं। इस प्रकार हिन्दू धर्म का कोई भी व्यक्ति संस्थापक सिद्ध नहीं होता। इसलिए इसे सनातन धर्म, शाश्वत धर्म या Eternal Religion कहा जाता है।

सारी धार्मिक असहिष्णुता पंथों से पैदा होती है, धर्म से नहीं। कट्टरपंथी, अंधविश्वासी, मजहबी लोग दूसरे पंथों को गाली देकर काफिर या नास्तिक कहते हैं। इसी घृणा के बीज से संघर्ष, रक्तपात युद्ध-महायुद्ध और जेहाद प्रस्फुटित होता है। धर्म सारी मानवता का एक है। उसे सनातन धर्म, मानव धर्म या हिन्दुस्तान में प्रकट होने के कारण हिन्दू धर्म भी कहा जाता है। जिसका किसी से स्वार्थ संघर्ष

नहीं। इसलिए हिन्दू ने धर्म के नाम पर किसी का धर्म नहीं लूटा, न धन, न देश, न आजादी और न मां-बहनों की इज्जत लूटी। हिन्दू सर्वधर्म समभाव में विश्वास रखता है। उसका विश्वास है कि भिन्न-भिन्न पंथ एक ही लक्ष्य की ओर जाने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, भवसागर से तरने के लिए भिन्न-भिन्न नौकायें हैं। अतः उनमें स्पर्धा या झगड़ा करना मूर्खता है। पंथानुयायी अपने पंथ को ठीक और अन्य पंथों को गलत बता देते हैं। अपने को Church of God और दूसरों को शैतान का चर्च कहते हैं। अपने को धार्मिक और दूसरों को काफिर कहकर उसके सर्वनाश के लिए महायुद्ध छेड़ते हैं। दुर्भाग्य से मार्क्स को केवल पंथों का ही परिचय प्राप्त हुआ। धर्म जैसे विश्वव्यापी लोकतांत्रिक एवं तर्कसम्मत कर्तव्य विधान का परिचय प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए उसकी सारी आलोचना ईसाइयत और इस्लाम की आलोचना है। हिन्दू धर्म की नहीं।

कट्टरपंथी-मजहबी लोग अपने पंथ की बड़ाई और दूसरों की निंदा करने में अनजाने में ही अपने पंथ की निंदा कर बैठते हैं। जब वे कहते हैं जो ईसा या मुहम्मद का मार्ग नहीं मानेंगे तो उन्हें नरक की अग्नि में जलना पड़ेगा, तब वे भूल जाते हैं कि वे अपने ही पैगम्बरों के माई-बाप एवं समस्त पूर्वजों को नरक की अग्नि में धकेल रहे हैं क्योंकि वे किसी भी तर्क से ईसाई या मुसलमान नहीं हो सकते हैं।

मार्क्स ने यूरोप में पोप की पाखण्ड लीला का बड़ा घृणित रूप देखा था। इसलिए एक समाज सुधारक के नाते उसे उसका विरोध करना पड़ा। वह उचित ही था। उसे वेद, गीता और उपनिषदों के विश्व कल्याणकारी धर्म का ज्ञान ही नहीं था। इसलिए उसकी आलोचना एकांगी है।

मार्क्स अर्थशास्त्री था, धर्मशास्त्री नहीं। जब उसने धर्म का अध्ययन ही नहीं किया तो धर्म की आलोचना का उसे कोई अधिकार हो ही नहीं सकता। समालोचना का अर्थ है सम्यक् प्रकार से विषय या तत्त्व को देखना। लोचन का अर्थ है नेत्र जिससे देखा जाता है। जब मार्क्स ने आंख खोलकर धर्म का अध्ययन ही नहीं किया तो उसे आलोचना का नश्तर चलाने का क्या अधिकार है? सर्जन आंख खोल कर रोगी के शरीर को देखता है फिर नश्तर चलाकर रुग्ण भाग का ऑपरेशन करता है। जिसने शरीर विज्ञान, औषधि विज्ञान, शल्य चिकित्सा का अध्ययन ही नहीं किया, आँख खोलकर रोगी के रोग को देखा ही नहीं और ऑपरेशन का नश्तर चला दिया, वह एक अपराधपूर्ण कर्म करता है। इस दृष्टि से मार्क्स की धर्म आलोचना त्रुटिपूर्ण एवं अपराधपूर्ण है।

मार्क्स ने यूरोप में प्रचलित रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों की आलोचना की है जो क्षम्य एवं स्वीकार्य हो सकती हैं। किन्तु, यह धर्म की समग्र आलोचना नहीं

मानी जा सकती। नाक पर मक्खी बैठने से मक्खी उड़ाना अनिवार्य कर्तव्य है, किन्तु नाक को उड़ा देना मूर्खता है। धर्म या पंथ में जो कुछ पाप-पाखण्ड लीला घुस आई थी उसकी आलोचना जैसे वाईक्लिफ, मार्टिन लूथर, कबीर, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द आदि ने की वह तो धर्म एवं समाजसेवा समझी जा सकती है। किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक चले आते हुए धर्म को ही जड़मूल से उखाड़ने की बात न धर्म की सेवा है न समाज की सेवा है।

मार्क्स ने धर्म के रुग्ण स्वरूप को देखा, स्वस्थ स्वरूप को नहीं। न उसने प्रह्लाद की अविचल निष्ठा का परिचय प्राप्त किया न ध्रुव के अटल विश्वास का, न हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा का, न शिवि के त्याग का, न दधीचि के बलिदान का, न राम की तपस्या का, न भरत के भ्रातृत्व प्रेम का, न सीता के सतीत्व का, न सावित्री के सती धर्म का, न कृष्ण की यज्ञमय जीवनभावना का, न बुद्ध की करुणा का, न महावीर की जीवदया का, न चाणक्य की निष्काम राष्ट्रभक्ति का, न शंकराचार्य के निर्मल विवेक से प्रमाणित विश्वव्यापी अद्वैत तत्त्व का, न पतंजलि के योगदर्शन का, न गौतम के न्यायदर्शन का, न चैतन्य प्रभु की अलौकिक भक्ति का, न कबीर, नानक और तुलसीदास के ईश्वर प्रेम का, न मीरा, सूर, रसखान की हृदयस्पर्शी भक्तिभावना का—ये सब ऐसे दिव्य चरित्र हैं जिनसे सारी मानवता का मुख उज्ज्वल है। यदि मार्क्स को इनका परिचय होता और वह धर्म के स्वस्थरूप का विधिवत अध्ययन करता तो निश्चय ही वह ऐसी आलोचना कथमपि नहीं करता।

यदि कोई राजा किसी रुग्णालय में सभी रोगी लोगों को रोगग्रस्त देखकर यह सोचे कि सभी मानव असाध्य रोगों से पीड़ित है, इसलिए सब मानवों को तोप के गोलों से उड़ा दिया जाए तो उस मूर्ख राजा को स्वयं भी तोप के गोलों का शिकार बनना पड़ेगा क्योंकि वह स्वयं भी मानव है। मार्क्स ने धर्म के विकृत रूप, रुग्ण रूप को देखकर स्वस्थ धर्म को देखे बिना ही समस्त धर्मों को नष्ट करने की घोषणा कर दी।

मार्क्स मूलतः जड़वादी है। जड़वादी से भी बढ़कर अर्थवादी है। अतः वह चेतना की व्याख्या जड़ से करता है और धर्म की व्याख्या अर्थ से करता है।

पश्चिम में मध्यकालीन ईसाई पंथ अर्थलाभ की पाखण्ड लीला के लिए बदनाम था। किन्तु समस्त धर्म को अर्थ का कृतदास बना देना घोर अन्याय है। भारत में ऋषियों ने कहा धर्म और अर्थ की टक्कर होने पर धर्म के लिए अर्थ को ठुकरा दें। राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए राज्य, सम्पत्ति, पत्नी, परिवार सभी का त्याग किया। भगवान् राम ने धर्म के लिए राज्य त्याग दिया। पाण्डवों की तपस्या क्या अर्थ के लिए थी? या अर्थ त्याग की थी। बुद्ध और महावीर ने धर्म के लिए

राज्य को त्यागा। सम्राट् अशोक धर्म के लिए सारे भारत के निष्कंटक राज्य को त्यागकर अशोक महान् बना। चाणक्य सारे भारत का अखण्ड साम्राज्य निर्माण करके भी स्वयं फूस की झोपड़ी में रहता और राज्य के खर्चे का एक बूंद तेल भी निजी कार्य के लिए प्रयोग करने को पाप समझता था। राजा हर्ष अपने राजकोष का सारा धन (अपने शरीर के वस्त्र एवं मुकुट तक) प्रयागराज में दान कर अपनी बहन राज्यश्री से एक धोती मांगकर पुनः घर लौटता। राणा प्रताप ने धर्म के लिए राज्य, वैभव विलास, सोने-चांदी के पात्र एवं राज्यश्री का भोग त्यागकर अरावली पर्वत की टेकरियों में वनवासी का जीवन बिताया। घास की रोटी खाना स्वीकार किया। हकीकतराय ने धर्म के लिए प्राणदान दिया। गुरु गोविन्दसिंह के नन्हे बच्चे दीवारों में चुने गए। जबकि ईसा ने कौन-सा अर्थसंग्रह करने के लिए पंथ चलाया? पादरियों के कुकर्म देखकर ईसा के धर्म को दोषी बताना अन्याय है। भारत की उज्ज्वल धर्मपरम्परा मार्क्स के कथन को नितान्त भ्रामक सिद्ध करती है। काल के बीतने के साथ मानव की मानसिक दुर्बलता के कारण धर्मों एवं पंथों में कई विकृत रूढियां अवश्य आ जाती है। किन्तु रूढि को ही धर्म मानकर पूरे धर्म को तोप का पलीता लगाना अन्याय है। धर्म अर्थ का दास नहीं वरन् अर्थ की दासता से मुक्ति का मार्ग है। सामान्य लोग अर्थ के दास हैं। इसलिए अर्थ के लिए बड़े-बड़े अनर्थ करते रहते हैं। किन्तु, धर्म का प्रकाश मिलने पर मानव अर्थ को विश्व कल्याण के लिए त्यागकर यज्ञमय जीवन जीने लगता है।

भारतीय धर्म कहता है कि मानव अर्थ का स्वामी नहीं वरन् Trustee है। एक ईमानदार न्यासी के रूप में उसे अर्थ का स्वयं के निजी कल्याण, पारिवारिक कल्याण, जाति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व कल्याण के लिए अच्छे से अच्छा सदुपयोग करना चाहिए। तथा न दाता का अहंकार रखना चाहिए न सत् कर्म के फल का लोभ-लालच। ऐसा आदर्श धर्मपरायण अर्थ-लोभ से मुक्त यज्ञमय जीवन जीने वाला निष्काम कर्मयोगी मार्क्स की कल्पना में भी नहीं था। अर्थ मनुष्य को स्वार्थी बनाता है और धर्म निःस्वार्थी एवं परमार्थी। यदि मानवता के लम्बे इतिहास में मनुष्य के पास धर्म का प्रकाश न होता तो सम्भवतः पग-पग पर स्वार्थों के संघर्ष में परस्पर हिंसा, हत्या करते-करते मानवता के सर्वनाश की घड़ी आ जाती। मानवता को बचाने वाले धर्म को ही नष्ट करने वाला मानवता का सबसे बड़ा हत्यारा बन जाता है।

भारत के ऋषियों ने चेतावनी दी है 'धर्मविहीनं अर्थमनर्थम्। हमारा सूत्र है यज्ञविहीनम् अर्थं व्यर्थम्। यदि अर्थ पर धर्म का अंकुश न रहे तो अनर्थ बन जाता है। मार्क्स की अर्थ की सर्वोच्च महत्ता से प्रभावित होकर ही आधुनिक पाश्चात्य अर्थशास्त्र तीन मान्यताएं लेकर चलता है—

(क) Money is the sole goal of life. अर्थ ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।

(ख) Every man is born selfish.

(ग) In the whole study of economics ethics has no interference अर्थशास्त्र के पूरे अध्ययन में धर्मशास्त्र (नीतिशास्त्र) का कोई दखल नहीं। इसी आधार पर लन्दन विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के अध्यक्ष Dr. Benham ने एक पुस्तक लिखी Economics of Prostitution जिसमें वह यह प्रतिपादित करता है कि वेश्यावृत्ति का धंधा एक माता या पत्नी के कार्य की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है। मार्क्स अर्थ को अनावश्यक रूप से अधिक महत्त्व देकर मानव को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में लूटपाट, हिंसा, हत्या, व्यभिचार एवं भ्रष्टाचार के लिए भड़का रहा है।

पूँजीवाद का समर्थन भारतीय धर्मशास्त्र भी नहीं करते। किन्तु अन्न एवं धन के वितरण के लिए वे मार्क्सवादी लूटपाट एवं हत्या व हिंसा का मार्ग भी नहीं बताते।

वेद में कहा है—कंजूस व्यक्ति व्यर्थ में अन्न भण्डार जमा कर रहा है। मैं सच कहता हूं इसी में उसकी मृत्यु छिपी है। न वह अतिथि को खिलाता है न मित्र को। निश्चय ही वह केवल स्वयं खाता है वह पाप ही खाता है। इसी भाव को गीता ने कहा है—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। 3/13, गीता

अर्थात् जो केवल अपने लिए ही पकाते हैं वे केवल पाप ही खाते हैं। श्रीमद् भागवत महापुराण में कहा है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्यते स स्तेनो दण्डमर्हति।। 7/14/8, भागवत

अर्थात् जितने से मनुष्य का पेट भर जाए उतना ही उसका अधिकार है। इससे अधिक पर जो अधिकार मांगता है, वह चोर है। स्पष्ट है कि साम्ययोग का जो आध्यात्मिक दर्शन भारत ने दिया है वह सत्य, अहिंसा, उदारता, यज्ञ भावना पर आधारित है। उससे राम राज्य का निर्माण होता है, कम्युनिस्ट हिंसक राज्य का नहीं। चोरी, लूटपाट का धन अनर्थ है और कंजूस (अर्थ संग्रही), पूँजीपति का धन व्यर्थ है। अर्थ न अनर्थ होना चाहिए न व्यर्थ। अर्थ सार्थक होना चाहिए। अर्थ को धर्म से कमावें और यज्ञ भाग में लगावें। भारत के इस अर्थ दर्शन के सामने मार्क्स का धर्म दर्शन, अर्थ दर्शन, नीति दर्शन बहुत क्षुद्र प्रतीत होता है।

उसके दर्शन में अर्थ ही राजा है, राजनीति पटरानी है। धर्म उसका दास और नैतिकता दासी है।

मार्क्स ने नैतिकता को अर्थ की रखेल बनाकर नैतिकता का भयंकर अपमान किया है। यदि नैतिकता सदा अर्थ की दया पर ही जीवित रहती है तो वह सदा बदलने वाली, पैसे पर बिकने वाली वेश्या जैसी बन जाएगी। परिणामतः कोई विश्वव्यापी एवं शाश्वत नैतिक नियम नहीं बचेगा। मार्क्स कहता है नैतिक मूल्य पुराने जमाने के खोटे बाट-माप हैं जो आज निरुपयोगी सिद्ध हो चुकी है। इसका अर्थ है जो कल नैतिक था वह आज अनैतिक हो जाएगा और जो आज मार्क्स के समय नैतिक होगा वह मार्क्स के चेलों के समय अनैतिक बन जाएगा। यदि नैतिकता इतनी कच्ची भित्ति (नींव) पर खड़ी है तो उस भित्ति पर समाज का भवन कब तक खड़ा रह सकता है। नैतिक नियम विश्वव्यापी, शाश्वत और चिरस्थायी होने चाहिए। अर्थ प्रलोभन एवं भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा माध्यम है। यदि नैतिकता उसकी दया पर हो तो प्रलोभन और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने वाली नैतिकता कहां से आएगी?

नैतिकता मानव के अन्तःकरण से स्वतःस्फूर्त होनी चाहिए। यह पुलिस, प्रशासन, राजदण्ड अथवा किसी अधिनायक के आदेश से थोपी नहीं जा सकती। पुलिस के दण्ड से लोगों को सदाचारी नहीं बनाया जा सकता। यदि प्रयास किया जाए तो हर व्यक्ति के लिए उसके क्रियाकलाप पर नजर रखने वाला एक-एक पुलिस कान्सटेबिल चाहिए। इस तरह देश की आधी जनता को पुलिस का कार्य करना पड़ेगा। फिर जो पुलिस के सिपाही हैं वे भी देश के नागरिक हैं। उनके ऊपर नियंत्रण रखने के लिए और करोड़ों पुलिस के सिपाही चाहिए। इस प्रकार उत्तरोत्तर सिपाहियों की संख्या बढ़ती जाएगी और नैतिकता घटती जाएगी। सारा देश पुलिस प्रशासन बन जाएगा। संगीनों द्वारा जनता पर नैतिकता नहीं लादी जा सकती।

भारतीय नीतिकारों एवं पश्चिम के नीतिकारों में काण्ट, ब्रैडले, ग्रीन आदि ने यह ठीक ही कहा है कि नैतिक नियम अन्तःस्फूर्त होता है बाहर से लादा हुआ नहीं। नैतिक नियम की चेतना Moral sense या नैतिक चेतना कहलाती है। यह प्रत्येक मनुष्य में जन्मजात होती है। बाहर से सीखी-सिखाई हुई या अर्जित नहीं। मार्क्स जब चेतना को नहीं मानता तो नैतिक चेतना का स्थान कहां बचता है? जड़ वस्तु न स्वयं को जानती है न अन्यों के सम्बन्ध को जानती है। न जड़ चेतन के सम्बन्धों को जानती है न चेतन चेतन के सम्बन्धों को जानती है। चेतन वस्तु जड़ को भी जानती है, जड़ जड़ के सम्बन्ध को जानती है, जड़ चेतन के सम्बन्ध को जानती है और अपने आपको भी जानती है। चेतना ठीक और गलत को भी जानती है और नैतिक-अनैतिक का विवेक भी रखती है और सत्-असत् का भी विवेक रखती है।

(क) सामान्य चेतना—जड़ का ज्ञान, जड़-जड़, जड़ चेतन, चेतन-चेतन वस्तु का ज्ञान

(ख) मानसिक चेतना—दु:ख सुख का ज्ञान

(ग) बौद्धिक चेतना—ठीक-गलत का ज्ञान, तर्कज्ञान और अनुभूतिज्ञान

(घ) नैतिक चेतना—नैतिक-अनैतिक का ज्ञान

(ङ) आध्यात्मिक चेतना—सत्-असत् का ज्ञान, आत्मज्ञान

इस प्रकार Animality, Mentality, rationality, morality and spiritulity सभी चेतना के विकास के क्रमिक स्तर हैं। चूंकि मार्क्स के जड़वाद में चेतना का कोई बीज ही नहीं इसलिए नैतिक चेतना का कोई स्थान ही बाकी नहीं बचता। पर चूंकि नैतिकता के बिना समाज चल ही नहीं सकता इसलिए मार्क्स नैतिकता का कोई आधार खोजता है। मार्क्स के पास दो ही आधार शेष बचते हैं। एक अर्थ और दूसरा प्रशासन का डण्डा। अर्थ के द्वारा मनुष्य को प्रलोभन दिया जा सकता है और प्रशासन द्वारा भय दिखाया जा सकता है। ये दोनों ही भौतिक साधन मानव मन को विकृत करने वाले हैं। प्रलोभन से मनुष्य सिद्धान्तहीन, भ्रष्टाचारी बन जाता है और भय द्वारा वह पराधीन, पंगु पशु जैसा बन जाता है। सच्चा मानव वही है जो न प्रलोभन पर बिके और न भय के सामने झुके। सच्ची नैतिकता भी प्रलोभन निरपेक्ष एवं भयमुक्त होनी चाहिए। मार्क्स के दर्शन में ऐसी नैतिकता का कोई तार्किक आधार ही नहीं बचता।

नीतिशास्त्र पश्चिमी परिपाटी की दर्शनधारा है। प्राचीन भारत में भी नैतिक मूल्यों की विशद् चर्चा हुई। किन्तु यह सब धर्म के अंग के रूप में ही हुई है। हमारा धर्म शब्द नैतिक सदाचार का ही परिचायक है। महर्षि कणाद ने धर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है—

यतो अभ्युदयनि:श्रेयससिद्धिः स धर्मः।

अर्थात् जिसके द्वारा इहलोक में अभ्युदय (सामूहिक विकास, उन्नति) एवं परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति हो, वही धर्म है। इहलोक में मानव के सद्व्यवहार के नियमों को नैतिक नियम कहा जाता है। इसे ही वेद में 'ऋतम्' महाभारत में धर्म, संतों ने नीति एवं पश्चिमी दर्शन में Ethics या Science of Morality कहा गया है। धर्म का दूसरा पक्ष है परम निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति का। इसके लिए भिन्न-भिन्न धार्मिक एवं साम्प्रदायिक साधनाएं बतायी गयी हैं। इस प्रकार नैतिकता जहां मुख्य रूप से इहलोक में सद्व्यवहार के लिए अनिवार्य है वहां मत-मजहब आदि परलोक में परमशांति की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। मार्क्स नैतिकता का तिरस्कर्ता एवं धर्म का वैरी है। मानव इतिहास साक्षी है कि सभी नैतिक मूल्य

सर्वप्रथम धर्म की गोदी में ही पले। वेद में उपदेश दिया—'सत्यं वद। धर्मं चर। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।' आदि। इस प्रकार मानवता के शैशव में धर्म एवं भिन्न-भिन्न मजहबों ने मानव समाज को नैतिक मूल्यों की घुट्टी पिलायी। यदि धर्म तथा भिन्न-भिन्न मजहबों ने प्रारम्भ से अभी तक मानवता को नैतिकता एवं सदाचार सिखाकर घोर संकटों एवं प्रलोभनों की आंधी में जीवित एवं सुरक्षित रखा है अब वही धर्म मानवता को विष देकर मार तो नहीं देगा! जन्म देने वाली माता और पालने वाली धाय कभी भी अपने पालित पुत्र को विष नहीं दे सकती। जड़ की गोदी में कोई नैतिक नियम न जन्मता है और न फलता-फूलता है। चरित्र का मूल्य किसी भी भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त से सिद्ध नहीं किया जा सकता। किन्तु इसका मूल्य विश्व इतिहास में स्वत:सिद्ध है। नैतिक मूल्य भिन्न-भिन्न धर्मों की फुलवारी में खिलते हैं। धर्म शब्द से ही मार्क्स को भयंकर चिढ़ है। इसलिए कम्यूनिज्म में अनैतिकता का बोलबाला हो जाता है।

रूस के मनोवैज्ञानिकों ने अब यह कहना शुरू किया है कि काम सम्भोग कोई पाप न होकर वैसी ही सामान्य शारीरिक मानसिक क्षुधापूर्ति जैसा विषय है। जैसे प्यास लगने पर पानी का गिलास पीना। इस प्रकार की अनैतिक एवं मर्यादाविहीन विचार-सारणी से स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ने वाले युवक-युवती में खुलकर यौन-भ्रष्टाचार चल रहा है। 10 प्रतिशत के लगभग कुंवारियों का कौमार्य सुरक्षित नहीं। 40 प्रतिशत से अधिक युवक-युवतियां यौन रोगों से ग्रस्त हैं।

नैतिकता की, धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा परिवार में ही होती है। अत: यदि व्यक्तिगत परिवार को ही उजाड़ दिया गया तो नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का श्रेष्ठतम पालना नष्ट हो जाएगा।

व्यक्तिगत परिवार की पवित्रता ही चरित्र एवं सतीत्व को मूल्य प्रदान करती है। यदि व्यक्तिगत परिवार ही नहीं बचा तो स्त्री-पुरुषों का निर्बन्ध संभोग भोगविलास की पाशविकलीला बन जाएगा। तब मानव समाज में Human Husbandry चलने लगेगी।

लैनिन ने रूस के पेरिस में कम्यून (Commune) का प्रयोग किया। किन्तु उसके परिणाम बड़े भयंकर निकले। 75 प्रतिशत बच्चों को यौन रोग लग गया तथा पूरा समाज व्यभिचार एवं हिंसा की अग्नि में जलने लगा। इसलिए यह प्रयोग बंद करना पड़ा।

मार्क्स समाजवाद या साम्यवाद के लिए समता को आवश्यक मूल्य मानता है। किन्तु इस समता के दर्शन का आधार क्या है? डॉ. राममनोहर लोहिया (प्रसिद्ध समाजवादी विचारक) स्वीकार करते हैं कि समता का आधार नैतिक

एवं आध्यात्मिक ही होना चाहिए। केवल पैसे की समानता, पद की समानता या प्रशासन के दण्ड द्वारा लादी गई समानता स्थायी एवं सच्ची समानता नहीं हो सकती है। उन्होंने कहा कि गीता ही हमें समता का सच्चा दर्शन प्रदान करती है—

दु:ख-सुख में समान
हानि-लाभ में समान
निन्दा-स्तुति में समान
मित्र-शत्रु में समान
परिस्थिति की समानता
अन्त:स्थिति की समानता
जन में समानता
वर्णों में समानता
आश्रमों में समानता
चाण्डाल और ब्राह्मण में समानता
नर के भीतर नारायण देखकर मानवमात्र की समानता
जीव के भीतर शिव का दर्शन कर जीवमात्र की समानता
जड़-चेतन में एक तत्त्व देखकर अद्वैत की समानता।

इस प्रकार समता के लिए जो आध्यात्मिक आयाम चाहिए वे मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन में नहीं हैं। समता की साधना मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक साधना है। मात्र कम्यूनिज्म का नारा या रूसी डिक्टेटरशिप का डण्डा समता नहीं ला सकता। इसी कारण सन् 1914 से 1981 तक पिछले 63 वर्षों में आज तक रूस में समता या समानता स्थापित नहीं हो सकी। वहां वेतनमानों में अभी तक एक और बीस का अन्तर है।

क्रान्ति लाने के लिए जिस रक्त क्रान्ति का प्रचार मार्क्स ने किया है उसके दुष्परिणाम बड़े भयंकर हैं। सन् 1905 एवं 1919 की रक्त क्रान्तियों में रूस में लगभग 1 करोड़ लोग मारे गए। क्या रूस में मरने वाले वे एक करोड़ पूँजीपति थे? एक करोड़ पूँजीपति तो आज भी सारे विश्व में नहीं होंगे। वास्तव में गरीबों के हित के नाम पर किए जाने वाले इन नरसंहारों में अधिकांशत: गरीबों का ही नरसंहार होता है। मानव-जाति के इतिहास में गरीब मजदूर का राज्य लाने के नाम पर जितनी जनसाधारण की हत्यायें समाजवादी देशों में हुई हैं उतनी किसी चंगेज, हलाकू, नादिरशाह या याहियाखान ने भी नहीं की होगी।

स्वयं रूस में भी जो कम्यूनिज्म का सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय महातीर्थ है अभी तक धर्म एवं धर्मस्थान वर्तमान हैं क्योंकि प्रशासन के दण्ड द्वारा धर्म या मजहब

को कभी भी नहीं मिटाया जा सका है। जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तब शासन के आदेश से सभी गिरजाघरों में रूस की विजय के लिए प्रार्थनाएँ की गई।

धर्म गरीब का अवलम्बन और दु:खियों का सहारा है। यदि यह भी न रहे तो मानव मन को भयंकर आघात लगेगा और अनेकों लोग हृदय के अपघात अथवा आत्महत्या द्वारा समाप्त हो जाएंगे। जब तक मार्क्स की कल्पना का समाजवाद स्थापित नहीं होता तब तक धर्म की आवश्यकता बनी ही रहेगी क्योंकि पता नहीं मार्क्स का समाजवाद कितनी शताब्दियों बाद आएगा या आएगा भी या नहीं। तब तक दु:खी मानवता से धर्म का सहारा भी छीन लेना कितना बड़ा अन्याय एवं अपराध होगा। अन्धे व्यक्ति को यदि नेत्रों की ज्योति न दे सकें और जब तक ऑपरेशन द्वारा ज्योति लौटकर नहीं आती तब तक अन्धे की लाठी भी छीन लेना कितना बड़ा अन्याय है। चाहे उसे काल्पनिक सुख मिले या असली। सुख मिलता तो है ही। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा कि जब तक किसी व्यक्ति की ऊंची श्रद्धा विकसित नहीं होती तब तक उससे पहले वाली निचली श्रद्धा छीन लेना उसकी हत्या करने के बराबर है। इस दृष्टि से मार्क्स निर्धन, असहाय जनता का हत्यारा बन जाता है। धर्म से मिलने वाली शांति तो युगों के अनुभव से प्रमाणित है। मार्क्स के कम्यूनिज्म से मिलने वाली शांति अभी प्रयोगशाला की परखनली में ही सीमित है। वह इतिहास में सिद्ध-प्रसिद्ध नहीं हुई।

ईश्वर का सगुण-साकार और व्यक्ति रूप कुछ पंथों में प्रतिष्ठित है। किन्तु सभी में नहीं है। जैन समाज, बौद्ध समाज, आर्य समाज और सिक्ख समाज सगुण साकार देहधारी ईश्वर को नहीं मानता। जैन समाज सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं मानता परन्तु आदर्श रूप ईश्वर को मानता हैं। बौद्ध समाज ईश्वर की सत्ता के विषय में मौन है। आर्य समाज ईश्वर को मानता है किन्तु निराकार रूप में ही। सिक्ख समाज भी निराकार ईश्वर को मानता है। अत: मार्क्स की आलोचना यदि ईश्वरवाद के विरुद्ध है तो भारत के कई धर्म उसकी आलोचना से मुक्त रहते हैं। अद्वैत वेदान्त भी मानव आत्मा से भिन्न किसी परमात्मा को नहीं मानता। अत: मार्क्स की आलोचना यहां खण्डित हो जाती है। आत्मा को अनन्त और परमसत् मानने वाले धर्मों पर मार्क्स की आलोचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस प्रकार मार्क्स का धर्मविचार त्रुटिपूर्ण, तर्कहीन, जल्दबाजी में शल्यक्रिया द्वारा गलत अंग काटने वाला, धर्म के रुग्ण रूप को ही धर्म मानकर समूचे धर्म के भवन को आग लगा देने वाला, नैतिकता को राजनीति की रखेल और अर्थ की वेश्या बना देने वाला, अगले कल्पित लक्ष्य तक पहुंचने से पहले ही पिछला प्रमाणित सहारा छीन लेने वाला और समाज में हत्या, हिंसा, अव्यवस्था, चरित्रहीनता, व्यक्तिगत स्वाधीनता एवं व्यक्तिगत परिवार का अपहरण करने वाला, रक्त क्रान्ति के हिंसक

गीत गाने वाला विकृत विचार है। इसलिए गांधीजी ने कहा है कि कम्यूनिज्म असमानता के रोग के लिए जो इलाज प्रस्तुत करता है वह रोग से भी अधिक भयंकर है। The Cure is worse than the disease.

मार्क्स तथा उसके प्रेरक फयूरबर्ग का आक्षेप है कि धर्म मानव में अन्यता भाव, आत्मविराग का भाव उत्पन्न करता है। यह कथन शुद्ध धर्म के विषय में तर्कहीन सिद्ध होता है। यदि ईश्वर की सत्ता मात्र कल्पना है तो मार्क्स का कथन कुछ मात्रा में ठीक माना जा सकता है। किन्तु यदि ईश्वर की सत्ता तर्क एवं तथ्य द्वारा प्रमाणित है तो धर्म से आत्मविराग या अन्यताभाव होने के स्थान पर ईश्वर के प्रति आकर्षण, आत्मीयता एवं अनन्यता भाव ही पैदा होगा। चैतन्य महाप्रभु, सूर और तुलसी का ईश्वर के प्रति जो प्रेम है क्या वह भय का भाव है या अनन्य भक्ति का भाव। मीरा बाई भगवान् से अनन्य प्रेम में अपना सब कुछ न्योछावर करने को प्रस्तुत हो जाती है। इसे अन्यताभाव कहना, कल्पित ईश्वर से भय का भाव कहना तर्क का नग्न-तिरस्कार ही है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ईश्वर मानव के ही कल्पित आदर्शों का मूर्तरूप है। किन्तु, यह व्याख्या तभी चल सकती है जब यह सिद्ध हो जाए कि ईश्वर की सत्ता वास्तव में नहीं है। वह मात्र मानव मन की कल्पना ही है। जैसे मानव मन के भूत की सत्ता केवल मानव के भीति भाव में ही है। जब ईश्वर सृष्टिकर्ता, व्यवस्था का नियामक, नैतिक नियम का नियामक, चैतन्य का स्रोत, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान, तर्क विवेक एवं तथ्य द्वारा सिद्ध होता है तब उसे मानव के कल्पित आदर्शों का मूर्त रूप नहीं कहा जा सकता। वह परम सत्य एवं सत्ता को सत्ता देने वाला है। जिसकी अनुसंधान साधना में केवल स्वप्नशील मूर्खों ने नहीं वरन् बुद्ध, शंकर, चैतन्य, तुलसी, ईसा, मुहम्मद जैसे संसार के महानतम महापुरुषों ने भी अपना जीवनसर्वस्व निछावर कर दिया। कल्पना के पीछे धन एवं प्राण लुटाने वाला तिरस्कृत मूर्ख होता है। किन्तु ईश्वर रूपी सत्य के लिए जीवन निछावर करने वाला महापुरुष मानवता का मुकुटमणि बनकर पूजित हुआ है। मार्क्स सारे मानव इतिहास को झुठलाना चाहता है। या तो कल्पित आदर्शों के लिए जीवन की बाजी लगाने वाले सब महापुरुष मूर्ख और पागल थे या उनको मार्क्स के पागलखाने की हवा खानी पड़ेगी।

धर्म को अफीम की गोली कहना भी तर्कहीन व्याख्या है। मार्क्स ने ईसाई पंथ द्वारा ठगे हुए लोगों को देखा था जो पोप के अत्याचार को सहकर भी धर्मगुरु के शाप या पोप के भयंकर दण्ड के भय से विद्रोह या क्रान्ति नहीं कर सकते थे। कुछ लोग दु:ख को ईश्वरेच्छा मानकर भी सहते रहते थे। उन्हीं घटिया लोगों के आचरण को देखकर मार्क्स ने धर्म को अफीम की गोली कह दिया। वास्तव

में धर्म मनुष्य को धर्मपालन (कर्तव्य पालन) सिखाता है, कर्तव्य का त्याग या अकर्मण्यता नहीं। सच्चा धर्म मनुष्य को आशावादी बनाता है, निराशावादी नहीं। भाग्यवाद, देववाद एवं प्रारब्धवाद धर्म नहीं वरन् धर्म की घटिया व्याख्याएं हैं।

निश्चेष्ट होकर बैठे रहना यह महान् दुष्कर्म है। न्यायार्थ अपने बंधु को भी दण्ड देना धर्म है। दुर्भाग्य से मार्क्स गीता के कर्मशील धर्मोपदेश से परिचित नहीं था।

कर्म में मजदूर भावना और कर्मफल त्याग की भावना में बड़ा अन्तर है। एक स्वार्थ भावना है दूसरी यज्ञार्थ भावना। एक सकाम कर्म साधना है दूसरी निष्काम कर्म साधना है। दोनों के दो भिन्न स्तर हैं। कोई भी धर्म यह उपदेश नहीं करता कि कर्ता को फल और मजदूर को मजदूरी नहीं मिलनी चाहिए वरन् सभी धर्म एवं मजहब यही उपदेश करते हैं—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा।।
अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

नैतिक न्याय की तुला में कर्म और उसका फल बराबर तौलना चाहिए। किसी मजदूर को मजदूरी से वंचित करना निश्चय ही शोषण एवं अन्याय है। किन्तु मानव का, मानव के विकास का एक मजदूर से भी ऊंचा स्तर है। उसमें कोई उसे मजदूरी से वंचित करने के लिए नहीं कहता। किन्तु वह नैतिक परिपक्वता में यह स्वयं अनुभव करता है कि उसके कर्मों का फल केवल उसके अपने स्वार्थ के लिए ही न होकर यज्ञार्थ भाव से सारे समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए। अतः जब उसकी मानवता इस स्तर तक विकसित हो जाती है तब वह स्वेच्छा से अपने समस्त कर्मों का फल विश्व कल्याण के लिए समर्पित करने को प्रस्तुत हो जाता है। मानव की इस देवोपम त्याग भावना को शोषण कहना बुद्धि का दिवालियापन है। शोषण आततायी द्वारा अन्यायपूर्वक मजदूरी छीनकर किया जाता है। यज्ञार्थ समर्पण कर्ता की स्वेच्छा से उसके सहज आनन्द के साथ अपने सुख को अनेक लोगों में बांटकर अनेक गुणा आनन्दित होकर किया जाता है।

मजदूर मजे से दूर, कर्मयोगी आनन्द से भरपूर।

सच्चा धर्म मनुष्य को अकर्मण्य नहीं बनाता। भगवान् श्रीकृष्ण ने अकर्मण्य अर्जुन को शस्त्र उठाकर कर्म करने का उपदेश दिया। समर्थ स्वामी रामदासजी ने शिवाजी को, गुरु गोविन्द सिंह ने बंदा वैरागी को धर्मोपदेश से कर्मवीर बनाया। मध्यकालीन संतों में कुछ अकर्मण्यता का भाव आ गया था किन्तु वह धर्म का स्वस्थ रूप न होकर रुग्ण रूप ही था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि धर्म में श्रद्धा, विश्वास आदि का एक विशिष्ट स्थान है। किन्तु, समस्त धर्म को अंधविश्वासी कहना भी गलत है। हिन्दू धर्म का एक पुष्ट दार्शनिक आधार है जो इसे अन्य धर्मों से पृथक् एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। कक्षा के कुछ विद्यार्थियों के नालायक होने पर सबको मूर्ख मान लेना अन्याय है। डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है—Hinduism is a open laboratory in dominion of the spirit. अर्थात् हिन्दू धर्म अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है। ईसाइयत की प्रयोगशाला 1981 वर्ष पहले बंद हो चुकी है। बाइबिल के एक भी शब्द पर तर्क-वितर्क करने की अनुमति किसी ईसाई को नहीं है। धरती को गोल कहने वाले गैलिलियो को जीवन भर जेल में सताया गया। कोपरनिकस को डराया गया। Zeno को घर समेत जलाया गया। Bruno को चौराहे पर जीवित जलाया गया। सिर्फ इसलिए कि ईसाइयों का अंध-विश्वास धरती को चपटा मानता था। किन्तु भारत में वेद में ही भूमि को गोल मानते हुए भूगोल शब्द प्रयोग हुआ है। इससे सब धर्मों को अंध-विश्वास पर आधारित नहीं कहा जा सकता। मतिभ्रम का आक्षेप भी स्वस्थ, तर्कसम्मत धर्म पर लागू नहीं होता। इन्द्रियज्ञान से जो जड़ जगत् सत् प्रतीत होता है वह तीनों कालों में एकसमान न रहने वाला, विकारशील एवं विनाशी है। जो इसकी तीनों कालों में परिवर्तन एवं विनाश की लीला का साक्षी है वह चेतन तत्त्व ही सत्य है। यह विवेक द्वारा सिद्ध होता है। अत: मार्क्स की दृष्टि में जड़ जगत् सत् है, वह विवेक की दृष्टि से देखने पर असत् प्रमाणित होता है। इसी प्रकार ईश्वर या चेतन सत्ता को मार्क्स कल्पनामात्र मानता है, वह तर्क से सत् प्रमाणित होता है। यदि तर्क या बुद्धि स्थूल इन्द्रियज्ञान की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है तो मार्क्स स्वयं मतिभ्रमित प्रमाणित होता है क्योंकि वह सत् आत्मा को न मानकर स्थूल जड़ को ही सत् मान लेता है और सत् चेतन सत्ता को भ्रम मानता रहता है।

धर्म इतिहास का अनादर नहीं करता वरन् इतिहास निर्माण की प्रेरणा देता है। सम्राट् विक्रमादित्य ने उज्जैन में महाकाल के मन्दिर से प्रेरणा प्राप्तकर हूणों एवं शकों को देश से खदेड़ दिया। रामायण-महाभारत की गाथाएं सुनाकर जीजाबाई ने शिवाजी का ऐसा निर्माण किया कि वे महानतम इतिहास निर्माता बन गए। अपने पुरुषार्थ को करके भी अहंकार के भूत से बचने के लिए यदि कर्मवीर अपने कर्मों को भी भगवान् की कृपा मानता है तो उसमें उसकी महानता ही प्रकट होती है।

धर्म मानव के सच्चे स्वाभिमान को जगाता है। वह उसके भीतर के उस दैवीय तत्त्व या उसके भीतर के नारायण को जगा देता है जिससे असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। मानव इतिहास में धर्म की प्रेरणा से ही बड़े-बड़े त्याग, तपस्या, बलिदान एवं राष्ट्र निर्माण के कार्य हो सके हैं। यदि भगतसिंह, राजगुरु,

सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद, खुदीराम, सुभाष बोस आदि से धर्म की प्रेरणा छीन ली जाती तो वे कहां होते? धर्म ने ही महान् प्रेरणा बनकर मानव समाज को स्वाभिमान से जीना तथा स्वाधीनता के लिए लड़ना सिखाया है।

धर्म की विकृत रूढियों से मानव का कुछ पतन अवश्य होता है। किन्तु वह उसे सच्चा धर्मवीर बनाता है भीरु अथवा परमुखापेक्षी नहीं। अर्जुन, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, हर्ष, विक्रमादित्य, प्रताप, शिवाजी सभी धर्मवीर महापुरुष कभी भी भीरु नहीं थे।

जब सामाजिक जीवन में पाखण्ड होता है तो धार्मिक जीवन में भी पाखण्ड आ जाता है। किन्तु यह धर्म का विकृत रूप है, धर्म का स्वस्थ रूप नहीं। क्या धर्म का बल लेकर कर्म क्षेत्र में उतरने वाले राम-कृष्ण, मनु, याज्ञवल्क्य, कपिल, कणाद आदि पाखण्डी थे? क्या उनकी कथनी-करनी में अन्तर था?

धर्म को व्यवसाय बनाना भी धर्म का विकृत रूप है, स्वस्थ रूप नहीं। प्राय: सब धर्मों में तीन तत्त्व होते हैं—दार्शनिक दृष्टि, कथा-पुराण और कर्मकाण्ड। कथा पुराण में अतिशयोक्ति का मेल हो जाता है और कर्मकाण्ड धीरे-धीरे यांत्रिक-सा बन जाता है। किन्तु, धर्म का निर्मल रूप उसके दर्शन में ही मिलता है। वही धर्म का हार्द है। पोप लीला एवं पण्डागिरी एक विकृत रूढि है। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य के धर्मप्रचार में यह व्यावसायिक पोप लीला नहीं थी।

धर्म नर के भीतर नारायण का दर्शन करता है। अत: वह सारी मानवता को जोड़ने वाला महान् सूत्र है। धर्म विभाजित नहीं करता वरन् मानव के स्वार्थ ही विभाजित कर देते हैं। जब धर्म में व्यवसाय वृत्ति एवं राजनीति आ जाती है तब धर्म—धर्म नहीं रहता।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढ़ां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।।

महाभारत उद्योगपर्व, 33.60

जो दरिद्र धन चाहता हुआ भी परिश्रम से जी चुराता है और धनवान होता हुआ भी अधिकृत व्यक्तियों को धन नहीं देता दोनों दण्ड पाने के अधिकारी हैं। इन दोनों के गले में पत्थर बांध कर जल में डुबो देवें।

मार्क्स के भौतिकवादी इतिहास की आलोचना

(1) मार्क्स ने अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या की पुष्टि के लिए इतिहास की मनमानी व्याख्या की।

(2) मार्क्स यूरोप के दो-एक देशविशेष के इतिहास से अवगत था, सम्पूर्ण विश्व के इतिहास से नहीं। किसी भी एक देश का इतिहास सभी देशों पर लागू नहीं हो सकता।

सभी देश के लोगों की प्रकृति भिन्न-भिन्न होने के कारण और फिर सभी देशों की जलवायु, भौगोलिक परिस्थिति, प्राकृतिक अवस्था भिन्न होने के कारण सभी देशों का इतिहास भिन्न-भिन्न है। सभी देशों पर एक ही इतिहास लादना मानवीय प्रकृति के साथ अन्याय है। सभी देशों का अपना-अपना इतिहास, अपनी भौगोलिक-प्राकृतिक परिस्थितियां, जलवायु, वहां के देशों की मानवीय प्रकृति की भिन्नता के कारण, भिन्न-भिन्न है।

जिस प्रकार से इतिहास का विभाजन मार्क्स ने किया है वह भारत पर एकदम लागू नहीं होता। भारत में कभी भी उस तरह की रक्त क्रान्ति नहीं हुई जैसी कि पश्चिम के देशों में हुई। भारत में हरिजनों को हजारों सालों से उचित व्यवहार नहीं मिला, सामाजिक सम्मान नहीं मिला। उन पर अत्याचार हुआ, जो कि नहीं होना चाहिए था। फिर भी उन्होंने कभी क्रान्ति नहीं की। कम्युनिस्टों के भड़काने से पूर्व तक। इसका कारण भारत का आध्यात्मिक भाव है। हमारा यह जन्म दुष्कर्मों का परिणाम है। भविष्य का जन्म हमारा स्वर्गीय होगा। यानी जिन देशों में आध्यात्मिकता की कमी है वहां ही रक्त क्रान्ति हुई है।

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक इतिहास की व्याख्या में व्यक्ति के संकल्प का स्थान ही नहीं बचता। इसमें यांत्रिक ढंग से इतिहास की घटनाएं घटती हैं। इसमें व्यक्ति के स्वतंत्र दृढ़ संकल्प से इतिहास निर्माण का स्थान ही नहीं बचता। शिवाजी, राणाप्रताप, गुरु गोविन्दसिंह, बंदा वैरागी के संकल्प का स्थान नहीं बचता। व्यक्ति इतिहास का निर्माण करता है इसके लिए स्थान नहीं। व्यक्ति इतिहास में परिवर्तन कर सकता है इसकी कोई गुंजाइश ही नहीं बचती। लोग कह सकते हैं कि अभी

तो वाद का ही समय है, घोर कलिकाल का समय है, हिन्दुओं के पतन का समय है, इसमें परिवर्तन या उद्धार का कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि इतिहास की घटनाएं यांत्रिक ढंग से घटित होती हैं। इसमें व्यक्ति के संकल्प के द्वारा परिवर्तन नहीं हो सकता। इतिहास की घटनाएं यात्रिक ढंग से और अनिवार्य रूप से घटित होती हैं।

इतिहास में Chances (अवसरों) का सबसे महत्त्वपूर्ण Role है जिसका स्थान द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में बचता नहीं। जैसे पृथ्वीराज ने एक बार मुहम्मद गोरी को क्षमा न कर उचित दण्ड दे दिया होता तो भारत का इतिहास ही कुछ दूसरा होता। किरणबाई अकबर को क्षमा नहीं करती तो इतिहास कुछ दूसरा होता। राणा प्रताप, शिवाजी आदि मुगलों से आहत हो जाते तो इतिहास ही कुछ दूसरा होता। अतः मार्क्स के इतिहास की व्याख्या में Chance का कोई स्थान ही नहीं बचता। मार्क्स के इतिहास की व्याख्या में भागवत इच्छा के लिए भी कोई स्थान नहीं बचता।

बिना चेतन सत्ता के वाद का प्रतिवाद उपस्थित नहीं हो सकता है। वाद (Thesis) एक विचार है, विचार को जाने बिना वाद (Thesis) की समस्त बुराइयों को प्रकट करने वाला विरोधी विचार कैसे उपस्थित हो सकता है? फिर वाद और प्रतिवाद में समन्वय कैसे हो सकता है? अतः बिना चेतन सत्ता के इतिहास की व्याख्या नहीं हो सकती। इतिहास की घटनाओं की व्याख्या नहीं हो सकती।

अतः मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की मनगढ़न्त कहानी गढ़ ली है। मार्क्स की भौतिकवादी इतिहास की व्याख्या से लगता है कि मानो मार्क्स इतिहास की घटनाओं का नियामक, प्रणेता या संचालक है जिसके अनुसार इतिहास की घटनाएँ घटती हैं।

वाद का विरोधी विचार प्रतिवाद होता है। दोनों में संघर्ष एवं समन्वय होता है। औरंगजेब का शासन, अकबर का शासन 'वाद', और राणा प्रताप और शिवाजी का आजीवन देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करना 'प्रतिवाद' हुआ। तब अकबर और राणा प्रताप के युद्ध से कौन-सा समन्वय हुआ, या हो सकता है—शिवाजी और औरंगजेब में 'समन्वय' हो सकता है या हुआ?

केवलाघो भवति केवलादी।

ऋग्वेद-संहिता 10/117/6

जो अकेला खाता है वह पापमय होता है।

हिन्दूधर्म की विशेषताएं

1. हिन्दू धर्म ईश्वर को सर्वव्यापी मानता है। अन्य धर्म मानता है कि ईश्वर केवल बहिश्त या हैवन में रहते हैं।

2. हिन्दूधर्म मानता है कि ईश्वर आत्म के रूप में हरेक जीव के हृदय में है। अन्य धर्म मानते हैं कि ईश्वर किसी के अंदर नहीं रहते। मनुष्येतर प्राणियों में तो आत्मा ही नहीं है।

3. हिन्दूधर्म जन्मान्तर को मानता है। अन्य धर्म नहीं मानते।

4. हिन्दूधर्म के अनुसार अपने सुख दुःख के लिए जीव के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल ही जिम्मेदार हैं।

अन्य धर्म मानते हैं कि ईश्वर ने अकारण ही केवल अपने मनोविनोद के लिए जीवों को सुखी-दुःखी बना दिया।

5. हिन्दूधर्म गो हत्या को महापाप मानता है अन्य धर्म उसे पुण्य मानते हैं।

6. हिन्दूधर्म मोक्षप्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानता है, स्वर्ग को नहीं। अन्य धर्म केवल मात्र स्वर्ग के सुख को ही परम पुरुषार्थ मानते हैं।

7. हिन्दूधर्म के अनुसार मृत्यु के साथ-साथ ही जीव अपने-अपने कर्मानुसार स्वर्ग, नरक या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अन्य धर्म मानता है कि मृत्यु के बाद जीव यावत्चन्द्रदिवाकरौ कब्र में पड़ा रहता है।

8. हिन्दूधर्म मानता है ईश्वर की इच्छामात्र से ही जगत् की सृष्टि हुई है। अन्य धर्म मानता है पहले पृथ्वी की सृष्टि की उसके तीन दिन बाद सूर्य की सृष्टि की है। सिवाय सूर्य के दिन-रात कैसे बने?

9. हिन्दूधर्म में आत्मा को शुद्ध माना गया है। पाप-पुण्य मन का विषय है।

अन्य धर्म जीवात्मा को जन्म से ही पापी मानता है।

10. हिन्दूधर्म के अनुसार ध्यानावस्थित अवस्था में ईश्वर का दर्शन करके मुक्त हो सकते हैं। ईश्वर स्वयं ही भक्त का उद्धार करते हैं। अन्य धर्म में खुदा को

कोई नहीं देखता। पैगम्बर या ईश्वर के पुत्र के पास क्षमा मांगने पर वे ईश्वर से कह कर क्षमा दिलाएंगे। वहां भक्त से भगवान् का सीधा संबध नहीं है।

11. हिन्दूधर्म मानता है कि भक्तों की रक्षा, दुष्कृतकारी का विनाश एवं धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए भगवान् स्वयं अवतार लेकर प्रगट होते हैं। किन्तु अन्य धर्म ऐसा मानते हैं कि ईश्वर का अवतार नहीं होता उनके पुत्र या पैगंबर आते हैं।

12. हिन्दूधर्म के अनुसार ईश्वर प्रत्येक जीव के परम पिता हैं और जीव उनके पुत्र हैं। किन्तु अन्य धर्म मानते हैं कि केवल यीशु ही ईश्वर का पुत्र है अन्य कोई नहीं।

13. हिन्दूधर्म का मत है जो पुण्य करेगा वही स्वर्ग में जायेगा, जो पाप करेगा वह नरक में जायेगा। अन्य धर्म का मत है कि जो पैगंबर को मानेगा वह उनकी सिफारिश से स्वर्ग में जायेगा और जो ईश्वर के पुत्र को नहीं मानेगा पुण्यकर्म करने पर भी वह नरक में जायेगा। आज से 1981 साल पहले बने हुए कायदे से करोड़ों वर्ष पहले जन्मे और मरे जीवों का विचार कैसे खुदा कर पाएंगे?

14. हिन्दूधर्म के अनुसार प्राणीहत्या पाप है। क्षत्रियों के लिए युद्ध करना पाप नहीं। सर्वसाधारण के लिए आत्मरक्षा के लिए आततायी को मारना पाप नहीं।

अन्य धर्म में काफिर एवं हिडेनों को मारने से पाप नहीं।

15. हिन्दूधर्म में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य। अन्य धर्मों में ब्रह्मचर्य पालन का कोई आदेश नहीं है।

16. हिन्दूधर्म सर्वेश्वरवाद को मानता है। ईश्वर में सब है और सब में ईश्वर है ऐसा मानता है।

किन्तु अन्य धर्म एक ईश्वर को मानते हैं और वे सर्वत्र नहीं हैं।

17. हिन्दूधर्म देवताओं का पूजन करता है किन्तु ईश्वर के रूप में नहीं करता केवल भौतिक पदार्थ की प्राप्ति के लिए करता है।

अन्य धर्म भी देवताओं के स्थान पर फरिश्ता, जिब्राइल एडोल्स वगैरह मानते हैं।

18. हिन्दूधर्म मूर्ति के माध्यम से ईश्वर की पूजा करता है। किन्तु अन्य धर्म मक्का के काबा केवलेश्वर (मक्केश्वर महादेव) को खुदा का स्वरूप मानकर पूजा करते हैं।

Romain Rolland thinks that Hinduism is a symphony of a variety of creeds, a boquet of variegated flowers. Inspite of its infinite veriety, Hinduism is one and has united India through the ages, Religious unity in

Hindu India was and still is as strong as political unity in other countries, Throughout length and breadth of Hindustan from Imphal to Srinagar, from Kedernath to Cape Cmorin Hinduism has produced a common culture, a common character, a common religion in all the provinces. Though the externals are diverse yet the essentials are one and the same.

'हिन्दुत्व भिन्न-भिन्न मत-विश्वासों समस्वर संगीत है, एक विविध रंगों के फूलों का गुलदस्ता है। अनन्त विविधरूपता के उपरान्त भी हिन्दुत्व एक है और उसने युगों से भारत को एक बनाये रखा है। हिन्दू भारत में धार्मिक एकता सदा से लेकर अभी तक उतनी ही सुदृढ़ है, जितनी की अन्य देशों में राजनीतिक एकता। हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम में इम्फाल से श्रीनगर तक और केदारनाथ से कन्याकुमारी तक, हिन्दुत्व ने सब प्रान्तों में एकसमान संस्कृति, एकसमान चरित्र और एकसमान धर्म विकसित किया है। चाहे कहीं रंग भिन्न हों, फिर भी अनिवार्य सारतत्त्व एक और अभिन्न ही है।

रोम्यां रोलां

फ्राँस

(Hinduism outside India. page 7-8)

हिन्दू धर्म सनातन धर्म है। आजकल जो अन्य धर्म दिखाई पड़ रहा है वह सब उसी की इच्छा से उत्पन्न हुआ है और चला जायेगा, रहेगा नहीं। इसलिए मैं कहता हूं आजकल जो भक्त लोग हैं उनके चरणों में नमस्कार है। हिन्दू धर्म बराबर है और बराबर रहेगा।

—श्रीरामकृष्ण कथामृत द्वितीय भाग

21वां खण्ड तृतीय परिच्छेद

पाश्चात्य दृष्टिकोण : भारतीय दृष्टिकोण

पाश्चात्य दृष्टिकोण	भारतीय दृष्टिकोण
1. भौतिक दृष्टिकोण	1. आध्यात्मिक दृष्टिकोण।
2. शरीर सुख को ही सर्वस्व मानते हैं।	2. शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—इन चारों का सामूहिक विचार करते हैं।
3. काम (वासना-पूर्ति) और अर्थ (धनार्जन)-ये दो विचार प्रधान हैं।	3. धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इन चार प्रकार के पुरुषार्थों का विचार रखते हैं। उनमें अर्थ और काम को धर्म नियंत्रित रखता है।
4. भोगवादी धनी सम्मान पाता है।	4. त्यागी और संयमी सम्मान पाता है। त्यागी-संन्यासी सबका पूज्य है।
5. अपने ही सुख का विचार।	5. दूसरों के सुख को प्रधानता दी गई है।
6. संग्रही वृत्ति।	6. अपरिग्रह।
7. खंडशः पृथक्-पृथक् विचार किया जाता है।	7. एकात्म दृष्टि से समग्र विचार किया जाता है।
8. सामान्यों का शोषण होता है।	8. अंत्योदय ध्येय है।
9. अधिकार-रक्षण में दक्षता है।	9. कर्तव्यपालन में निष्ठा।
10. प्रकृति का शोषण, प्रकृति के विनाश की चिंता न करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्ति।	10. प्रकृति का दोहन (प्रकृति को विनाश से बचाकर संयमपूर्वक लाभ-ग्रहण)
11. व्यक्ति, समाज और प्रकृति में संघर्ष को अनिवार्य मानना।	11. व्यक्ति, समाज और प्रकृति में सामंजस्य स्थापना का यत्न करना।

12. स्वार्थपरता से समाज में विषमता की सृष्टि।	12. समाज में समता और समानता की स्थापना के प्रयास।
13. क्षणिक सुख द्वारा तृप्ति।	13. शाश्वत-सुख की तृष्णा।
14. स्त्री उपभोग्य वस्तु है।	14. स्त्री मातृवत् पूज्य है।
15. माता के अतिरिक्त अन्य सब स्त्रियां विवाह करने योग्य हैं।	15. पत्नी के अतिरिक्त सब स्त्रियां मातृवत् आदरणीय हैं।
16. बाइबिल, कुरान आदि का जो प्रमाण नहीं मानते, वे नरक को जाते हैं।	16. प्रत्येक के लिए मुक्ति सुलभ है क्योंकि सब संप्रदाय निर्विशेष ईश्वर के अंश हैं।
17. विधर्मियों से द्वेष करते हैं।	17. सर्वधर्म समादर।
18. प्रोटैंस्टैंट कैथोलिक, शिया सुन्नी आदि इनके मध्य संघर्ष।	18. एक ही परिवार में विभिन्न संप्रदायों के अनुयायी रहते हैं।
19. छल-कपट, शस्त्र आदि की सहायता से धर्म प्रचार।	19. सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर मत परिवर्तन।
20. अधिक से अधिक लोगों द्वारा अधिक से अधिक सुख की प्राप्ति का ध्येय है।	20. सभी सुखी हों—यह ध्येय है।
21. आर्थिक क्षेत्र में अपने ही लाभ का विचार प्रमुख।	21. दूसरों के सुख-सुविधार्थ प्रयास।
22. कृत्रिम अभाव बनाकर अपने लाभ को बढ़ाने का प्रयास।	22. विपुल उत्पादन-सबके लाभ की चिंता।
23. बढ़ती हुई कीमत को आधार बनाने वाला अर्थ-चिंतन।	23. स्वल्प मूल्य से अधिकतम लोगों का लाभ।
24. एकाधिपत्य स्थापना के प्रयास (संदर्भ-पेंटेट, कापीराइट, ट्रेडमार्क आदि)	24. विपणन में मुक्त स्पर्धा।
25. वेतनभोगी कर्मचारियों पर आधारित व्यवस्था।	25. स्वावलंबन पर आधारित व्यवसायों को प्रोत्साहित करने वाली व्यवस्था।

शब्दकोश

शब्द	अर्थ
Philosophy (Greek)	Philos+sophia Love of wisdom ज्ञान का प्रेम
Philos	प्रेम
Sophia	ज्ञान
दर्शन	सत्य का दर्शन सत्य का साक्षात्कार
Fragment	टुकड़ा, खण्ड
Fragmentry view	खण्डशः दृश्य
Jury	Fact finding committee
Martial	सैनिक
Insticts	मूल प्रवृत्ति
Cell	जीव कोश, कोशिका
Activity	क्रिया
Plane (V)	तल, धरातल स्तर
Aeroplane	विमान
Plan (N)	योजना
Plan (V)	योजना बनाना
Spit	थूकना
Spitter	उगलने वाला, थूकने वाला
Firespitter	आग फेंकने वाला यंत्र
Molasses	गुड़, शीरा, गन्ने के रस की चाशनी
Uni Cellular	एक जीवकोश वाला प्राणी
Multi cellular creature	अनेक जीवकोशों वाला प्राणी जैसे मनुष्य
ब्रह्म	बड़ा, विराट्

शब्द	अर्थ
कुतः	कहां से
कीदृशी	किस प्रकार
कुत्र	कहां
Theism	आस्तिकवाद वह सिद्धान्त जिसके अनुसार ईश्वर है।
Atheism	नास्तिकवाद जिसके अनुसार ईश्वर की सत्ता नहीं है।
Nihilism	शून्यवाद वह सिद्धान्त जिसके अनुसार विश्व में कोई अन्तिम स्थायी सत्ता नहीं है।
Sceptic	संशयालु, संशयात्मा, संदेहशील, अति संशय करने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है।
संशयात्मा विनश्यति (गीता)	संशयालु व्यक्ति का नाश हो जाता है।
Gno (Latin)	ज्ञान, जानना
Gnostic Idealism	ज्ञानी, जानने वाला
	(1) Spiritualism
	(2) अध्यात्मवाद
	(3) चेतनावाद
अव्याकृत प्रश्न (भगवान् बुद्ध)	अप्रासंगिक प्रश्न
घटाधारः घृतः वा घृताधारः घटः।	घट का आधार घी है अथवा घी का आधार घट है। ईश्वर सृष्टि में है या सृष्टि ही ईश्वर में है।
भगवान् बुद्ध के ईश्वर सम्बन्धी मौन का अर्थ	(क) मौनं सम्मतिलक्षणम् (मौन हां का लक्षण है)
	(ख) मौनं अस्वीकृति लक्षणम्
	(ग) मौनं संशयलक्षणम् भगवान् बुद्ध ईश्वर को मानते थे।
बौद्ध दर्शन का निर्वाण	ब्रह्म निर्वाण, मोक्ष, ईश्वर-प्राप्ति
Dr. Albert Ei. (डॉ. आइन्स्टीन)	जर्मनी का एक यहूदी वैज्ञानिक जिसने 16 वर्ष की अवस्था में Theory of Relativity का आविष्कार किया।

शब्द	अर्थ
अव्याकृत प्रश्न का उदाहरण (बुद्ध)	घर में आग लग जाने पर प्रश्न—
(जब मानव समाज जल रहा है तब व्यर्थ के शास्त्रार्थों में समय गंवाना मूर्खता है। नैतिक कर्म ही समाज को बचा सकते हैं।)	1. आग का प्रथम कारण क्या है? 2. आग का अन्तिम कारण। 3. आग का हेतु। 4. आग के लिए उत्तरदायी कौन? 5. आग का ताप क्या है? 6. आग का स्वरूप क्या है? 7. कितनी देर में आग मनुष्य को भस्म कर देगी? 8. भस्मी का भार कितना है?
Goodness is the road to Godliness	नेकी का मार्ग ही भगवान् तक पहुंचाता है।
पृथा	कुन्ती के जन्म का नाम, वसुदेव की बहन।
पार्थ	अर्जुन अथवा किसी पाण्डव का नाम।
Mediterranean sea	भू-मध्य सागर
Medi	मध्य
Terrain	धरती
शरीर में पांच तत्त्वों के विशेष स्थान	
1. पृथ्वी तत्त्व	कटि से नीचे (टांगें) सबसे स्थूल
2. जल तत्त्व	लंगोट का स्थान (पृथ्वी से सूक्ष्म)
3. अग्नि तत्त्व	पेट, जठराग्नि (जल से अधिक सूक्ष्म)
4. वायु तत्त्व	फुप्फुस से नासिका (अग्नि से सूक्ष्म)
5. आकाश तत्त्व	कपाल (वायु से सूक्ष्म)
पंच प्राण	
प्राण	बाहर निकलने वाला श्वास
अपान	भीतर जाने वाला श्वास
व्यान	कठिन परिश्रम में रोका हुआ श्वास।
समान	सूक्ष्म वायु जो अन्नरस को सूक्ष्म नाड़ियों तक पहुंचाता है।

शब्द			**अर्थ**	
उदान			मरने के समय निकलने वाली वायु।	
तन्मात्रा			गुण को जानने की सूक्ष्म शक्ति	
करण			इन्द्रिय (साधन)	
बाह्य करण			बाहर की इन्द्रियां	
पाँच ज्ञानेन्द्रियां	तत्त्व	गुण	तन्मात्रा	इन्द्रिय यंत्र
	पृथ्वी	गन्ध	घ्राण तन्मात्रा	नासिका
	जल	रस	रस तन्मात्रा रसनेन्द्रिय	रसना जीभ
	अग्नि	रूप	दृष्टि	चक्षु
	वायु	स्पर्श	स्पर्श तन्मात्रा	त्वचा
	आकाश	शब्द	श्रवण	कर्ण
पाँच कर्मेन्द्रियां			1. हस्त 2. पाद 3. वाक् 4. गुदा 5. उपस्थ	
अन्तःकरण			अन्दर की इन्द्रियां 1. मन (मनन करने वाला, संकल्प-विकल्प करने वाला) 2. बुद्धि (विचार करने वाली अन्तर् इन्द्रिय) 3. चित्त (चिन्तन करने वाली, चिन्ता करने वाली इन्द्रिय) 4. अहंकार (मैं की प्रतीति, स्वाभिमान को परखने वाली इन्द्रिय)	
ईश्वर			ईशन करने वाला, नियंत्रण करने वाला,	
ईशन			शासन	
ईशिता			शास्ता, शासक	
सीयराम मय सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी।। (तुलसी)			जगत् को सीयराम से व्याप्त जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं।	

शब्द	अर्थ
युग, जुग	युगल, जोड़ा
पाणि	हाथ
सर्वभूतमय	सब भूतों में व्याप्त, सब भूत जिसके स्वरूप हैं।
ईशावास्य	सब भूतों में व्याप्त, सब भूत जिसके स्वरूप हैं।
ईशावास्य	ईश उपनिषद्
वास्य	वास योग, व्याप्त
अद:	वह
इदं	यह
पिण्ड	शरीर
यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे	जैसे पिण्ड में पांच तत्त्व हैं वैसे ब्रह्माण्ड भी पांच तत्त्वों का खेल है।
Common	(क) समान (ख) साझा, जिस पर सभी का अधिकार हो।
Common Salt	(ग) साधारण, साधारण नमक
Common Man	जनसाधारण
Common Problem	समान समस्या
Common Property	साझी सम्पत्ति
Common Heritage	साझा उत्तराधिकार
Commune	वह गांव या कस्बा अथवा नगर जिसमें सबके परिवार एवं सम्पत्ति साझी हो।
Paris Commune	रूस का एक छोटा कस्बा जिसमें लेनिन ने कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तानुसार साझा परिवार एवं साझी सम्पत्ति का प्रयोग किया। उसके परिणाम बड़े भयंकर निकले। लगभग 75 प्रतिशत बच्चे यौन रोगों से पीड़ित हो गए तथा समाज में अशान्ति एवं कलह का साम्राज्य फैल गया। अन्त में तंग आकर यह प्रयोग बंद कर देना पड़ा।
Duct	Tube नली
Duct glands	वह ग्रंथियां जिनके साथ एक सूक्ष्म नली जुड़ी रहती है जिसके द्वारा उनका रस शरीर से बाहर निकलता रहता है जैसे—अश्रु ग्रंथियां, स्वेद ग्रंथियां, लार ग्रंथियां, मूत्र ग्रंथियां आदि।

शब्द	अर्थ
Ductless glands	शरीर के भीतर की वह महत्त्वपूर्ण ग्रंथियां जिनके साथ नली जुड़ी नहीं होती। इस कारण उनसे निकलने वाला रस सीधे रक्त में मिल कर हमारे शरीर के संचालन एवं विकास पर प्रभाव डालता है। मानव के व्यक्तित्व के विकास में इन नलिकाविहीन ग्रंथियों का बहुत महत्त्व है।
Endocrinology	मनोविज्ञान एवं औषधि विज्ञान की वह शाखा जिसमें Ductless नलिकाविहीन gland ग्रंथियों का विशेष अध्ययन किया जाता है और उनके संतुलन को ठीक करके शरीर एवं मन के अनेक रोगों का इलाज किया जाता है।
नाक (संस्कृत)	स्वर्ग
नाकपति	इन्द्र
प्रमाद	निरर्थक चेष्टाओं में समय गंवाना। जैसे गप मारना जिसमें न अपना भला और न समाज का।
पंच	पांच
प्र+पंच	प्रपंच पांच तत्त्वों के पंचीकरण से बना हुआ संसार
पांचजन्य	1. कृष्ण का शंख 2. पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा कर्म करने वाला शरीर
विज्ञान	किस नियम से क्रिया-प्रक्रिया होती है, उसे विज्ञान कहते हैं। प्रक्रियाओं का सम्यक् ज्ञान।
क्रिया	Activity, Ethics में जीवित प्राणी की गतिविधि।
गति	निर्जीव वस्तु का चलना।
कर्म	जीवित प्राणी का संकल्पयुक्त स्वेच्छा से किया गया कर्म।
प्रक्रिया	Process, Procedure क्रिया करने की विशेष रीति। क्रिया का नियमबद्ध रूप।

शब्द	अर्थ
विज्ञान	मात्र प्रक्रिया का अध्ययन करता है। तत्त्व का नहीं। यथा तेजाब पर लिटमस का प्रभाव, विज्ञान प्रपंच का ज्ञान Phenomenal knowledge
दर्शन	प्रपंच के पीछे तत्त्व की खोज करता है।
हार्द	हार्दिक तत्त्व, केन्द्रीय तत्त्व
वैखरी	प्रकट भाषा
मध्यमा	मन ही मन बोलना या बहुत धीरे होंठों से फुसफुसाना
परा	मन में बोलने का संकल्प
पश्यन्ती	बोलने के भाव को चेतना द्वारा देखना
एतोनु	सब आओ
Diety	देवता
स्तवाम्	स्तुति करें
साम	गीत Psalm (साम) Latin
सामवेद	गीतों वाला वेद
उक्थ	महिमा, गीत, स्तुति, गीत, स्तोत्र
शुचि	पवित्र Holy
शुचि, शुचिता	पवित्रता
शौच	पवित्रता
शुचिव्रत:	पवित्र व्रत वाला
पतिव्रता	पति के व्रत वाली
देशव्रत:	देश के व्रत वाला
शुचिव्रत तम:	पवित्र व्रत वालों में सर्वोच्च
शुचिर्विप्र:	पवित्र सन्त, पवित्र ब्राह्मण
आहुत	आवाहन किया हुआ
रोचन	चमकता हुआ
हंस	पक्षी विशेष
Holy	पवित्र

शब्द	अर्थ
Hollywood	अमरीका का प्रसिद्ध नगर जहां फिल्मों का सबसे बड़ा केन्द्र है।
आवाहन्	बुलावा
स्नायु	बहुत सूक्ष्म नाड़ियां Very Nervas Neron
Nervous System	नाड़ी संस्थान
Sensation	इन्द्रिय द्वारा बाह्य जगत् की अनुभूति
Perception	Meaningful सार्थक इन्द्रिय अनुभूति
Perception	Sensation + Meaning
Hedonism (इन्द्रिय सुखवाद, भोगवाद)	इंग्लैंड के दार्शनिकों का वह मत जिसके अनुसार इन्द्रिय सुखभोग ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है Loke, berkley, Hume, Benthem sidgwick
Epicurianism	प्राचीन यूनानी दार्शनिकों का वह मत कि इन्द्रिय-सुख ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।
पाश्चात्य सभ्यता का सूत्र	इनकी घोषणा है Eat, Drink & be Merry खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ।
Grip	चुगल
Humiliation	नीचता, अन्यायपूर्ण व्यवहार
Humble	नीचा, तुच्छ
in human	अमानवीय
Belong	अंग
Allege	आरोप लगाना
Implicated	फंसा देना
Cognition	जानना
Recognition	पहचानना
Cogito	I know मैं जानता हूं
Ergo	Therefore इसलिए
Sum	I am मैं हूं। स्वयं
Country	1. गांव 2. देश

शब्द	अर्थ
Countryliqour	देशी शराब
Cross Country Race	गांव के भीतर से लम्बी दौड़
बैन	वचन, वाणी
अपोहन	वृथा की विस्मृति
Forgetting is	कुछ भूलना
The virtue of good	अच्छी स्मृति का सद्गुण है।
Epistemology ज्ञान शास्त्र	दर्शन की वह शाखा जिसमें परमतत्त्व को जानने की विधि और माध्यम का अध्ययन किया जाता है।
Axidogy	जीवनमूल्यों का दर्शन। डॉ. राधाकृष्णन् जीवन-मूल्यों के दार्शनिक हैं। पश्चिम के दार्शनिक अर्बन ने भी नीति शास्त्र में मूल्यों का सुन्दरतम विश्लेषण किया है।
अहंता	Sense of false I
(Egotism)	झूठी मैं की भावना, अहंकार।
Ego	मैं, अहं, अहंकार
ममता	Sense of false my झूठी मेरे की भावना, राग आसक्ति, लोभ, गलत रूप में मैं, मेरा कहना।
अपवर्ग	पवर्ग का अभाव प = पाप से मुक्ति फ = फल से मुक्ति ब = बंधन से मुक्ति भ = भय से मुक्ति म = मोह से मुक्ति = मोक्ष
Teleology	The philosophy of ends (Goals) जीवन के उद्देश्यों का दर्शन।
Monist	एकतत्त्ववादी
Mono	एक
Monoism	एकतत्त्ववाद

शब्द	अर्थ
Pluralism	अनेक तत्त्ववाद या बहुतत्त्ववाद
Monotheism	एकेश्वरवाद, परमतत्त्व के विषय में इनका कोई आग्रह नहीं है कि वह एक है अथवा अनेक। इनका आग्रह केवल ईश्वर के विषय में है कि ईश्वर एक है दो नहीं।
Monist come Monotheist	एकतत्त्ववादी और एकेश्वरवादी जो सृष्टि का अन्तिम तत्त्व एक ही है। और वह ईश्वर ही है। जैसे, शंकराचार्य
Ontology	The philosophy of existance सत्ता का विज्ञान
Monist come Materialist	एकतत्त्ववादी और जड़वादी, यानी तत्त्व एक है और वह तत्त्व जड़ ही है। जैसे कार्लमार्क्स एकतत्त्व, जड़वादी है।
Monist come Atheist	एकतत्त्ववादी नास्तिक जैसे डार्विन
Dualist Monotheist	द्वैतवादी पर ईश्वर को एक माने। जैसे मध्वाचार्य
Trulist Monotheist	त्रेतवादी और एकेश्वरवाद आर्य समाज, न्याय दर्शन।
Pluro-theist	बहुदेववादी, पश्चिम वालों का आक्षेप है हिन्दू धर्म पर कि ये बहुत से ईश्वर को मानते हैं।
Pantheism	वह सिद्धान्त जिसके अनुसार सारा विश्व ब्रह्ममय है। तुलसी, सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी। भारत के अधिकांश दार्शनिक इसी मत को मानते हैं।
Panantheism	वह सिद्धान्त जिसके अनुसार अनेकानेक देवताओं के पीछे एक ही ब्रह्म की शक्ति है। इसे रहस्यवाद भी कहते हैं।
Mysticism	रहस्यवाद
Pantheon	देवता मण्डली
Every Monist may not be monotheist	प्रत्येक एकतत्त्ववादी, एकेश्वरवादी नहीं हो सकता। जैसे, मार्क्स।

शब्द	अर्थ
Every spiritual monoist must be a Monotheist	प्रत्येक आध्यात्मिक एकतत्त्ववादी एकेश्वरवाद अवश्य मानेगा
Every Monotheist is not a Monist	प्रत्येक एकेश्वरवादी, अनिवार्य रूप से एकतत्त्ववादी नहीं हो सकता। जैसे, स्वामी दयानन्द, मध्वाचार्य।
जैनमत के आत्मतत्त्व के विषय में	आत्मा का निश्चित आकार नहीं होता। वह जिस शरीर को धारण करता है उसी के आकार का हो जाता है। जैसे जल, सूर्य की रोशनी का आकार नहीं है पर जिस पात्र में रखा जाता है उसी का आकार धारण कर लेता है। वैसे ही आत्मा जैसे शरीर को धारण करता है वैसा ही अपना विस्तार कर लेता है। जैनमत के अनुसार जिस प्रकार एक कमरे को सूर्य, दीपक, लालटेन सभी कोई मिलकर प्रकाशित कर सकते हैं ठीक उसी प्रकार दो आत्मा भी एक शरीर को प्रकाशित कर सकता है।
दिक् और काल की अनन्तता	दिक् और काल स्वयं में कोई वस्तु नहीं है। मानव ने व्यवहार की सुविधा के लिए दिक् को चार भागों में बांटा और काल को तीन भागों में। और एक अनुपात में काल को बांधा, जैसे—घंटा, मिनट, सेकंड। काल का कोई अन्त नजर नहीं आता। इसकी कोई गणना या अनुमान-कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिए इसे अनन्त कहा जाता है। उसी प्रकार स्थान का आदि यानी कहां से प्रारम्भ हुई और अन्त कहां है इसको कोई न देख सकता है न माप सकता है। फिर पृथ्वी के समान, चन्द्रमा के समान, सूर्य के समान कितने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। जानना तो दूर रहा। अतः इसे भी अनन्त कहते हैं। जिस प्रकार काल कब से प्रारम्भ हुआ और कब अन्त होगा

शब्द	अर्थ
	इसे कोई भी नहीं जान सकता। उसी प्रकार स्थान को भी। हम आँख से अतिनिकट की वस्तु भी नहीं देख पाते और सुदूर दूर को भी नहीं। इसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु नहीं देख पाते और बहुत विशाल को भी नहीं। अत: मनुष्य की आँख से काल और स्थान का आकलन नहीं हो सकता।
आवर्तन	Cycle चक्र
दिन	एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक कालचक्र या मध्यरात्रि से मध्यरात्रि तक या सूर्यास्त से सूर्यास्त तक
घण्टा	दिन के 24वें भाग का चक्र
मास	मास चक्र
वर्ष	वर्ष चक्र
षष्ठी	षष्ठी चक्र
षष्ठीपूर्ति	जीवन के साठ वर्ष पूरे होने पर।
काल की आवर्तक गति	काल को चक्रों में ही मापा जा सकता है।
संवत्सर चक्र	साठ वर्षों का चक्र।
विमा	Dimension पहलू।
Two dimensional	dimensional surface ऐसा धरातल जिसमें लम्बाई, चौड़ाई है।
Two dimensional surface	दो विमाओं वाला तल। एक लम्बाई, दूसरा चौड़ाई।
Three dimensional thing	तीन विमाओं वाली वस्तु। जैसे—लम्बाई, चौड़ाई एवं मोटाई।
Space has three dimension	
Four dimensional Universe	आइंस्टीन के मत में सृष्टि की चार विमायें हैं। तीन विमायें Space या देश की और एक विमा काल की।

शब्द	अर्थ
Five dimensional Universe	भारतीय विचार की दृष्टि से सृष्टि की पांच विमायें हैं—लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और काल की दो विमायें भूत और भविष्यत्।
Fah'renheit	अंग्रेजी की ताप मापने की पद्धति
98.4° F	स्वस्थ मनुष्य का तापमान।
105° F	बहुत तेज ज्वर का तापमान
मानव के लिए फॉरेनहाइट तापमान	95° से 110° F
Absolute zero	-480° F वह कल्पित तापमान जिसके नीचे कोई जीवाणु, रोगाणु, बैक्टीरिया Virus नहीं जी सकता।
0° centigrade	सेंटीग्रेड (फ्रेंच तापमान पद्धति) का शून्य दर्जा जिस पर पानी जम जाता है, बर्फ हो जाता है। = 32° F
32° F	=0° C पानी के जमने का तापमान।
212° F	100° C पानी के उबलने का तापमान।
Hypothesis	Condiction thesis ऐसा सिद्धान्त जो यदि बाद में तथ्यों द्वारा प्रमाणित माना जाएगा। अर्थात् शर्त वाला नियम।
Inert	निर्जीव
Inertia	जड़ता, आलस्य, स्थिरता
Synchronize	मेल खाना, सम-सामयिक होना
Synchronize your watch with Radio	रेडियो से अपनी घड़ी को ठीक मिला लीजिये।
Mirage	मृगतृष्णा, मृगजल
Simultaneous	युगपत्, एक साथ घटने वाली घटना
युग, युगल	जोड़ा
युग्म	जुड़ा हुआ
युगव्यूह	दो पंक्ति में खड़ा होना
युगपत्	दो वस्तुओं का एक साथ घटना

शब्द	अर्थ
धावक	दौड़ने वाला
Corpuscle	सूक्ष्म कण
संहति (Mass)	पिंड, समूह संहति
Volume	आयतन, घनत्व Nudeus
केन्द्रक	केन्द्र का बिन्दु Atom का Proton जिसके इर्द-गिर्द Electron घूमता है।
Spectrum	रंगों का क्रम, इन्द्रधनुष के सात रंग Violet बैगनी Indigo नील Blue नीला Green हरा Yellow पीला Orange नारंगी Red लाल
Prism	तिपहला शीशा
क्षीर	दूध
वपु	शरीर
लव	क्षण
पार्थ	पृथा का पुत्र
पृथा	कुन्ती का जन्म का नाम, बाद में राजा भोज की गोद जाने के कारण कुंती हुआ।
पार्थ	अर्जुन
पाण्डव	पाण्डु का पुत्र
भारत	भरतवंशी
धनंजय	धन को जीतने वाला
सव्यसाची	बायें हाथ से तीर चलाने वाला
पौरव	पुरु वंशी (पाण्डव पुरु वंशी)
पुरु	राजा ययाति का पुत्र जिसने अपनी जवानी अपने पिता को भेंट की। वह ही राज्य का उत्तराधिकारी बना।
यदु	ययाति का पुत्र जिसने जवानी नहीं दी इसलिए राज्य से वंचित रहा।
यादव	यदु की संतान
तरु	ययाति का पुत्र (राज्य भ्रष्ट)
तुर्व वशु	ययाति का पुत्र

शब्द	**अर्थ**
पाराशर्य	पराशर के पुत्र भगवान् वेदव्यास
षट्पद	भँवरा
पेपीयमानं	पीया जा रहा है।
मुदा	आनन्दपूर्वक
भूयः	पुनः
श्रेयसे	कल्याण के लिए
Stamen	केसर
Saffron	केसर, जाफरान (फारसी)
प्रयता	प्रतिदिन
पद	1. चरण 2. पदवी
अध्ययन	ध्यान लगाना, पढ़ना।
स्वाध्याय	अपने स्वयं के स्वरूप का ध्यान व अध्ययन
विवस्वान्	सूर्य
वैवस्वत	सूर्य पुत्र—1. मनु 2. यम।
उप	निकट
सद्	1. विशरण (नाश) 2. गति 3. बैठना 4. अवसादन (शिथिल करना)
उपनिषद्	1. जिसके निकट जाने से संसार के बीज (अविद्या) का विशरण (विनाश) होता है। 2. परब्रह्म के पास पहुंचने वाली सद् (गति) 3. जिसके द्वारा जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि आदि उपद्रव समूह का सद् (अवसादन) अर्थात् शिथिल होना सम्भव हो (पुनर्जन्म चक्र रुक जाए) 4. गुरु के उप (निकट) नि (निश्चयपूर्वक) सद् (बैठना) 5. ब्रह्म के निकट बैठना अथवा ब्रह्म में प्रतिष्ठित होना।
Vest	पेट (वस्ती) गंजी
वस्तीकरण	पेट की सफाई
Vestcotta	जैकेट

शब्द	अर्थ
Vesture	वस्त्र
Vestrymen	दर्जी
Vestment	कपड़े
Steel Vest	लोहे की अलमारी
Vest to	निहित हो जाना, पेट में चला जाना, स्थापित हो जाना।
This Property is vested into government	यह सम्पत्ति सरकार के पेट में चली गई।
Vested interest	निहित स्वार्थ, छिपा हुआ स्वार्थ
Invest	पूँजी या शक्ति लगाना, निवेश।
Agriculture investment in land	भूमि में पूँजी लगाना कृषिकर्म कहलाता है।
Education is investment in man	मानव के विकास में पूँजी लगाना शिक्षा है।
Divest	वंचित करना, अधिकार से वंचित करना।
सृष्ट	सृजन करना, उत्पन्न करना, निर्माण करना।
Creator	सृष्टा
Creation	सृष्टि, सर्जन
Creature	प्राणी
Procreate	संतान उत्पन्न करना
Procreation	संतति
Recreate	मनोरंजन, थके हुए मन का पुनः निर्माण करना।
Acme	सर्वोच्च
Neither	नीचा
Holland	हालैण्ड
Zenith	शिखर
Clife	विद्वानों की सभा
Climax	चरमोत्कर्ष
Prophet	पैगम्बर
Profacy	भविष्यवाणी

शब्द	अर्थ
Omen	सगुन, शकुन
Good Omen	अच्छा सगुन
Bad Omen	खराब सगुन
Omenus	अपशकुन वाला
Ospecious	शुभ
Auspicus	तत्त्वावधान तत्त्व+अवधान, तत्त्व का ध्यान, सिद्धान्त का ध्यान।
Courtesy	शिष्टाचार, सौजन्य, सज्जनता
Court	राज दरबार
Courtier	दरबारी
Courtesy	दरबार की मर्यादा या शिष्टाचार
Courtious	शिष्ट
Discourtious	अशिष्ट
Royal court	राज दरबार
Courtyard	आंगन
Court of law courtship	यौनाकर्षण, प्रेमी-प्रेमिका का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण।

शब्द	अर्थ
ब्राह्मण	विराट्, महान्
soul	Self The real 'I'
Noun	नाम
Pronoun	नाम के स्थान पर व्यवहार होने वाला।
Name is not innate	नाम जन्मजात नहीं है।
Name is imaginery	
Name are many and different	
Names divide man from man	
Names are changeable	
One man have many name than one man.	

शब्द	अर्थ
Many persons have same name.	
Name is destructible	
Name is misnomer (गलत नाम)	
Name is not my real identity	
I am not name	
I am not form	
Icon	देवमूर्ति, धार्मिक मूर्ति
Statue	मूर्ति (कोई भी)
Iconography	धार्मिक मूर्ति गढ़ना
Autography	चित्रकला
Calligraphy	लेखन कला
Pornography	अश्लील कला
Epigraphy	पुरालेख उत्कीर्ण कला
Topography	भू-मानचित्र कला
Paleography	पुरालिपि चित्रकला
Cardiography	हृदय गति
Encelophalography	मस्तिष्क तरंग मानचित्र
Numismatics	सिक्कों की विद्या
Isolated	अलग-थलग
Pre disposing	पहले की प्रभाव डालने वाली कृतियां, ऐसे कारण जो पहले से ही प्रभावित करते चले आ रहे हैं।
Disposition	वृत्ति, मन की वृत्ति, तबीयत
Disposed	स्वस्थ
Indisposed	अस्वस्थ
Disposal	चरम परिणति, निबटारा
Dispose	पोज को समाप्त करना

शब्द	अर्थ
Pose	दिखावटी चेहरा
Propose	आगे की वृत्ति या भाव, प्रस्ताव
Man proposes, God disposes	बन्दा जोड़े पली पली, रब लुढ़ावें कुप्पा
Standing against the sun	सूर्य की तरफ पीठ करके खड़ा होना
पूर्व	जहां सूर्य पहले उगे। East
	इष्ट दिशा की ओर मुख करके पूजा करते हैं। इष्ट से अंग्रेजी का East बन गया है।
पूर्व गांधार	दर्रा खैबर से पूर्व की ओर रावलपिंडी तक राजधानी तक्षशिला थी। दर्रा खैबर से पश्चिम की ओर पश्चिम गांधार।
दक्षिण	पूर्व दिशा में खड़ा होने पर दायां हाथ। जिधर हो।
दक्ष	दक्षता वाला हाथ, दक्षिणा देने वाला हाथ। रावण से पूर्व दक्षिण दिशा का बड़ा महत्व था।
पश्चिम	सूर्य जहां पश्चात् में पहुंचे।
पश्च	से पश्चिम, पश्चात्, सभी का अर्थ बाद में।
पख्त	पश्च—पख्त, पखतून, पठान, पख्तूनिस्तान
पश्च गांधार	दर्रा खैबर का पश्चिम का देश, पठानों का देश
पठान	पहले केवल पश्चिम दिशा का सूचक, वर्तमान में अफगानिस्तान के पठानों का सूचक बन गया है।
पाणिनि	पश्चिम गांधार का ब्राह्मण, संस्कृत का महान् वैयाकरण।
गांधार	गंधर्वों का देश
श्वेत गांधार	अफगानिस्तान के गौर वर्ण के आर्यों का देश।
किरात	नेपाल
किन्नर देश	हिमाचल प्रदेश
लाट देश	भूटान के उत्तर का तिब्बती भू-भाग।
लाम	लामाओं का देश, उत्तरी-पश्चिम देश।
खाम देश	दक्षिणी तिब्बत के खाम्पा लोगों का देश

शब्द	अर्थ
उत्तर	बाद का
बुद्धोत्तर	बुद्ध के बाद
स्वातन्त्र्योतर	स्वातन्त्र्य के बाद
मरणोतर	मरण के बाद
त्रिविष्टप	स्वर्ग प्राचीनकाल में तिब्बत ही स्वर्ग था। गंगा तिब्बत (स्वर्ग) से आती है। भगीरथ से पूर्व उसका सारा जल हिमालय के उत्तरी पठार की ओर बहता था। भगीरथ ने (इंजीनियरिंग की) तपस्या द्वारा गंगा को भारत में आने का मार्ग दिया। गंगा मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे बड़ी नदी है। शंकरधाम कैलास तिब्बत में है। प्राचीनकाल में लोग तपस्या के लिए कैलासवास या तिब्बत जाते थे और फिर लौट आते थे। तिब्बत का अधिपति अर्जुन भी वहीं तपस्या के लिए गया जहां उर्वशी का प्रसंग आया, वहीं से गांडीव लाया और नेपाल से पाशुपतास्त्र शंकर भगवान् से ले आये। पाण्डव लोग अपने उत्तर जीवन में उसी मार्ग से स्वर्ग की ओर गये। वहां शीत और हिम अधिक होने से अनेकानेक लोग गल जाते थे। इसलिये स्वर्गवास का अर्थ मृत्यु रूढ हो गया। अभी भी मृत्यु पश्चात् सिर उत्तर दिशा में कर दिया जाता है।
गांधार कला	गांधार देश यवन देश की मूर्तिकला से प्रभावित। मूर्तिकला प्रणाली का गांधार नाम ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् में आया है। पाणिनि के पूर्व गांधार की राजधानी तक्षशिला। अपर गांधार की राजधानी पुष्कलवती (पेशावर)। इस कला के प्रसिद्ध केन्द्र तक्षशिला, पुष्कलवती, नगरहार और स्वातघाटी, उड्डीयान (बेग्राम) कपिशी, बामीयान और बख्तरीयां। इस कला में भारतीय, यूनानी और मध्य एशिया की कलाओं का समन्वय है।

शब्द	**अर्थ**
भू, भव	होना
भवति	होता है।
अभवत	हुआ
भविष्यति	होगा
भूत	हो चुका है।
अभूते	हुआ
भव (संज्ञा)	संसार। जो कुछ हुआ है सबको संसार कहते हैं।
भव सागर	संसार सागर
वैभव	विशेष सांसारिक समृद्धि विस्तार
विभु	व्यापक
भविता	होने वाला
भूयः	पुनः
भवितव्य	होने वाला
भव	शिव। भूत, भविष्यत् और भवति उनके अधीन होने से वह महाकाल हैं।
Embark	यान में प्रवेश करना
Embarkation	यान में प्रवेश
या	जाना
यान	जाने वाला यंत्र
यात्री	जाने वाला यात्री
यात्रा	जाना
आयात	आना
यातायात	आना-जाना
यातयामः	एक याम (प्रहर) बीत गया, गतरसः-बासी
यामिनी	रात्रि
याती	जाता है
आयाति	आता है
यायावर	घुमक्कड़
सार्थवाह	व्यापारी। विदेशों से व्यापार करने वाला।

शब्द	अर्थ
विग्रह	मूर्ति (विशेष रूप) झगड़ा
संधि विग्रह	मिलन, संघर्ष
संग्रह	समान ग्रहण
विग्रह	विपरीत ग्रहण
केशव विग्रह	भगवान् कृष्ण की मूर्ति
मधुकरी	भिक्षा (मधुकर के समान)
दान्ति	दमन (इन्द्रिय)
उपरति	उपरामता, वैराग्य, मन को रमण से पीछे खींच लेना
क्षान्ति	क्षमा
प्रशस्त	चौड़ा
अप्रशस्त	संकड़ा
पंक	कीचड़
पंकज	कमल
पंकिल	गंदा
पृच्छलता	मैलापन
परोक्ष	अपने से भिन्न अन्य वस्तुओं को अपने से भिन्न जानना।
अपरोक्ष ज्ञान	तत्त्व या सत्य वस्तुओं को अपने में या अपने भीतर देखना, अपने से अभिन्न देखना।
Alogy	विज्ञान
Phychology	मनोविज्ञान
Phyche + alogy	Science of soul
Biology	जीव विज्ञान
Bio	जीवन
Biography	जीवन का चित्र
Autobiography	आत्मकथा
Zoology	पशु विज्ञान
Geology	भूगर्भ विज्ञान, धरती का चित्रण, भूगोल
Indology	भारत विद्या

शब्द	अर्थ
Orientology	प्राच्यविद्या
Asiology	जीवनमूल्यों का दर्शन
Entomology	कृषि, कीट विज्ञान
Etymology	व्युतपत्ति विज्ञान (भाषा विज्ञान)
Seismology	भूकम्प विज्ञान
Ontology	परमतत्त्व का विज्ञान, अन्तिम सचाई वाली विद्या
Indology	प्राच्य विद्या
Epic	पुरानी कथा
Assertion	विचार
Location	स्थित
Tide	ज्वारभाटा
Controversy	आलोचना
Travesty	उपहास का विषय
Terpretation onwards	आगे, मार्गदर्शक
Clime	Climate जलवायु
Time and Clime	काल और जलवायु या देश और काल
पदार्थ	जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है।
पदार्थ की तीन अवस्थायें Three states of matter	Solid, Liquid, Gas ठोस, द्रव, गैस
ऊर्जा	पदार्थ की अन्तर्निहित शक्ति
ऊर्जा के प्राकट्य की विधि	When matter acts upon matter energy is produced जब पदार्थ पदार्थ पर कोई क्रिया-प्रतिक्रिया करता है तब ऊर्जा पैदा होती है।
Kinds of Energy	(1) Heat (2) Light (3) Electricity (4) Magnetic (5) Sound (6) Atomic
पदार्थ-ऊर्जा	पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है तथा ऊर्जा को पदार्थ में। विश्व में पदार्थ या ऊर्जा की कुल मात्रा सदा बराबर (Constant) रहेगी। कभी पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है कभी ऊर्जा पदार्थ में। पदार्थ या ऊर्जा का स्वरूप से नाश नहीं होता।

शब्द	अर्थ
Radio Active Energy	रेडियोधर्मी ऊर्जा। वह ऊर्जा जो रेडियो जैसी विद्युत् तरंगों के रूप में प्रत्येक अणु के अन्दर छिपी हुई है और अणु के विस्फोटन से प्रकट होती है।
भारतीय संस्कृति के चार आदर्श चार पुरुषार्थ चार फल चार पदार्थ	धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
धर्म का शाब्दिक अर्थ धर्मो धारयते प्रजा:	धारण करने वाला। धर्म ने ही प्रजा को धारण किया हुआ है। जिन नियमों या गुणों का अवलम्बन कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व की सत्ता सुदृढ़ या सुचारु रूप से कायम रहती है उसे ही धर्म कहा जाता है।
धर्म	समाज को विधिवत धारण करने वाला शाश्वत सिद्धान्त।
धर्म (सरलार्थ)	कर्तव्य Duty
शरीर धर्म	शरीर के सात कर्तव्य—शौच-स्नान, व्यायाम, भोजन, परिश्रम-सेवा, विश्राम।
कुल धर्म	परिवार की सेवा, सुरक्षा, प्रतिष्ठा करना।
जाति धर्म	जाति की सेवा-प्रतिष्ठा।
समाज धर्म	समाज की सेवा-प्रतिष्ठा।
राष्ट्रधर्म	राष्ट्र की सेवा-प्रतिष्ठा।
विश्वपति धर्म	ईश्वर की सेवा, पूजा-प्रतिष्ठा।
धर्म (व्याख्या)	शरीर से लेकर ब्रह्मपर्यन्त समस्त कर्तव्यों की विधिवत परिपूर्ति ही धर्म है।
अर्थ	धर्म पर चलते हुए धन-धान्य की प्राप्ति एवं सदुपयोग।
काम	धर्म पर चलते हुए सांसारिक सुख कामनाओं की पूर्ति।
मोक्ष	धर्म पर चलते हुए भगवान् की प्राप्ति।
राग	Attachment आकर्षण

शब्द	अर्थ
रज (धातु)	रंगत
रज (से)	मिट्टी
रजक	धोबी, रंगसाज
रंजन	रंगना
मनोरंजन	मन को रंगने वाला
रंजन	राग-रंग, प्रसन्नता
राग	रंगा जाना, खिंच जाना
अनुराग	किसी के प्रति अनुराग, आकर्षण, प्रेम
विराग	आकर्षण के विपरीत
वैराग्य	आकर्षण का अभाव
राग (मनोवैज्ञानिक)	किसी के प्रति अंध, अत्यधिक आकर्षण के कारण उसकी तरफदारी Favour
राग में अंधा	किसी अपने के दोषों को नहीं देखना, गांधारी —दुर्योधन
द्वेष	किसी के प्रति वैर भाव होने से उसके प्रति अनुचित शत्रुता (Prejudice)
द्वेष में अंधा	वह जो किसी पराये के गुण नहीं देखता
राग-द्वेष द्वन्द्व	जोड़ा। एक होगा तो दूसरा अवश्य। कक्षा में 50 छात्र, 1 छात्र को नाजायज रूप से 5 अंक दे दिये शेष 49 के प्रति अन्याय। अपनों से राग और परायों से द्वेष बन जाता है। राग और द्वेष में मनुष्य पहले से ही सोच लेता है यानी पूर्व कल्पना कर लेता है। यह अच्छा है या बुरा है और उसी के अनुसार धारणा बना लेता है और उससे व्यवहार करता है। अपनों के प्रति राग और दूसरों के प्रति द्वेष यह मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। इसमें मनुष्य पूर्व कल्पना कर लेता है किसी के प्रति और फिर उसके गुण और दोष नहीं देखते और पूर्व धारणा के आधार पर व्यवहार करते हैं। मनुष्य किसी के प्रति पूर्व धारणा बना लेता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ बुरी चीज है तो उसमें

शब्द	अर्थ
	कभी अच्छाई नहीं देख सकता और उसकी बुराई करना ही उसका काम हो जाता है। उसी प्रकार किसी के प्रति अच्छी धारणा बना लेता है उसकी बुराई नहीं देख पाता।
चेतना (संज्ञा)	
चेतना	होश-हवास, ज्ञान, प्रकाश, ज्योति, नूर, तेज, अन्तर्ज्ञान, प्रज्ञान, आत्मज्ञान
चेतना के तीन पहलू या माध्यम जिससे प्रकट होता है	(1) knowing प्रवृत्ति ज्ञानात्मक जो व्यक्ति चेतन है वह कुछ न कुछ अवश्य जान रहा है। (2) रागात्मक (भक्ति) Feeling जो भी होश में है उसे कुछ न कुछ दु:ख या सुख का बोध अवश्य रहता है। (3) संकल्पात्मक प्रवृत्ति जो भी होश में है वह कुछ न कुछ संकल्प-विकल्प करता है।
आत्मा	शुद्ध ज्ञान, सच्चा मैं
मैं	अहम्, स्वयं, निज आत्मा
शरीर	शनैः शनैः शीयर्ते इति शरीरः जो धीरे-धीरे शीर्ण होता रहता है वही शरीर है।
जीर्ण जराजीर्ण-शीर्ण	पुराना, बुढ़ापे से शीर्ण, फटा हुआ, बिखरा हुआ।
देह	दिहयति दियीत इति देहः जो आवरण डाले। देह एक पर्दा है जो आत्मा को ढके हुए है।
संदेह	जो सत्य या तथ्य को अच्छी तरह ढका हुआ है या पर्दा पड़ा हुआ है वही संदेह है।
दिहय	ढकना या पर्दा
देहाः एव महा संदेहाः	शरीर ही आत्मारूपी सत्य को ढकनेवाला बड़ा संदेह है। शुद्ध चेतना ही आत्मा है। सबको प्रकाश देने वाली शुद्ध चेतना है, वही आत्मा है।
मन की चेतना रंगत से भरी हुई है। रंग से रंजित होने से यानी राग द्वेष, मित्र-शत्रु......आदि	
Autocracy	एक अहंकारी व्यक्ति का शासन

शब्द	अर्थ
Autocrate	आत्मा (अहं) शासी, अहंकारी शक्ति का शासन
Democracy	जनता का शासन
Theorem	प्रमेय, उपपत्ति जो प्रमाण योग्य है उसे कहते हैं प्रमाण योग्य Theory, सिद्धान्त को Theorem कहते हैं।
Percive	इन्द्रियों द्वारा जानना
Percept	इन्द्रियगोचर वस्तु
Conceive	विचार करना, गर्भधारण करना
Concept	विचार
चित्त	जड़ मन का स्वरूप
चित्	आत्मा, ब्रह्म
knower itself	अपने आप जानने वाला
सबको	सर्वश
होनहार	भावी, होने वाला जिसका भविष्य निश्चित है।
बिरवा	पौधा
बिरवान	पौधे
चीकने पात	चिकने, मुलायम पत्ते
प्रत्युत्पन्नमति	सूझ वाला
विपर्यय	विपरीत प्रभाव
Spirit	शराब
Rectified spirit	शुद्ध सुरा (पीने योग्य, दवाओं के लिए)
Mother tincture	शुद्ध सुरा, औषधि के रस वाली शुद्ध सुरा
Tax	कर, कर्तव्य
Non aligment	तटस्थता
विधा	रीति, ढंग, रूप प्रकार
दिविधा	दो रास्ते
सुविधा	साफ रास्ते, सरल, सुन्दर ढंग
विधस्य	ब्रह्मा

शब्द	अर्थ
विधायक	क्रमबद्ध करने वाला, व्यवस्थित करने वाला, निर्धारित करने वाला विधान, विधान बनाने वाला
विधवा	वि+धवः बिना धव के
धव	पति
सधवा	पति वाली
माधव	मां (लक्ष्मी) के धव (पति) नारायण।
Truth	
सत्य	जिस की सत्ता सदैव वर्तमान रहे।
सत्	होना, अस्तित्व होना। To be
अस्ति	है।
ईश्वरः अस्ति	ईश्वर है।
आस्तिक	जो मानता है कि प्रभु है।
नास्तिक	जो मानता है कि प्रभु नहीं है।
सत्+य	सत्य सदा सत्ता वाला, सच
परम सत्य	आदि सत्यं, युगादि सत्यं, भवति सत्यं, भविष्यति सत्यं।। आदि सच, युगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच। देश-कालातीत (देश-काल के बंधन से मुक्त) अकाल पुरुष
तथ्य	देश-काल बद्ध
घटना	Space & time Bound
Fact	Event
	विश्व की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, घटना तथ्य है, सत्य केवल ब्रह्म ही है। एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

क्या Law of Conservation सत्य है?

इस पर विचार करने के लिए आवश्यक है कि सत्य की परिभाषा क्या करते हैं? शंकराचार्य सत्य की परिभाषा कलेजा फाड़ने जैसी करते हैं—संसार को वे पारमार्थिक सत्य नहीं मानते, व्यावहारिक सत्य मानते हैं। व्यावहारिक सत्य में यह नियम कार्य करता है, पारमार्थिक सत्य में नहीं। रूपान्तर होने का अर्थ है, विकारी होना। ब्रह्म अविकारी है। अतः यह नियम संसार के लिए सत्य है। पर शंकराचार्य संसार को सत्य मानते ही नहीं तब इस नियम का प्रश्न ही नहीं उठता।

फिर जड़ वस्तु का अस्तित्व बचा ही कहां?

सृष्टि स्रष्टा की अपेक्षा रखता है और स्रष्टा सृष्टि की अपेक्षा रखता है। दोनों ही सापेक्ष हैं।

विज्ञान जड़ को तो महत्त्व देता है चेतन को स्वीकारता नहीं है। यह तो उसी प्रकार हुआ छुरे को तो महत्त्व दिया जाए पर छुरे का प्रयोग कर ऑपरेशन करने वाले डॉक्टर को महत्त्व नहीं दिया जाए। ईंट-पत्थर को माना जाए पर उससे निर्माण करने वाले भवन निर्माता (राजमिस्त्री) को न माना जाए। अगर जड़ ही सत् वस्तु है तो जड़ ही स्वयं से घोषणा करे, स्वयं से अपनी व्याख्या करे। कोई कहे कि ये तो चेतना का गुण है। अतः जड़ इसकी व्याख्या कैसे कर सकता है। तब तो यह कहने का अधिकार कहां रहा कि जड़ अन्तिम सत्य है, सत्ता है। जड़ और चेतन में किसको प्राथमिक मानेंगे? अगर हम जड़ को प्राथमिकता देंगे और उसकी उपासना करेंगे तो इसमें भी जड़ के गुण आ जाएंगे और हम जड़ीभूत हो जाएंगे। गीता का मान्य सिद्धान्त है कि जिसकी उपासना करते हैं उसी का गुण आ जाता है। देवता की उपासना से देवता के, पितर की उपासना से पितरों के, जड़ की उपासना से जड़ का। आज के वैज्ञानिकों की जड़ की उपासना से उनमें जड़ के गुण आ गए हैं। स्पष्ट है दोनों में चेतना का महत्त्व अधिक है।

Universe का अर्थ है एक शक्ति के शासन वाला।

जड़ जगत् सारा चेतना का ही खेल है।

जैसे स्वप्न में हम संकल्पों से सृष्टि रचते हैं, फिर अपने में समाविष्ट कर लेते हैं। जैसे जादूगर अपनी जादूगरी से माया का संसार रच देता है, फिर समेट भी लेता है।

जादूगर की जादूगरी हमेशा उसी के साथ है। पर जब उसकी इच्छा या मौज होती है तब माया का संसार रच लेता है। फिर अपने में पुनः समाविष्ट कर लेता है। अतः जादूगर और जादूगरी दोनों अलग नहीं वरन् अभिन्न हैं। जैसे सूर्य और प्रकाश अलग-अलग नहीं, अग्नि और ताप अलग-अलग नहीं, दोनों अभिन्न हैं। अतः जिसकी संकल्प शक्ति से माया के द्वारा सृष्टि रचना हुई है उसकी मौज होने पर वह उसे अपने में लय कर लेता है। जैसे मकड़ी अपने अन्दर से जाले को प्रकट करती है, फिर उसे अपने में समा लेती है। अतः सृष्टि ब्रह्म की तरह अनादि और अनन्त नहीं है, वह ब्रह्म के संकल्प पर निर्भर है।

वसिष्ठजी राम को कहते हैं—**चित्त ही संसार है। संकल्प ही संसार है। कुछ समय तक संकल्पों को निरोध करके देखो, तो संसार कहां खो जाता है?**

कुछ लोग कहेंगे इतने छोटे मस्तिष्क में इतनी बड़ी सृष्टि का विकास कैसे हो सकता है? मकान बनाएंगे तो मकान जितना बड़ा संकल्प मस्तिष्क में कैसे हो सकता है? इसका सीधा उत्तर है—बीज में ही तो वृक्ष समाया हुआ है। स्वप्न में पूरे संसार की रचना कर लेते हैं। स्वप्न समाप्त होने पर खोजो कहां गया वह संसार। मस्तिष्क चीरोगे तो कुछ भी नहीं मिलेगा। फिर तकिया, बिछावन में तो स्वप्न संसार नहीं समा गया। नहीं वहां भी नहीं। वह तो संकल्पों का खेल था। संकल्प समाप्त होते ही संसार समाप्त।

कोई भी वस्तु की कल्पना पहले हमारे मन में आती है। फिर हम उसको बाहर में रूप देते हैं। क्रोध, काम की अग्नि पहले हमारे भीतर सुलगती है। तब बाहर में संघर्ष, कोलाहल होता है। अगर भीतर में क्रोध की अग्नि नहीं तो बाहर संघर्ष हो ही नहीं सकता। अतः सृष्टि के लिए स्रष्टा आवश्यक है, जो संकल्प से सृष्टि करे। बिना स्रष्टा के सृष्टि हो ही नहीं सकती। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि के पूर्व स्रष्टा है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि स्रष्टा के अधीन है। उसके संकल्प पर जीवित और उसके संकल्प के नाश से सृष्टि लय हो जाती है। जैसे हमारे संकल्प से स्वप्न की दुनिया निर्मित हो जाती है और हमारे संकल्प के नाश से स्वप्न की भी समाप्ति। जैसे ही चित्तनिरोध हो जाता है सृष्टि भी लय हो जाती है। समाधि में चित्त लय हो जाता है तो सृष्टि भी लय हो जाती है। वैसे ही निद्रा में चित्त के लय से सृष्टि लय।

नासदीय सूक्त में यही कहा है—कुछ भी नहीं था फिर भी वह था। वह था तभी एकोऽहम् से बहुस्याम् की उसे इच्छा हुई। वह हमेशा से बहुस्याम् नहीं था। नहीं तो नासदीय सूक्त की व्याख्या नहीं हो सकती।

द्वैतवादी सृष्टि और स्रष्टा दोनों को अनादि मानते हैं। वे नासदीय सूक्त की व्याख्या नहीं कर सकते। फिर सृष्टि को अनादि मानकर भी वे कालगणना करते हैं। अनादि मानने पर कालगणना हो ही नहीं सकती।

वे सदैव 'एकोऽहम् बहु स्याम्' की बात करते हैं। तब सृष्टि की कालगणना नहीं हो सकती। नासदीय सूक्त की व्याख्या नहीं हो सकती। दो सत्ताओं का शासन मानना पड़ेगा। तब स्रष्टा की पूर्णता खण्डित हो जाती है। वह सृष्टि पर निर्भर हो जाता है। सापेक्ष हो जाता है। दो सत्ताओं का राज हो जाता है।

पर हम सारी सृष्टि में देखते हैं एक ही नियम कार्य कर रहा है। अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नियम नहीं है। अग्नि सभी जगह जलाती ही है। यानी सृष्टि में नियमों की एकरूपता है। अतः स्पष्ट है एक का शासन है। नहीं तो सृष्टि में मनमानी अराजकता हो जाएगी।

सृष्टि का लय प्रकृति में, प्रकृति जिसकी संकल्प शक्ति है उसका उसमें यानी ब्रह्म में लय होता है।

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस् तस्मात पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षेद् आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

कठ उ., 2/1/1

स्वयंभू परमात्मा ने इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर जाने वाला बनाया है। इसलिए मनुष्य स्वभावतः बाह्य विषयों को ही देखता है; अपनी अन्तरात्मा को नहीं। कोई बिरला ही बुद्धिमान् ऐसा होता है जो अपनी चक्षुरादि इन्द्रियों को रोककर, अमृतत्व (शाश्वत शान्ति) की कामना से, अन्तःसमीक्षण अथवा आत्म-निरीक्षण में प्रवृत्त होता है।

सृष्टि के मूल में कितने तत्त्व हैं?

सांख्य ने 25 तत्त्व माने। जड़ की व्याख्या के लिए 24 तत्त्व और एक चेतन तत्त्व।

न्याय ने कहा 24 तत्त्व प्रकृति के ही विकार हैं। अत: प्रकृति में आ जाते हैं। अत: उसने 24 तत्त्वों को घटाकर प्रकृति को ही एक तत्त्व माना। दूसरा जीव और ईश्वर यानी तीन तत्त्वों को माना।

द्वैतवादी मत में जीव और ईश्वर दोनों चेतन हैं। अत: दोनों एक ही सत्ता चेतन सत्ता में आ जाते हैं। अत: उन्होंने दो सत्ता मानी जड़ और चेतन।

अद्वैतवादी ने कहा जड़ की कोई अलग से सत्ता नहीं है। वह चेतन की संकल्प शक्ति का विवर्त है। अत: अन्ततोगत्वा एक ही सत्ता बचती है। वह है ब्रह्म।

विज्ञान की दृष्टि से भी विचारें—Matter बचा ही नहीं सिर्फ Energy (शक्ति) बची। शाक्त लोग सारी सृष्टि को शक्ति रूप मानते हैं। यानी शिव की इच्छा से शक्ति ही क्रीडा कर रही है। Energy में पदार्थ के गुण बचे ही नहीं। इसलिए रसेल कहते हैं—जिन ईंटों पर जड़ का भवन खड़ा हुआ था वे ईंटें ही कच्ची निकलीं। क्योंकि उसमें Matter के गुण बचे ही नहीं।

वैज्ञानिकों की हठधर्मिता है कि Energy उत्पन्न होती है Matter से। हाथ पर हाथ मारते हैं तो Sound उत्पन्न होता है। हाथ पर हाथ घिसते हैं तो Heat उत्पन्न होती है। अत: Energy Matter से ही उत्पन्न होती है। अत: अन्तिम सत्ता Matter की ही है। रसेल कहते हैं उसमें Matter के गुण बचे ही नहीं। अत: Matter नहीं कहा जा सकता।

तो प्रश्न है, Matter अन्तिम सत्ता है या चेतन? तो अब प्रश्न उठता है जड़ चेतन की उत्पत्ति करके दिखाए या चेतन जड़ की उत्पत्ति करके दिखाये?

जड़ चेतन की उत्पत्ति कर नहीं सकता। चेतन जड़ को उत्पन्न कर सकता है। चेतन के संकल्प से ही जड़ की उत्पत्ति होती है। यह नित्य का व्यावहारिक अनुभव

है। भवन निर्माण का संकल्प पहले मन में उत्पन्न होता है फिर भवन बन जाता है। स्वप्न में भी हमारा मन ही स्वप्न का संसार रचता है फिर मन में ही समा लेता है। अतः चेतन ही अन्तिम परम सत्ता है।

त्रैतवाद

प्रकृति सत् है। इसमें चेतना और आनन्द का अभाव है। जीव सत् और चेतन-स्वरूप है। उसमें आनन्द का अभाव है। ईश्वर सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है।

अब अगर जीव या मनुष्य प्रकृति की शरण में जाता है तो जड़ता को प्राप्त होता है। चेतना और आनन्द से वंचित। इस तरह हानि में रहता है।

अब अगर पुरुष (जीव) स्त्री के सम्पर्क में जाता है या स्त्री पुरुष के सम्पर्क में जाती है तो सत् और चेतना की प्राप्ति होगी, आनन्द से वंचित रहेंगे। स्त्री-पुरुष सृष्टि की वस्तु है, आनन्द की नहीं। आनन्द तो सिर्फ ईश्वर में है।

अब अगर जीव ईश्वर की शरण में जाता है तब तीनों वस्तुओं सत्+चित्+आनन्द की प्राप्ति होती है।

द्वैतवाद

हम जगत् में दो वस्तुएं देखते हैं—पिण्ड और ब्रह्माण्ड। पिण्ड का अर्थ है जीवों का शरीर और ब्रह्माण्ड का अर्थ ब्रह्मा का शरीर। मोटे तौर पर इस जगत् में दो वस्तुएं देखते हैं—जड़ और चेतन। जिसे द्वैतवाद भी कहते हैं। प्रथम में समझने के लिए जड़ और चेतन का भेद करना तो ठीक है पर इससे एक पैर आगे बढ़ने पर एक समस्या खड़ी हो जाती है कि दो का अस्तित्व है या एक का? Universe का अर्थ होता है एक शक्ति का काव्य। अतः जगत् में एक (ही) की सत्ता सिद्ध होती है। अगर जगत् में दो मालिक की सत्ता है, ऐसा कुछ समय के लिए मान लिया जाए तो बहुत समस्या उठ खड़ी होती है।

दोनों मालिकों में आपस में संघर्ष होगा। ब्रह्माण्ड असंतुलित हो जाएगा। दोनों संघर्ष में मनमानी करेंगे। पर जगत् में ऐसा नहीं देखा जाता। यदि आग का काम जलाना है तो सदैव जलाती है। वह कभी मनमानी नहीं करती। वह एक का अनुशासन मानकर चलती है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि कभी-कभार अग्नि जलाना बंद कर दे। अतः प्रकृति में मनमानी नहीं है। फिर जड़ स्वयं ज्ञानशून्य, चेतनाहीन होने के कारण विश्व को व्यवस्थित ढंग से संचालित कैसे कर सकता है? वो न स्वयं को जानता है और न चेतना को ही!

फिर काव्य में कोई शब्द, कोई मात्रा या शब्द जिस प्रकार घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता उसी प्रकार जगत् में भी कुछ घटाया और बढ़ाया नहीं जा सकता। और संसार में सभी वस्तुएं एक-दूसरे की पूरक एक दूसरे से सम्बन्धित और परस्पर

निर्भर है। इस जगत् में वास करने वाले सभी जीव कार्बन डाइऑक्साइड छोड़कर वायु को दूषित करते हैं। उतना ही जहरीला धुआं चूल्हे से बनता है और अन्य बमों के विस्फोट से वातावरण दूषित होता है। अतः ईश्वर ने वातावरण को शुद्ध करने के लिए अनन्त जंगल बनाए जो वातावरण को शुद्ध करते हैं और इसे स्वच्छ ऑक्सीजन देते हैं। हम सब अन्न खाते हैं और मल त्यागते हैं। धरती उसे पचाकर फिर से हमें अन्न देती है। भूमि को उर्वर बनाती है। सांप वायुमण्डल की विषैली गैसों को पीता है। अतः प्रकृति में से किसी भी वस्तु को घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता है।

प्रकृति में एक नैतिक नियम या आदर्श भी काम करता है। जैसे बच्चा जन्मते ही माता के स्तनों में दूध आ जाता है और बच्चे के दांत आते ही माता का दूध सूख जाता है। अतः प्रकृति का एक नियम है, जो प्रकृति को संतुलित किए हुए है। चूंकि प्रकृति में कुछ बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता इसलिए प्रकृति अपने आप में पूर्ण है। प्रकृति में नैतिक नियम या आदर्श काम करता है। इस तरह प्रकृति एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। इसलिए सृष्टि न कभी पुरानी पड़ती है न मरती है। हर नए बच्चे के जन्म पर खुशियां मनाई जाती है, मिठाई बंटती है, बाजे बजते हैं। नित्य सूर्योदय, नित नयी आशा, नया जीवन, नयी उमंग लेकर आता है। इससे उलटा महसूस नहीं होता। भौतिक वस्तुएं जैसे कि गीत या फिल्म को दूसरी या तीसरी बार देखने या सुनने पर Bore महसूस करने लगते हैं। पर सृष्टि के विषय में ऐसी बात नहीं है।

हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

इशा. उ., 15

सत्य का मुख सुवर्ण—जैसी चमकीली वस्तुओं से छिपा हुआ रहता है।

पूर्व और पश्चिम के दर्शन में दृष्टिभेद

पूर्व	पश्चिम
1. मुक्त वातावरण में दर्शन का जन्म। धर्म से इसका विरोध या सम्बन्ध नहीं।	1. पश्चिम का दर्शन एक समय तक चर्च का Hand bag फिर राजनीति का। दर्शन के क्षेत्र में जिन्होंने भी बाइबिल से भिन्न विचार रखे बहिष्कृत हुआ।
2. समाज के रंग में दर्शन का समावेश है।	2. यहां दर्शन सिर्फ दार्शनिकों तक सीमित।
3. दर्शन ज्ञान का समस्त स्रोत एवं अन्तिम ध्येय है।	3. अध्ययन के अनेक विषयों में एक विषय है।
4. दर्शन के अनुकूल जीवन पद्धति अपनाने का प्रयास।	4. थोड़ी-सी चोट में सारा दर्शन भूल जाते हैं।
5. आन्तरिक खोज	5. बाह्य खोज
6. मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार	6. सिर्फ Mind
7. आत्मा की तीनों अवस्था जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति पर विचार	7. सिर्फ जाग्रत् पर विचार
8. तुरीय पर विचार	8. यहां नहीं।
9. सुषुप्ति नयी स्फूर्ति देती है।	9. इस पर विचार नहीं।

आत्मतत्त्व

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरत् आत्म तत्वम्,
सच्चित्सुखं परमहंस गतिम् तुरीयम्।
यत्स्वप्न जागर्सुषुप्तमवैति नित्यम्,
तद् ब्रह्म निष्कलमहम् न च भूतसङ्घ:।।

(1) प्रात:काल मैं अपने हृदय में स्फुरण करने वाले आत्मतत्त्व (आत्मा, सच्चे अपने-आप, अपने सच्चे मैं) का स्मरण करता हूं। जो आत्मा हृदय में स्फुरण करता है, स्पन्दन करता है, प्रेरणा भरता है।

(2) आत्मा सदा सत् है।

(3) आत्मा चैतन्य रूप है।

(4) आत्मा सदा सुख रूप (आनन्द रूप) है।

(5) आत्मा परमहंस योगियों के लिए अंतिम गति है।

(6) आत्मा तुरीय (समाधि रूप) है।

(7) आत्मा स्वप्न, जागृत, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा है।

(8) आत्मा नित्य है।

(9) आत्मा अखंड ब्रह्मरूप है

(10) मैं वही आत्मा हूं।

(11) मैं, पंच महाभूतों का समूह, यह शरीर नहीं हूं।

(1) (क) हृदि संस्फुरत्—मैं (आत्मा) हृदय में स्पन्दन करता हूं। हृदय स्वयं स्फुरण नहीं करता। मृतक का हृदय धड़कना बंद क्यों हो जाता है? वही हृदय दूसरे व्यक्ति के शरीर में लगाने से कार्य करने लगता है। यंत्र ठीक है। किन्तु यंत्र के पीछे की शक्ति (आत्मा) विलग हो जाने से यंत्र बेकार हो जाता है।

(ख) हृदय=केन्द्र। मानव के केन्द्र में उसका आत्मा है। वही सच्चा मैं है। वही सच्चा मानव है। शरीर तो मात्र आवरण है।

(2) संस्फुरम = सत्ता, स्फूर्ति, स्पन्दन। आत्मा सदा सत् है। सत्—जिसकी सत्ता सदा रहे। जो काल के परे हो। आदि सत्यं युगादि सत्यं, भवति सत्यं, भविष्यति सत्यम्।

(3) आत्मा चैतन्य रूप है। प्रकाश रूप है, ज्ञान रूप है।

(4) आत्मा सुख स्वरूप है। आत्मानंद, निजानंद, परमसुख-परमशांति है।

(5) आत्मा परमहंस योगियों के लिए भी अन्तिम गति है।

अंतिम गंतव्य स्थान, अन्तिम लक्ष्य।

हंस = विवेक का प्रतीक। हंस नीर-क्षीर का विवेक करता है।

क्षीर रूप सत्नाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोई साध है, तत् का छाननहार।।

परमहंस = जो सत्-असत् के विवेक के पश्चात् सत् में प्रतिष्ठ हो जावे।

(6) आत्मा तुरीय (समाधि) रूप है।

(7) आत्मा तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा है।

(8) आत्मा नित्य है, शाश्वत है।

(9) आत्मा अखण्ड ब्रह्म रूप है। निष्कल = अखंड

(10) अहं (मैं) वही आत्मा है।

(11) (क) मैं पंचभूतों (पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश) का समूह यह शरीर नहीं हूं।

(ख) शरीर मेरा अल्पकाल के लिए मिला हुआ सेवक है। यह मेरा यंत्र है। यह मेरा रथ है। मैं स्वामी हूं। मैं यंत्री हूं। मैं महारथी हूं।

यो वै भूमा तत्सुखम। नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम।।

छा. उ., 7/23/1

जो महान् है, 'भूमा' है, वही सुख है, अल्प में सुख नहीं रहता। महान् और सुख दोनों अभिन्न हैं।

आत्मा यंत्री है शरीर यंत्र है

यंत्री यंत्र के माध्यम से कार्य करता है। अतः यंत्र जितना अच्छा होगा कार्य भी उतना ही अच्छा होगा। अतः शरीर जितना शुद्ध और स्वस्थ होगा कार्य भी उतना ही शुद्ध और स्वस्थ होगा।

स्वभाव और मनोविकार में अन्तर है

स्वभाव का अर्थ है स्वआत्मा। यानी आत्मा का भाव। अतः आत्म दृष्टि से स्वभाव किसी का बुरा नहीं हो सकता। मन के जो विकार हैं या मनुष्य में जो विकार हैं उसे मनोविकार कहते हैं। हमें अपने मनोविकार दूर करने चाहिए। मनोविकार को दूर करने का एकमात्र उपाय अध्यात्म है।

विद्या-अविद्या की उपासना का फल

जो अज्ञानी है वह अंधकार में है और ज्ञानी होकर जो उसका दुरुपयोग करते हैं वह और अधिक अंधकार में हैं। जो अज्ञान में भटकते हैं वे तो अंधकार में हैं ही, पर जो विद्या पाकर उसी में रत हो जाते हैं वे और अधिक अंधकार में भटकते हैं। क्योंकि विद्या अपने में प्राप्त गुणों, कलाओं की दुकानदारी शुरू कर देते हैं। वे और अधिक अंधकार में हैं। क्योंकि जो अज्ञान में है, अंधकार में हैं। पर जो विद्या पाकर, गुण पाकर उसको व्यवसाय में लगा देते हैं उसे आजीविका का साधन बना लेते हैं वे अधिक अंधकार में हैं।

जो पैदल चलते हुए गिरता है उसे अपेक्षाकृत कम चोट लगती है। पर जो साइकिल से गिरता है उसे अधिक, जो स्कूटर या फटफटी से गिरता है उसे उससे अधिक, टैक्सी से गिरता है उसे उससे अधिक और जो हवाई जहाज से गिरता है उसे उससे अधिक और जो रॉकेट से गिरता है उसे सर्वाधिक चोट लगती है। उसकी हड्डी-पसली का भी पता नहीं चलता। जो ब्रह्म तक पहुंचने वाला है उसके लिए आकाश तक उड़ान भरने लगा है। उस समय उन्हें अपने ज्ञान या सिद्धि का घमण्ड हो जाता है और उसका दुरुपयोग करने लगता है, वे अधिक अंधकार में हैं। इस प्रकार अंधे तो अंधेरे में भटकते ही हैं पर जो विद्या के अहंकार में डूब जाते हैं वे और भी अधिक भटकते हैं।

सांसारिक या भौतिक या व्यावहारिक वस्तुओं के ज्ञान को अविद्या कहते हैं। इस ज्ञान के द्वारा हम मृत्यु संसारसागर से तर जाएंगे। विद्या द्वारा मोक्ष या अमरत्व की प्राप्ति होती है। संसार रूपी भवसागर से तरने के लिए सांसारिक ज्ञान आवश्यक है। इसके बिना मृत्यु या संसार सागर को तर नहीं सकते हैं। पर यह सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है वरन् सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुंचने के लिए साधन मात्र है। बैंक में काम करने के लिए और उससे अर्थप्राप्ति के लिए बैंक का ज्ञान आवश्यक है। इससे अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। उसके लिए विद्या की आराधना आवश्यक है। भौतिक वस्तुओं का, भौतिक वस्तुओं के ज्ञान का अपना मर्यादित महत्त्व है। पर वह सर्वस्व नहीं है। अन्तिम एवं वास्तविक लक्ष्य तो परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करना है। अत: विद्या द्वारा मोक्षत्व की प्राप्ति होती है। सांसारिक या भौतिक वस्तुओं को माया या अपरा भी कहा गया है।

योगदा मठ

योगदा मठ में रहने वाले विदेशी लोग गले में क्रॉइस्ट की लॉकेट पहनकर योग का प्रचार करते हैं। उनसे पूछा गया कि आप योग का प्रचार करते हैं, किन्तु गले में ईसा का लॉकेट पहने हुए हैं? वे कहते हैं कि वे क्रिश्चियन हैं और क्रिश्चियन रहेंगे। Yoga is a Science. आप लोग पश्चिम में जाकर Botany, Geology, Physical Science आदि का अध्ययन करते हैं। Yoga is a Science अत: योग सीखने के लिए हम भारत आते हैं। तब उन्हें कहा गया कि हम जो पश्चिम में Science सीखने जाते हैं वह तो Material या Positive Sceince है, इसमें व्यक्ति नैतिक हो या अनैतिक, सच्चा हो या झूठा, चरित्रवान हो या व्यभिचारी हो, आस्तिक हो या नास्तिक हो, चाहे जो भी हो। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलाएंगे तो पानी बन जाएगा। चाहे कोई भी पानी में आवश्यक ताप होगा तो भाप बन जाएगी।

पर Yoga is Science of Life. योग जीवन का विज्ञान है। इससे शरीर, मन, वचन, बुद्धि, इन्द्रियों के अनुशासन का पालन करना पड़ेगा। यानी यम-नियमों के पालन के बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता। गलत व्यक्ति भले ही कुछ समय के लिए भौतिक उन्नति कर ले पर आध्यात्मिक उन्नति कभी नहीं कर सकता। आध्यात्मिक उन्नति की पहली ही सीढ़ी है मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना।

समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति।

प्रश्न. उ., 6

जो मनुष्य झूठ बोलता है वह समूल नष्ट हो जाता है।

मौन

वाणी (बोलने) से हमारी अपार शक्ति नष्ट हो जाती है। मौन से वह शक्ति नष्ट होने से बच जाती है। जब हम बोलते रहते हैं तो बहिर्मुखी बने रह जाते हैं। सांसारिक व्यवहार में लगे रहते हैं। अतः अन्तर्मुखी होने का अवसर नहीं मिलता। मौन रहने पर या होने पर हमें अन्तर्मुखी होने का अवसर मिलता है। जब वाणी का रिश्ता संसार से टूटता है तब आत्मा से जुड़ता है। तब अहं के विषय में चिंतन प्रारम्भ होता है। मैं कौन हूं, कहां से आया, कहां को जाना है?

मुनि मौन रहकर साधना करते हैं। वाणी संयम से विराट् शक्ति उत्पन्न होती है। जिसका वाणी संयम सिद्ध हो जाता है। उसके वाक् नहीं होकर मंत्र हो जाते हैं। वे मंत्र के द्रष्टा बन जाते हैं और उसके प्रसाद से लोग तृप्त हो जाते हैं।

संसार में जितने भी कलह-द्वेष, अन्याय, अत्याचार हैं वाणी के असंयम के कारण ही हैं। संसार में बड़े-बड़े युद्ध वाणी के असंयम के कारण ही हुए हैं।

मौन रहने से वाणी में शक्ति आ जाती है। उनकी कोई भी वाणी मिथ्या नहीं होती। मौन, वाणी का संयम वाक् तपस्या है। वाणी का संयम होने से मन संयमित हो जाता है। अतः मौन रहना वाक् संयम। मन संयम मौन साधना है। मौन का साधक जब मौन खोलता है, वाणी बोलता है तो वह शब्द नहीं रहकर मंत्र हो जाते हैं जो कभी भी मिथ्या नहीं होते।

वैकुण्ठ

जिसकी सारी कुंठायें समाप्त हो गई हैं।

भक्त भगवान् के हृदय में बसता है। भगवान् से पृथक् स्वर्गादि में नहीं।

देव भक्ति और देश भक्ति साथ-साथ चलती है।

हम मनुष्य निर्मित (मिट्टी की) मूर्तियों की तो पूजा करते हैं

और भगवान् निर्मित मूर्तियों को तिरस्कृत कर रहे हैं।

प्रेम का विषय आत्मा

जिस प्रेमी की सुन्दर चमड़ी पर हम लट्टू होते हैं उससे चिपके रहना चाहते हैं, उसी का सहवास चाहते हैं। उसका प्रत्येक अंग हमें प्यारा लगता है। उसे अपने बाहुपाश में कस लेते हैं। प्रेमविह्वल होकर बारम्बार चुम्बन करते हैं। उसके शरीर से सारा प्रेम दर्शाते हुए भी हमें तृप्ति नहीं होती। हर बार और अधिक वेग से हम उसकी चमड़ी की ओर लपकते हैं। पुनः चुम्बन की इच्छा दर्शाती है कि प्रथम चुम्बन से तृप्ति नहीं हुई और अनेकों बार चूमने के पश्चात् भी अधिक बढ़ी हुई होती है। यदि प्रेम शरीर या चमड़ी का ही विषय होता तो एक बार प्रेम कर लेने के पश्चात् ध्येयप्राप्ति का सुख मिलता। पुनः उसी चमड़ी के मुहताज न रहते। प्रेम रूपी भोग का भोजन कर लेने के पश्चात् भूख पहले से भी अधिक बढ़ी हुई न होती।

किन्तु प्रेम की निरन्तर भूख दर्शाती है कि चमड़ी के पीछे कुछ और है जिसके लिए हम तड़पते रहते हैं। हर बार उसे पाने के लिए हम वेग से प्रेमी की ओर दौड़ते हैं। किन्तु, उसकी चमड़ी से टक्कर खाकर हम लौट आते हैं। पुनः और वेग से उसकी ओर लपकते हैं और पुनः-पुनः निराश होते हैं। मांसल प्रेम की चरमावस्था में जीव अपने प्रेमी के शरीर तक को भी प्रेम के मार्ग में बाधा पाता है। वह मानो शरीर के पर्दे को फाड़ डालना चाहता है। कई प्रेमियों के जोरदार आलिंगन से प्रेमिकाओं का प्राणान्त तक हो जाता है। प्रेम के तीव्र उन्माद में कई बार प्रेमी प्रेमिका का गला घोंट डालते हैं। इस अवस्था में शरीर निश्चय ही प्रेम के मार्ग में बाधक बन जाता है।

यदि प्रेम चमड़ी का ही विषय होता तो अभी एक क्षण जिस शरीर को प्रेमी सौ-सौ बार चूम रहा था और गाढ़ालिंगन किए हुए था, आलिंगन के ही असह्य दबाव से उसकी मृत्यु हो जाने के कारण वह उस चमड़ी से प्रेम क्यों नहीं करता रहता? प्रेमिका के इस प्रकार मरने पर प्रेमी का रोना प्रेमिका के लिए कदापि नहीं होता। वह तो अपनी हानि पर रोता है कि हाय अब यह कूकर-सूकर लीला कैसे करूंगा?

विज्ञान से गति और अध्यात्म से संयम

विज्ञान ने हमें गति दी है। जो समाचार एक गांव से दूसरे गांव, देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में, एक देश से दूसरे देशों में पहुंचने में कई दिन-महीनों या सालों लग जाते थे और उस समय तक उस समाचार पहुंचाने का प्रयोजन ही समाप्त हो जाता था, आज विज्ञान के कारण चन्द क्षणों में पहुंचा सकते हैं और प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं।

एक गांव से दूसरे गांव जाने में या दक्षिण भाग से उत्तर भाग जाने में महीनों या सालों लग जाते थे वहां अब हम कुछ घंटों में पूरा भारत भ्रमण कर सकते हैं।

अत: विज्ञान की बहुत बड़ी देन या वरदान या उपलब्धि है कि उसने हमारे जीवन को गति दी है। हमारे जीवन को बहुत Fast कर दिया है।

विज्ञान के कारण ही आज छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य समाप्त हो गए हैं और बड़े-बड़े राष्ट्रों का जन्म हुआ है। विज्ञान के अभाव में देश में प्रशासन नहीं किया जा सकता।

पहले एक राज्य में हुई घटना का समाचार दूसरे राज्य को या तो मिलता ही नहीं था या मिलता था तो बहुत विलम्ब से (महीनों या सालों में) मिलता था। फलतः उसका प्रयोजन ही समाप्त हो जाता था। पर आज विज्ञान के कारण विश्व के एक भाग में हुई घटना की जानकारी कुछ ही समय में सम्पूर्ण विश्व में फैल जाती है। विज्ञान के कारण एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के निकट आ पाया है।

इस प्रकार विज्ञान ने जीवन को गति दी है पर इसने संयम नहीं दिया। संयम के अभाव में गति दुर्गति न बन जाए, गति विगति या अपगति न बन जाए। जैसे मोटर गाड़ी में और सब कुछ हो पर ब्रेक न हो तो उस मोटर गाड़ी का क्या हाल होगा? यह सहज ही समझा जा सकता है। अत: संयम के अभाव में विज्ञान हमें सर्वनाश की ओर ले जाएगा। संयम आध्यात्मिकता से मिलता है। अत: जीवन में गति विज्ञान से और संयम अध्यात्म से प्राप्त करना चाहिए।

जन्म-जन्मान्तर की स्मृति नष्ट क्यों हो जाती है?

ईश्वर बड़े दयालु और परोपकारी हैं। वे वृथा, अकारण, अनावश्यक ज्ञान को भुला देते हैं। वृथा ज्ञान का बोझा जन्म-जन्मान्तर तक ढोने में कोई तुक नहीं है, लाभ नहीं है। किसी से मेरे प्रति गलती हो गई है, अन्याय हो गया है या मेरे द्वारा किसी के प्रति अत्याचार हो गया है तो उस स्मृति को सदा ढोने से क्या लाभ! इस वैर को सदैव याद रखने से दोनों ही एक-दूसरे के वैरी बने रहेंगे। और दोनों का जीवन सदैव नरकमय बना रहेगा। इस जन्म में उस जन्म का वैर निकालने में ही एक-चौथाई जीवन चला जाएगा। आगे के लिए उन्नति नहीं कर पाएंगे। उसी वैर में उलझे रह जाएंगे और उसे भी उलझाए रखेंगे। इसलिए मनोविज्ञान में कहा गया है—कुछ भूलना अच्छी स्मृति का सद्गुण है। अन्यथा आगे की उन्नति की संभावना रुक जाएगी।

अगर हम एक पात्र में दूध लेना चाहते हैं तो उस पात्र में यदि कीचड़ या पानी भरा है तो उसे फेंकेंगे तभी न नया कुछ भर सकेंगे। दोनों बातें साथ नहीं हो सकतीं कि कीचड़ और दूध साथ रहे। अगर हम घर को स्वच्छ रखना भी चाहें और उसमें कीचड़ भी तो दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकती। उसी स्लेट में कुछ गन्दी बात लिखी हुई है जब उसे मिटाएंगे तभी न हम दूसरी अच्छी बात लिख सकते हैं। इसी प्रकार बुरी स्मृतियों को मिटाएंगे तभी न हम अच्छी बातों को सीख पाएंगे। इसलिए दु:ख, कष्ट, वैर, कटुता उत्पन्न करने वाली स्मृति मनुष्य स्वाभाविक तौर पर शीघ्र भूल जाते हैं या भूल जाने का प्रयास करते हैं।

हम बुरी स्मृतियों को मन से नहीं हटाएंगे तो अच्छी स्मृति के लिए स्थान ही नहीं बचता। अगर हम सुधरना चाहते हैं तो अच्छी स्मृति बनानी होगी तो उस ओर ध्यान एकाग्र करना होगा और बुरी स्मृतियों से आँख मूंद लेना होगा। यदि हम बन्दूक से कहीं गोली दागना चाहते हैं तो चलाने के समय या गोली दागते समय सब ओर से ध्यान हटाकर जिस स्थान पर गोली मारना है उस पर ध्यान एकाग्र करना पड़ता है यानी अन्य स्थानों के लिए चक्षु बंद कर लेना पड़ता है। उसमें एक आँख बंद कर लेते हैं और दूसरी भी आधी खोल कर, निश्चित स्थान

पर आँख गड़ाकर गोली दागते हैं। ठीक उसी प्रकार बुरी स्मृतियों से आँख मीचने पर ही अच्छी स्मृतियां बना पाएंगे। अन्यथा दोनों एक-दूसरे के प्रति आजीवन वैर में जलते रहेंगे, कष्ट पाते रहेंगे और जीवन को नरकमय बना लेंगे। फलस्वरूप दोनों पक्ष से वैर निकालने के लिए गलत पर गलत कार्य होंगे और जीवन पहले से भी बदतर हो जाएगा। हमने जो दूसरा जन्म उन्नति या तपस्या के लिए पाया वह कुकर्ममय बन जाएगा। प्रत्येक जन्म नए-नए कुकर्म या वैर ढोते रहेंगे। जीवन को और-और नरकमय बनाते जाएंगे। जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि वे भाव जब तक जगे रहेंगे तब तक अच्छे भाव बन ही नहीं पाएंगे। इसलिए साधु-सज्जन पुरुष दूसरे के अन्यायपूर्ण कार्यों पर दृष्टि ही नहीं दौड़ाते। अपनी स्मृति में स्थान ही नहीं देते या शीघ्र भूल जाते हैं।

कुछ साधु-सज्जन पुरुषों को ईश्वरीय विधान के अनुसार एक निश्चित समय तक न्याय एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए जन्म-जन्मान्तर की स्मृति रहती है। कभी-कभी निम्न श्रेणी के व्यक्तियों में भी कुछ समय के लिए पिछले जन्म की स्मृति बनी रहती है। पर अच्छी स्मृतियां नष्ट नहीं होती। वह जन्म-जन्मान्तर तक, जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो जाए तब तक, संस्कार और ज्ञान के रूप में साथ-साथ चलती है। मैंने जो ज्ञान इस जन्म में अर्जन किया वह जन्म-जन्मान्तर का संग्रह किया हुआ है।

लक्ष्मी तो नर्तकी स्वरूपा है, जो कुछ समय के लिए मनोरंजन करके अंगूठा दिखाकर चली जाती है। पर सरस्वती माता जब तक अपने पुत्र को मोक्ष नहीं मिल जाता तब तक उसे सहारा देती रहती है। वह कभी साथ नहीं छोड़ती।

कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं कि आत्मा सर्वज्ञ होने के कारण अच्छी-बुरी दोनों स्मृतियों को बनाए रख सकती हैं। हां, तो आत्मा जब सिद्ध हो जाएगी तब तो कोई समस्या ही नहीं रह जाएगी। आत्मा सिद्ध होने के पूर्व अनावश्यक और वृथा ज्ञान को भूलना ही पड़ेगा। हम अगर ऐसा चाहें कि फिल्म के भी सैकड़ों गीत याद करें, देश भक्ति के भी और आध्यात्मिक गीत भी तो यह कैसे सम्भव है? जैसे-जैसे ज्ञान की ऊंची सीढ़ी पर चढ़ते जाएंगे वैसे-वैसे नीचे वाली अनावश्यक स्मृति को छोड़ना होगा। अगर हम बी.ए. में पहुंचे तो आई.ए. से पहले तक वृथा बातों को भूलना होगा। क्योंकि बी.ए. की बातों को ग्रहण करने के लिए मस्तिष्क खाली करना होगा। इसलिए कहा गया है कुछ सीखना चाहते हैं तो हमेशा मस्तिष्क खाली रखो। अगर मस्तिष्क ही खाली नहीं करेंगे तो नया ज्ञान रखेंगे कहां? इसलिए मनुष्य को कहा गया है कि जितना हो सके भूल जाओ। सदैव मस्तिष्क को खाली रखो। अतः नए विचारों को ग्रहण करने के लिए पुराने विचारों को छोड़ना होगा।

तभी मनुष्य स्वाभाविक तौर पर जो बातें अनावश्यक सिद्ध होने लगती हैं वह अपने आप भूलने लगता है। तभी वह दूसरी बातों को ग्रहण कर सकता है।

गीता में अर्जुन को भी यही बात कहते हैं कृष्ण। अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मैं आपके दिव्य रूप को देखकर बड़ा आनन्दित हो रहा हूं। पर आप यह दिव्य रूप कब तक धारण किए हुए रहेंगे। क्योंकि शरीर तो क्षणिक होता है। तब भगवान् ने कहा कि तू समझा नहीं। तू ऐसा जान कि मैं ही सबके हृदय में बैठा हूं।

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्॥

भागवत, 11/23/43

मेरे सुख अथवा दुःख का कारण न ये मनुष्य हैं, न देवता हैं, न शरीर है और न ग्रह, कर्म एवं काल आदि ही हैं। श्रुतियां और महात्माजन मन को ही इसका परम कारण बताते हैं और मन ही इस सारे संसार चक्र को चला रहा है।

साध्य सुख है उसे पाने के साधन अनेक हैं

साधन एवं साध्य में अन्तर

प्रागैतिहासिक काल से ही मानव अपने साध्य को पाने के लिए प्रयत्न कर रहा है। वह साध्य है—सुख, अनिर्वचनीय सुख। इस सुख की कोई परिभाषा नहीं की गई। न ही की जा सकती है। यही कारण है कि कभी इसे स्वर्ग सुख कहा गया तो कभी मोक्षसुख तो कभी ब्रह्मानन्द। इस सुख की प्राप्ति के लिए मानव ने अपनी इन्द्रियों का उपयोग किया और इन्द्रियों की ग्रहण एवं धारण शक्ति को बढ़ाने के लिए साधनों की खोज की। उनका विकास किया। फलत: अनेक जीवन क्षेत्रों में अनेक प्रकार के साधनों को विकसित किया गया है। उदाहरण के लिए मोटर, वायुयान एवं रॉकेट मानव के पैरों के विकसित साधन हैं। जो हमें एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्रता से पहुँचाते हैं। इलेक्ट्रॉनिक यंत्र एवं कम्प्यूटर हमारे मस्तिष्क के विकसित साधन हैं। इसी प्रकार दूरबीन, सूक्ष्मदर्शक यंत्र आदि आँख के विकसित साधन हैं। इन सभी साधनों से हम अपने साध्य को प्राप्त करना चाहते हैं।

परन्तु जब कोई साधनों को ही साध्य मान ले तो स्थिति चिन्ताजनक हो जाती है। कोई व्यक्ति कार अथवा वायुयान को केवल साध्य मानकर अपने पास रख ले और कभी उपयोग में न लावे तो स्थिति भयावह हो जाएगी। इसी सन्दर्भ में जब हम नीति एवं राजनीति को परखें तो पाएंगे कि यह दोनों ही व्यक्ति एवं समाज के साध्य एवं सुख, मोक्ष एवं आनन्द को प्राप्त कराने के साधन हैं। परन्तु जब यह दोनों साधन ही साध्य बन जाते हैं तो स्थिति बदल जाती है। व्यक्ति और समाज दोनों ही पाखण्डी एवं आडम्बरी हो जाते हैं। सुख, मोक्ष एवं आनन्द कहीं दूर रह जाते हैं तथा नीति और राजनीति जीवन का अंग बनकर रह जाती है।

जिस प्रकार जप-तप, ध्यान-समाधि, कीर्तन-भजन आदि साधन चित्त की चंचलता को रोककर चेतना के प्रवाह को एक दिशा में लगाकर सुख, मोक्ष और आनन्द प्राप्ति के साधन मात्र हैं, परन्तु अधिकांश व्यक्तियों के जीवन में यह साधन साध्य ही रह जाते हैं और सुख, मोक्ष, आनन्द कहीं दूर ही रह जाते हैं। उसी प्रकार नीति एवं राजनीति भी व्यक्ति एवं समाज के सम्पूर्ण विकास, सामंजस्यपूर्ण सहअस्तित्व के साधन हैं, परन्तु, आज जो देख रहे हैं उसका सार यह है कि समाज में सुख, शांति, आनन्द लुप्त होता जा रहा है। उसके स्थान पर भ्रष्टाचार, अत्याचार, बलात्कार, हत्या, अपहरण, लूट-खसोट बढ़ रही है।

वास्तविक सुख कहां से एवं कैसे प्राप्त हो?

कोई दूसरा सुख-दु:ख नहीं देता। इसका कारण हम स्वयं हैं। हम जागे हुए कब माने जाएंगे? जब स्वाभाविक रूप से विषयों से वैराग्य हो जाए और यह बोध हो जाए कि संसार एक सपना है।

संत को लोग भला-बुरा कहते हैं। लेकिन सच्चे संत उससे प्रभावित नहीं होते। क्योंकि वे जानते हैं कि वह सुख-दु:ख नहीं दे सकता।

हमको हमारे सिवा कोई सुखी नहीं कर सकता है और न कोई दु:खी कर सकता है। पर हम सुख-दु:ख का कारण दूसरे पर आरोपण करते हैं। सुख-दु:ख के कारण हम स्वयं हैं।

अपना तरीके गम कोई अपने सिवा न था
हम जिस तरफ चले थे उधर रास्ता न था
पत्थर सुलग रहे थे चेहरे पर परछाइयों के शहर
तन्हाइयां न पूछो अपने शरीर के गम, कोई अपने सिवा न था।

सुख-दु:ख मन के खेल हैं। ऊनी कोट एक व्यक्ति को सर्दी में सुख देता है। वही ऊनी कोट दूसरे व्यक्ति को गर्मी देता है। फलत: दु:ख या कष्ट होता है। अगर कोट में सुख-दु:ख होता है तो समान परिस्थिति में सभी को समान रूप से सुख-दु:ख देता। पर ऐसा नहीं होता।

दो व्यक्ति भूखे हैं। दोनों को मिठाई दी गई। उसी समय दोनों को सूचना मिलती है। एक व्यक्ति की मृत्यु की जो एक का मित्र था, दूसरे का शत्रु था। तो वही मिठाई एक को तृप्ति देती है तो दूसरे को वितृष्णा? यद्यपि बाहर समान परिस्थिति है कि दोनों भूखे हैं किन्तु दोनों की मन:स्थिति भिन्न-भिन्न है। अत: सुख-दु:ख मन पर निर्भर करता है। यदि मन सुखी है तो रुखे-सूखे भोजन में तृप्ति मिल जाती है और यदि मन दु:खी है तो मेवा-मिष्टान्न भी जहर सदृश्य हो जाते हैं।

वैसे ही ऊपर के उदाहरण में कोट सुख-दु:ख का कारण नहीं है। अपने अन्दर की सर्दी या गर्मी ही सुख-दु:ख का कारण है। कोट तो निमित्त मात्र हुआ।

भगवान् बुद्ध को लोग गालियां देते थे। लोग गाली देते-देते थक जाते थे। पर बुद्ध वैसे ही मौन और अपनी स्वाभाविक मंद मुसकान की स्थिति में रहते थे। हम आपको इतनी गाली देते हैं फिर भी आप क्रुद्ध नहीं होते? तब बुद्ध एक ही उत्तर देते थे। मैंने भेंट लेना बंद कर दिया है। जब भेंट लेता था तब विचलित होता था। अब मैं अपरिग्रही हो गया हूं। ऐसी घटनाएं स्वामी रामतीर्थ के साथ भी है।

अतः सुख-दु:ख मन पर निर्भर है। ये सब मन के खेल हैं। यदि मन में जब तक काम है तभी तक स्त्री को पाने पर सुख होता है। जब मन में काम सूख जाता है तब स्त्री को पाने से न हमें सुख होता है, न दु:ख वरन् हम उदासीन हो जाएंगे। उसके प्रति आकर्षण-विकर्षण समाप्त हो जाएगा और वह हमें विचलित नहीं कर सकेगी।

वैसे ही यदि हमारे मन में स्वाद की भूख है तो हमें स्वादिष्ट भोजन सुख देगा। रूखा-सूखा दु:ख देगा। पर जब मन की भूख मिट जाएगी, तब भोजन न हमें सुख देगा न दु:ख, तब हम शरीर रक्षार्थ भोजन लेंगे। जब मन तृप्त है, शांत है, तब संसार की कोई भी घटनाएं हमें विचलित नहीं कर सकती। संसार की क्रूरतम घटनाएं भी हमें विचलित नहीं कर सकती। संसार का कोई भी विषयसुख हमें अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता। जिसने इन्द्रिय सुख पर विजय पा लिया उसने सारे संसार पर विजय पा लिया। वे संसार की घटनाओं को तो नहीं बदल सकते पर उसके प्रभाव से अवश्य मुक्त रह सकते हैं।

जैसे—बंदा वैरागी की यातनापूर्ण मृत्यु। गुरु गोविन्दसिंह एवं उनके पुत्रों की शहादत। स्वामी रामतीर्थ आदि।

अतः सुख-दु:ख मन के खेल हैं। स्वयं हम ही उसके कारण हैं। उसके लिए दूसरों को न कोसें।

कबीरदास कहते हैं—

कबीरा तेरी झोपड़ी, गल कटियन के पास,
करेगा सो भरेगा, तू क्यों भया उदास।

अतः हम स्पष्ट ध्यान में रखें कि हमें कोई सुखी या दु:खी नहीं कर सकेगा। किसी में ऐसी क्षमता ही नहीं है। हमारे अन्दर ही सुख-दु:ख है। उसके प्रकटीकरण के लिए मात्र वे निमित्त कारण बन जाते हैं और जब हमारे मन के सुख-दु:ख समाप्त हो जाएंगे तब संसार में किसी की भी क्षमता नहीं कि हमें सुखी-दु:खी करे या उसका प्रकटीकरण करे। कुएं में पानी होगा, तभी तो निकालेंगे पर जब कुएं का पानी सूख जाए तब कैसे निकालें?

सच्ची मौत

शरीर के पांच आवरण हैं या पांच कोश हैं।

मृत्यु केवल अन्नमय कोश की होती है। यह अन्नमय कोश ही सभी रिश्ते-नातों का केन्द्र है। संसार का रिश्ता भी इसी से संबद्ध है। लोग शेष चार कोशों को जानते नहीं। जिन कारणों से आप उत्पन्न हुए हैं, जब तक वे कारण बने हुए हैं तब तक पुनः-पुनः जन्म होता रहता है।

शरीर मरता है आत्मा नहीं

केवल मौत की ही मौत होती है।

सच्चे अर्थ में मरना पुनर्जन्म से मुक्त होना है।

मृत्यु के देवता शिव हैं। सच्ची मृत्यु शिव की प्राप्ति ही है। जब तक कुण्डलिनी-शक्ति शिव से न मिल जाए तब तक केवल स्थूल शरीर की मृत्यु होती रहती है तथा जीव पुनः-पुनः नए शरीरों को धारण करता रहता है।

रामलीला में एक दिन हनुमान का पार्ट करने वाला व्यक्ति कम हो गया। एक छेदन हलवाई को पार्ट समझाया गया। मंच पर जब रावण ने गरजकर कहा—बता तू कौन है? उसने डरकर कहा—मैं छेदन हलवाई हूं। रावण के पुनः पूछने पर उसने कहा मैं सच बोलता हूं, झूठ नहीं बोलता। मैं छेदन हलवाई हूं।

इसी प्रकार जब हम आत्मा का केवलमात्र शाब्दिक ज्ञान रट लेंगे तो अनुभूति नहीं होगी। तब यमराज के द्वारा डांटकर पूछने पर हम भी सारा आत्मा का ज्ञान भूल कर अपने को शरीर बताने लगेंगे।

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।।

प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है।

—श्री सनत्सुजातीय

क्रोध

क्रोध का सर्वप्रथम प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। मस्तिष्क गर्म हो जाता है। दूसरा प्रभाव हृदय पर पड़ता है। हृदय गर्म और धड़कन तेज हो जाती है। तीसरा प्रभाव पाचन तंत्र पर पड़ता है। चौथा, शरीर का खून जलने लगता है। मुख की सौम्यता नष्ट होने लगती है। अत: क्रोध पर अपना वश होना चाहिए। हमें सोचना चाहिए कि क्रोध के द्वारा हमारी समस्या का समाधान नहीं होता है। हम जिस पर क्रोध करते हैं उसे अनुकूल, अपना समर्थक या अपने अनुसार चलाना चाहते हैं। तो क्या वह अपने अनुकूल बन जाता है? इस पर विचार करना चाहिए कि क्या हमारी समस्या का समाधान हो जाता है? इसके उलट जिस पर क्रोध करते हैं वह अपने प्रतिकूल बन जाता है। अत: हमारा अपने क्रोध पर वश होना चाहिए।

महावीर ने अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए क्रोध पर पूर्ण वश कर लिया था। पर सामाजिक व्यवहार के लिए थोड़ा बहुत क्रोध आवश्यक है। बड़ों के क्रोध से छोटों को शिक्षा मिलती है। जैसे माँ या गुरु के क्रोध से बच्चा समझ जाता है कि मेरे व्यवहार से माँ या गुरु नाराज हैं। और ऐसा व्यवहार करने पर मुझे दण्ड मिलेगा। अत: इस क्रोध से बच्चे को शिक्षा मिल जाती है। और उसका सुधार हो जाता है और माँ का भी काम बन जाता है।

क्रोध के समय इतना अवश्य ध्यान होना चाहिए कि उससे न अपनी हानि हो और न जिस पर किया जाए उसकी हानि हो। शांति से अपना काम भी बन जाए और बच्चे का सुधार भी हो जाए। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि क्रोध उसके सुधार के बजाय उसकी हानि या नाश के लिए हो जाता है। और कहीं-कहीं क्रोध से अपनी हानि भी कर बैठते हैं।

समाज के गुंडा तत्त्व और शत्रु तत्त्व पर रोष आना आवश्यक है। नहीं तो उन पर नियंत्रण असम्भव हो जाएगा। इन तत्त्वों से विनम्रता से प्रार्थना करने पर इनकी दुष्टता बढ़ती जाती है और विनय करने वाले को कायर या डरपोक समझते हैं और उसकी उपेक्षा करते हैं, जैसे रावण, विदेशी शत्रु आदि।

सम्मोहन मनोविज्ञान
(हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक के नाम पत्र)

श्रीमान्, मैंने आपके समाचार पत्र के साप्ताहिक अंक (26 जुलाई) में श्री वरकतराम कालिया द्वारा लिखा लेख सम्मोहन मनोविज्ञान पढ़ा। लेख मनोरंजक, ज्ञानप्रद एवं विक्षिप्त रोगियों की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के विषय में है। यह लेख मानसिक और स्नायु रोगियों पर शोध के विषय में है। यह वयस्कों में मनोरोगों की चर्चा द्वारा बताता है कि इसके बीज बचपन की कुछ घटनाओं में छुपे होते हैं। इसके अतिरिक्त इस लेख में कुछ अधिक नहीं है। मनो स्नायु रोगों का विशेष ज्ञान एवं चिकित्सा मनोविज्ञान या मनोचिकित्सा कहलाता है। यह सम्मोहन मनोविज्ञान नहीं होता है। माननीय लेखक ने न तो मनोचिकित्सा पर प्रकाश डाला है और न ही विज्ञान के रूप में इसकी प्रयोगविधि समझाई है। लेख के अन्त में केवल एक बार उन्होंने मनोचिकित्सा—Psychotherapy शब्द का प्रयोग किया है। इससे पाठकों को इस लाभदायक एवं विशेष चिकित्सा पद्धति का ज्ञान नहीं मिलता।

हम कई व्यक्तियों से मिलते हैं जो अपने आपको वातावरण के अनुसार ढाल न सकने के कारण खिन्न या दुःखी से रहते हैं। व्यक्तित्व के असामंजस्य का कारण मुख्यतया शारीरिक रसायन, स्नायुतंत्र में गड़बड़ी, प्रेरणा या उद्देश्य की कमी, बचपन की कुंठाएं या प्रतिकूल वातावरण हो सकते हैं। यह भावनात्मक अव्यवस्था या घबराहट जो व्यक्तित्व पर दुष्प्रभाव डालते हैं, तीन प्रकार के हो सकते हैं—(i) Shut in personality अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (ii) Individualism निजीत्व, अकेलापन (iii) Poor compensation. इन अवस्थाओं के आन्तरिक कारण मनोचिकित्सा के अन्तर्गत पढ़े जाते हैं।

मुख्य समस्या इस अव्यवस्था या घबराहट को ठीक करने के उपाय खोजना है। इस उपचार को Psychotherapy, मनोउपचार, मनोचिकित्सा कहते हैं। यह उपचार प्रणाली Psychoneuratic मनोस्नायु एवं मानसिक रोगों के उपचार हेतु अव्यवस्थित व्यक्तित्व को समझती है और धीरे-धीरे उपचार करती है। लेखक महोदय ने इन रोगों के उपचार के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। प्रथम चरण में

तो रोग का सही निदान करना, फिर दूसरे चरण में रोग का उपचार हो सकता है। आधुनिक मनोचिकित्सकों ने शोध के बाद यह उपाय सुझाए हैं—

(अ) Suggestion सुझाव देना—1. आत्म सुझाव 2. औरों से सुझाव 3. सीधा, स्पष्ट सुझाव 4. अप्रत्यक्ष, परोक्ष सुझाव 5. प्रतिकूल सुझाव 6. तर्कसंगत सुझाव।

(ब) psychoanalysis मनोविश्लेषण-यह डॉ. फ्रॉयड का तरीका था। इसमें हमें रोगी की भूतकाल की स्मृति एवं कुंठाएं बतानी है, जिनके आधार पर रोग के मूल कारण का निदान हो पाता है।

(स) Hypnosis सम्मोहन—इस प्रक्रिया द्वारा मन को शांत और ग्रहणशील बनाया जाता है। यह उद्विग्न और उन्मादी मन को शांत करने का बहुत उत्तम उपाय है। Hypnotic Psychotherapy सम्मोहन मनोचिकित्सा के अन्तर्गत लेखक महोदय को इन उपायों की विस्तृत जानकारी देनी चाहिए थी।

(द) Faithcure पूर्ण विश्वासात्मक चिकित्सा—यद्यपि यह कोई वैज्ञानिक चिकित्सा नहीं है। फिर भी, कई रोगों को दूर करने के लिए इसका बहुत मनोवैज्ञानिक महत्त्व है।

क्या विद्वान् लेखक महोदय, जिन्हें इस क्षेत्र में शोध का अवसर भारत एवं विदेश में मिला है, प्रिय पाठकों को मनोचिकित्सा के क्षेत्र में आधुनिक शोध ज्ञान के बारे में और ज्ञान देंगे?

काममय एवायं पुरुष इति। स यथाकामोभवति तत्क्रतुर्भवति।
यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते। यत्कर्म कुरुते तदभि संपद्यते।।

वृहदा. उ., 4/4/5

यह मनुष्य कामनामय ही है। वह जैसी कामनावाला होता है वैसा ही संकल्प करता है, जैसे संकल्प वाला होता है वैसा ही कर्म करता है। वह जैसा कर्म करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है।

सर्वव्यापी मन की सत्ता साधना एवं Mental Telepathy से सिद्ध होती है

दो मित्र एक समय में दूर-दूर रहकर भी अपने मन की बात साधना के द्वारा कर सकते हैं। मान लीजिये दोनों प्रातः आठ बजे एक-दूसरे से बात करें। यानी स्वयं ही उससे बात करे। स्वयं ही उसका उत्तर दे। और लिपिबद्ध कर दोनों को मिलाएंगे तो प्रथम में लगेगा एक पश्चिम की ओर दूसरा पूर्व की ओर यानी दोनों की बातों में कोई तालमेल नहीं बैठेगा। पर साधना के द्वारा एक महीने-दो महीने या साल भर के बाद वे एक-दूसरे के मन की बात जानने में समर्थ हो जाएंगे, Telephone या Television या Wireless की भांति। योगी पुरुष साधना करके ही भविष्य की बातों को जान लेता है फिर भविष्यवाणी भी कर देता है।

साधारण मनुष्यों की आँख पर पर्दा पड़ा हुआ है भविष्य की बातों को जानने में। वहीं योगी को स्पष्ट भविष्य की बात दीखने लगती है। जितनी सहज और गहन साधना होगी उससे भविष्य में होने वाली घटनाएं उसको उतनी ही स्पष्ट दीखेगी। तभी तो योगी त्रिकालदर्शी हो जाते हैं। वे बता देंगे भूत में क्या घटित हुआ, वर्तमान में क्या घटित हो रहा है और भविष्य में क्या होगा।

साधारणतया भी जब हम एक या दूसरे के मन को स्पर्श करते हैं तभी हम किसी के बारे में सोचते हैं। और वह तत्क्षण आ पहुंचता है। दूसरी बात हम एक वस्तु की जैसी अनुभूति करते हैं सौ व्यक्ति भी वैसी ही अनुभूति करते हैं। इसका अर्थ है एक विश्वमन या विश्व चेतना है जो सभी में है। नहीं तो सभी कोई उस वस्तु को अलग-अलग अनुभूत करते।

ऋषियों के संदेश का पालन ही हमारा राष्ट्र धर्म है यानी धर्म तत्त्व

मानव जीवन धर्म के बिना अपूर्ण है। भारत में धर्म शब्द बड़ा सार्वभौम एवं विश्वजनीन है। अतः हिन्दू धर्म ही वस्तुतः धर्म है। शेष केवल मजहब, मत-सम्प्रदाय आदि हैं।

भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म व्यक्ति एवं समाज को अपने-अपने कर्तव्य धर्म में बांधने वाला आधारभूत तत्त्व है। यहां धर्म जैसे निगूढ़ तत्त्व की व्याख्या केवल शास्त्रों में ही नहीं की गई वरन् इस धर्मप्राण देश के धर्म विग्रह महापुरुषों ने अपने जीवन के सजीव शास्त्र के द्वारा भी धर्म तत्त्व पर जीते जागते अनुपम भाष्य प्रस्तुत किए हैं। अतः महापुरुषों के मार्ग का अनुसरण ही धर्म का सुगम राजमार्ग है।

अनादि-काल से भारत के ऋषियों ने धर्म की व्याख्या की है। लेकिन किसी ने अन्तिम नहीं माना। क्योंकि उससे चिन्तन में गतिरोध होता है। राष्ट्रधर्म, मानव धर्म एवं स्वधर्म भारतीय संस्कृति की विशेषता है। अपने प्रति, परिवार एवं मातृ भूमि के प्रति जो हमारा महती कर्तव्य है, वही हमारा धर्म है। अतः स्वदेश एवं स्वधर्म की रक्षा ही भारतीयों का धर्म है।

अपना धर्म माता के समान पवित्र होता है। जिस तरह हमें अपनी माता को बदलने का अधिकार नहीं है, उसी तरह हमें धर्म बदलने का अधिकार नहीं है। ईसाई पादरियों के बहकावे में आकर हमें अपना धर्म नहीं बदलना चाहिए। क्योंकि ये लोग हमें बहकाकर भारत के प्रति विद्रोह को उकसाते हैं।

धार्मिक और नैतिक में अन्तर

व्यक्ति एवं समाज के जीवन में सामंजस्य बनाए रखने के लिए जो नियम बनाये जाते हैं उसे नीति कहा जाता है। जब तक यह नियम हमारे लिए माननीय बने रहते हैं, एक प्रकार का कर्तव्य बने रहते हैं तब तक वह धर्म नहीं बन पाते। हमारी धारणा नहीं बन पाते। केवल नीति बने रहते हैं। जब कोई नियम हमारी आत्मा में, संस्कारों में प्रविष्ट हो जाता है तब वह धर्म बन जाता है। उदाहरण के लिए एक पहरेदार जब अपने कार्यभार को संभाले रहता है तब तक देख-भाल करना उसका कर्तव्य होता है। जब उसका समय समाप्त हो जाता है तब उसका कर्तव्य भी समाप्त हो जाता है। परन्तु यदि किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा में ही कोई बात समा गई तब प्रतिक्षण वह उसी बात के लिए काम करता रहेगा तो वह धार्मिक बन जाता है। धर्म बन जाता है।

नैतिक व्यक्तित्व एक आवरण है। एक साधन है। जबकि धार्मिक व्यक्तित्व एक साम्यभाव है, एकरूपता है, एकरसता है। नैतिकता एक साधन है। धार्मिकता हमारा साध्य है। भौतिक व्यक्तित्व अवसर मिलते ही अपने आवरण को उतार फेंकता है और अपने नंगे रूप में प्रकट हो जाता है, जबकि धार्मिक व्यक्तित्व प्रत्येक परिस्थिति में भी वैसा रहता है। अर्थात् एक जैसा रहता है। नैतिकता अभावात्मक है, धार्मिकता भावात्मक है। नैतिकता सकाम कर्म है, धार्मिकता निष्काम है। इन्हीं कुछ विभिन्नताओं के द्वारा धर्म एवं नीति का अन्तर समझा जा सकता है।

धर्म सर्वाधिक मूल्यवान

मानव की समस्त संपदाओं में यदि कोई सर्वाधिक मूल्यवान संपदा है जिसे न खरीदा जा सकता है न बेचा जा सकता है, न नीलाम किया जा सकता है, न लूटा जा सकता है तथा न ही मानव द्वारा चुनाव किया जा सकता है तो वह धर्म ही है, जो केवल ईश्वरीय वरदान है तथा उसको बदलने या लूटने का मनुष्य का प्रयास एक अक्षम्य अपराध है। शत प्रतिशत भारत भक्ति के अधिष्ठान के बिना भारतीय राष्ट्र का निर्माण अधूरा रहेगा। अत: अभारतीय निष्ठा के वायुमण्डल को शुद्ध कर पावन भारत निष्ठा का प्रसार ही शुद्धि हवन का उद्दिष्ट है।

धर्म के नाम पर राष्ट्रीयता लूटने वालों से सावधान

भारत भूमि पर पैदा होने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारत का लाल है। भारत भूमि सभी धर्मों की माता है। जो लोग धर्म के नाम पर जनता को गुमराह करते हैं; उन्हें विघटन पैदा करने के लिए प्रेरित करते हैं, वे निश्चय ही भारत के शत्रु हैं। वे नहीं चाहते कि भारत एक शक्ति सम्पन्न, आत्मनिर्भर राष्ट्र बने। वे नहीं चाहते कि भारत का कल्याण हो। धर्म के नाम पर विदेशी पादरी देश को बांटने का षड्यंत्र करते हैं। इन धोखेबाज पादरियों से हमें सावधान रहना चाहिए।

सन्त कौन है?

जिस मूल ग्रंथ तक जनसाधारण की पहुंच हो नहीं पाती। वेद मूल ग्रंथ है जो अलंकारों से अलंकृत, रसों एवं छंदों में उलझी एवं जकड़ी हुई आकार में विशाल, व्यापक, विस्तृत और भाषा में जटिल, दुरूह एक शब्द के कई अर्थ रखनेवाली है। अतः जनसाधारण की पहुंच के बाहर है। वहां संत ग्रंथों में गोता लगाकर उसके सारभूत आदर्शों को सरस भाषा में जनता तक पहुंचाता है। अन्यथा स्वयं शास्त्रों में गोता लगायेंगे तो समुद्र की पानी की तरह खारा लगेगा, उसे ही संत बरसात के पानी की तरह मीठा बना देते हैं। जिस प्रकार किसान धरती को उर्वर कर उसकी छाती को चीर कर उसमें से सोने के समान चमकते हुए, चांदी से दहकते हुए अन्न को अंकुरित करता है। उसी प्रकार संत लोग उनके हृदय को उर्वर बनाकर उसमें बीज रूपी संस्कार बोते हैं और खाद-पानी देकर उसे अंकुरित कराते हैं। मनुष्य में स्वाभाविक तीन वृत्तियां पाई जाती है—वित्तैषणा, पुत्रैषणा एवं लोकैषणा। संत इन पर नियंत्रण करते हैं और सिर्फ भौतिकता से चिपटे हुए मनुष्य को ऊपर उठाकर उसे धर्ममय जीवन बिताने के योग्य बनाते हैं।

स्मृति

वैदिक तत्त्वज्ञान को देश, काल, पात्र, परिस्थिति में, दैनिक व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार लाया जाय, इसकी स्मृतियों के आधार पर व्याख्या की गई है।

पुराण

वैदिक तत्त्वज्ञान जैसे नीरस, शुष्क विषय को सरस, रसीला बनाकर रूपक, इतिहास-कथा के रूप में ढालकर जनसामान्य को समझाने का प्रयास किया गया है।

उत्सव

उत्सव ही वास्तव में किसी जाति के प्राण माने जाते हैं। क्योंकि उत्सव किसी भी जाति अथवा राष्ट्र में नवीन स्फूर्ति व प्राण फूंकने में समर्थ होते हैं। उत्सव प्रेम, आनन्द और नई स्फूर्ति तथा नवजागृति का संदेश देते हैं।

उत्सवों में होली का विशेष महत्त्व है। क्योंकि चारों वर्ण अपना वर्णभेद भुलाकर इसमें भाग लेते हैं।

धर्म भूमि भारत में जितने भी पर्व या त्योहार मनाये जाते हैं उनका कोई न कोई वैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक आधार अवश्य है।

संस्कृति का स्वरूप निर्धारण

समास में—दो पदों को निकट लाकर रख दिया जाता है और उनको जोड़ने वाले शब्द 'और, का, की,' आदि को हटा दिया जाता है। पर दोनों पदों का अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व या व्यक्तित्व कायम रहता है। जब चाहे इन दोनों पदों को अलग कर सकते हैं। जो दो पद का एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है वो दोनों को निकट लाकर रख देते हैं। जैसे—माता-पिता, पिता-पुत्र आदि।

समन्वय—समन्वय में दो समान महत्त्व की वस्तुएं अपना-अपना पृथक् अस्तित्व-व्यक्तित्व खो करके एक नई उत्कृष्ट वस्तु बना देती हैं। दोनों का पृथक् अस्तित्व खो जाता है। फिर उसे चाहने पर भी अलग नहीं किया जा सकता। जैसे—नीबू और चीनी मिलकर उत्कृष्ट पेय शर्बत बनता है। दूध और चीनी मिलकर उत्कृष्ट पेय मीठा दूध बनता है।

समरसता—जैसे गंगा में गंदी-गंदी नालियां और छोटी-मोटी नदियां आकर उसमें विलीन हो जाती हैं। गंगा के पानी को गंदा कर देती हैं। गंगोत्री या ऋषिकेश के गंगा का जल हावड़ा में पहुंचते-पहुंचते गंदा हो ही जाता है, यह लाचारी है। सहन कर लिया जाता है। इसलिए उन छोटी-छोटी नालियों या नदियों ने अपना अस्तित्व ही विलीन कर दिया है, उससे गंगा थोड़ी दूषित भले ही हो जाए पर बाद में गंगा उसे आखिर अपने में पचाकर गंगासागर ही बना देती है।

भारतीय संस्कृति शक, हूण, कुशाण की संस्कृतियों का भारतीयकरण करके इस तरह से पचा गई कि उनके पृथक् अस्तित्व के चिह्न खोजने पर भी नहीं मिलते। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल में अपने शुद्ध रूप में और भी अच्छी थी। यह नहीं कि शकों-कुशाणों की संस्कृति से भारतीय संस्कृति अच्छी हो गई है। अन्य संस्कृतियों ने तो इसके स्वरूप को विकृत ही किया है। पर चूंकि उन संस्कृतियों ने अपना अस्तित्व भारतीय संस्कृति में विलीन कर दिया तो भारतीय संस्कृति भले ही कुछ मलिन हुई हो पर भारतीय संस्कृति ने उनका भी भारतीयकरण करके, अपने अन्दर उसको पचाकर वैदिक आर्य संस्कृति ही बना दिया।

हमें सामासिक संस्कृति भी नहीं चाहिए। जिसमें दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व सदैव के लिए बना रहता है।

हमें समन्वय भी नहीं चाहिए। क्योंकि इसमें दो समान महत्त्व की वस्तुएं चाहिए।

हमें समरसता चाहिए। कोई कहे इस्लामी संस्कृति और भारतीय संस्कृति में समरसता होनी चाहिए तो कहना ही गलत होगा। क्योंकि इस्लामी संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को प्रारम्भ से ही नष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी संस्कृति को हमेशा अलग-जुदा रखने का प्रयास किया है। अपनी संस्कृति के आधार पर देश का बंटवारा किया और अभी भी उनका यही प्रयास चल रहा है।

अगर भारतीय संस्कृति से बाहर किसी संस्कृति में उत्कृष्ट वस्तु मिलती है तो पहले खोजें, वह हमारी संस्कृति में भी विद्यमान थी कि नहीं। अगर थी पर बीच में लुप्त हो गई तो उसे पुनः जीवित करें और अगर नहीं तो उसका भारतीयकरण करके अपनी संस्कृति में समाविष्ट कर लें।

हिन्दू संस्कृति की अपूर्व शक्ति और दीघार्यु का सर्वप्रमुख कारण प्रकटतः भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और परस्पर विरोधाभासी आस्थाओं की व्यवस्थित तथा समायोजित करने की इसकी क्षमता है। अनेक रूपी तत्त्वों को समायोजित करने और उन्हें सामाजिक और अलग पहचान देने की इसकी योग्यता संभवतः मानव इतिहास में अभूतपूर्व हैं।

—**विलियम कॉस**

भारतीय संस्कृति

यद्यपि संस्कृति भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधी जा सकती है, फिर भी, जिस भूमि पर वह निर्माण होती है उस भूमि से संबंध अवश्य रखती है। और वह उस भूमि के नाम से ही विश्व में पहचानी जाती है।

आपने भारत की सामासिक संस्कृति की वृथा कल्पना का पूर्ण खण्डन किया है। भारतीय संस्कृति (Indian Culture) से किसी भी खिचड़ी संस्कृति की कल्पना तक विश्व के विद्वान् नहीं कर सकते।

भारतीय संस्कृति से शुद्ध हिन्दू संस्कृति का ही बोध होता है। 'इंडियन फिलॉसफी' से वेदोपनिषद्, प्राचीन दर्शन तथा जैन व बौद्ध दर्शनों का ही निर्देश पाया जाता है। भारतीय संस्कृति के विशेष स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि अपनी यह संस्कृति पशुमानव से मानव, मानव से देव मानव, देव मानव से ब्रह्म तक जीव को उठाने वाली प्रक्रिया क्रमशः व्यक्ति के सामने रखकर उसको प्रत्यक्ष रूप से धीरे-धीरे समझा-बुझाकर व्यष्टि से समष्टि तक उसका विकास साधन करती है और आत्मदर्शन कराती है। इसलिए पुरुषार्थों की योजना भी उसमें है, जिसमें अर्थ और काम भी समाविष्ट हैं।

संस्कृति

संस्कृति उन आधारभूत मूल्यों का विकास एवं अध्ययन है जिनसे मानव जीवन को वास्तविक मूल्य मिलता है तथा नर-पशु संस्कारित होकर सच्चे नरत्व, देवत्व एवं ब्रह्मत्व को पाता है। जो संस्कृति मानव का संस्कार कर उसे परिष्कृत न कर सके वह संस्कृति कहलाने योग्य नहीं है। उदाहरणार्थ—अमरीका आदि पाश्चात्य देशों में जीवन के सुख-साधनों का विकास कर जीवन स्तर ऊंचा किया गया है। किन्तु, मानवीय गौरव गरिमा का स्तर नीचे गिर गया है। पश्चिम के उत्तम रोटी, कपड़ा, मकान आदि सुख-साधनों से सम्पन्न किसी विलासी व्यक्ति की तुलना में महात्मा गांधी जैसा लंगोटधारी अथवा वनवासी राम जैसा वल्कल वस्त्रधारी महापुरुष सांस्कृतिक दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

हमारी संस्कृति की जीवन क्षमता

हमारी संस्कृति विविधरूपिणी एवं बहुमुखी रही है। युद्ध एवं शांति की प्रत्येक कला, राजनीति एवं शासन व्यवस्था, संगीत तथा साहित्य, स्थापत्य अथवा प्रतिमा निर्माण कौशल, नृत्य एवं चित्रकला हमारी इस भव्य संस्कृति के विकास का परिचय देती है। समस्त विश्व भारतीय संस्कृति का प्रशंसक है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि समय-समय पर विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप हमारे देश में अनेक संस्कृतियों ने अपना प्रभाव छोड़ना चाहा, परन्तु भारतीय संस्कृति ने अन्य संस्कृति को समेट कर आत्मसात् कर लिया। यह इसके प्राणवान होने का चिह्न है। आर्यकाल से चली आती भारतीय संस्कृति को आज इस बात का गर्व है कि सहस्रों वर्षों से उसका जीवन प्रवाह निरन्तर एवं अविच्छिन्न है, जबकि मिस्र, बेबीलोन, यूनान, रोम की संस्कृतियों का कोई अवशिष्ट चिह्न तक नहीं दिखाई देता। संसार के इतिहास में 11 सौ वर्षों तक अराजकता में रहकर अरक्षित, इतने आक्रमण और लूटमार सहकर नौ सौ वर्ष तक विदेशी धर्म एवं संस्कृति, मुस्लिम एवं अंग्रेज शासकों के शासन में रहकर भी इसने अपने जीवन, जाति एवं सभ्यता को अक्षुण्ण बनाए रखने में अमरता एवं मृत्युंजयता का ठोस प्रमाण दिया। भारतीय संस्कृति ऐसे भयंकर प्रहारों को सहकर भी अपनी अमर संस्कृति की आधारशिला पर स्थित है। इसकी अजेयता ने विश्व भर के इतिहासज्ञों को भी चकित कर दिया है। क्योंकि उनको ऐसा उदाहरण ही नहीं मिलता।

हम अतीत के गौरव से अनुप्राणित हैं, परन्तु उसको भारत के राष्ट्रजीवन का सर्वोच्च बिन्दु नहीं मानते, हम वर्तमान के प्रति यथार्थवादी हैं, किन्तु उससे बंधे नहीं हैं, आंखों में भविष्य के स्वर्णिम सपने हैं, किन्तु हम निद्रालु नहीं हैं वरन् उन सपनों को कारगर करने वाले जागरूक कर्मयोगी हैं। अनादि, अतीत, अस्थिर वर्तमान तथा चिरन्तन भविष्य की सनातन संस्कृति के हम पुजारी हैं।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यता में समन्वय

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है। पाश्चात्य संस्कृति भोगवादी है। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति में समन्वय हो सकता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का भौतिक उन्नति से कोई विरोध नहीं है।

पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार भौतिकता स्वयमेव साध्य है, लक्ष्य है, परमगति है। पर भारतीय संस्कृति के अनुसार भौतिकता मात्र साधन है, जिसकी सहायता से हम आध्यात्मिकता में पहुंचते हैं। भौतिकता एक सोपान है, सीढ़ी है जिसके सहारे से आध्यात्मिकता में पहुंचते हैं। अतः भौतिकता एक साधन मात्र है।

पाश्चात्य देशों ने आज विज्ञान में बहुत उन्नति की है। पर भारत में भी प्राचीनकाल में विज्ञान की कम उन्नति नहीं हुई थी। हां, आज का जो विज्ञान का स्वरूप है प्राचीन भारत के विज्ञान के स्वरूप से भिन्न हो सकता है। हम विज्ञान में बहुत आगे बढ़े हुए थे और आज के विज्ञान से कम विकसित नहीं थे।

विज्ञान की प्रगति के पूर्व जिन मजदूरों को 16-16 घंटा काम करना पड़ता था उन्हीं मजदूरों को विज्ञान की प्रगति के कारण 8 घंटा या 6 घंटा मात्र काम करना पड़ता है।

इससे हमारे समय की बचत हुई है। इस खाली समय का उपयोग किस में किया जाए? भारत के अनुसार इसका उपयोग आध्यात्मिक उन्नति में किया जाए। पर पाश्चात्य देशों के अनुसार भौतिक सुखों को भोगने के लिए किया जाए। यानी फिल्म देखने, टेलीविजन देखने, नाच-गान, तमाशों में किया जाए।

संस्कृति भारत की हो और सभ्यता पाश्चात्य की हो। यही सुन्दर समन्वय है।

भोगवादी, पश्चिम अध्यात्मवादी भारत की ओर ताक रहा है

सभ्यता जीवन के सुख-साधनों का विकास है। संस्कृति जीवन के आदर्शों का विकास है। सभ्यता शरीर को ही अन्तिम सत्य मानकर उसके भोगों को उपलब्ध कराने की दौड़-धूप है और संस्कृति आत्मा को परम सत्य मानकर चारित्रिक एवं आध्यात्मिक गुण सम्पदा की साधना है। सभ्यता जीवन का शृंगार है और संस्कृति जीवन का सार है। जहां पश्चिम ने मानव के बहिरंग शरीर एवं विषय-भोगों मात्र की खोज की है वहां भारत ने मानव के अन्तरंग शाश्वत जीवन का अनवरत अध्ययन एवं आविष्कार किया है।

बिना सार के मात्र शृंगार वैसे ही है जैसे प्राणविहीन शव की पुष्प-सज्जा। इसलिए अमरीका जैसे सबसे धनी, सभ्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्न देश में आत्महत्याएं सबसे अधिक हो रही हैं। वहां 33 प्रतिशत डॉक्टर मानसिक चिकित्सक हैं। क्योंकि एक-तिहाई जनता मानसिक रोगों से ग्रस्त है। इसलिए आज पश्चिम भारत की ओर देख रहा है।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

श्रीविष्णुपुराणे, 2/3/241

देवगण भी निरंतर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।

संस्कृति के दो पक्ष होते हैं उसमें से एक की उपेक्षा का दुष्परिणाम

पाश्चात्य संस्कृति न होकर मूलतः पाश्चात्य सभ्यता है। पाश्चात्य ने इहलोक के भौतिक सुखों, समृद्धि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। परलोक की पूर्णतः उपेक्षा की है। भौतिक सुखों की उसने खूब समृद्धि की है और उसी को अपना जीवन सर्वस्व मानकर मोक्ष की पूर्णतः उपेक्षा की है।

भारत ने धर्म और मोक्ष पर अधिक बल दिया और इहलोक की उपेक्षा की। जिसका इहलोक खराब है उसका परलोक सुन्दर होगा उसकी आशा नहीं की जा सकती। जिसका पेट भरने योग्य अन्न जुटाने में सारा दिन व्यय हो जाता है फिर भी पेट भरने योग्य अन्न नहीं जुटा पाता, वह परलोक के विषय में सोच ही नहीं सकता। जो इहलोक में दर-दर का भिखारी हो तो वह परलोक के सुखद स्वप्नों में अपनी निष्ठा कायम नहीं रख सकता और न ही उसके धर्म के प्रति निष्ठा बचाकर रखी जा सकती है।

इसलिए जो धर्म इहलोक को उपेक्षित करके परलोक के सुखद सपने को दिखाता है वह धर्म टिक नहीं सकता। वैसे धर्म को कुछ विचारकों ने अफीम की गोली कहा, जो इहलोक को उपेक्षित कर परलोक के सुखद स्वप्नों में मानव को भुलाये रखता है। अतः कोई भी धर्म अर्थ की उपेक्षा करके किसी को धर्म की ओर उन्मुख और उसके प्रति आस्था को जीवित नहीं रख सकता। इसलिए विवेकानन्द ने कहा—'दरिद्रो देवो भवः।'

प्राचीनकाल में ऐसा नहीं था। देश भौतिक सम्पदा से परिपूर्ण था। विज्ञान, सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय चरित्र, सामाजिक संगठन, वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति पर पूरा ध्यान दिया गया था।

मध्ययुगीन संतों द्वारा जगत् मिथ्या ब्रह्म सत्यम् की अव्यावहारिक व्याख्या और सामाजिक संगठन, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय चरित्र, आर्थिक उन्नति की पूर्णतः उपेक्षा कर परलोक को ही सर्वस्व समझ लिया। जिसके कारण देश की यह दुरावस्था हो गई।

हमारी महान् संस्कृति के पतन का क्या कारण?

भारत संसार का सबसे प्रथम सभ्य राष्ट्र है। संस्कृति के क्षेत्र में यह विश्व का गुरु रहा है। जितने अलौकिक महात्माओं को भारत ने उत्पन्न किया है उसकी उपलब्धि विश्व में कहीं नहीं है। श्री रामचन्द्र की नैतिकता, श्री कृष्णचन्द्र के गीतोपदेश एवं उनका रण-कौशल, बुद्ध की करुणा, महावीर की जीवदया, शंकराचार्य की दार्शनिक प्रतिभा, आर्यभट्ट एवं भास्कराचार्य का गणित ज्ञान, वराहमिहिर का ज्योतिर्विज्ञान, भीम-अर्जुन का बल-पौरुष, कपिल की दार्शनिक दृष्टि, व्यास-वाल्मीकि के महाकाव्य, कालिदास-भवभूति के काव्य दर्शन, चाणक्य की कूटनीति, चन्द्रगुप्त का दिग्विजय और राष्ट्र निर्माण, श्री हर्ष एवं भामाशाह की महानता, प्रताप की तपस्या, गुरु गोविन्द सिंह का संकल्प, शिवाजी की विजिगीषु-वृत्ति आदि के महान् सद्‌गुणों से विभूषित हमारा समाज रहा है।

किन्तु इतने महान् एवं नैतिक तथा आध्यात्मिक सद्‌गुणों से अलंकृत हमारा यह समाज संसार की पतित एवं चरित्रभ्रष्ट जातियों के समूह से पददलित हो लगभग एक हजार वर्ष तक दीनता एवं पराधीनता का नारकीय जीवन क्यों भोगता रहा? क्या सज्जन, नीतिमत् आध्यात्मिकता का यही पुरस्कार होता है? क्या यह न्याय है कि तपस्वी-महात्मा लोग एक हजार वर्ष तक पापी म्लेच्छों की मार खाते रहे? आखिरकार हमारी पराधीनता का सबसे बड़ा कारण क्या रहा?

संस्कृति विहार भवन में संगीत सम्मेलन

जहां पश्चिमी नृत्य संगीत मात्र इन्द्रिय भोग एवं मनोविनोद का साधन है वहां भारतीय नृत्य संगीत मानव को मन एवं इन्द्रिय के बंधन से मुक्त कर आत्म सुख, आत्मानंद प्रदान करने वाला है। पाश्चात्य नृत्य में केवल संघर्षपूर्ण गति एवं अशांति के लक्षण मिलते हैं, वहीं भारतीय नृत्य में तीव्रतम गति में भी संतुलन रखा जाता है जो अशांति में भी शांति का संदेशवाहक है। पाश्चात्य मानव आज रॉकेट की गति से चलने में समर्थ हो गया है किन्तु संतुलन की कमी के कारण वह भीषण मनोरोगों का शिकार हो रहा है। इसलिए पाश्चात्य देशों में भी भारतीय नृत्य संगीत की तीव्र मांग है।

इन शब्दों में विगत दिवस संस्कृति विहार भवन में आयोजित एक विराट् नृत्य संगीत सम्मेलन का उद्‌घाटन करते हुए संस्कृति विहार के निदेशक श्री हरवंशलाल ओबराय ने भारतीय ललितकलाओं के जीवनदायी संदेश पर प्रकाश डाला।

संस्कार का प्रभाव

हम पत्थर की मूर्ति पर अपनी इच्छा या देव भावना का आरोपण करते हैं तो वह देवता हो जाता है, पूजनीय हो जाता है। देव-मूर्ति और कुछ नहीं सिर्फ भक्त की भावनाओं का आरोपण है।

स्नान के जल में हम तीर्थों के जल की भावना करते हैं तो वह जल तीर्थों का जल हो जाता है। इस प्रकार तीर्थों का जल शरीर की शुद्धि के साथ-साथ मन की भी शुद्धि करता है। वैसे ही स्नान का जल पवित्र भावों के कारण शुद्ध होकर हमारे तन और मन दोनों को शुद्ध करता है।

गुरुजी अपनी माताजी के विषय में कहा करते थे कि माताजी प्रातः उठकर घर के नित्यकर्म करते हुए संस्कृत के श्लोकों को गुनगुनाया करती थी जिसके संस्कार गुरुजी के मन पर आजीवन के लिए अंकित हो गए थे।

स्वामी रामतीर्थ भक्तियोग के रहस्य में कहते हैं कि भ्रमण के समय ऐसी भावना करो कि मन्दिर की परिक्रमा कर रहे हैं। सोते समय ऐसी भावना करो कि भगवान् विष्णु की गोद में विश्राम कर रहे हैं। भोजन के समय ऐसी भावना करो कि भगवान् का प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं।

नेपोलियन की माता फ्रांस की दुर्दशा से पीड़ित थी। अपने देश की दुर्दशा को देखकर वह अपनी कोख से एक ऐसे पुत्र की कामना नित्य प्रति करती थी जो देश व धर्म की रक्षा कर सके। माता गर्भधारण तथा प्रजनन करने तक जैसी भावना करती है वैसे संस्कार लेकर पुत्र पैदा होता है।

उस समय जर्मनी 8-10 खण्डों में विभक्त था। तब बिस्मार्क की माता जर्मनी की स्थिति देखकर दु:खी होती थी और शहीदों के चित्रों को देखकर वैसे ही वीर पुत्र की कामना करती थी जो जर्मन देश को एकसूत्र में बांध सके और उसने वैसा ही पुत्र रत्न पैदा किया जो जर्मन इतिहास का निर्माता हो गया।

तपोवन एवं आचार्य

वैदिक भाषा में ऐसा एक भी शब्द नहीं मिलता जिससे यह प्रमाणित हो कि जंगल में रहने वाले असभ्य और बर्बर थे। 'जंगली' शब्द निंदा वाचक है और यह अंग्रेजी के Savage का संस्कार ग्रहण करके हिन्दी में आया है। अंग्रेजी में यह शब्द Wild, Uncivilized, Cruel, Nude, Fierce आदि के लिए आता है। हमारी संस्कृति में 'वनवासी' शब्द अत्यन्त गौरवपूर्ण अर्थ धारण करता है। आर्य सभ्यता का जन्म, लालन-पालन, विकास और संरक्षण वनवासी ऋषियों, विचारकों, आचार्यों से होता रहा। प्रणव का प्रथम घोष किसी निविड़ वन के अंतराल में ही हुआ और त्रिपथगा-ज्ञानगंगा की शाश्वत धाराएं भी ऐसे ही शांत, मनोरम वनों से प्रकट होकर सर्वत्र फैलीं। वन की स्निग्ध छाया में ही ज्ञानयज्ञ के लिए ज्योति प्रकट की गई और वहीं के ऋषि, त्यागी-तपस्वी, द्रष्टा आचार्यों ने ब्रह्मचारियों को ज्ञान से ओत-प्रोत करके कर्म-भूमि में भेजा। यह परम्परा किसी न किसी रूप में आज तक जीवित है। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्यों का विश्वविद्यालय नगरों में नहीं था, निविड़ वनों में था, जहां बड़े-बड़े सम्राट् भी पैदल जाते थे। हाथ जोड़े जाते थे। अपने गर्वोन्नत सिर झुका कर जाते थे। वहां राजा साधारण व्यक्ति की तरह आचार्यों से यह पूछने जाता था कि उन्हें किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है, विघ्न तो नहीं है। उनसे उपदेश, परामर्श एवं आदेश प्राप्त करते थे।

आचार्य कौन?

जो अपने आचरण से शिक्षा देता है वह आचार्य है। जो तत्त्वज्ञान को आचरण में लाता है वही आचार्य है। पर जो वाणी से मात्र व्यक्त करता है पर आचरण में नहीं लाता वह तो वाणी का व्यभिचार करता है। आज बहुत से आचार्यत्व का ढोंग रचने वाले लोग हैं जो गदहे के समान ज्ञान को ढोते हैं, वाणी और ज्ञान का व्यवसाय करते हैं। वे आचार्य नहीं हैं।

वर्तमान शिक्षा के दोष

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत नराधम, दुष्ट, देशद्रोही और दुराचारी व्यक्ति भी एम.ए. दर्शन, साहित्य व विज्ञान, शास्त्रज्ञ (डॉक्टर) की उपाधियां प्राप्त कर सकता है। क्योंकि इस शिक्षा प्रणाली की जड़ें भारत की सांस्कृतिक भूमि में नहीं है और इसका सम्बन्ध विद्या और वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती से नहीं है।

इस शिक्षा प्रणाली के इस प्रकार पुनरुद्धार की आवश्यकता है जिससे वह सरस्वती माता के आशीर्वाद के योग्य बन सके व भारत माता की आशाओं को पूर्ण कर सके।

शिशु

शिशु भारत की सांस्कृतिक फुलवारी के कोमलतम फूल हैं। वे जाति की हरी पौध हैं जिसमें संस्कारों की पावन खेती होने से मानव-जाति संस्कृत एवं परिष्कृत होती है। उन्हीं शिशु बिरवों को उत्तम वातावरण रूपी खाद-पानी एवं संस्कार रूपी बीज मिलने से कालान्तर में जब उनमें साहित्य, कला, विज्ञान एवं अध्यात्म के दिव्य पुष्प खिलते हैं तो सारा समाज रूपी उद्यान 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की सुगंधि से सुवासित हो जाता है।

छात्र और सक्रिय राजनीति

विद्यार्थी-जीवन विद्या के अर्जन का जीवन है। विद्यार्थी का अर्थ ही है कि विद्या के अर्थ के लिए कार्य करने वाला।

छात्र के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य विद्या प्राप्त करना है। अन्य सब उद्देश्य इसके सामने गौण हैं।

राजनीति का अर्थ है वह युक्ति, नीति या क्रियाकलाप जो मनुष्य को राज्य तक पहुंचा दे।

राज्ये नयति इति राजनीति

इस प्रकार के क्रियाकलाप हर सभा, समिति, प्रदर्शनी, आन्दोलन, संघर्ष, नारेबाजी, छलछद्‌म, आलोचना, प्रत्यालोचना, विज्ञापन, मिथ्याचार, कामचलाऊ सिद्धान्त, भय, प्रलोभन, स्वार्थ के लिए येन-केन प्रकारेण सत्ता हथियाना। ये सब कहीं भी विद्यार्थी की परिभाषा में नहीं आता।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव जीवन के चार प्रमुख आश्रम हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम शुद्ध रूप से ज्ञान साधना का काल है। अतः इस आश्रम की मर्यादा में राजनीति के छल-प्रपंचमय क्रियाकलापों का कोई स्थान नहीं बचता।

विद्यार्थी-जीवन रस संचय का काल है। जैसे छोटे पौधे को पूर्ण विकसित होने तक केवल अच्छे से अच्छा खाद-पानी ग्रहण कर अपना विकास ही करना चाहिए और जल्दबाजी में फलोत्पादन की कुचेष्टा नहीं करनी चाहिए। विद्यार्थी-जीवन में यदि कोई राजनीति से आकृष्ट होकर जल्दबाजी में राजनीति के दंगल में उतरना चाहेगा तो न उसका विद्यार्थी-जीवन सफल बनेगा और न ही राजनीति के दंगल की शोभा बढ़ेगी। कच्चा पौधा, अपरिपक्व लता से न फूल सुन्दर होगा न फल सरस होगा और न ही बीज पुष्ट होगा।

इसलिए राजनीति शुद्ध, सूक्ष्म ज्ञान साधना में सबसे बड़ी बाधक है। मेरा यह निश्चित मत है कि छात्रों को राजनीति पढ़नी अवश्य चाहिए पर मेरी स्पष्ट चेतावनी है कि छात्र जीवन में उसे सक्रिय राजनीति में पड़ना नहीं चाहिए। विद्यार्थी-जीवन में यदि उसे राजनीति के कीड़े लग जाएंगे तो उसका विद्या अर्जन का भाव खो जाएगा।

वास्तविक इतिहास का बोध आवश्यक

जब तक आर्यावर्त्त के देश का वास्तविक इतिहास इस देश के नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाएगा तब तक उनमें स्वदेशाभिमान, स्वजाति गौरव, स्वराज्य कामना तथा अस्मिता के भाव जागृत नहीं हो सकेंगे। अतः ऐसा इतिहास होना चाहिए जो भारतीय परम्परा के प्रति आस्था को जगा सके तथा जिसमें भारतवर्ष के अतीत का सही व सजीव चित्रण किया गया हो। विदेशी लेखकों द्वारा लिखे गए इतिहास उस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते हैं।

संतों की वाणी के प्रकाश में मध्यकालीन मुगल इतिहास का पुनर्मूल्यांकन

प्रो. ओबराय ने शोध पत्र में तुलसी साहित्य में प्रतिबिम्बित मध्यकालीन भारत का चित्र प्रस्तुत कर मध्यकालीन इतिहास का पुनर्मूल्यांकन किया।

प्रो. ओबराय ने स्थापित किया कि जिन मुगल सम्राटों को इतिहास में महान् मुगल कहकर सम्बोधित किया जाता है उन्हें तुलसी एवं तत्कालीन संत कवियों ने चोर, लुटेरे, पापी, हत्यारे के रूप में चित्रित किया है। अतः हमें राग-द्वेष से मुक्त इन संतों की वाणी के आधार पर मध्यकालीन इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए।

पश्चिम और भारत

प्रो. ओबराय ने कहा—जहां पश्चिम शरीर को चमकाने में अपने परिश्रम की सार्थकता मान रहा है वहां भारत के ऋषियों ने बुद्धि को चमकाने का महामंत्र दिया।

रूस, चीन के कम्यूनिज्म की समालोचना करते हुए प्रो. ओबराय ने कहा—कम्यूनिज्म भी मानव की घटिया पशु-प्रवृत्तियों को भड़का कर सामाजिक क्रान्ति लाना चाहता है। रोटी, कपड़ा और मकान जीवन के साधन मात्र हैं साध्य नहीं तथा हिंसापूर्ण वर्गसंघर्ष से मानव को मारा जा सकता है उसे बर्बर बनाया जा सकता है, पर गुणात्मक विकास नहीं किया जा सकता।

भारत के दिग्विजयी महापुरुषों का उल्लेख करते हुए प्रो. ओबराय ने बताया कि अगस्त्य ऋषि ने दक्षिणापथ में भारतीय संस्कृति का प्रकाश सर्वप्रथम फैलाया। उन्होंने तमिल व्याकरण रची। वे समुद्र पार कर मलाया, सिंगापुर, इंडोनेशिया में संस्कृति के प्रथम गुरु के रूप में पूजित हुए। कम्बु ऋषि ने कम्बुज (कम्बोडिया) में संस्कृति का प्रकाश फैलाया।

कौडिन्य ऋषि ने अनाम (चम्पा, वियतनाम) में भारतीय संस्कृति की ज्योति जलाई। आचार्य शान्तिरक्षित एवं आचार्य दीपंकर, श्रीज्ञान अतिशा तिब्बत में संस्कृति के संदेशवाहक बने। कश्यप मातंग एवं बोधिधर्मा चीन, जापान, कोरिया में धर्मगुरु बने। दक्षिण भारत के युवा पण्डित शाक्य ने मंगोलिया को दीक्षित किया। अर्हत वैरोचन ने चीन, तुर्किस्तान एवं खोतान में धर्म का प्रकाश फैलाया। इसी प्रकार हमारे अहिंसक सांस्कृतिक दूतों ने विश्व के कोने-कोने में अपनी पावन संस्कृति की सुवास पहुँचाई।

चीन की समस्या की चर्चा करते हुए प्रो. ओबराय ने बताया कि किस प्रकार मुगलों के राज्यकाल को इतिहासकार मुगल इंडिया कह देते हैं। किन्तु, सारा भारत मुगल तो नहीं हो गया था। उसी प्रकार 70 करोड़ चीनी, जो 2000 वर्षों से भारत को धर्म भूमि, बैकुण्ठ मानकर पूजते रहे, वहां कम्युनिस्ट शासन आते ही एकाएक कम्युनिस्ट नहीं बन सकते। राजनीतिक आंधियों के छंट जाने पर चीन पुनः भारत के चरणों में आ सकता है।

वियतनाम आज ऊपर से कम्यूनिज्म की अग्नि तथा नीचे से ईसाइयत की अग्नि में जल रहा है। जब वहां फ्रेंच लोगों का शासन था तब वहां 12 प्रतिशत लोगों को ईसाई बना लिया गया था। अब दक्षिण वियतनाम में कम्यूनिज्म के विरोध के बहाने बैठा हुआ अमरीका ईसाइयत भी लाद रहा है। अत: 90 प्रतिशत भारत भक्त बौद्धों का देश वियतनाम बड़े संकट में है।

बांग्लादेश के रक्तरंजित स्वातंत्र्य-युद्ध के पीछे सांस्कृतिक स्वतंत्रता की अमर ज्वाला सुलग रही है।

इजराइल का अरबों के विरुद्ध संघर्ष भी सांस्कृतिक अस्मिता के लिए महायुद्ध है।

अफ्रीकी आदिवासी एवं अमरीकी नीग्रो जातियां अपने अस्तित्व के लिए चिंतित हैं। उनकी परम्पराएं उन्हें अपने प्राणों से अधिक प्यारी है। अत: वे गोरी जातियों के धन, जन व सैन्यबल के सामने सीना ताने खड़ी हैं।

आज भारत को भी पुन: अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। तभी सारा विश्व पुन: उसकी नीराजनायें गायेगा।

हम भारतमाता को सही अर्थों में सुजला-सुफला बनाकर रहेंगे। यह दश प्रहरण धारिणी दुर्गा बनकर असुरों का संहार करेगी, लक्ष्मी बनकर जन-जन को समृद्धि देगी, सरस्वती बनकर अज्ञानांधकार को दूर कर ज्ञान करा प्रकाश फैलायेगी।

हिन्द महासागर और हिमालय से परिवेष्टित भरतखण्ड में जब तक एकरसता, कर्मठता, सम्पन्नता, ज्ञानवत्ता, सुख और शान्ति की सप्त जाह्नवी का पुण्य प्रवाह नहीं ला पाते, हमारा भगीरथ पूरा नहीं होगा। इस प्रयास में ब्रह्मा, विष्णु, महेश हमारे सहायक हैं। विश्व का विश्वास है। तपस्या का निश्चय लेकर चलें। वन्देमातरम।

—**पंडित दीनदयाल उपाध्याय**

भारत की पश्चिम को देन

प्राचीनकाल से भारत केवल प्राच्य जगत् का ही नहीं वरन् पाश्चात्य जगत् का भी गुरु रहा है। सारे पश्चिम का सांस्कृतिक गुरु यूनान स्वयं भारतीय दर्शन का भक्त एवं प्रशंसक रहा है। पूरे पश्चिम के साम्राज्य स्वामी रोम में दो हजार वर्ष पूर्व एक कलाकार ने चांदी की थाली में भारतमाता की मूर्ति उत्कीर्ण कर उसके चारों ओर वे सब वस्तुएं दर्शाई जो उस समय भारत से यूरोप को निर्यात होती थी। यूरोप का विद्या एवं विज्ञान गुरु जर्मनी अपने को आज तक वेदों का दूसरा धाम प्रचारित करने में गर्व का अनुभव करता है। रूस की भाषा पर संस्कृत का सुस्पष्ट प्रभाव है। आयरलैण्ड के राष्ट्रपति डॉ. वलेरा कहते थे कि आयरलैण्ड का अर्थ आर्यों का ही देश है। कोलम्बस के अमरीका खोजने से 1500 वर्ष पहले वहां भारतीय संस्कृति का साम्राज्य था। जिसके प्रमाणस्वरूप मैक्सिको, पीटर, बोलिविया, अर्जेन्टीना में शिव, गणेश, हनुमान, दुर्गा, विष्णु एवं सूर्य की मूर्तियां मिलती हैं। इंग्लैण्ड सहित सारे यूरोप में ईसाइयत से पूर्व सूर्य पूजा प्रचलित थी।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

मनुस्मृति

'इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों के समीप जाकर भूमण्डल के सम्पूर्ण मनुष्यों को अपने-अपने चरित्र (आचरण) की शिक्षा लेनी चाहिए।'

विश्व की सभ्यता को भारत की देन—प्रो. ओबराय

प्राचीनकाल में भारत जगद्गुरु के पद पर सुशोभित था। सभ्यता का विकास भारत में हुआ और समस्त विश्व की मानवता में सभ्यता एवं संस्कृति का विकास कराने का श्रेय सर्वप्रथम भारत को है।

समस्त विश्व को मानवता के लिए भारत ने सभ्यता की सीख दी। वह भी एक युग था जबकि विश्व की मानवता भारत की महानता पर गौरवान्वित अनुभव करती थी। प्राचीनकाल की सभ्यता एवं संस्कृति चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी।

आपने बताया कि पश्चिमी सभ्यता को ऊंचा उठाने के लिए पश्चिमी देशों में हर प्रकार के सुख-साधनों की व्यवस्था पर्याप्त मात्रा में की गयी। परन्तु मानवीय स्तर को ऊंचा उठाने का उन्होंने कतई प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत भारत में मानवीय स्तर को ऊंचा उठाने के लिए मनुष्यों में सुधार लाया गया।

आपने बताया कि मानव सभ्यता का विकास वायुयान, रॉकेट तथा अन्य सुख के साधनों द्वारा नहीं किया जा सकता है। सभ्यता का विकास तभी हो सकता है जबकि मानव में विनयशीलता आवे।

कुछ विशेष लोगों का विश्वास है कि सभ्यता की अभिवृद्धि पश्चिमी देशों से हुई। यहां तक कि पश्चिमी देशों के विद्वानों ने सभ्यता के विकास के क्षेत्र के मामले में यह बताकर समस्त मानव समुदाय में भ्रम फैलाया कि प्राचीनकाल में सभ्यता का विकास सिर्फ पश्चिमी देशों तक ही सीमित था। भारत को नीचा दिखाने के लिए पश्चिम के विद्वानों ने अपने धर्मग्रंथों द्वारा कई ऐसे मनगढ़न्त उदाहरण प्रस्तुत किये हैं ताकि भ्रम पैदा हो कि भारत सभ्यता के मामले में एकदम पिछड़ा हुआ देश था।

प्रो. ओबराय ने बताया कि सभ्यता के मामले में भारत को नीचा गिराने में अमरीकी पादरियों ने जम कर झूठा प्रचार किया। अपने धर्मग्रंथों के कल्पित चित्र खींचकर उन्होंने लोगों में यह घिनौना प्रचार किया कि भारत असभ्यों एवं मूर्खों का देश है। लाखों डालर रुपये लेकर वे भारत आये और भारत के अकालग्रस्त क्षेत्रों में गरीब लोगों के बीच ईसा का प्रचार करके उन्होंने उन्हें ईसाई बनाया। परन्तु यह

हरकत बहुत दिनों तक नहीं चली। राममोहन राय से महात्मा गांधी तक भारत की सभ्यता ने पुनः करवट बदली और दिनोदिन यहां की सभ्यता उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होती रही।

प्रो. ओबराय ने बताया कि सभ्यता के मामले में भारत ने विश्व को बहुत कुछ दिया। आपने बताया कि यूनान सभ्यता का केन्द्र स्थल माना जाता है। परन्तु जब हम इतिहास के पन्ने को उलटकर देखते हैं तो यही पता चलता है कि सिकन्दर ने भारत पर इसलिए चढ़ाई की थी कि उसने भारत को सोने की चिड़िया, सभ्यता का केन्द्र, सांस्कृतिक प्रधान एवं वैज्ञानिक अनुसंधान प्रधान देश समझा था। भारत आकर सिकन्दर को करारी हार तो झेलनी पड़ी परन्तु कई बहुमूल्य पदार्थ उसके हाथ लगे। उसे गीता, वेद जैसे ग्रंथ मिले। मलमल जैसे बहुमूल्य कपड़े, सागवान जैसी मुलायम लकड़ियां मिली तथा पोरस ने सबसे बहुमूल्य वस्तु 'इस्पात' उन्हें भेंट में दी। इससे पहले विश्व को इस्पात जैसे पदार्थ का बोध तक नहीं था। इसके अलावा भारत ने सर्वप्रथम विश्व को गणित विद्या से परिचय कराया। आपने बताया कि भारत ने ही विश्व को दशमलव प्रणाली सिखायी तथा शून्य (जीरो) का बोध कराया। गणित के प्रायः सभी मूल सिद्धान्त लीलावती में पाये जाते हैं। लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री थीं जो गणित में बहुत दक्ष थी।

आपने बताया कि न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त कोई नयी चीज नहीं थी। न्यूटन से पूर्व ही भारतीय प्राचीन ग्रंथों में यह उल्लेखित है कि पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण बल है।

आपने अन्त में बताया कि विश्व के उद्‌भट विद्वान् मैक्समूलर ने भारत की सभ्यता एवं संस्कृति को सबसे ऊंचा बताया।

सत्यमेव जयते नानृतं

मुण्डक उ., 3/116

सत्य की जय होती है, असत्य की नहीं।

भारतीय संस्कृति का विश्व में प्रसार

भारतीय संस्कृति में व्यावहारिकता, उत्तम एवं पारमार्थिक श्रेष्ठता दोनों पूर्णता की सीमा पर प्रतिष्ठित हैं। मनुष्य को मानव विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंच कर अन्त में जीवन्मुक्ति की अवस्था में प्रतिष्ठित कर देना ही भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी सेवा है। भारतीय संस्कृति सर्वसामर्थ्यमय सर्वांगपूर्ण संस्कृति है। भारतीय संस्कृति सर्वकल्याणकारिणी है। इसके द्वारा न केवल अपने अनुयायियों के लिए वरन् समस्त विश्व के लिए मंगलकारी प्रभाव उत्पन्न होता है। हमारी दैनिक प्रार्थना भी यही कहती है—

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।
सर्वे भवन्तुः सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्।।

सर्वभूतहितेरताः का ही आदर्श सदैव सर्वत्र सामने रहता है। वसुधैव कुटुम्बकम् का उदात्त सिद्धान्त भी भारतीय संस्कृति ही का है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भारतीय दृष्टि में संस्कृति का उच्च आदर्श निहित है।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।।

कठ. उ., 2/3/15

सभी वेदान्तों का यहां उपदेश है कि हृदय की सब गुत्थियों के नाश होने से मनुष्य जिसका धर्म (स्वभाव) मृत्यु है अमृतत्व प्राप्ति करता है।

पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता

(1) विज्ञान कृत्रिम कला-कौशल द्वारा मानव जीवन को अस्वाभाविक बना देता है।

(2) भौतिक उन्नति से मनुष्य के मन में दम्भ-अहंकार खूब भर जाता है और मनुष्य नास्तिक एवं निर्दयी बन जाता है।

(3) भौतिक-वैज्ञानिक प्रगति राग-द्वेष को प्रबल करती है। नर हत्या, भीषण यंत्र एवं छलकपट से स्वल्पकाल में अनेक निर्दोष लोगों को मारने की कुटिल योजना। इससे विद्रोह, अशांति, प्रबल हत्याकांड।

(4) स्थूल-सूक्ष्म दोनों ही जगत् में प्रबल असामंजस्य discord, imbalance रोग, दुर्भिक्ष, महामारी।

(5) गति बढ़ी, संयम नष्ट हुआ।

(6) वातावरण प्रदूषण की समस्याएं।

ब्रह्माण्ड की शरीर व्यापी प्राणशक्ति की समता का बिगड़ जाना। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष।

आज के राहु और केतु—

बुद्धिजीवी श्रम नहीं करते केवल—राहु

श्रमजीवी विचार नहीं करते केवल—केतु

कबन्ध—केवल पेट में ही आँख वाले, पेट फुलाये सेठ।

बेबीलोनिया, असीरियन, इजिप्टसियन, ग्रीक, रोमन आदि जातियों के नाश का मूल कारण है—

धर्महीनता, आत्मज्ञानहीनता, पशुभाव प्रधान, अर्थ-काम की दृष्टि। उन्होंने पशुबल से अपने स्थूल शरीर को स्वतंत्र किया। पशुबल से अन्य दुर्बल जातियों पर आधिपत्य जमाया। वे जातियां मनुष्य से पशु बन गईं।

यूरोप में पुनर्जागरण

(1) यूरोप धीरे-धीरे सभ्यता के वर्तमान शिखर पर पहुँचा है। 500 ई. से 800 ई. तक (3 शती तक) यह महाद्वीप सभी क्षेत्रों में यथा आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, विज्ञान, साहित्य में पिछड़ा हुआ था। अंधकार का युग था। कूपमंडूकता थी। यही दशा 15वीं शती से पूर्व थी।

(2) पुनर्जागरण 14वीं-15वीं शती में माना जाता है।

(3)—(क) दोनों कालों का एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध रहा है।

(ख) यूरोप के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना तथा उन्नति करना।

(ग) परिवर्तन धीरे-धीरे विकास का परिणाम था।

(घ) जागृति की लहर एकदम से नहीं उठी। एक देश से दूसरे पर प्रभाव पड़ा।

(ङ) सभी देशों में समान गति से प्रगति नहीं हुई।

यूरोप के पुनर्जागरण के कारण

(क) अनुत्तर दशा में छटपटाने लगे। आकुलता ने आगे धकेल दिया।

(ख) विज्ञान की खोजें, चर्च के अत्याचार, पोप के अत्याचार, साहित्य की प्रगति, मानवतावाद—अन्तर्मुखी। खोजें—वास्कोडिगामा, कोलम्बस।

राष्ट्र और राज्य

राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। राज्य एक राजनीतिक इकाई है। राष्ट्र एक है। राज्य अनेक हैं, प्रशासनिक इकाई हैं। राष्ट्र के सफल संचालन में अनेकानेक संस्थाएं होती हैं जो स्वशासित, स्वायत्त सत्ता होती हैं। जैसे परिवार एक संस्था है। विवाह एक संस्था है। चारों आश्रम एक-एक संस्था हैं। शिक्षा एक संस्था है जो सरकारी नियंत्रण से मुक्त स्वशासित स्वायत्त संस्था है जिसके अपने विधान हैं। उसके द्वारा परिचालित हैं। ऐसे ही ग्राम पंचायत एक संस्था है। इन्हीं संस्थाओं की तरह राज्य भी एक संस्थाविशेष, प्रशासनिक इकाई है, राज्य की अन्तःबाह्य रक्षा उसका विशेष दायित्व है। ऐसे ही न्याय व्यवस्था एक हमारी संस्था है। अर्थ, धर्म हमारी एक संस्था है। व्यापार संघ एक संस्था है। जिसमें राज्य का हस्तक्षेप नहीं होता था। इस प्रकार हमारे समाज की रचना का एक केन्द्र नहीं था वरन् अनेकानेक केन्द्र थे।

जबकि पश्चिम में समाज रचना में राज्य ही एकमात्र केन्द्र था, जो सर्वेसर्वा था, जो सारे राज्य की सर्व प्रकार की चिन्ता करता था।

यही कारण है कि पश्चिम में राज्य के पराजित होते ही राष्ट्र भी समाप्त हो जाते थे। क्योंकि सब कुछ राज्य पर निर्भर था।

पर भारत में राज्य तो पराजित होते थे, पर राष्ट्र जीवन अखण्ड-अक्षत रूप से चलता था। क्योंकि ये संस्थाएं राज्य पर निर्भर नहीं थी।

सर्वप्रथम, अंग्रेजों ने हमारी जड़ को (मूल को) समझकर उस पर प्रहार किया और हमारी राष्ट्र की सारी व्यवस्थाओं को अपने हित के अनुसार ढाल दिया जिसके कारण हमारा समाज निरन्तर विश्रृंखलित होता गया। कमजोर पड़ता गया। स्वाधीनता के बाद इसमें परिवर्तन आना चाहिए था जो दुर्भाग्य से पंडित नेहरू के कारण नहीं हो सका।

राष्ट्र की मूल धारा का अर्थ

Concept of our nation as 'one people one culture, one history, one ancestors and concept of one law for all.'

एक राष्ट्र की अवधारणा।

द्विराष्ट्र की अवधारणा ने देश का विभाजन किया और अलग-अलग राष्ट्रों की बात उठती रहती है।

एक जन की बात यानी एक राष्ट्रीयता की बात। अलग-अलग जाति, प्रांतीयता की बात नहीं। सभी बंगाली, बिहारी मुसलमान नहीं। सभी को हिन्दू या भारतीय कहा जाना चाहिए।

एक संस्कृति की बात न कि मिली-जुली खिचड़ी संस्कृति। गंगा-जमुनी संस्कृति नहीं। किसी भी देश की संस्कृति को मिली-जुली नहीं कहा जाता। यद्यपि सभी संस्कृतियां अन्य संस्कृतियों के तत्त्वों को ग्रहण करती हैं। पर वह मिली-जुली संस्कृति नहीं कहलातीं, न ही इसका ढोल पीटा जाता है। वह अपने देश विशेष की ही संस्कृति कहलाती है, न कि मिली-जुली संस्कृति। जो गंगा-जमुना की Terminology के आधार पर संस्कृति को समझना चाहते हैं उन्हें समझना चाहिए कि प्रयागराज में त्रिवेणी संगम के पश्चात् भी उसे गंगा ही कहा जाता है। हमारी संस्कृति भी संगम के पश्चात् भी हिन्दू या भारतीय संस्कृति ही कहलाएगी।

हमारे देश के इतिहास के साथ भी दुर्भाग्य जुड़ गया है कि इतिहास को विकृत करके आक्रान्ताओं के नाम पर हमारे देश के इतिहास का विभाजन करके पढ़ाया जा रहा है। विश्व के किसी भी देश में आक्रान्ताओं के नाम पर न इतिहास का विभाजन किया जाता है न पढ़ाया जाता है। पर हमारा दुर्भाग्य है कि स्वाधीन भारत में भी हमने इतिहास का विभाजन आक्रान्ताओं के नाम पर किया यथा मुगल काल, ब्रिटिश काल आदि। मुगल काल पर गर्व करना सिखाया जा रहा है। उसे देश का स्वर्णिम काल कहा जा रहा है।

एक महापुरुष की अवधारणा है कि किसी भी देश में दो प्रकार के पूर्वजों की अवधारणा नहीं होती। हमारे देश के पूर्वज, महापुरुष, आदर्श पुरुष—राम,

कृष्ण, शिवाजी, राणा प्रताप हो सकते हैं। सिकन्दर, बाबर, अकबर या औरंगजेब नहीं। ये आक्रान्ता देश के दुश्मन, सभ्यता-संस्कृति के शत्रु थे जो कभी इस देश के महापुरुष, मान्य पुरुष नहीं हो सकते। जो कहते हैं अकबर भी महान् और राणा प्रताप भी महान् वो देश को भ्रमित कर रहे हैं। वे वास्तव में देश के प्रति निष्ठावान नहीं हैं।

सभी के लिए एक जैसी कानून व्यवस्था

Concept of one nation.
Concept of one people.
Concept of one culture.
Concept of one history.
Concept of one ancestors.
Concept of one law for all.

एक बात ध्यान देने की है मध्यकाल के समस्त कवि, रचनाकार, ग्रंथकार, प्रवचनकार महाराणा से प्रेरणा लेते हैं। इसमें प्रेरणा के स्तर पर 'अकबर' अनुपस्थित है। राजसत्ता में अकबर की बादशाहत थी, लेकिन साहित्य और जनता के स्तर पर प्रताप की बादशाहत स्पष्ट नजर आती है।

—प्रो. ओबराय

× × ×

सभी देशों ने अपनी-अपनी भाषा के माध्यम से प्रगति की है। भारत ही एक अभागा देश है जहां विदेशी भाषा शासन की ओर से लाद कर हमारी महान् संस्कृत भाषा के अस्तित्व पर आघात लगाया जा रहा है। भारत व भारतीय संस्कृति को जानने के लिए देववाणी संस्कृत अनिवार्य रूप से पढ़नी चाहिए।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं। भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरी जवानी की फुलवारी, मेरा पवित्र स्वर्ग और मेरे बुढ़ापे की काशी है। भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है। मैं भारतवासी हूं और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है।

—स्वामी विवेकानन्द

राष्ट्र एवं देशभक्ति

राष्ट्रीयता के समाज धर्म—समाज परिवर्तन से धर्म नहीं बदलता। समाज की व्यवस्था बदलने से राष्ट्रीयता नहीं बदलती। धर्मान्तरण से राष्ट्रान्तरण नहीं होता। एक राष्ट्र में अनेक धर्म होते हैं। ईसाई धर्म के 76 राष्ट्र हैं।

संस्कृति—राष्ट्रीयता एक सांस्कृतिक अनिवार्यता है।

राष्ट्रभाव—राष्ट्रवाद एक विचारधारा है। देश भक्ति उसके लिए भावना।

उग्रराष्ट्रवाद—साम्राज्यवाद। बृहत्तर भारत—साम्राज्यवाद नहीं वह संस्कृति का दान था।

प्रागैतिहासिक काल—रामायण, महाभारत का काल।

प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता के बाधक तत्त्व—(1) केन्द्रीय शासन का अभाव (2) रक्षा का भार केवल क्षत्रियों पर। (3) जातिवाद।

तथाकथित आधुनिक राष्ट्रीयता के बाधक तत्त्व—(क) मुस्लिम मनोविज्ञान—अंग्रेजों से पूर्व शासक अशिक्षित, प्रजातंत्र से भय, हिन्दू पुनर्जागरण से भय, संगठन, वन्देमातरम्, भाषा, पाकिस्तान का स्वप्न, गोवध आंदोलन। (ख) उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद—अतीत गौरव हिन्दू महासभा, आर.एस.एस., हिन्दुओं पर अत्याचार, सांस्कृतिक अहम्मन्यता, हिन्दू राज्य, असामाजिक संस्कृति, शक्ति की उपासना।

(ग) अंग्रेजों की फूट डालो नीति।

(घ) सामासिक संस्कृति, खिचड़ी भाषा, 36 मुस्लिम देश, 76 ईसाई राष्ट्र।

भारत—जहां स्वयंभु प्रभु ने सर्वप्रथम वेद का गान किया। जिसे जगदीश्वर ने सर्वप्रथम अपनी लीलास्थली बनाया।

देश भक्ति—मेरे देश के तीन नाम हैं—हिन्दुस्तान, भारतवर्ष तथा आर्यावर्त्त। देश की भावना एक परम पवित्र भावना है। यह पवित्र भावना मानव शरीर में एक रोमांच-सा उत्पन्न कर देती है। कौन-सा ऐसा भारतीय है, बंकिम बाबू का अमर गीत 'वंदेमातरम्' जिसके हृदय में उथल-पुथल नहीं मचा देता। यदि वास्तव में इस भावना से शून्य कोई व्यक्ति इस भारत भूतल पर है तो समझ लो उसके शरीर में रुधिर नहीं नमक का तेजाब है। उसके शरीर में अंतड़ियां नहीं फौलाद की जंजीरें हैं। उसके दिल में दिल नहीं पत्थर का ढेला है।

स्वदेशाभिमान ही तो मनुष्यत्व है। स्वदेश भक्ति ही तो मनुष्यता है। देश प्रेम तो पशुओं और पक्षियों में भी होता है और हम तो मनुष्य हैं।

मनुष्यता—मनुष्य परमात्मा का सर्वोत्कृष्ट गौरवमयी सपना—

'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं ही किञ्चित्।'

जिसकी महिमा का बखान करते हुए गोस्वामीजी ने मानस में फरमाया है—

बड़े भाग्य मानुष तन पाया। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाई न जेहिं परलोक सँवारा।। 7/42/7

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।। 7/120/9

नर तन, भव वारिधी कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।। 7/43/7

राष्ट्र—संस्कृति, इतिहास तथा भौगोलिक परिस्थिति (प्रकृति) इन तीनों तत्त्वों के समूह का नाम है—राष्ट्र। देश के पूर्व पुरखाओं द्वारा निर्मित तथा परिचालित जीवन विधि (Culture) का नाम है—संस्कृति। स्वदेश में पैदा हुए वीर पुरुषों की जीवन लीला का नाम है—इतिहास। और भूगोल का अर्थ है—स्वदेश की आभ्यंतरिक रचना का विस्तार। जो व्यक्ति इन तीनों से प्रेम करता है वही है सच्चा राष्ट्र भक्त।

देश के तीन नाम—इस देश के तीनों नाम इसके तीन गुणों के प्रतीक हैं। आर्यावर्त्त इस देश की संस्कृति का प्रतीक है। भारतवर्ष इस देश के इतिहास का प्रतिनिधि है और हिन्दुस्तान इस देश की भौगोलिक संज्ञा है। सृष्टि के आरम्भ में इस देश का कुछ भी नाम न था। तथापि इस देश के रहने वाले इस देश को जननी जन्मभूमि तथा अपने को आर्य कहते थे। 'आर्य' शब्द का अर्थ है ईश्वर पुत्र, श्रेष्ठ, आचारवान, गुणवान—एक ऐसा व्यक्ति सद्-असद् विवेक तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही जिसके जीवन का उद्देश्य है।

यात्रा और आवारागर्दी में अन्तर—

यात्रा—लक्ष्य की ओर सप्रयोजन गति।

आवारागर्दी—निष्प्रयोजन गति।

भारत के देशभक्त दूसरों के लिए आतंक नहीं आशीर्वाद है।

—**स्वामी संवित् सोमगिरि**

व्यक्ति के नाम का महत्त्व क्या है?

व्यक्ति के नाम का महत्त्व और किन्हीं आदर्शों से उसका सम्बन्ध—हर व्यक्ति की पहचान उसके नाम से होती है। नाम से केवल शरीर की ही पहचान नहीं होती वरन् उसकी जाति, प्रांत, भाषा, संस्कृति, उसके आदर्श और जीवनमूल्य, जिससे वह सम्बन्धित है, पता लग जाता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट नाम होता है। जो उसकी जाति, भाषा, प्रांत, संस्कृति, आदर्श, जीवनमूल्यों का परिचायक होता है। जैसे—किसी का नाम गंगासिंह, किसी का बिशनसिंह, रामलाल जैन, रामलाल आर्य आदि। प्रश्न उठता है कि उसका नाम गंगासिंह ही क्यों पड़ा। बिशनसिंह या रामलाल जैन, रामलाल आर्य ही क्यों पड़ा? उसका नाम मैक्डोनाल्ड क्यों नहीं हुआ? या खुदाबख्श क्यों नहीं हुआ? मोलीटोव क्यों नहीं हुआ? यही नाम क्यों पड़ा? आज जो अपने देश के लोग दूसरे देशों में जाकर बस गए हैं। कोई केनेडा तो कोई अमरीका में। वहां के नागरिक भी बन गए। अब जो बच्चे होते हैं उनका नाम भी अमरसिंह ही क्यों रखते हैं? वास्तव में हम जो नाम रखते हैं उसके साथ हमारी भावना जुड़ी रहती है।

आज राजनीति त्याग का क्षेत्र नहीं भोग का क्षेत्र

आज राजनीति में त्याग का मौका नहीं है। तो भी त्याग कर सकते हैं। जैसे जनक महाराज ने किया। भरत ने आदर्श रखा। लेकिन राजनीति 'स्वाभाविकतः त्याग का क्षेत्र है', ऐसा नहीं कह सकते। त्याग कोई करेगा तो कर सकता है। लेकिन वह स्वाभाविक, नैसर्गिक, प्राकृतिक त्याग का क्षेत्र नहीं है। वह भोग का क्षेत्र है।

आज कांग्रेस का मेम्बर बनना यानी कुछ पाने की बात होगी, खोने की नहीं। सार यह है कि राजनीति में तब त्याग था। उस जमाने में राजनीति में जाना यानी लाठी खाना, जेल जाना, मार खाना, कोड़े खाना, फांसी चढ़ना आदि। यह सारा राजनीतिक क्षेत्र में होता था। आज राजनीति में त्याग नहीं है। त्याग धर्म में, समाज सेवा में है। यदि राज्य सत्ता से क्रान्ति होती तो गौतम बुद्ध सत्ता का त्याग क्यों करते? अतः गांधीजी ने भी इसीलिए कहा था—कांग्रेस को भंग कर दो।

स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात्

चोटी के नेताओं में प्राय: सभी के बारे में यह सत्य है कि उनका राजनीतिक जीवन अब सिमट कर केवल दो भागों में विभक्त हो गया है। एक तो वह जो स्वतंत्रतापूर्व का जीवन था और दूसरा वह, जो उसके बाद राष्ट्रनीति और उसकी विकासशील कल्याणकारी योजनाओं से सम्बद्ध हुआ। इन सबका स्वतंत्रतापूर्व का जीवन चाहे कितना भी विविध क्यों न रहा हो, पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के दिन सब मिलकर राष्ट्रीय त्याग और तपस्या का एक ऐसा समुद्र बन गया जिसमें तत्कालीन इतिहास की छोटी-बड़ी लहरियों के निर्विकार रूप को आज भी देखा जा सकता है। वह सामूहिक त्याग और तपस्या का जीवन था। जो लोग भी उस समय उसमें आए, केवल कर्तव्य बुद्धि से आये थे। उनमें फलाशा नहीं थी। वह एक सामूहिक यज्ञ था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की आहुति अग्नि की एक ही शिखा प्रज्वलित करती थी। वह एक अनवरत संग्राम का युग था। उस समय केवल एक सेनापति था और बाकी सब सैनिक थे।

युवक

आधुनिक विश्व इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि अनेक देशों में जो समाज परिवर्तन, लोकतांत्रिक क्रान्ति एवं नवजागरण के आन्दोलन हुए हैं और हो रहे हैं उनमें विद्यार्थी समाज का योगदान सबसे बड़ा है।

आखिर इतिहास निर्माण कौन कर सकता है? क्या दुर्बल नस-नाड़ियों वाले वृद्ध? क्या नन्हे-नन्हे अंगों वाले शिशु? क्या सुकुमार-कोमलांगी असूयम्पश्या ललनायें? निश्चय ही यह उत्तरदायित्व युवा छात्रों पर ही है। अपनी नसों में जवानी का गर्म खून रहते, अपनी उमंग के जवान रहते, अपनी भरपूर जवानी में यदि इतिहास का निर्माण न हुआ तो कब होगा?

विश्व में शांति कैसे सम्भव है?

शांति के अभाव में न हम ऐहिक उन्नति कर सकते हैं और न पारमार्थिक। शांति के अभाव में न व्यक्तिगत, पारिवारिक और न राष्ट्रीय उन्नति सम्भव है। इन सबकी उन्नति के लिए प्रथम शर्त है शांति। बिना शांति के न हम समुचित अध्ययन कर सकते हैं न व्यापार-वाणिज्य आदि। शांति का शाब्दिक अर्थ है शम। मन की शम अवस्था को शांति कहते हैं। बिना मन की शम अवस्था के हम किसी भी प्रकार के कार्य को समुचित ढंग से सम्पन्न नहीं कर पाते। इसलिए भारतीय ऋषियों ने शांति पर बड़ा जोर दिया। क्योंकि अशांत मन से कोई भी कार्य ठीक ढंग से नहीं हो सकता। अशांत मन से भौतिक उन्नति नहीं हो सकती। तब आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठता। बिना मन के शांत (शम) हुए मन एकाग्र नहीं हो सकता। अतः मन की एकाग्रता के लिए मन का शांत होना आवश्यक है। बिना मन के एकाग्र हुए हम किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकते। चंचल मन हमेशा अस्थिर होता है। वह एक जगह स्थिर ढंग से बैठ नहीं सकता। अतः किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

विश्व शांति वास्तव में विश्व की समस्या न होकर मानव मन की समस्या है—जैसा मानव का मन है वैसा ही कुछ वह विश्व में देखता है। कहावत भी है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। अगर मानव का मन भीतर से अशांत है, भीतर में हाहाकार है तो उसी का प्रतिबिम्ब वह बाहर भी देखता है। मानव की विचित्रता है कि अपने मन की अशांति को विश्व में आरोपित करता है। वस्तुतः मन तो उसका अशांत है और आरोपित करता है विश्व में।

जिसकी झोली में जो है वही बांटेगा दूसरे को। जिसकी झोली में अमृत है तो वह जहां-जहां भी जाएगा सबको अमृत ही बांटेगा। उसके दैनिक व्यवहार, बोलचाल आदि सभी में अमृत ही अमृत बरसेगा। जहां भी रहे वह उसके लिए स्वर्ग के तुल्य है। जहां भी रहेगा उसे स्वर्ग ही बनाएगा। पर जिसके अन्दर विष ही भरा है उसको बाहर सभी जगह विष ही विष नजर आएगा। और विष के ही संस्कार सारी जगह फैलाएगा। वह जहां भी रहेगा नरक ही बनाएगा। वैसे ही

कुसंस्कारों को फैलायेगा। वह व्यक्ति जिस परिवार में रहेगा उसमें अशांति रहेगी। जिस समाज में रहेगा उसमें अशांति रहेगी। जिस भी राष्ट्र में रहेगा वहां—वहां अशांति ही अशांति फैलाएगा।

अशांति के बीज प्रथम मन में ही उदय होते हैं—मन में ही सबसे पहले परायेपन की भावना उदय होती है। उसी से फिर द्वेष की भावना बलवती होती है। द्वेष ही प्रथम में क्रोध के रूप में उभरता है। कालान्तर में वही बाहर में युद्ध के रूप में सारे विश्व के सामने प्रकट हो जाता है। युद्ध एकाएक नहीं होता है। वरन् उसका अंकुर बहुत पहले से ही मन में पड़ चुका होता है। वही धीरे-धीरे विकसित होते-होते परस्पर के अप्रिय वार्तालाप में प्रकट होता है। क्रोधाग्नि के रूप में प्रकट होता है। फिर बाह्य युद्ध के रूप में। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध पहले मनों में लड़ा गया। उसकी भूमिका मनों में तैयार हुई। द्वेष का बीज मन में उदित हुआ फिर कालान्तर में बाहर में क्रोधाग्नियों के रूप में फिर युद्ध के रूप में लड़ा गया।

बाहरी आक्रमणों से, गोला बारूद से बचने के लिए चीन की दीवार, पेरिस की दीवार खड़ी कर देते हैं। बाहर से राष्ट्र को, समाज को, परिवार को सुरक्षित करने के लिए दीवारों से घेरते हैं, कांटेदार तारों की बाड़ लगाते हैं, पहरेदारी की व्यवस्था करते हैं। पर वास्तविक समस्या तो मन की समस्या है। मन में द्वेष, क्रोध, शत्रुता के बीज अंकुरित न हो इसके लिए कौन सी पहरेदारी, बाड़ या दीवार को खड़ी करते हैं?

आज विश्व शांति का क्रम ही उलटा चल पड़ा है। मन में विद्वेष पाले हुए क्रोध की अग्नि जल रही है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल जाना चाहता है और सारे अशांति के साधन जुटाता जा रहा है (भयंकर हथियार, विषैली गैसें आदि)। राधाकृष्णन् के शब्दों में, हाथ में एटम बम लेकर विश्व शांति का नारा लगा रहा है। वास्तव में जो उसके मन में होगा उसके अनुकूल ही साधन जुटाएगा। अगर उसका मन शांत होगा तो उन साधनों को जुटाएगा जो विश्व शांति के पोषक हों। फिर आणविक शक्ति से जैसे विध्वंस किया जा सकता है वैसे ही उससे निर्माणकार्य भी हो सकता है।

अत: विश्व शांति के लिए या मन की शांति के लिए मन को शांत करने की साधना करनी पड़ेगी। लक्ष्य उसका शांति है और साध्य भी शांति। शांति केवल एक नारा नहीं है वरन् जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। शांति ही उसकी कुलदेवी है। राष्ट्रीय देवी है। सारे त्रिभुवन की देवी है, शांति की देवी है। उसका परम लक्ष्य है, उसको प्राप्त करने का साधन भी शांति है। यानी प्राप्तव्य लक्ष्य भी शांति है और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के जो साधन हैं वह भी शांति है।

शांति देवी ही उसके लिए सर्वस्व है, आध्यात्मिक लक्ष्य है, जहां पहुँचकर और कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता है। उसके लिए साधन है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधि। इस प्रकार जिसने शांति की साधना द्वारा शांति को पाया है वह जहां भी जाएगा शांति का वर्तुल, वायुमण्डल का निर्माण करेगा। शांति के बीज बोएगा। शांति के संस्कार लोगों को देगा। यानी जिसके पास जो है वही न बांटेगा।

अब विश्व का इतिहास उलट कर देखें कि किस देश ने शांति की साधना की और सारे विश्व में शांति बांटी और किसने सारे देशों को रौंद डाला, दासता की हथकड़ी पहनाई। विश्व का इतिहास साक्षी है कि भारत ने कभी भी किसी की नींद हराम नहीं की और जहां भी वे गए वे शांति के उपासक बनकर, शांति-संस्कृति का सुमधुर प्रसाद बांटने के लिए ही गए। उन्होंने चरित्र की निष्कलंकता और शुद्ध पवित्र ज्ञान के द्वारा विश्व को सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाया। इंग्लैण्ड के एक प्रवचन में विवेकानन्द भारत की बहुत प्रशंसा कर रहे थे। बार-बार भारत की प्रशंसा कर रहे थे। भारत की प्रशंसा एक शिष्य को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा कि भारत एक गुलाम देश है। उसकी आप प्रशंसा कैसे कर रहे हैं। तब विवेकानन्द ने कहा, भारत कभी गुलाम नहीं था और न ही है। गुलाम तो आप हैं। जो जिसके पास है, वही दूसरे को देगा अर्थात् जो स्वयं गुलाम है वही दूसरों को गुलाम बनाएगा। भारत कभी गुलाम नहीं था इसलिए उसने कभी भी दूसरे राष्ट्रों को गुलाम नहीं बनाया।

कुछ लोग यह शंका कर सकते हैं कि भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में लड़ते रहते थे। अवश्य उन्होंने अन्य राष्ट्रों पर आक्रमण नहीं किया पर आपस में तो बहुत लड़ते रहते थे।

हां, भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था, जो आपस में लड़ते रहते थे। इसकी सफाई में हमें कुछ नहीं कहना है। किन्तु, जिन्होंने भारत में आदर्श राज्य की स्थापना की उन्होंने दुष्ट राजाओं को नष्ट करने पर भी उस राज्य को उन्होंने अपने राज्य में नहीं मिलाया। जैसे बाली वध पर सुग्रीव को गद्दी पर बैठाया। रावण वध पर विभीषण को, कंस के वध पर उग्रसेन को। अतः जिन्होंने आदर्श राज्य की स्थापना की उन्होंने दुष्ट राजाओं का वध किया एवं उन्हें पुनः सुशासन दिया।

ये आपस में लड़ते थे तो केवल सेनाएं ही लड़ती थी। जन समाज या अन्य पर आक्रमण नहीं होता था। विजय पर उस राज्य के इष्टदेव का पूजन करते थे, और वहां की परम्पराओं के अनुसार ही शासन करते थे।

मन की शांति के दो अन्तरंग साधन

प्रथमः अष्टांग योग के द्वारा आध्यात्मिक साधना।

द्वितीयः पवित्र गृहस्थ जीवन, शास्त्रीय गृहस्थ जीवन, जहां मानव मन निर्मित होता है, संस्कारित होता है।

बाह्य साधन

असुरों एवं दुष्टों का दलन, दमन, राष्ट्र के शत्रुओं का दमन।

क्योंकि सृष्टि में दैवी एवं आसुरी सर्ग दोनों सदा से हैं।

आसुरी लोगों पर दण्ड के द्वारा नियंत्रण, 'विनाशाय च दुष्कृताम्'।

दैवी प्रकृति के लोग धर्म के द्वारा नियंत्रित, शील, विवेक एवं प्रेम के द्वारा।

दुष्ट, आसुरी प्रकृति के दण्ड के द्वारा नियंत्रित होते हैं।

इन अन्तरंग एवं बहिरंग, दोनों साधनों के द्वारा ही विश्व शांति की स्थापना हो सकती है।

हमने किसी पर आक्रमण नहीं किया। और किसी ने किया तो उसे हमने सहा नहीं। उसका मुंहतोड़ उत्तर दिया।

डॉ. राधाकृष्णन् ने स्तालिन से कहा—'हमारे देश में एक राजा था। जो बड़ा अत्याचारी और क्रूर था। उसने रक्तभरी राह से प्रगति की थी किन्तु एक युद्ध में उसके भीतर ज्ञान जग गया और तभी से उसने धर्म, शान्ति और अहिंसा की राह पकड़ ली। आप भी अब उसी रास्ते पर क्यों नहीं आ जाते?

प्रथम प्रवचन : मानव जीवन सोद्देश्य

मानव जीवन में विश्राम कर सके। यदि सिर्फ दौड़ा ही दौड़ा पर विराम नहीं। यदि सिर्फ संग्रह ही संग्रह किया, त्याग नहीं किया तब सारा जीवन बेकार है, निरुद्देश्य है।

हम किसलिए दिनभर परेशान हुए, किसलिए झूठ बोलते हैं? किसलिए कालाबाजारी की, किसलिए मिलावट की? जिनके लिए इतना सब नाटक कर रहे हैं? क्या वे महल, पुत्र, पत्नी ये साथ जाएंगे? अपने ही हाथ से अपने पांव में क्यों कुल्हाड़ी मार रहे हैं?

मिट्टी के तेल में पानी मिलाकर अधिक कीमत पर बेचना, चीनी ब्लैक में बेचना, अफसरों के आगे-पीछे घूमना आदि किसलिए करते हैं?

दिनभर के सांसारिक व्यवहार में अपने को इतना व्यस्त रखते हैं कि कहीं ओर जाने की, सोचने की फुर्सत नहीं है। कोई कहे चलो थोड़ा काम है तो तुरंत कहता है अभी मुझे मिट्टी के तेल के लिए लाइन में लगना है। फिर थोड़ी देर बाद पुनः कहता है अब तो थोड़ा देश के सम्बन्ध में विचार करें तो वह तुरन्त कहता है—अभी तो मुझे फुर्सत नहीं, चीनी लानी है। फिर थोड़ी देर बाद पुनः पूछते हैं, चलो, अब तो थोड़ी देर धर्म सम्बन्धी कुछ विचार कर लें, भगवान् का नाम ले लें तो तुरन्त कहता है भाई अभी तो समय नहीं है, अभी तो मुझे इन-इन अफसरों के पास जाना है।

आखिर ये सब किसलिए करता है। अपने तन के लिए तो क्या तुम्हारा तन तुम्हारे साथ जाएगा? धन के लिए तो क्या धन तुम्हारे साथ जाएगा? परिवार के लिए तो क्या परिवार तुम्हारे साथ जाएगा? एक भी साथ देने वाला नहीं तब फिर किसलिए कर रहे हो?

मनुष्य के जीवन में दो तत्त्व काम कर रहे हैं। प्रारब्ध और पुरुषार्थ। सुख-दुःख भोग का विधान प्रारब्ध है। इसके अनुसार सुख-दुःख मिलेंगे ही। चाहे तू इसे हँस-हँस कर भोग या छाती पीट-पीट कर, रो-रो कर भोग। तुम्हें भोगना तो पड़ेगा। पिछले जन्म में जो तुमने किसी को सुख-दुःख दिया है उसके अनुसार सुख-दुःख

का भोग मिलेगा ही। अतः भोग तो प्रारब्ध के अनुसार ही होगा। जिन्होंने कुछ भी शारीरिक मेहनत नहीं की, मानसिक मेहनत भी नहीं की, जो गद्दी पर बैठकर सिर्फ लखपति बन जाते हैं यानी बिना परिश्रम के लखपति बन जाना।

दूसरी ओर, एक मजदूर है। दिनभर परिश्रम करके दिन का भोजन ही जुटा सका और जो जुटाया और भोजन करने बैठा तो उसे चील छीनकर ले गयी। यहां भी प्रारब्ध के वशीभूत होता है। तो सुख-दुःख के भोग में प्रारब्ध ही बलवान है।

युगल किशोर बिड़ला कहते हैं कि हम तो जुआरी हैं। मालवीयजी ने एक मंत्र दिया, नारायण-नारायण जपने का। उसी को दिनभर जपता रहता हूं और गद्दी पर बैठा रहता हूं। जगह-जगह से मुनीमों के फोन आते हैं कि सोने का यह भाव है, खरीदना है या नहीं, चांदी का यह भाव है, हीरे का यह भाव है आदि। मैं तो सिर्फ इतना ही कहता हूं ले लो, या ना लो। इसी में लाखों-करोड़ों आ जाता है। प्रारब्ध बलवान है तभी बैठे-बैठे धन आ रहा है। धन अपने आप आ रहा है। बैठे-बैठे लॉटरी उठ जाना। किसी को बाप, दादा या श्वसुर की सम्पत्ति मिल जाती है।

ओबरायजी ने कहा—आप तो 50 प्रतिशत दान करते हैं, शेष से व्यापार बढ़ता है। फिर पुनः आता है फिर दान और व्यापार में लगाना तो आपका प्रारब्ध बनता जाता है इसलिए पुनः आता जाता है। तो भोग में प्रारब्ध बलवान है। परन्तु योग में प्रारब्ध का कोई दखल नहीं है। भगवान् को पाने के लिए पुरुषार्थ चाहिए। वहां हम बहानेबाजी करते हैं कि किस्मत में भगवान् का मिलना होगा तो मिल जाएगा। भगवान् तो पुरुषार्थ से मिलेगा पर यहां पर संतोष कर लेते हैं कि किस्मत में भगवान् होगा तो मिल जाएगा। और जहां संतोष करना है भोग में क्योंकि भोग तो प्रारब्ध के अनुसार मिलेगा, उसको कोई टाल नहीं सकता, वहां हम व्यर्थ ही पुरुषार्थ करते हैं। यानी जहां पुरुषार्थ करना है वहां संतोष कर लेते हैं और जहां संतोष करना है वहां पुरुषार्थ करते हैं।

सुख भोगते हुए भी भगवान् से मिल सकते हैं। दुःख भोगते हुए भी भगवान् से मिल सकते हैं।

तुलसीदास—जन्मते ही मां मर गई, पालन-पोषण दाई ने किया तो वह भी कुछ दिन में मर गई। तो लोगों ने यह धारणा बना ली कि जो भी इसके संसर्ग में आएगा वह मर जाएगा। जो इसको खिलाएगा, वह भी मर जाएगा। उसे भिक्षा भी नसीब नहीं हुई। सभी द्वारों पर ठोकर, दुत्कार मिलती। कंगाल था, अन्य भोजों में इस आशा से चला जाता था कि मेरी भी बारी आएगी, पर भोज में भी ताड़ना, लात, घूंसे, गाली मिलती भोज के बदले।

माता चली गयी, पिता ने त्याग दिया। तुलसीदास जी कहते हैं—विधाता ने मानो मेरे लिए भलाई लिखी ही नहीं। मैं द्वार-द्वार जाकर बिलखता हूं। ललचाता

हूं चार चने के दानों को। उन्हें ही चार फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) समझता हूं। मुझे देखकर दु:ख भी दु:खी हो जाता है। इतनी मेरी दुर्गति है कि कूकर जो टुकड़े खाते हैं उसके लिए मैं ललचाता हूं। पर उसने पुरुषार्थ किया और भगवान् को पा लिया। समाज को कभी अभिशाप नहीं दिया। उस मृत समाज के लिए संजीवनी विद्या फूंक गया। वह अपने विकास के लिए प्रारब्ध का बहाना नहीं बनाता। योग तो पुरुषार्थ से होता है। तुम्हें टुकड़े (रोटी) भले ही नसीब न हों पर भगवान् अवश्य मिल सकते हैं। आप संसार का बोझा ढोने के लिए या कुलीगीरी करने के लिए संसार में आये हैं क्या?

तो हम सबका उद्देश्य क्या है? भगवान् की प्राप्ति। तो योग के लिए पुरुषार्थ करो। पर हमने तो टुकड़े के लिए सारा पुरुषार्थ लगा दिया, दिन-रात मिल चलाना, आधी रात को उठकर हथौड़ा पीटना। पर भोग तो प्रारब्ध से मिल जाता है तो उसके लिए पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है। भोग के लिए व्यापार पर भोग तो प्रारब्ध से मिल जाता है, जिनके प्रारब्ध में नहीं है उसको कभी लाभ नहीं होता।

शरीर को सजाने, मकान को सजाने में जितना समय लगाया, उतना ही पुरुषार्थ भगवान् के लिए करो तो भगवान् मिल जाते हैं। पर हम उसके लिए पुरुषार्थ नहीं करते और बहानेबाजी करते हैं।

एक रोगी वैद्यजी के पास गया। पेट में कीड़ा, आंख भी दुखने को आई। तो वैद्य ने पेट में पाचन की कमजोरी के शमन के लिए शीतल और मीठी औषधि और आंखों के लिए अलग से जहरीली औषधि दी। पर मूर्ख ने आंख की औषधि पेट में और पेट की औषधि आंख में डाल ली। वैसे ही हमने भोग के लिए पुरुषार्थ और भगवान् के लिए प्रारब्ध को अपनाते हैं।

पेट के लिए बर्फानी इलाकों में, सड़क नहीं है तो पगडंडी से चलकर, घोर जंगल में भी व्यवसाय। नक्सलाइट से एक बच्चा मारा भी गया फिर भी व्यापार नहीं छोड़ा। दूसरे बच्चे को व्यापार में बैठा दिया, पुरुषार्थ लगाना चाहिए योग के लिए, प्रारब्ध लगाना चाहिए भोग के लिए। मानव जीवन की ऐसी दुखांत नाटक की कथा है।

अपने मोक्ष की बातें सोचो और जिस जगत् में आये हैं उस जगत् का भला भी कर जाएं। पर जगत् की भलाई में फंस मत जाओ। जगत् की भलाई करते हुए भी भगवान् को सदा याद रखो। उसको भगवान् की सेवा समझो। पर याद रखो जिस हाड़-मांस के पुतले की जो सेवा कर रहा है वह भी अन्त में श्मशान की धूल बनने वाला है। अत: भगवान् को मत भूलो। समस्त कर्म को भगवान् से जोड़ दें।

हे अर्जुन! सब कालों में निरन्तर मुझे स्मरण करता हुआ युद्ध करता जा। पर यह असम्भव-सा लगता है। युद्ध में तो क्रोध, आक्रोश, गर्जना, आवेश-शीघ्रता होगी।

भगवान् के स्मरण में शांति, धीरज, मन का समत्व होना चाहिए। मन के अन्दर राग-द्वेष नहीं होना चाहिए।

अतः यह तो असम्भव बात हुई। युद्ध करें तो भगवान् को स्मरण कैसे करें और भगवान् का स्मरण करें तो युद्ध कैसे हो। भगवान् के स्मरण में तो पराया कोई है ही नहीं। तो युद्ध कैसे?

जब तक संसार में रहें तब तक भगवान् को स्मरण करते हुए कर्म करो। क्रोध से युद्ध नहीं करो। राग-द्वेष से रहित होकर समत्व बुद्धि से कर्तव्य (युद्ध) करो। मुझे स्मरण करते हुए जूता गांठो, व्यापार करो, यानी जो-जो कर्तव्य हैं वह भगवान् के स्मरण के साथ करो तो वह कर्तव्य कर्म से भगवान् की पूजा हो जाएगी और उसका कर्म भी विकृत नहीं होगा। वह पलायनवादी, संसार के कर्तव्य को छोड़कर भागने वाला भी नहीं होगा। कर्तव्य का भी सुन्दर ढंग से पालन होगा। भगवान् की पूजा और स्मरण भी होता रहेगा।

कर से कर्म करो विधि नाना, मन राखो जहां कृपा निधाना।

उसका जीना संसार में सचमुच धन्य है, महान् है, जो प्रभु स्मरण करता हुआ कर्म करे। संसार के सब कर्तव्यों से, संसार से भागें नहीं पर भगवान् के स्मरण के साथ करें और याद रखें कि भगवान् की प्राप्ति के लिए कर्म कर रहे हैं। यह न समझें कि कर्म कर रहे हैं इसलिए भगवान् का नाम लें। जगत् के हित के लिए कर्म नहीं करें वरन् भगवान् की प्राप्ति के लिए कर्म करें। उससे जगत् का भला भी हो जाएगा, उससे जगत् में फंसेंगे नहीं और जगत् के हित के लिए कार्य हो जायेगा। भगवान् की प्राप्ति के लिए नहीं, नहीं तो हम जगत् में ही फंसे रह जाएंगे। अतः भगवत् प्राप्ति के लिए कर्म करो। उससे अपने आप जगत् का भला हो जाता है। आपके द्वारा किसी की सेवा हुई तो यह कहें कि मैंने तो भगवान् की प्राप्ति के लिए भगवान् की सेवा की। उससे आपका भला हो गया तो अच्छी बात। जिससे संसार में नहीं फंसोगे और भगवान् को भी पा जाओगे।

जगत् को हमने क्या दिया, इस पर विचार करो। अगर हम संसार में आये और कुछ दिया ही नहीं तो व्यर्थ ही जगत् में आये और हमारे आने का कोई प्रयोजन ही नहीं, हम तो व्यर्थ ही मेहमान बनकर पृथ्वी पर अपना बोझा बढ़ाने के लिए आये हैं तो हमारा आना व्यर्थ है। क्योंकि हमने समाज का कुछ बिगाड़ा तो नहीं पर समाज को कुछ दिया भी नहीं सिर्फ समाज का बोझ बढ़ाया तो हमारा जीवन व्यर्थ है।

संसार में आपा-धापी है, क्लेश है, दुःख है, ईर्ष्या है, द्वेष है। इसमें जो लग गया है वह पामर पशु तुल्य है यानी जो संसार में आकर कुकर्म किये और संसार को और भी गंदा किया, द्वेष की अग्नि ही भड़कायी, विष ही फैलाया तो उसका जीवन मानव से पशु, पशु से नरपिशाच है। वैसे जीवन को समाज भी धिक्कारता है। परिवार भी धिक्कारता है कि हाय ऐसा कपूत नहीं होता तो अच्छा, मर क्यों नहीं जाता। वह समाज और परिवार को कुकर्मों से सालता रहता है और समाज उसे शाप देता रहता है। प्रातः उसके दर्शन को अपशकुन मानते हैं।

हमने धरती पर आकर कुछ सुकर्म किये, कुछ सेवा की और हम भगवान् की शरण में गये तो उसके आने पर धरती वसुन्धरा बनती है, ऐसे पुरुषों के नाम स्वर्णाक्षर में लिखे जाते हैं—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।

अपार संवित् सुख सागरेऽस्मिन,
लीनं परे ब्रह्मीण यस्य चेतः।।

कुल पवित्र हो जननी धन्या,
वसुंधरा भी पुण्या उससे

अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म में
जिसका मन हो लीन निरन्तर

गोविन्द मिलन की यही तेरी बरिया,
अवर काज तेरे किते न काम

कर साधु संगत भज केवल नाम।
लाख शीश तेने दिये यमराज के भेंट
एक शीश तेने न दियो नारायण के हेतु।

तो हमें नित्य विचार करना चाहिए कि हम किस श्रेणी में आते हैं। हम जिस समय संसार में आये और आजतक में जगत् वैसा ही है। हम कुछ न दे सके। जगत् को कुछ अच्छी बातें न दे सके तो हमारा यहां आना व्यर्थ रहा। अगर हमने आकर गंदे जगत् को और भी गंदा किया तो हम नर-पिशाच हैं। और यदि हम आकर जितना हमको समाज ने दिया उससे कुछ अधिक हमने समाज को दिया तभी जीवन, जीवन कहलाने योग्य है। तुलसीदास को हमने चार चने के दाने नहीं दिये पर उन्होंने हमको संजीवनी अमृत विद्या दी। ऐसों का ही जीवन धन्य है, उसकी संसार में लोग भी वाह-वाही करते हैं और प्रभु भी वाह-वाही करते हैं। मैंने जिसके लिए उसे भेजा वह कार्य सिद्ध कर आया।

जिसने कमाया त्यागने के लिए, जिसने संघर्ष किया योग के लिए उसी का जीवन धन्य है।

जिसने संघर्ष किया भोग के लिए, जिसने कमाया भोग के लिए, वह जीवनभर अशांत, पीड़ित, दु:खी तो रहेगा ही साथ ही सुख से मरेगा भी नहीं। तड़पेगा, मोह उसे दबाएगा। पुनः-पुनः कूकर-सूकर, चूहे, सर्प की योनि में आकर अपने ही घर में बेटों से मारा जायेगा।

अतः अगर कोई अपनी दुर्गति चाहता है तो संसार का मोह, बोझ लेकर जाना, फिर आना। पुनः 84 लाख के चक्र में पड़ना और यह चक्र 84 प्रलय तक चलता रहेगा।

अरे! तुमने लाख शीश यमराज को भेंट किये पर तुम एक भी शीश नारायण को नहीं दे सके। मनुष्य योनि में ही भगवान् से मिलने की बारी है और तो योनि विष्ठा खाने के लिए है। फिर मनुष्य योनि में आकर भी तू विष्ठा खाने में लग गया तो व्यर्थ है तुम्हारा मनुष्य जीवन। यह योनि तो भगवान् को पाने के लिए है। और कोई काम तुम्हारे काम आने वाला नहीं।

जो कुछ है, था, सब कुछ संसार को लुटाकर चला जा जैसे दिव्य पुरुष गये। तब लोग भी तुम्हारी वाह-वाही करेंगे और प्रभु भी वाह-वाही करेंगे कि मैंने जिसके लिए भेजा वह कार्य सिद्ध कर आया।

यदि शिक्षित लोग सामाजिक शिक्षा को अंगीकार करते हैं तो उन्हें जनसाधारण के साथ घुल-मिलकर रहना होगा। जो लोग जनता का नेतृत्व करना चाहते है उन्हें यह समझाना होगा कि जनता की इच्छा—आकांक्षाएं क्या है, उनकी धार्मिक भावना कितनी गहरी है और राष्ट्रीय हित के लिए उनके सामर्थ्य का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है।

—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

द्वितीय प्रवचन : भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी विस्तार

भारतीय संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में सब देशों की संस्कृति की जननी है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि विश्व मानव की आदि जन्मभूमि और आदि संस्कृति एक ही है। वह पुण्यभूमि भारत ही है। जहां से मनुष्य पश्चिम में फैल गया और अपने साथ यहां के संस्कारों को भी ले गया। काल एवं परिस्थितियों के प्रभाव से वही संस्कार उनकी संस्कृतियों में व्यक्त हुए।

भारत—जहां स्वयंभु प्रभु ने सर्वप्रथम वेद का गान गाया, जिसे जगदीश्वर ने सर्वप्रथम अपनी लीलास्थली बनाया।

जैसा आकार हमारे देश का आज है, सृष्टि के आरंभ में इस आकार में कुछ अन्तर था। भारतमाता के दोनों हाथ पंजाब और बंगाल आज की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ थे। भारत जननी के सिर का ताज कैलास भी अधिक शोभाशील था। मुकुट-मणि बदरी-केदार अपनी वर्तमान अवस्था से भी अधिक ज्योत्स्नामय थे। इसका वक्षस्थल कौशल देश महाबलशाली था। हिमालय के गौरव का तो ठिकाना ही क्या था। वह तो साक्षात् मूर्तिमान गौरव ही था। वरुण इसी प्रकार उसके चरण कमल की सेवा में चौबीसों घंटे तत्पर रहता तथा अपनी जननी जन्मभूमि के स्तोत्र गाता। सब कुछ ऐसा ही था। केवल उन दिनों अपनी श्रद्धा के वशीभूत हुआ महाकाल नीलोदधि अपनी मातृभूमि के वक्षस्थल तक पहुंच गया था। वह अपनी जननी जन्मभूमि के अत्यंत निकट रहना चाहता था। उन दिनों राजपूताना के स्थान पर सागर था। एक ओर यह सागर त्रिगर्त (जालंधर और फिरोजपुर) तक छाया हुआ था। दूसरी ओर इसका शरीर दिल्ली तक फैल चुका था। मानो उन दिनों सिन्धु-सौतीर क्षुद्रक (बहावलपुर), राजपूताना ये सब अरब सागर के ही एक अंग थे।

परन्तु परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र है। जल में थल और थल में जल करते हुए उसे कुछ भी देर नहीं लगती। लगे भी क्यूं! अपने संकल्प मात्र से उसने संसार का खेल खेला, वह इस खेल को जैसे चाहे खेले। अपनी पुतलियों को वह

पुतलियों वाला जैसा उसका दिल चाहे नचाये। कभी उसने बिहार में कैसा नाच नचाया था। कभी कांगड़ा को उसने कैसा हिलाया था?

उन दिनों धरती पर पापी तो नहीं बसते थे, फिर भी न जाने धरती माता को किन पापों का फल भोगना पड़ा कि नीचे भी पानी और ऊपर भी पानी। इसका नाम है प्रलय। कहते हैं उन दिनों निरंतर 58 दिन वर्षा होती रही। मुफ्त का पानी था। परमात्मा के प्रमुख अहलकार इन्द्र देवता ने धरती वालों पर केवल अपनी शान का सिक्का जमाने के लिए उसे यूं ही बहा दिया। लोग अपनी जान बचाने के लिए हिमालय पर जा चढ़े। वे अपना दाना-पानी समेट उसकी कंदरा में जा छिपे। कुछ इतने घबराए कि वे हिमालय को भी पारकर तिब्बत और मध्य एशिया में जा बसे। 58 दिन थोड़े नहीं होते। मुसीबत की तो एक घड़ी भी कम नहीं फिर 58 दिन! निश्चय ही वे लोग धन्य थे जिन्होंने इस घोर आपद्काल में भी साहस न छोड़ा।

विदेशों में मनु की गाथा—यहूदी बाइबिल, ईसाई बाइबिल तथा कुरान में वर्णन—नूह का प्रलय।

यूरोप में आर्य—अफगानिस्तान, ईरान, जर्मनी, इंग्लैण्ड, यूनान के लोग उन्हीं आर्यों की संतान हैं जो हिमालय से होते हुए यूरोप और मध्य एशिया में जा बसे।

ईरान—आर्यन, शाह की पदवी आर्यमिहिर। भारतीय आर्य और ईरानी आर्य दोनों अग्नि के उपासक थे। किन्तु भारतीय इन्द्र को अधिक महत्त्व देते थे दूसरे अग्नि को तथा मित्र वरुण को। इसी से दोनों भाइयों में विवाद बढ़ गया। यही देवासुर-संग्राम बन गया।

प्रलय के पश्चात्—जल घटने पर लोग गंगा के द्वार हरिद्वार के मार्ग से पुनः अपनी भूमि में प्रविष्ट हुए। अतः आर्य आर्यावर्त्त लौट के आये।

असुर—मुनि यास्काचार्य के मत में—असुर शरीरबल का द्योतक था। देव बुद्धिबल का प्रतीक। भारतीय तथा ईरानी आर्यों में मतभेद बढ़ जाने से असुर शब्द का अर्थ विकृत हो गया। असुरों ने भारत में आक्रमण शुरू किए। शुक्राचार्य उनके गुरु बन गए।

भारतीय संस्कृति विदेशियों की दृष्टि में—पेरिस विश्वविद्यालय के प्रो. लुई टिनाऊ लिखते हैं कि संसार के देशों में भारतवर्ष के प्रति लोगों का प्रेम और आदर उसकी बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति के कारण से है।

हिन्दू लोग धार्मिक, प्रसन्न, न्यायप्रिय, सत्यभक्त, कृतज्ञ और प्रभु की भक्ति से युक्त होते हैं।—सैमुअल जॉनसन

ध्यान की प्रणाली को भारतीयों ने जन्म दिया है। उनमें स्वच्छता तथा शुचिता के गुण वर्तमान हैं। उन लोगों में विवेक है तथा वे वीर हैं।—अलहजीज (8वीं शताब्दी ई.)

ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद एवं अन्य विद्याओं में भारतीय लोग बढ़े हुए हैं। प्रतिमा निर्माण, चित्र लेखन, वास्तुकला में वे पूर्णता तक पहुंच चुके हैं। उनके पास काव्य, दर्शन, साहित्य तथा नैतिक शास्त्रों का संग्रह है।—अलहजीज (8वीं शताब्दी ई.)

समस्त भारतीय, चाहे वे प्रासादों में रहने वाले राजकुमार हों या झोपड़े में रहने वाले प्रजाजन—संसार के सर्वोत्तम शील-सम्पन्न लोग हैं। मानो यह उनका जातिगत धर्म हो। उचित और आदरपूर्वक व्यवहार का प्रत्युत्तर वे अवश्य देते हैं, तथा दयालुता एवं सहानुभूति के किसी कर्म को भूलते नहीं।—लार्ड विलिंग्टन

पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने के रहस्योद्घाटन का श्रेय भी भारत को ही है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय को बिल्कुल ठीक आंकने का श्रेय भी भारतवासियों को ही है।

सबसे अधिक तो है भारत का अत्यधिक प्रभाव पश्चिम पर। भारत से कई विद्वान् मिस्र के बन्दरगाह सिकन्दरिया में व्यापारियों के साथ जा पहुंचते थे, तभी तो पाइथोगोरस आदि विचारकों पर उपनिषदों के दार्शनिक विचारों का प्रभाव पड़ सका। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में तो यूरोप और अमरीका के विचारकों ने मुक्तकंठ से भारतीय दर्शन की सराहना की। गेटे Geothe ने सर विलियम जोन्स कृत शकुन्तला नाटक के अनुवाद से अपने ड्रामा Faust की भूमिका का आधार प्राप्त किया। फिकटे और हैगल भारत के एकतत्त्ववाद के आधार पर एकेश्वरवाद पर रचनाएं प्रस्तुत कर सके। अमरीका में भारतीय दर्शन के प्रभाव को थोरो और इमर्सन ने बहुत ही प्रचारित किया।

अब तो जबकि सारी दुनिया छोटी हो गई है, इसके किसी भी कोने में केवल चन्द घंटों में मनुष्य पहुंच रहा है। सबकी आँख भारत पर जमी है। अपनी आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति के लिए ए.एल. बाशम के शब्दों में, जो भारत की विश्व को देन की सराहना करते थकते नहीं, जब संसारभर की एक संस्कृति होगी और वह होगी भारत की संस्कृति पर आधारित।

आज के युवकों को अपने गौरवपूर्ण भाग्य की सराहना करनी चाहिए जो प्रभु की कृपा से उनको ऐसी उज्ज्वल संस्कृति की पुण्यनिधि पूर्वजों से प्राप्त हुई है, जिसे बनाए रखने का उत्तरदायित्व उन पर आता है।

तृतीय प्रवचन : विदेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

विदेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पर भाषण देते हुए प्रो. ओबरायजी ने बताया कि समस्त विश्व का अध्ययन करने से ऐसा पता चलता है कि भारतीय संस्कृति की छाप विश्व के जर्रे-जर्रे में व्याप्त है।

समस्त विश्व में भारतीय संस्कृति की छाप को मिटाने के लिए जमाने के साथ विदेशियों ने भरपूर प्रयास किया। परन्तु, भारतीय संस्कृति की छाप इतनी गहरी थी कि उसका वे जड़ से खात्मा नहीं कर पाए। आपने बताया कि विश्व में भारतीय संस्कृति की छाप अभी भी जगमगाती नजर आ रही है।

मैक्समूलर जैसे विद्वान् ने सब दिन भारत की महिमा गायी और उसने भारत को एक पवित्र एवं संस्कृतिप्रधान देश माना। विदेशियों ने युग-युग से भारत को दर्शनशास्त्र का केन्द्रस्थल माना। ईसाइयों के धर्म में बौद्ध धर्म की झांकी देखी जा सकती है।

नेपाल में, जो हमारा पड़ोसी देश है, पूर्ण रूप से भारतीय सभ्यता है। वहां का रहन-सहन, वेश-भूषा, धर्म आदि सभी भारतीयता के रंग में रंगे हुए हैं।

युग-युग से लंका का भारत के साथ तादात्म्य रहा। लंका की संस्कृति पूर्णतया भारतीय संस्कृति है। भगवान् बुद्ध ने लंका में अपने धर्म का प्रचार किया। वहां के बौद्ध भिक्षु भारत को अपने देवस्थान के रूप में देखते हैं।

श्याम देश (थाइलैंड) में पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति विराजमान है। श्याम देश में राजाओं के नाम के साथ राम शब्द जुड़ा होता है। कारण, वहां राम का अर्थ राजा होता है। वहां अभी भी रामलीला, कृष्णलीला का मंचन होता है। वहां जब इस्लाम का प्रवेश हुआ तो उन्होंने भारतीय संस्कृति को मिटाने का बहुत प्रयास किया। पर वे भारतीय संस्कृति की छाप को मिटा न सके। वहां राम, लक्ष्मण, हनुमान की प्रतिमाओं के प्रति लोगों में काफी आस्था है। वहां के लोग राम राज्य के आदर्श को सर्वोपरि मानते रहे हैं। वहां के कुछ नगरों के नाम हैं—अयोध्या, विष्णु आदि जो भारतीय नाम हैं।

बोर्निया का नाम कलिमन्द था।

मलेशिया में भारतीय संस्कृति व्याप्त है। इनके नामों में भारतीयता की छाप अभी भी शेष है।

इण्डोनेशिया में अभी भी इस्लामी सत्ता रहने के बावजूद वहां की संस्कृति भारतीय है। राष्ट्रपति सुकर्ण के पिता ने उनका नाम कर्ण के बजाय सुकर्ण रखा। यहां की राजधानी जकार्ता का असल नाम योग्यकर्ता था। परन्तु, डच लोगों के प्रभाव के कारण यहां की भारतीय संस्कृति को गहरा धक्का लगा। सुकर्ण के पिता स्वयं संस्कृत के ज्ञाता थे और वे रामायण का पाठ करते थे।

जावा में भगवान् विष्णु का विशाल मंदिर है। ओबरायजी ने बताया, कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रभाव अभी तक है। आपने बताया कि वह भी एक युग था जब चीन के लोग भारतीय ग्रंथों को पढ़कर गौरवान्वित अनुभव करते थे। ह्वेनसांग ने भारत आकर भारतीय संस्कृति की रूपरेखा देखी। परन्तु, दुर्भाग्यवश साम्यवाद के आगमन के बाद से चीन का रूप ही बदल गया और भारतीय संस्कृति का नामोनिशान मिटा दिया गया।

प्रो. ओबराय ने अंत में कहा कि आज समस्त पश्चिमी देशों में गीता, रामायण आदि भारतीय ग्रंथों को बड़े आदर से पढ़ा जाता है। कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि ने विश्व को भारतीय संस्कृति से परिचय कराया।

प्रो. ओबराय प्रायः कहा करते थे कि मेरी आंखों पर पट्टी बांधकर विश्व के गोल मानचित्र (ग्लोब) को घुमा दीजिये। मैं उस ग्लोब पर, बंद आंखों से, जहां भी अपनी अंगुली रख दूं, उस स्थान पर भारतीय संस्कृति की छाप एवं भारतीय दर्शन की देन प्रमाणित न कर सकूं तो मेरा सिर कलम कर दीजिए।

चतुर्थ प्रवचन : गुरु नानक दिवस पर

आज गुरु नानकदेव का प्राकट्य दिवस है। इस दिन सभी यशोगान उन्हीं का होना चाहिए। मेरे जैसे तुच्छ शरीर का मान कर एक तुच्छ व्यक्ति को ऊंचा उठा रहे हैं। मैं उसके योग्य नहीं हूं। Give me poision but not praise. विष भले दो पर मान मत दो। शिवजी ने विष को पचा लिया। पर, भस्मासुर की प्रशंसा को नहीं पचा सके और भस्मासुर उन्हीं को भस्म करने को प्रवृत्त हुआ। जब शिवजी ही मान को नहीं पचा पाए तो मैं कौन होता हूं? रास्ता कठिन है। अनेक कठिनाई है। वीर-धीर पुरुष यदि अहंकारी हो जाए, यदि प्रशंसा से फूल जाए तो वह जीती हुई बाजी को हार जाएगा। प्रशंसा को पचाना कठिन कार्य है। ईश्वर से प्रार्थना है कि मैं एक-एक कदम इस पर चलूं, पर प्रशंसा मेरी मत करो। भारत मां की करें, जगद्गुरु विभूतियों की करें।

मैं जगद्गुरु महापुरुषों के चरणों की धूल को विश्व में खोजता हूं। कितने प्राणों ने तपस्या कर विश्व के आंगन में भारतीयता का परिचय दिया। मैं अवाक् रह जाता हूं। मैं सोचता हूं कि मेरे देश के महापुरुषों ने कितना कष्ट, तितिक्षा सही तथा विश्व को निःशुल्क ज्ञान बांटा। प्राण देकर सौरभ बांटा। ऐसे महापुरुष और कहां हैं इस दुनिया में?

सर्वप्रथम महर्षि अगस्त्य ने विंध्याचल को पार किया था। रावण विन्ध्यवासियों को भड़काता था कि हम असुर और आप वानर मिलकर आर्यावर्त्त पर हमला करेंगे। इस तरह विन्ध्याचल सिर उठाने लगा था। विन्ध्याचल के नीचे उरांव, भील, मुण्डा आदि बसने वाली अनेक जातियों, उपजातियों को सामूहिक रूप से वनवासी (वानर) नाम से पुकारा जाता था। जैसे नगर में रहने वाले को नागर कहा जाता है, उसी प्रकार वन में रहने वाले को वानर कहा जाता है। वनेषु वसन्ति इति वानराः। वन में रहने वाले, कन्द-मूल खाने वाले वानर—शिव वामन आप्टे कोश। छोटानागपुर के उरांव जनों में लगभग 12 गोत्र ऐसे हैं जिसका अर्थ ही वानर है। यथा हनुमान, बजरंग, गड़ी, रेछी, बरई, बसोर, मैना, तिग्गा, वानरा, खंगार, पवन और वंशज। वानर को ये पूज्य मानते हैं। वानर हत्या को पाप मानते हैं।

श्री शरतचन्द्र राय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरांवज ऑफ छोटानागपुर' में उरांव जाति के विषय में बतलाते हुए कहते हैं, दुनिया का सबसे बड़ा रामनवमी का झण्डा रांची में निकलता है। झण्डे पर हनुमानजी होते हैं।

भगवान् श्रीराम ने अपना राज्याभिषेक हो जाने पर सबको पुरस्कार बांटे। किन्तु, श्री हनुमानजी को क्या दें यही समझ में नहीं आ रहा था। भगवान् राम ने कहा-

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोयकाराणां भवाम् ऋणिनो वयम्।।

मदंगे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।।

वा. राम. 7/40/23-24

हे हनुमान जी! तुम्हारे एक-एक उपकार का ऋण चुकाने में मैं प्राण निछावर करने को उद्यत हूं। परन्तु, तुम्हारे जो अनेकों उपकार शेष रह जाते हैं उनके लिए तो हम सपरिवार सदैव तुम्हारे ऋणी ही रहेंगे। मैं नहीं चाहता कि मैं तुमसे उऋण हो जाऊं। मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारा चिर ऋणी बना रहूं और तुम्हारे उपकार मेरे अंग में पच जाएं। क्योंकि किसी का बदले में प्रत्युपकार तभी किया जा सकता है जब वह भी वैसी आपत्ति में पड़ा हो। मैं स्वयं भी नहीं चाहता तुम पर कोई आपत्ति आये। (अर्थात् मैं नहीं चाहता कि तुम कभी विवाह करो, तुम्हें वनवास मिले। पत्नी के हरण में रोते-भटकते रहो और हम तुम्हारी सहायता कर सकें।) अतः प्रगाढ़ आलिंगन ले रहा हूं।

अगस्त्य ने बताया कि रावण के कहने पर मत चलो। राम आ रहे हैं उनका स्वागत करो। उन्होंने आन्ध्रप्रदेश में भिल्लनी को बताया कि राम आ रहे हैं। पंचवटी (नासिक), महाराष्ट्र में राम के दक्षिण आगमन पर राम का स्वागत किया।

रावण के दूत कहते हैं, टैक्स लाओ। ऋषि-मुनि, वनवासी कहते थे हम तो राम को राजा मानते हैं। इस पर वे ऋषि-मुनियों को खाकर हड्डियों के ढेर कर देते थे। इन हड्डियों के ढेर को देखकर भगवान् राम प्रतिज्ञा करते हैं—

निसिचर हीन करउं मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।

तब अगस्त्य ने आदित्य हृदयस्तोत्र राम को दिया। दिव्य अस्त्र-शस्त्र दिये। फिर तमिलनाडु में जाकर तमिल का व्याकरण लिखा 'अगस्त्यीयम'। फिर अगस्त्य ने समुद्र से मार्ग मांगा। तीन चुल्लू में सागर को पी लिया। जैसे क्रोध को पीना क्रोध को पार करना, उसी तरह समुद्र को पीना समुद्र को पार करना है। समुद्र पार कर मलय एवं इंडोनेशिया द्वीप समूह में भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। अगस्त्य

जी की हजारों मूर्तियां मलेशिया एवं इंडोनेशिया में हैं। क्या आप जानते हैं अयोध्या के नाम पर 126 देशों के लोग सिर झुकाते हैं। आपने अपने आपको भुलाया है। दुनिया में अपनी दौलत को नहीं पहचानने वाले ठोकर खाते हैं। अरे नाइट क्लब, बियर टपलेट, हिप्पी वाले सोचो तो क्यों दुनिया की गंदगी चाटते हो?

इंडोनेशिया में सबसे बड़ा रामायण-मूर्तिशिल्प है। जिन पर रामायण की मूर्तियां उत्कीर्ण की हुई हैं। आप देखें तो आपके नेत्र धन्य हो जाएं। इंडोनेशिया दुनिया में सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन करवाता है। वहां हर साल रामायण महोत्सव राजकीय स्तर पर आयोजित होता है। इसमें मुस्लिम अभिनेता श्रद्धापूर्वक राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि का हृदयस्पर्शी अभिनय कर श्रोताओं को भावविभोर कर देते हैं। इंडोनेशिया में रामलीला के मंचन पर पाकिस्तान के राजदूत ने कहा कि कुरान में रामलीला का आदेश कहां है? इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our history. We cannot change our blood. Ramayan & Mahabharat are in my blood. यदि भारत का मुसलमान इंडोनेशिया की तरह होता तो आप हम उल्हासनगर में नहीं होते। सिंध और पंजाब में होते। संस्कृति की उपेक्षा से देश की हत्या हो जाती है। भारत के मुसलमान Law Minister ने कहा 95 प्रतिशत मुस्लिम में हिन्दू रक्त है। यदि वे भारत की संस्कृति के प्रति उदार होते तो देश की हत्या नहीं होती। मुसलमानो! तुम भी भारतीय संस्कृति को मानो।

जब 1400 साल बाद यहूदी अपनी मातृभूमि वापस पा सकता है, तो क्या हम नहीं पा सकते? अवश्य पाएंगे। यह स्वप्न मैं देखता हूं। पाकिस्तान, बांग्लादेश और इराक के मनीषी सर ओकुल ग्रंथ में अबुल हिक्म की कविता देखें। R.K. Mission के स्वामीजी मिले। बगदाद के पास नानकदेव के बारे में शिलालेख है। उसे देखियेगा। मैंने उसे देखा है। जिस अरब में लोग तलवार लिए सैनिकों के साथ गए, वहां कमाल किया गुरु नानकदेव ने। सिर्फ माला लेकर गए।

बगदाद (इराक की राजधानी) में गुरु नानकदेव का 917 हिजरी का स्मारक है। जिसे मैंने देखा है। जिस पर पुरानी तुर्की मिश्रित अरबी भाषा में एक शिलालेख इस प्रकार है—

कोरद मुराद एलदी
हजरत रबें मजीद
बाबा नानक फकीर औलिया
कि इमारत जदीद।
यलयदा मिला दायद

व बकल्दी कि तारीखन

याय दी सबावे इजराईल

अज मरीदे सईद (सन् 917 हिजरी)

हे पंचनद देश के नानक महाराज! हे सप्त सिन्धु के महान् सपूत! तुमने अनेकों के मन की जिज्ञासाओं को शान्त किया। जैसे मधु का लोभी भौंरा फूल पर बैठा रहता है। वैसे ही हरवंशलाल का मन आप पर लोभित है। मैं भारतीय मनीषियों के इस कृत्य को देखता हूं तो गद्‌गद हो जाता हूं। आज मैं नानकदेव एवं आप सबसे आशीर्वाद मांगता हूं कि मैं इस पथ पर चलता रहूं।

हमारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था। यहां तक कि मृत्यु को भी भी गले लगाया। विदेशी विजेताओं ने मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े, किन्तु जैसे ही वह आंधी गुजरी मन्दिर का शिखर पुनः खड़ा हो गया। दक्षिण भारत के ऐसे कुछ प्राचीन मन्दिर विशेषकर गुजरात का सोमनाथ मन्दिर तुम्हें अक्षय ज्ञान प्रदान करेंगे। जाति (राष्ट्र) के इतिहास के प्रति जो गहरी दृष्टि वे प्रदान करते हैं वह ढेरों पुस्तकों से नहीं मिल सकती। ध्यान से देखो इन मन्दिरों पर सैकड़ों आक्रमणों एवं सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न किस तरह अंकित हैं। वे बार-बार नष्ट हुए और खण्डहरों में से पुनः उठ खड़े हुए। पहले की भांति सशक्त और नवजीवन से युक्त। यही हमारा राष्ट्रीय जीवन प्रवाह है। और इसका अनुसरण करो और गौरव प्राप्त करो।

—**स्वामी विवेकानन्द**

पंचम प्रवचन : संस्कृतियों का प्रसार विश्व में

भारतीय संस्कृति पूर्ण प्रफुलित पुष्प के समान है। जिसके सुरभित पराग के बीज इतिहास की अनुकूल पवनों द्वारा सुदूर देश-देशान्तरों में ले जाए गए तथा कालान्तर में तद्-तद् देशों में भारतीय संस्कृति के सुन्दर पादप लहलहाने लगे तथा इस प्रकार सारा विश्व भारतीय संस्कृति की सुवास से परिपूर्ण हो उठा।

सम्भवतः भारत सबसे प्राचीन राष्ट्र है। इसलिए मनु भगवान् ने कहा यह राष्ट्र सबका अगुआ है। क्योंकि सबसे पहले जन्मा अतः बड़े भ्राता के नाते उसका यह दायित्व होता है कि वह अन्य छोटे भाइयों को शिक्षा दे। इसलिए भारत के ऋषियों ने एवं वेद भगवान् ने आज्ञा दी, घोष किया—

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'

इस्लाम का भी यही नारा है। विश्व को इस्लाम के रंग में रंग देना। ईसाइयों का भी यही नारा है—विश्व को 20वीं शताब्दी में ईसा के चरणों में ले जाना। कम्यूनिस्टों का भी यही नारा है—वोल्गा से वाशिंगटन तक फैल जाना। अब इस पर विचार करें—भारत में जिस प्रेरणा से कहा गया कि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् वह निष्काम निश्छल है। पर अन्यों ने जो कहा उस पर विचार करें। कम्यूनिस्टों ने कहा—हम सारी दुनिया को खून से रंग कर विश्व में कम्यूनिज्म थोप देंगे। अच्छा कार्य पर साधन दूषित है तो वह कार्य भी दूषित है। यदि साधन उचित नहीं है, सद्भाव है, पर परिणाम पर विचार नहीं करते हैं तब भी कर्म दूषित है। जैसे—पिता (डॉक्टर नहीं होने पर भी) पुत्र का आपरेशन करे तो उचित नहीं माना जाएगा। पिता का पुत्र के प्रति सद्भाव तो है पर उसका साधन उचित नहीं है और परिणाम पर भी उसने विचार नहीं किया है।

विश्व को आर्य बनाने के लिए हमारे ऋषि वीतरागी बने, लंगोटी पहनकर एक पोथी लेकर चले। कितनों को सागर की उत्ताल तरंगों ने लील लिया। कितनों को मगरमच्छों ने, कितनों को जलदैत्यों ने हजम कर लिया। पर हिम्मत नहीं छोड़ी और एक दिन दक्षिणपूर्व-एशिया में भारतीय संस्कृति की पताका फहराने लगी। रक्त की एक बूँद भी नहीं बहायी। अपने साथ सेना और धन को लेकर नहीं गये।

वहां की संस्कृति को नष्ट नहीं किया। दूसरे के कष्ट देने पर भी अपनी शांति का संदेश बांटा।

इस्लाम ने एक हाथ में कुरान और एक हाथ में तलवार लेकर कहा—कुरान को चुनो, या फिर तलवार की मार झेलो। जिस देश में गए उसको ध्वस्त कर दिया—स्पेन से इंडोनेशिया तक।

ईसाइयों ने धार्मिक अदालतें बनाई।

चेकोस्लोवाकिया में तीन लाख लोगों को जिंदा जला डाला। दबी हुई लाशों को पुनः फांसी दी। क्या ये लोग हमारे ऋषियों के सामने टिक सकते हैं?

मार्क्सवादियों की खूनी क्रान्ति—चीन की क्रान्ति में करोड़ लोग बलि चढ़ गए। तो क्या ये भारत के ऋषियों के सामने टिक सकते हैं? भारत के ऋषियों ने विश्व को सुसंस्कृत एवं संस्कारित बनाने के लिए उद्यम किया और इसके विपरीत अन्य तो अपने अहंकार के पोषण के लिए ही दुष्कर्म करते रहे।

विदेशी मनीषियों के विचार हमारे हिन्दुत्व के प्रति कितने ऊंचे है, किन्तु हम स्वयं अपने को भूल बैठे हैं। यह कितनी लज्जा का विषय है।

हिन्दू धर्म विश्व धर्म रहता हुआ सबका कल्याण-मंगल चाहता है, क्योंकि विश्व की विभिन्न जातियों का मूलस्रोत हिन्दू धर्म ही है।

—गुरुजी श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर

षष्ठ प्रवचन : ईश्वर कृत धर्म एवं मानव कृत धर्म

ईश्वर कृत सृष्टि का उपयोग सभी कोई समान रूप से करते हैं। जैसे सूर्य-चन्द्र, जल-वायु, अग्नि-आकाश आदि। मनुष्य कृत सृष्टि का उपभोग सभी कोई समान रूप से नहीं कर सकता। जैसे—पंखा।

सनातन धर्म अपौरुषेय है। ईश्वर कृत, अनादि है। इसलिए वेद का आयु-काल किसी ने नहीं बताया। पश्चिम के विद्वान् लाख कोशिश करके भी वेद की आयु निर्धारित नहीं कर पाये और वेदों के प्रत्येक शब्द की शव परीक्षा करने के बाद भी वेदों के अर्थ का अनुसंधान नहीं कर पाए। इतना कठोर परिश्रम करने के बाद भी वेद उनके लिए बंद पुस्तक (Close book) बनी हुई है। वेद को विकासवाद के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

मुहम्मद पैगम्बर 1400 हिजरी

ईसा—2000 सन्

मुहम्मद अन्तिम नबी और अब कोई नहीं।

ईसा में भी यही बात।

मुहम्मद व ईसा—आरम्भवाद अतः अंतवाद भी।

वेद में ऋषियों के नाम हैं। वैदिक सूक्तों के पूर्व उस विशेष ऋषि का नाम दिया हुआ है। ऋषि मंत्र स्रष्टा नहीं मंत्र द्रष्टा हैं। मंत्र का निर्माण नहीं किया, दर्शन किया है।

पंथ सब मनुष्यकृत हैं। मनुष्य पूर्णतया राग-द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता। अतः मनुष्यकृत धर्म सम्पूर्णतः त्रुटिरहित नहीं हो सकता। अतः मनुष्यकृत धर्म सबके लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। सिर्फ एक सम्प्रदाय विशेष के लिए उपयोगी हो सकता है।

बाइबिल के अनुसार सृष्टि की रचना छह हजार वर्ष पूर्व हुई। छह दिनों में सृष्टि सातवें दिन विश्राम किया God ने।

हमारे यहां संकल्प मात्र से सृष्टि क्षणभर में निर्मित हुई। पहले तो भारतीय सृष्टि सम्वत् की हंसी उड़ाई गई। पर अब विज्ञान उसी को सत्यसिद्ध कर रहा है।

भारत के वैदिक साहित्य को समझने के लिए भारतीय पश्चिम के चश्मे, पश्चिम के कान और पश्चिम के मन और बुद्धि से मनन कर रहे हैं। यही गड़बड़ हो रही है। भारत को भारत की आँख से, कान से, मन और बुद्धि से समझना होगा।

धर्म को लेकर राजनीति करना—हिन्दू की विभिन्नता हमारी पराजय या दुर्बलता का कारण नहीं है। वरन् इसका कारण इसके मूल में जो भाव है, हम सब हिन्दू एक हैं, इस एकता के भाव को भूलना है। हम सबको एक कर रहे हैं अपने को छोड़कर, देशप्रेम को छोड़कर, स्वधर्म को छोड़कर।

कृष्ण जन्मे क्षत्रिय कुल में। कृष्ण पले-बढ़े वैश्य व शूद्रों में। अब ठेका ले लिया ब्राह्मणों ने।

जात-पात पूछो मत कोय,
हरि को भजे सो हरि का होय।

हरि भक्ति से शबरी, जटायु, हनुमान पूज्य बन गए। हरि भक्ति के बिना रावण, कंस, दुर्योधन तिरस्करणीय बने। भक्ति से यदि कोई दुर्बल बनता है, डरपोक बनता है तो उसका अर्थ भक्त नहीं है। दुर्बल मन भक्त नहीं हो सकता।

भक्त वह है जो पीर पराइ जाने रे।
पर दुःख के उपकार करे।
मन में अभिमान न आने रे।

पर जो अकारण अन्यों को काफिर एवं हिडेन मानकर उन पर पीड़ा थोपते हैं, उसी को पुण्यकृत मानते हैं, स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग मानते हैं, उन्हें कैसे भक्त कहा जा सकता है?

सम्प्रदाय रहे, साम्प्रदायिकता नहीं। हम तो धर्म का, सबमें जो अच्छाई है उसका प्रचार करते हैं। दूसरे हमारी दुर्बलता का, हमारी अच्छाई को भी बुराई के रूप में पेश करते हैं।

नाई, धोबी, दर्जी पश्चिम को सभ्य बनाता है। स्वामी रामतीर्थ पश्चिमी सभ्यता की तुलना सोने के वरक में गोबर की लिपटी हुई मिठाई से करते हैं। भारत चरित्र से सभ्य बनता है। पैगम्बर, ईश्वर पुत्र ईसा और साक्षात् भगवान् में अन्तर है।

हिन्दू धर्म सब धर्मों की माता है।

सम्राट अशोक ने अपील की, धर्मचक्र प्रवर्तन का कार्य वृद्धों द्वारा नहीं युवाओं द्वारा ही सम्भव है। स्वयं सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा बोधिवृक्ष

(पीपल वृक्ष) की एक टहनी लेकर पटना से चली। त्याग-तपस्या, ज्ञान-चरित्र एवं निष्काम सेवा, नि:स्वार्थ भाव से विश्वमंगल की भावना से धर्म का प्रसार किया।

वहीं सेमिटिक परम्परा ने (इस्लाम व ईसाइयत ने) बल, भय, आतंक, छलकपट, हिंसा द्वारा अपने धर्म को दुनिया पर थोपा।

इसलिए ऋषि अरविन्द घोष कहते हैं—भारत उस सत्य का रक्षक है, जो विश्व का रक्षक है। तो वह कौन-सा सत्य है? यही कि हम सब प्रभु की संतान हैं। अमृत की संतान हैं। ऋषियों की संतान हैं। जितने प्राणी हैं सब अमृत की संतान हैं। कोई काफिर नहीं है, हिडेन नहीं है। इस सत्य का रक्षक भारत है। भारत ने निष्काम भाव से विश्व की सेवा की है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—भारत कभी गुलाम नहीं था। भारत में गुलामी के संस्कार नहीं है। क्योंकि भारत सबमें प्रभु का दर्शन करता है। यह बात विवेकानन्द जी ने इंग्लैण्ड में कही तो एक अंग्रेज को अच्छी नहीं लगी। उसने विवेकानन्द जी को टोकते हुए कहा—भारत गुलाम है। उसके विषय में ऐसी बात कहना उचित नहीं। तब विवेकानन्दजी ने उसे करारा उत्तर देते हुए कहा—तुम इंग्लैण्डवासी गुलाम हो। इसलिए सारी दुनिया पर गुलामी को थोपा है। भारत कभी गुलाम नहीं रहा। अत: कभी किसी पर गुलामी नहीं थोपी।

Hindu Spirituality

प्राचीन हिन्दू लोग काव्य प्रिय लोग थे। वे अनिवार्य रूप से संगीत प्रिय थे। भारत में सब चीज को गेय पद्धति से प्रस्तुत किया गया है। यहां युद्ध भूमि में भी ब्रह्मज्ञान का गीत गाते हैं। गीता संगीतमय गीत है। उसकी भाषा सबसे सुन्दर और उत्तम है। हम व्यवसाय प्रिय थे। हम दार्शनिकता प्रिय व्यक्ति हैं। विज्ञान में भी हम उतने ही उन्नत थे जितने कि अन्य विषयों में। साहित्य का सबसे बड़ा पूर्वज भारत है और धर्म का भी प्रथम पूर्वज भारत है।

पश्चिम के लिए दर्शन मात्र बुद्धि का विलास है। जीवन की आस्था उसमें नहीं है। अत: पश्चिम जूता का फीता टूटने, स्वार्थ पर थोड़ा-सा आघात लगने एवं थोड़ा-सा भी दुःख-कष्ट आते ही सब दर्शन, नैतिकता, तत्त्वज्ञान आदि को भूल जाता है और अपने वास्तविक स्वरूप पर, अपने स्वार्थ पर उतर आता है। अपने ओछेपन पर, तुच्छता पर उतर आता है। नीचता पर उतर आता है। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—पश्चिम उस धोबी की तरह है जिसे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, सेठ-साहूकारों के चोले पर तो अभिमान है, पर स्वयं उसके शरीर पर तो चिथड़े पड़े हैं। उसके स्वयं के अन्दर श्रेष्ठता, महानता, सुन्दरता जैसी कोई बात नहीं है। इसका इतिहास साक्षी है। अपने स्वार्थ में सारी दुनिया को रौंदते रहे हैं।

इसलिए महामना मदनमोहन मालवीयजी कहते हैं—हिन्दू धर्म सर्वश्रेष्ठ है। यह सारी मानवता का हित चाहता है, इसकी रक्षा करें। यह अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना नहीं है। रोम्या रोला कहता है—हिन्दू धर्म सर्वश्रेष्ठ है। मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म ही सर्वश्रेष्ठ दिखाई देता है।.... मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत् को सिर झुकाना पड़ेगा। अन्यत्र वह पुनः कहता है—अगर संसार की सतह पर कोई एक देश है जहां जीवित लोगों के सभी स्वप्नों को, उस प्राचीनकाल से स्थान मिला है जब से मनुष्य ने अस्तित्व का स्वप्न आरम्भ किया, तो वह हिन्दुस्तान है।

अरनाल्ड टायनबी कहते हैं—विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा तथा तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

आज पाश्चात्य देश सचमुच अनुभव कर रहे हैं कि हमने अपनी आत्मा खो दी है, अत्यधिक industrilise (औद्योगीकरण) करके।

विषयानन्द साधारण आनन्द है। जो परम तृप्ति नहीं दे सकता। अतः भजनानन्द की, ब्रह्मानन्द की स्फुरना सब देशों में देखने को मिल रही है। अतः भारत ही विश्व को जय करेगा, भारत के ढंग से। युद्ध के बल से नहीं वरन्, कला, दर्शन, संगीत, अध्यात्म द्वारा। दर्शन का विस्तार ही कला, भजन, कीर्तन, संगीत, मूर्तिकला में होता है।

जहां डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा।
वो भारत देश है मेरा, वो भारत देश है मेरा।।

जहां सत्य अहिंसा और धर्म का पग-पग पर लगता डेरा।
वो भारत देश है मेरा, वो भारत देश है मेरा।।

सप्तम प्रवचन

समस्त इन्द्रियों को अपने अधिकार में रखना ही ब्रह्मचर्य है।

सदाचार रूपी आधार पर भजन रूपी भवन खड़ा होता है। जिनका सदाचार रूपी आधार ही दृढ़ नहीं है, उनका भजन रूपी भवन खड़ा ही नहीं हो सकता।

हम सभी सोये हुए या मूर्च्छा में या अर्द्ध-बेहोशी या अज्ञान में हैं तभी हम पांच महापापों में प्रवृत्त होते हैं। यदि हम जागृत या ज्ञानावस्था में होते तो हम पाप-कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकते।

जब हम जागृत होते हैं ज्ञानावस्था में होते हैं, तब यम-नियमों में प्रवृत्त होते हैं। अंत में परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

यम-नियम यानी सदाचार या बिना नैतिकता के हम धर्म कार्य में प्रवेश के अधिकारी नहीं हैं। हम न भक्ति योग, न कर्मयोग, न ज्ञानयोग और न राजयोग में प्रवेश के अधिकारी होंगे।

संसार स्वयं अशांत है। गतिशील है। अस्थिर है। चंचल है। परिवर्तनशील, मरणधर्मा है। तो वह कैसे हमें शाश्वत शांति, स्थिरता, आनन्द, अमरता की स्थिति दे सकता है? जो चीज उसमें है ही नहीं वह हमें कैसे दे सकता है? जिसके पास जो है वह वही दे सकता है। जब उसमें स्वयं शान्ति नहीं तब हमें कैसे शान्ति देगा। उसमें अशान्ति है, गतिशीलता है, मरणधर्मा है तो उसकी उपासना से हमें उसी के गुण मिलेंगे।

अतः शांति, स्थिरता, बाह्य जगत् में नहीं हमारे अन्दर ही है। इसलिए शांति को बाहर न खोजकर अन्दर में खोजें। इसके लिए अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने की आवश्यकता है।

आत्म और अनात्म का विवेक अध्यात्म की प्रथम ईंट है, जिसको जाने बिना अध्यात्म के मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। यह जो प्रथम प्रश्न है इसके समाधान के बिना अध्यात्म की प्रयोगशाला में प्रवेश के ही अधिकारी नहीं हैं। पंचभूत, प्रपंच, पंचीकरण, त्रिगुणमयी माया, प्रकृति, अनात्म बहिरंग एवं

इन्द्रियगोचर हैं। निस्त्रैगुण्य पुरुष, आत्मा अंतरंग इन्द्रियातीत एवं शुद्ध है। मैं का जो प्रकाश है वही आत्मा है।

अनात्म के व्यवहार लोक व्यवहार के लिए मर्यादित ढंग से करें, कर्तव्य पालन करें, पर उसमें फंसे नहीं। फिर निष्काम बनें। पर अनात्म को अमर्यादित करने लगे हैं और उसी में भूल गए हैं, उसी में फंस गए हैं।

अनात्म व्यवहार करते-करते कल्पना जगत् रच लिये हैं। और कल्पना में विहार करने लगे हैं।

दृश्य को तो जाने पर द्रष्टा को खोजो
अनात्म से बच और आत्मा में लग
अनात्म से उपराम होवे आत्मा में लगे

और अन्त में आत्मा में ही प्रतिष्ठित हो जावें। अनात्म की सत्ता ही लुप्त हो जावे। वे ही होते हैं परमहंस।

जगत् को बिलोने की आदत है। अतः जगत् को बिलोते हैं। जगत् का व्यवहार पानी है। पानी को बिलोने से कुछ नहीं मिलता। और कुछ लोग तो कल्पना के पानी को बिलोते रहे हैं।

जगत् असत् है। माया है। पर हमारी आदत संसार में रहने की है। अतः संसार में भी रहें निःसंग भाव से। भगवान् के बनकर संसार में रहें। लोक व्यवहार एवं समाज की मर्यादा के लिए सांसारिक कर्तव्यों का विधिवत, निःसंग, निष्काम भाव से पालन करें और लक्ष्य रखें ईश्वर-प्राप्ति का। दृष्टि हमेशा ईश्वर पर लगी रहे और हाथ काम में।

पर हम ईश्वर को भूल जाते हैं और हमारे हाथ और दृष्टि दोनों संसार में लगे रहते हैं। फलतः हम संसार के बंधन में फंसते जाते हैं और उसमें पिसते जाते हैं।

दुर्जनः सज्जनोभूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभयः मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्।।

मङ्गलाशासनम्

दुर्जन सज्जन बनें, सज्जन शान्त हो जाएं, शान्त सज्जन मुक्त हो जायें और मुक्त अन्यों को मुक्त करें।

अष्टम प्रवचन

महापुरुष के जन्म से कुल पवित्र

माता पवित्र

सारी धरती पवित्र हो जाती है।

जिसका ब्रह्म में चित्त लीन हो जाता है तो उसकी सात पीढ़ी तर जाती है। मानवता धन्य-धन्य हो जाती है।

संत न होते तो संसार जल मरता—नानक

आपस की राग-द्वेष की अग्नि में संसार स्वाहा हो जाता है। क्योंकि संसार में मनोविकारों को लेकर आते हैं और संसार को गंदा कर देते हैं। वैसे ही संस्कार लेकर जाते हैं, पुनः वही संस्कार लेकर आते हैं। ये अग्नियां मानवता को जला डालेगी।

संत मानवता के परित्राता हैं। संत वह है जो सत् वस्तु का जीवित रूप है। सत् वस्तु क्या है?

जो दिखाई देता है वह सब मिट जाता है। ऐसी कोई सत्ता है जो सदा रहने वाली है। बच्चा पिता से पूछता है—हमारे बैठे कुछ यात्री चढ़े, कुछ दूरी पर उतर गए, कुछ नए चढ़ गए। यही क्रम सारी यात्रा में चलता है। तो बच्चा पूछता है—बस का पक्का यात्री कौन है?

संसार की गाड़ी का पक्का यात्री कौन है?

संसार की गाड़ी का पक्का यात्री कोई नहीं है।

तो सत् वस्तु क्या है? क्या सब कुछ असत् है, विनाशी है या कोई सत् है जो चिर स्थायी है?

उसकी जो खोज करता है और जो उसमें स्थित हो जाता है। संत के अविनाशी सिंहासन में दृढ़ हो जाता है। संत और भगवान् में कोई अन्तर है? संत भगवान् ही हो जाता है क्योंकि सत् वस्तु ही भगवान् है। लौकिक दृष्टि से

संत और पारलौकिक दृष्टि या अलौकिक दृष्टि से वे भगवान् ही हैं। भगवान् का साक्षात्कार कर भगवान् को सिद्ध कर लिया है।

स्कूल की शिक्षा—भगवान् के धाम से आने वालों को संसार का कैदी बनाने की शिक्षा दी जाती है। भगवान् को भूल जाए। संसार के कोल्हू में पिसता रहे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार स्कूल भी जेलखाने की तरह है। जहां दरवाजा है, चौकीदार है, हाजिरी लगती है, घण्टिया बजती है, छोटी-छोटी भूल पर बेंत पड़ते हैं।

सभी संतों ने ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय किया है। कर्म के बिना आकाश की बातें, वाणी का विलास, वाणी के विलास के चक्रव्यूह में फंस जाएंगे।

कबीर, दादू, रविदास

संत, पंथ सब जगत् के, बात बतावत तीन।

ईश्वर भजन, सब पर दया, तन सेवा में लीन।

सब संतों का सारतत्त्व यह है। जिन्होंने इस को चरितार्थ किया वह संत।

बच्चा जन्मता है, बच्चा सबको प्यारा लगता है

बच्चा बाल हृदय है, भगवान् है, निर्दोष है

बच्चे में राग-द्वेष नहीं है

बच्च भगवान् के धाम से नया आया है

वहां का तेज लेकर आया है।

बच्चा सबको अपना मानता है,

जो उसको पुचकार दे उसी के पास चला जाए।

तीन विशेष नाड़ी है, जिनका महत्त्व अधिक है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। मूलाधार से ऊपर उठती है। इनके दो चक्र हैं। सूर्य चक्र—इड़ा नाड़ी दाहिनी आँख के साथ। बायीं आँख, चन्द्र चक्र—पिंगला नाड़ी—शीतलता।

सर्वोदय विज्ञान—दाहिनी नासिका चले तो समझना गर्म। इस समय भोजन जल्दी पचता है। भोजन के पश्चात् बायीं करवट लेट जाएं।

चन्द्र नाड़ी से अमृत बरसता है।

बच्चे में तेज का कारण।

बाद में चन्द्र सूखती जाती है।

फूल खिलते हैं तब भंवरे अपने आप आने लगते हैं।

—भगवान् बुद्ध

बुद्ध—बुद्ध मानवता के फुलवारी के सुन्दरतम फूल हैं। एशिया का धर्म सम्राट—रवीन्द्र

आध्यात्मिकता और नैतिक सद्गुणों में क्रॉइस्ट बुद्ध की तुलना में कहीं नहीं टिकता। बुद्ध सभी दृष्टियों से अच्छा है। धर्म में मेरा विश्वास नहीं, ईसा को मानता नहीं। पर मुझसे किसी धर्म को स्वीकार करने को कहा जाए तो मैं बौद्ध धर्म को ही स्वीकार करूंगा—रसेल

बुद्ध उन सब सद्गुणों के जीवित अवतार थे जिनका वे प्रचार करते थे—मैक्समूलर

शुद्ध तर्क के आधार पर बिना किसी शास्त्र विश्वास के उन्होंने उपदेश किया है—डूयसन

एक दर्शन पद्धति जो धर्म, बौद्धिकता और विज्ञान सम्मत आधार पर स्थित है, बौद्ध धर्म ही है—हक्सले।

गुरुवर्य रवीन्द्र के शिक्षा दर्शन पर प्रकाश डालते डॉ. ओबराय ने कहा—शिक्षा में छड़ी का स्थान बांसुरी को लेना चाहिए तथा विद्यालय को जेलखाना के समान न रहकर एक हंसती हुई पुष्प वाटिका बन जाना चाहिए।

देश के नवयुवक ही देश की सबसे बड़ी पूंजी है। इनके विधिवत संस्कारित होने से देश का नवोत्थान सम्भव है।

नवम प्रवचन

विद्या से विनय आती है। पश्चिम की भोंडी नकल के कारण गर्दन अकड़ जाती है, ज्ञान प्राप्ति के पश्चात्। पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता से प्रभावित आज के भारत के विद्वान् का अकड़ना यानी एक विषैला रोग लग गया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—कुली के कार्य में भी संकोच नहीं।

सच्चा अजातशत्रु—राजेन्द्र प्रसाद

सच्चा नेता कैसा होना चाहिए—

मोटरगाड़ी जैसा नहीं

रेलगाड़ी की तरह

कुटिलता—मृत्युपद है।

सरलता—ब्रह्मपद है।

आज कुटिलता बढ़ गई है। आज का मानव बाहर से लिफाफा बहुत सजाता है। अन्दर से खोखला है पर बाहर से दिखावा करता है।

वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो। पर अभी हमारी यह स्थिति है कि वाणी मन को ठगती है, मन वाणी को ठगता है।

बच्चे में सरलता विद्यमान है। पर हम उसे बेईमानी सिखाते हैं। पर बेईमानी सीखने पर वह हमीं को ठगता है। यह स्वाभाविक भी है। फिर माता-पिता चिल्लाते हैं। दु:ख व्यक्त करते हैं। हमारी संतानें हमें ही धोखा देती रहती हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति भवन में रहकर भी साधु के समान थे। विदेह राजा जनक के समान।

दशम प्रवचन

दो Partner की साझेदारी की दूकान तो टिकती नहीं, चलती नहीं। इस शरीर रूपी दूकान में पांच Partner कार्य कर रहे हैं। उन पार्टनरों का स्वभाव कैसा? परस्पर एक-दूसरे के विरोधी, एक-दूसरे से अधिक बली, व्यापक एवं सूक्ष्म हैं। एक-दूसरे को खा जाने वाले, हड़प जाने वाले, डकार जाने वाले हैं। जल, पृथ्वी से अधिक व्यापक, शक्तिशाली एवं पृथ्वी को डुबो देता है। तीन भाग जल हैं एक भाग पृथ्वी है। जब चाहे जल बाढ़ के द्वारा पृथ्वी को, भू-प्रदेशों को अपने अन्दर निगल लेता है। और जल का शोषण अग्नि कर लेता है, जल को सोख लेता है। अत्यधिक गर्मी में नदी-नालों, तालाब के जल को सोख लेता है। अग्नि को वायु बुझा देता है और वायु को अनन्त आकाश एक डकार में निगल लेता है, पता भी नहीं चलता! इस तरह के पार्टनरों की दूकान कब तक चलेगी? किसी भी दिन Partnership भंग हो सकती है। इस दूकान में आत्मा अतिथि रूप में वास करता है जिसकी न आने की कोई तिथि निश्चित है और न जाने की। और उसके जाते ही यह Partnership की दूकान भंग हो जाती है। अतः इस अतिथि के जाने के पूर्व ही, Partnership के भंग होने के पूर्व ही, जो काम करना है सब कर लो। और अब जब जाने की कोई तिथि निश्चित नहीं है, तब जैसे घर में आग लगने पर, या डाका पड़ने पर जो कार्य सर्वाधिक महत्त्व का है उसे ही सर्वप्रथम करते हैं। वैसे ही जब देह-गेह में आग लगी हुई है अतः धर्माचरण कर लेना चाहिए। क्योंकि और सब कुछ धन-दौलत, रिश्तेदारी हमारे काम नहीं आयेंगी—धर्म ही हमारे काम आयेगा। हमारे साथ जायेगा।

गुरुनानक देव कहते हैं—

गोविन्द मिलन की यही तेरी बरिया, कर साधु सङ्गत भज केवल नाम।
लाख शीश तेने दिए यम के भेंट, एक शीश तेने न दियो नारायण हेतु।।

हजरत मुहम्मद

570 ई. हजरत मुहम्मद का जन्म।

622 ई. हजरत मुहम्मद का मक्का छोड़कर मदीना जाना। हिजरत = इस्लाम का वास्तविक प्रारम्भ।

632 ई. हजरत मुहम्मद की मृत्यु।

7 वीं शती तक इस्लाम इराक, ईरान, मध्य एशिया तक फैल गया।

712 ई. सिंध में अरबों का आधिपत्य।

712 ई. स्पेन में अरबों का राज्य स्थापित। अरबी सेनापति जिब्राल्टर पहुँचा।

722 ई. (हिजरी सन् 100) में मुसलमानों के समान शक्तिशाली राज्य दुनिया में और कहीं नहीं रह गया था।

रोमन साम्राज्य के निर्माण में 600 साल लगे थे। किन्तु अरबों का साम्राज्य केवल 100 वर्ष में उ. अफ्रीका, स्पेन, द. फ्रांस, ईरान, मध्य एशिया तक फैल गया। मंगोलिया में खलीफाओं ने जितना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया, सिकन्दर का साम्राज्य उसका एक अंश मात्र था। जिस ईरान ने 1000 वर्ष तक रोमन साम्राज्य के पड़ोस में अपनी सत्ता कायम रखी थी वह अरबों के आक्रमण के सामने नहीं ठहर सका।

मोहम्मद साहब की मृत्यु के 10 साल बीतते-बीतते ईरान पर अरबों का कब्जा हो गया।

पारसी लोग 642 ई. के लगभग ईरान छोड़कर भारत भाग आए।

ईरान के सामने अरब बर्बर और अर्ध-सभ्य थे। अत: अरब ईरानी संस्कृति से प्रभावित हुआ। पारसी भाषा इस्लाम की भाषा बन गई तथा ईरानी संस्कृति इस्लाम की अपनी संस्कृति बन गई।

सामी जाति—अरब लोग सामी (Semitic) जाति के थे।

आर्य जाति—ईरानी लोग आर्य जाति के थे। ईरान के इस्लामीकरण के बाद इस्लाम केवल सामी लोगों का धर्म न रह कर आर्य जाति का भी धर्म बन गया।

दमिश्क के खलीफे जिस साम्राज्य पर राज्य करते थे उसके एक छोर से दूसरे छोर तक जाने में तेज से तेज ऊंटनियों को भी पांच महीने का समय लग जाता था। खड्गवाद के साथ इस्लाम का सम्बन्ध इतना गहरा समझा जाता है कि अकबर इलाहाबादी भी इसका खण्डन नहीं कर सका।

लोग कहते हैं तलवार से फैला इस्लाम,

यह नहीं कहते हैं कि तोप से क्या फैला है?

786-809 ई. खलीफा हारुनुल रशीद के समय (786-809 ई.) से हिन्दू संस्कृति के प्रवाह से बगदाद का दरबार मानो आप्लावित हो उठा। बरमक नाम के एक वजीर खानदान की वहां बड़ी ताकत थी। वे लोग बल्ख के थे। वे भारत के हिन्दू विद्वानों को बगदाद बुलाते, वैद्य आदि पदों पर रखते। दर्शन, वैद्यक, व्याकरण, ज्योतिष, इतिहास ग्रंथों के अरबी भाषा में अनुवाद हुए।

महमूद गजनवी ने जो हीन, जंगली और असंस्कृत कृत्य किये क्या उनके बारे में यहां के मुस्लिम गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसा है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए भी यह हानिकारक है। गजनवी ने जो किया था, बहुत बुरा किया था। इस्लामी राज में जो बुराइयां हुई हैं उन्हें मुसलमानों को समझना और कबूल करना चाहिए। गुनाह कबूल करने से हलका होता है। भारत में बैठकर मुसलमान अगर अपने लड़कों को सिखायें कि गजनवी को आना है तो उसका मतलब यह हुआ कि वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को खा जाओ। इसे कोई बर्दाश्त करने वाला नहीं है।

—**महात्मा गांधी**

हिन्दुत्व एवं आर्य समाज पर घातक प्रहार : नेहरू परिवार का कमीना वार

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, जो अपने आपको अपघटना से हिन्दू (Hindu by Accident) कहने में गर्व मानते हैं, अपनी पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इंडिया के पृष्ठ 337 पर लिखते हैं—'आर्य समाज जो खुद तो इस्लाम की ही हूबहू नकल था, दूसरे मतों के अतिक्रमण के विरुद्ध हिन्दुओं की हर बात का रक्षक बनने का दावा करता रहा।' अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद पण्डित नेहरू के आर्य समाज पर किए गए इस कमीने वार की घोर निन्दा करती है तथा प्रबल मांग करती है कि इन पंक्तियों को उक्त पुस्तक से शीघ्र हटाया जाए।

डिस्कवरी ऑफ इंडिया के पृष्ठ 97 पर पण्डित जी लिखते हैं—'गोमांस खाना, जिसका पहले (महाभारत काल से पहले) समर्थन होता था, बाद में बिल्कुल मना कर दिया गया। महाभारत में ऐसे स्थल मिलते हैं जहां सम्मानित अतिथियों को गोमांस एवं बछड़े का मांस भेंट किया जाता था।' विगत 5 वर्ष से विद्यार्थी परिषद् हिन्दू धर्म के मूल पर चलाए गए उक्त कुठार के विरुद्ध रोष प्रकट कर रही है। किन्तु, पण्डित नेहरू ने कोई उत्तर नहीं दिया।

अभी हाल में 24 जनवरी, 1962 को पं. नेहरू की सुपुत्री इंदिरा गांधी ने आंध्रप्रदेश के ग्राम जोगीपेठ में एक भाषण में कहा-'आर्य समाज इत्तेहादुल्मुसलमीन जैसी साम्प्रदायिक तथा देश के लिए भयानक संस्था है। उससे जनता सावधान रहे।' देशवासियों को ज्ञात है कि इत्तेहादुल्मुसलमीन हैदराबाद के गुण्डे मुसलमानों की वह संस्था थी जिसे देश के कट्टर शत्रु मुहम्मद कासिम रिजवी ने प्रारंभ किया था। आर्य समाज की उस संस्था से तुलना कर इन्दिरा गांधी ने देश भक्त आर्य समाजियों को देशद्रोही, गुण्डे तथा महर्षि दयानन्द की देश के वैरी कासिम रिजवी से उपमा की है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् अपने पूरे बल के साथ उक्त कथन का विरोध करती है तथा मांग करती है कि श्रीमती इंदिरा गांधी उक्त कथन के लिए सारे देश से सार्वजनिक क्षमा मांगे।

मुस्लिम समस्या व निदान

मुस्लिम बन्धु भारत में नहीं रहना चाहते थे इसलिए भारत माँ का विभाजन किया गया, जनसंख्या के आधार पर। 23 प्रतिशत मुसलमान को 27 प्रतिशत भारत का हिस्सा काटकर दे दिया गया है। उनके रहने-खाने के लिए जब अलग हिस्सा दे ही दिया गया तब मुस्लिम बन्धुओं का यहां रहने का कोई आधार ही नहीं बचता है। न नैतिक आधार ही, न राजनीतिक। उन्हें रहने और अन्न उपजाने के लिए संख्या से अधिक हिस्सा दे दिया गया।

देश विभाजन, शरीर को काटकर जहर को अलग करने के लिए किया गया ऑपरेशन था। पर ऑपरेशन की मुश्किलातें भी झेलीं और जहर भी अन्दर बचा रह गया। यह कैसा ऑपरेशन?

मुस्लिम बंधुओं को अलग स्थान मिल जाने पर भी भारत में रहना चाहते हैं या रह गए। Visa (प्रवेश-पत्र) के आधार पर रहे। अधिकांश देशों में प्रथम में One week का visa फिर उनका व्यवहार अच्छा हो और पुलिस रिपोर्ट अनुकूल देखी जाती है तब एक महीने का, फिर 3 महीने का, फिर एक वर्ष का, फिर 7 वर्ष का, फिर Permanent Residence visa मिलता है। पर उसे नागरिकता नहीं मिलती है। अत: उसे कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता। अत: राजनीति में वे कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। उनका व्यवहार अनुकूल नहीं रहा तो सरकार उन्हें देश छोड़ने का आदेश दे सकती है। कुछ देशों में तो एक साल visa में रहने के पश्चात् कम से कम सात दिन के लिए अपने देश में आना पड़ता है। फिर ही उस देश में visa के लिए दुबारा आवेदन कर सकते हैं। इस तरह उस देश से अपने देश में आने में हजारों रुपयों का खर्चा और समय की बरबादी होती है।

पहले अमरीका और इंग्लैण्ड में स्थायी पांच साल रह सकने के पश्चात् वहां की नागरिकता मिल जाती थी। पर अब वह नागरिकता देना वहां की सरकार ने बंद कर दिया है।

अमरीका और कनाडा में खाली भूमि पर खेती करने के लिए अन्य देशों से लोगों को आमंत्रित किया गया था। उस समय वहां जो हिन्दू जाकर बस गए उन्हें वहां की नागरिकता प्राप्त हो गई।

फिर जिन देशों में हिन्दुओं को कैदी या दास बनाकर खेती करवाने के लिए या मजदूरी करवाने के लिए ले जाया गया। उनकी कई पीढ़ियां हो गईं। उनको नागरिकता मिल गई हैं। वे देश हैं—फिजी (पूर्व), मॉरिशस (अफ्रीका), गिआना (द. अमरीका), सूरीनाम (द. अमरीका)। यहां शुरू में ये लोग अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए अपने साथ रामायण, गीता आदि धार्मिक ग्रंथ ले गए थे। मॉरिशस तो अब हिन्दू राज्य है। वहां 50 प्रतिशत से अधिक हिन्दू हैं। वहां की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है।

दूसरी तरफ हिन्दू की जनसंख्या का निरन्तर ह्रास हो रहा है और मुसलमानों की जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है। U.N.O. के अनुसार 21वीं शताब्दी के पूरा होने तक हिन्दू अल्पसंख्यक हो जाएगा।

हिन्दू का दो या तीन बच्चे के बाद Red Cross यानी परिवार नियोजन। फिर हिन्दू एक ही शादी कर सकता है। पर मुसलमान को चार शादी की छूट है। परिवार नियोजन उनके लिए नहीं है। परिणाम, उनके चार बीवी से 16 बच्चे। फिर 16 से 256 बच्चे। इस तरह ज्यामितीय क्रम से मुसलमानों की संख्या बढ़ती जाती है। पर हिन्दू का तो 2 या 3 बच्चों पर परिवार नियोजन!

$2 \times 2 = 4$

$3 \times 3 = 9$ होगा वहां मुसलमानों की संख्या 256 पहुंच जाती है।

मुसलमान जोड़ और गुणा के द्वारा अपनी जनसंख्या बढ़ा रहे हैं। मुसलमान हिन्दू समाज का बेटा अपने में मिला लेता है। यानी अपने में जोड़ लेता है। हिन्दू समाज की बेटी चुरा लेता है तो उससे गुणन होने लगता है। इस प्रकार उनके जोड़ और गुणा के द्वारा उनकी जनसंख्या बढ़ रही है।

हिन्दू समाज Minus (-) और Division (÷) के द्वारा अपनी जनसंख्या निरन्तर घटा रहा है। कोई हिन्दू ईसाई या मुसलमान के साथ खा लेता है तो हिन्दू उसे जाति बहिष्कृत कर देता है। यानी Minus कर देता है। फिर अपने में जाति की जाति उनकी उपजाति फिर उनकी उपजाति.... इसी क्रम से अपने को विभाजित व असंगठित कर दुर्बल बना रहा है। अतः हिन्दू की दुर्बलता के दो प्रमुख चिह्न Minus और Division भी है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं—हिन्दू समाज से बाहर जाने के अनेक दरवाजे हैं और आने का एक भी दरवाजा नहीं। इस प्रकार निरन्तर संख्या में ह्रास और विभाजन। और फिर विभाजन का शिकार।

धर्म तत्त्व

'धर्म, संयम का मंगल मर्यादा कवच एवं मानव की अन्तरात्मा का कर्तव्यानुशासन है, जिस पर मानवता टिकी हुई है। धर्मानुशासन लुप्त हो जाने पर विश्व का कोई भी राज्य शासन मानवता को नहीं बचा सकता। आज विश्व के चारित्रिक संकट के समय विश्व के सर्वोत्तम धर्म, धर्मों के आदि स्रोत सनातन हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता सबसे अधिक है।

उत्तम धर्म वह नहीं जिसने आग और तलवार द्वारा दुनिया को रौंद डाला हो, देवालय ध्वस्त, जनगण त्रस्त, परिवार अस्त-व्यस्त, धर्म निरस्त, विश्वविद्यालय ज्वालस्थ कर नरमांस पर, नर शोणित से जघन्य बर्बरता की क्रूर कहानी लिख कर अपने पंथ का फैलाव किया है। उत्तम धर्म वह भी नहीं जिसने क्रूसेड और इन्-क्विजिशन द्वारा व्यापक नरसंहार किए। भिन्न पंथ वालों को लाखों की संख्या में तेल छिड़ककर जीवित जलाया तथा आलोचकों के गड़े हुए शवों को कब्र से निकाल कर टॉवर ऑफ लंदन पर फांसियां दीं।

उत्तमता की कसौटी है विश्व मंगल की निःस्वार्थ साधना। बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने तथा किसी मां-बहन की मान मर्यादा को लूटे, परहित के लिए आत्म त्याग एवं आत्म यज्ञ, जो कि हिन्दू धर्म का आधारभूत संस्कार है। आर्य धर्म की इसी महत्ता के कारण ही महात्मा ईसा हिन्दू आचार्यों का शिष्य बनकर भारत में शिक्षा-दीक्षा हेतु आया तथा हजरत मुहम्मद के पितृव्य-पुरुष अबु हिक्म हिन्द देश, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवों की स्तुतियां गाते थे।'

आज भारत एवं मानवता के परम कल्याण के लिए हिन्दू धर्म की रक्षा परम आवश्यक है। जहां इस्लाम और ईसाइयत एक ही खम्भे (एक पैगम्बर और एक ग्रंथ) पर टिके हुए भवन हैं वहां हिन्दू धर्म सहस्रों-स्तम्भों पर खड़ा एक सुदृढ़ सनातन भवन है। यदि अन्य पंथों का एक पाया ही हिल जाए तो वे धराशायी हो जाते हैं, किन्तु सनातन हिन्दू धर्म, युगों के झंझावातों तथा काल के क्रूर आक्रमणों के उपरान्त भी मृत्युंजय है।

सनातनधर्मी हिन्दू का नाम रत्नलाल शर्मा हो तो आर्यसमाजी होने पर रतनलाल आर्य, जैन बनने पर रत्नलाल जैन, बौद्ध भिक्षु बनने पर भिक्षु रत्ननिधि,

सिख बनने पर रत्नसिंह नाम रखता है। किन्तु मुसलमान बनने पर मौलाना अलाउद्दीन और ईसाई बनने पर माईकल स्कॉट कहलाने लगता है। विदेशी पंथों द्वारा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का उच्छेद कर भारतीयों को विदेशी संस्कृति का गुलाम बना लेना आज के युग का सबसे बड़ा राष्ट्रीय संकट है।

हिन्दू कभी भी साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। जो हिन्दू को साम्प्रदायिक कहते हैं वे स्वयं में घोर साम्प्रदायिक हैं। जो दूसरे आक्रमक सम्प्रदायों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दू की एकमात्र मातृभूमि हिन्दुस्तान की हत्या करके पाकिस्तान बनवाते हैं वे कांग्रेसी भी स्वयं अत्यन्त घृणित दर्जे के साम्प्रदायिक हैं जो हिन्दुओं की जनसंख्या पर अंकुश लगाने के लिए हिन्दू कोडबिल बनाते हैं तथा जबरन परिवार नियोजन का अभियान चलाते हैं। वे स्वयं राष्ट्रघाती, साम्प्रदायिक हैं।

दिल्ली के शासकों की गद्दी तभी तक सुरक्षित है जब तक कि हिन्दू का बहुमत है। हिन्दू के अल्पसंख्यक में होते ही विधर्मी दिल्ली के शासकों को उठाकर नदी या समुद्र में फेंक देंगे।

हिन्दू संस्कृति का दूसरा नाम शक्ति है। समस्या शक्ति के अभाव की नहीं है, वरन् उसके सही संयोजन की आवश्यकता है। हिन्दुत्व ही हिन्दुस्तान का प्राण है। यदि हिन्दू घटा तो हिन्दुस्तान मिट जाएगा।

मुस्लिम लीग कांग्रेस को देश की प्रतिनिधिक संस्था न मानकर हिन्दुओं की संस्था मानती थी। ब्रिटिश शासन भी हिन्दुओं की ओर से कांग्रेस को और मुसलमानों की ओर से मुस्लिम लीग को आमंत्रित करता था। किन्तु कांग्रेस हिन्दू को साम्प्रदायिक ही मानकर, कोसती रही। हिन्दू का हित न कांग्रेस ने देखा, न अंग्रेजों ने और न मुसलमानों ने। परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान कट गया और हिन्दुओं का व्यापक जनसंहार हुआ।

जहां इस्लाम और ईसाइयत दूसरे धर्मों से द्वेष करने वाले अंधविश्वासी सम्प्रदाय हैं वहां हिन्दू धर्म कोई पंथ, सम्प्रदाय, अंधविश्वास या पूजा पद्धति मात्र न होकर भारत की राष्ट्रीय संस्कृति है। हिन्दुत्व को सम्प्रदाय कहना राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता दोनों का घोर तिरस्कार है।

हिन्दू धर्म भारत माता के प्रति शत-प्रतिशत भक्ति का धर्म है। धर्म अथवा राजनीति के माध्यम से राष्ट्र बाह्य श्रद्धायें राष्ट्र के प्रति द्रोह का मार्ग प्रशस्त कर देती है।

—डॉ. ओबराय

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन एवं पार्श्वभूमि

Constant vigilance is the price of eternal liberty 'सतत जागरूकता स्वाधीनता की कीमत है' इस अर्थ की एक अंग्रेजी कहावत है। सामान्य दिखलाई देने वाली गतिविधियों के पीछे कई बार बड़े-बड़े रहस्य छिपे होते हैं। स्थान-स्थान पर देश के विभिन्न भागों में विभिन्न रूपों में मिशनरी गतिविधियां चलती रहती हैं। ऊपर से उनका एक रूप दिखलाई देता है। अधिक छानबीन करने पर उनके ताने-बाने जागतिक स्तर पर फैले दिखलाई देते हैं। जिनके पीछे एक जागतिक योजना कार्यरत है। उस योजना के उद्देश्यों को समझे बिना मिशनरी गतिविधियों का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकेगा तथा उस संदर्भ में देशहित में उचित नीति का निर्धारण असंभव होगा। इसी हेतु को मन में रखकर मिशनरी गतिविधियों के स्वरूप विश्लेषण का यह प्रयास है।

देश के प्रख्यात गांधीवादी विचारक स्व. श्री जे.सी. कुमारप्पा ने जो स्वयं एक अच्छे ईसाई थे, कहा है कि, पश्चिमी देशों की सेनाओं के चार अंग हैं—1. भूदल, 2. नौदल, 3. वायुदल, और 4. चर्च (The Western Nations have four arms : The Army, The Navy, The Air Force and The Church)

उपरोक्त सेना के प्रथम तीन अंग ही स्पष्ट दिखलाई देते हैं किन्तु चर्च अपने स्वरूप के कारण उजागर नहीं होता। ऐसे ही किसी संदर्भ में रूसी तानाशाह स्टालिन ने चर्च को 'अदृश्य सेना' की संज्ञा दी थी। उसका अनुभव था कि 'चर्च' का सहयोग या विरोध भी विशिष्ट स्थितियों में अपना अर्थ रखता है।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लॉर्ड पॉमस्टेन ने सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के दो वर्ष पश्चात् सार्वजनिक रूप से कहा, 'यह हमारा कर्तव्य ही नहीं किन्तु हमारे हित में भी है कि हम समूचे भारत में यथाशक्ति ईसाइयत का प्रचार करें।' इसी की पुष्टि में तत्कालीन स्टेट सेक्रेटरी फॉर इंडिया, लार्ड हेलिफॉक्स ने कहा था कि, 'नया बनने वाला प्रत्येक ईसाई इस देश को जोड़ने वाली एक अतिरिक्त कड़ी तथा साम्राज्य को बल प्रदान करने वाला एक शक्ति स्रोत है।' (नियोगी समिति की रिपोर्ट, पृष्ठ 40) भारत में ब्रिटिश शासनकाल में विदेशी शासन की नीति उपरोक्त कारणों से मिशनरी गतिविधियों को सर्वतोपरि प्रोत्साहित करने की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में भारत में हिन्दू धार्मिक जागृति की लहर आई। सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना, 1893 में हुए शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द की अभूतपूर्व धार्मिक विजय तथा 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना आदि का उस समय के धार्मिक जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान था। दूसरी ओर, बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यानी 1905 ई. में शुरू हुए जापान युद्ध में जापान द्वारा रूस, जो कि एक यूरोपियन शक्ति था, की पराजय एक ऐसी घटना थी जिन्होंने एशियाई देशों में स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास को जागृत किया कि वे धर्म, संस्कृति तथा शक्ति संपन्नता में पाश्चात्य राष्ट्रों के समकक्ष ही नहीं अपितु श्रेष्ठ हैं। अत: वे पश्चिमी देशों की गुलामी से स्वयं को मुक्त कर सकते हैं। इससे एशियाई देशों की सोयी राष्ट्रीयता जाग उठी। स्वाधीनता की भावना का उदय हुआ तथा प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी गतिविधियों के रूप में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का शंखनाद गूंज उठा। बंगाल का क्रान्तिकारी आंदोलन आने वाले युग की चेतावनी थी कि पश्चिमी साम्राज्यवाद के दिन अब गिने-चुने ही हैं। इन घटनाओं ने पश्चिमी देशों को अपने भविष्य के बारे में झकझोर दिया। पश्चिमी देशों के मिशनरी संगठन भी इसी चिंता के शिकार हुए तथा इस स्थिति में अपने भविष्य के कार्य की नीति-निर्धारण हेतु आतुर थे। जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन, जिसे इक्युमिनिकल मूव्हमेंट कहा जाता है, इसी चिंता की उपज था।

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन की मूल प्रेरणा

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन का प्रारंभ सन् 1900 के अप्रैल माह में संयुक्त राज्य अमेरीका के न्यूयार्क नगर में संपन्न हुई 'इक्युमिनिकल कान्फ्रेंस' है। बाइबिल में इक्युमिनिकल शब्द 'चर्च के राष्ट्रों से ऊपर' इस अर्थ में जागतिक जिसे अंग्रेजी में Supra National कहा जा सकता है, से किया है। जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन राष्ट्रों की सीमाओं को भेदकर एक जागतिक ईसाई समाज को गठित करना चाहता है।

मिशनरियों के न्यूयार्क में संपन्न उपरोक्त विश्व सम्मेलन में 3000 मिशनरी कार्यकर्ता एकत्रित हुए थे। इस सम्मेलन का निश्चय यह रहा कि इस समय तीव्रगति से संपूर्ण जगत् के ईसाईकरण का प्रयास करना अपना कर्तव्य है तथा 'इसी पीढ़ी में संपूर्ण जगत् का ईसाईकरण' इस वाक्य में प्रकट किया गया। इसी संकल्प की प्रतिध्वनि दो वर्ष पश्चात् 11 से 18 दिसंबर 1902 में मद्रास में संपन्न हुई अखिल भारतीय दसवीं वार्षिक सभा के प्रस्ताव में सुनाई दी, जिसमें प्रत्येक मिशनरी सोसायटी को इसी पीढ़ी में अपने क्षेत्र के संपूर्ण ईसाईकरण हेतु दृढ़ उद्योगपूर्वक प्रयास करने को कहा गया।

ए हिस्ट्री ऑफ द नेशनल ख्रिश्चियन काउन्सिल ऑफ इन्डिया
सन् 1914-1964 पृष्ठ 2 व 3

उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ 3 व 4 पर निम्नलिखित उल्लेख पाया जाता है—

भारत में जल्दी की भावना विभिन्न कारणों से थी। एक था बढ़ता हुआ राष्ट्रवाद जो 1905 में जापान की रूस पर विजय के बाद विशेष शक्तिशाली हुआ था। जो इस बात की चेतावनी थी कि ब्रिटिश साम्राज्य, जिसका संरक्षण ईसाई मिशनों को प्राप्त था, हमेशा के लिए नहीं रह सकता था। उसी के साथ मिशनरियों के कार्य से वृद्धिगत हिन्दू प्रतिशोध जो सन् 1875 में स्थापित आर्य समाज तथा सन् 1897 में स्थापित रामकृष्ण मिशन इन दोनों के द्वारा परिलक्षित हो रहा था। इन सबके रहते हुए भी शीघ्रता की भावना का सर्वप्रमुख कारण चर्च की परिगणित नीतियों में धर्मान्तरण की बृहत् संभावना का पता होना था। जिससे चर्च में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यही समय मिशनों के लिए निर्णायक अवसर है। इसी को स्पष्ट करते हुए उक्त पुस्तक में आगे लिखा है—सन् 1870 की दशाब्दी में तेलंगाना में सामूहिक धर्मान्तरण हुए जिसका असर संपूर्ण भारत के मिशनरी जगत् के लिए विजय-दुंदुभि के समान हुआ। तेलंगाना क्षेत्र में प्रोटैस्टैंट ईसाइयों की संख्या सन् 1871 में 13,000 थी जो सन् 1900 में बढ़कर 2,02,000 हुई। पंजाब के चुहड़ा जाति में और उत्तरप्रदेश की भंगी जाति में तथा महाराष्ट्र की मांग जाति में सामूहिक धर्मान्तरण के प्रयासों को तीव्र किया गया। 1905 ई. में असम के खासी लोगों में धर्मान्तरण किया गया जिसके फलस्वरूप ईसाइयों की संख्या हजारों में बढ़ी। इसी के कुछ समय बाद उत्तर भारत में चमार जाति में धर्मान्तरण की लहर फैली। इन उत्तेजक घटनाओं ने चर्च की एकता का आह्वान किया। इन नई संभावनाओं का पूर्ण लाभ उठाना तभी संभव था जब कि सभी मिशन तथा चर्च आपस में सहयोग करते।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि एक ओर भारत में धार्मिक तथा राष्ट्रीय जागरण के उभार के कारण पश्चिमी साम्राज्यवादी देश तथा उनकी छत्रछाया में पलनेवाले मिशनरी संगठन हिल उठे थे तथा साथ ही भारत की पिछड़ी जातियों के धर्मान्तरण में प्राप्त सफलता से वे आशान्वित भी थे कि इन पिछड़ी जातियों के धर्मान्तरण को तीव्र गति से पूर्ण कर उनको अपने साम्राज्य के रक्षा-दुर्गों में परिणत किया जा सकता है। यह अवसर अधिक दिनों तक नहीं रहने वाला था। क्योंकि यह बात भी स्पष्ट होती जा रही थी कि पश्चिमी साम्राज्य से प्राप्त संरक्षण के दिन अब मिशनरी संस्थाओं के लिए अधिक समय तक नहीं रहने के हैं। इस कार्य को शीघ्रता से संपन्न करने हेतु मिशनरी संगठनों के संसाधन तथा व्यक्तियों के अधिकतम लाभप्रद समायोजन हेतु उनमें परस्पर सहकार्य की आवश्यकता थी

जिससे उनका अपव्यय टाला जा सके तथा उनसे अधिकतम कार्यलाभ संपादित हो। ईसाई ऐक्य आन्दोलन की मूल प्रेरणा यही थी।

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन का प्राथमिक इतिहास : नेशनल मिशनरी काउन्सिल की स्थापना

धार्मिक दृष्टि से ईसाई जगत् दो प्रधान गुटों में बंटा रहा है। कैथलिक तथा प्रोटैस्टैंट। इनमें से कैथलिक संप्रदाय रोम के पोप के एकमुखी नियंत्रण में होने से अधिक संगठित तथा संख्या की दृष्टि से स्वयं में बहुत बड़ा तथा साधन-संपन्न है। इसके विपरीत प्रोटैस्टैंट समुदाय धार्मिक मतभेदों को लेकर कई छोटे-मोटे फिरकों में बंटा होने से कैथलिकों की तुलना में वह धर्मान्तरण कार्य में अपनी पूरी शक्ति नहीं जुटा पाता। इंग्लैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरीका में प्रोटैस्टैंट समुदाय का बाहुल्य होने के कारण उनको साम्राज्य सत्ता का वरदहस्त विशेषकर उन देशों के प्रोटैस्टैंट मिशनरी संगठनों पर था। यूरोपीय इतिहास के पूर्ववर्ती काल में रोम के पोप, जो कि कैथलिक संप्रदाय के धार्मिक पीठ के प्रधान होते हैं, यूरोपीय सत्ताओं के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप कर राजनीतिक उलट-फेर कराते थे। इस कारण रोमन कैथलिक संप्रदाय की ओर वे शंका भरी नजरों से देखते थे। इस कारण भी पश्चिमी राष्ट्र रोमन कैथलिक चर्च से सहयोग करने से कतराते थे। प्रोटैस्टैंट ईसाई जगत् रोम के पोप की धार्मिक सत्ता को नहीं मानते थे तथा पोप भी अन्य ईसाई संप्रदायों की सत्ता को अमान्य करता था। इस स्थिति में एशियाई देशों में बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण प्रयासों में सफलता तभी संभव थी जबकि प्रोटैस्टैंट मिशनरी संगठनों में आपसी तालमेल तथा प्रयासों में एकसूत्रता हो। इंग्लैण्ड के एडिनबर्ग में 1910 ई. में सम्पन्न हुआ प्रथम जागतिक मिशनरी सम्मेलन इस दिशा में प्रथम महत्त्वपूर्ण कदम था।

एडिनबर्ग सम्मेलन में विभिन्न चर्चों से 1355 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। जिनमें से 17 को छोड़कर सब यूरोप तथा अमरीकी देशों से आये थे। यद्यपि सभी प्रतिनिधि विभिन्न चर्चों से आये थे, फिर भी वे चर्चों के प्रतिनिधि न होकर विभिन्न मिशनरी सोसायटियों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनमें मिशनरी बोर्डों के सेक्रेटरी तथा ख्यातिप्राप्त चर्च नेता सम्मिलित हुए थे।

यह पहले ही निश्चित हो चुका था कि सम्मेलन में धर्मशास्त्र संबंधी आपसी मतभेदों की चर्चा न होकर मिशनों के कार्यक्षेत्रों में परस्पर सहकार्य की संभावना, आपसी टकराहट को टालने की दृष्टि से धर्मप्रचार क्षेत्रों का बंटवारा, संसाधनों को जुटाना तथा समन्वय आदि विषयों पर चर्चा होगी। एडिनबर्ग सम्मेलन में घोषणा की गई 'समय अल्प है, अपने सुनहरे अवसर के दिन सीमित हैं।' बौद्धिक, नैतिक तथा सामाजिक क्रान्तियां अपूर्वगति से जन्म ले रही है। अविलम्ब, चर्च को जो

देश अभी ईसाई धर्म के लिए खुले हैं, उन देशों में धर्मप्रचार का दायित्व स्वीकार करना चाहिये। राष्ट्रों के ईसाईकरण द्वारा साम्राज्यों के ईसाईकरण का लक्ष्य अपने सन्मुख है। यह कर्म अभी करना होगा। अति शीघ्र।

दि डिसिसिव्ह अवर ऑफ ख्रिश्चियन मिशन्स, लन्दन, पृष्ठ 146

उपरोक्त घोषणा केवल शब्दों में ही प्रगट नहीं की गई वरन् ऐसे कार्य को आगे चलाने के लिए एक संचालन समिति—कंटीन्युएशन कमेटी नियुक्त की गई जिसमें सभी मिशनरी सोसायटियों को प्रतिनिधित्व दिया गया। एक अमरीकी सज्जन श्री जॉन. आर. मोट—जो मिशनरी नहीं थे तथा उन दिनों वर्ल्ड स्टूडेन्ट्स ख्रिश्चियन फेडरेशन के मंत्री थे, को इस समिति के अध्यक्ष के स्थान पर चुना गया, तथा समिति के मंत्रीपद पर एक अंग्रेज सज्जन श्री जे.एच. ओल्डहैम को नियुक्त किया गया। समिति को निश्चित सूचनाएं दी गई थी जिस आधार पर उसे एक स्थायी अंतरराष्ट्रीय संगठन का निर्माण करना था। समिति के कार्य संचालन हेतु वित्तीय साधनों का प्रावधान किया गया। समिति के कार्यालय न्यूयार्क तथा लंदन शहर रखे गये।

समिति ने अध्यक्ष चुनने के बाद श्री जॉन. आर. मोट से आने वाले वर्ष में प्रमुख मिशन क्षेत्रों का प्रवास करने की विनती की। इस प्रवास में उनके साथ रहे एक भूतपूर्व मिशनरी तथा उन दिनों यंग मैन ख्रिश्चियन एसोसिएशन के मंत्री श्री शेरवुड एड्डी द्वारा 25 जुलाई, 1912 ई. को श्री जे.ई. टसी को लिखे पत्र के अनुसार श्री मोट को इस प्रवास में सुविधा तथा महत्त्वपूर्ण संपर्कों में सहायता करने की दृष्टि से अमरीकी तथा ब्रिटिश सरकारों ने पत्र दिए थे जिससे एशियाई देशों की सरकारों के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिशनरी हितों की दृष्टि से आवश्यक व्यवहार किए जा सकें। पत्र के महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं—

"Moreover Mr. Mott is going with a letter from the American and British Government, which will enable him to deal with men prominent in the Governments of Asia regarding questions of vital concern to the course of missions. On his return from his tour he will place the letter at the disposal of the missionary societies on both sides of the Atlantic. The results of those investigations and discussions will be in the direction of the united constructive policy for more effective spread of Christianity in these nations."

ए हिस्ट्री ऑफ दि नेशनल ख्रिश्चियन काउन्सिल ऑफ इंडिया, पृष्ठ 9

पत्र का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—'इसके अतिरिक्त श्री मोट अमरीकन तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त पत्रकों को साथ ले जा रहे हैं, जो उन्हें एशियाई सरकारों के प्रमुख लोगों से विचार-विमर्श में सहायक होंगे। जो मिशनों की

लक्ष्यपूर्ति की दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण होंगे। प्रवास से लौटने पर वे अपने अन्वेषण तथा विचार विमर्श के निष्कर्ष अटलांटिक महासागर के दोनों ओर की मिशनरी सोसायटियों को प्रस्तुत करेंगे। जिससे ईसाइयत का प्रसार इन देशों में अधिक प्रभावी ढंग से करने की सबकी रचनात्मक नीति निर्धारित की जा सके।'

यह प्रवास नवम्बर, 1912 के मध्य में मद्रास से प्रारम्भ हुआ तथा क्रिसमस के अन्त समय में कलकत्ते में समाप्त हुआ। प्रवास के अन्तर्गत क्षेत्रीय बैठकें मद्रास, बंबई, जबलपुर, इलाहाबाद, लाहौर और कलकत्ता में हुई। अन्तिम स्थान का चुनाव राष्ट्रीय बैठक के लिए किया गया था।

जॉन आर. मोटे की इस यात्रा का सही मूल्यांकन इस समय हुई कार्य संबंधी विभिन्न बैठकों के विवरण से करना सही नहीं होगा। एक के बाद एक हुई बैठकों से भी इस यात्रा का महत्त्व कहीं अधिक था। ऐसा कहा जा सकता है कि यह एक तरह से मान्यता प्राप्त विश्व नागरिक तथा चर्च नेता द्वारा भारत की राजसी यात्रा थी। ब्रिटिश तथा अमरीकी सरकारों से पत्रों के कारण उनके लिए सब जगह के दरवाजे खुले थे और राज्यकर्ता तथा चर्च के अधिकारी अपनी परिपाटियों की चिन्ता न कर उनसे मिलते थे। मद्रास के गवर्नर ने उनके तथा रोमन कैथलिक चर्च के आर्चबिशप की भेंट का आयोजन ईसाई ऐक्य के प्रश्न को लेकर किया था। सम्भवत: यह भारत में रोमन कैथलिक तथा प्रोटैस्टैंटों के बीच प्रथम बातचीत थी। दो मेट्रोपॉलियन—एम. बिशप और सीरियन चर्च के कई प्रतिनिधि केरल में व्याग्र विभाजन को कम करने में उनसे सहायता पाने हेतु कलकत्ते तक गए थे। भारत में ऐंग्लिकन चर्च के मेट्रोपॉलियन अपनी महत्त्वपूर्ण व्यस्तताओं को छोड़कर जॉन आर. मोट की कलकत्ता की बैठक में उपस्थित हुए थे। वे इस बात में किसी हद तक सफल भी हुए थे। जिससे कि ईसाई मत-मतांतरों के सभी नेता, जो परस्पर कहीं दूर थे, एकत्र लाए जा सकें। सीरियन ऑर्थोडोक्स चर्च केरल के प्रमुख तथा दक्षिण भारत में सातवेशन आर्मी के प्रमुख वार्ता की टेबल पर पहली बार आमने-सामने आकर ईसाई धर्म प्रचार के कार्य में परस्पर सहकार्य के प्रश्न पर विचार-विमर्श करते देखे गए।'

उपरोक्त पुस्तक पृष्ठ 9 व 10 :

इन बैठकों में दलित वर्गों में तथा वनवासी जातियों में चल रहे सामूहिक धर्मान्तरणों की चर्चा की गई। इन अवसरों का उपयोग करने पर यह आवश्यक पाया गया कि मिशन क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जाए जिससे यह मालूम हो कि कहां, किस समय तथा कितनी शक्ति की आवश्यकता होगी। जैसे मद्रास की बैठक में कहा गया कि विशिष्ट शहरों तथा ग्रामों पर केन्द्रीकृत (कान्सन्ट्रेटेड) प्रहार किया जाए तथा बड़े शहरों में सभी मतों के ईसाई मिला-जुला प्रयास करें।

कलकत्ता में 18 से 21 दिसम्बर, 1912 में सम्पन्न अखिल भारतीय सम्मेलन में 58 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे जो भारत के सभी क्षेत्रों से आये थे। सम्मेलन में कहा गया—"It is doubtful how long the door will remain open. Strong influances are tending to close it. The Christian forces ought to press through it with all their might while it is still open.' अर्थात् अवसर का द्वार कब तक खुला रहेगा कहा नहीं जा सकता। अतः ईसाई शक्तियों को अपनी संपूर्ण शक्ति से उसके खुला रहते शक्ति भर आगे बढ़ना चाहिए।'

उपरोक्त पुस्तक पृष्ठ 12 व 13

उपरोक्त बैठक के बाद बंगाल, बिहार, उड़िसा, मुंबई, पंजाब, मध्य भारत, ऊपर के प्रांत, मद्रास तथा ब्रह्मदेश की प्रान्तीय समितियां 1913 ई. में गठित हुई। इस तरह 'नेशनल मिशनरी कौन्सिल' बैठक की सिद्धता की। 4, 5 फरवरी, 1914 की बैठक में, जो कलकत्ता में सम्पन्न हुई, नेशनल मिशनरी कौन्सिल गठित की गई। इसी का नामान्तरण होकर उसे बाद में नेशनल ख्रिश्चियन कौन्सिल ऑफ इंडिया कहा जाने लगा।

इन्टरनेशनल मिशनरी काउन्सिल तथा वर्ल्ड काउन्सिल आफ चर्चेस की साधना

एडिनबर्ग के जागतिक सम्मेलन द्वारा नियुक्त संचालन समिति को दिए निर्देशों के अनुसार उसे एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण करना था। इस संगठन के निर्माण में प्रथम विश्वयुद्ध ने अड़ंगे निर्माण किए। फिर भी अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्कों को बनाया गया। अंत में 1921 ई. में सम्पन्न सभी प्रतिनिधियों की सभा में 'इन्टरनेशनल मिशनरी काउन्सिल' का निर्माण हुआ।

एडिनबर्ग सम्मेलन के परिणामस्वरूप एक नई कल्पना साकार हुई। ईसाई धर्म में व्याप्त मत-मतांतरों के रहते हुए भी सामान्य लाभ हेतु व्यावहारिक धरातल पर ऐक्य प्रयास सफल हुआ। उक्त सम्मेलन की योजना में यह बात मान ली गई थी कि उसमें ईसाई-मत में व्याप्त मत-मतांतरों पर चर्चा नहीं होगी। सम्मेलन में निरपवाद रूप से यूरोपीय तथा अमरीकी ही सम्मिलित थे, जो उन देशों के विभिन्न मिशन बोर्डों के सेक्रेटरी तथा चर्च नेता थे। स्थायी ईसाई ऐक्य हेतु यह आवश्यक था कि व्यावहारिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु सम्मिलित प्रयासों के चालू रहते हुए ही ईसाइयत में व्याप्त मत-मतांतरों के निराकरण द्वारा सामंजस्य स्थापना हेतु भी स्वतंत्र प्रयास किए जाएं। इसके परिणामस्वरूप जागतिक ईसाई ऐक्य हेतु दो स्वतंत्र किन्तु परस्पर पूरक आन्दोलनों का जन्म हुआ।

प्रथम आन्दोलन था 'लाइफ एण्ड वर्क'। इसके प्रणेता उप्सलासा (स्वीडन) के लूथरान आर्चबिशप सीडर वूलीम थे। इस आन्दोलन का हेतु विभिन्न चर्चों

की ईसाईमत के आधार पर विद्यमान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नों पर प्रत्यक्ष सहकार्य हेतु प्रेरित करना था। इस अर्थ में यह आन्दोलन शुद्ध 'ऐहिक' यानी कि सैक्यूलर था। श्री सीडर वूलीम ने 1920 ई. में एक इक्युमिनिकल कौन्सिल का विचार रखा जो 1925 ई. में स्टाकहोम में सम्पन्न 'युनिव्हर्सल कान्फ्रेंस आन लाइफ एण्ड वर्क' के अधिवेशन के रूप में प्रत्यक्ष हुआ। इस सम्मेलन में आर्थिक, उद्योग संबंधी, सामाजिक संबंध, शिक्षा आदि विषयों पर विचार हुआ था। इसका दूसरा सम्मेलन एडिनबर्ग में 1937 ई. में हुआ। जिसका प्रमुख विषय था 'चर्च, नेशन एण्ड स्टेट' अर्थात् चर्च, राष्ट्र और राज्य।

दूसरा आन्दोलन था 'पैनथ एण्ड आर्डर'। इसके प्रणेता थे फिलिपाइन्स स्थित अमरीकन एपिस्कोपल चर्च के विशेष चार्ल्स हेनरी ब्रैन्ट। इस आन्दोलन का हेतु विभिन्न ईसाई मतों में सामंजस्य प्रस्थापित करना था। यह इस अर्थ में विशुद्ध 'धार्मिक' था। इसका प्रथम अधिवेशन ल्यूसान (स्वीडन) में 1927 ई. में सम्पन्न हुआ तथा दूसरा सम्मेलन ऑक्सफोर्ड में 1937 ई. में हुआ।

1937 में सम्पन्न लाइफ एण्ड वर्क आन्दोलन के एडिनबर्ग तथा पैनथ एण्ड आर्डर के ऑक्सफोर्ड सम्मेलनों में हुए विचार-विमर्श के फलस्वरूप दोनों आन्दोलनों के सहकार्य से वर्ल्ड काउन्सिल आफ चर्चेस की स्थापना हेतु तदर्थ समिति गठित की गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इसका कार्य रुकावटों के कारण आहिस्ता चला। अंत में ई. सन् 1948 में एम्स्टर्डम में सम्पन्न अधिवेशन में 'वर्ल्ड काउन्सिल आफ चर्चेस' यानी विश्व चर्च परिषद् की विधिवत स्थापना हुई। विश्व चर्च परिषद् का प्रथम महाधिवेशन 1948 ई. में एम्स्टर्डम में हुआ। उसके बाद प्रति छह वर्ष में एक बार इस क्रम से उसका द्वितीय महाधिवेशन ह्युन्स्टन (अमेरीका) में 1954 में सम्पन्न हुआ। तृतीय महाधिवेशन 1961 ई. में दिल्ली यानी भारत में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के अवसर पर इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल विश्व चर्च परिषद् में विलीन हो गई।

विश्व चर्च परिषद् की स्थापना के समय रूस की नीति परिषद् के घोर विरोध की थी। किन्तु 1958 में स्टालिन की मृत्यु के बाद नीति क्रमशः बदलती गई तथा अंततोगत्वा 1961 ई. में सम्पन्न विश्व चर्च परिषद् के दिल्ली महाधिवेशन के अवसर पर रूसी ऑर्थोडाक्स चर्च विश्व चर्च परिषद् का विधिवत सदस्य बना। तब से विश्व चर्च परिषद् के छह अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष रूसी ऑर्थोडाक्स चर्च का होता है। ईसाइयत के सभी फिरकों को समान प्रतिनिधित्व मिले इसलिए परिषद् के छह अध्यक्ष रहते हैं।

विश्व चर्च परिषद् के दिल्ली महाधिवेशन में रोमन कैथलिक चर्च के प्रतिनिधि निरीक्षक के रूप में उपस्थित हुए थे। पोप द्वारा सितम्बर 1965 में

आमंत्रित द्वितीय व्हिटिकान कौन्सिल के निर्णय के अनुसार विश्व चर्च परिषद् तथा व्हिटिकान सेक्रेटरिएट फार प्रमोटिंग ख्रिश्चियन युनिटि अन्यान्य विभागों में परस्पर सहकार्य तथा पूछताछ से कार्य करते हैं। इस प्रकार विश्व चर्च परिषद् का दिल्ली महाधिवेशन इस अर्थ में अपनी विशेषता तथा महत्त्व रखता है। क्योंकि इस अवसर पर रूसी प्रभाव के चर्च उसके सदस्य बने तथा रोमन कैथलिक चर्च भी अपनी पृथक्ता की परम्परा को छोड़कर विश्व चर्च परिषद् के साथ विशिष्ट मुद्दों पर सहकार्य के लिए अग्रसर हुआ। इस प्रकार जागतिक ईसाई समाज के ऐक्य आन्दोलन को एक व्यापक आधार प्राप्त हुआ है। आगे चल कर विश्व राजनीति का विशिष्ट मोड़ देने में उसकी अपनी भूमिका भी हो सकती है।

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन का मन्तव्य तथा कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इन्टरनेशनल अफेयर्स

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन के मन्तव्यों को समझने के लिए सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के उद्गार, जो कि किंग्स कॉलेज कैंब्रिज के जी. हालैंड द्वारा लिखित तथा क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी फॉर इंडिया द्वारा 1943 ई. में प्रकाशित छोटी-सी पुस्तिका 'क्रिश्चियनडम इन मार्डन वर्ल्ड' के पृष्ठ 2 पर उद्धृत है, काफी सहायक होंगे। उनके मूल अंग्रेजी उद्गार तथा उसका हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार है—

"Declaring that the Christian Church has lost its strength because it has failed to give the world leadership it needs, Sir Stafford Cripps said that our goal is a Christian world order and the Church must rouse itself if it is going to play its part in making that new order."

अर्थात् 'यह घोषणा करते हुए ख्रिश्चियन चर्च ने अपनी शक्ति इसलिए खो दी क्योंकि वह संसार को आवश्यक नेतृत्व देने में असफल रहा है। सर स्टेफोर्ड क्रिप्स ने कहा कि अपना लक्ष्य ईसाई जागतिक व्यवस्था है और चर्च को स्वयं को ऊपर उठाना चाहिए यदि उसे इस नई व्यवस्था को बनाने में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है।'

पुस्तक के लेखक ने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के वक्तव्य की व्याख्या करते हुए आगे पृष्ठ 7 पर लिखा है कि 'If sir Stafford cripps statement means any thing two things appears to be necessary, First, Christiandom has got to arrange a scheme for the management & international relations which must involve the just and joint acting of Church and State. Second, the Church itself has to acquire such a measure of uniting that it may fulfil its commission as a leader on behalf of Christiandom."

अर्थात् 'यदि सर स्टेफोर्ड क्रिप्स का वक्तव्य कोई मतलब रखता है तो दो चीजें आवश्यक प्रतीत होती हैं। प्रथम, ईसाई जगत् की अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था हेतु एक योजना का निर्माण करना होगा जिसके अन्तर्गत चर्च तथा राज्य की मिली-जुली गतिविधियों का अंतर्भाव हो। दूसरी, चर्च स्वयं उस ऐक्य को प्राप्त करे जिससे वह ईसाई जगत् के नेतृत्व का दायित्व निभा सके।'

ईसाई मिशनरी की गतिविधियों की जांच के लिए नियुक्त नियोगी जांच समिति के पृष्ठ 52 पर लिखा है, 'द्वितीय विश्वयुद्ध के चलते सन् 1941 में ब्रिटेन में कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इंटरनेशनल फ्रेन्डशिप एण्ड सोशल रिस्पान्सिबिलिटी की स्थापना की गई। सन् 1942 में उपरोक्त कमीशन ने एक दस्तावेज 'ख्रिश्चियन चर्च एण्ड वर्ल्ड आर्डर व्युव्ड फ्रॉम ख्रिश्चियन पाइन्ट ऑफ व्यू सच एज कामन आल परपज इंटरनेशनल पालिटिकल फ्रेमवर्क, इकानामिक जस्टिस, डिस आर्मामेन्ट एण्ड राईट ऑफ मायनारिटी एण्ड कालोनियल पीपल' प्रस्तुत किया। इस दस्तावेज में ईसाई दृष्टिकोण से सामान्य नीति मूल्य, अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक ढांचा, आर्थिक न्याय, निरस्त्रीकरण और अल्पसंख्यकों के अधिकार तथा उपनिवेशवासियों के अधिकार आदि विषयों पर विवेचन किया गया। उसी समय संयुक्त राज्य अमेरीका में फेडरल काउन्सिल आफ चर्चेस जिसकी स्थापना 1908 ई. में हुई थी ने 1941 ई. में एक समिति स्पेशल कमीशन ऑन जस्ट एन्ड ड्युरेबल पीस की स्थापना श्री जान फास्टर डलेस की अध्यक्षता में की। समिति ने एक गोलमेज परिषद् का आयोजन किया जिसने जागतिक व्यवस्था पर एक ईसाई संदेश प्रसारित किया। सम्मेलन ने जागतिक आधार पर ईसाईकरण अभियान हेतु प्राप्त अवसर पर भी जोर दिया। इसी समिति ने जनवरी, 1945 में एक राष्ट्रीय अध्ययन दल नियुक्त किया जिसमें डम्बरटन ओक कान्फ्रेंस के प्रस्तावों में सुधार के लिए भी नौ सुझाव प्रस्तुत किए। यह कान्फ्रेंस संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापनार्थ विचार-विमर्श के लिए बुलाई गई थी। इन सुझावों को अमरीकी चर्चों में व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ तथा उन पर सरकारी क्षेत्रों ने बारीकी से विचार किया। उसी समय ब्रिटिश काउन्सिल आफ चर्चेस ने सन् 1945 में ब्रिटिश सरकार को प्रस्तुत करने के लिए सुझाव तैयार किए। उपरोक्त कान्फ्रेंस में उपस्थित धार्मिक प्रवर्तनाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में मानवाधिकार समिति के लिए प्रावधान का श्रेय दिया जाता है। कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन जस्ट एण्ड ड्युरेबल पीस ने अपनी नवम्बर, 1945 में सम्पन्न बैठक में घोषित किया, 'अब युद्ध की समाप्ति के साथ ईसाई चर्च का जगत् व्यापी संगठन विकसित किया जा सकेगा जिससे कई देशों में जागतिक व्यवस्था के ईसाई प्रयास में हेतु तथा समय की सहकारिता हो। विश्व की ईसाई शक्तियों को जो अभी भी अल्प संख्या में हैं, उसी कारण शीघ्रता

से एक सुसंगठित उग्र अल्पसंख्यक के रूप में गठित होना चाहिए।' (उपरोक्त वृत्त, पृष्ठ 53)

"Now with the war ended, world wide organization of the Christian Church can be developed so as to co-ordinate as to substance and timing the Christian effort (for world order) in many binds. The Christian forces of the world, though still a minority, must on that very account quickly become a well organized and militant minority."

इसी समिति ने इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल की अस्थायी (इन्टेरिम) समिति के अनुरोध पर चर्च नेताओं का एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया था। इस सम्मेलन ने इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल तथा वर्ल्ड काउन्सिल ऑफ चर्चेस के संयुक्त तत्त्वावधान में कार्य के लिए एक स्थायी माध्यम के रूप में 'दि कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' के विधान का प्रारूप प्रस्तुत किया। कमीशन के डायरेक्टर डॉ. फ्रेडरिक ओ. नोल्डे ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानवाधिकार समिति से निकट सम्पर्क रखा जिसके परिणामस्वरूप वर्ल्ड काउन्सिल ऑफ चर्चेस तथा इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल द्वारा स्वीकृत व धार्मिक स्वतंत्रता की व्याख्या उद्घोषित की गई। (उपरोक्त वृत्त, पृष्ठ 53)

'कमीशन ऑफ दी चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' गैर सरकारी संगठनों की 'ब' श्रेणी के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बद्ध है। ऐसे संगठनों को आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर पूछताछ तथा सलाह करने की सुविधा प्राप्त है तथा वे संयुक्त राष्ट्र संघ के सचिवालय से संपर्क कर अपने विचार अभिव्यक्त कर सकते हैं। (एव्हरी मेन युनाइटेड नेशन्स, पृष्ठ 23)

'दि इक्युमिनिकल कमीशन ऑन यूरोपियन कोऑपरेशन' की स्थापना जून, 1950 में की गई जिसे जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन से संबद्ध लोगों ने गठित किया। इसके अध्यक्ष फ्रांस के प्रोफेसर आंद्रे फिलिप हैं। इसके सदस्यों में राजनीति, प्रशासन तथा शिक्षा क्षेत्र के ख्यातमान लोगों का अंतर्भाव किया गया है जो ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंडस, जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन तथा इटली के हैं। यह सम्मेलन अनौपचारिक रीति से 'कमीशन ऑफ द चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' से तथा 'वर्ल्ड काउन्सिल ऑफ चर्चेस' के अध्ययन विभाग से अनौपचारिक रीति से संबद्ध है। 'इक्युमिनिकल कमीशन ऑन यूरोपियन कोऑपरेशन' ने अपने कई सम्मेलनों में टिकाऊ अर्थव्यवस्था, यूरोपीय सेना की आवश्यकता, यूरोपीय सहकार्य के स्वरूप, यूरोपीय सुरक्षा में जर्मनी का सहभाग, पूर्व तथा पश्चिम का तनाव, उत्तरी अमेरीका, एशिया तथा अफ्रीका से संबंध

आदि विषयों पर विचार किया तथा इन विषयों पर कई वक्तव्य प्रकाशित किए हैं जिसमें इस संबंध में ईसाई अभिव्यक्ति हेतु चर्च के दायित्व का उल्लेख किया है : (वर्ल्ड ख्रिश्चियन हैंड बुक 1952)

अभी तक के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन की नीतियों के निर्धारण तथा कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है तथा गैर-सरकारी स्तर पर पश्चिमी देशों के राजनैतिक तथा सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक का कार्य करता है। भारत में कार्यरत चर्च तथा मिशन 'विश्व चर्च परिषद्' से सम्बद्ध होने के कारण इनकी गतिविधियों का प्रभाव भारत की आंतरिक स्थितियों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार की आड़ में इसको चलने देना राष्ट्र हित में नहीं होगा। 'विश्व चर्च परिषद्' के प्रस्ताव भारत में मिशनरी गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। अत: इन प्रस्तावों के प्रकाश में उन गतिविधियों का स्वरूप समझना आवश्यक है।

कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यात्मक विवरण

अगस्त 1948 में 'विश्व चर्च परिषद्' की बैठक एम्स्टर्डम में सम्पन्न हुई जिसमें श्री जान फादर डलेस ने एक प्रबन्ध पढ़ा जिसका विषय था 'विभाजित जगत् में ईसाइयों की जिम्मेदारी'। 'Christian responsibility in our divided world." इस बैठक में रांची के गोस्सेनर इव्हेजेलिकल मिशन के श्री जुएल लकड़ा उपस्थित थे। (नियोगी समिति, वृत्त पृष्ठ 55)

रेव्ह श्री जुएल लकड़ा, थिआलॉजिकल कालेज रांची के प्राचार्य नियोगी समिति के सम्मुख गवाह के रूप में अम्बिकापुर में प्रस्तुत हुए थे। अपनी गवाही में उन्होंने स्वीकार किया कि वे 'विश्व चर्च परिषद्' से निकट संपर्कित हैं। 1948 में उन्होंने 'विश्व चर्च परिषद्' में गोस्सेनर लूथरान चर्च के प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया था। उस बैठक में श्री डलेस उपस्थित थे तथा वहां उन्होंने एक प्रबन्ध पढ़ा था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यद्यपि जर्मनी सैनिक नियंत्रण में था तथा कोई भी वहां बिना पारपत्र के प्रवेश नहीं पा सकता था, फिर भी उन्हें बिना किसी पारपत्र के प्रवेश दिया गया। वे ब्रिटिश क्षेत्र से अमरीकी क्षेत्र में प्रवेश कर सके। (नियोगी समिति वृत्त पृष्ठ 100)

रेव्हरेंड लकड़ा झारखंड आन्दोलन से सम्बद्ध रहे हैं। जिन अवस्थाओं से जाकर झारखंड आन्दोलन का विकास हुआ इसका विवरण श्री एम.डी. टिग्गा द्वारा प्रकाशित तथा इव्हेजेलिकल लूथरान द्वारा मुद्रित 'छोटानागपुर केर पुत्री' नामक पुस्तक के पृष्ठ 29 पर पाया जाता है। आदिवासी मन के राजनैतिक और आर्थिक

पतन को देख के 1898 के साल में एक सभा खडा मेलख, उकर शुरूनाम 'छोटानागपुर क्रिश्चियन एसोसियेशन' की रही। बढ़ते-बढ़ते 1915 साल में ऊ सभा कुछ मजबूत भई। मेलख और उकरकाम छोटानागपुर उन्नति समाज रखल गेला। अंतमा अभी आहे सभा 1938 साल में आदिवासी महासभा के केशनाम से चालू रहे। इस विवरण से स्पष्ट है कि 1898 ई. में स्थापित ख्रिश्चियन एसोसिएशन ही 1915 ई. में बढ़कर छोटानागपुर उन्नति समाज बना। अंत में वही संगठन आदिवासी महासभा के नाम से चला।

इसी आदिवासी महासभा के 22 जन. 1939 को रांची में श्री जयपाल सिंह की अध्यक्षता में संपन्न अधिवेशन में उन्होंने कहा—अब आदिवासी बहुसंख्यकों के अत्याचारों से अपनी मुक्ति के लिए एक हुए हैं। हम एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करते हैं जो आदिवासियों के इतिहास में आश्चर्यजनक तथ्य है। यहां कार्य करने वाली सभी मिशनरी संस्थाएं हमारे साथ हैं, यह दूसरी उल्लेखनीय सफलता है। बंगाली भी अलग होने के लिए आक्रोश कर रहे हैं। यूरोपियन तथा एंग्लो इंडियन खुले आम हमें सहानुभूति दिखा रहे हैं। (नियोगी समिति वृत्त, पृष्ठ 50)

आदिवासी स्थान, जिसे बाद में झारखंड के नाम से पुकारा गया, उसके संबंध में नियोगी समिति वृत्त में महत्त्वपूर्ण उल्लेख इस प्रकार है, अपनी प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करने तथा उसे ढहने से बचाने के लिए तथा संभवत: इस क्षेत्र में पराये हितों को अवसर प्रदान करने के लिए मिशनरी आदिवासियों को समाज के अन्य वर्गों से अलग रखने के लिए प्रचार कर रहे थे और इस प्रकार झारखंड के लिए आंदोलन का प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन को आदिवासियों, स्थानीय ईसाइयों तथा मुस्लिमों की सहमति प्राप्त थी और मिशनरी सभी राष्ट्रीय तत्त्वों को उससे अलग रखकर उसे अपने प्रभाव में बनाए रखना चाहते थे। आदिवासी स्थान के लिए मांग 1938 में पाकिस्तान के साथ ही उठाई गई। मुस्लिम लीग द्वारा प्रचार कार्य के लिए एक लाख रुपये दिये जाने के भी समाचार हैं। भारत में राजकीय स्वाधीनता के उदय के साथ आदिवासी स्थान के लिए मांग को तीव्र किया गया जिससे पूर्वी बंगाल को हैदराबाद से जोड़ने वाला गलियारा निर्माण हो, जिसका उपयोग भारत तथा पाकिस्तान के युद्ध के अवसर पर तोड़-फोड़ व आंदोलन के लिए किया जा सके। (नियोगी समिति वृत्त, पृष्ठ 9)

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि ईसाईकरण के साथ ऐसी कौनसी प्रक्रिया का अवलंबन किया जाता है जिस कारण यह विशिष्ट समुदाय अपने ही अन्य देशवासियों से स्वयं को अलग समझने लगता है। इसका उत्तर 1932 ई. में प्रकाशित 'री थिंकिंग मिशन्स' नामक प्रतिवृत्त के पृष्ठ 138 पर ब्रह्म देश के करेन लोगों के बारे में जो उल्लेख मिलता है, उससे स्पष्ट हो जाता है। उक्त उल्लेख

इस प्रकार है—मिशनरियों के आगमन के पूर्व करेन एक आश्रित जाति थी। जो निःसर्ग पूजक थी। मिशनरियों ने उसे शिक्षा दी तथा बाइबिल के अनुवाद के द्वारा एक लिखित भाषा दी। यह उल्लेखनीय सफलता, एक जाति को राष्ट्रीयता प्रदान करना, जो कि एक परेशानी बन गई। मिशनरियों को करेन लोगों की ब्रह्मीकरण की प्रक्रिया को धीमी करने के लिए जिम्मेदार समझा जाता है। आज करेनों का एक बलशाली राष्ट्रीय समाज है जिसने अपना एक प्रतिनिधिमंडल करेन राष्ट्र की वकालत करने लंदन भेजा।

'क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्होल्यूशन' नाम के अपने प्रतिवृत्त में उसके लेखक श्री राजा वी. मानिकम जो 'विश्व चर्च परिषद्', पूर्वी एशिया के सह सचिव हैं तथा जिसका मुख्यालय मद्रास में है, पृष्ठ 77 पर लिखते हैं—धार्मिक राष्ट्रीयता विद्यमान एशियायी राजनीति के सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षणों में से एक लक्षण है। पाकिस्तान का जन्म इसका प्रमुख उदाहरण है। ईसाइयत से संबंधित इसी प्रकार के आंदोलन असम के नागाओं में, ब्रह्मदेश के करेन लोगों में तथा इंडोनेशिया के ऐयोनीझ लोगों में पाये जाते हैं। परिणामतः जब इंडोनेशिया स्वतंत्र हुआ तब ऐयोनीझ लोगों ने जिनमें से अधिकांश ईसाई थे, अपनी ही राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। जब ब्रह्मदेश ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग हुआ तब ब्रह्मदेश सरकार के विरुद्ध करेन विद्रोह के नेताओं में से कई ईसाई थे। आज भारत से अलग स्वतंत्र नागा राज्य की मांग करने वाले आंदोलनकारियों में से कुछ आंदोलनकारी ईसाई हैं। इन तथ्यों ने इस संदेह को बल प्रदान किया है कि ईसाइयत एशियाई लोगों को अपनी राष्ट्रीयता से विलग करती है। (क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्होल्यूशन, पृष्ठ 215)

क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्होल्यूशन नामक प्रतिवृत्त का संपादन विश्व चर्च परिषद्, पूर्वी एशिया के सह सचिव की हैसियत से श्री आर. वी. मानिकम ने किया तथा उसे 'विश्व चर्च परिषद्' के ह्यूस्टन, अमेरीका में संपन्न द्वितीय महाधिवेशन के अवसर पर 1954 ई. में प्रस्तुत किया था। इसलिए इन उल्लेखों का अधिकृतता के ताने से विशेष महत्त्व है। 'विश्व चर्च परिषद्' ने पाकिस्तान से लेकर जापान तक के क्षेत्र को प्रबंध की दृष्टि से पूर्वी एशिया तक इस इकाई के अन्तर्गत माना है।

'दि इक्युमिनिकल स्टडी कान्फरेन्स फॉर ईस्ट एशिया' का आयोजन 'विश्व चर्च परिषद्' की अध्ययन शाखा द्वारा लखनऊ में सन् 1952 में किया। उसने घोषित किया की ईसाई इस बात को मानने को तैयार हों कि समाज की रचना में परिवर्तन मुख्यतः राजनीतिक कार्यवाही द्वारा संपन्न किये जाते हैं और इसलिए उन्हें सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए राजनैतिक कार्यवाही की आवश्यकता को स्वीकार करना चाहिए। (नियोगी समिति वृत्त, पृष्ठ 55)

'इंटरनेशनल मिशनरी कौन्सिल' तथा 'वर्ल्ड कौन्सिल ऑफ चर्चेस' के तत्त्वावधान में बैंकाक में सन् 1949 में पूर्वी एशियाई ईसाई सम्मेलन का आयोजन किया गया। उसमें की गयी नैतिक उपदेश तथा नैतिक कल्पनाओं का उद्घोष अपर्याप्त है....

ईश्वरीय-वाणी का उद्घोष पूर्वी देशों में चल रहे वैचारिक तथा राजनैतिक संघर्षों के गंभीर संदर्भ में करना यह एशियाई चर्च का प्रमुख कार्य है। बैंकाक सम्मेलन के वक्तव्य में कहा गया कि, The Prophetive ministry of the church in social and politics order depends on the church being truely a community of persons rooted in the word of God... A true christian congregation has the most effective prophetic witness to the devine right cureness in society, and the only answer to the challenge of political ideologies that view man solely in terms of his social and political functions. The christian congregation has revolutionary significance in East Asia Political situation. (क्रिश्चियनिटी एंड एशियाई रेव्होल्यूशन, पृष्ठ 100)

इस तरह बैंकाक कॉन्फ्रेंस के अनुसार पूर्वी एशियाई राजनैतिक स्थिति में ईसाई समुदाय का अपने विचारों के कारण राजनैतिक विचारों के संघर्ष में समाज में न्याय स्थापना के हित में क्रांतिकारी महत्त्व है। लखनऊ तथा बैंकाक सम्मेलन के प्रस्तावों से स्पष्ट हो जाता है कि 'जागतिक ईसाई ऐक्य आंदोलन' एशियाई तथा भारतीय संदर्भ में अलगाव तथा विद्रोही प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

दिल्ली में संपन्न 'विश्व चर्च परिषद्' के तृतीय महाधिवेशन में धार्मिक स्वतंत्रता पर एक वक्तव्य सर्व-सम्मति से स्वीकृत किया गया। उक्त वक्तव्य का परिच्छेद 'क' इस प्रकार है।

It includes freedom to practice religion or belief, whether by performance of acts of mercy or by the expression in word or deed of the implications of belief in social, economic and political matters, both domestic and international. (New Delhi Report Page 160.)

इसके अनुसार धार्मिक मत या विश्वास के निहितार्थों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक मामलों में घरू तथा अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में बोलकर या कृति से चरितार्थ करना भी धार्मिक स्वतंत्रता की परिधि में आता है। भारतीय संविधान के परिच्छेद 2581 में कहा है कि सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य को क्षति न पहुंचाते हुए सभी व्यक्तियों को समान रूप से अपना विश्वास रखने की स्वतंत्रता है और प्रकट रूप से अपने धर्ममत को मानने, तदनुसार आचरण तथा प्रचार करने का अधिकार है। इसी के अन्तर्गत अनुच्छेद 2 'अ' के अनुसार

राज्य को यह अधिकार है कि वह धार्मिक व्यवहारों के संदर्भ में कोई भी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक तथा ऐहिक गतिविधियों को सीमित करें।

अतः भारतीय संविधान के अनुसार धार्मिक स्वतंत्रता अपने धर्म को मानने तथा तदनुसार आचरण तथा प्रचार करने तक ही सीमित है। किन्तु जहां तक उनके आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक तथा ऐहिक गतिविधियों संबंधी पहलुओं का संबंध है, उन पर राज्य को नियंत्रण का अधिकार प्राप्त है। इसके विपरीत विश्व चर्च परिषद् के धार्मिक स्वतंत्रता पर वक्तव्य को मान्यता देने का परिणाम धार्मिक मत या विश्वासों को घरू तथा अंतरराष्ट्रीय, दोनों ही क्षेत्रों में, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक मामलों में हावी होने देने का अवसर प्रदान करना होगा। जो कि भारतीय संदर्भ में 'धर्मनिरपेक्षता' के सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा। और जब इन विचारों के नियमन में विदेशी शक्तियों को धार्मिक स्वतंत्रता के आवरण में कार्य करने की छूट मिल जायेगी तब उसके घातक परिणाम और भी गंभीर होंगे।

'क्रिश्चियन पार्टिसिपेशन इन नेशनल बिल्डिंग' नामक पुस्तक में जो कि 'नेशनल क्रिश्चियन काउन्सिल ऑफ इंडिया' तथा 'दि क्रिश्चियन इन्स्टिट्यूट फॉर दि स्टडी ऑफ रिलिजन एंड सोसायटी' द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित है। इसके पृष्ठ 53 पर कहा है—

The Churches, as churches, ought not be directly involved in party politics. Though Bishops and clergy, as citizens of state have a right to express their opinions on political issues, great care should be taken by them in the use of their official position.

Citizenship groups or study circles may be organised in parishes to promote intelligent understanding of the issues that face the nation... It would also be desirable to foster progressive groups in the chruches to continue to create a format in society to bring about desirable social changes.

The National christian council and the Regional christian councils, two student christian movements, the Y.W.C.A. the Y.M.C.A. and other international christian organizations have a great role to play in the formulation of christian opinion on current political issues and the political education of christian community. In this connection, we are in need for a greater working liasion among all these agencies.

There is need for a special body to activate the churches in making a constructive contribution to politics by appraising the work of the Government and expressing a christian mind on day to day affairs. The need of a group of competent christian persons to

study together from time to time, the proposed legislative measures of the central and state Governments and to formulate a christian critique is keenly felt. Such groups may very well be sponsored by the National christian council and its regional branches. There should be periodic rootings of christian political leaders and legislators belonging to different parties along with christian theologians for appraising contemporary affairs. P. 54

Several concrete programmes of action have been proposed and discussed. Those which have found general support are the following :

(i) Attempts should be made from a common fellowship of politically minded christians who would meet from time to time to discuss political problems and formulate views on them for guidence of christians actively engaged in political work and others.

(ii) The establishment of a christian institute of public affairs is strongly recommended. It is suggested that the Christian institute for the study of religion and society develops its own branch or takes initiative to bring it into existence as an independent body with regional branches.

(iii) Christian intellectuals interested in public affairs in various state capitals and national capital may be requested to act as observers and to report on political and parliamentary trends and also utilise such opportunities as they have of meeting the members of the Legislature with a view to influence as far as possible, policies and legislation with christian insights.

(v) The existing christian papers should co-operate in the matter of publishing articles on political questions by christian writers as well as reports of christian consultations and conferences on such questions, particularly in all the regional languages. P. 55-56.

(vi) Relevant litereature pertaining to political parties, their manifestoes, and reports of deliberations of various christian consultations and conferences, should be made available to the administrative machinery we consider it worth while as a means to achieve our objectives.

हिन्दू एवं ईसाई का तुलनात्मक अध्ययन

जगदीश	जॉन
(1) क्या तुम भारतीय हो?	(1) हां, मैं भारतीय हूं।
(2) क्या प्रत्येक भारतीय को भारतीय संस्कृति का ज्ञान और गौरव होना चाहिये?	(2) हां, होना चाहिये।
(3) क्या तुम्हें भारतीय संस्कृति का ज्ञान तथा गौरव है?	(3) न ज्ञान है? न गौरव है।
(4) क्या बिना ज्ञान के गौरव हो सकता है?	(4) नहीं।
(5) क्या तुमने भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया?	(5) मुझे मिशन के स्कूल, कॉलेज में भारतीय संस्कृति का ज्ञान नहीं दिया गया।
(6) क्या राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है?	(6) हां, मैं भी यह मानता हूं कि समान संस्कृति वाले देशवासियों से ही राष्ट्र बनता है।
(7) क्या एक देश में अनेक संस्कृतियां हो सकती हैं? क्या अनेक संस्कृतियों को मान लेने से देश की अखण्डता बचेगी?	(7) नहीं, क्योंकि हिन्दू, मुस्लिम की अलग संस्कृतियों को मान लेने पर जिन्ना ने दो राष्ट्र का सिद्धान्त प्रतिपादित किया तथा उससे देश का विभाजन हो गया।
(8) भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य कौन से हैं?	(8) सम्भवत: रामायण तथा महाभारत।
(9) क्या बाइबिल या कुरान भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य हो सकते हैं?	(9) नहीं, वे भारतीय भी नहीं और महाकाव्य भी नहीं।

जगदीश	जॉन
(10) क्या तुम्हें भारत के राष्ट्रीय महाकाव्यों का ज्ञान और गौरव है?	(10) सच्चे अर्थ में न ज्ञान है और न गौरव।
(11) भारत के राष्ट्रीय महापुरुष National Heroes कौन-कौन हैं?	(11) सम्भवत: राम और कृष्ण।
(12) क्या तुम्हें राम और कृष्ण का ज्ञान और गौरव है?	(12) वास्तव में न ज्ञान है और न गौरव है।
(13) भारत के राष्ट्रीय उत्सव कौन-कौन से है?	(13) सम्भवत: होली और दीपावली।
(14) क्या तुम्हें उसका ज्ञान है और उसको मनाते हो?	(14) वास्तव में न ज्ञान है और न मनाता हूं।
(15) क्या तुम्हें देश की राष्ट्रीय भाषाएं पता है?	(15) सम्भवत: हिन्दी, संस्कृत एवं प्रदेश की भाषाएं।
(16) क्या तुम्हें इनका ज्ञान और गौरव है?	(16) वास्तव में न ज्ञान है और न गौरव।
(17) इस देश का राष्ट्रीय इतिहास अकबर है या राणा प्रताप। औरंगजेब है या शिवाजी। गांधी है या जिन्ना?	(17) इस देश का राष्ट्रीय इतिहास राणा प्रताप, शिवाजी, गांधी हैं।
(18) क्या तुम्हें इनका ज्ञान और गौरव है?	(18) सच्चे अर्थ में न ज्ञान है और न गौरव है।
(19) क्या इस देश की राष्ट्रीय पोशाक धोती-कुरता में तेरी श्रद्धा है?	(19) वास्तव में नहीं है।

श्री आनन्दमूर्ति की भीषण अज्ञानता

आनन्द मार्ग के संस्थापक श्री आनन्दमूर्ति ने अपनी पत्रिका 'आनन्दलोक' (आनन्द पूर्णिमा विशेषांक), जून, 1970 के प्रथम लेख में ही भारतीय संस्कृति पर कुछ गंभीर आक्षेप किए हैं, जिनका निराकरण करना प्रत्येक भारतीय के लिए अनिवार्य है।

वे पृष्ठ 5 पर लिखते हैं, 'जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, वह भाग वैदिक संस्कृति नहीं है। वैदिक संस्कृति का मूल उत्स तो विदेशी है। आर्यों ने आर्येतर जातियों से सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन व्यतीत करना सीखा।' श्री आनन्दमूर्ति इस कथन से भारतीय संस्कृति एवं वैदिक साहित्य दोनों का न केवल अपमान कर रहे हैं वरन् इनके विषय में अपनी भीषण अज्ञानता का प्रदर्शन भी कर रहे हैं। वेदों के अन्तर्साक्ष्य से सिद्ध होता है कि वेदमंत्रों के द्रष्टा-ऋषियों को सप्तसिन्धव (नीचे सरस्वती, ऊपर सिन्धु, बीच में पंजाब की पांच नदियों वाला प्रदेश) में सभी वेदमंत्रों का दर्शन हुआ था। उसी सप्तसिन्धव के नाम से ईरानी (आर्यान्) भाषा में हप्त हिन्दव, हिन्द, हिन्दू आदि शब्द बने। यूनानी भाषा में 'ह' का उच्चारण लुप्त होने के कारण सिकन्दर के समय के यूनानियों ने हिन्दू को इन्दु कहा। उसी इन्दु शब्द से इस देश का नाम 'इण्डिया' प्रसिद्ध हुआ। अतः आनन्दमूर्ति का यह कथन कि वैदिक संस्कृति भारतीय नहीं है, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से नितांत भ्रमपूर्ण है।

विश्व भर के विद्वान् स्वीकार करते हैं कि वेद पारिवारिक जीवन-मूल्यों एवं सामाजिक आदर्शों के महानतम भण्डार हैं। उन्हीं वैदिक आदर्शों का आख्यान रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों के चरित्रों में इतने अलौकिक रूप में हुआ है।

शंकराचार्य का अपमान

श्री आनन्दमूर्ति इसी अंक के पृष्ठ 5 पर भगवान् शंकराचार्य जैसे विश्वविख्यात तत्त्ववेत्ता के प्रति तिरस्कार की भावना से आक्षेप करते हुए लिखते हैं—''शंकराचार्य के समय से जातिप्रथा विकृत हो गयी। बौद्धों के साथ तार्किक संघर्ष में उनकी शक्ति समाप्त-प्राय हो गयी थी'' यह अत्यन्त विस्मयकारक

मूल्यांकन श्री आनन्दमूर्ति के विकृत एवं पक्षपातपूर्ण मानस का प्रतिबिम्ब है। भगवान् शंकराचार्य से अधिक तेजस्वी विचारक एवं समाज संस्कारक विश्व ने आज तक कदाचित ही देखा होगा।

ब्राह्मण जाति का अपमान

पत्रिका के इसी पृष्ठ पर वे ब्राह्मण जाति का घोर अपमान करते हुए लिखते हैं—''शर्मा कैसे ब्राह्मण हो गए जी? उन्हें तो शूद्र होना चाहिये था। श्रम को आजीविका या वृत्ति के रूप में स्वीकार करने वाला ही तो शर्मा हुआ।'' इस विचित्र एवं मूर्खतापूर्ण व्युत्पत्ति से तो श्री आनन्दमूर्ति ने अपनी छिछली विद्या एवं संस्कृत भाषा के विषय में अपराधपूर्ण अज्ञानता का नग्न प्रदर्शन ही कर दिया है।

वास्तव में शर्मा एवं श्रम शब्द में आकाश-पाताल का अन्तर है। संस्कृत का तनिक भी ज्ञान रखने वाला कोई अबोध भी इस प्रकार की ऊलजुलूल एवं हास्यास्पद व्युत्पत्ति बताने का साहस नहीं कर सकता।

वास्तव में 'शर्म' शब्द वेद में ईश्वरीय कृपा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा **'शर्म वर्म ममान्तरम्' (साम. 9/3/8) का अर्थ है—'शर्म (ईश्वरीय कृपा) ही मेरा आन्तरिक वर्म (कवच) है।** इसी प्रकार ऋग्वेद 7/95/5 में लिखा है 'तव शर्मन प्रियतमे दधाना' अर्थात् हे सरस्वती माता! आप हमें अपने शर्मन (संरक्षण) में धारण करें। इस प्रकार संस्कृत के सभी कोशों के अनुसार शर्म एवं शर्मन का अर्थ है—कृपा, संरक्षण, आश्रय, प्रसन्नता आदि।

'पाण्डेय' का अर्थ

इसी प्रकार पाण्डेय शब्द की विचित्र व्युत्पत्ति बताते हुए श्री आनन्दमूर्ति उसी लेख में आगे कहते हैं, पाण्डेय शब्द पण्ड धातु से बना है जिसका अर्थ होता है गहरे डूबना। यह भी ब्राह्मण जाति पर एक भयंकर आक्षेप है। वास्तव में सारे संस्कृत एवं हिन्दी के कोशों में पण्ड नाम की कोई धातु ही नहीं मिलती। वास्तव में पाण्डेय एवं पण्डित शब्द पण्डा शब्द से बने हैं जिसका संस्कृत के सभी कोशों में अर्थ है—ज्ञान, बुद्धि, विवेक इत्यादि। अत: पाण्डेय और पंडित का अर्थ हुआ विद्वान्, बुद्धिमान्, विवेकी इत्यादि। इसका डूबने वाला अर्थ लेने वाले श्री आनन्दमूर्ति की अपनी बुद्धि ही सम्भवत: अज्ञान में गहरी डूबी हुई है। जो वे बिना पाण्डित्य के पाण्डेय की व्याख्या करने का दुस्साहस कर रहे हैं।

मिश्र ब्राह्मण

मिश्र उपाधिधारी ब्राह्मणों को श्री आनन्दमूर्ति ने ढोंगी एवं द्विधाचारी माना है। वे उक्त लेख में आगे लिखते हैं—'मिश्र वे ब्राह्मण थे जो दिन में दिखाने के

लिए यज्ञ करते थे लेकिन रात्रि काल में आत्मानुभूति के लिए तान्त्रिक साधना करते थे। भेद खुलने पर वे मिश्र कहलाने लगे।' यह भी बड़ी विचित्र एवं दुष्ट कल्पना है। मिश्र ब्राह्मणों की उपाधि शाकद्वीप से लेकर मिस्र देश तक सम्मानित है। महर्षि कण्व के जिन शिष्यों ने अफ्रीका के मिस्र देश तक भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैलाया, जिन्होंने नील-नदी को यह संस्कृत नाम दिया। और जिनके प्रभाव से मिस्र की भाषा में संस्कृत के अनेक तत्सम एवं तद्भव शब्द आज भी गूंज रहे हैं। वे श्रेष्ठ सम्मानित ब्राह्मण मिश्र कहलाये। कुछ विद्वानों का मत है कि मिश्र ब्राह्मण मिस्र से भारत में आये किन्तु, चूंकि मिश्र शब्द मूलत: संस्कृत का है, किसी अफ्रीकी भाषा का नहीं इसलिए ब्राह्मणों का भारतीय होना ही सिद्ध होता है। मिश्र ब्राह्मणों के अनिवार्यत: तान्त्रिक (तथा यज्ञ द्वेषी) होने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। यह भी श्री आनन्दमूर्ति की मिथ्या कल्पना है।

वैदिक जीवन पद्धति पर आक्षेप

श्री आनन्दमूर्ति 'आनन्दलोक' के इसी अंक के पृष्ठ 8 पर महाभारत शीर्षक से एक लेख में लिखते हैं—'वैदिक युग में कोई विशेष शिक्षा व्यवस्था नहीं थी।.....—तुम लोग जब वेद पढ़ोगे तो देखोगे उसमें हजार-हजार व्याकरण की अशुद्धियां हैं। व्याकरण बना ही नहीं था।..... महाभारत काल में वैदिक भाषा की मृत्यु हो गयी थी। संस्कृत के प्रथम वैयाकरण तथा बहुत बड़े पंडित पाणिनि पेशावर के एक पठान थे।'

वैदिक युग में शिक्षा

वास्तव में विश्वभर के विद्वान् स्वीकारते हैं कि वैदिक युग में जिस प्रकार की गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी वही संसार की प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में सर्वश्रेष्ठ थी। वेद ज्ञान का जिनको अक्षरज्ञान तक भी नहीं है वे वैदिक साहित्य में यदि समस्त अशुद्धियां ही अशुद्धियां देखें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। यदि उलूक को सहस्त्ररश्मि-सूर्य अन्धकार से भरा दिखाई दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष? वैदिक संस्कृत का अपना स्वतंत्र व्याकरण है और वेदविद्या तप एवं गुरुसेवा से प्राप्त होती है। महाभारत काल में तो स्वयं भगवान् वेदव्यास ने वैदिक ज्ञान को चार संहिताओं में सम्पादित किया तथा इसी कारण उन्हें वेदव्यास की उपाधि से विभूषित किया गया। किन्तु श्री आनन्दमूर्ति लिखते हैं कि महाभारत काल में वैदिक भाषा की मृत्यु हो गयी थी। वास्तव में इससे अधिक भयंकर साहित्यिक अपराध अन्य किसी कथन से नहीं हो सकता। पाणिनि का जन्म पेशावर नामक ग्राम बताना भी इतिहास का उपहास मात्र है। वास्तव में पाणिनि-कालीन भारतवर्ष के विद्वान् लेखक डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार पाणिनि की जन्मभूमि

शलातुर (गंधार) में ही थी, जिसके कारण पाणिनि शलातुरीय कहलाये। पाणिनि जैसे ऋषितुल्य विद्वान् को पठान कहना भी युक्तियुक्त नहीं है। पठान मुसलमानों की एक उपजाति है।

इस प्रकार श्री आनन्दमूर्ति अपने आनन्द मार्ग के कार्यों द्वारा भारतीय जीवन, भारतीय साहित्य, भारतीय धर्म, भारतीय समाज, भारतीय संस्कृति आदि सभी पर अभ्यन्तर प्रहार कर देशवासियों की परम्परागत निष्ठाओं पर कुठार चला रहे हैं। सभी भारत भक्तों को सजग एवं सचेत होकर इस प्रहार का प्रतिरोध करना चाहिए।

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्थ स्वजनादुःखदुःखितम्।।
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्।।

भागवत, 10/88/8-9

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्! जिस पर मैं कृपा करता हूं, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूं। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्त की परवाह न कर के उसे छोड़ देते हैं।।8।। फिर वह धन के लिए उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका यह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूं। इस प्रकार बार-बार असफल होने के कारण जब धन कमाने से उसका मन विरक्त हो जाता है, उसे दुःख समझकर उधर से अपना मुंह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तों का आश्रय लेकर उनसे मेल-जोल करता है, तब नैं उस पर अपनी अहैतुक कृपा की वर्षा करता हूं।।9।।

हमारी सामाजिक समस्याएं

जो हमारे लिये अभिशाप बन कर आता है वही विदेशी पादरियों के भारतद्वेषी कार्यों के लिए सबसे अनुकूल समय होने के कारण उनके लिए वरदान बन जाता है।

नारी जाति अपने आप में बहुत बड़ी समस्याओं से ग्रस्त है किन्तु उसमें भी विधवाओं एवं असहाय नारियों की समस्या सबसे भयंकर है। वे असहाय मां-बहनें एवं बेटियां उचित सहायता के लिए हमारी ओर याचनाभरी दृष्टि से लोकलाज की मूकवाणी में कुछ कह रही हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में भी कोई नारी-निकेतन या विधवा-आश्रम नहीं है। विदेशी पादरी इस विवशता का भी अनुचित लाभ उठा कर महिला कल्याण के नाम पर देश की पुत्रियों के ईमान पर डाका डालते हैं। व्यक्तियों के धर्मान्तरण से विदेशी मत की सरल गणितीय वृद्धि होती है, किन्तु महिलाओं के धर्मान्तरण से भावी परिवारों के धर्मान्तरण की संभावना के कारण ज्यामितिक गुणनशील चक्रवृद्धि होती है।

देश में करोड़ों रोगी हैं जो अर्थाभाव, साधनाभाव, औषधाभाव तथा परिचर्या अभाव के कारण जीवन और मृत्यु के बीच में झूल रहे हैं। उनकी विवशता का भी अनुचित लाभ उठाने हेतु विदेशी पादरियों ने अस्पतालों का जाल फैला रखा है। वे तन का उपचार करते हुए मन की श्रद्धाओं पर ऐसा अत्याचार करते हैं कि गांधीजी की शब्दावली में कहना पड़ता है, 'The cure is worse than the disease' अर्थात् ऐसा इलाज रोग से भी अधिक भयंकर है। यदि विदेशी सात समुद्र पार से आकर अपने पन्थ-प्रसार हेतु हमारे रुग्ण-बंधुओं को अपने जाल में फंसाने के लिए अस्पतालों का बड़ा जाल फैला सकते हैं तो क्या हम भारतीय स्वयं अपने देश-बान्धवों के स्वास्थ्य कल्याण एवं औषधि उपचार हेतु छोटानागपुर में उत्तम स्तर के कुछ नि:शुल्क चिकित्सालय स्थापित नहीं कर सकते?

शिक्षा ज्ञान का चक्षु है। इसके बिना राष्ट्र अंधा सा रहता है। दुर्भाग्य से हमारे इस विशाल देश में 75 प्रतिशत से अधिक लोग अभी तक अनपढ़ है। इस क्षेत्र में भी हमारी अकर्मण्यता एवं सरकार की उपेक्षा तथा जनसाधारण के अज्ञान का

पूरा लाभ भारत-द्वेषी-विदेशी मिशन उठा रहे हैं। बालशिक्षा, उच्च शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा तीनों के माध्यम से वे भारतीयों को विदेशी संस्कार देने का व्यापक अभियान चलाए हुए हैं। क्या मिशन के स्तर का अथवा उससे ऊँचे स्तर का एक-एक आदर्श विद्यालय छोटानागपुर के सभी बड़े नगरों में स्थापित करना हमारे लिए असंभव है?

देश में भिखारी-समस्या भी बड़ी विकट है। लगभग 56 लाख तो साधु वेशधारी भिक्षुक हैं। उनमें से अधिकांश पेट भरने के लिए ही साधु बने हुए हैं, साधना करने के लिए नहीं। साधुओं के अतिरिक्त भी लाखों निर्धन भिखमंगे हैं जो सड़क के किनारे पटरी पर सो जाते हैं, पैसा-पैसा मांग कर पेट पालते हैं और चिथड़ों से तन ढकते हैं। आंधी, धूप और वर्षा में उनके पास सिर ढकने का स्थान भी नहीं। क्या उनके लिये हम एक रैन बसेरा तक भी नहीं बना सकते?

बच्चे देश की हरी पौध हैं। वे ही कल के नागरिक होंगे। देश का भविष्य उन्हीं की मुट्ठी में है। हमने अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष भी मना लिए हैं। दुर्भाग्य से देश में करोड़ों अनाथ बच्चे हैं जो माता-पिता तथा अभिभावक के अभाव में अपने नन्हे नेत्रों में दयायाची अश्रुकण भर कर हमारी ओर ताक रहे हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में कोई भी उत्तम स्तर का अनाथालय नहीं है और हमारी इस अकर्तव्यता का पूरा लाभ विदेशी पादरी उठा लेते हैं तथा अनाथालयों में शैशव से ही विदेशी संस्कार देकर भारतमाता के लाडलों को धीरे-धीरे पूर्णतया देशद्रोही बना देते हैं। मध्यप्रदेश में कुछ स्थानों पर भील जाति के वनवासियों को विदेशी पादरी दस-दस रुपया उधार के बदले उनके नन्हे शिशुओं को जमानत के रूप में बंधक रख लेते हैं और इस प्रकार सैकड़ों बंधक रखे हुए बच्चों को विदेशी संस्कार देकर तथा गोमांस खिलाकर पूर्णतया विधर्मी बना लिया जाता है। जिन भीलों ने महाराणा प्रताप के लिए प्राण उत्सर्ग किए, जिस भीलनी की कुटिया पर भगवान राम ने जूठे बेर खाए उनकी संतानें आज भेड़-बकरी की तरह बंधक रहकर विधर्मी एवं देशद्रोही बन जाएं तो इससे बड़ा दुःख और क्या हो सकता है? सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि एक निर्धन देश के नागरिक होते हुए, वनवासियों, हरिजनों, बाढ़ग्रस्तों, सूखाग्रस्तों, अभावग्रस्तों, रोगग्रस्तों, अज्ञानग्रस्तों, विधवाओं, अनाथों—सबकी करुण-हाहाकार की घोर उपेक्षा कर हम दुर्गापूजा, सरस्वती पूजा, दशहरा, दीवाली के पर्वों पर अरबों रुपया केवल पूजा के बाह्य आडम्बर, साज-सज्जा, तड़क-भड़क, बाहरी चकाचक, क्षुद्र प्रतिस्पर्धा एवं कुछ इने-गिने दिनों की शानशौकत पर स्वाहा कर डालते हैं जिसका सामाजिक लाभ शून्यप्राय ही होता है। सैकड़ों स्थानों पर बड़े-बड़े विशाल मूर्तिपूजा मंडप लगाए गए हैं जिनमें से कुछ तो मात्र परस्पर दस गज की दूरी पर अलग अलग मंडप हैं। दुर्गामाता तो वास्तव में संगठन की देवी है। सभी देवताओं की सामूहिक शक्ति से महाशक्ति दुर्गा का

अवतार हुआ था। किन्तु आज दुर्गापूजा के नाम पर एक ही मौहल्ले में एक ही दीवार के दायें और बायें मात्र दस गज की दूरी पर अलग-अलग दुर्गा बिठाने वाले आज दुर्गा को संगठन की देवी के स्थान पर विघटन की देवी या कलह का कारण बनाने की कुचेष्टा कर रहे हैं। फिर एक-एक पूजा पर पचास-पचास हजार रुपया चार दिन में फूंक कर बड़ा तालाब में विसर्जित कर दिया जायेगा। क्या एक निर्धन, भयंकर समस्याग्रस्त एवं विदेशी एवं विधर्मियों के देशद्रोही कुचक्रों से घिरे हुए देश की ऐसी भयंकर विवेकशून्य आत्मघातकी फिजूलखर्ची को वनवासी या हरिजन क्षमा करेंगे? क्या बाढ़ग्रस्त एवं सूखा पीड़ित नर-नारी क्षमा करेंगे? क्या रोगी एवं भिखारी, क्या विधवा एवं अनाथ बच्चे क्षमा करेंगे? क्या इतिहास क्षमा करेगा अथवा भगवती दुर्गामाता क्षमा करेगी? मेरी हार्दिक विनती है कि इस वर्ष सभी दुर्गापूजा समितियों को वनवासी-हरिजन कल्याण, बाढ़ सूखा कल्याण, रोगी भिक्षुक कल्याण, अनाथ एवं विधवा कल्याण कार्यों के लिए अपने अनुमानित व्यय का कम-से-कम 10 प्रतिशत बचा कर दान करना चाहिए और भविष्य में रांची, डोरांडा एवं धुर्वा में कुल मिलाकर 10 सार्वजनिक दुर्गापूजा महोत्सव करने चाहिए और बाह्याडम्बर का व्यय बचाकर जगन्माता, भारतमाता के अभावग्रस्त पुत्र-पुत्रियों के कल्याण हेतु समर्पित करना चाहिए। उन्हें अपने नगर एवं गांव के इर्द-गिर्द चुन कर उस गांव में जाकर दुर्गापूजा का आयोजन करना चाहिए जहां युगों से अभाव एवं निर्धनता के कारण कभी दुर्गापूजा नहीं हुई है। समाज के निर्बल एवं निर्धन वर्ग को भुखमरी के महिषासुर से तथा धर्मान्तरण की दुर्गति से बचाना ही सच्ची दुर्गापूजा होगी।

याद रहे गांधीजी की कांग्रेस एक आन्दोलन का नाम था। उन्होंने आजादी के बाद भी आन्दोलन वाली कांग्रेस को समाप्त करने की बात कही थी। साथ ही यह भी कहा था कि आन्दोलन वाली कांग्रेस को कभी राजनीतिक दल मत बनाना। गांधीजी के आग्रह की उपेक्षा कर जिस दिन कांग्रेस राजनीतिक दल बन गया उसी दिन गांधीजी की कांग्रेस समाप्त हो गई। यह नेहरू की कांग्रेस है अतः उनके परिवार को जिस प्रकार कांग्रेस को चलाना है, वैसे चला रहे हैं।

—राजनाथसिंह

यदि विश्व से हिन्दू धर्म नष्ट हो गया तो सत्य, न्याय, मानवता और शांति सभी समाप्त हो जायेगी।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रेस स्वातंत्र्य

'राज्य जो गलतियां कर रहा हो, उसकी चर्चा करना पत्रकारिता का आवश्यक अंग है।' —महात्मा गांधी

'असली स्वाधीनता वही है जो विचार के प्रवाहों में बाधक न बने।' —प्रेमचंद

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष प्रेस प्रजातंत्र व्यवस्था का प्राण माना जाता है। जिसके माध्यम से सरकार अपनी नीतियों एवं कार्यों के प्रति जनता की प्रतिक्रियाओं से अवगत होती है। आम जनता की आवाज तथा प्रजातंत्र के सजग प्रहरी अखबारों के मुंह पर ताला लगाना कोई भी नागरिक पसंद नहीं करेगा।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक खुली हुई व्यवस्था होती है या कहना चाहिए जो व्यवस्था जितनी खुली होती है वह उतनी ही 'लोकतांत्रिक' होती है। क्योंकि लोकतंत्र का मतलब ही होता है बहस से, विचार-विमर्श से शासन।

विधेयक को 'संविधान की आत्मा' के प्रतिकूल और उस पर प्रहार ही माना जा सकता है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर आवश्यक तो यह है कि जनता के प्रतिनिधि अपने चुनाव क्षेत्र में जाते और यहां के विवेकशील व्यक्तियों के विचार जानने का प्रयास करते। प्रतिनिधियों को जनता इतना नैतिक अधिकार नहीं देती कि वे जो चाहें सब कुछ अपने मन से किया करें।

आज अगर प्रेस नहीं होता तो क्या रंगा-बिल्ला को फांसी होती? क्या जेल के अभियुक्तों को सजा मिलती? ये सब तो कुछ नहीं। अगर प्रेस नहीं होता तो क्या जनता यह भी जान सकती की असल में प्रजातंत्र क्या है?

देखने में तो यह विधेयक बहुत छोटा और साधारण लगता है किन्तु वास्तव में यह वाणी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण कर प्रजातंत्र का अपहरण करने वाला एक काला विधेयक है। अगर इस विधेयक को कानून की मुहर लग जाती है तो इस बात की शंका करने में शायद कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि प्रजातंत्र केवल पंगु बनकर रह जायेगा जिसकी वजह से सरकार बहुमत में होने के

कारण अपना कोई विधेयक पारित कर सकेगी और इसकी कोई खबर जनता तक नहीं पहुंच पायेगी और शासन पद्धति का नाम रहेगा प्रजातंत्र का और कार्य रहेगा राजतंत्र का!

आज का राज लोक-कल्याणकारी है। कल्याणकारी राज्य के सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि जैसे एक कुशल डॉक्टर मरीज की नाड़ी पकड़ उसकी गति का अंदाजा लगाता रहता है वैसे ही वह भी जनता की भावनाओं को पहचाने।

वास्तव में प्रेस की स्वतंत्रता, लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है। इसके अभाव में शासन पंगु हो सकता है!

लोकमत के सृजन में समाचार पत्रों का महत्त्व बहुत अधिक है और इसके लिए सरकार को उनसे निरंतर संबंध बनाये रखना चाहिए।

जब प्रेस पर ऐसा अंकुश लगा तो निश्चित है कि जनता को अंधेरे में रखा जायेगा और जनता की शिकायत व उसकी इच्छा की उपेक्षा की जायेगी व सरकार के कार्यों का मूल्यांकन नहीं हो सकेगा। इससे यह प्रभाव पड़ेगा कि सरकार भी अपने कार्यों का उचित लेखा-जोखा नहीं पा सकेगी और हो सकता है कि लक्ष्य तक पहुंचना असंभव हो चूंकि सही मार्गदर्शक व स्वस्थ आलोचक का अभाव रहेगा।

प्रजातंत्र की शासन व्यवस्था सर्वाधिक उत्कृष्ट है। यह जन-समूह की आकांक्षा को मूर्त करती है। इसमें सामान्य जन जीवन की सुख-शांति का राज और रहस्य छिपा हुआ है। आधुनिक कुंठा-ग्रस्त एवं तनावपूर्ण अंधकारमयी जीवन की तलहटी में यह उषा की अरुणाई का मांगलिक अवतरण है। आज सामाजिक जीवन को सुदिशा देने के लिए जितने सारे अपेक्षित प्रयत्न किए जा रहे हैं उनका मूलस्रोत यही शासन व्यवस्था है। यह जन चेतना के सुस्फुरण का मांगलिक त्योहार है। यह समाचार पत्र देश की राजनीति, शासननीति और जीवन पद्धति को बहुत ही प्रभावित करते हैं। समाचार पत्रों में प्रकाशित समीक्षाओं, टिप्पणियों, राजनीतिज्ञों की मनमानी, शासन की कुव्यवस्था, सामाजिक जीवन में प्राप्य विविध समस्याओं पर तीव्र तथा तीखा प्रहार होता है और यही कारण है कि आज की सरकार जनता द्वारा इस तीखे एवं तीव्र प्रहार से बचने के लिए समाचार पत्रों का मुंह प्रेस विधेयक बिल को पारित कर बंद कर देना चाहती है जो जनतंत्र के लिए और साथ ही प्रजातंत्र की आत्मा को कुचलने का षड्यंत्र कर रही है।

समाचार पत्रों की स्वतंत्रता तथा मौलिकता का यह अर्थ नहीं कि वे उच्छृंखलता तथा अनुशासनहीनता का दामन थामकर भ्रामक प्रचार का साधन बनें। अनैतिक तथा कुरूप तथ्यों के प्रकाशन से उनका स्वरूप विकृत हो जायेगा।

समाचार पत्र की महत्ता एवं पवित्रता को ध्यान में रखते हुए इस प्रेस को सुरक्षित एवं संरक्षित रखना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए ना कि इसके मुँह में ताला।

डाकुओं और बलात्कारियों की कतार में पत्रकारों को भी खड़ा करने का यह एक 'सुनियोजित षड्यंत्र' है।

आवाज उठाओ तो लाठियां बरसाई जाती हैं और फिर लाठियां बरसाने का भी पूरी बेशर्मी से खंडन किया जाता है। इससे बड़ा खतरा प्रजातंत्र के लिए और क्या होगा?

जितनी भी आजादी (कम ही सही) प्रेस को है, यदि वह भी न रही तो अन्याय-अत्याचार और भ्रष्टाचार के नग्न नृत्य को कौन रोकेगा? और तब क्या वह नग्न नृत्य अश्लील या गंदा नहीं होगा? शायद न भी हो, चूंकि इसके सिर पर तो सरकार का आशीर्वादात्मक हाथ होगा और तब गुण्डा राज होगा।

लोकतंत्र-विरोधी ताकतें विधायिका और प्रशासन पर अधिकार के पश्चात् अपनी वक्र दृष्टि, न्यायपालिका और प्रेस पर डाल रही है। अंतुले का घोटाला, भागलपुर आंख फोड़ काण्ड, छात्रों-मजदूरों पर पुलिस आक्रमण और हरिजनों पर अत्याचार के मामलों में प्रेस की निष्पक्षता का साथ दिया है न्यायपालिका ने। वक्र दृष्टि का यही कारण है और इसी का परिणाम है-'प्रेस विधेयक'।

प्रजातंत्र का कितना महत्त्व सरकार की नजरों में है, इसका परिचय हमें प्रधानमंत्री के रवैये से मिलता है। अपनी अमरीका यात्रा की रिपोर्ट तक संसद में देना वह आवश्यक नहीं समझतीं, जबकि यह उनकी जवाबदेही है। यह तो तयशुदा बात है कि बिहार प्रेस विधेयक एक परीक्षण-गुब्बारा है और बाद में इसी के आधार पर सारे भारत में इमरजेंसी इसी संशोधित रूप में लागू होगी। सांप भी मर जायेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। प्रेस की जबान भी बंद होगी और सरकार पर तानाशाही का आरोप भी नहीं लगेगा।

इस विधेयक के कानून बनने के बाद तो सरकार विरोधी हर कार्य राष्ट्र-विरोधी होगा, प्रजातंत्र समाचार पत्रों के अभाव में नहीं चल सकता है। जनता की इच्छा राज्य तक ले जाने में प्रेस ही भूमिका निभाते हैं। प्रेस जनमत को जागृत करके राज्य का मार्ग निर्देशन करते हैं। समाचार पत्र प्रजातंत्र का सशक्त समर्थन करने का एक साधन है।

राष्ट्रीय जागृति एवं राष्ट्रीय भावना का विकास प्रेस ही कर पाये हैं। प्रेस ने अपनी वाणी के जयघोष से जागृति उत्पन्न की तथा जनता की शक्ति को आंका है। जनता के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान समाचार पत्रों ने ही बताया। जनता की गरीबी भुखमरी एवं रोगग्रस्तता के कष्टों में समाचार पत्रों ने सहायता की है।

समाचार-पत्र शक्ति के साधन रहे और जन-आंदोलनों की चिनगारी को प्रज्वलित करते रहे हैं।

जनता के आक्रोश को अभिव्यक्त कर प्रेस ने अनेक बार युद्ध एवं नरसंहार को होने से बचा दिया।

प्रजातंत्र में प्रेस ने उदात्त भावनाओं, सभ्यताओं का सामंजस्य एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान किया।

प्रेस राष्ट्रीयता की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय भावना भी लाना समाचार पत्रों का कार्य है। समाचार-पत्रों की शक्ति अनन्त है। श्रीमती इंदिरागांधी के सुदृढ़ शासन की फौलादी भित्ति समाचार पत्र पर लगाये गये अंकुश के कारण से ही धराशायी हो गयी। निर्भीक, सुदृढ़ एवं निष्पक्ष समाचार पत्रों से इस देश के प्रजातंत्र का भविष्य उज्ज्वल है। संविधान में इमरजेंसी के दौरान जो तोड़ मरोड़ की गयी थी उसे जनता पार्टी ने आधे मन से प्रस्तुत किया। उस अफसरशाही को रास्ते पर लाने की कोशिश नहीं की गयी जो इमरजेंसी के दौरान कांग्रेस पार्टी की अनुचर बन गई थी। रास्ते पर लाना तो दूर जनता पार्टी की सरकार खुद अफसरशाही का अनुचर बन गयी। परिणामस्वरूप 1980 में तानाशाही की ताकतें विजयी हुई। और वे ही तानाशाही की ताकतें जनता पर हावी होने के लिए अपने अत्याचार, भ्रष्टाचार जैसे कुकर्मों एवं अश्लीलता के नंगे नाच को जनता से छुपाने के लिए इस काले कानून की बेड़ियां 'प्रेस' के गले में पहनाना चाहती है।

शायद उन्हें यह मालूम भी नहीं कि प्रेस समाज का दूसरा रूप है जिस प्रकार 'प्रेस विधेयक' इमरजेंसी का दूसरा रूप है।

प्रशासन प्रेस पर रोक लगाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है, पत्रकारों को आंख दिखा कर मारने की धमकी देता है। कई स्थानों पर पुलिस अपराध संबंधी सभी समाचार अपने अनुकूल छपवाने के लिए पत्रकारों को हफ्ता 'घूस' भी देती है इनके विरुद्ध छापने पर मार डालने की धमकी देते हैं।

1920 में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रेस पर पाबंदी लगाने के वक्त गांधीजी ने कहा था कि 'सरकार अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रतिबंध लगाएगी ही। प्रेस के पास दो ही उपाय है या तो सुधरे या दमन स्वीकार करे।'

'ओ दुनिया वाले बता, अंजाम हमारा क्या होगा?
तकदीर खफा, तदवीर सफा, जीने का सहारा क्या होगा।'

लाला लाजपतराय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Unhappy India के प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि 'सत्ताधारी अन्यायकारी राजा की शासन नीति में परिवर्तन लाना सुगम है परन्तु प्रजातंत्रात्मक शासन को बदलना बहुत कठिन समस्या है।

शुद्धि-संस्कार (धर्म दीक्षा, पुनरागमन)

ऋग्वैदिक काल में आर्य लोग (धर्म दीक्षा, पुनरागमन) धर्म परिवर्तन पर विश्वास करते थे। ऋग्वेद के विभिन्न स्थलों पर इस प्रकार का वर्णन है कि अनार्य आर्य वर्ण में आने की कामना कर रहे हैं।

1. छठी शती ई.पू. से जो विदेशी आक्रान्ता भारत में आकर बस गये उन्हें इण्डोपाथिमि, इण्डो सीथियन, इण्डो बैक्ट्रियन, इण्डो कुषाण कहा जाने लगा है।

2. पश्चिमी एशिया का पुरातन इतिहास पढ़ें तो ज्ञात होगा कि बहुत बड़ी संख्या में पश्चिमी एशिया में गुफाएं खोदकर भारतीय परम्परा के बौद्ध एवं जैन भिक्षुओं को दान किया गया।

3. वेस नगर (विदिशा) के गरुड़ध्वज अभिलेख से जो प्रथम शती ई.पू. का है, सिद्ध होता है कि अन्तोअल्फाइड्स का यवन दूत हेल्पोडोरस भागवत धर्म से इतना अधिक प्रभावित था कि तक्षशिला से आकर विदिशा में विष्णु मंदिर के समक्ष उसने एक गरुड़ध्वज स्थापित किया तथा भागवत धर्म से सम्बद्ध एक लेख भी उस ध्वज पर उत्कीर्ण करवाया।

4. मिलिन्दप्रश्न से ज्ञात होता है कि लगभग इसी समय बहुत से यूनानियों ने बौद्ध धर्म भी स्वीकार कर लिया था।

5. लगभग 50 हजार विदेशी राजा यहां आए, भारत में बसे तथा हिन्दू धर्म को स्वीकार कर लिया।

6. मथुरा से प्राप्त एक सीथियन अभिलेख से ज्ञात होता है कि सीथियन सम्राट् सोडास ने एक भारतीय ब्राह्मण (गजवर) को अपना पुरोहित नियुक्त किया।

7. शक क्षत्रप नहपान के पौत्र उशव दत्त ने हिन्दुओं और बौद्धों को दान किया था। नासिक के अभिलेख से ज्ञात होता है कि तीर्थयात्रा में भी उसकी रुचि थी।

8. इक्ष्वाकु परिवार के एक राजा ने अपनी लड़की का विवाह जयदामन के पुत्र शक क्षत्रप रुद्रदामन से किया था। पुनः रुद्रदामन ने अपनी लड़की का विवाह वासिष्ट पुत्र पुलमावी से कर दिया था। ब्राह्मण पुरोहितों ने विवाह करवाए।

9. शक राजा शालिवाहन ने वैष्णव धर्म स्वीकार कर पैठण (प्रतिष्ठानपुर, महाराष्ट्र) में राजधानी बनाई तथा शक संवत् प्रारंभ किया।

10. कुषाण भी दो पीढ़ियों में ही पूर्णतया भारतीय बन गये। विमकदफिसिस ने अपने को 'परम माहेश्वर' की उपाधि से विभूषित किया तथा अपनी मुद्रा पर शिव का चिह्न अंकित करवाया।

11. नहपान के बाद एक पार्थियन राजा ने अपना नाम 'ऋषभदेव' रखा।

12. इस समय हिन्दू धार्मिकों ने अपने धर्म प्रचारार्थ जावा, सुमात्रा, कम्बुज आदि देशों में प्रचारक भेजे।

13. हूण परिवार के दो प्रसिद्ध राजे—तोरमाण और मिहिरकुल तोरमाण के शत्रुओं ने भी यह कहा कि 'शिव को छोड़ उसने किसी दूसरे के सामने कभी सिर नहीं झुकाया।'

मिहिरकुल के सिक्के पर यह अंकित है, **'जयतु वृषभध्वजः'।**

14. चेदि और चन्देलों ने हूणों के साथ विवाह किये।

15. 6ठी शती ई. में जावा सुमात्रा में भी इसी प्रकार धर्म परिवर्तन की लहर चलती रही।

16. स्वधर्म पुनरागमन तथा धर्म परिवर्तन की गति में मुसलमानी आक्रमण के परिणामस्वरूप बाधा उत्पन्न हुई। हिन्दुओं ने अपनी रक्त शुद्धता के लिए विधर्मियों को वापस लेने पर कठोर प्रतिबंध लगा दिये। जाति व्यवस्था के बंधन कठोर होते गये। हिन्दू पूर्णरूप से शाकाहारी हो गये। वे मांसाहारी विधर्मियों को स्वधर्म में सम्मिलित करने के लिए तैयार नहीं थे। 10वीं शती में बर्नियर हिन्दू धर्म ग्रहण करना चाहता था। किन्तु धार्मिक कठोरता के कारण प्रविष्ट नहीं हो सका।

17. भारत में धर्म पुनरागमन की व्यवस्था आठवीं शताब्दी ई. से ही प्रारम्भ हुई। इसके जन्मदाता महर्षि देवल एक बार ध्यानावस्था में सिन्धु नदी के किनारे बैठे थे, उनसे आकर ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि बहुत से हिन्दू धर्मान्तरित करके मुसलमान बना दिये गये हैं उनकी रक्षार्थ कोई उपाय बतायें। महर्षि देवल ने बताया जो हिन्दू धर्मान्तरित कर लिए गये हैं उन्हें धर्मान्तरण से बीस वर्ष की अवधि के भीतर पुनः स्वीकार किया जा सकता है। जो हिन्दू महिला मुसलमान बन गई हो और उसे पुत्र उत्पन्न हो गया हो वह पुत्र के साथ हिन्दू धर्म में स्वीकार की जा सकती है। जो स्वेच्छा से वापस आना चाहें उनके लिए अवधि का भी बन्धन नहीं है।

18.12वीं शती में जब इस्लाम के प्रचार को धक्का लगा तब सहस्रों धर्मान्तरित व्यक्ति लौटकर हिन्दू धर्म में आ गये।

19. इतिहासकार अलबेरूनी ने लिखा है कि पुनरागमन के लिए धर्मान्तरित हिन्दू को एक निश्चित अवधि के लिए उपवास करना पड़ता था, उसके सिर पर दुग्ध गिराया जाता था और तब उसे पुनः हिन्दू धर्म में स्वीकार कर लिया जाता था।

20. 12वीं शती में पंजाब के राजा जयपाल की बहन का लड़का सुखपाल मुहम्मद गजनवी द्वारा पकड़ लिया गया तथा उसके साथ भीषण दुर्व्यवहार किया गया और उसे धर्मान्तरित कर लिया गया। परन्तु वह वापस स्वधर्म में आने का प्रयास करने लगा। ब्राह्मणों ने उसे पुनः धर्म में स्वीकार कर लिया।

21. बंगाल में सातवीं पीढ़ी तक के धर्मान्तरित लोगों का पुनरागमन बहुत अधिक प्रचलित था।

22. दक्षिण भारत में कम्पिल (उत्तर भारत में गंगातीर पर हस्तिनापुर से कुछ आगे फरुखाबाद जिले में प्राचीन काम्पिल्य माना जाता है।) के हिन्दू राजा को मुसलमानों ने जीत कर मुसलमान बना लिया था। पुनः जब उस राज्य को हिन्दुओं ने जीता तो वह हिन्दू धर्म में स्वीकार कर लिया गया।

23. तंजोर के राजा ने बड़ी संख्या में उन हिन्दुओं को पुनः स्वधर्म में स्वीकार कर लिया जो किसी कारणवश ईसाई बन गये थे।

24. शिवाजी जब औरंगजेब द्वारा कारागार में बंदी बना लिए गये थे उस समय उनके साथ नेताजी पालकर भी बन्दी बनाये गए थे। शिवाजी मुक्त होकर कारागार से छूट निकले पर नेताजी पालकर भागने में असमर्थ रहे। इससे वह मराठा नायक मुसलमान बना दिया गया और काबुल भेज दिया गया। वहां उसने पठान की स्त्री से विवाह कर लिया और उससे पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह 6 या 7 वर्ष के बाद पुनः वापस आया तो शिवाजी ने उसको उसकी मुसलमान स्त्री और बच्चे के साथ हिन्दू धर्म में स्वीकार कर लिया।

25. पेशवाओं ने जो शिवाजी के बाद हिन्दू शासक थे, रहाड़कर को जो मुसलमान हो गया था पुनः हिन्दू परिवार में स्वीकार तो किया पर जनसमुदाय उसका विरोध करने लगा।

26. इसी प्रकार जेलिया राजपूत मुसलमान धर्म से पुनः हिन्दू धर्म में आने के लिए प्रतिबंधित कर दिए गए थे।

27. यदि यह प्रतिबंध न लगा होता तो कश्मीर के सभी मुसलमान जो कभी हिन्दू थे वह पुनः हिन्दू बना दिये गये होते। ऐसी परिस्थिति में कश्मीर की समस्या जो आज विषाक्त हो गई है कभी भी विषाक्त नहीं होती।

28. पुनः आज जो अहमदनगर के निजाम की समस्या है वह कभी की हल हो गई होती यदि उसके धर्म के पुनरागमन में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया होता।

जहां तक गांधीजी के उदात्त विचारों का प्रश्न है तो बहुत पहले ही जवाहरलाल नेहरू के समाजवाद व पश्चिम के अन्धानुकरण की दौड़ ने उनकी स्वराज्य की कल्पना को अप्रासंगिक बनाकर रख दिया था। महात्मा गांधी द्वारा पालित पोषित कांग्रेस संगठन में कहीं भी उनकी प्रासंगिकता दिखाई नहीं देती। उस राजनीतिक संगठन में पुनः गांधीजी के महान् आदर्श को प्रस्थापित करने वाली कोई शक्ति नजर नहीं आती। आज निःसन्देह उनका महामानव रूप बड़े-बड़े स्थानों पर टंगे चित्रों तक सीमित रह गया।

—अशोक सिंघल

× × ×

भारत भूमि को विश्वेश्वर ने एक क्यारी के रूप में चुना। पौधा लगाने के लिए पहले क्यारी चाहिए। इसी प्रकार भगवान् ने सत्य के लिए भारत को एक नर्सरी बनाया। 'यहां मैं धर्म का आरोपण करके इसको पनपने दूंगा। फिर यहां से लेकर उठा-उठाकर उस धर्म के पौधे को सारे संसार में लगा दूंगा।'

—परमपूज्य श्री स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी

भारत को भारत की आंख से देखें

भारत को समझने के लिए भारत की आंख से ही समझना होगा। भारतीय धर्म दर्शन संस्कृति के ज्ञान के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। संस्कृत के द्वारा ही इन्हें भारत की आंख से देख सकेंगे। विदेशियों ने जो हमारे साहित्य का भाष्य किया है श्रद्धा से नहीं जिज्ञासा से, और कुछ ने हम भारतीयों की उस पर जमी हुई आस्था को तोड़ने के लिए वे शव परीक्षा या वे असंगतियां निकालने का प्रयास करते हैं जिससे हमारी श्रद्धा पर चोट पहुंचे। कुछ विद्वानों ने सही अर्थ में भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास किया है पर वे भारतीय परम्परा से अनभिज्ञ या पूरी तौर पर अभिज्ञ नहीं रहने से उनका ज्ञान Second hand या Second class का ही होगा। Frist hand ज्ञान तो हम भारत की परम्पराओं को जानकर भारत की आंख से समझने पर होगा। अपौरुषेय वेद, उपनिषद्, गीता आदि शब्दज्ञान नहीं वरन् अनुभूतियों का संग्रह है और उसको ठीक से समझने के लिए वैसा ही शुद्ध जीवन चाहिए।

बहुत से भारतीय लेखकों ने तोता रटन विधि से पाश्चात्य लेखकों के द्वारा रचित साहित्य को आधार मानकर अपने ग्रंथों की रचना की है। अतः जो भारतीय पाश्चात्य लेखकों के शिष्य रहे उनके ग्रंथों से भी बचना चाहिए।

जिसका महल स्वयं कांच का हो वह दूसरों पत्थर न फेंके—सभी देशों के धर्मग्रंथों में असंगतियां होती हैं। अतः जिसका महल स्वयं कांच का है, जिसके धर्मग्रंथों में असंगतियां ही असंगतियां हैं वह दूसरे के धर्म पर कीचड़ न उछाले।

हम जब interview में जाते हैं तब हम अपने चेहरे को सजा संवार कर जाते हैं और अपने चेहरे को दिखाते हैं मल से भरे हुए गुदे नहीं। उसे तो अच्छी तरह से ढककर जाते हैं। मल से भरे हुए गुदे भी fact हैं फिर भी उसे नहीं दिखाते। उसी प्रकार अपनी संस्कृति, सभ्यता, देश, इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को ही अपने सामने व अन्यों के सामने रखना चाहिए Dark point को नहीं। त्रिगुणों के कारण कुछ गन्दे तत्त्व मिल ही जाते हैं। अतः उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

इतिहास को विकृत क्यों किया जाता है?

कोई भी राष्ट्र जब किसी देश को गुलाम बनाता है तो वह सर्वप्रथम उसकी संस्कृति, दर्शन, परंपराओं, महापुरुषों, गौरव को विकृत रूप में प्रस्तुत करता है। क्योंकि ये वे मानदण्ड या आधारस्तम्भ हैं जिनके ऊपर कोई सभ्यता या देश टिका हुआ होता है। ये उसके लिए गौरव की वस्तु होती है और उसके लिए वह प्राण त्यागने में भी गर्व का अनुभव करता है। इनको हम इतिहास के माध्यम से जानते हैं अतः इतिहास को विकृत किया जाता है।

किसी भी राष्ट्र को सदैव गुलाम बनाये रखने के लिए उसे मानसिक दृष्टि से दुर्बल किया जाता है। उनके अन्दर अपनी संस्कृति, सभ्यता, दर्शन के विषय में हीन भावनाएं भरी जाती है और उनके मनोबल को तोड़ा जाता है। इसी क्रम में इतिहास के विषय में बताया जाता है हिन्दुस्तान गुलामों का राष्ट्र है वह कभी शक, हूणों के अधीन, तो कभी मुगलों के अधीन तो कभी अंग्रेजों के अधीन रहा है। वह कभी भी स्वतंत्र राष्ट्र रहा ही नहीं। इस प्रकार इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को हटाकर अंधकार पक्ष को बढ़ा-चढ़ा कर, तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है।

इतिहास राष्ट्र का चक्षु होता है। इतिहास के द्वारा ही हम जानते हैं कि हमारा राष्ट्र किस समय वैभव के उच्च शिखर पर था, और उस वैभव के आधारभूत कारण क्या थे जिसके कारण हम विश्वगुरु थे। फिर किन कारणों से हम पतन के गर्त में चले गये। तो हम इतिहास के द्वारा जानते हैं कि किन गुणों का पुनः अर्जन करके पुनः विश्वगुरु, विश्व विजेता बन सकते हैं और किन दुर्बलताओं के कारण हम पतित हुए थे उनसे सावधान रहें। विदेशी इतिहासकारों का यह उद्देश्य नहीं था कि हम अपने उज्ज्वल पक्ष को जानकर उससे गौरवान्वित होकर उस दिशा में अग्रसर होवें। वे तो चाहते हैं कि हम पतित इतिहास को ही इतना बढ़ा-चढ़ाकर, तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करें जिससे ये हमेशा पतन के गर्त में ही पड़े रहें। इसलिए हमें प्रथम में Stone age बाद थोड़ा सा अशोक आदि के बाद सीधे मुगलकालीन इतिहास, फिर ब्रिटिशकालीन इतिहास पढ़ाया जाता था। और यही क्रम भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् का रहा है।

इसी प्रकार अंग्रेजों ने यहां University की स्थापना इसलिए नहीं की थी कि हम पढ़कर देशभक्त, आचारवान नागरिक बनें वरन् यहां ऐसे काले अंग्रेज पैदा हों जो उनके प्रति वफादार हों, उनके शासन करने में सहायक हों जिससे देश को अधिक से अधिक दिनों तक गुलाम बनाये रखा जा सके।

भारत में जो अर्थव्यवस्था लागू की गई थी वह इसलिए नहीं की गई कि इस देश को लाभ पहुंचे, यह देश आत्मनिर्भर हो वरन् इसलिए कि इससे लन्दन को कैसे अधिकाधिक लाभ मिलेगा।

अंग्रेजों ने रेललाइन सारे देश में इसलिए नहीं बिछाई थी कि पूरे देश की अखण्डता कायम हो वरन् इसलिए कि इससे उन्हें शासन करने में सुगमता होगी।

काल रात्रि जितनी भी अंधेरी हो, सुप्रभात आता ही है।

—**रज्जू भैया**

× × ×

अमन्त्र्यमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
आयोग्यः पुरषो नास्ति योजकस्तु दुर्लभः।।

शुक्रनीति, 2/126

मन्त्रहीन कोई अक्षर नहीं होता, किसी भी लता-गुल्म की जड़ औषधविहीन नहीं होती तथा कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं होता। इन सबको सही ढंग से प्रयोग करने वाला व्यक्ति ही दुर्लभ होता है।

× × ×

अजरामरवत प्राज्ञ विद्यां अर्थ च चिंतयेत्।
गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्मम् आचरेत।।

विद्या और अर्थ के उपार्जन के समय काल अनन्त है आत्मा अमर है ऐसा अपने को समझना चाहिए पर धर्माचार के समय, सांसारिक जीवन-यापन के समय समझना चाहिए मुझे काल ने पकड़ रखा है, आयु क्षय होती जा रही है।

त्रिदेव की एकता के प्रतीक : भगवान् दत्तात्रेय

भारतीय संस्कृति की महानतम विशेषता है अनेकता में एकता के दर्शन। यह सत्य है कि हिन्दू धर्म में बहुदेवोपासना का प्रचार है और उनकी संख्या 33 करोड़ के लगभग मानी जाती है, तथापि प्रमुख देव तीन ही माने जाते हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। वस्तुतः ये तीनों भी एक ही परम शक्ति के प्रतीक हैं। एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति के सिद्धांत के अनुसार एक ही परम ब्रह्म-ब्रह्मा विष्णु महेश। इसी एकत्व की भावना के प्रतीक हैं भगवान् दत्तात्रेय जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों के गुणों का एक अत्यन्त सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है।

'दत्तात्रेय शब्द स्वयं ही इस बात का प्रमाण है कि उनमें तीनों देवताओं का सम्मिलित अंश है। उनके पिता महर्षि अत्रि थे। 'अत्रि' की संज्ञा भी इसी भाव की ओर संकेत करती है कि उनमें तीनों देवताओं के अंशों का ऐसा अद्भुत समन्वय था कि उन तीनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता।

दत्तात्रेय जी की माता-पुण्यश्लोका अनसूया मनु की पुत्री देवहूति की दुहिता थी। महर्षि कर्दम इनके पिता थे। **अनसूयाजी अत्यंत सत्यपरायण, धर्मशीला, शीलवती, विनयवती तथा लज्जावती तथा क्षमाशील थी। वह अत्यन्त संयमी तथा तपस्विनी थी। यही कारण है कि उन्होंने ब्रह्माजी के मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रि को पति रूप में प्राप्त किया था।**

अनसूयाजी पतिव्रता ललनाओं में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। एक बार उमा, रमा तथा ब्रह्माणी ने इनके सतीत्व की ख्याति सुनकर ईर्ष्यावश अपने-अपने पतियों को इन्हें विचलित करने के लिए भेजा। भगवान शंकर, क्षीरोदधिशायी भगवान् विष्णु और चतुरानन अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुंचे, तीनों मिले त्रिदेवों का एक ही उद्देश्य था।

वे साधुवेश में भगवती अनसूया के समीप पहुंचे, भगवती पाद्य अर्घ्य और आचमनीय लेकर आयी तो इन लोगों ने स्वीकार नहीं किया। आप विवस्त्र होकर हमारा सत्कार करें तो आपकी पूजा स्वीकार की जाएगी। इन लोगों का विचित्र प्रस्ताव सुनकर ये चकित हो गई। तत्पश्चात् अनसूयाजी ने तनिक सा ध्यान लगाया

तो सब जान गई। उन्होंने कहा यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूं भूल से स्वप्न में भी काम भाव से परपुरुष का चिंतन न किया हो तो ये तीनों छह-छह मास के बालक हो जायें।

सती का इतना कहना था कि त्रिदेव छह मास के बच्चे बन गये। अब विवश होकर माता ने दुग्धपान कराया। महर्षि ने आकर यह दृश्य देखा तो हंस पड़े। अब त्रिदेव माता के दुग्ध पर जीवन धारण कर रहे थे। उधर अधिक दिन बीत जाने पर उमा, रमा, ब्रह्माणी तीनों अपने-अपने पतियों का पता लगाने चली, तो महर्षि अत्रि के आश्रम के समीप तीनों का मिलन हो गया। तीनों ने माता अनसूया से क्षमा मांगी। ब्रह्मा, विष्णु महेश तीनों ने अपने-अपने अंश से उनका पुत्र बनने का वचन दिया।

एक बार महर्षि अत्रि भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे 'जगत् के अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हों। मुझे वे अपनी संतति प्रदान करें।' अकस्मात् ही महर्षि ने अपने आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से देखा कि उनके सम्मुख वृषभारूढ़ कर्पूरगौर भगवान् शशांक शेखर, हंस पर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान् चतुरानन और गरुड़ की पीठ पर बैठे हुए शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भेष सुन्दर श्री रमानाथ एक ही साथ प्रकट हुए थे। महर्षि ने तीनों की पूजा की। तीनों के अंश से उन्हें संतान प्राप्ति का वरदान मिला।

महासती अनसूया के तीन पुत्र रत्न हुए-चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा। शीतल किरणों से तृण, लता वल्ली, अन्न तथा चन्द्रमा मनुष्यों का पोषण करते हैं और सदा स्वर्ग में रहते हैं, वे प्रजापति के अंश हैं। दत्तात्रेय दुष्ट दैत्यों का संहार कर प्रजा की रक्षा करते हैं। वे शिष्टजनों पर अनुग्रह करते हैं। वे भगवान् विष्णु के अंश हैं। दुर्वासा अपमान को भस्म कर डालते हैं, वे शरीर दृष्टि, मन और वाणी से भी उद्धत स्वभाव के हैं और रुद्र के अंश हैं। श्री विष्णु रूप दत्तात्रेयजी योगस्थ रहकर भी कर्मों में प्रवृत्त हो गए। दुर्वासा अपने पिता-माता को छोड़कर 'उन्मत्त' नामक उत्तम व्रत का आश्रय लेकर पृथ्वी पर विचरने लगे।

पूर्वकाल में देवताओं और दैत्यों में एक वर्ष तक निरन्तर युद्ध होता रहा जिसमें दैत्य विजयी हुए और देवता हार गए। सभी देवता मिलकर बृहस्पतिजी के पास आए। बृहस्पतिजी ने कहा—देवताओ! तुम अत्रि ऋषि के पुत्र दत्तात्रेय के पास जाओ उनमें वर देने की शक्ति है, वे तुम्हें वर देंगे और तुम दैत्यों का वध कर सकोगे?

उनके ऐसा कहने पर देवगण दत्तात्रेय मुनि के आश्रम पर गए। वहां लक्ष्मीजी के साथ उनका दर्शन किया। देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया, उपासना करने लगे। दत्तात्रेय जी के पूछने पर उन्होंने अपने आने का कारण बताया कि जम्भ आदि

दानवों ने त्रिलोकी पर आक्रमण करके भूलोक और सुरलोक आदि पर अधिकार जमा लिया है अतः आप उनके वध के लिए विचार करें। आप निष्पाप तथा निर्लेप हैं। विद्या प्रभाव से शुद्ध हुए आपके अन्तःकरण में ज्ञान की किरणें फैल रही है।

देवताओं के ऐसा कहने पर दत्तात्रेय जी ने कहा कि समस्त असुरों को युद्ध के लिए मेरे सामने बुलाओ, मेरी दृष्टिपात जनित अग्नि से उनके बल और तेज दोनों क्षीण हो जाएंगे और इस प्रकार वे सब के सब मेरी कोपदृष्टि से नष्ट हो जायेंगे। उनकी बात सुनकर देवताओं ने महाबली दैत्यों को युद्ध के लिए ललकारा। दैत्यों की मार खाकर देवता भय से व्याकुल हो कर शरण पाने की इच्छा से शीघ्र ही भाग कर दत्तात्रेयजी के आश्रम पर गये। दैत्य भी देवताओं को काल के गाल में पहुंचाने के लिए वहीं जा पहुंचे। वहां दत्तात्रेयजी के वाम भाग में लक्ष्मीजी विराजमान थी। उन्हें सामने देखकर दैत्यों के मन में उन्हें प्राप्त करने की इच्छा हो गई। वे अपने बढ़ते हुए काम के वेग को न रोक सके। उन्होंने देवताओं का पीछा छोड़कर लक्ष्मी को हर लेने का विचार किया। वे आपस में विचार करने लगे 'यह स्त्री त्रिभुवन का सारभूत रत्न है। यदि यह हमारी हो जाय तो हम लोग कृतार्थ हो जायें, इसलिए हम सब लोग मिलकर इसे पालकी पर बिठा लें और अपने घर को चलें।

अतः वे काम पीड़ित दैत्य लक्ष्मीजी को पालकी में बिठाकर उसे मस्तक पर ले अपने स्थान की ओर चले। दत्तात्रेयजी ने हंस कर देवताओं से कहा—'सौभाग्य से लक्ष्मी दैत्यों के सिर पर चढ़ गई। अब तुम लोग आगे बढ़ो और शस्त्र उठाकर इन दैत्यों का वध करो। मैंने इन्हें निस्तेज कर दिया है। पराई स्त्री के स्पर्श से इनका पुण्य जल गया है, जिससे ये शक्तिहीन हो चले हैं।

तदनन्तर देवताओं ने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से दैत्यों को मारना आरंभ किया। लक्ष्मी उनके सिर पर चढ़ी हुई थी, अतः वे नष्ट हो गये। इसके बाद लक्ष्मी जी वहां से मुनि दत्तात्रेय के पास आ गई। उस समय संपूर्ण देवता उनकी स्तुति करने लगे, फिर परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी को प्रणाम कर स्वर्ग चले गए और निश्चिन्त होकर रहने लगे।

मानवता के आदि गुरु तथा महान् योगी—भगवान् दत्तात्रेय आदि युग में प्रह्लाद के उपदेष्टा हैं। आजगर मुनि के वेश में प्रह्लादजी को उन्होंने अवधूत की स्थिति का उपदेश दिया। इसी प्रकार महाराज अलर्क को उन्होंने तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। कुत्तों से घिरे हुए, उन्मत्त सा वेश बनाये, उन सिद्धों के परमाचार्य को पहचानना बहुत उच्चकोटि के अधिकारी का ही काम है। सिद्धों की एक परंपरा ही भगवान् दत्तात्रेय को उपास्य मानती आई है। इनमें 'रस सिद्ध' का बहुत प्रचार था।

ये सिद्धियां भले ही मनुष्य को प्रलुब्ध करें और कौतूहल या कामना वश सामान्य साधक इन्हीं को लक्ष्य बनाते हों, परन्तु भगवान् दत्तात्रेय के उपदेश मनुष्य को इन प्रलोभनों से सावधान करते हैं। योग संबंधी अनेक मंत्र भगवान् दत्तात्रेय के कहे जाते हैं। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय भी इन्होंने योग ही बतलाया है—

त्यक्ता संगो जित क्रोधो, लघ्वाहारी जितेन्द्रयः।
पिघाय बुद्धया द्वाराणि, मनो ध्याने निवेशयेत्।।

योगी आसक्ति का त्याग करके, क्रोध को जीत कर, स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो और बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारों को रोककर मन को ध्यान में लगावें।

महायति के लक्षण बताते हुए भगवान् दत्तात्रेय जी ने लिखा है—

'वाग्दण्डयः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः।।

वागदण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड—ये तीन दण्ड जिसके अधीन हों वही त्रिदण्डी महायति कहलाता है।

इसी प्रकार के एकाग्रचित्त योगी के लक्षण बताते हुए लिखते हैं—

'विशुद्ध बुद्धिः समलोष्ट काञ्चनः,
समस्तभूतेषु समः समाहितः।
स्थानं परं हिगत्वा न पुनः प्रजायते।'

जिसकी बुद्धि शुद्ध है जो मिट्टी के ढेले और सुवर्ण को समान समझता है, सब प्राणियों के प्रति जिसका समान भाव है, वह एकाग्रचित्त योगी उस सर्वोत्कृष्ट सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो कर फिर इस संसार में जन्म नहीं लेता।

दक्षिण में भगवान् दत्तात्रेयजी की उपासना का व्यापक प्रचार है। 'गिरिनार' प्रभु का सिद्धपीठ है।

चराचर के गुरु, शंख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले विष्णु के स्वरूपभूत, मनुष्यों का पोषण करने वाले ब्रह्मा के स्वरूपभूत और प्रलय करने वाले शिव के स्वरूपभूत, कोटिशः जनगणवन्दित भगवान् दत्तात्रेयजी को हमारा बारम्बार प्रणाम हो।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

अठारह पुराणों में व्यास के दो वचन हैं—दूसरे की भलाई करना पुण्य (धर्म) है और दूसरे को पीड़ा देना पाप (अधर्म) है।

महर्षि वेदव्यास

महर्षि वेदव्यास की पूजा समस्त गुरु-परम्परा की पूजा है।

वेद विश्व का प्रथम ज्ञानालोक है। उस पावन प्रकाश को विधिवत सम्पादित करके मानवता की भावी पीढ़ियों के लिए सुलभ बनाने वाले भगवान् वेदव्यास विश्व के प्रथम एवं महानतम ज्ञान सम्पादक हैं। विश्व के सर्वोच्च दर्शन वेदान्त के द्रष्टा होने के कारण वे विश्व के प्रथम कोटि के महानतम दार्शनिक हैं। महाभारत जैसे ग्रंथ के रचयिता होने के कारण वे विश्व के प्रथम विश्वकोश के निर्माता भी हैं। पुराणकर्ता के रूप में विश्व के प्राचीनतम एवं महानतम पुराणेतिहासकार है। विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के द्रष्टाकवि के रूप में विश्व के महानतम महाकाव्यकार हैं। श्रीमद्भागवत्, महापुराण के रचयिता के रूप में भक्ति के भी महानतम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास विश्व के महानतम गुरुओं में पूज्यतम पद पर प्रतिष्ठित हैं। उनकी पूजा वास्तव में ज्ञानगंगा की पूजा अथवा समस्त गुरु-परम्परा की पूजा है।

प्राचीन भारत में ऐसी प्रथा थी कि श्रावणी अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा के अवसर पर जब वर्षा का वेग कम होने लगता था, वेदादि-शास्त्रों के पठन-पाठन का क्रम चालू होकर 11 मास अर्थात् आषाढ़ मास की पूर्णिमा पर्यन्त बराबर नियत रूप से चलता रहता था। एक मास के वार्षिक अवकाश के उपलक्ष में आषाढ़ पूर्णिमा के पर्व को विशेष पर्व के रूप में मनाया जाता था। उसी का नाम व्यास-पूजा रखा गया था। उस अवसर पर प्रत्येक छात्र अपने पूज्य व्यास अर्थात् गुरु के प्रति अपनी विशेष श्रद्धा को प्रकट करता हुआ कुछ न कुछ दक्षिणा (भेंट) करता था।

गुरु शब्द दो अक्षरों के मेल से बना है—गु+रु=गुरु अर्थात् अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना। वेदों में ज्योतिस्वरूप परमात्मा से प्रार्थना की गई है, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (हे भगवान्! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ) मानव देहधारी गुरुओं का भी यही कर्तव्य है कि वे अपने शिष्यों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जावें।

उनके ज्ञानामृत ने भारत के कोटि-कोटि सुतों को विगत हजार वर्षों से हजारों विपदाओं एवं आपदाओं के थपेड़ों में भी नवप्राण देकर जाति को जीवित रखा।

हमारी संस्कृति हमारा जीवनरस है। इसे खोकर हमारे पास कुछ नहीं रह जाएगा।

आज से 5 हजार वर्ष पूर्व एक ही समय में ऐसे दो व्यक्तियों का जन्म हुआ जिनके उदात्त मस्तिष्क की छाप हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बहुत गहरी पड़ी है। संयोग से उन दोनों का नाम कृष्ण था। एक को द्वैपायन कृष्ण कहा जिन्हें सारा देश महर्षि वेदव्यास के नाम से जानता है और जिसके मस्तिष्क की अप्रतिहत प्रतिभा से आज तक हमारे धार्मिक जीवन और विश्वासों का प्रत्येक अंग प्रभावित है।

भारतीय साहित्य और हिन्दू संस्कृति पर व्यासजी का बहुत बड़ा ऋण है। जगत् के महान् पथप्रदर्शक और शिक्षक हैं।

भगवान् व्यास कल्पान्त तक रहेंगे। श्री आद्य शंकराचार्य ने उनके दर्शन पाए थे। और भी कई महापुरुषों को वेदव्यासजी का साक्षात् लाभ हुआ था, ऐसा वर्णन मिलता है।

भगवान् व्यास महाकवि, सम्पादक, दार्शनिक, विश्वकोश के निर्माता, धर्मप्रणेता, समाज विधायक, राजनीतिज्ञ, संत तथा ब्रह्मर्षि सभी कुछ का एक अद्भुत व्यक्तित्व लिए हुए थे। वही विश्व के निर्माता के सर्वप्रथम इतिहासकार तथा संस्कृत विश्वकोश के निर्माता हैं। सर्वतोमुखी प्रतिभा के क्षेत्र में वह अद्वितीय हैं।

सारे संसार का ज्ञान उन्हीं से प्रकाशित है। सब ज्ञान व्यासदेव की जूठन है।

व्यासजी के हृदय और वाणी का विकास ही समस्त जगत् का और उसके ज्ञान का प्रकाश और आलम्बन है।

वेदव्यास महर्षि पराशर के पुत्र थे। इनका जन्म कैवर्तराज की पोष्य पुत्री सत्यवती के गर्भ से हुआ था।

इनका जन्म द्वीप में होने के कारण नाम द्वैपायन पड़ा। शरीर का वर्ण श्याम है इससे कृष्ण द्वैपायन हैं और वेदों का विभाग करने के कारण वेदव्यास हैं।

बदरीवन में रहने के कारण बादरायण है। बदरीवन में शम्याप्रास में अपना आश्रम बनवाया।

पैदा होते ही माता की आज्ञा लेकर तप करने चले गए। जाते समय कह गए कि जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता पड़े मुझे याद कर लेना। मैं उसी समय तुम्हारे पास आऊंगा।

व्यास का अर्थ है विस्तार, वेदों का विस्तार इन्हीं से हुआ। इसलिए वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं।

व्यास धातु के तीन मुख्य धातु-अर्थ प्रसिद्ध हैं—

(क) विस्तार—फैलाव, वृद्धि जैसे समासपूर्वक किसी पदार्थ का संक्षेप वर्णन करना। इसी प्रकार 'व्यासपूर्वक', किसी पदार्थ का विस्तारपूर्वक वर्णन करना।

(ख) विभाग—इस धात्वर्थ के आधार पर भूमि आदि किसी भी गोल पदार्थ को दो समान भागों में बांटने वाली (काल्पनिक) मध्य रेखा को व्यास कहते हैं।

(ग) उपदेश, प्रवचन पाठ। इसके आधार पर शास्त्रकथा करने वाले उपदेशक को व्यास कहते हैं।

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं श्रुत्वाचैवाव धार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

धर्म का सार-सर्वस्व सुनो और सुन कर उसे अपनाओ, दूसरों द्वारा किया हुआ जो व्यवहार स्वयं को प्रतिकूल लगे वैसा व्यवहार स्वयं दूसरों के प्रति न करो।

× × ×

पाश्चात्य देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं जिन बातों को हृदय के आवेग से सत्य मान लेता था। अब उन्हें प्रत्यक्ष सत्य के रूप में देख चुका हूं। पहले मैं अन्य हिन्दुओं की तरह विश्वास करता था कि भारत पुण्यभूमि है कर्मभूमि है किन्तु आज मैं यह दृढ़ता के साथ कहता हूं कि यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा स्थान है जहां मानव जाति के हृदय में क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्‌वृत्तियों का सर्वापेक्षा अधिक विकास हुआ है तो वह हमारी मातृभूमि भारतवर्ष है। विदेशों में लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदय में जड़वाद की जो अग्नि धधक रही है उसे बुझाने के लिए जिस अमृतधारा की आवश्यकता है वह भारत में ही विद्यमान है।

—स्वामी विवेकानन्द

विक्रम सम्वत् नववर्ष का दिवस

किसी राष्ट्र के इतिहास में एक नए सम्वत् का आरम्भ होना एक अमर घटना है। विक्रमी सम्वत्, जो ईसा के 57 वर्ष पूर्व महाराजा विक्रमादित्य ने स्थापित किया था, हमारे राष्ट्र के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना है। हमारे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है। हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रकाशपुञ्ज जो इस देश के करोड़ों पुत्रों और पुत्रियों के हृदय में अनन्तकाल तक नया जीवन और स्फूर्ति देता रहेगा।

हिन्दू कैलेण्डर (विक्रम सम्वत्) का नववर्ष दिवस। यह कालगणना (कैलेण्डर) विश्व में सबसे प्राचीन है। हमारी राष्ट्रीय एकता, आन्तरिक शक्ति एवं परिपक्वता का द्योतक है। यह भारत की स्वाधीनता की भावना को दर्शाता है और लगभग 2012 वर्ष पूर्व के भारत की गरिमा, शान्ति, समृद्धि का स्मारक है। यह भारत के गौरवपूर्ण इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है जो उस समय की संस्कृति, कला, साहित्य, वीरता, ज्ञान और सभ्यता का स्मारक है। इसलिए यह उचित है कि विक्रम सम्वत् का नववर्ष दिवस एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाए। सारे देश में खुशी और त्योहार के ढंग से मनाया जाए। विशेषतया जबकि भारत सैकड़ों वर्ष पुरानी दासता की जंजीरों को तोड़कर एक स्वतंत्र गणराज्य के रूप में उभरा है। यह आवश्यक है कि करोड़ों भारतीय यह ऐतिहासिक दिवस, विजय और स्वतंत्रता का पर्व, उस महान् राष्ट्रीय नायक (विक्रमादित्य) का गुणगान करे जिसने आततायी शकों का दमन समाप्त कर भगवान् राम और कृष्ण की भूमि पर राम राज्य की स्थापना की थी।

यह दुःख का विषय है कि हमारे राष्ट्र के रक्षक और विक्रम सम्वत् के संस्थापक विक्रमादित्य का जन्म काल भी व्यर्थ के बौद्धिक विवाद में आ गया है। इतिहासकारों के उनके (राजा विक्रमादित्य) जन्म, वंश, जन्मस्थल आदि के विषय में विभिन्न मत हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं—प्रथम, हम भारतीय अच्छे इतिहासकार नहीं रहे हैं। हमारे राजाओं ने अपने जीवनकाल में अपनी जीवनी नहीं लिखवाई। यह आत्मश्लाघा हो सकती है। यहां के लेखकों ने राजाओं के समय की कुछ घटनाओं को काव्य रूप में लिखा है। किन्तु, कई आवश्यक घटनाओं की भी तिथि आदि अंकित नहीं की है। दूसरा, कुछ लिपियां जो तक्षशिला, नालन्दा,

पाटलीपुत्र, अवंति आदि विश्वविद्यालयों में थी, वे मध्यकालीन मुगल आक्रामकों ने नष्ट कर दी थी। इसके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारों ने भी शरारतपूर्ण एवं गलत ढंग से इतिहास को बिगाड़ा है जिससे राजा विक्रमादित्य, जिन्होंने विक्रमी सम्वत् चलाया था, की छवि धूमिल हुई है। डॉ. टैगोर के अनुसार जो विदेशी इतिहासकार ग्रामीण भारत की झोंपड़ियों से निकलते धुएं को घर में लगी आग समझ लेते हैं, उन इतिहासकारों से इतिहास के यथार्थ-सही ढंग से लिखने की आशा व्यर्थ है। ऐसे प्रेक्षक यहां के समाज का इन्द्रधनुषी जीवन, परम्पराएं, जीवन के दु:ख-सुख समझ नहीं पाते और उनका इतिहास में उचित वर्णन नहीं कर सकते।

इस परिप्रेक्ष्य में विक्रमादित्य का इतिहास भारतीय मस्तिष्क और दृष्टि से भारतीय स्रोतों के आधार पर निर्माण होना चाहिए। इतिहासकारों के लिए मुख्य चुनौती है—क्या ईसा से लगभग 100 वर्ष पूर्व भारत में विक्रमादित्य राजा थे? उनका वंश क्या था? कब से कब तक उन्होंने राज्य किया और उनकी राजधानी कहां थी? इतिहासकार इसे तीन प्रकार से प्रस्तुत करते हैं—

(क) कुछ लेखकों का मत है कि ईसा से एक शताब्दी पूर्व महान् विक्रमादित्य नाम के राजा थे। जिन्होंने उत्तर-पश्चिम से आए आक्रामक शकों को हरा कर भारत से भगा दिया। अपनी विजय के उपलक्ष में उन्होंने विक्रम सम्वत् की स्थापना की होगी। दुर्भाग्यवश राजनैतिक उथल-पुथल के कारण बहुत-सी ऐतिहासिक लिपियां नष्ट हो गई हैं। यह राजा शकारि-शकांतक (शकों का शत्रु) विक्रमादित्य कहलाता था।

(ख) ऐतिहासिक व प्रामाणिक लेखों के अभाव में कुछ इतिहासकार मानते हैं कि आन्ध्रप्रदेश में आंध्र वंश में गंतामी पुत्र शत्करनी (पहली सदी ईसा पूर्व) राजा था। जो पूरे दक्षिण का सम्राट् था। उन्होंने दो अश्वमेध यज्ञ कराए जिससे शक और पल्लव भारत से भाग गए। यह राजा विक्रमादित्य थे। डॉ. जायसवाल के अनुसार यही राजा विक्रमादित्य थे जिन्होंने प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् का आरम्भ किया था।

(ग) कई इतिहासकार मानते हैं कि गुप्त वंश (380-414 ई.) के चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने उज्जैन के शक क्षत्रप को पराजित करने के बाद विक्रमादित्य नाम ले लिया। विक्रमादित्य अर्थात् वीरता के सूर्य ने प्राचीन हिन्दू कालगणना प्रणाली को पुनर्जीवित किया। इसी का नया नाम मलव संवत् या कृत संवत् ही विक्रमी सम्वत् हो गया। प्रख्यात इतिहासकार भंडारकर इस विचारधारा के विशेष समर्थक हैं।

(घ) एक अन्य विचारधारा के अनुसार राजा महावीर यशोवर्मन विक्रमादित्य (7वीं शताब्दी ई.) जिसने मालवा के शक-आक्रामकों को खदेड़ा था, उन्होंने मालव सम्वत् को नया नाम विक्रम सम्वत् दिया।

(ङ) डॉ. भागवत दत्त, जो प्रसिद्ध शोध विद्वान् एवं भारतीय दर्शनवेत्ता हैं, ने लिखा है (प्राचीन भारत का इतिहास नामक पुस्तक में) कि पहली शताब्दी ईसा पूर्व आंध्र राजवंश में जन्मे राजा शुद्रक जिन्हें सर्वप्रथम विदेशी आक्रामकों को खदेड़ने के कारण विक्रमादित्य नाम मिला था। उन्होंने विक्रम सम्वत् की स्थापना की थी। इस विद्वान् इतिहासकार ने विक्रम सम्वत् से पहले के कई अन्य सम्वतों की भी चर्चा की है। महाभारत युद्ध के 36 वर्ष उपरान्त काली सम्वत् (विक्रम सम्वत् से 3066 वर्ष पहले), सप्तर्षि संवत् (पुराना संवत् जो काशमीर, चम्बा और मण्डी के कुछ क्षेत्रों में अभी भी प्रचलित है), व्रट मिहरी संवत् (प्रसिद्ध नक्षत्रशास्त्री व्रट मिहिर द्वारा प्रतिपादित), विक्रम (शुद्रक) सम्वत् (57 वर्ष ईसवी पूर्व), मालव सम्वत्, शक सम्वत्, परद सम्वत् (उत्तरी-पश्चिमी भारत में किसी पार्थ नृप द्वारा स्थापित), शालिवाहन सम्वत्, गुप्त सम्वत् आदि। यह भी लिखा है कि राजा शुद्रक इतने न्यायप्रिय थे कि इतिहासकारों ने इनके विक्रम सम्वत् को कृत सम्वत् (सत्य और न्याय का स्वर्ण युग, सत्य युग) कहा है।

इन तथ्यों के गहन अध्ययन एवं प्रथम और अन्तिम विचारधाराओं से साफ झलकता है कि विक्रम सम्वत् महान् राजा विक्रमादित्य द्वारा 57 वर्ष ईसा पूर्व स्थापित किया गया था। यह कहना कि विक्रम सम्वत् 4 शताब्दी ई. में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा स्थापित या यशोवर्मन द्वारा 7वीं शताब्दी ई. में स्थापित हुआ था, ऐतिहासिक अज्ञानता को दर्शाता है। मलव संवत् का पुनर्नामसंस्करण विक्रम संवत् है—यह विचारधारा भी तर्क पर खरी नहीं उतरती। क्योंकि दोनों सम्वतों का वर्णन इतिहास में गुप्त काल तक आता है। फिर कई प्रमाण भी हैं कि चन्द्रगुप्त जो गुप्त वंश के संस्थापक थे, उन्होंने गुप्त सम्वत् आरम्भ किया जो अधिक समय तक लोकप्रिय नहीं रहा।

इस क्षेत्र के इतिहास का गंभीर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यहां कई राजाओं का उपनाम विक्रमादित्य था। यह वीरता का नाम उन शूरवीरों को मिलता था जो विदेशी आक्रामकों को भारत से मार भगाते थे।

उपरोक्त 5 विक्रमादित्यों के अतिरिक्त पं. ईशदत्त (प्रख्यात शोध विद्वान् व दर्शनशास्त्री) चन्द्रगुप्त-प्रथम (गुप्त वंश) की भी चर्चा करते हैं। जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि पाई थी। उन्होंने सशक्त गुप्तवंश की नींव रखी। दिल्ली के पास महरोली में कुतुब के समीप प्रसिद्ध लोहे का खम्भ बनवाया और 313 ई. में गुप्त सम्वत् चलाया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ. ए.एन. घोष भी इस विचारधारा को समर्थन देते हैं।

गुरुनानक : आध्यात्मिक जागरण के अग्रदूत

पंजाब को भारत का उत्तरी-पश्चिमी मुख्यद्वार कहा जा सकता है। यहां के वीर सपूतों ने हर विदेशी आक्रमण का बड़ी वीरता से सामना किया और उन्हें विफल बनाया। किन्तु, मध्यकाल में कुछ भयंकर आक्रमणों का मुहंतोड़ जवाब नहीं दिया जा सका। फलस्वरूप लगभग सम्पूर्ण भारत इन विदेशी आक्रांताओं से रौंदा गया और सन्तों और ऋषियों की इस पावन भूमि पर इसलाम की पताका फहराने लगी। पाँच नदियों का क्षेत्र पंजाब जहां पहले वेदमंत्रों का गायन होता था और जहां पाणिनि जैसा व्याकरण का ज्ञाता, चाणक्य जैसा कूटनीतिज्ञ, प्रसिद्ध वैद्य चरक और वासुबंधु व ब्रह्मगुप्त आदि विद्वान् पैदा हुए थे अब कष्ट और अशान्ति से त्रस्त था। इस संकट की घड़ी में महान् संत नानक भारत के क्षितिज पर उदय हुए। एक कवि ने बहुत सुन्दर पंक्तियों में इस प्रकार लिखा है—

He promulgated us love of true Name
the eternal Lord.
Gurunanak was born for the salvation of
the iron age.

उन्होंने प्रभु के पावन नाम का प्रसार-प्रसार किया। गुरु नानक ने मानवता का दु:ख और अज्ञानता से उद्धार के लिए अवतार लिया था।

नानक का जन्म कार्तिक पूर्णिमा को लाहौर के समीप तलवंडी गांव में हुआ था। उनके मुख की दिव्य आभा और सरस लावण्य सभी को आकर्षित करता था। यह भावी अवतार सूर्य कुल में पैदा हुआ। ऐसा वंश जिसमें वैदिक काल में भगवान् राम भी जन्मे थे। इनके परिवार में वेदों के पठन-पाठन की परम्परा थी। अत: वे वेदी (बेदी) कहलाने लगे। नानक ने भक्ति, शुद्ध आचरण और नैतिकता की शिक्षा अपने परिवार से ही प्राप्त की थी। विद्यालय जीवन के आरम्भिक काल से ही वे शिक्षकों को अपने ज्ञान और रहस्यवाद के गहन विचारों से आश्चर्यचकित कर देते थे।

उन्होंने अपने गणित के शिक्षक को कहा था—

अज्ञान को घोलकर इसकी स्याही बना लें, जीवात्मा परमात्मा की शरण में हो।

जरा बुद्धि की स्लेट पर प्रेम की कलम से प्रभु की अमरगाथा लिखें।

पंडित और मौलवी

नानक को दिव्य भाषा संस्कृत एवं राजभाषा फारसी को सीखने का सौभाग्य मिला था। वे ओंकार और अल्लाह की समीक्षा कर सब को मंत्रमुग्ध कर देते थे।

बालपन से ही नानक परिपक्व बुद्धि, ज्ञान और भक्ति से परिपूर्ण थे। भारतीय संस्कृति में दृढ़ निष्ठा लिए नानक एक बाल वेदान्ती हो गए थे। नानक सदा गहन चिन्तन में खोये रहते थे। उनके पिता ने उनकी चिकित्सा के लिए एक वैद्यजी को बुलाया तो नानक बोल उठे—

वैद बुलाया वैदगी, पकड़ टटोले बांह।
भोला वैद न जाणया, दर्द कलेजे मांह।।

गुरु नानक एक उच्च मूल विचारक थे। उनके दैवी विचारों ने उस समय की धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आकांक्षाओं को समझा। वे अद्वैतवाद के उद्घोषक थे। उन्होंने इस मूल सत्य को समझा कि पूरे ब्रह्माण्ड का परम सत्य एक शक्ति है। जो सबकी नियन्ता है। वे वैदिक अद्वैतधारा के मंत्र **'एकोऽब्रह्म द्वितीयोनास्ति'** के पूर्ण समर्थक थे। उनकी आध्यात्मिक विचारधारा वेदान्त गुरु वेदव्यास और अद्वैतवाद के सर्वश्रेष्ठ समीक्षक जगद्गुरु शंकराचार्य के समान ही थी। इस परिवर्तनशील और विनाशशील ब्रह्माण्ड के पीछे एक अमर और स्थायी सत्ता है जो नाम और रूप से परे है। वह अद्भुत एवं सर्वशक्तिमान है। उनकी लोकप्रिय प्रार्थना अरदास में 'एक ओंकार। सत्गुरु प्रसादं' की पूजा अर्चना की गई है।

नानक कहते हैं, केवल एक ही ईश्वर है। उसका नाम सत्य है। जो ॐ के शब्द से प्रख्यात है। वह कर्ता, निर्भय, निर्वैर, अमर, अजन्मा तथा निर्विकार है। गुरु की कृपा से उसका नाम जपिये। गुरु नानक ने आदि धर्म को पुनः नए रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया—जीवन में वास्तविक, चिर स्थायी आनन्द केवल परमसत्ता के बोध से ही प्राप्त होता है।

पूर्व के वेदान्तियों और पश्चिम के रहस्यवादी संतों की तरह नानक भी Pantheism सर्वेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। अपने निजी जीवन से उन्होंने ब्रह्मसूत्र 'सर्वं खल्विदम् ब्रह्म' पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा दिखाई। इसका अर्थ है ईश्वर ही सब कुछ है और सब कुछ ईश्वर है। एक बार नानक मक्का के रेगिस्तान की रेत पर सो रहे थे। उनके पांव पावन तीर्थ काबा की ओर थे। यह देख कर कुछ मौलवी उनके आपत्तिजनक ढंग से सोने पर क्रोधित हुए तो नानक ने कहा कि आप मेरे पांव उधर मोड़ दीजिये जहां अल्लाह न हो। कहा जाता है कि उन्होंने नानक के

पांव जिस दिशा में फेर दिये, काबा भी उसी दिशा में आ गया। यह घटना इतिहास में सिद्ध हो या नहीं किन्तु नानक के मन में यह दृढ़ निश्चय था कि कोई ऐसा स्थान या दिशा नहीं जिसमें प्रभु न हों। इसी प्रकार जगन्नाथपुरी मंदिर में पारम्परिक आरती को देखकर नानक गा उठे—

गगन माया थाल रवि चन्द्र दीपक है बने
तारका मण्डला जनक मोती।

आकाशरूपी विस्तृत थाल में सूर्य और चन्द्र दीपक की भांति चमक रहे हैं। असंख्य तारागण भी चमचमाते मोतियों के समान हैं। चन्दन के वृक्षों की दिव्य सुगन्धि आपकी अगरबत्ती है। मन्द-मन्द बयार आपके पंखा है। प्रकाशपुञ्ज प्रभु! सभी वन उपवन आपकी पूजा के लिए खिलते, फूलते हैं।

नानक हर पल प्रभु की सत्ता और महानता को अनुभव करते थे। और कह उठते थे—

प्रभु के नाम जपने में ही जीवन।
प्रभु को भूलने पर केवल मृत्यु है।।

नानक मानते थे कि प्रभु को पाने का मार्ग केवल उसका नाम जपना है। 'नामजप' का बहुत महत्त्व होता है। बुद्ध और उपनिषदों की तरह नानक भी मानते थे कि विश्व दु:खों का घर है। उनमें उपनिषदों के ज्ञान के आशावाद एवं सकारात्मक विचारधारा से सहमति है और बौद्ध धर्म की उदासीन एवं नकारात्मक विचारधारा से पूर्णतया स्वतंत्र थे। नानक भक्ति द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त कर संकटों से छुटकारा पाने की राह दिखाते हैं। जहां उपनिषद् ज्ञानयोग का मार्ग सिखाते हैं वहां नानक निर्गुण भक्ति का उपदेश देते हैं। वे नामजप की अद्भुत शक्ति का प्रसार-प्रचार करते हैं—

नानक दुखिया सब संसार।
सोई सुखी जिन नाम आधार।।

सच्चे वेदान्ती, गुरु नानक का विश्वास था कि प्रभु हम सब में विराजमान हैं। उन्हें उन लोगों पर दया आती थी जो प्रभु को ढूंढ़ने बाहर भागे फिरते हैं। नानक रहस्यवाद के एक सुन्दर गीत में कहते हैं—

काहे रे बन खोजन जाय,
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर मांहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतर, घट महिं खोजो भाई।।

यह सब विचार उस आध्यात्मिक रूप से उन्नत महापुरुष के हैं। इन उच्च विचारों के धनी नानक अपने आचरण से बहुत ही सादे और कोमल प्रवृत्ति संत थे।

ईश्वर के परम भक्त गुरु नानक अन्य भक्तों और संतों का बहुत आदर करते थे। उन्होंने प्रभु के भक्तों के बारे में लिखा था—

हऊं कुरबाने जाऊं तिन्हां दे।
लेन जो तेरा नाऊं....।।

एक अन्य गीत में अपने हृदय की गहराइयों से कहते हैं—

सपने में घबराय के जिस मुख निकसत राम।
तिन के पग की पाहिनी नानक मेरो चाम।।

यदि भयानक स्वप्न देखने पर कोई व्यक्ति घबरा कर भी राम नाम का उच्चारण करता है। नानक ऐसे पवित्र व्यक्ति के पांव की जूती बनने के लिए अपने शरीर की चमड़ी तक देने के लिए तैयार है।

गुरु नानक एक फकीर के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। पर दान लेकर जीना उन्हें पसंद नहीं था। सब साधन होते हुए भी स्वेच्छा से फकीरी अपनाई थी। यह भक्ति का जरूरी अंग है। वे कर्मयोग में विश्वास रखते थे।

नानक सांसारिक लोगों को कर्म का उपदेश देते थे। साथ ही वे कर्मों के बंधन भी समझते थे। प्रभु की कृपा से ही जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति पाई जा सकती है। अकसर कर्म में अधिक विश्वास करने वाले भक्ति योग या गुरु कृपा पर अधिक आस्था नहीं रखते। लेकिन भगवद्गीता की तरह नानक कर्म और भक्तियोग का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं—'सुबह ब्रह्म वेला में प्रभु का नाम स्मरण करें। केवल कर्म से पुनर्जन्म होगा ही। प्रभु का नाम जपने से मोक्ष का द्वार मिल जाता है।'

नानक करुणा और प्रेम की मूर्ति थे। उन्होंने सत्य, प्रेम, भाईचारा और सेवाभाव का हमें पाठ पढ़ाया। वे भारत में धार्मिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। एक समय पूरा पंजाब प्रांत उनके प्रेम, सद्भावना और भक्ति के गीतों से गुंजायमान था। वे मानवतावाद और शान्ति के महान् संवाहक थे। वे धर्म में मानवीय मूल्यों के समर्थक थे। नानक सदा इन्द्रियों पर अनुशासन, संतोष, मानवता, प्रेम, गुरु के प्रति आदर, निष्काम सेवा, अन्तर्ज्योति की खोज और भाईचारे का उपदेश देते थे। वे निस्संदेह भारत के महान् सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक नवजागरण के दूत थे। जब तक ब्रह्माण्ड में सूर्य चमकता रहेगा, गुरु नानकदेव जी का उपदेश और उनकी वाणी अमर रहेगी।

रहस्यवादी संत नानक

गुरु नानक के कई रूप—सामाजिक एवं धार्मिक सुधारक, एक ऐसे सौहार्दपूर्ण संगठन के संस्थापक, जिस समुदाय ने कालान्तर में भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण व उज्ज्वल योगदान दिया। इन रूपों में गुरु नानक के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। किन्तु, एक कवि, रहस्यवादी संत जो केवल स्वप्न ही नहीं देखते थे अपितु स्वप्नों को व्यावहारिक रूप देकर राष्ट्र को नई दिशा देने की क्षमता रखते थे। इस विषय में अधिक साहित्य नहीं मिलता। उनका रहस्यवाद सुन्दर काव्य गीतों के अनेक रंगों में मुखरित होता है।

मेरा कहने का यह उद्देश्य नहीं है कि नानक के गीत सामाजिक या आचरण शास्त्र से बिल्कुल अलग थे। बल्कि उनके गीतों में सामाजिक कष्टों, कुरीतियों से छूटने का संदेश स्पष्ट मिलता है। वे धार्मिक अंधविश्वासों, कुछ समुदायों द्वारा साधारण व्यक्ति, दलितों, पिछड़ी जातियों पर अत्याचार को देखकर बहुत क्षुब्ध थे। यह सब उनके गीतों में साफ झलकता है। सामाजिक एवं धार्मिक कुप्रथाओं के प्रति उनका दु:ख इन पंक्तियों में झलकता है—

मानव शब्दजाल में भ्रमित हो रहा है। धर्म में कर्मकाण्ड की महत्ता बढ़ रही है।

तीर्थ स्नान से क्या लाभ... यदि मन में अभिमान की मैल साफ नहीं हुई।

उन कर्मकांडों का नाश हो जिनसे मैं प्रियतम को भूल जाऊं।

केवल परमेश्वर के प्रति सच्चा प्यार ही मुझे गर्व से जिन्दा रखता है।

अथवा

जाति भ्रम है, नाम भ्रम है, सब जीवों का एक ही आश्रय है परमेश्वर।

वे कोरे शास्त्रीय ज्ञान को हेय मानते थे।

यदि वेद और कुरान मन को विषयों से मुक्त नहीं कराते तो निरर्थक हैं। धर्म केवल ग्रंथ पढ़ना नहीं।

सब प्राणियों के प्रति समभाव ही है—धर्म।

वे युद्धरत सुधारक नहीं थे।

नानक के गीतों में उनके समाजवादी एवं आचरणवादी चिन्तन का चित्रण एवं एक नई आन्दोलनकारी भावना का अवलोकन होता है। किन्तु उन द्वारा सकारात्मक सुधारवादी कार्ययोजनाओं का अधिक आभास नहीं मिलता । नानक संभवत: कभी भी लड़ाकू सुधारक नहीं रहे जैसे कि उन्हीं के समकालीन मार्टिन लूथर थे या समाज की कुछ संस्थाएं या मान्यताएं जो उन्हें पसंद नहीं थी, के विरुद्ध सशक्त कट्टर आन्दोलन खड़ा किया हो।

यह विरोधाभासी प्रतीत होता है। किन्तु यह विरोधाभास समाप्त हो जाता है यदि हम नानक के रहस्यवादी व्यक्तित्व का सही रूप से अध्ययन करें। एक रहस्यमयी आत्मा परम सत्य को सदैव आत्मसात् करती और उसके साथ तादात्म्य बनाए रखती है। यह परम सत्य के साथ सदा सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है—बाह्य तंत्र-मंत्र या धार्मिक अनुष्ठानों, योग, प्राणायाम के माध्यम से नहीं अपितु परमसत्ता का अभिन्न अंग बनकर। यह एक अद्‌भुत रहस्यवादी अनुभूति है। ईश्वर रहस्यवादी संत के लिए एक ध्येय न रहकर एक अलौकिक अनुभव बन जाता है। यह स्थिति न खुशी की न शोक की, बस एक गहन व्योम (खालीपन-सा) होता है।

यह स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार के आध्यात्मिक प्रयास प्रचलित लोकप्रिय मान्यताओं से मतभेद लाए। रहस्यवाद सदा ही सत्य की खोज में लगा रहा है। यह धार्मिक कट्टर धारणाओं और रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध है। जब कुछ धार्मिक प्रथाएं केवल निर्जीव क्रियाएं बन कर रह जाती है तब रहस्यवाद वास्तविक आन्तरिक धर्म के रूप में मुखर होता है। नानक ने तत्कालीन धार्मिक रूढिवादियों के विरुद्ध प्रबल विरोध किया। वे इन प्रथाओं का अन्त चाहते थे क्योंकि यह सब सच्चे ज्ञान की प्राप्ति में बाधक है। वे थोथे योग का भी विरोध करते थे।

यौगिक-क्रिया जिसमें श्वास को हृदय (या फेफड़ों) में रोक लिया जाता है अथवा मस्तिष्क को शून्य-स्थिर बना कर श्वास-प्रश्वास की क्रिया करते हैं। इन सबका कुछ लाभ नहीं है।

नानक बाह्य धार्मिक प्रतीकों या अनुष्ठानों को व्यर्थ मानते थे। क्योंकि यह सब गंभीर व सत्य के खोजी साधक के लिए कुछ भी सहायक नहीं है।

धर्म ऐतिहासिक समाधियों के भ्रमण में नहीं
न ही श्मशान जाने में या ध्यान, मनन में।
धर्म विदेश यात्रा में नहीं,
तीर्थ-स्थानों में स्नान करने का भी धर्म नहीं होता।
धर्म तो विश्व की अपवित्रताओं में रहकर भी पवित्र रहना है।

यही तो सच्चा धर्म है।

इस प्रकार नानक रूढिवादी परम्पराओं, मान्यताओं, अन्धविश्वासों, दुराग्रहों से कुछ भिन्न रहकर, मधुर आस्था के अग्रदूत थे। वे विवादों से दूर रहते थे। वे मानते थे कि विवादों से केवल अहं की भावना पैदा होती है। जो आध्यात्मिक यात्रा को कुन्द कर देते हैं।

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।'

वे थोथे ज्ञान या चर्चा को व्यर्थ मानते थे। ऐसे व्यर्थ वाद-विवाद के प्रति उन्हें कुछ सहानुभूति नहीं थी।

'वह ज्ञान निरर्थक है—जो आपस में वाद-विवाद में उलझा दे।'

इस प्रकार नानक सच्चे रहस्यवादी परम्परा के साधक थे। रहस्यवाद किसी सम्प्रदाय या आग्रह, जिसके अन्तर्गत प्रेम या परम सत्य को किसी विशेष भाषा या पुस्तक ज्ञान की परिधि में बांध देते हैं, इन सबसे परे है। रहस्यवाद धीरे-धीरे साधक को दुनिया के भौतिक आकर्षणों से हटा कर अनन्त की साधना और साक्षात्कार की ओर प्रेरित करता है। उच्च रहस्यवादी संत अध्यात्म की चरम सीमा तक उठकर परम सत्य के दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। यह एक आकस्मिक, अद्‌भुत अनुभूति है। जिसका वर्णन नानक के कई गीतों में मिलता है। यह दिव्य आनन्द केवल उन्हीं संतों को प्राप्त होता है जिनकी दृष्टि व्यर्थ के तर्क-वितर्क से धूमिल नहीं हुई है।

स्वयं को जानो Know thyself

स्वयं को जानना ही परम सत्य, चेतनाओं की चेतना के साथ सान्निध्य पाना है। यह इस गीत में बहुत सुन्दर ढंग से बताया है—

सत्य के घोड़ों के रथ पर बैठ,
सच्चे ज्ञान का सौदा बेचने को निकलो।
सद्‌गुण लम्बी यात्रा में खर्चा-पानी,
आने वाले कल की चिन्ता छोड़ो.....
तुम प्रियतम की नगरी पहुंच जाओगे—
अनन्त सुख मिलेगा—परमानन्द
और—अन्दर ढूंढ़ो—प्रभु दिल में रहता है।

यह ज्ञान परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। परम चेतना जो अव्यक्त है और अवर्णनीय है। यह बाह्य रूप से भिन्न स्वतंत्र चेतनाओं में आध्यात्मिक एकता का दिव्य अनुभव है। यह अनुभूति केवल भावनात्मक नहीं है, न ही साधारण शिक्षा

या ज्ञान है। संवेदन, भावना तो केवल साधारण प्रकार से स्वयं को जानने की प्रक्रिया है। यह अनुभूति-वस्तुनिष्ठ या विचारधारा विशेष से बद्ध नहीं है, न ही उन पर आधारित है। यह तो 'स्व' से साक्षात्कार—परम चेतना से सीधा सम्पर्क है।

महान् यूरोपियन रहस्यवादी संत वरनार्ड ने इस स्थिति को इस प्रकार समझाया है—

'जैसे जल की एक बूंद मदिरा में मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है। केवल मदिरा का रंग एवं स्वाद ले लेती है। मानव को उस परम अकथ्य मदिरा में अपने आप को मिला देना चाहिए। अपने आप को प्रभु की इच्छा पर छोड़ दें।' इससे स्पष्ट होता है कि नानक परम चैतन्य को आकृति रहित, निरंकार क्यों समझते हैं। इस भावपूर्ण गीत के माध्यम से नानक व्यक्ति और विचार, आकार और निरंकार की एकता को समझाते हैं—

वह स्वयं आनन्द है, स्वयं ही आनन्द लेने वाला है
वह स्वयं ही वस्त्र, स्वयं ही शय्या, स्वयं ही प्रियतम व प्रेमी
प्रियतमा, प्रसन्नमुद्रा, क्रीड़ारत है
वह स्वयं ही हंस और स्वयं ही सरोवर है
तुम ही जल कमल तुम्हीं तो सुन्दर पुष्प हो
तुम स्वयं को देख कर स्वयं ही प्रसन्न हो।

रहस्यवाद की भाषा—मैं समझता हूं कि निरंकार मानवीय भावनाओं से अप्रभावित सत्ता के उपासक नानक एक भक्तिमार्ग के संत नानक से काफी भिन्न हैं। उनके गीतों से ईश्वर के प्रति प्रेम साफ झलकता है। लेकिन केवल इस पक्ष को ही देखने से हम रहस्यवाद के सूक्ष्म तत्त्वों को भूल सकते हैं। रहस्यवादी का अलौकिक अनुभव तो अवर्णनीय है। भाषा में बद्ध नहीं किया जा सकता है। यह तो केवल वैयक्तिक अनुभूति है। इसलिए रहस्यवादी की भाषा कुछ विरोधाभासी, अव्यक्त, धूमिल-सी होती है। नानक समझते थे कि इस दिव्य, अवर्णनीय अनुभूति को शब्दों में बांधना कठिन होता है।

फिर भी जब नानक को कोई दिव्य अनुभूति होती तो उनके अंतर की ज्वाला, तूफान, ज्वालामुखी गीत बनकर फूट आता था। रहस्यवादी अपने परमानन्द को मुखरित करने के लिए प्रतीकों का सहारा नहीं खोजता। प्रेम के, बलिदान के, पूर्ण समर्पण के प्रतीक।

आत्मा की परम सत्ता के साथ दिव्य अनुभूति की तीव्र इच्छा इन शब्दों में साकार हो उठती है—

आप अंधेरी रात में दुस्साहसी हो। मैं लम्बी रात्रि प्रियतम के बिना कैसे बिता पाऊंगा।

प्रेयसी का यौवन, जीवन पुष्प प्रियतम को मिले बिना साक्षात्कार किए बिना व्यर्थ ही नष्ट हो जाएगा।

नानक भक्त और भगवान्, प्रेमी और प्रियतम की एकात्मता में विश्वास रखते थे। वह भावना इन शब्दों में झलकती है—

प्रभु जी! आप सर्वज्ञ हैं, सर्वविद्यमान, सर्वशक्तिमान सागर हैं।
मैं एक क्षुद्र बूँद कैसे तुम्हें जान सकता हूं।
सब जगह आप को ही देखता हूं।
सागर से पृथक् होकर मैं बूँद तो खो ही जाऊँगा।

कवित्व का उत्कर्ष—यद्यपि नानक का अध्यात्म दर्शन, निरंकार, सर्वेश्वर, सर्वविद्यमान (जिसका कोई रूप, नाम नहीं है) पर आधारित था। उनकी भाषा से भावावेश नहीं झलकता। वे अनेक रूपों में विद्यमान परम सत्ता में विश्वास रखते थे। किन्तु वे इन्द्रियजनित विश्व और भावनाओं के प्रति अनभिज्ञ या शुष्क नहीं थे। वे धार्मिक संतों की वाणी के साथ-साथ विश्व के अनेक रूपों और दृष्टांतों से भी ज्ञान अर्जित करते थे। ग्रीष्म ऋतु की तपिश, शीत की ठंडक, जीवन के सुख-दुःख, उनके गांव के लोग, हजारों भक्तगण जो उनके दर्शन करने और आशीर्वाद पाने आते थे—वे सबमें प्रभु का दर्शन पाते थे। प्रकृति से उनका सान्निध्य-तारतम्य इस गीत से झलकता है—

सूर्य और चन्द्रमा के दीपक तुम्हारी आरती उतारे
आकाश तुम्हारी आरती का थाल
सारे ब्रह्माण्ड के चमकते सितारे इस थाल में गढ़े हैं।
चन्दन के वृक्षों की सुगन्धि तुम्हारी अगरबत्ती है।
पवन तुम्हारा शीतल पंखा—वन-उपवन सब फूल
ओ दिव्य प्रकाश के अधिष्ठाता—
यह कैसी अद्‌भुत आरती है—मेरे जन्म मरण के संकटहर्ता।

अति उत्तम भावनाएं, उत्कृष्ट गीत, जो विश्व के बहुत कम रहस्यवादी संतों के हृदय से प्रस्फुटित हुए हैं।

बगदाद में गुरु नानक द्वारा सांस्कृतिक दिग्विजय

गुरु नानकदेवजी उसी सूर्यवंशी क्षत्रियों के वंश में प्रकट हुए थे जिसमें हरिश्चन्द्र, दिलीप, महाराजा रघु तथा भगवान् श्री रामचन्द्र प्रकट हुए थे। जिस प्रकार महाराजा रघु ने अपने पराक्रम से एक महान् दिग्विजय की। उसी प्रकार गुरु नानकदेवजी ने अपने ज्ञान एवं भक्ति के अमृत से चारों दिशाओं में विजय प्राप्त की। अपनी चार उदासियों (यात्राओं) में उन्होंने एशिया के अनेक देशों में दिग्विजय-यात्रा की। उत्तर में वह तिब्बत, सिक्यांग, ताशकंद, खोकंद, कैलास मानसरोवर तक गए। दक्षिण में वह श्रीलंका तक गए। पूर्व में वह रंगून, हांगकांग, चीन, जापान तक गए। पश्चिम में वह अदन, सना, यमन, मक्का, जद्दा, मदीना, जार्डन, दमिश्क, सीरिया, इराक, ईरान, ख्वारिज्म, बुखारा, समरकंद, काबुल इत्यादि में हरिनाम रसामृत बांटते रहे।

बगदाद (इराक की राजधानी) में गुरु नानकदेव का 817 हिजरी का स्मारक लेखक ने देखा है। जिस पर पुरानी तुर्की मिश्रित अरबी भाषा में एक शिलालेख इस प्रकार है—

कोरद मुराद एलदी,
हजरत रबे मजीद,
बाबा नानक फकीर औलिया,
कि इमारत जदीद।
यलयदा मिला दायद,
व बकल्दी कि तारीखन,
यायदी सवाबे इजराईल,
अब मुरीदे सईद।। (सन् 816)

शिलालेख का भावार्थ इस प्रकार है—

इराक के राजकुमार मुराद ने सन् 817 हिजरी में हजरत रबे मजीद (पवित्र महान् प्रभु) बाबा नानक फकीर ओलिया (सर्वज्ञानी) की उस पुरानी इमारत को

(जहां गुरु नानक ने राजकुमार बहलोल को उपदेश दिया था) स्वयं नया बनवा दिया ताकि इतिहास की याद बनी रहे तथा गुरु नानक के विशेष शिष्य को ईश्वरीय पुण्य लाभ हो सके।

स्वामी आनंदाचार्य (जो नार्वे में बस गए थे) ने भी अपनी पुस्तक Snow Birds (हिम कपोत) में लिखा है कि उन्होंने बगदाद के तनिक बाहर सन् 812 हिजरी का एक शिलालेख अरबी भाषा में देखा। जिसका हिन्दी पद्यानुवाद मैंने इस प्रकार किया है—

इसी स्थल पुनीत पर हिन्दू गुरु नानक ने,
उद्बोधन किया, शिष्य फकीर बहलोल को,
विगत षष्ट वर्षों में जब से गुरु नानक जी,
ईरान को छोड़ निज देश को पधारे हैं।
बहलोल की आत्मा गुरुवाणी पर लीन है
जैसे भ्रमर उषा में खिले मधु पाटल पर
मधुर मधु संचय में रहता तल्लीन है
जैसे जीवन जल हेतु व्यग्र कोई मीन है,
बहलोल की आत्मा गुरुवाणी पर लीन है।।

बगदाद में गुरु नानकदेव की सहज स्मृति को पुष्पांजलि चढ़ाते हुए नार्वे में बसे हुए भारतीय संन्यासी स्वामी आनंदाचार्य ने जो काव्योद्गार प्रकट किए, उस आंग्ल कविता का स्वरचित हिन्दी पद्यानुवाद गाकर मेरा रोम-रोम गुरु नानकदेव के प्रति कृतज्ञता के भावों से पुलकायमान हो उठता है—

इसी शिलाखण्ड पर बैठ आप गुरुवर ने
भ्रातृ प्रेम तथा पावन ज्योति संदेश दिया
हे गुरु नानक! हे भारत के दिव्य दूत,
ज्योति पुरुषों के ताज, हे सन्त शिरोमणि,
सप्त सिन्धु उद्गम से कौन दिव्य गीत लाए
ईरान के जनगण की आत्मा भी धन्य हुई।
हिमालय की शांत, एकांत वन गुफाओं से
कौन दिव्य शांति का पुण्य संदेश लाए,
बगदाद के द्राक्षा तथा पाटल निकुंजों में
बद्रीनाथ के हिम धवल पुण्यमय शिखरों से
विश्व पालनकारी कौन ज्योति लाए थे तुम

जिससे आपके ईरानवासी शिष्यवर,
बहलोल के हृदय में प्रकाश चमचमाया था।
इसी स्थल पुनीत पर हिन्दू गुरु नानक ने
उद्‌बोधन किया शिष्य फकीर बहलोल को
विगत षष्ट वर्षों में जब से गुरु नानक जी
ईरान को छोड़ निज देश को पधारे हैं।
बहलोल की आत्मा गुरुवाणी पर लीन है।
जैसे भ्रमर उषा में खिले मधु-पाटल पर
मधुर मधु संचय में रहता तल्लीन है।
अंकित वर्ष—812 हिजरी

गुरु नानक की यात्रा का वर्ष : 812-60-852 हिजरी : (1520 सन्)

Swami Anandacharya, now said to be settled in Norway, in his work, entitled 'Snow Birds' records that, during his travels, he found an inscription, dated the year 812 Hejri, in the outskirts of Baghdad, in the Arabic Language which translated, read this :

"Here spoke the Hindu Guru Nanak to Fakir Bahlol, and, for these sixty winters, since the Guru left Iran, the soul of Bahlol has rested on Master's word, like a bee poised on a dawn—lit honey-rose."

-Divine Master P. 153

(Bahlol= Sajjadanashin of Bahlol)

मुझे वास्तविक शिकायत यह है कि राष्ट्रवादी मुसलमानों के प्रति ना केवल कांग्रेस अपितु महात्मा गांधी भी उदासीन रहे। उन्होंने जिन्ना एवं उनके साम्प्रदायिक अनुयायिओं को ही महत्त्व दिया। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि उन्होंने हमारा समर्थन किया होता तो हम जिन्ना की हर बात का खण्डन कर देते और विभाजनकारी आन्दोलन के आरम्भ काल में ही पर्याप्त संख्या में मुसलमानों को राष्ट्रवादी बना देते।

—न्यायमूर्ति मोहम्मद करीम छागला

गुरु नानकदेव बगदाद में

बगदाद में अट्ठासी साल तक खिलाफत टिकी। इस कारण मुसलमान के हृदय में बगदाद के लिए एक विशेष प्रकार का आदर है। उस काल में बगदाद इस्लामी शरा (विधान) का प्रसिद्ध केन्द्र था।

गुरु नानकदेव जी बगदाद पहुँचे और उन्होंने शहर के बाहर एक कब्रिस्तान में डेरे लगा दिए। दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त में उन्होंने ईश्वर की अनन्तता एवं महत्ता के गीत गाने आरंभ कर दिए। भाई मरदाना उनके साथ अपनी मस्ती में रबाब बजाए जा रहा था।

इस्लाम के अनुसार बगदाद में संगीत पर प्रतिबंध था। गुरु नानकदेव जी के संगीत के निम्नलिखित भाव थे—

पातालां पाताल लख आगासां आगास।
ओड़क-ओड़क भाल थके वेद कहन इक बात।
सहस अठारह कहन कतेबा असलू इक धात।
लेखा होय तां लिखिये लेखे होय विनाश।
नानक बड़ा आखिये आपे जानै आप।।

(जपुजी, गुरुग्रंथ, अंक 5)

'लाखों आकाश और लाखों पाताल हैं। अनेकों मनुष्य उन्हें खोज-खोज कर थक गए हैं। किन्तु, किसी ने उनका अन्त नहीं पाया। उनका अन्त कोई कैसे पा सकता है। यह तो अनन्त है और इसका सही ज्ञान उस सर्वशक्तिमान परमात्मा को ही है।

लोगों ने कब्रिस्तान पहुँच कर गुरु नानकदेव से नमाज पढ़ने को कहा। गुरु नानकदेव जी ने कहा कि खुदा का कोई एक पैगम्बर या रसूल नहीं है। लाख आकाश और लाख पाताल सुन कर बगदादवासी अत्यन्त क्रुद्ध हो गए। खलीफा ने नानकदेव एवं मरदाना को संगसार कर देने की आज्ञा दी।

कुछ देर बाद खलीफा भी गुरु नानकदेव के पास पहुँचा। उससे ज्ञान चर्चा करते हुए गुरु जी ने समझाया कि हमारी बुद्धि सीमित है। अपनी बुद्धि के अनुसार

हम आकाश, पाताल और ईश्वर की व्याख्या करते हैं। हमें अपने विचारों के विरुद्ध कही हुई बात अखरती है। इस प्रकार हम ज्ञान और बुद्धि को सीमाओं में बांध देते हैं। ईश्वर तो अनन्त और असीमित है। उनकी सीमाओं को बांध देना उनकी अनन्तता को चुनौती देना है।

जहां तक राग और संगीत का प्रश्न है उनके सही अर्थ और प्रयोग न समझने के कारण ही उन्हें हराम कहा जाता रहा है। जिस राग में खुदा की सिफ्त की जाए वह राग हराम कैसे हो सकता है। जिस संगीत से प्रभु भक्ति की प्रेरणा मिले उस संगीत का निषेध करना ईश्वर भक्ति से मुख मोड़ना है। सभी राग और सभी गीत मनुष्य की हीन प्रवृत्तियों को नहीं उभारते। संगीत का यदि ईश्वरभक्ति में व्यवहार किया जाए तो साधारण मनुष्य भी अपने को ईश्वर के समीप ले जा सकता है। राग आत्मा का भोजन है। यदि राग में ईश्वर और ईश्वर की महत्ता का सम्मिश्रण कर दिया जाए तो राग पवित्र और आराध्य हो जाता है।

गुरु मुराद ऐलदी, हजरत रबुल मजीद,
बाबा नानक फकीर औलिया नागह इमारत जदीद,
इमदाद एलब कलदी कि तारीखमह या मदी,
सवाब अजे राईदह अनी मुरीदे सईय।। (927 सन् हिजरी)

हजरत रबुल मजीद बाबा नानक—गुरु नानकदेव जी कुछ काल तक बगदाद में ठहरे। वहां के कई पीर-फकीर इनसे प्रभावित हुए। इनमें से एक पीर दस्तगीर थे। जो इस्लाम के ख्यातिप्राप्त पीर अब्दुल कादिर सेलानी के शाहजादा नशीन थे। उनके अतिरिक्त ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिस कब्रिस्तान में गुरु नानकदेव जी ठहरे थे, वहीं पर पीर बहलोल का आश्रम था। पीर बहलोल पर गुरु नानकदेवजी का स्थायी प्रभाव पड़ा। उसने सत्य धर्म की महत्ता को स्वीकार किया और अपनाया। पीर बहलोल का आश्रम वर्तमान बगदाद समारा रेलवे लाइन के निकट शहर से बाहर कब्रिस्तान में था। अभी वहां कुछ कब्रों के मध्य एक चहारदीवारी है। जिसमें तीन खजूर के पेड़ हैं। इसके उत्तरी कोने पर दो कमरे हैं। इनमें से एक कमरे में पीर बहलोल दाना की कब्र है तथा दूसरे कमरे में एक पीठ (प्लेटफॉर्म) के निकट जो दीवार है उस पर अरबी व तुरकी भाषा में एक शिलालेख लगा है। इस शिलालेख के उर्दू वर्णमाला के अक्षरों में प्रो. तेजासिंह एवं गंगा सिंह ने अपने सिक्ख इतिहास (अंग्रेजी के पन्ना 12 पर दिया है) जिसे हम देवनागरी में इस प्रकार लिख सकते हैं—

गुरु मुराद ऐलदी हजरत रबुल मजीद, बाबा नानक फकीर
नागह इमारत जदीदा इमदाद एदब कलदी की

तारीखजह याग दी, सवाब अजराईदह अर्जी मुरीद
सईदह सन् हिजरी।।

इस शिलालेख के अर्थ अनेक विद्वानों ने अनेक ढंग से किए हैं। परन्तु जो अनुवाद अभी सर्वमान्य समझा जा रहा है वह प्रो. तेजासिंह एवं डा. गंगासिंह का है जो इस प्रकार है—'यह भवन दोबारा सात संतों की सहायता से गुरु समान हजरत रबुल मजीद बाबा नानक फकीर ओलिया की याद में बनाया गया। जिससे दया और शांति का झरना बह निकला। सन् 827 हिजरी।'

सन् 827 हिजरी ईस्वी सन् 1520-21 में पड़ता है। हजरत रबुल मजीद बाबा नानक फकीर का अर्थ होता है बाबा नानक जो अकाल पुरुष परमात्मा के समान हैं। इस्लाम में किसी मनुष्य को अकाल-पुरुष (परमात्मा) कहना या किसी की भगवान् के साथ तुलना करना कुफ्र गिना जाता है। गुरु नानकदेव जी के प्रति उपयोग किए गए इन शब्दों से ही हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि बगदाद में गुरु नानकदेव जी को कितनी मान्यता मिली।

विश्वास किया जाता है कि गुरु नानक जी के बगदाद प्रवास के समय ही वहां संगीत पर से प्रतिबंध हटा लिया गया। तत्कालीन खलीफा ने गुरु नानकदेव जी से प्रभावित होकर उन्हें एक चोला भेंट किया। जिस पर अरबी भाषा में कुरान शरीफ की आयतें लिखी गई हैं। यह चोला अभी डेहरा बाबा नानक में सुरक्षित है। और पर्व-त्योहारों पर इसके दर्शन यात्रियों को करवाए जाते हैं।

पिछले 40 वर्ष का इतिहास इस बात का गवाह है कि विभाजन ने किसी को फायदा नहीं पहुंचाया। अगर आज भारत अपने मूलरूप में अखण्डित होता तो ना केवल वह दुनिया की सबसे बड़ी ताकत बन सकता था, बल्कि दुनिया में अमन-चैन कायम करने में उसकी खास भूमिका होती।

—जीये सिन्ध के प्रणेता, गुलाम मुरतजा सैयद

पंजाब सरकार द्वारा नानक निन्दक इतिहासकारों का सम्मान

(हरवंशलाल ओबराय, अध्यक्ष दर्शन एवं भारतीय संस्कृति विभाग, डीएवी कालेज, जालंधर)

'पंजाब का इतिहास' नामक पुस्तक पंजाब विश्वविद्यालय के इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है। इस पुस्तक के चार लेखक पंजाब के विख्यात विद्वान् हैं—डॉ. हरिराम गुप्ता, डॉ. आर.आर. शेठ्ठी, डॉ. किरपाल सिंह नारंग और प्रो. लालसिंह ज्ञानी। सुना गया है कि पंजाब सरकार ने इन लेखकों को सम्मानार्थ पाँच हजार रुपये प्रति लेखक दिया है और इस पुस्तक लेखन पर उन्हें बहुत बधाई और साधुवाद भी दिया है। इस पुस्तक के पृष्ठ 54 पर गुरु नानकदेव जी के बारे में कुछ विचित्र-सा लिखा है।

'जब गुरु नानकदेव तालुम्बा से कुरुक्षेत्र पहुँचे उस समय कुम्भ का महापर्व था। बहुत सारे भक्तगण गुरु नानकदेव के दर्शन हेतु वहां आए थे। एक भक्त ने अपना प्यारा और पालतू हरिण नानकदेव जी को भेंट किया। गुरु जी ने उस हरिण को कटवाया और उसका मांस पकाकर सब भक्तों में बांट दिया। यह देखकर कुछ ब्राह्मण भक्त आश्चर्यचकित और हक्के-बक्के रह गए। गुरु जी ने समझाया कि मांस खाने या मद्यपान में कुछ भी पवित्र, अपवित्र या भला-बुरा नहीं है। मनुष्य को अपने मन की शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए न कि भोजन पर।'

मैंने किसी भी साहित्य या नानकदेव की जीवनगाथा में इस प्रकार नहीं पढ़ा है। परम पवित्र 'गुरुग्रंथ साहब' में गुरु नानकदेव ने कहा है—

जो रत लगे कपड़ा, जामा होए पलीत।
सो रत पीवे मानसां कैसे निर्मल चीत्त।।

प्रसिद्ध विद्वान् श्री वियोगी हरि ने अपनी पुस्तक 'संत वाणी' में गुरु नानकदेव के मुख्य उपदेश इस प्रकार लिखे हैं—

क्या बकरी, क्या गाय और क्या अपना जाया।
सब का लहू एक है साहब फरमाया।।

पीर दिगम्बर औलिया सब मरने आया।
नानक जीव न मारिये भरने को काया।।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के मत के अनुसार गुरु नानकदेव अहिंसा के महान् प्रचारक और समर्थक थे जिन्होंने सदैव मांसाहार का विरोध किया था। गांधीजी ने गुरु गोविन्द सिंह के विषय में (दिसम्बर, 1940) ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर को इस प्रकार लिखा, 'गुरु जी सदैव अहिंसा का उपदेश देते थे। वे वीरता और तलवार का उपयोग केवल तभी करते थे जब पाप और दुष्टता मिटाने के लिए इसकी आवश्यकता होती थी।' यही गुरु गोविन्द सिंह की वीरता और तलवार का सही स्वरूप था। किन्तु, प्रिंसिपल तेजासिंह इस विचार को सिक्ख गुरुओं के विषय में भ्रान्तिपूर्ण समझते हैं।

गुरु नानकदेव एक महान् संत थे जिन्होंने सभी प्राणियों में एकता का दर्शन किया। वे सभी जीवों को समान मानते थे। किसी जीव की हिंसा का उपदेश नहीं देते थे। यह कहना कि नानकदेव निरीह जीवों की हत्या करवाते थे, पूर्णतया असत्य और भ्रान्तिपूर्ण है। यदि इन विद्वान् लेखकों का 'पंजाब का इतिहास' पुस्तक में लिखा वृत्तांत सत्य है तो यह गुरु नानकदेव की निष्ठा और भक्ति पर काला धब्बा और कलंक है क्योंकि बाबा नानकदेव अपनी वाणी में सदा ही अहिंसा का उपदेश देते थे। गुरु अमरदास ने भी अपनी वाणी में गुरु नानकदेव की अहिंसा का जोरदार समर्थन किया है।

'आप मरे, और न मारे'

क्या कुछ सिक्ख धर्म के प्रबुद्ध इतिहासकार इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करेंगे?

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।।

हितोपदेश सन्धि, 87

रागी पुरुषों को वन में भी दोष उत्पन्न होता है, घर में भी पांच इन्द्रियों का दमन तप है। जो पुरुष निन्दा रहित कार्य करता है, उस वीतराग पुरुष का घर ही तपोवन है।

गोस्वामी तुलसीदास

हम जिन महापुरुष की जयन्ती आज मना रहे हैं उनका परिचय आप सबको है—गोस्वामी तुलसीदास जी। उनकी महिमा में एक-दो श्लोक सुनाता हूं जिसका भाव यह है—भक्ति में साक्षात् उद्धव के समान हैं। भक्ति की पराकाष्ठा है, उद्धव में। जो भगवान् कृष्णचन्द्र का इतना परम भक्त हुआ कि व्रज की भूमि में गोपों एवं गोपाङ्गनाओं के चरण से स्पर्श की हुई भूमि के कण-कण पर लोट-लोट कर उस धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है। ऐसा परम भक्त। गोस्वामी तुलसीदासजी भक्ति में उद्धव जैसे हैं। योग में साक्षात् दत्तात्रेय हैं। ज्ञान में साक्षात् शुकदेव हैं। दत्तात्रेय कौन हैं? भगवान श्रीरामचन्द्र (राघवेन्द्र, मर्यादा पुरुषोत्तम) वनवास का प्रथम पड़ाव चित्रकूट रख चुके थे। चित्रकूट एक विचित्र कूट है। कूट का अर्थ पर्वत है। और चित्र के समान है, वह विचित्र है। हजारों वर्षों तक वह उत्तरापथ-दक्षिणापथ की सीमा रहा है। चित्रकूट में भगवान् ने प्रथम पड़ाव किया। वहीं से वनवास शुरू हुआ। उसके ऊपर का सारा क्षेत्र अवध राज्य में आता था। अवध के राज्य के बाहर का स्थान है चित्रकूट। उस चित्रकूट में एक स्थान आज भी प्रसिद्ध है, अनुसूयाजी। वहां पर अत्रि मुनि का स्थान है। अत्रि मुनि कौन? जिन्होंने तीन को एक रूप में देखा। जिनको तीनों मिलकर एक दीखते हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। जिनके लिए तीन नहीं बचे। तीनों मिलकर एक हो गए। उनकी बड़ी ही पतिपरायणा धर्मपत्नी। वह देवी है अनुसूया। जिसने जीवन में किसी से सूया नहीं किया। जिसने किसी से जलन नहीं रखी। ऐसी स्त्री जिसने सीता को भी पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया। उस अनुसूया के घर में तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसके पातिव्रत धर्म की परीक्षा लेने के लिए आते हैं। उन्होंने तीनों को बालक रूप बनाकर घर में डाल दिया और तीनों देव बच्चे बनकर बैठे हैं माता अनुसूया के सामने। उन तीनों के अंश से उनके एक पुत्र हुआ जिनका नाम हुआ दत्त। दत्त तीनों की कृपा से मिला हुआ होने के कारण दत्त। दत्त माने दिया हुआ। और अत्रि का पुत्र होने से दत्तात्रेय। अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय जिसमें तीनों समन्वित हो गए। तीनों को शिशु रूप करके अनुसूया ने बच्चा बना लिया। तीनों की शक्तियां उमा, लक्ष्मी और ब्रह्माणी आ करके गिड़गिड़ाने लगी अनुसूया के पास कि हमारे तीनों देवताओं को आपने अपने

यहां बंदी बना लिया है। हमारे देवता कहां गए? तीनों को बच्चा बना लिया। इन तीनों की मुक्ति का उपाय? ये तीनों मेरे बच्चे बने और मैंने तीनों को अपना बच्चा बना लिया। भगवान् को जिसने बच्चा बना लिया ऐसी देवी है अनुसूया। उसके पुत्र दत्तात्रेय योग के महान् आचार्य। गोस्वामी तुलसीदासजी भक्ति में साक्षात् उद्धव के समान, योग में दत्तात्रेय के समान, ज्ञान में साक्षात् शुकदेव के समान। शुकदेव कौन? भगवान् वेदव्यास के बाल ब्रह्मज्ञानी पुत्र। यह उक्ति, 'व्यासोच्छिष्ट जगत् त्रयम्', तीनों जगत् का जितना ज्ञान है वह तो वेदव्यासजी की जूठन मात्र है। क्यों? हमारे पास क्या है जी! वैदिक वाङ्मय। वेद तो दीखने में भिन्न-भिन्न शाखाओं में फैले हुए थे। पितृ कुल चलता है, पिता की संतानों से और गुरुकुल चलता है, गुरुओं के शिष्यों से। शिष्य ही गुरु की संतान। इसलिए परमहंस रामकृष्णदेव विवेकानन्द को बेटा-बेटा कहते हैं। हर गुरु शिष्य को बेटा मानता है। क्योंकि पिता पुत्र को वीर्य का बीज देता है और गुरु ने तो अपना ज्ञान लुटा दिया है। सारा ज्ञान दे देता है। ज्ञान का बीज नहीं ज्ञान ही दे देता है। रामकृष्ण परमहंसदेव ने शक्तिपात के द्वारा विवेकानन्द को सारा ज्ञान दे दिया। हे नरेन्द्र! तू अब ज्ञानवान, धनवान हो गया। अब मैं गरीब, भिखारी हो गया क्योंकि मैंने अपना सब कुछ तुझे दे दिया है। नरेन्द्र कहते हैं मेरे भीतर अद्भुत प्रकाश आ गया। हे भगवान्! मैं संसार में किसी से पराजित नहीं होऊं। कोई भूमण्डल में मुझे पराजित करने वाला न हो सिवाय अपने पुत्र से या शिष्य से। पुत्र से पराजित होने का अर्थ है, सोचूंगा अगली पीढ़ी अधिक योग्य बनेगी। शिष्य से पराजित होने का अर्थ विद्या का प्रकाश हो रहा है। अगली पीढ़ी अधिक ज्ञानवान बन रही है। इस प्रकार जाति प्रगति करे पर आज शिष्य कहते हैं—मुझे तो चार प्रश्न बता दीजिये। जो शिष्य गुरु का सौवां हिस्सा भी ग्रहण न करे, प्रशिष्य शिष्य के ज्ञान का सौवां हिस्सा भी ग्रहण न करे तो वह जाति कितने वेग से पतन के गर्त की ओर जा रही है। इसलिए गुरु शिष्य से पराजित होने में गौरव मानता है। जिसको हमने पढ़ाया है, मुझसे योग्य हो गया। यह मेरा गौरव है। इसलिए गुरु का गुरुकुल उसके शिष्यों से चलता है। पितृ कुल उसके पुत्रों से चलता है। गुरुकुलों में जो-जो शिष्य गुरुकुल में आते थे वहां पर उनको वेदमंत्र पढ़ाते थे। वेदमंत्रों की शिक्षा भिन्न-भिन्न शाखाओं में चल रही थी। वेद की अनेक शाखाएँ हैं। वेदव्यासजी ने देखा आगे घोर कलिकाल आ रहा है। तब तक वेद श्रुति था। भारत के बच्चे श्रुति का अर्थ सुनकर एक लाख मंत्रों को खोपड़ी में समा लेने वाले होते थे इसलिए हजारों वर्षों तक वेद श्रुति रहा। सुनकर प्राप्त किया हुआ ज्ञान वेद। उसने अगली पीढ़ी को सुनाया। फिर उसने अगली पीढ़ी को सुनाया। इस तरह से वेद ज्ञान, बिना लिखित रूप से चलता रहा। वेदव्यासजी ने देखा आगे घोर कलिकाल आ रहा है। कलिकाल में लोगों की बुद्धि छोटी हो जाएगी। उनकी मेधा शक्ति भी कम हो जाएगी। उनकी धारणा शक्ति भी कम हो जाएगी। उनकी स्मृति

शक्ति भी कुण्ठित हो जाएगी। अब इतने ज्ञान को एक खोपड़ी में समाने की शक्ति कुण्ठित हो जाएगी इसलिए इसका सम्पादन करो, नहीं तो वेद ज्ञान नष्ट हो जाएगा। इसलिए भिन्न-भिन्न शाखाओं में फैले हुए वेद ज्ञान को एकत्र करके सम्पादित किया। जो उनमें से ऋचायें थी अर्थात् काव्यमय स्तुतियां थी, उनको सम्पादन कर नाम दिया ऋग्वेद। वह सबसे बड़ा वेद तथा जो उसमें यजुस गद्य में और यज्ञ से सम्बन्धित मंत्र थे उनको नाम दिया यजुर्वेद। जो उसमें से गीत थे, गीत को संस्कृत में कहते हैं साम। साम यानी गीत। यही साम शब्द यूरोप की सभी भाषाओं में सांग हो गया। संस्कृत का साम शब्द ही यूरोप की सब भाषाओं में चला गया। जितने भी गाने योग्य मंत्र थे, गीत थे उनको सामवेद के नाम से सम्पादित किया और अन्य जो विषय रह गए उनका अथर्वा ऋषि ने बहुत कुछ सम्पादन किया था। उसमें पृथ्वी के, राष्ट्रीयता के, संगठन के, आयुर्वेद के, धनुर्वेद के यानी अनेक विषय बच गए उनको अथर्ववेद नाम देकर सम्पादन किया।

चार वेदों के रूप में वैदिक ज्ञान का सम्पादन करके उसको हमारे राष्ट्र को देने वाले वेदव्यासजी थे। वेदों का सम्पादन करके हमें दिया। इसलिए वेदों का व्यास करने के कारण उस कृष्णद्वैपायन को वेदव्यास की उपाधि मिली। फिर उन्होंने महान् ग्रंथ लिखा महाभारत। वह ग्रंथराज जो भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा विश्वकोश है, जो भारत में है वह सब कुछ महाभारत में मिलेगा। इसलिए भारतीय संस्कृति का कोई विषय छोड़ा ही नहीं उन्होंने। उसमें तो ऐसे महान् ग्रंथ, जिसको तराजू के एक पलड़े में रखें तो उसकी तुलना में इलियड, ओडीसी की 6-6 जिल्दें रखें तो भी हमारा महाभारत ओडीसी के छह गुणा भार से भी ज्यादा भारी है। इतना बड़ा महाकाव्य दुनिया में किसी के पास है नहीं। उस महाभारत के भीतर जो केन्द्र में भीष्म पर्व है, मानो 18 पंखुड़ियों वाला एक विशाल कमल है। उस अष्टादशदल कमल के मध्य में, केन्द्र में, नवें पर्व में, भीष्म पर्व में, कमल के बीचोबीच में एक मधुकोश होता है, जहां उसमें उसका सबसे सुगंधित मधु प्रतिष्ठित रहता है, सबसे अधिक सुगंधि जहां रहती है, मधु रहता है। इस तरह महाभारत की 18 पंखुड़ी वाले महान् कमल के केन्द्र में, बीचोबीच, भगवद्‌गीता रूपी अमृत को उन्होंने प्रतिष्ठित कर दिया।

यह वेद व्यासजी की देन है। अध्यात्म रामायण उनकी देन है। रामायण तो महर्षि वाल्मीकि ने लिखी। अध्यात्म रामायण वेदव्यासजी ने लिखी। वेदान्त दर्शन से ऊंचा कोई दर्शन ही नहीं है जिसकी किरणों से विवेकानन्द, रामतीर्थ चमकते हैं दुनिया में। शंकराचार्य चमकते हैं। यह वेदान्त दर्शन है। दुनिया में अद्‌भुत है। यह वेदान्त दर्शन वेदव्यासजी की देन है। भक्ति का सबसे महान् ग्रंथ श्रीमद्‌भागवत महापुराण, 18 पुराण किसने लिखे? वेदव्यासजी ने। व्यास स्मृति उनकी देन है।

क्या-क्या उन्होंने नहीं लिखा? क्या नहीं उन्होंने दिया है? वेदान्त सूत्र उन्होंने दिए। जितना उन्होंने दिया वह अतुलनीय है। जो कुछ देना था उन्होंने दे दिया। बाकी लोगों ने तो उनकी जूठन का प्रसाद बांटा है। इसलिए कहा, 'व्यासोच्छिष्ट जगत् त्रयम्।' तीनों जगत् का जितना ज्ञान है, वेदव्यासजी की जूठन मात्र है। इसलिए वेदव्यासजी को राष्ट्रगुरु के रूप में व्यास पूर्णिमा पर हम पूजते हैं। वेदव्यासजी के ब्रह्मज्ञानी पुत्र हुए शुकदेव जी। माता से नाल ही कटवाए बिना भाग लिये। वेदव्यासजी पीछे-पीछे दौड़े—बेटा-बेटा। शुकदेव कहते हैं, कि हजारों बार पिता हुआ तो, हजारों बार पुत्र, पत्नी हुआ। ये सम्बन्ध क्या गिनाते हैं? मैं तो शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अजर-अमर आत्मा हूं। हजारों बार तुम मेरे बेटे बने और हजारों बार मैं तुम्हारा बेटा बना। ये सम्बन्ध क्या गिनाते हो। वह भागते हुए जा रहा है। वेदव्यास पुकार रहे हैं, पुत्र-पुत्र। वृक्ष भी प्रतिध्वनि कर रहे हैं, पुत्र-पुत्र। पर ब्रह्मज्ञानी बेटा अविचलित है। सामने सरोवर में रमणियां नहा रही थी। शुकदेव नंग धड़ंग भागे जा रहे हैं। रमणियों ने अपने शरीर को ढकने की भी चेष्टा नहीं की। वेदव्यास को देखकर रमणियों ने अपना शरीर ढक लिया। वेदव्यासजी ने देखा मेरा जवान लड़का गया तो शरीर ढका नहीं और मुझ बूढ़े आदमी को देखकर लज्जित हो गईं। क्या बात है? उन्होंने पूछा तो रमणियों ने कहा उसे संसार की हवा ही नहीं लगी। वह तो केवल ब्रह्म में स्थित है। उसे तो स्त्री-पुरुष के भेद का पता ही नहीं है। यह सुनकर वेदव्यासजी ने धरती पर लेट कर शुकदेवजी को प्रणाम किया। मैं तुझे क्या पुत्र कहूं, तुझे क्या शिक्षा दूं? तू तो मेरा भी गुरु है। शुकदेव ज्ञान की पराकाष्ठा हैं। इसलिए कहा—

सम्भक्त्या उद्धवो योगे दत्तो।
ज्ञाने शुकोऽभवत्।।

भक्ति में उद्धव, योग में दत्तात्रेय एवं ज्ञान में शुकदेव हैं।

विधि से, न्याय से, धर्म के विधान से दूसरे कात्यायन थे। कात्यायन ऋषि ने क्या चमत्कार किया? मनु स्मृति मनु ने, पराशर स्मृति पराशर ने लिखी। सभी स्मृतियां महान् हैं, लेकिन कात्यायन ऋषि ने मर्यादा पर जो बल दिया है, वह अतुलनीय है, बेजोड़ है। तो मर्यादा का पालन करने में, निर्वाह करने में तुलसीदासजी विश्व के सभी कवियों में शिरोमणि हैं। इनसे बढ़कर मर्यादा का पालन करने वाले स्वयं राघवेन्द्र (मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी) हैं। मर्यादा के विश्वकवि तुलसीदास, मर्यादा पालन में साक्षात् कात्यायन ऋषि के समान हैं। 'विधौ कात्यायन' कान्ति में, प्रकाश में चन्द्रमा के समान है। चलते-फिरते सरोवर के समान, विश्व मंगल के लिए चन्द्रिका के समान प्रकाश लुटाता है। चन्द्रिका, जो अपनी चांदनी, अपना अमृत लुटाता है विश्व मंगल के लिए। विश्व मंगल के

लिए अपनी चन्द्रिका लुटाता है। चन्द्रमा के समान ऐसे तुलसीदासजी के चरणों में हम कोटिशः वंदना करते हैं। प्रणाम करते हैं।

इनके समकालीन महान् संतकवि हुए भक्त शिरोमणि सूरदास जी। सूरदासजी कृष्ण भक्ति के महाकवि, तुलसीदासजी राम भक्ति के महाकवि। तुलसीदासजी एक बार ब्रज मण्डल में गए और सूरदासजी से मिले। सारे ब्रज मण्डल में भगवान् कृष्ण के ही मन्दिर हैं। एक मन्दिर रघुनाथजी का है। यह मन्दिर इन्हीं की कृपा से बना। इन्होंने कहा—

क्या कहूँ छवि आप की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, जब धनुष बाण ल्यो हाथ।।

प्रभु का एक ही रूप अनेक रूपों में विराजता है। मैं तो राम का भक्त हूं। मेरे इष्ट तो राम हैं इसलिए आप धनुष बाण हाथ में ले लो तो मेरा मस्तक तुरन्त आपके चरणों में झुक जाए। उस समय राष्ट्र को आवश्यकता बंशी की नहीं, राष्ट्र को आवश्यकता थी धनुष बाण की। धनुर्धारी राम, असुरनिकन्दन राम और दुष्ट दलन करने वाले महान् बजरंग बली, गदाधारी की आवश्यकता थी। अतः भगवान् को भी युग की आवश्यकता के अनुसार प्रकट होना पड़ेगा।

प्रायः लोग इस दोहे से यह भाव लेते हैं कि तुलसीदासजी राम के ही अनन्य भक्त थे। वे कृष्ण के सामने मस्तक नहीं झुका सकते थे। तुलसीदासजी ने कहा कि जब आप धनुष बाण हाथ में लेंगे (श्रीराम का रूप धारण करेंगे) तभी मेरा मस्तक झुकेगा।

दोहे का यह अर्थ लगाना उचित नहीं। तुलसीदासजी सब देवी-देवताओं के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखते थे। वे ऐसे संकीर्ण विचारों के नहीं थे कि अपने आराध्य देव के अतिरिक्त किसी अन्य देव के सामने नतमस्तक न हों। वे बड़े आदर देने वाले और समन्वयवादी थे।

प्रमाण स्वरूप श्रीरामचरितमानस के कुछ आरम्भिक पृष्ठ पढ़ें तो पता चलता है कि उन्होंने ग्रंथ के आरम्भ में श्रीगणेश, श्रीशंकर-पार्वती, हनुमान जी, अपने गुरुदेव, ब्राह्मण समाज तथा सब संतों की वंदना की है।

तुलसीदासजी जानते थे कि श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों विष्णु भगवान् के ही अवतार थे। वे दोनों के प्रति पूज्य भाव रखते थे। इसलिए जहां उन्होंने श्रीराम का यश वर्णन करने के लिए श्रीरामचरितमानस लिखा वहीं श्रीकृष्ण का यश वर्णन करने तथा उनकी वंदना करने के लिए कृष्ण गीतावली जैसा ग्रंथ भी लिखा। इसलिए यह सोचना कि तुलसीदासजी का मस्तक केवल श्रीराम के सामने ही झुक सकता था, श्रीकृष्ण के सामने नहीं, उनके प्रति अन्याय होगा।

श्रीकृष्ण ने जीवनभर बांसुरी ही नहीं बजाई। किशोरावस्था तक मुरली बजाई और माखन चुराया। उसके बाद उन्होंने शस्त्र धारण करके उस समय के अनेक अत्याचारी, लोकपीड़क राजाओं से युद्ध किया और जनता को उनके आतंक से मुक्ति दिलाई। उन्होंने सुदर्शन चक्र, धनुष बाण तथा खड्ग धारण किया था। यह श्रीकृष्ण का लोकरक्षक और धर्मरक्षक रूप था।

यह आश्चर्य की बात है कि अधिकांश कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के मधुर रूप अर्थात् मुरली बजाने वाले, रास रचाने वाले रूप का ही विस्तार से वर्णन किया और उनके लोक-रक्षक, धर्मरक्षक, दुष्टविनाशक योद्धा रूप की उपेक्षा की। कवियों का यह कार्य युग की आवश्यकता के अनुरूप नहीं था। उस समय समाज पर अत्याचार हो रहे थे। धर्म संकट में था। ऐसे समय धनुर्धर रूप का लोकरक्षक रूप सामने रखने की आवश्यकता थी। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गोस्वामीजी ने राम का लोकरक्षक रूप रामचरितमानस में प्रस्तुत किया।

अत: दोहे का वास्तविक भाव यह है कि श्रीकृष्ण! मुरली बजाते हुए आप बड़े सुन्दर लगते हैं। परन्तु आज धनुष बाण धारण करने की आवश्यकता है। मेरा मस्तक तभी झुकेगा जब आप धनुष बाण हाथ में लेंगे, जैसा कि आप पहले कर चुके हैं।

उसके बाद सूरदासजी से मिलने गए और सूर-तुलसी का जो मिलन हुआ बड़ा अलौकिक मिलन हुआ। दोनों संतों ने एक-दूसरे को आलिंगन में बांधकर प्रेम से भिगो दिया। यह मिलन मानो राम भक्ति शाखा-कृष्ण भक्ति शाखा का मिलन, तो साक्षात् गंगा-यमुना का मिलन, मानो ब्रज भाषा-अवधी भाषा का मिलन, मानो राम और कृष्ण का ही मिलन था। उस अवसर पर महाकवि सूरदासजी ने गोस्वामी के अभिनन्दन में जो कुछ गाया वह सचमुच एक महान् की महान् के प्रति श्रद्धांजलि है—

धन्य भाग मम सन्त सिरोमणि
तव दर्शन तटि आयो।
बदन प्रसाद-सदन दृगभरि लखि
सुख सन्दोह समायो।।
धन्य भाग सन्त सिरोमणि....

हे सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी! मेरे धन्य भाग्य हैं। तव दर्शन तटि आयो। दर्शन देने के लिए आप आए। आप कह सकते हैं, सूरदासजी ने दर्शन कैसे किये? सूरदासजी कहते हैं 'बदन प्रसाद सदन' आपका शांति से भरा हुआ मुखारविंद मैंने आंखें भरकर देख लिया 'दृगभरि लखि'। जन्मान्ध सूरदासजी ने आंखें भरकर देख

लिया। यही चमत्कार है। जो अन्तर से साक्षात् भगवान् को देखते हैं उनके लिए संतों को देखना कौन कठिन कार्य है। उन्होंने निश्चय ही तुलसीदासजी को आंखें भरकर देख लिया। आदमी देखता कैसे है? मेरे शिष्य ने कहा मैंने 26 जनवरी की रांची में हुई परेड को देखा। कैसे देखा? तुम तो यहां पुरुलिया में मेरे साथ हो। मैंने स्वप्न में हूबहू परेड देखी। सचमुच की परेड देखी हूबहू देखी, ईमानदारी के साथ। मैंने कहा सच बताओ तुम बिस्तर पर थे या कहीं और? बिस्तर पर। आंख बंद थी या खुली थी। आंखें तो बंद थी। तो देखा किसने? देखने वाला और है। देखने वाला कोई और है। वो इन आँखों से अधिक देखता है। अधिक दूर की देखता है। इसलिए हर ऋषि यहीं बैठे त्रिकालदर्शी हो जाते हैं। तीनों काल को जान लेते हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान को जान लेते हैं। अभी योगी लोग तो बीती हुई बात को जानते हैं, आने वाली बात को, दीवार की परे की बात को भी जानते हैं। उनके लिए कौन कठिनाई की बात है। इसलिए जिनके अन्त:चक्षु खुल गए हैं, वह इन चक्षुओं की अपेक्षा बहुत दूर तक की देखता है। बहुत साफ-साफ देखता है। इसी को सूरदासजी कहते हैं 'वदन प्रसाद-सदन दृगभरि लखि' आपका शान्ति से भरा हुआ चेहरा मैंने आंखें भर कर देख लिया है। 'सुख सन्दोह समायो' मैं सुख सागर में समा गया।

हरी लीला गायों, जेहि सुनि

तनु पुलकित मानस धीर

हरि लीला गाने से शरीर पुलकित हो गया। मन को बड़ी शांति मिली।

सुधा समान वचन कहि पोषेउ

अमृत जैसे वचनों से आपने हृदय का पोषण किया।

सुमिरत सिय रघुवीर।।

श्री रघुवीर को स्मरण करके आपने प्रजा का अमृत वचनों से पोषण किया। अब तो सूरदासजी ने कलम तोड़ दी। कहते हैं—

श्री तुलसी सन्त समागम

अद्‌भुत अमल अनूप।

तुलसीदासजी जैसे संत का समागम बड़ा अद्‌भुत दर्शन है। अमल बड़ा ही निर्मल। अनूप, जिसकी उपमा ही नहीं हो सकती।

सूरदास जीवन फल पायो।

दरसन जुगल स्वरूप।।

आज जीवन का मुझे सबसे ऊंचा फल मिल गया है। जीवन का सर्वोच्च फल क्या है? मोक्ष है। आज मुझे मोक्ष प्राप्त हो गया है। दरसन जुगल स्वरूप भगवान्

श्रीरामचन्द्र एवं जगज्जननी माता सीता का दर्शन हो रहा है। यही सूरदासजी की लेखनी कह रही है तुलसीदासजी के यश में।

तुलसीदासजी के एक चचेरे भाई थे। नाम था नन्ददास। बड़े कृष्ण भक्त थे जिनको एम.ए. के छात्र पाठ्यक्रम में पढ़ते हैं। वे कहते हैं—

श्रीमद्तुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद वन्दे।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाई अनन्दे।।

रामचरित जिन कीन्ह ताप त्रय कलिमल हारी।
करि पोथी पर सही आदरेऊ आप पुरारी।।

राखी जिन की टेक मदनमोहन धनुधारी।
वाल्मीकि अवतार कहत जेहि सन्त प्रचारी।।

नन्ददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई।।

श्रीमद्तुलसीदासजी चचेरे भाई होने से मेरे भ्राता हैं, ज्ञान में ऊंचे होने से मेरे गुरु भी हैं। ऐसे गुरु-भ्राता के चरणों की वंदना करता हूं। शेष सनातन से विपुल ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने आनन्द प्राप्त किया। तीनों तापों को दूर करने वाले, त्रिविध संसार ताप के भय को हरने वाले रामचरण की वंदना करता हूं।

शंकर भगवान् ने जिनकी पोथी पर सही करके आदर दिया। काशी के पंडितों ने कहा—क्या देशी भाषा में, बोलचाल की गंवारू अवधी भाषा में, भाषा में भी नहीं अवधी बोली में ग्रंथ रच के ले आया। अरे ग्रंथ तो देवभाषा में, संस्कृत भाषा में होना चाहिए। बोलचाल की भाषा में, गंवारू भाषा में कोई ग्रंथ होता है। उन्होंने उनका तिरस्कार करते हुए उनको सबसे नीचे, उसके ऊपर पुराण, फिर स्मृति, फिर वेद-उपनिषद् रखकर द्वार बंद कर दिए और प्रात:काल आकर पण्डे ने मंदिर का द्वार खोला तो देखा भगवान् ने भक्त का मान रख लिया है। क्योंकि उसमें सब ग्रंथों का सार है—नाना पुराणनिगमागमसम्मत व्याख्या। सब पुराण, निगम और आगम का सार था। अत: भगवान् ने उसे सबसे ऊपर कर दिया और सबसे ऊपर करके सत्यं शिवं सुन्दरम् लिखकर भगवान् का हस्ताक्षर भी हो गया। तो नन्ददास आगे कहते हैं—

राखी जिनकी टेक मदन मोहन धनुधारी।

मदन मोहनजी वंशी बजाने वाले थे, उन्होंने उसकी टेक रख ली। तुलसीदास के लिए धनुष बाण धारण करके।

वाल्मीकि अवतार कहत
जेहि सन्त प्रचारी।।

यहां नन्ददासजी ने कलम तोड़ने की बात कह दी।

नन्ददास के हृदय नयन
को खोलेउ सोई।

नन्ददासजी कहते हैं मेरी हृदयरूपी आंख को खोला है उन्होंने।

अद्‌भुत रस टपकाय दियो
जानत सब कोई।

हृदय नयन खोल करके अद्‌भुत रस, अमृत डाल दिया है, सारी दुनिया जानती है। मुझे इन्होंने ही ज्ञान दिया है।

प्राय: होता क्या है? एक ही काल में दो पंडित हों तो प्राय: ईर्ष्या-द्वेष भी करते हैं। एक उक्ति है, एक पंडित दूसरे पंडित को देखकर कुत्ते की तरह भों-भों करके गुर्राने लगता है। लेकिन तुलसीदासजी की उस काल के सभी साहित्यकार वन्दना गा रहे हैं।

आचार्य श्रीमद् स्वामी मधुसूदन सरस्वती तुलसीदासजी के समकालीन थे। वे तुलसीदासजी की प्रशस्ति में कहते हैं—

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषितां।।

अर्थात् आनन्द कानन में कोई तुलसी नाम के चलते-फिरते वृक्ष (गोस्वामी तुलसीदास जी) हैं, जिनकी कवितारूपी मंजरी पर सदा रामरूपी भौंरे गूंजते रहते हैं। वाल्मीकि के लिए कहा गया है—

कूजन्तः रामरामेति मधुरः मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखा वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्।।

वाल्मीकि रूप कोकिल मधुर-मधुर राम-राम कुंजन करती है, किस प्रकार से? कविता रूपी शाखा पर बैठकर। कौन कुंजन कर रहा है? वाल्मीकि नामक कोकिला। कोकिला की उपमा क्यों दी है? स्त्री कोकिला कौए के बासा (घर) में अण्डे देती है। अण्डे फूटने के समय बसन्त ऋतु में कोकिल कुहू-कुहू करके पुकारती है कि ऐ मेरे प्रिय बालक-गण तुम लोग कोकिल के बच्चे हो, काग के नहीं। कौए का साथ प्राप्त कर स्वयं को कौए का बच्चा जानकर दुःखी मत होना। आओ, चले आओ। आम्र मंजरी के रसपान के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है। विष्ठा भोगी कौए की संतान तुम नहीं हो। इस संसार में आकर जीव अपना स्वरूप भूल गया है। इसलिए वाल्मीकि कहते हैं, अरे ओ जीव! मां के पेट से जन्म लेकर संसार की विष्ठा को चाटने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ। 'उत्तिष्ठित! जाग्रत'

उठो! जागो! ब्रह्मानन्द के रसपान के लिए, रामनाम के रसपान के लिए। इसलिए वाल्मीकि को कोकिल कहा गया है।

गोस्वामी तुलसीदास चमत्कारी चलमान भक्त हैं। एक शाखा अनेक प्रशाखा, अनेक मंजरी अनन्त सुधा, अनन्त भ्रमर उसमें गुंजन कर रहे हैं। स्वयं राम नाम का अमृत पान करके अन्यों को पान कराने के लिए वाल्मीकि हुए थे, किन्तु तुलसीदास का आविर्भाव हुआ था अगणित भक्तों को राम नामामृत पान कराने के लिए। उन्होंने राजा के महल से आरम्भ करके गरीब की झोपड़ी पर्यन्त राम नाम को पहुंचा दिया।

एक और बहुत बड़े कवि, फारसी के कवि, अरबी के कवि, संस्कृत के कवि खानखाना अब्दुल रहीम, अकबर के नवरत्नों में एक थे। तुलसीदास के मित्र थे।

एक दिन तुलसीदासजी के पास एक ब्राह्मण आकर बोला उसकी लड़की के विवाह के लिए कुछ सहायता करें। तुलसीदासजी ने कहा मेरे पास राम नाम और यह लोटा छोड़कर कुछ नहीं है भाई। पर मेरा एक धनी मित्र है। मैं उसको एक पत्र लिख देता हूं, उसको लेकर जाओ तुम्हारा काम हो जाएगा। यह कहकर पत्र में एक पंक्ति लिखकर दे दी। कहा कि इससे वह समझ जाएगा कि क्या लिखा है।

सुरतिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब कोय।

अर्थात् देवता, मनुष्य, नाग सकल जाति की माताएं यही चाहती हैं कि मेरी लड़की किसी अच्छे घर में अच्छे वर के साथ विवाह करके सुखी होवे।

पत्र लेकर ब्राह्मण देव रहीम के पास पहुंचा। रहीम समझ गए। अब्दुल रहीम खानखाना बेराम खान का पुत्र था। बेराम खान काबुल से बाबर के साथ आया था। उनका जन्म भारत में हुआ था। उन्होंने पत्र की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी कर दी—

गोद लिये हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय।।

अर्थात् सकल माताएं यही चाहती हैं कि तुलसी जैसा सुत होवे।

एक बार बादशाह अकबर ने रहीम की परीक्षा लेने के लिए उसको राणा प्रताप के विरुद्ध युद्ध करने भेज दिया। जिस प्रकार भीष्म पितामह पाण्डवों की विजय कामना करते किन्तु, कौरवों के सेनापति होकर वीरता के साथ युद्ध भी करते थे। उसी प्रकार रहीम भी मन से प्रताप की विजय चाहता था। पर बहादुर की तरह मुगल सेनापति होकर राजपूत सैन्य को गाजर-मूली की तरह काटता था।

भीलों ने प्रताप के पक्ष में युद्ध किया था। वे लोग मुगलों की कुछ बेगमों को उठा लाए राणा प्रताप के पास। उन्होंने कहा मुगल लोग हमारी मां-बहनों,

बेटियों को उठाकर ले जाते हैं इसलिए हम भी उनकी मां-बहनों को उठाकर ले आये हैं। प्रताप ने कहा, अरे! जंगली मूर्ख दल। तुम लोगों ने यह क्या सर्वनाश किया। रणक्षेत्र में तो हम जीते किन्तु चरित्र के क्षेत्र में तो हम हार गए। तुम लोग महिलाओं को क्यों उठा लाए? मर्द तो मर्द के साथ युद्ध करते हैं, स्त्रियों को स्पर्श करने की क्या आवश्यकता थी। इसके पश्चात् प्रताप ने जाकर बेगमों को प्रणाम करते हुए कहा, जो मस्तक कभी अकबर और मुगलों के सामने नहीं झुका वह आज क्षमायाचना के साथ झुक रहा है। फिर उन सबको पुरस्कृत एवं अलंकृत किया और सम्मान के साथ उनको उनके पतियों के पास भेज दिया।

उन बेगमों ने कहा—हम लोगों ने सुना है कोई पैगम्बर, मसीहा या खुदा का प्रेरित दूत संसार में आता है। किन्तु हम लोगों ने उसको देखा नहीं था। हां, आज के प्रतापजी को हमने प्रत्यक्ष देखा है। आप सचमुच के देवदूत हैं। आज हम समझ सके कि मनुष्य किस प्रकार से फरिश्ता (देवदूत) होकर रहता है।

बेगमों के ससम्मान वापस जाने पर रहीम ने राणा प्रताप को लिखकर भेजा—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण,
अमर विश्वम्भर ऊपरे, रखियो निहचो राण।

हे राणा प्रताप! धर्म रहेगा तो धरा भी रहेगी, यह खुरसाण (मुगल) तो नष्ट हो जाने वाला है। इसलिए अमर विश्वम्भर भगवान् महादेव पर अपना दृढ़ निश्चय रखकर संघर्ष करते जाओ।

आज प्रश्न उठता है कि भारत के मुसलमानों की समस्या का क्या हल है? क्या रहीम ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान मुसलमान रहते हुए भी रहीम तथा रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारत माता खण्डित हो पाती?

यदि हम पुनः रहीम-रसखान के जीवन से आलोक लेकर कर्तव्यपथ का निर्धारण कर सकें तो खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के भाग्यक्षितिज पर मुस्कराने लगे।

भारत की वाणी समन्वय की वाणी है जो मानवों के विविध स्वभावों, रुचियों, योग्यताओं की रक्षा करते हुए उनमें अन्तर्निहित एकता को पुष्ट करने वाली है। गीता की तरह रामायण भी समन्वय का ग्रंथ है। ज्ञान, कर्म, भक्ति की त्रिवेणी एक साथ बही है। इसलिए न केवल भारत में, न केवल एशिया में वरन् पूरे विश्व में समादृत है। विश्व मनीषा ने इस पर मुग्ध होकर अपना सारा जीवन खपा कर अपने-अपने देश की भाषाओं में इसका अनुवाद किया। विश्व के अनेक देशों में इस पर प्रतिवर्ष नाटक खेले जाते हैं।

स्वयं अब्दुल रहीम खानखाना भी अपनी तप:पूत लेखनी का अर्घ्य चढ़ाते हैं—

रामचरितमानस विमल, सन्तन जीवन प्राण।
हिंदुवान को वेद सम, यवनन प्रगट कुरान।।

हिन्दुओं के लिए वेद के समान, मुसलमानों के लिए कुरान के समान है। रहीम बड़ा अद्‌भुत महाकवि था। ईमानदारी की बात यह है कि राम ने उत्तर और दक्षिण भारत को एक किया। कृष्ण ने पूर्व और पश्चिम को एक किया। इसलिए राम और कृष्ण हमारे राष्ट्रपुरुष हैं, भारतीय राष्ट्र के निर्माता हैं। आध्यात्मिक पुरुष, आध्यात्मिक विभूति एवं धर्म के आदर्श होने के अतिरिक्त वे राष्ट्र पुरुष हैं। इसलिए हर भारतीय को चाहे वह किसी पंथ को मानने वाला हो, किसी मजहब को मानने वाला हो उसको राम और कृष्ण के चरणों में शीश झुकाना ही पड़ेगा। अन्यथा वह भारतीय नहीं रह सकता। अब्दुल रहीम खानखाना राम भक्ति के गीत गाता था। इबादत भी करता था। कुरान भी पढ़ता था। इसमें कोई आपत्ति नहीं। राम कृष्ण की भक्ति अनिवार्य है। यह न करे तो ठोकर मार कर बाहर निकाल दो। इस देश में कोई बस नहीं सकता, जी नहीं सकता। राम-कृष्ण की निन्दा करके इस देश का वासी बना रहे तो भारत भारत नहीं रह सकता, राम-कृष्ण के बिना। भारतवासी नहीं हो सकता कोई राम-कृष्ण के बिना क्योंकि वे देश के निर्माता हैं, उन्होंने देश का निर्माण किया। वे राष्ट्रपुरुष हैं। रहीम एवं रसखान ने जो रास्ता बताया यह मुसलमानों के लिए ठीक रास्ता है। उस रास्ते पर चलने से हमारी मातृभूमि के टुकड़े नहीं होते। दुर्भाग्य से इस रास्ते को छोड़ दिया गया है। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत भूमि के टुकड़े हुए। और आज पुन: उसके और टुकड़े करने के लिए योजना बन रही है। जब साढ़े तेईस प्रतिशत थे तब देश का सत्ताईस प्रतिशत हिस्सा काटकर दे दिया गया। हमने मां को काट कर बांट दिया। वे कहते थे ये नापाक लोग हैं, ये अपवित्र लोग हैं। हमें पाकिस्तान दे दो। इनके साथ नहीं रहेंगे। हम पाकिस्तान बनाएंगे, पवित्र देश बनाएंगे, पाक देश बनाएंगे। ये नापाक हैं। हमारे मूर्ख और अदूरदर्शी नेताओं ने मातृभूमि को काटकर चौथाई हिस्सा दे दिया। सत्ताईस प्रतिशत भूमि दे दी।

अब ईमानदारी से बताओ बिना किसी पंथ, सम्प्रदाय या पूर्वाग्रह के ईमानदारी से न्याय के निकष पर विवेक की कसौटी पर कस कर बुद्धि से बताओ क्या उसके पश्चात् भी उनका इस देश में रहने, या खाने का कोई अधिकार बनता है? फिर भी छाती पर पालकर रखे गए। यहां जो साढ़े तीन करोड़ बचे थे, आज 1981 की जनगणना में साढ़े उन्नीस करोड़ हो गए हैं। जब वे दस करोड़ थे तो मातृभूमि का एक-चौथाई भाग काट लिया। अब 19 करोड़ हो गये और राम-

कृष्ण को पूजे नहीं, राम-कृष्ण से वैर करें तो इस देश की क्या गति होगी? इन बच्चों का भविष्य क्या होगा? मैं मीनाक्षीपुरम में गया। वहां क्या हुआ? मदुराई से सवा सौ मील दूर गांव है मीनाक्षीपुरम्। वहां ईसाइयों की तरफ से एक अनाथालय चलता था। उस अनाथालय में लगभग सवा सौ बच्चे, अभागे हिन्दू बच्चे! उनको वहां रखकर ईसाई बनाया जाता था। वहां पर अमेरीका की Colgate Co. है, जिसका Colgate Toothpaste, साबुन आदि हम प्रयोग करते रहते हैं। Colgate Co. ने उस अनाथालय को एक Printing मशीन दान में दी। बहुत अच्छी, उच्च कोटि की Printing मशीन थी। ताकि बच्चों को कुछ छपाई का काम सिखाया जाए। छपाई से अनाथालय की आय होवे। उन्होंने Printing के काम शुरू किए। बढ़िया काम मिला। उन्हें लाभ हुआ मशीन तो बहुत उच्च कोटि की है और दान में आई हुई है। बाकी कोई खरीदे तो उस पर 200 प्रतिशत कस्टम ड्यूटी लगेगी। यह गिफ्ट के तौर पर अनाथाश्रम को दी गई अतः ड्यूटी फ्री आ गई।

पादरियों ने सोचा इस पर यदि हम नोट छापें तो बढ़िया नोट छपेंगे। उन्होंने जाली नोट छापने का धंधा शुरू किया। नोट छपने लगे। नोट बाहर कैसे निकले। तो अरब के व्यापारी, अरब के शेख, मुस्लिम व्यापारी उस क्षेत्र में रहने वालों से मिलकर उन नोटों की गड्डियों को बाहर निकालते। मार्केट में मुस्लिम व्यापारी निकालते। उस छापाखाने में कुली, मजदूरी करने वाले अधिकांश गरीब हिन्दू हरिजन थे। छपाई का काम करते पादरी, ईसाई लोग। मेहनत मजदूरी करते हिन्दू हरिजन और बाहर निकालने का कार्य करते यहां के एवं अरब के मुस्लिम व्यापारी। अचानक उस गांव में किसी हिन्दू की हत्या हो गई। उस हत्या की खोज के लिए पुलिस के लोग आए। और कुछ लोगों को पकड़ा। उनकी पिटाई शुरू की। उसमें एक नशे में था। उसने कहा हुजूर हमारा कोई दोष नहीं है। दोष पादरियों का है। वे लोग छपाते हैं। पूछने आये हत्या के बारे में और वह बता रहा है कि छापते हैं। तब पुलिस ने कहा, क्या छापते हैं? हुजुर! नोट छापते हैं। हम तो वहां मजदूरी करते हैं। तब यह सुराग का पता चला। सरकार सो रही थी। कई महीनों से यह धंधा चल रहा था। सरकार को पता ही नहीं था। अचानक नशे वाले व्यक्ति ने बक दिया। तो उसकी खोज की तो नोटों की गड्डियां ही गड्डियां स्टॉक में मिली। अब पादरी, मुस्लिम व्यापारी के साथ हरिजन कार्यकर्ता भी गिरफ्तार हुए। ईसाइयों के 76 देश हैं। जब ईसाइयों पर संकट आता है तो 76 ईसाई देश एक हो जाते हैं। उन्होंने दबाव डालकर रिश्वत खिलाकर पादरियों को छुड़ा लिया। मुसलमानों के पीछे अरब के शेख हैं, उनके पास बड़ा धन है। मैं बगदाद होकर के आया हूं। वहां पेट्रोल एक पैसा लिटर मिलता है। यहां पौने सात रुपया लिटर मिलता है। सात सौ गुणा अधिक दाम आप से लिया जाता है। बगदाद में किसी पेट्रोल

पम्प पर स्कूटर, मोटर साइकिल ले जाकर स्वयं दो लिटर पेट्रोल लें तो कोई चार्ज नहीं। जैसे भारत में म्युनिसिपिलिटी के नल के नीचे बालटी भरकर पानी ले जाएं। उसका कोई टैक्स नहीं है। वैसे ही दो लिटर के लिए कोई खर्चा नहीं। बड़ी गाड़ियों के लिए एक पैसा लिटर। ईरान में अभी एक पैसा लिटर था। अभी खुमैनी ने छह पैसा लिटर किया है। सोचिये, आपसे कितना पैसा लूटा जाता है। वहां 1 पैसे की चीज है और लगभग फ्री है। एक पैसा तो नाम मात्र का रखा है। यहां आपको सात रुपया देना पड़ता है। लोगों ने इन पैसों से रिश्वत देकर मुस्लिम व्यापारियों को बचा लिया। पादरी बच गए, मुस्लिम बच गए। रह गए बेचारे हिन्दू हरिजन। अब मुस्लिम व्यापारियों ने पुलिस को और पैसे दिए कि हरिजनों की खूब पिटाई करो। पुलिस तो मारने में राक्षस है। फिर मारने के लिए पैसा मिलता है तो कहना ही क्या? मारना तो उनका स्वभाव है। उन्हें खूब मार मिलती रोज। रो-रो कर, मार खा-खा कर उनकी हिम्मत टूट गई। उन्हें किसी ने नहीं छुड़ाया, न ही जमानत मिली। निराश हो गए। तब मुस्लिम व्यापारी उनके पास पहुंचे। देखो भाई! काम कराते थे पादरी। वे सब छूट गए हैं। उनके पीछे 76 ईसाई देश खड़े हैं, नोट निकालते थे हम लोग। हम सब छूट गए। हमारे पीछे 50 मुस्लिम देश खड़े हैं। तुम मजदूर हो। तुम्हें इन जाली धंधों से कोई मतलब नहीं था। तुम्हें तो 2-4 रुपए दैनिक मजदूरी मिलती थी। तुम फंसे हुए हो। तुम्हें हिन्दुस्तान का हिन्दू भी, कोई बचाने वाला नहीं है, अगर तुम लोग मुस्लिम बन जाओ तो तुम्हारा भी ये पुलिस के लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। जैसे हमारा कुछ नहीं कर सकते वैसे तुम्हारा भी कुछ नहीं कर सकेंगे। तुम्हारे ऊपर 50 मुस्लिम देश छत्रछाया की तरह रहेंगे। तब उनकी हिम्मत टूटी हुई थी। कई महीने से मार खाते-खाते वे टूटने की स्थिति में आ चुके थे। मुक्ति का और कोई उपाय नहीं रहा। तब उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया। 500 रुपया प्रति व्यक्ति देकर धर्मान्तरण 950 लोगों का कर दिया। बच्चों को घर से जबर्दस्ती खींच-खींच कर लाया गया। उन्हें मुस्लिम बनाया गया। बच्चों का नाम शिवलिंगम था तो उसका नाम रखा गया अलाउद्दीन। मुहम्मद गोरी, मुहम्मद अली जिन्ना, जिन्होंने सोमनाथ के शिव मन्दिर को तोड़ा था, जिन्होंने बार-बार देश को लूटा, देश को विभाजित किया। जो कल तक शिव भक्त थे आज उन्हें शिव द्वेषी जबर्दस्ती बनाया गया। बच्चे चीखते-चिल्लाते रहे। बच्चों की जबर्दस्ती सुन्नत कर दी गई। इसके पीछे षड्यंत्र क्या है? षड्यंत्र यह है कि खाड़ी के मुस्लिम देशों की एक कान्फ्रेंस हुई लंदन में। कांफ्रेंस में बड़े-बड़े वैज्ञानिक, टेक्निशियन, एक्सपर्ट बैठे थे। विचारक थे, व्यापारी थे। उनमें विचार हुआ कि जितना तेल का स्टॉक है अरब देशों में वह धीरे-धीरे सूख रहा है, कम हो रहा है। समुद्र के अन्दर में या समुद्र पानी के तल के नीचे के लेवल में समुद्र का जो करेन्ट है वह कावेरी देशों की तरफ जा रहा है। भारत के पश्चिम भाग की

ओर जा रहा है। 20 साल के बाद खाड़ी के देशों में पेट्रोल बिल्कुल नहीं रहेगा। और भारत के पास 20 साल के बाद खूब पेट्रोल हो जाएगा। यह सम्वाद अरब देशों के पास वायरलैस से भेजा गया। अरब देश बड़े चिंतित हुए कि भाई, बीस साल बाद हम क्या खाएंगे? अभी तो हम पैसे से शेख बन गए हैं। हम जिसको चाहें खरीद सकते हैं। हमारे पास पैसा भरपूर है। बीस साल बाद हमारे बच्चे क्या खाएंगे? हमारे यहां तो धान नहीं होता। हमारे यहां गेहूं नहीं होता। हमारे यहां तो मरुभूमि है। सारा अनाज बाहर से मंगवाते हैं। दूध बाहर से मंगवाते हैं। वहां मटर 26 रुपया किलो बिकता है। वहां पालक साग 24 रुपये किलो बिकता है अरब में, कुवैत में। उन्होंने Proposal (प्रस्ताव) भी दिया एक हरी सब्जी का जहाज रांची से कुवैत जाया करे। इससे भारत को बड़ी आय हो जाएगी। 26 रुपया मटर बिकेगा, 24 रुपया पालक बिकेगा। पर जगन्नाथ मिश्रा ने कहा—नहीं, हमारे पास यह सम्भावना नहीं है। धान वहां होता नहीं, सब्जी वहां होती नहीं, तो जब तेल भी समाप्त हो जाएगा तब क्या वहां बालू खाएंगे? लंदन की कांफ्रेंस से अरब को यह सम्वाद भेजा गया वायरलैस से। पर अमेरीका ने बीच में इस सम्वाद को मोनिटर कर लिया, स्नेप कर लिया। उसे intelligence department और अमेरीका के खुफिया विभाग ने प्रकाशित किया तब भारत के खुफिया विभाग को पता लगा। उसके संदेश की फोटो कॉपी भी हम लेकर आए हैं जिससे पता लगता है कि उनकी चिन्ता क्या है? फिर उन्होंने विचार किया कि अब क्या किया जाए? जिस किसी देश में उपजाऊ भूमि हो वह खरीदी जाए। अरब के शेख अब भारत में उपजाऊ जमीन खरीद रहे हैं। कोचीन में एक हिन्दू होटल समुद्र तट पर था। वह लेने के लिए अरब के शेख ने कहा, मैं पांच करोड़ रुपया देता हूं। होटल मुझे दे दो। उसने कहा, पांच सौ करोड़ रुपया देगा तो भी मैं होटल नहीं दूंगा। तो उन्होंने आसपास की भूमियां लेनी शुरू की। और उन्होंने कावेरी बेल्ट की भूमि के साथ-साथ दक्षिण में कुछ भूमियां खरीदी। कावेरी को River of Gold कहते हैं, सोने की नदी कहते हैं। उपजाऊ भी भरपूर है। सारी दक्षिण भारत की उपज कावेरी के कारण है। कावेरी के तट पर सोने का खजाना भी है। खास-खास Gold Mines भी हैं। मैसूर के सोने के खजाने कावेरी के तट के साथ-साथ हैं। कावेरी के तट पर सोना पहले ही था। अब सोने के साथ-साथ पेट्रोलियम भी हो जाएगा। तब यह भारत की सबसे बड़े भाग्य की नदी बन जाएगी। इसलिए यदि हम भूमि खरीदेंगे, तेल निकल आएगा तो भूमि सरकार लेगी, हम भूमि के नियमों के अनुसार उसे भोग नहीं सकते। सरकार उसको Nationalise कर लेगी। अत: भूमि में पैसा नहीं लगाएं। मनुष्यों में पैसा लगाएं। तीन-चौथाई देश अभी हिन्दुओं के पास है। एक-चौथाई देश का इस्लामीकरण हो गया है। वहां 12 करोड़ हरिजन लोग हैं। उनको फुसलाकर-बहकाकर यदि हम मुसलमान बना लेवें तब पहले ही 19-20 करोड़

हो गए हैं और ये 10-12 करोड़ और हो जाएंगे तब हम लोग पाकिस्तान से भी और बड़ा भाग इनसे लेंगे।

तब हम केवल भूमि के किरायेदार नहीं रहेंगे। सरकार के नियमों के अधीन हम केवल भूमि के भोक्ता नहीं रहेंगे वरन् हम स्वयं भूमि के मालिक बन जाएंगे। इस योजना के अन्तर्गत पैसा लगाकर मीनाक्षीपुरम में, मदुराई में एवं अन्यत्र धर्मान्तरण कर रहे हैं। स्पष्ट है कि इस भूमि पर आकर, इस भूमि पर रहकर, इसी भूमि का नाश करने के लिए, इसी मातृभूमि को नष्ट करने के लिए षड्यंत्र रचते हैं। मूल कारण क्या है? वह यह है, इस देश की राम-कृष्ण की जो परम्परा है उसको नष्ट करना। इतिहास गवाह है कि 1000 सालों से उन्होंने यही किया। राम जन्मभूमि को तोड़कर मस्जिद खड़ी की। कृष्ण जन्मभूमि को तोड़कर मस्जिद खड़ी की। काशी विश्वनाथजी के मन्दिर को तोड़कर मस्जिद खड़ी की। विश्वनाथ के लिंग के ऊपर पांव रखकर ओरंगजेब ने नमाज पढ़ी। भारत के मन्दिरों की बड़ी-बड़ी सुन्दर मूर्तियों को वहां से तोड़कर लाया गया और मूत्रालयों, पाखानों में लगाया गया ताकि इन लोगों का मल-मूत्र इन देवताओं के मुखों में पड़ता रहे। नालन्दा के विश्वविद्यालय को जला दिया। नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवार में चुना। गुरु तेग बहादुर का सिर काटकर चांदनी चौक पर लटका दिया। आरी से चीर डाला उनके शिष्य को। गुरु अर्जुन देव को तपते हुए तवों पर जलाया। क्या-क्या पाप नहीं किए इन लोगों ने? सब पाप किए इन लोगों ने क्योंकि इनको इस देश की संस्कृति से नफरत थी। रहीम और रसखान ने क्या किया? उन्होंने कहा हम नमाज भी पढ़ें, कुरान भी पढ़ें, इबादत भी करें पर राम-कृष्ण पर भक्ति भी अटूट रखें।

राम-कृष्ण की भक्ति से हम कभी विचलित नहीं होने देंगे क्योंकि इस देश के राष्ट्रीय महापुरुष यही हैं। इस देश के निर्माता राम-कृष्ण हैं। इसलिए मैं कहता हूं राम-कृष्ण के प्रति भक्ति राष्ट्रीयता की प्रथम कसौटी है। जो यहां का नागरिक है उसे राम-कृष्ण के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर भक्ति रखनी चाहिए। व्यक्तिगत भक्ति, व्यक्तिगत मुक्ति के लिए कुरान पढ़ें, नमाज पढ़ें, हमें कोई आपत्ति नहीं। राष्ट्र के हित से कोई वैर नहीं होना चाहिए। अगर यह होगा तो वह भारत में नागरिक नहीं हो सकता। इसकी चर्चा मैंने इसलिए की कि रहीम एक आदर्श व्यक्ति था। मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति का भक्त था। अकबर के समय रहीम चलता रहा। हिन्दू का यश गाता रहा। पर जहांगीर के समय जहांगीर ने रहीम की सब सम्पत्ति छीन ली। कहा, यह हिन्दू का यश गाता रहता है और सब सम्पत्ति छीन ली। रहीम कहता है—

तब ही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जगमें रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम।।

तब तक ही उसका जीना सफल है जब तक कि देने में कमी न आयी हो। देने में धीमा नहीं है। संसार में कंजूस की गति से मुझे जीना अच्छा नहीं लगता। चित्रकूट पहुंच गया। तुलसीदासजी ने पूछा त्रिचकूट कैसे आ गए? रहीम ने कहा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहीमन अवध नरेश।
जा पर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।।

कहा कि भगवान् श्री राघवेन्द्र (मर्यादा पुरुषोत्तम) उनको राजतिलक के दिन, राजतिलक से वंचित करके धकेलकर दण्डकवन में निकाल दिया गया तो वे भी चित्रकूट आए। उन पर विपत्ति आयी तो वे भी चित्रकूट आए। गोस्वामी तुलसीदासजी, आप पत्नी के काम में अंधे हुए। आधी रात को यमुना पार करने के लिए तैरती हुई लाश को आपने नौका समझ लिया और लटकते हुए अजगर सांप को रस्सा समझकर ऊपर चढ़ गए। पत्नी ने आपको फटकार मारी, अस्थि चर्म में आपकी ममता ऐसी, अगर यही प्रीति राम संङ्ग होती तो आप भवसागर तर जाते। धिक्कार है ऐसे प्रेम को। आपको धिक्कार किया तो आप पर विपत्ति पड़ी, घर से निकाल दिया तो आप भी चित्रकूट आए। मेरा सारा राज्य, मेरी सारी जागीर, मेरी सारी सम्पत्ति जहांगीर ने छीन ली है। इतनी विपत्ति आयी है। जा पर विपदा पड़त है सो आवत यहि देश। राष्ट्रीय मुसलमान होने से विपत्ति आने पर चित्रकूट आया। जो विपत्ति पड़ने पर गायेगा कि मेरे मौला बुला ले मदीना में मुझे, वह अराष्ट्रीय है।

चित्रकूट की याद किसको आएगी? जो भारत का है। जिसने कभी मक्का-मदीना देखा नहीं उसका गीत गा रहा है तो देशद्रोही बनेगा। देशद्रोह बुरी चीज है। कुरान पढ़ने में, नमाज पढ़ने में कोई बुराई नहीं है। पर राम-कृष्ण के प्रति भक्ति रखनी होगी। इस देश के प्रति भक्ति रखनी होगी। वहां मन्दाकिनी नदी है। मन्दाकिनी नदी में एक हाथी स्नान कर रहा है। बड़ी सुन्दर जलक्रीड़ा कर रहा है। सूंड में जल भरकर फव्वारे की तरह जल को फेंक रहा है। जलक्रीड़ा करके वहां से निकला है। और निकला साफ सुथरा होकर। और फिर कामद पर्वत की परिक्रमा करने लगा। कामद पर्वत है जो सारी मनोकामनाएं पूरी करता है। तो वहां धूल भरकर अपनी सूंड से धूल के फव्वारे मारने लगा। और सारे शरीर में धूल भर ली। किसी ने रहीम से पूछा क्या बात है? तब रहीम ने कहा—

धूर धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज,
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।

गजराज ने अपने सिर पर धूल क्यों डाली? बात क्या है?

गौतम ऋषि पत्नी तरी
ते रज ढूंढ़त गजराज।

तो भगवान् रामचन्द्र के चरणों की पावन धूलि जिसके स्पर्श से अहल्या का उद्धार हो गया था, उस धूलि को गजराज खोज रहा है। भगवान् के चरणों की धूलि मेरे मस्तक पर भी लग जाए, मेरा भी उद्धार हो जाए।

गोस्वामीजी ने कहा—अच्छा, रहीम चलो गंगाजी चलेंगे। काशी चले गए। काशी में गंगा स्नान के पश्चात् गोस्वामीजी ने कहा—रहीम! मां भगवती गंगा से लोग भक्ति, मुक्ति मांगते हैं। तुम भी कुछ वरदान मांग लो। तब रहीम बोला—

अच्युत चरण तरंगिणी, शिव सिर मालती माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव भाल।।

कहा कि अच्युत के चरणों से तरंगित होने वाली, विष्णु भगवान् के चरणों से प्रवाहित होने वाली गंगा, शिव के मस्तक पर मारुति माला के समान शोभायमान होने वाली है। गंगा तुमसे लोग मुक्ति मांगते हैं, मुक्ति तो मैं भी मांगता हूं, मुक्त करके तू मुझे हरि न बनाना, विष्णु मत बना। यदि विष्णु बना दोगी तो विष्णु के तो चरणों में गंगा रहती है, मां मैं नहीं चाहता कि तू मेरे चरणों में रहे। तो मां गंगे हरि मत बनाना। तो मुझे क्या बनाना? जिसके मस्तक पर चन्द्रमा, जिसके सिर पर गंगा मां लहराती है, वह शंकर भगवान् बना देना। मुक्त करके बनाना तो शिव बनाना। ताकि हे गंगा मैया, मैं तुझे अपने शीश पर सदा धारण करूं। पांव पर नहीं। यह गंगा के प्रति उनकी इतनी अपार भक्ति थी।

Nationlist मुस्लिम Nationlist मुस्लिम कहते रहते हो। Nationlist मुस्लिम खोजो तो सही। एक बार सरदार पटेल ने जयेन्द्र से कहा था कि हमारे देश में केवल एक राष्ट्रीय मुसलमान है और वह है पंडित जवाहरलाल नेहरू। इस प्रकार से देखें तो रहीम, रसखान का रास्ता सही रास्ता है पर हम वह रास्ता भूल गए, रास्ते से भटक गए। दूसरा रास्ता पकड़ लिया। मातृभूमि की हत्या करवा दी और नई हत्या के लिए पुनः खड़े हो गए। इसलिए इन बातों की विशेष चर्चा की जरूरत पड़ती है कि समझो भाई यह रास्ता। इस रास्ते से हिन्दू मन्दिरों में उनकी कवितायें गायी जाती है, उनका यश हम गाते हैं। क्यों गाते हैं? क्योंकि वे मुसलमान रहते हुए भी, रसखान मुसलमान रहते हुए भी भारत का था। रहीम ने तुलसीदासजी से एक प्रश्न किया। क्या प्रश्न किया? प्रश्न बड़े मार्के का है। उत्तर भी बड़ा मार्के का है।

काज करे संसार के, मिलन चाहत करतार।

भई, लोग कार्य तो करते हैं संसार का, बही-खाता लिखता है, माल तौलता है, कपड़े मापता है, लेन-देन करता है। यह करता है, वह करता है। दुनिया के धंधों में लगा है।

काज करत संसार के, मिलन चाहत करतार। तो समस्या क्या है? तब रहीम कहते हैं—

कहो रहीम कैसे निभे, दो रथ एक सवार।

रथ दो हैं। एक करतार का रथ और एक संसार का रथ। सवार एक है जो संसार के कामों में लगा है और करतार से मिलना चाहता है। दो रथों के बीच में आदमी धड़ाम से नीचे जा गिरेगा। उसको दोनों में से कुछ नहीं मिलेगा। तुलसीदासजी से मार्गदर्शन मांगते हुए कहते हैं—

काज करे संसार के, मिलन चाहत करतार,
कह रहीम कैसे निभे, दो रथ एक सवार।

तुलसीदास ने उत्तर दिया। बड़ा मार्मिक प्रश्न है। उत्तर सुनकर आप चकरा जाएंगे।

काज करे संसार के

संसार के सब कर्तव्य करो। परिवार का पालन करो, बच्चों का पालन पोषण करो, दुकानदारी करो, व्यवसाय करो, पैसा कमाओ। संसार के सब कर्तव्य करो—'काज करे संसार के, प्रभु पर राखे टेक'—भगवान् पर विश्वास रखे कि मैं भगवान् का काम कर रहा हूं। सब संसार के काम करो। बच्चों को प्यार कर रहा है तो बाल मुकुन्द को प्यार कर रहा है। मेरा कृष्ण, मेरा कन्हैया बार-बार यह भाव रखे। ग्राहक मेरा देवता है। रविदास जी जूता गांठते थे। जूते के एक-एक टांके के साथ ओम-ओम, राम-राम, हरि-हरि गाते थे और कोई भक्त मिला। बद्रीनारायण जा रहा है तो जूता दे देते थे। हर कर्म में प्रभु मेरे आश्रय हैं, प्रभु मेरी प्रेरणा हैं, प्रभु के लिए कर रहा हूं और जगत् के जितने सम्बन्धी रूप हैं सब प्रभु के रूप हैं। सब नारायण रूप हैं। इस बच्चे से व्यवहार करते समय यह नारायण रूप है। यह नाराज न हो जाए। इस ग्राहक को ठगूं तो भगवान् नाराज हो जाएगा। किसी की जेब नहीं काटूं, किसी का गला नहीं काटूं। किससे नाराज हो रहे हो? अत: किसी के प्रति बुरा भाव न लाऊं—

काज करे संसार के, प्रभु पर राखे टेक।
तुलसी यों निभ जायेंगे, दो घोड़े रथ एक।।
और कर से करो कर्म विधि नाना, मन राखो प्रभु कृपा निधाना।

रथ एक है, घोड़े दो हैं। एक संसार का घोड़ा और एक भगवान् का घोड़ा। दोनों लगा दो। और वेग से दौड़ेगा। चिन्ता मत करो। यह है जीवन का क्रियात्मक रूप, क्रियात्मक पक्ष, जिससे संसार का व्यवहार सुन्दर रीति से चले और भगवान् की वंदना भी चले। भगवान् पर अटल श्रद्धा भी रखें। इससे संसार धर्म भी बढ़िया ढंग से चले। भगवान् पर अटल श्रद्धा रखते हुए, ईमानदारी से चलो। भगवान् ने गीता में कहा—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। 8/7, गीता

हे अर्जुन! तू सब कालों में मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर।

भगवान् को सब समय स्मरण करेंगे—राम-राम-राम करेंगे तब युद्ध में मारो-मारो कैसे करेंगे? कैसे किसी का वध करेंगे? यानी युद्ध कैसे करेंगे। तो भगवान् ने कहा—हां, दोनों का समन्वय करना है। सब समय स्मरण करते हुए युद्ध करो जैसा अर्जुन ने किया। अर्जुन ने कैसे किया? भगवान् को स्मरण कर युद्ध किया। भगवान् को भूलकर युद्ध करेगा तो आततायी, अत्याचारी बन जाएगा। राक्षस बन जाएगा और दूसरों के साथ अन्याय करेगा। जो केवल भगवान् को स्मरण करता रहेगा, वह युद्ध भूल जाएगा। वह पोंगापंथी बन जाएगा। आडम्बर वाला बन जाएगा। संसार के लिए बेकार बन जाएगा। मंदिर में पड़ा है। मरे या जीये, हमारा इससे क्या है? वह संसार के लिए बेकार। केवल माला जप रहा है तो इससे संसार को क्या लाभ? केवल भगवान् को स्मरण करेगा, कर्तव्य छोड़ देगा तो ढोंगी बनेगा। और कर्तव्य करेगा भगवान् को छोड़ देगा तो अनाचारी, दुराचारी बन जाएगा।

इसलिए युद्ध और यज्ञ में समन्वय हो।
इसलिए शक्ति और शील में समन्वय हो।

संसार और करतार में समन्वय हो। यही है जीवन का व्यावहारिक दर्शन। इसको गीता ने दिया है, तुलसीदास ने दिया है संसार को। उन गोस्वामी तुलसीदास के विषय में वीर सावरकर ने कहा है—रामायण लोकतंत्र का महानतम महाकाव्य है। लोकतंत्र का सबसे बड़ा महाकाव्य रामायण है। क्यों? क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्र, मर्यादा पुरुषोत्तम, अयोध्यापति ने एक केवट को गले लगाया, आंसुओं से भिगो रहे हैं केवट को, भीलों से, निषादों से, बंदरों से, भालुओं से, शबरी से सबसे प्रेम से मिल रहे हैं। बंदरों से, भालुओं से सबसे प्रेम से मिल रहे हैं। शबरी के झूठे बेर खा रहे हैं—

जात पांत का गर्व न हो, सत्य प्रेम का मान करे।
शबरी के जूठे बेर खाये, केवट के घर जलपान करे।
मानवता का मान रहे, हे राम! तुम्हारा ध्यान रहे।

राम ने मर्यादा सिखायी है। इसलिए यह लोकतंत्र का सबसे बड़ा महाकाव्य है। जब तक रामायण है जीवित, तब तक लोकतंत्र का नाश नहीं हो सकता। और एक बहुत बड़े मार्के की बात कही। देश पर 12 सौ वर्षों तक विदेशी शासन रहा। इस्लाम की तलवार लगभग 1000 वर्ष चलती रही। मंदिर तोड़े गए, बच्चों को दीवारों में चुना गया। लोगों को तेल के कड़ाहों में भून दिया गया। गरम तवों पर जलाया गया, आरों से चीरा गया। बहुत अत्याचार हुआ। रमणियों पर बलात्कार हुआ, सब कुछ हुआ। फिर भी भारत बचा रहा क्योंकि उसके पास रामायण थी। रामायण ने भारत को जीवित रखा। भारत में विदेशियों ने बहुत मंदिर तोड़े। बहुत विश्वविद्यालय जलाए। बहुत कुछ नाश किया। पर उन्होंने रामायण पर प्रतिबंध नहीं लगाया। अगर रामायण पर प्रतिबंध लगाते तो भारत का सर्वनाश हो जाता। भारत भारत रहा तो रामायण के कारण। भारत रामायण से जीवित रहा। यानी भारत जीवित रहा तो रामायण के कारण। अत: रामायण भारतीय जीवन की संजीवनी है।

रांची में एक पादरी है, पादरी बुल्के। उन्होंने रामकथा उत्पत्ति और विकास नाम का ग्रंथ लिखा। उसमें उन्होंने लिखा, 'छोटानागपुर रामायण काल की लंका थी और उरांव लोग रावण की संतान है। उनका उरांव नाम ही रावण से पड़ा। हमने उज्जैन आदि कान्फ्रेंस में कुछ अच्छा खण्डन किया है। कुछ पत्रों में भी बहुत लिखा है। और मंचों पर भी उसे अच्छी तरह लताड़ा है।

दिल्ली से एक पत्र निकलता है सरिता। सरिता एक मासिक पत्र है। उसने एक लेखमाला निकाली तुलसीदास हिन्दू समाज के पथप्रदर्शक नहीं पथभ्रष्टक हैं। वह सदैव हिन्दू समाज के विरुद्ध कुछ न कुछ लिखता रहता है। कभी वेदों के बारे में, कभी संन्यासी के बारे में, कभी संतों के बारे में, तो कभी तुलसी रामायण के बारे में। हर अंक में कुछ न कुछ जरूर छापता है। यह एक ऐसे व्यक्ति का पत्र है जो भारत विद्वेषी है, जिसने जिद बांध रखी है, हठीला आदमी है। उसका दुराग्रह है कि हम जरूर कुछ न कुछ आलोचना करेंगे। हम उसे जानते हैं। दिल्ली में कई बार उसके प्रेस का घेराव भी किया, पथराव भी किया। वह कई बार जेल भी गया। जेल में माफियां भी मांगी। पर वह ढीठ आदमी है, बाज नहीं आता। हमने उससे कहा, तुझे तुलसी ही आलोचना करने के लिए मिला है, हिन्दू समाज ही मिला है आलोचना करने के लिए? इस देश में रहते हो? क्या तुझे मुसलमान समाज में कोई दोष दिखाई नहीं देता। कभी एक लेख इस्लाम पर छापो। एक लेख इस्लाम की आलोचना में छापो हजरत मुहम्मद के बारे में। H.G. Wells Noble prize winner ने जो-जो लिखा है उसी को केवल उतार कर (इन्वर्ट्रेड कौमा) अपनी पत्रिका में छापो, उसी दिन तुम्हें छुरा मारकर खलास कर देंगे। उस दिन तुम्हारा प्रेस भस्म हो जाएगा। हिन्दू अनाथ, अभागा है। उसे जो आये थूक दिया। जो आये

गाली दे दिया। क्या भीम अर्जुन की संतान में, राम-कृष्ण की संतान में इतना बल नहीं बचा है जो उसे डांट सके, डरा सके। ऐसा पाप मत करो नहीं तो मार खाओगे।

हमारा बड़ा दुर्भाग्य है। हम परम उदार रहे। हमने सबको उदारता दी। परमवीर थे, शक्तिशाली थे, तब हमारी उदारता हमारा भूषण थी। आज दुर्बल की उदारता उसका दूषण बन जाती है। आज उदारता दूषण बनी हुई है। आज जो आता है हिन्दू को लात मारता है तो मैं कहता हूं चन्द्रमा पर थूकने पर थूक किसको लगेगा? थूकने वाले को लगेगा। वह पत्र कहता है तुलसीदास ने समाज को पथभ्रष्ट किया। अरे! तुलसीदास ने हिन्दू समाज को पुनर्जीवित किया, मृतप्राय समाज को प्राण-दान दिया। तुलसीदास ने पुनः हिन्दू समाज को जगद्गुरुत्व का गौरव दिया। तुलसीदास की कृपा से भारत से साढ़े सात हजार मील दूर फिजी में, भारत से साढ़े चार हजार मील दूर मारीशस में, भारत से 12 हजार मील दूर गिआना और सूरीनाम हिन्दू बहुल क्षेत्र हो गये हैं, वहां हिन्दी राजभाषा हो गई है। तुलसीदास की कृपा से वहां राज्य बदल गए हैं, हिन्दू राज कर रहे हैं और तुम कहते हो तुलसीदास ने पथभ्रष्ट किया। अरे! तुम स्वयं पथभ्रष्ट और मतिनष्ट हो। इसलिए तुलसी तुम्हें पथभ्रष्ट दीखते हैं। तुम स्वयं पथभ्रष्ट हो और तुलसीदास पर कीचड़ उछालने में लगे हुए हो! ऐसे लोगों से सावधान रहने की आवश्यकता है। कुछ दिन पहले उसने अपने पत्रों में विज्ञापन दिया—'तुलसी हिन्दू समाज के पथभ्रष्टक'।

हम थोड़ा विचार करें कि इतना बड़ा दान किसने दिया? एक दुनिया के सबसे बड़े महाकंगाल का यह सबसे बड़ा महान् दान है। वह चार चने के लिए तरसता था। वह कहता है—

दाने के ललाट विलाट विलख द्वार-द्वार दीन,
जानत है चार फल चार चनेन को।

मैं बिलखता रोता हुआ द्वार-द्वार भीख मांगता हूं। चार चने के दानों को चार फल—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष समझता हूं। ऐसे अभाव में पलकर, दुःख में पलकर कूकर-सूकर घात लगाही। जिन कुत्तों के लिए जो टुकड़े फेंके जाते थे उन कुत्तों के लिए फेंके जाने वाले टुकड़ों के लिए ललचाता रहता था। यह मुझे मिल जाए क्योंकि मुझे कोई भोजन नहीं देता था। मैं जब कहीं पंगत में, लंगर में, किसी भोज में, भोजन के लिए बैठता था तब सब लोगों को पूड़ी पकवान बंटता था पर जब मेरी बारी आती थी तब लोग कान ऐंठकर, लात मारकर, धक्का देकर निकाल देते थे। कहां से यह आ गया है? ऐसे अमंगल समय एवं लक्षणों के साथ जन्मा कि जन्मते ही मां-बाप को खा डाला। चुनिया दासी ने पाला। वह मर गई। जिसके घर बैठेगा उसी का नाश करेगा। स्वयं तुलसीदास ने लिखा जन्मते ही जिसके माता-पिता चल बसे और विधाता ने जिसके भाग्य में कुछ भी नहीं लिखा—

मातु पिता जग जाई तज्यों,
बिधिहि न लिखी कछु भाल भलाई।

ऐसा जिस बच्चे के साथ व्यवहार होता रहा, जिसको भोजन नहीं मिला। चार चने के दाने नहीं मिले। कुत्तों को फेंके जाने वाले टुकड़े तक उच्छिष्ट तक नहीं मिले।

ऐसी निर्धनता और कंगाली की दशा में भी तुलसीदास गद्दार नहीं हुआ।

हिन्दू गण ने मुझे कुछ दिया नहीं इसलिए मैं उनको न गाली दूंगा और न अभिशाप ही और न धर्म त्याग करूंगा। केवल करुणा करूंगा एवं आशीर्वाद दूंगा। ऐसा अमृत मैं दूंगा ताकि मृत्युकाल में भी यदि एक चम्मच पान करें तो अमर पद लाभकर कृत-कृत्य हो सकेगा। यह है तुलसीदासजी का संकल्प।

जिसने इतना हलाहल विष पीकर समाज को इतना महान् अमृत दिया। मैं मरूं तो मर जाऊं पर समाज जीवित रहे, अमर रहे। हे मेरे प्यारे हिन्दू समाज तुम कभी मत मरना, तुम जीओ, तुम जीओ। हम हजार बार मरें, तुम कभी मत मरो। समाज को चिरंतनजीवी बनाने वाला यह महापुरुष है। इसलिए उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकते।

इसलिए रामचरितमानस है संसार के सबसे बड़े कंगाल का सबसे बड़ा महान् दान। इसलिए भगवान् के पास सिर्फ प्रार्थना करता है। हे भगवान्! जीवन में मैंने जो पाया है मेरा दान उससे अधिक होवे। हम संसार से लेते हैं ज्यादा और देते कुछ भी नहीं। किन्तु देना ही जीवन की सार्थकता है, कृतार्थता है।

हमारे पूर्व पुरुष तो हमारे लिए वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराणादि-शास्त्रों के साथ एक महान् संस्कृति हमको दे गए। किन्तु, हम लोग अपने भविष्य के वंशधरों के लिए क्या रखकर जा रहे हैं? हिन्दू समाज को बचाने के लिए श्रीराम-कृष्ण, ऋषि-मुनिगण तो सर्वस्व दे गए। किन्तु, हम लोग क्या देकर जा रहे हैं जिससे हिन्दू समाज की रक्षा होवे, उसकी सभ्यता संस्कृति का विकास होवे। इसलिए हमारा एकमात्र कर्तव्य है कि हम लोग सभी अपने जीवनपुष्प को भारत माता की पूजा की वेदी पर अर्पण करें।

संसार में वही पूज्य है, वे ही धन्य हैं जो दे तो गए सब कुछ, पर प्रत्याशा कुछ भी नहीं की। श्रीकृष्ण कारागार में जन्मे, कोई भी उसके मंगल गीत नहीं गाये गये। टेलीग्राम करके किसी ने बधाई नहीं भेजी। षष्ठी के दिन पूतना स्तनों में विष लेकर हाजिर। किन्तु, कृष्ण मरे नहीं। समस्त विद्रोह को स्तब्ध कर शेषपर्यन्त धर्मराज्य की प्रतिष्ठा करके गए।

मेरा एक प्रगतिशील लेखक मित्र है। वे स्वयं को कम्युनिस्ट एवं प्रगतिशील विचारधारा का उत्तराधिकारी मानते थे। मेरी कथा सुनकर एक कविता कही—

तन की हविस मन को गुनहगार बना देती है
बाघ के बाघ को शर्मसार बना देती है।
ओ भूखे पेट को कुरबानी सिखाने वालों
भूख इंसान को गद्दार बना देती है।

मैंने कहा—आपकी रुबाई तो उत्तम है। किन्तु, उसका भाव हलका है। उन्होंने कहा कैसे? मैंने कहा—सुनो!

तन की क्षुधा मन के इरादों को
गिरा सकती नहीं।
भूख की ज्वालायें आदर्शों को
खा सकती नहीं
घास की रोटी खाने वाले
प्रताप और तुलसी को
भूख हरगिज गद्दार बना सकती नहीं।

हां, वे घास की रोटी खाते थे। किन्तु, फिर भी वे देशद्रोही नहीं बने। देश को अपना अमर दान दे गए।

तुलसीदासजी के समय दयनीय स्थिति थी राजपूतों की। उन्हें यह बोध ही नहीं रह गया था कि कौन स्वदेशी है? कौन विदेशी है या अराष्ट्रीय है? कौन इस देश की रक्षा और निर्माण में लगे हैं? कौन इस देश की संस्कृति को नष्ट कर देश को विदेश बनाने में लगे हैं? यही स्थिति आज पूरे भारत की हो रही है—पता ही नहीं चल पा रहा कि भारत भारत के रूप में शेष रहेगा भी या नहीं।

सुभद्रा कुमारी चौहान के शब्दों में—

आशा की लता शुष्क हो गई है, झुलस गई है।
लोग उदास निराश हो गए हैं। भारत का क्या होगा?
हिन्दुत्व बचेगा या नहीं, देश का क्या होगा?
हमारी आने वाली पीढ़ी का क्या होगा।
लोग हताश निराश हो गए हैं।
हे प्रभु! फिर भेज दो एक तुलसी एक तुलसी।

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी।।1।।
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा।।2।।
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा।।3।।
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा।।4।।
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहिं जानि अनाथा।।5।।
मैं एक, अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा।।6।।
भागेहु नहिं नाथ! उबारा। रघुनायक, करहुँ सँभारा।।7।।
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा।।8।।
चिंता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा।।9।।

—श्री गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित

विनय पत्रिका

पद-संख्या 125

× × ×

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।1।।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी।।2।।
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं।।3।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो।।4।।

—श्री गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित

विनय पत्रिका

पद-संख्या 174

स्वामी विवेकानन्द तथा उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान

विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द हमारे स्फूर्तिदाता, प्राणदाता, हमारे मान रक्षक, मार्गदर्शक एवं आने वाले सभी युगों के लिए हमारे गौरव एवं गरिमा के अमर देवता बन गए हैं।

इन महानतम युगपुरुष ने जहां संसारभर में भारतमाता के मुख को उजागर किया वहीं अपने सत्य के महान् संदेश से समस्त भूमण्डल को हिला कर दिखा दिया।

भारत की राष्ट्रीय एकता के तो वे मूर्तिमान अवतार ही थे। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में **'अभिनव भारत को जो कुछ कहना था, वह विवेकानन्द के मुख से उद्गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया।....विवेकानन्द वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता तथा उपनिषद् और विज्ञान सबके सब समाहित होते हैं।'** श्री दिनकर पुनः कहते हैं, 'जिस स्वप्न के कवि विवेकानन्द थे, गांधी और जवाहरलाल उसके इंजीनियर हुए।'

स्वयं जवाहरलाल जी की साक्षी है, 'विवेकानन्द आधुनिक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे। तथा बाद में इस आन्दोलन में जिन भी लोगों ने भाग लिया उनमें से अधिकांश ने अपनी स्फूर्ति विवेकानन्द से ही प्राप्त की।'

नेताजी सुभाष—बलिदानी वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में, **'स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगाई। उनमें अतीत के प्रति गौरव और भविष्यत् के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान के भाव जगे हैं।'**

विश्व विजेता विवेकानन्द—लगभग 1000 वर्षों तक भारत के शीश पर इस्लाम की तलवार तनी रही। किन्तु, वह भारत की आत्मा को पराभूत न कर सकी। शताब्दियों तक भारत में शासन करने के पश्चात् भी इस्लाम भारत की

आत्मा पर शासन न कर सका। अंग्रेजों ने कूटनीति से भारत के मन एवं मस्तिष्क को बंदी बनाने का प्रयत्न किया। ऐसे समय में जब भारत अंग्रेजों की मानसिक गुलामी का शिकार हो रहा था उस समय जगत् विजेता स्वामी विवेकानन्द भारत के ज्ञानदाता एवं मुक्तिदाता बन कर आए। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के गढ़ के भीतर घुसकर अकेले ही समस्त पश्चिमी जगत् को पराभूत कर पश्चिम के वक्षस्थल पर भारत की श्रेष्ठता की छाप लगा दी।

मानसिक गुलामी की निंदा—पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं—'क्या दूसरों की हां में हां मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, दूसरों का ही मुंह ताक कर, इस दासों की-सी दुर्बलता, इस घृणित निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगे? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे? ऐ भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। भूलना नहीं कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ हैं शंकर हैं। मत भूलना कि तुम्हारे विवाह, धन और जीवन, व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है। अपितु माता के लिए बलि स्वरूप रखे गए हैं।'

स्वामीजी का भारत-भक्ति से आप्लावित हृदय पुकार उठा—'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। भारत की मिट्टी ही मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।'

राष्ट्रीय एकता का आधार—स्वामी विवेकानन्द के मत में राष्ट्रीय एकता के लिए धर्म एवं आध्यात्मिकता का आधार आवश्यक है। वे कहते हैं—'शताब्दियों से होते आने वाले आघातों को झेलकर भी हम टिके रह सके, इसका एकमेव कारण यह है कि हम सदैव स्वधर्म के प्रति सजग रहे और उसके लिए निरन्तर अपने सर्वस्व की बलि चढ़ाते रहे। हमारे पूर्वजों ने दृढ़ता से समस्त आपत्तियों को झेला। सहर्ष मृत्यु का भी वरण किया। पर अपने स्वधर्म की रक्षा की। विदेशी विजेताओं ने एक-एक करके हमारे मंदिरों को भूलुण्ठित किया। किन्तु, जैसे ही वह झंझा का झोंका गया, उन मंदिरों के शिखर पुनः आकाश को छूने लगे। आज भी गुजरात के सोमनाथ सरीखे और दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिर हमें अपने जातीय इतिहास के आन्तरिक स्वरूप का वह भव्य दर्शन कराते हैं, जो हमें लाख ज्ञान की पुस्तकों में भी न मिल सकेगा। हम देखें उन मंदिरों की ओर। उन पर परकीयों के सहस्रों आक्रमणों और हमारे सहस्रों पुनरुत्थानों की कहानियां अंकित हैं। आक्रमण पर आक्रमण होने पर भी हर बार आक्रमणकारियों से ध्वस्त मंदिर अपनी पूर्व विभा और शक्ति के साथ खण्डहरों में से जाग उठे। यही है हमारा राष्ट्रीय दृष्टिकोण। यही है हमारी राष्ट्रीय जीवनधारा। हम इसका अनुसरण करेंगे तो इसी से हमारे वैभव का पथ प्रशस्त होगा। भावी भारत के निर्माण के लिए

समय की चट्टानों के बीच से हमें जो प्रथम पग चलना होगा, वह है एकीकरण का। हममें से प्रत्येक को यह संदेश सुनाया जाए कि हम हिन्दू हैं। अब समय आ गया है कि हम अपने अस्तित्व की रक्षणार्थ क्षुद्र-भेदों और आपसी कलह को भूल जाएं। बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों का संकलन ही भारत की सच्ची राष्ट्रीय एकता होगी। भारतीय राष्ट्र का अधिष्ठान आध्यात्मिक स्वरों से झंकृत होने वाले हृदयों की एकता पर ही होगा।'

स्वदेश-भक्ति की कसौटी—स्वामी विवेकानन्द की स्वदेश भक्ति की कसौटी भी बड़ी अनूठी रही है। भारत के गौरवसर्वस्व वे महापुरुष कहते हैं—'मैं स्वदेश भक्ति में विश्वास करता हूं। पर स्वदेश भक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़ा काम करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचार शक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हमको थोड़ी दूर अग्रसर कर देती है और फिर वहीं ठहर जाती है। किन्तु, हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है। प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत् के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अत: मेरे भावी संस्कारको! मेरे भावी देश-भक्तो! तुम हृदयवान बनो। क्या तुम समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशु तुल्य हो गई हैं? क्या तुम हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भांति भूखों मरते आ रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझ कर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम इससे अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना रक्त में मिलकर तुम्हारी धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिलीं हैं? क्या उसने तुम्हें कभी पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें दरिद्रता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम-यश, सम्पत्ति, यहां तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गए हो? तब जानो कि तुमने स्वदेश भक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है।'

एक के पीछे जितना शून्य लगायेंगे उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ेगी। एक को हटा लो तब शून्य की कोई शक्ति नहीं रहेगी। इसलिए मैं कहता हूं एक को पहले बैठा लो। एक है ईश्वर और शून्य है विज्ञान, समाजसेवा आदि। ईश्वर को छोड़कर ये सब करने से फलप्रद नहीं होगा। ईश्वर की प्रार्थना करके ही सबकुछ करना है।

—**रामकृष्ण परमहंस**

महामानव : स्वामी रामतीर्थ

''हे वाणी! तुझमें उस अलौकिक आनन्द को वर्णन करने की शक्ति ही कहां है? धन्य हूं मैं! कृतकृत्य हूं मैं!!... मैंने दिल खोल कर उस अपने दुलारे का आलिंगन प्राप्त किया है। अहो! यह आँसुओं की झड़ी है कि अभेदता का आनन्द दिलाने वाली वर्षा ऋतु? ऐ शीश! तेरा होना भी आज सफल हुआ। आँखो! तुम भी धन्य हो गईं! कानो! तुम्हारा पुरुषार्थ भी पूरा हुआ! यह आनन्दमय मिलन, मुबारक हो! मुबारक हो!! मुबारक हो!!! ''मुबारक'' शब्द भी आज कृतार्थ हो गया!!... अरे नेत्रो! तुम्हारा यह झर-झर बरसना धन्य हो!! यह मस्ती भरे मेरे नयनों का सावन धन्य हो।...आज मैं स्वयं प्रेमी, स्वयं प्रेमिका, और स्वयं प्रेम ही बन गया हूं। जिधर ही दृष्टि उठाता हूं, पत्ता-पत्ता मेरा स्वागत करता है, प्रत्येक फूल मेरे अभिनन्दन में झूम-झूम कर गाता है—'तत्त्वमसि! तत्त्वमसि! वह तू ही है, वह तू ही है।'

क्या ये उद्‌गार किसी वैदिक ऋषि के हैं अथवा उपनिषदों के किसी ब्रह्मवेत्ता मुनीश्वर के? नहीं, यह उस महान् आत्मा की वाणी है, जो ऋषि-मुनियों के इस पवित्र देश में, ब्रह्म तेज के जाज्वल्यमान सूर्य के रूप में, आज से 83 संवत्सर पूर्व अवतरित हुई। हमारे दुःख, दैन्य, दास्य और दौर्बल्य को समूल भस्म कर हमें मुक्ति का आलोक-पथ दिखाने के लिए धरा पर प्रकटी!

सत्य के आमने-सामने खड़े होकर उसने सत्य का साक्षात्कार किया था। वह स्वयं ही शाश्वत सत्य बन गया। उसकी सर्वत्र जय-जयकार हुई। उसने प्रेम की मदिरा को जी भर कर पीया। वह स्वयं मूर्तिमान प्रेम ही बन गया। उसकी अलौकिक मस्ती के फव्वारे सारे विश्व को पावन करने वाले थे। संसार के कोटि-कोटि जनों को आत्मानन्द का अमृत बांटने वाले उस सुशील संत का नाम था—स्वामी रामतीर्थ। जिनके महानिर्वाण की पावन अर्द्ध-शताब्दी के उपलक्ष्य में हमारा देश दीपमालिका के पुनीत पर्व पर, परम श्रद्धा के साथ उनकी सुभग अर्चना कर रहा है।

कोटिशःवन्दित, ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ परमहंस वर्तमान युग में भारत की प्राचीन गौरव-गरिमा के जीते-जागते प्रतीक थे। यह वर्तमान युग स्वयं उस

ऋषि-तुल्य लोकनायक के पावन पदचिह्नों से आलोकित हो उठा है। वह विलक्षण महापुरुष जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य की भांति ही आया था, केवल 33 वर्ष की ही अल्पायु लेकर। किन्तु, इतने थोड़े समय में ही वह हमारे अन्तस्तल पर अपने स्वर्गीय व्यक्तित्व की ऐसी अमिट छाप छोड़ गया कि आधुनिक भारत की कोई भी कहानी उसकी अर्चना के बिना अधूरी रहेगी।

जीवन-वृत्त

प्रथम रश्मि

हमारे धर्म-प्राण देश भारतवर्ष के शीर्षभाग में स्थित पंजाब प्रदेश को अनादि-काल में वैदिक ऋचाओं का मंगल-गान कर सर्वप्रथम मानव सभ्यता की मशाल जलाने का श्रेय प्राप्त है। अनेकानेक ऋषि-मुनियों की चरण-रज से पवित्र हुई उस पुण्यस्थली में, लाहौर के निकट जिला गुजरांवाला में स्थित मुरारीवाला नामक छोटे-से गांव में, सन् 1872 में इस महान् विभूति का जन्म हुआ। जिनके यश में सहसा मुख से निकल पड़ता है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन,
अपार संवित्सुखसागरेऽस्मिंल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।

अर्थात् जिसका चित्त ब्रह्मानन्द के अपार सुख-सागर में लीन रहता है, उसके जन्म से तो उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जन्मदात्री माता धन्य-धन्य हो गई, तथा सारी धरती ही पुण्य-पावन हो उठी।

'श्री रामचरितमानस' के अमर गायक जनगण-पूजित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास के पावन-कुल में गोसाईं हीरानन्दजी के गृह में दीपमालिका के कोटि-कोटि दीपों के प्रकाश में यह कुल-दीपक अवतरित हुआ—केवल अपने वंश, जाति और देश का ही नहीं वरन् समूची मानवता का मुख उज्ज्वल करने के लिए।

शैशव की झांकी

इस विलक्षण बालक 'तीर्थराम' के भाग्य में अपनी वात्सल्यमयी माता की शीतल छाया न लिखी थी। केवल एक वर्ष के दुधमुंहे बच्चे को प्रायः निराश्रय छोड़ कर माता स्वर्ग सिधारीं। सब भूतों की माता, गो-माता के अमृतमय दुग्ध पर इस तेजस्वी बालक का पालन-पोषण हुआ। अपनी वृद्धा बुआ की गोदी में यह 'भावी ब्रह्मवेत्ता' मन्दिरों में जाया करता। अपने नन्हे-नन्हे नेत्रों से देव-दर्शन करता। उसके कोमल कर्ण-रंध्रों में रामायण, महाभारत, भागवत इत्यादि पावन गाथाओं की अमृतवाणी प्रवाहित होती और अपनी तुतली वाणी से वह ॐ ॐ गाने लगता। केवल डेढ़ वर्ष की अवस्था का वह अद्भुत बालक मन्दिरों की आरती की ध्वनि की ओर स्वाभाविक रूप से खिंचने लगा। शंख की ध्वनि में उस

ब्रह्मज्ञानी बालक को ओंकार की पवित्र ध्वनि सुनाई देती। रोता हुआ बालक भी शंख-ध्वनि को सुन कर चुप हो जाता, उसका तन-मन रोमांचित हो उठता। तीन वर्ष की अवस्था में एक बार उसके पिता उसे एक कथा में ले गए। दूसरे दिन कथा का समय आते ही बालक मचलने लगा। रो-रो कर उसने आकाश-पाताल एक कर दिया। कथा में पहुंचकर बालक का मुख-मण्डल प्रफुलित हो उठा। यह है उस महान् व्यक्तित्व की नन्ही-सी झलक। जिसने कालान्तर में वेदान्त का प्रखर सूर्य बन कर सारे संसार को आलोकित कर दिया।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

गृहस्थी के तंतु

देश की पतनोन्मुखी होती कुरीतियों के कारण केवल दो वर्ष की अवस्था में ही भगवत् कथाओं के लिए मचलने वाले इस होनहार बालक की सगाई वजीराबाद जिले के पं. रामचन्द्र की सद्यः जाता कन्या से हो चुकी थी तथा केवल 10 वर्ष की अल्पायु में 'गुड्डे-गुड़िया का यह विचित्र विवाह' भी सम्पन्न हो गया। किन्तु शुकदेव, वामदेव, अष्टावक्र, बुद्ध तथा आचार्य शंकर की दिव्य परम्परा में उत्पन्न होने वाले इस ब्रह्मज्ञानी को जगत् के माया-जाल की शृंखलाएँ कब तक बाँधकर रखने में समर्थ हो सकती थी? अपने 33 वर्ष के अत्यल्प जीवन-काल में ही उसने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास, चारों आश्रमों का विधिवत् पालन कर अन्त में ब्रह्मानन्द के परम पद को प्राप्त करने का अभूतपूर्व चमत्कार भी कर दिखाया।

ज्ञान-साधना

बचपन की शिक्षा में ही इस क्रान्तदर्शी महापुरुष ने अपने अलौकिक भविष्य की एक झलक-सी दिखा दी थी। उसकी अलौकिक बुद्धि, अपूर्व मेधा तथा सुशील वाणी अध्यापकों के मन पर अपना प्रभाव अंकित किए बिना न रही। जिन मौलवी साहब से इनने प्राइमरी शिक्षा प्राप्त की उन्हें गुरुदक्षिणा में अपने घर की दूध देने वाली भैंस दे देने के लिए उसने पिता से अनुरोध किया। गुजरांवाला में अंग्रेजी शिक्षा के लिए भेजते समय इनके पिता ने इस 'विवाहित' बालक को अपने मित्र धन्नारामजी के संरक्षण में छोड़ा। श्रीमान् धन्नारामजी, एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा कई यौगिक सिद्धियों के स्वामी थे। बालक तीर्थराम ने श्रद्धा से उन्हें गुरु माना तथा उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया। यह बात शत-प्रतिशत सत्य है कि बालक तीर्थराम के हृदय में भगवद्भक्ति का जो कोमल बिरवा प्रारम्भिक जीवन में आरोपित हो चुका था, वह भक्त धन्नारामजी की छत्र-छाया में उनके स्नेह से सिंचित तथा ज्ञान से पोषित होकर पल्लवित तथा पुष्पित होने लगा। अनुभवी, सिद्ध एवं महात्मा धन्नारामजी बालक तीर्थराम के भीतर कुछ भावी महानता की

आभा का आभास पा गए। ऐसे गुरु की भक्ति से तीर्थराम की तो काया ही पलट गई। गुरु के चरणों में अपना प्रथम प्रणाम करने के दिन से लेकर सौभाग्य की उस घड़ी तक जब सारा संसार उसके अपने चरणों की धूलि लेने के लिए लालायित हो उठा था, उनकी श्रद्धा-भक्ति धन्नारामजी के चरणों में एक जैसी ही रही। वे अपने पत्रों में प्रायः उनको इन शब्दों में सम्बोधन करते—

सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, आनंदामृत, शान्ति निकेतन मंगलमय,
शिवरूपं, अद्वैतं, अतुलं परमेशं, शुद्धं, अपापविद्धं।।

अपूर्व थी गुरु-भक्ति उस महापुरुष की जो स्वयं विश्व का गुरु बनने के लिए अवतीर्ण हुआ था।

अपने विद्यार्थी-जीवन में इस कोमलकाय बालक को निर्धनता के महा भयंकर दैत्य से भी खूब जूझना पड़ा। प्रायः निर्धनता की भयंकर अग्नि में मानव के हृदय की आशा-रूपी वल्लरी झुलस-सी जाती है। किन्तु धन्य है गोसाईं तीर्थराम। **घोर से घोर विपत्तियों से दुर्धर्ष संग्राम करते हुए भी उनके हृदय में अहर्निश जलने वाली ज्ञान-साधना की लौ कभी बुझने न पाई।** निरन्तर 12 वर्ष के इस देवासुर संग्राम में भी उनके मुखमण्डल की मधुर मुसकान तथा हृदय की पावन ज्ञान-पिपासा कभी मन्द न हुई।

कॉलेज की पढ़ाई के लिए लाहौर आए हुए गोसाईं तीर्थराम अविभाजित पंजाब की राजधानी लाहौर की बच्छोवाली नामक एक गंदी-सी गली में एक रुपया मासिक पर किराये की कोठरी में रहते थे। भोजन के लिए 3 पैसे रोज की भठियारे की रोटियों पर गुजारा करते थे। प्रातः दो पैसे की रोटी तथा दाल तथा सायं एक पैसे की रोटी तथा दाल। यही था उस महान् विभूति का भोजन, जो संसार में 'शहंशाह राम' बनने के लिए पैदा हुआ था। जब दुकानदार ने एक पैसे की रोटी के साथ दाल देने से इनकार कर दिया तो गोसाईं तीर्थराम ने शाम का खाना ही बन्द कर दिया। कई बार एक समय का भोजन वह इसलिए नहीं खाता कि रात्रि को तेल के लिए पैसे बच जाएं। वह अद्‌भुत युवक, प्रायः कई दिनों तक भूखा रहकर भी मुस्कराता रहता। इस 'शहंशाह' के पास न पहनने को कोट था, न पतलून, न नैकटाई। फीस के लिए पैसे तक भी न थे। घर से कानी कौड़ी भी मदद के लिए न मिल पाती थी। वह कर्मवीर अपनी स्वयं की पढ़ाई के अतिरिक्त खाली पेट ही कई ट्यूशनें पढ़ाने जाता। ट्यूशनों के पैसे तथा वज़ीफ़े के पैसे मिलाकर भी मुश्किल से भोजन तथा पढ़ाई का गुजारा चल सकता था। पर यह धैर्यशील-शूरवीर बालक इसमें से भी कुछ बचाकर घर भेज दिया करता। इस प्रकार घोर संकट की काली घटाओं के बीच भी मानवता की फुलवारी का यह अद्‌भुत प्रसून सदैव मुसकराता ही रहता। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में जो स्थितप्रज्ञ महात्मा के लक्षण

दिए गए हैं, गोस्वामी तीर्थराम उसके मूर्तरूप ही थे। निस्सन्देह उसके एक आदर्श उदाहरण!!

महानता की ओर

असाधारण प्रतिभा वाले इस बालक ने विद्यार्थी-जीवन में ही अनेकानेक ग्रंथों का अध्ययन कर लिया था। वह वेदान्त तथा उपनिषदों के मधुर श्लोक गाता रहता। फ़ारसी के मनीषी सूफी मौलाना रूमी तथा शम्स तब्रेज तथा अंग्रेजी के ऋषि-तुल्य साहित्यकार इमर्सन, गेटे, शैली और कार्लाइल इत्यादि के अध्ययन से गोसाईंजी ने एक विद्युत्मयी स्फूर्ति प्राप्त कर ली थी।

संसार के अधिकांश महापुरुषों की नाईं गोसाईं तीर्थराम को भी गणित जैसे सुस्पष्ट, पूर्ण और नियमबद्ध विषय से असीम प्रेम था। बिन्दु, शून्य अथवा वृत्त उनके लिए अनादि, अनन्त ब्रह्म के प्रतीक थे। गिनती के प्रथम अंक 1 तथा फ़ारसी वर्णमाला के प्रथम अक्षर अलिफ (एक) से उन्हें एक ईश्वर का बोध होता था। गणित में प्रयुक्त होने वाला अनन्त का चिह्न उनके लिए ईश्वर की असीम, अनन्त, अगाध शक्ति का सूचक था। जब वे स्वयं बी.ए. में पढ़ते थे तो गणित के विषय में वे विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी माने जाते थे। कुछ दिनों के लिए गणित के प्रोफेसर के बीमार पड़ जाने पर उन्हें कालेज की कक्षाओं में पढ़ाने के लिए भी कहा गया और इस कार्य में उन्होंने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया।

एक बार बच्छोवाली गली की तंग कोठरी में संध्या के समय धीरे-धीरे जलती हुई मोमबत्ती के सम्मुख बैठे हुए उस विलक्षण विद्यार्थी ने प्रतिज्ञा की कि 'सूर्योदय से पहले-पहले यदि वह बिना किसी प्रोफेसर या पुस्तक की सहायता के गणित के चार अत्यन्त कठिन प्रश्न हल न कर सका तो अपनी गर्दन को धड़ से अलग कर देगा।' इस प्रकार जान की बाजी लगाकर और अपने आसन के नीचे एक तेज खंजर रख कर वह वीरव्रती कार्य में जुट गया। अर्धरात्रि तक तीन प्रश्न हल हो गए। किन्तु, बार-बार प्रयत्न करने पर भी चौथा हल न हो सका। इधर उषा की स्वर्ण-रश्मियां झरोखे से झांकने लगीं। प्रण का पक्का राम तेज खंजर लेकर छत पर जा चढ़ा। खंजर की बारीक नोक गर्दन पर रख ली। तुरन्त थोड़ी-सी खरोंच बन गई और लाल रुधिर की बूँदें टपकने लगीं। किन्तु, उसी क्षण प्रश्न का हल स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ उनके नेत्रों के सामने चमकने लगा। राम ने तुरन्त उस प्रश्न को भी हल कर दिया।

इस प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी का नाम जब उसके अंग्रेज प्रिंसिपल ने सिविल सर्विस के लिए अपनी सिफारिश के साथ भेजना चाहा तो गोसाईं तीर्थराम की आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने कहा—

'मैंने इतनी मेहनत से ज्ञान का जो खजाना पाया है, वह मुंसिफ और जज बनकर अपराधियों के मुकदमे सुन-सुन कर फैसले देने में क्यों खो दूँ। इस **ज्ञान की दौलत को बांट कर अपने आप को और दूसरों को सुखी करना मेरा कर्तव्य है।'**

एक अन्य वार्तालाप में इस भावी लोक-शिक्षक ने अपने प्रिंसिपल को उत्तर दिया—

'यदि कोई इच्छा है तो यही कि अपना सारा जीवन और इस जीवन की हर साँस प्रभु की सेवा में लगा दूँ और मनुष्य मात्र की सेवा करूं। क्योंकि लोकसेवा ही ईश्वर सेवा है।'

केवल अपनी आत्मा के भरोसे ज्ञान-साधना के कठिन पथ पर निरन्तर बढ़ने वाले इस वीरव्रती की प्रतिभा बाधाओं के चक्रव्यूह में पड़कर भी कुंठित न हुई थी। एम.ए. (गणित) की परीक्षा में इस तेजस्वी परीक्षार्थी ने प्रश्न-पत्र में लिखित तेरह प्रश्नों में से नौ का उत्तर पूछे जाने के उपरान्त भी तेरह के तेरह प्रश्न हल करके नोट लिख दिया कि परीक्षक तेरह में से कोई से भी नौ प्रश्न देख लें। परिणाम घोषित होने पर गोसाईंजी प्रान्त भर में प्रथम रहे।

असाधारण प्रतिभा और उच्च योग्यता होने के उपरान्त भी गोसाईं तीर्थराम को बेकारी के भूत से भी खूब लड़ना पड़ा। उधर उनकी निरीहा बाल-पत्नी की चिन्ता भी उनको खाए डालती थी। दर-दर की ठोकरें खाने के पश्चात् गोसाईंजी को मिशन स्कूल, स्यालकोट में अध्यापक का स्थान मिला। उसी कालेज में जहां उसने पढ़ा था, (एफ.सी. कालेज, लाहौर में)। प्रोफेसर पद मिलने पर भुखमरी में पल कर बड़ा होने वाला यह उदार प्राणी कालेज के आल्मा-मेटर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए एक वर्ष तक लगातार अपना पूरा वेतन कालेज को अर्पित करता रहा।

धीरे-धीरे उनकी आर्थिक दशा सुधरने लगी। किन्तु अपनी चिरसंगिनी निर्धनता के बिछुड़ने पर गोसाईंजी अश्रुपात किया करते। अपने वेतन का कुछ भाग वे अपने स्वाध्याय के लिए धर्म और दर्शन की पुस्तकें खरीदने में व्यय करते। उसी वेतन में से वे कुछ निर्धन विद्यार्थियों की फीस देने में लगाते। अपना उदर-पोषण भी करते। सभा-सोसाइटियों को दान भी देते। अपने गुरु भक्त धन्नारामजी को भी कुछ न कुछ अवश्य भेजते तथा मुरारीवाला में अपने वृद्ध पिता तथा अपनी तरुण पत्नी तथा परिवार के निर्वाह के लिए भी भेजते।

वर्तमान युग में मनोवैज्ञानिक प्राय: कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने जीवन के पूर्व भाग में भुखमरी और कंगाली देखी हो, उसके पास जब धन आने लगता है तो वह अपने अभाव की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप या तो पैसे से खूब चिपक जाता

है, कृपण पूँजीपति बनता है, अथवा पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह करने वाला निर्धनों का प्रतिनिधि बन कर साम्यवाद के झण्डे के नीचे चला जाता है। किन्तु धन्य हैं स्वामी राम! अतिशय अभाव और कंगाली में पलकर भी वह महापुरुष कभी माया में लिप्त न हुआ। मनोविज्ञान के सारे सिद्धान्तों को एक ही बार में झूठा सिद्ध करते हुए वह वीतरागी प्रोफेसर धन की लिप्सा तथा वैभव की तुच्छ कामना से बहुत ऊँचा उठा हुआ महापुरुष सिद्ध हुआ।

जीवन के उषाकाल से ही जो दारुण दु:ख बालक तीर्थराम ने देखा था उसकी भट्ठी में तप कर वह कुन्दन बन चुका था। दु:ख को भी अपने लिए वरदान रूप बना लेने वाला वह विश्व इतिहास का अनोखा महापुरुष था। जब वह अपनी गरिमा के सर्वोच्च शिखर पर था तो स्वयं महानता उसके सम्मुख लज्जित हो जाती थी। भीषण दु:ख के दावानल में भी मुसकराने वाला तथा यश-वैभव की घड़ियों में शांत और गंभीर रहने वाला वह महापुरुष श्रीमद्भगवद्गीता का वह आदर्श पुरुष बन चुका था जिसके यश में आज से 5000 वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं गाया था—

इहैव तेर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

अर्थात्—'जिनका मन सुख-दु:ख आदि में सदा समान रहता है, उन्होंने तो जीते जी ही सारे संसार को जीत लिया है।' फिर संसार में रहते हुए भी संसार से लिप्त न होना तो ब्रह्मज्ञानी पुरुष का लक्षण है। श्रीमद्भगवद्गीता के आदर्श को यथार्थ में परिणत करने वाला उनका आत्मा प्राय: गुनगुनाया करता—

आदमी को चाहिए दुनिया में रहना किस तरह,
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कमल।

सर्व कृष्णमयं जगत्

ईसाइयों के कालेज में गणित पढ़ने वाले प्रो. तीर्थराम के अन्तस्तल में अनेक वर्षों से निरन्तर किसी गुप्त-स्रोत की नाईं एक दूसरा ही प्रवाह उमड़ता हुआ चला आ रहा था। कालान्तर में वही स्रोत जो उनके भीतर ही भीतर उबल रहा था अचानक कृष्ण भक्ति की प्रबल तरंग के रूप में, बड़े दुर्धर्ष वेग से बाहर फूट निकला। मीरा, सूर और चैतन्य की भांति, वे प्यारे मनमोहन के प्रेम में मतवाले रहने लगे। 'कृष्ण प्यारे' का नाम सुनते ही उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती। वंशी की प्यारी ध्वनि कानों में पड़ते ही वे वंशी वाले के ध्यान में बेसुध हो जाते। कृष्ण-प्रेम का नशा उनका इतना बढ़ गया कि कालेज में बोर्ड पर रेखागणित के चित्र बनाते-बनाते वे भगवान् श्रीकृष्ण के चित्र बना जाते। अब अपने प्रियतम के विरह में उन्हें सारा संसार निस्सार प्रतीत होने लगा। रावी नदी के

तट पर वे अपने प्राणेश्वर कन्हैया को ऊँचे स्वर में पुकारा करते। उसके विरहानल में तड़प-तड़प कर धरती पर लोट-पोट हो जाते तथा होश आते ही पुनः 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!!' कह कर रोने-तड़पने लगते। आकाश के श्याम मेघ को देखकर उन्हें अपने घनश्याम की याद आ जाती और वे कृष्ण-कृष्ण रटते हुए बेहोश हो जाते। एक बार मूर्च्छा हटने पर अपने सम्मुख काले नाग को फन फैलाए देखकर वे उसकी ओर लपके। क्योंकि उसके फन पर उन्होंने अपने प्यारे कन्हैया को नृत्य करते देखा था। प्रतिवर्ष वे मथुरा-वृन्दावन जाते और प्राण-प्यारे की अद्भुत लीलाओं का रसामृत पान करते।

गोसाईंजी की वाणी में उनके अन्तस्तल की गहनतम अनुभूतियां ही साकार हो उठती थीं। हृदय की भावनाएं जब हृदय के भीतर ही न समा सकतीं तो वे कविता के रूप में मुखरित हो उठतीं और वे गीत के माध्यम से नाच उठते—

जग कहता है, वह रवि ही है उसका चित्र मनोहर।
जग कहता है, मानव भी तो है उसकी छाया भर।
जग कहता है, वह चमका करता है तारागण में।
जग कहता है, वही सदा मुसकाता सुरभि सुमन में।
सुनता हूं, बुलबुल का गायन ही है उसका मधु स्वर,
सुनता हूं, है पवन गगन में उसकी साँस निरन्तर।
सुनता हूं, धन से झरता उसके ही नयनों का पानी,
सुनता हूं, जाड़ों की रातें ही उसकी नींद सुहानी।
सुनता हूं, कल-कल निर्झर है उसका ही गतिमय धावन।
इन्द्र-धनुष के झूले पर वह झूल रहा मन-भावन।

इन्हीं दिनों शिमला, लखनऊ, अमृतसर, मथुरा, पुष्कर आदि स्थानों पर उनके हृदयस्पर्शी भावपूर्ण व्याख्यान हुए। उनके अमित प्रेम से पूरित भक्ति की स्रोतस्विनी निर्बाध गति से बह कर श्रोताओं को प्रेमाप्लावित कर देती। लाहौर में 'इश्के-इलाही' पर भाषण देते हुए इतने रोये कि उन्हें हिचकियां आने लगीं। पेशावर में 'तृप्ति' पर व्याख्यान देते हुए भाव-विह्वलता के कारण कुछ देर तक उनके मुख से एक शब्द तक भी न निकल सका। ऐसे भावपूर्ण व्याख्यानों को सुनकर नारायण स्वामी का मन-मधुकर भी गोसाईंजी के पाद-पद्मों में लुब्ध हो जाता।

गोसाईंजी के हृदय की भक्ति की इस उद्दाम तरंग ने शीघ्र ही अन्तस्तल के कपाटों को खोल कर उन्हें ज्ञान और वैराग्य के उन्मुक्त आंगन में लाकर खड़ा कर दिया। सन् 1896 में द्वारिका मठ के अधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य (श्री माधव तीर्थ) लाहौर पधारे। उन जैसे रत्न-पारखी ने गोसाईंजी की भक्ति की तह में छिपे महानता

के बीजों का परिचय पा लिया। उन्होंने गोसाईंजी को बड़े प्रेम से उपनिषद् और वेदान्त शास्त्र पढ़ाना शुरू किया। परिणामत: गोसाईंजी का मनमोहन कन्हैया सारे विश्व में, विश्व के रोम-रोम में व्याप्त एक ही निखिल निरंजन परब्रह्म के रूप में, उनके अन्तस्तल में बस आत्माराम हो गया। गोसाईंजी का अब यह कार्यक्रम बन गया कि गर्मी की छुट्टियों में वे उत्तराखण्ड जाते और आत्मचिन्तन में तल्लीन रहते।

दीवाली का अद्भुत जुआ

अपने लघु-जीवन की 24वीं वर्षगाँठ पर, सन् 1897 की दीपमालिका के पुनीत पर्व पर गोसाईंजी ने एक पवित्र संकल्प किया। उनकी पावन आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए छटपटाने लगी थी, उन्होंने अपने पिता को पत्र में लिखा—

'आपके पुत्र तीर्थराम का यह शरीर तो अब बिक गया। वह ईश्वर के हाथों बेच डाला गया। आज दीपावली है, मैंने जुआ खेला है। अपना शरीर जुए में हार बदले में परमपिता परमात्मा को जीत लिया है।'

इसके एक मास पश्चात् भारत-गौरव स्वामी विवेकानन्द लाहौर पधारे। विश्व में वेदान्त की विजय-वैजयन्ती को फहराने वाले इस अमित तेजस्वी लोक-शिक्षक की ओजस्विनी वाणी इस उठते हुए साधक तीर्थराम के हृदय पर जादू का असर कर गई। ब्रह्म-तेज के इस मूर्तिमान अवतार के दर्शन कर गोसाईंजी के मन में स्वामी विवेकानन्द की ही भांति विश्व में वेदान्त-प्रचार की हृदयस्थ लालसा और भी बलवती हो उठी।

अब उनके जीवन का रंग-ढंग ही कुछ बदल गया। आठों प्रहर आत्मानन्द में वे लीन रहते थे। दिसम्बर 1897 में गुरु धन्नारामजी को उन्होंने लिखा—

मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं देह हूं, तू प्राण है।
अब कोई यह ना कह सके, मैं और हूं, तू और है।

परम सत्य का साक्षात्कार

अब आत्म-ज्ञान का यह अमर साधक अमृत के झरने के बहुत निकट पहुंच चुका था। सन् 1898 की गर्मी की छुट्टियों में गोसाईंजी गिरिराज हिमालय की ओर चल पड़े। हरिद्वार से ऋषिकेश जाते समय जो पैसे उनके पास थे, वे साधु-महात्माओं को बाँट दिए और अपने साथ उपनिषद् आदि ग्रंथ लेकर आत्म-साक्षात्कार की सर्वोच्च साधना के लिए निकल पड़े। ब्रह्मपुरी होते हुए आप तपोवन पधारे। यहां पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर उन्होंने संकल्प किया कि 'यदि अभी-अभी आत्म-दर्शन न हुआ तो इस जीवन का अन्त कर डालूंगा।' इस सत्य-संकल्पी साधक ने जब सिद्धि के प्राप्त होने में कुछ विलम्ब देखा तो तुरन्त अपनी कंचन-काया को भगवती गंगा की उत्ताल तरंगों को भेंट कर दिया।

किन्तु माता गंगा को अभी प्यारे पुत्र को अपने अंक में समा लेना स्वीकार न था। गंगा थोड़ी देर तक अपने इस प्यारे लाड़ले से क्रीड़ा करती रहीं फिर उसे दुलार से निकट ही एक शिलाखण्ड पर सुला दिया। कुछ घण्टे पश्चात् गोसाईंजी उठे और आत्मानन्द की अलौकिक मस्ती से नृत्य करने लगे। इसी पावन घड़ी में उन्होंने जीवन की चिर-अभिलषित अपनी साध को पूर्ण होते पाया। उनके ज्ञान-चक्षु खुल गए और सत्य का उन्होंने आमने-सामने खड़े होकर आलिंगन किया। स्वयं सत्य-स्वरूप बनकर वे ब्रह्मानन्द में झूमते हुए गाने लगे—

न है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजू है,
कि वहदत में साकी, न सागर, न बू है।
मिली दिल की आँखें जभी मारफत की,
जिधर देखता हूं सनम रू-बरू है।
गुलिस्तां में जाकर हर इक गुल को देखा,
तो मेरी ही रंगत व मेरी ही बू है।
दुई मिट गई और हुए एक ही हम,
रही कुछ न हसरत, न कुछ आरजू है।

इस धन्य घड़ी का वे वर्णन करते हुए कहते हैं—

'जिधर भी मैं दृष्टि उठाता हूं, पत्ता-पत्ता मेरा स्वागत करता है। प्रत्येक फूल मेरे अभिनन्दन में झूम-झूम कर गाता है—'तत्त्वमसि! तत्त्वमसि! वह तू ही है। वह तू ही है।

इन्हीं दिनों अपने पूज्य पिता के एक पत्र के उत्तर में उन्होंने हिमालय की गोद से ही लिखा—

'भीतर निजानन्द के उफान की धूमधाम है और बाहर माता जाह्नवी के प्रवाह का संगीत! भीतर शान्ति का महासागर है और बाहर कल्याण का साम्राज्य!!... मेरे मस्तिष्क का मानसरोवर शान्ति से भरा हुआ है और आनन्द की धारा मेरे हृदय से बह निकली है। मेरा रोम-रोम आनन्द सागर में डूबा हुआ है। विष्णु के हृदय में शान्ति का ऐसा अनन्त सागर उमड़ा कि वे उसे अपने वक्षस्थल में न संभाल सके। इसलिए वह उनके चरणों से पवित्र सलिला गंगा की धारा रूप में बह निकला। विष्णु की ही तरह आज तीर्थराम नारायण स्वरूप हैं, शिव-रूप हैं।'

ग्रीष्मावकाश समाप्त होने पर गोसाईंजी लौट कर लाहौर तो आए पर अब उनका रंग-ढंग ही कुछ निराला था। उनके गौर-वर्ण मुख पर ब्रह्म-तेज की अलौकिक छटा थी। उनकी वाणी में कुछ जादू पैदा हो गया था। उनका व्यक्तित्व प्रकृति माता की पावन शुचिता तथा सात्त्विकता का साकार रूप था। जिसने अमृत

के झरने के पास बैठकर जन्म-जन्म की प्यास मिटा ली हो। उसे निगोड़ी छाछ कैसे लुभा सकती है? गोसाईंजी तो जीवन्मुक्त हो चुके थे। जब भक्त धन्नारामजी ने उन्हें उनके द्वितीय पुत्र के जन्म पर बधाई का पत्र लिखा तो इस स्थितप्रज्ञ महामानव ने उत्तर दिया—

'समुद्र में एक नदी और आन पड़े तो कोई अधिकता नहीं हो जाती और यदि कोई न पड़े तो कोई न्यूनता नहीं हो सकती। किसी प्रकार का हर्ष या शोक हम क्यों करें। हम ज्ञानी नहीं, स्वयं ज्ञान हैं।'

आत्मानन्द की मस्ती बढ़ जाने के कारण गोसाईंजी ने क्रिश्चियन कालेज की छह घंटे की नौकरी छोड़ कर ओरियण्टल कालेज में दो घंटा मात्र कार्य करना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे उनके लिए इतना समय निकालना भी कठिन हो गया। अगले वर्ष सन् 1899 की गर्मी की छुट्टियों में गोसाईंजी पुनः हिमालय की यात्रा के लिए निकले। इस बार वह केवल एक अधोवस्त्र धारण किए हुए नंगे ही बदन, अमरनाथ तीर्थ की 18,000 फुट ऊंची चोटी पर जा पहुंचे। गिरिराज के दर्शन के पश्चात् उनके मन में समुद्र-दर्शन की भी एक तीव्र लालसा जाग उठी और वे तुरन्त उसी मस्ती के साथ कराची जा पहुंचे। गिरिराज के गगनचुम्बी हिम-शृंगों से आत्मीयता रखने वाले इस क्रान्तदर्शी महात्मा को सागर की अनन्त-अगाध जल-राशि में भी अपनी आत्मा का ही दर्शन हुआ। सच तो यह है कि हिमालय और वरुणालय से पावन स्नेह सम्बन्ध जोड़ने वाला यह महापुरुष हिमालय के समान ही ऊँचा तथा सागर के समान ही धीर-गंभीर था।

इस बार लाहौर लौटने पर उन्होंने संसार के बचे-खुचे ढीले बंधनों को भी सांप की केंचुल की नाईं त्याग देने का विचार कर लिया। कुछ समय तक श्री नारायण दास (जो पीछे नारायण स्वामी बने) और लाहौर के डिस्ट्रिक्ट नाजिर गोसाईंजी के पास रात्रि के समय उपनिषद् पढ़ने आया करते थे। स्वामीजी की प्रेरणा से 'अलिफ' नामक वेदान्त-विषयक पत्र शुरू किया गया। किन्तु गोसाईंजी के अन्तस्तल का ज्वार इन प्रणालियों में बंध कर चलने वाला नहीं था। अब उनके लिए गृहस्थ आश्रम के छोटे से घरौंदे में रहना ही असम्भव हो गया।

महाभिनिष्क्रमण

जुलाई सन् 1900 में जब उनका मन लाहौर की गलियों से ऊब गया तो एक ही झटके में वे कालेज की प्रोफेसरी त्याग लाहौर नगर को, रावी को और स्नेह-सिंचित संसार को ठुकरा कर विजन के वासी बन गए। वानप्रस्थी बनकर वे हिमालय की ओर चल पड़े। उनके इस महाभिनिष्क्रमण का दृश्य बड़ा करुणाजनक था। अपने प्यारे गोसाईंजी को वनवासी बनता देख कर सारा पंजाब रो पड़ा। लाहौर

के स्टेशन पर लाखों लोग अश्रु-विगलित नेत्रों से उस दिव्य पुरुष की झांकी को निहार रहे थे और उन्हीं का रचा हुआ विदाई गीत गुनगुना रहे थे—

अलविदा मेरी रियाजी! अलविदा!!
अलविदा, ऐ प्यारी रावी! अलविदा!
अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन! अलविदा!
अलविदा ऐ शीत उष्ण! अलविदा!
अलविदा अय दिल! ख्याले अलविदा!
अलविदा राम! अलविदा-ए-अलविदा!

मोहवश उनकी धर्मपत्नी अपने दो बच्चों को गोदी में लेकर उनकी शिष्य मण्डली में एक शिष्य की नाईं उनके पीछे हो ली। स्वामीजी ने रोका नहीं। हरिद्वार पहुंचकर उस दिव्यात्मा राम ने सब पैसे गंगा में फिंकवा दिए और सब को ईश्वरोपासना का आदेश दिया। देव-प्रयाग होते हुए जब इस छोटी-सी यात्रा-मण्डली ने टिहरी में पहुंच कर पड़ाव किया तो रात्रि के समय सबको वहीं सोता छोड़कर गोसाईंजी चुपके से अकेले ही निकल गए और वहां से 50 मील दूर उत्तर-काशी की ओर नंगे सिर, नंगे पांव चल पड़े। छह माह पश्चात् सन् 1901 में पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर उन्होंने विधिवत सिर मुंडवा कर काषाय वस्त्र धारण कर लिया। जीवन्मुक्त गोसाईं तीर्थराम अब परमहंस स्वामी रामतीर्थ बन गए। कल्याण मार्ग के ये महापथिक स्वामी रामतीर्थ संन्यासी के भगवे परिधान में एक दूसरे सूर्य के समान प्रतीत होते थे। सब भूतों में अपनी ही आत्मा के दर्शन करने वाले स्वामी राम बीहड़ों-जंगलों में शेरों और चीतों से प्रेमालिंगन करते रहते और बड़े भयंकर हिंस्र-जन्तु उनके चरणों में आकर खेलते रहते थे। हिमालय में कुछ काल आत्म-चिन्तन करने के उपरान्त जब वे पुनः मैदानों में उतरे तो भारतीय जनगण को ऐसा भान हुआ कि कोई अमित तेजस्वी देवता ही स्वर्ग से उतर आया है। लखनऊ के केसरबाग में जिन सज्जनों को उनके अमृत-तुल्य उपदेशों को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनमें से कुछ जो अब तक जीवित हैं, आज भी उन स्वर्गीय दृश्यों का स्मरण कर पुलकित हो जाते हैं। अपने नेत्रों से स्वामी रामतीर्थ का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले उन वयोवृद्ध देशवासियों का कहना है कि लाखों आँखें उनका दर्शन कर धन्य होती थीं। उनकी व्याख्यान-सभाओं में जो अमृत बरसता था, वह इतना दिव्य था कि उसके लिए स्वर्ग के देवता भी लालायित रहते होंगे।

टिहरी के महाराजा कीर्तिशाह पाश्चात्य दर्शन के प्रभाव से कुछ नास्तिक हो चले थे। उन्होंने स्वामीजी से भगवान् का ठिकाना पूछा। इस दिव्य देवदूत ने उन्हें समझाया—

'हे प्रियात्मन्! जैसे यह हाथ तुम्हारे हैं पर तुम हाथ नहीं हो, यह शीश तुम्हारा है और तुम शीश नहीं हो। वैसे ही यह शरीर तुम्हारा है और तुम शरीर नहीं हो। तुम शरीर के, मन के और बुद्धि के स्वामी अजर-अमर आत्मा हो। उस अविनाशी आत्मा का ठिकाना ही परमात्मा का ठिकाना है।'

एक छोटे से वार्तालाप में ही राजा कीर्तिशाह का मुकुटधारी मस्तक स्वामीजी के श्रीचरणों में झुक गया।

अरुणोदय के देश में

सन् 1902 में राजा कीर्तिशाह ने समाचार पत्रों में पढ़ा कि जापान में एक धर्म सम्मेलन हो रहा है। उन्होंने स्वामीजी से वहां पधारने की प्रार्थना की। स्वामीजी की आँखों के सामने स्वामी विवेकानन्द का पावन आदर्श पहले से ही झूल रहा था। वे जलमार्ग से यात्रा करते हुए उदयाचल के देश जापान में पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्हें ज्ञात हुआ कि धर्म-सम्मेलन की खबर अफवाह मात्र थी। वह जी खोलकर हँसे और बोले—

'प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं। राम को हिमालय के उस एकान्तवास से निकाल संसार का पर्यटन कराने के हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली है। राम तो अपने आप में धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व सम्मेलन नहीं करना चाहता, तो न करने दो उसे। राम तो स्वयं अपना सम्मेलन करेगा।'

जापान में स्वामीजी की प्राण-दायिनी वाणी से वहां का विद्वत् समाज चकित हो गया। श्री सरदार पूर्णसिंह नामक भारतीय युवक जो उन्हीं दिनों जापान में था, इस ज्ञान-मूर्ति महात्मा के चरणों पर कुर्बान ही हो गया। स्वामीजी से प्रेरणा पा उसने भी भगवा वस्त्र धारण कर लिया और स्वामीजी के संदेश को चतुर्दिक फैलाने का उसने व्रत ले लिया। जापान की इम्पीरियल यूनिवर्सिटी के संस्कृत के विद्वान् प्रोफेसर तकात्कुसु ने स्वामी राम को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए लिखा—

'स्वामी राम जैसा महान् व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा... वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि और सच्चे दार्शनिक हैं।'

टोकियो के कॉमर्स कालेज में स्वामीजी का 'सफलता का रहस्य' विषयक भाषण विश्व की श्रेष्ठतम वक्तृताओं में से एक माना जाता है। भाषण के पश्चात् एक जापानी कलाकार ने कहा—'यह महापुरुष प्रचण्ड अग्नि-शिखा के समान दिखाई देता था और उसके शब्द चिनगारियों की भांति इधर-उधर उड़ते थे।' केवल दो सप्ताह भर जापान में रहने के पश्चात् जब वे अमरीका महादेश के लिए

प्रस्थान कर रहे थे तो जापान के लाखों नर-नारियों की आँखों का अश्रु-प्रवाह रोके नहीं रुक रहा था। जापान के बौद्ध सन्त 'हिरे' ने कहा—

'मुझे उनकी स्मृति नहीं भूलती। उनकी मधुर मुसकान प्रतिक्षण वायुमण्डल में सुन्दर पुष्पों के समान तैरती हुई दीख पड़ती है।'

धन-कुबेरों की धरती पर

जब उनका जलयान अमरीका देश में सानफ्रांसिस्को नगर के तट पर पहुंचने ही वाला था तो एक जिज्ञासु अमरीकन सज्जन पर स्वामी राम जैसे मस्त फकीर को देख कर बड़ा प्रभाव पड़ा। विस्मित होकर उसने जहाज में निश्चिंत बैठे राम से पूछा—

'आपका सामान कहां है?'

'मैं कोई सामान नहीं रखता', स्वामीजी ने कहा।

'आप धन कहां रखते हैं?'

'मैं धन रखता ही नहीं।'

'तो आप जीते कैसे हैं?'

'मैं सबको प्रेम करने से ही जीता हूं।'

'किन्तु क्या अमरीका में आपका कोई मित्र हैं?'

'हां, मैं एक अमरीकन मित्र को जानता हूं', स्वामीजी ने उस भद्र पुरुष के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, 'आप ही तो वे मेरे मित्र हैं।'

वह अमरीकन भद्र पुरुष डॉ. हिल्लर थे जिन्होंने अमरीका में स्वामीजी की अत्यधिक सेवा की थी। उन्होंने शास्ता नदी के सुन्दर पर्वतीय झरनों के ऊपर स्वामीजी के लिए एकान्त में एक सुन्दर झूला बनवा दिया था, जिसमें आनन्द से झूलते हुए स्वामीजी अमरीका के राष्ट्रपति से भी अधिक प्रसन्न रहते थे।

स्वामीजी दिल खोल कर हँसते थे। अमरीका के कई प्रमुख व्यक्ति और पत्रकार तो उनके इस निर्बाध हास्य को ही देखने आते थे और आश्चर्य करते थे कि यह व्यक्ति किस आत्म-विश्वास के साथ, मानो संसार को तुच्छ समझता हुआ, हँस सकता है। आनन्द उनके रोम-रोम में भरा हुआ था। उन्होंने अपने आनन्दमय जीवन से संसार के महाराजाओं और सम्राटों के गौरव और तड़क-भड़क को उपहास की वस्तु बना दिया था। इसीलिए वे राम बादशाह कहलाते थे।

वे स्वयं कहा करते थे—

'ऐ दुनिया के बादशाहो! और हे सातों आसमानों के तारो! मैं सब पर राज्य करता हूं। मेरा राज्य सबसे बड़ा है।'

अमरीका के समाचार पत्रों ने स्वामीजी का चित्र प्रकाशित करते हुए लिखा—

'A living Christ has come to America.'

अर्थात् 'एक जीवित ईसा मसीह ने अमरीका की धरती पर कदम रखा है।' तत्कालीन अमेरीका का राष्ट्रपति भी भारत के इस 'निर्धन फकीर' के दर्शन करने आया। स्वामीजी की चाल-ढाल को देखकर उसने कहा—

This man walks as if the whole earth belongs to him.

'यह आदमी ऐसे चलता है जैसे सारी धरती पर इसी का राज्य हो।'

इस पर स्वामीजी ने कहा—

Why the whole earth the whole universe belongs to me. सारी धरती ही क्यों, सारा ब्रह्माण्ड मेरा है।

बादशाह दुनिया के हैं मोहरे मेरी शतरंज के,
दिल्लगी की चाल है सब शर्त सुलही जंग की।

स्वयं डॉ. हिल्लर ने स्वामीजी के अभिनन्दन में लिखा है—

'स्वामीजी ज्ञान की ज्योति हैं, हिमालय से आए हैं; आग उन्हें जला नहीं सकती; लोहा काट नहीं सकता; आनन्द के आँसू उनकी आँखों से सदा ही गिरते रहते हैं। उनकी उपस्थिति से सदा नया जीवन प्राप्त होता है।'

अमरीका के नास्तिक समाज की एक विदुषी महिला स्वामीजी से वाद-विवाद करने के उद्देश्य से आई। स्वामीजी उस समय समाधिस्थ थे। समाधि खुलने पर स्वामीजी ने उस महिला से प्रयोजन पूछा तो वह आँखों में पश्चात्ताप के आँसू भर कर कहने लगी—'स्वामिन्! मैं नास्तिक नहीं हूं, आपके दर्शन-मात्र से मेरे सारे संदेह दूर हो गए हैं।'

आत्मबल की शरीरबल पर श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए वे एक बार अमरीका के प्रसिद्ध पर्वतारोहियों के मुकाबले में शास्ता पर्वत की 15,000 फुट ऊँची चोटी पर चढ़ने की प्रतियोगिता में शामिल हुए। इसमें उन्होंने प्रथम पारितोषिक जीता जो उन्होंने लेना स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर अमरीका में एक 30 मील लम्बी दौड़ में वे सर्वप्रथम रहे।

अमरीका के मायावादी जीवों को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का मर्म समझ में नहीं आता था। गोपियों को भगवान् कृष्ण की बाँसुरी पागल बना सकती थी, यह उनकी बुद्धि में नहीं पैठता था। राम ने उन पर इस तथ्य की सत्यता का प्रभाव डालने के लिए एक तरीका अपनाया। एक दिन स्वामीजी संध्या के

समय भाषण करते हुए अचानक जंगल की ओर भाग खड़े हुए। मंत्र-मुग्ध जनता पर स्वामीजी की जादूभरी वाणी का ऐसा प्रभाव पड़ रहा था कि वे उस अमृत को लूटने के आनन्द को किसी भी प्रकार छोड़ने को तैयार न थे। अतः सैकड़ों नर-नारी जिनमें महिलाओं की संख्या अधिक थी, स्वामीजी के पीछे-पीछे एक सुनसान जंगल तक भागते चले गए। वहां पहुंच कर स्वामीजी यकायक खड़े हो गए और उनसे पूछा—'तुम सब ऊँचे कुल की स्त्रियां हो, भला बताओ तो इतनी दूर जंगल में मेरे पीछे क्यों भाग आई हो?'

उन्होंने उत्तर दिया—'हम आपके प्यारे वचन सुनने के लिए पागल हो रही हैं।'

स्वामीजी ने कहा—'जब आप मेरे जैसे विदेशी और अपरिचित व्यक्ति की वाणी सुनने के लिए पागल हो सकती हैं तो ब्रज-गोपिकाएँ अपने प्राण, प्राणेश्वर भगवान् कृष्ण की वंशी सुनने के लिए पागल क्यों नहीं हो सकती थीं?'

स्वामीजी के इस तर्क से अमरीकावासी स्त्री-पुरुष निरुत्तर हो गए।

एक बूढ़ी अमरीकी औरत स्वामीजी के पास आकर अपने घर के दुखड़े घण्टों सुनाती और रोती रही। स्वामीजी सिद्ध आसन लगाए आँखें बंद किए ॐ ॐ का जाप करते रहे।

उस महिला ने सोचा—'यह कैसा असभ्य आदमी है। मेरी प्रत्येक बात को अनसुनी कर देता है।'

जब वह देवी (श्रीमती वेलमैन) अपनी दुःख भरी कहानी सुना चुकी तो स्वामीजी ने आँखें खोलीं। उस महिला को आनन्द की खुमारी से भरी मस्त आँखों से देखा और केवल इतना ही कहा—'माँ!' फिर अपने प्यारे मंत्र ॐ ॐ का जाप करने लगे।

इस अनुभव का वर्णन करते हुए श्रीमती वैलमैन ने कहा—'स्वामीजी के मेरी ओर केवल एक बार देख भर लेने से मुझमें एक नया जीवन आया। मेरा हृदय इतना प्रसन्न हुआ कि भारत दर्शन की प्रबल लालसा मन में जाग्रत् हो उठी। मैंने विचारा कि जाऊँ और स्वामीजी की जन्म भूमि के दर्शन करूं। 'माँ' के शब्द से मेरे अन्दर कुछ अमृत के स्रोत फूट पड़े हैं।'

वही श्रीमती वैलमैन स्वामीजी की जन्म भूमि मुरारीवाला में आई और वहां की पावन धूलि प्रसाद के रूप में अमरीका देश में ले गई।

एक अन्य दुखियारी अमरीकन महिला पुत्र शोक से रोती, तड़पती हुई स्वामीजी के पास पहुँची। स्वामीजी ने कहा—

'शान्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग है। एक छोटे हब्शी बच्चे को अपनी गोदी में लेकर प्यार करो और पुत्र की नाईं पालो।'

जब वह अमरीकन महिला उस काले गन्दे बच्चे से घृणा करने लगी तो स्वामीजी ने कहा—'भगवान् के भण्डार में उसी पर आनन्द की वर्षा होती है जो गोरे और काले के भेद से ऊपर उठ जाता है।'

अमरीकन महिला स्वामीजी का सुझाव मान गई और उसे सच्चा आनन्द प्राप्त हुआ।

गहनों से लदी हुई एक अमरीकन ऐक्ट्रैस स्वामीजी के दर्शन के लिए आई। उस आनन्द मूर्ति महात्मा को देखकर उसे अपने आप से घृणा होने लगी। वह रोती हुई फर्श पर गिर पड़ी और चीत्कार कर कहने लगी—'स्वामी! मैं बहुत दुःखी हूं, मुझे सुखी कर दो। चेहरे पर खिली हुई मुसकान और मेरे इस रूप को देख गलत अंदाजा न लगाओ, इस हँसी के पीछे हाहाकार है और मैं इस नकली जीवन से उकता गई हूं।' इस महिला की स्वीकारोक्ति तथा क्षमा-याचना की पृष्ठभूमि में सम्भवतः समूची पश्चिमी सभ्यता की क्षमायाचना ही अन्तर्निहित थी।

सेंट लुई की धर्म कान्फ्रेंस में उनके व्याख्यान के सम्बन्ध में अमरीका के एक पत्र ने लिखा—

'इस सारे समारोह में प्रफुल्ल मुखमण्डल केवल स्वामी राम का था, जो एक भारतीय तत्त्ववेत्ता के नाते हमें ज्ञान का उपदेश देने आए थे।'

स्वदेश लौटने से एक दिन पहले स्वामीजी ने अमरीका के विशाल जनसमूह को कहा—'कल राम आधे मिनट का उपदेश देगा।'

दूसरे दिन लाखों उत्सुक मनुष्य अपने नेत्र और कान की प्यास लिए सभा के मैदान में उपस्थित थे। देदीप्यमान सूर्य की नाईं स्वामीजी प्रकट हुए और उन्होंने कहा—

'जिसको संसार के विषय नहीं हिला सकते, वह सारे संसार को हिला सकता है।'

स्वामीजी भारत लौटने के लिए तैयार थे। एक अत्यन्त धनाढ्य अमरीकन महिला स्वामीजी के पास पहुंची और अपने लाखों डालर की जायदाद उनके चरणों में भेंट करती हुई बोली—

'स्वामी जी! इस धन से आप वेदान्त का प्रचार करें या कोई यूनिवर्सिटी खोलें, यह सब कुछ आपका ही है। आप चाहें मुझे शिष्या, पुत्री या बहिन जो चाहें समझें, पर मुझे केवल 'मिसेज राम' लिखने की अनुमति दे दें, मैं आपके चरणों में गिरती हूं।

स्वामीजी ने हँसकर कहा—'देवी! मैं तो भारत का संन्यासी हूं। लाखों की

सम्पत्ति ही क्या, यदि सम्पूर्ण अमरीका का साम्राज्य भी मुझे भेंट कर दिया जाए तो उसे ठोकर मार दूंगा, क्योंकि मैं स्वयं सम्राटों का सम्राट, शहंशाह राम हूं।'

युवती ने स्वामी राम के चरणों में गिरकर कहा-'भगवन्! आपके आधे मिनट के संदेश का मर्म मुझे अब समझ आया।' वह महिला अपना सब धन निर्धनों को लुटा कर संन्यासिनी बन गई और भारत दर्शन के लिए आई।

मातृभूमि की ओर

धन-कुबेरों के देश अमरीका से अपने निर्धन स्वदेश को लौटते हुए स्वामीजी के नेत्रों में प्रेम के अश्रु छलक आए। उन्होंने स्वयं लिखा है—

किन्तु सूर्य ज्यों ही अस्ताचल जाते हुए दिखाते हैं।
मेरे दोनों नेत्र आँसुओं से उस दम भर जाते हैं।
वही दृश्य बस तब फिर मेरी आँखों में छा जाता है।
और फूलों से लदा हमारा भारतवर्ष दिखाता है।

कितना अदम्य देशप्रेम हिलोरें ले रहा था उनके मन-मानस में? सूर्य को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा—

'हे अस्त होने वाले सूर्य! तू भारत में निकलने को जा रहा है। क्या तू कृपा करके राम का यह संदेशा उस ज्योतिर्मय पुण्यभूमि को ले जाएगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु बिन्दु प्यारे भारत के खेतों में पहुंच, ओस की बूँदें बन जाएँ। जैसे शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, ईसाई ईसा की और मुसलमान मुहम्मद की, वैसे ही मैं भारत के दृश्य को मानस में लाकर उसकी पूजा करता हूं। भारत माता के प्रत्येक लाल को मैं मूर्तिमान भगवान् ही समझ कर पूजता हूं। हे भारत माता! मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूं। तू मेरी गंगा है, तू मेरी काली है, तू मेरा इष्टदेव है, तू ही मेरा शालग्राम है।'

मार्ग में मिस्र देश की एक मस्जिद में स्वामीजी ने फारसी भाषा में एक जादूभरा व्याख्यान दिया। सिकन्दरिया बन्दरगाह पर जब एक जहाज में वे बैठे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उसी जहाज में वायसराय लॉर्ड कर्जन भी भारत जा रहे थे। स्वामीजी ने हँस कर कहा—'दो बादशाह एक ही जहाज में यात्रा नहीं कर सकते।' इसी मौज में उन्होंने अपना टिकट वापस कर दिया और दूसरे जहाज में गए।

ता. 8 सितम्बर सन् 1904 के दिन ढाई वर्ष की विदेश यात्रा के पश्चात् वे पुनः स्वदेश लौटे। कोटि-कोटि कण्ठों ने उनका जय-जयकार किया। कोटि-कोटि शीशों ने उनकी वन्दना की तथा कोटि-कोटि नेत्र उनका पावन दर्शन कर धन्य हो गए। मथुरा में शिवगणाचार्य ने उन्हें यह परामर्श दिया कि वे वेदान्त प्रचार के लिए एक नई संस्था की स्थापना करें।

‘भारत की सब सभा-समितियां राम की हैं, राम उनमें काम करेगा। सब भारतवासी मेरे भाई हैं।... जाओ, उन्हें कह दो, राम उनका है, राम सबको छाती से लगाता है। मैं सब पर प्रेम की वर्षा करूंगा। संसार को आनन्द की धारा से नहला दूँगा। यदि कोई विरोध प्रकट करेगा तो उसका स्वागत करूंगा। प्रत्येक शक्ति मेरी है, प्रत्येक संस्था मेरी है।’ स्वामीजी ने उत्तर दिया।

‘देश के सर्वांगीण पुनरुत्थान का सशक्त जनसंदेश’ हमें उनकी वाणी में मिला। जागृति का जादूभरा मंत्र देते हुए वे कहते हैं-‘जब मैं चलता हूं तो अनुभव करता हूं कि सारा भारत ही चल रहा है। जब मैं बोलता हूं तो अनुभव करता हूं कि भारत की ही वाणी गूँज रही है। जब मैं साँस लेता हूं तो मालूम होता है कि स्वयं भारतमाता ही साँस ले रही है। मैं ही भारत हूं, मैं ही शंकर हूं, मैं ही शिव हूं।’

स्वामीजी आत्मगौरव के मूर्तिमान अवतार थे। वे कहा करते—ऐ दुनिया के बादशाहों और सातों आसमानों के तारों! मैं तुम सब पर राज्य करता हूं। मेरा राज्य सबसे बड़ा है।

हिमालय की गोद में

अब शहंशाह राम ने अपना सिंहासन विश्व के सर्वोच्च पर्वत गिरिराज हिमालय पर बनाया। पहले उन्होंने व्यास-आश्रम में ठहरकर वेदाध्ययन किया, फिर वसिष्ठ आश्रम में, हिमालय की चोटियों पर पहुंच कर उन्होंने मौन समाधि ले ली। 12 अक्टूबर 1906 के दिन एकान्तवास के लिए जाते समय उन्होंने प्रिय शिष्य नारायण स्वामी को अपना अन्तिम उपदेश दिया। नारायण स्वामी की आँखें भर आई। स्वामीजी ने कहा—

‘घबराओ नहीं, आत्म-चिन्तन करो। वेदान्त के स्वरूप बनो। किसी का सहारा मत लो, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो।’

ज्योति में ज्योति विलय

पाँच दिन पश्चात् 17 अक्टूबर 1906 के दिन दीपमालिका का पावन पर्व था। उनका पार्थिव शरीर जीवन की 33वीं दीपावली मना रहा था। प्रात:काल से ही उनकी मस्ती का रंग कुछ निराला ही था। ॐ ॐ की ध्वनि गूँज रही थी। मध्याह्न के समय गंगा में डुबकी लगाने उतरे। भागीरथी की प्रखर धारा में उनका पार्थिव शरीर बह चला। राम ॐ ॐ की ध्वनि में चूर थे। तट पर खड़ा उनका रसोइया भोलादत्त सकलानी व्याकुल हो उठा। स्वामीजी ने कहा—

‘घबराओ नहीं, राम गंगा की लहरों में निमग्न हो रहा है। अब से वह गंगा की लहरों में, सूर्य की ज्योति में, तारों की दमक में और चाँद की चमक में रहेगा।’

दीपमालिका के दिन ही वह अमर-ज्योति इस संसार में अवतरित हुई थी और दीपमालिका के ही पावन पर्व पर वह ज्योति परम ज्योति में विलीन हो गई।

अपनी जल-समाधि से कुछ ही क्षण पूर्व उस ज्योतिष्मान् विभूति ने अपनी पावन लेखनी से जो अन्तिम शब्द लिखे वह उनके अमर वैभव के परिचायक हैं—

'ओ मृत्यु! भले ही उड़ा दे इस शरीर को, मेरे और शरीर ही मुझे कम नहीं। मैं सूर्य की सुनहली किरणों और चन्द्र के रजत धागों को धारण कर प्रसन्नता से जीवित रहूंगा। मैं पर्वतीय गुफाओं और सोतों में स्वच्छन्द गाता हुआ फिरूंगा। मैं आनन्द के महासागर में लहराता फिरूंगा। मैं समीर की तरह निर्बाध वायु हूं। यह मेरे शरीर परिवर्तन के घूमने-फिरने वाले रूप हैं। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते हुए पौधों को ताजा किया। फूलों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, द्वारों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आँसू पोंछा, किसी का घूंघट उठाया। इसको छोड़, उसको छोड़, तुम को छोड़, वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।

स्वामी रामतीर्थ परमहंस तो मुक्त गगन के वासी थे। वे तुच्छ स्वार्थों से लदी हुई दुनिया के प्राणी न थे। वे विश्व गंगा के अमर तैराक थे, जिन्होंने अपनी आत्मा को विश्वात्मा में मिलाकर अपना पृथक् अस्तित्व खो दिया था। वे आत्मा के अमर कवि थे—विश्व के अन्तराल में घूर्णित अनहद नाद-तत्त्व के एक अनूठे कलावन्त, गीतकार। ब्रह्मानन्द स्वरूप उन महात्मा के अन्तस्तल में तरंगित आध्यात्मिकता की अमर-रागिनी शाश्वतकाल तक गूँजती रहेगी।

'तमाम दुनिया है खेल मेरा,
मैं खेल सबको खिला रहा हूं।
किसी को बेखुद बना रहा हूं,
किसी को गम में रुला रहा हूं।
कभी मैं दिन को निकालूँ सूरज,
कभी मैं शब को दिखाऊँ तारे।
यह जोर मेरा है दोनों पाओं—
को मिस्ले फिरकी फिरा रहा हूं।

आज उन दिव्य देवदूत की पावन स्मृति में हमारा रोम-रोम आनन्द से पुलकित होकर कृतज्ञता की कोमल वाणी में कह रहा है—

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ परमहंस की जय।

ॐ शान्ति, शान्ति, शान्तिः।

स्वतंत्रता का मन्त्र

उनकी अमृतवाणी में मानवता के जागरण का ओजस्वी मन्त्र था। 'राम सबसे ऊँचे पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर गर्जन के साथ कहता है कि दरिद्रता और दौर्बल्य की शिकायत करने वाले, लोगो! सचमुच तुम शक्तिमान प्रभु हो, स्वयं राम हो। अपनी ही कल्पनाओं में स्वयं मत जकड़े जाओ। उठो और जाग्रत् होवो, अपनी निद्रा और संसार रूपी स्थान को झाड़ कर परे फेंक दो। निज स्वरूप को पहचानो। इस सब दुःख-दारिद्र्य का अपने आप लोप हो जाएगा। सारे सुखों की खान और सम्पूर्ण आनन्द की अन्तरात्मा तुम्हीं हो।'

सच्ची स्वतंत्रता के मंत्रद्रष्टा उस अमृत जीवी मुक्ति दूत का मृत्युंजय मंत्र है—'स्वतंत्रता दूसरे को जीतने से नहीं मिलती है। मिलती है अपनी विजय से-अपने मन को जीतने से।'

जन्मदात्री भारतमाता के असीम प्रेम से भरकर वह मातृवत्सल ऋषि प्रेमाश्रु-पुलकित वाणी में गद्यगीत गाने लगते—

'हे अस्त होने वाले सूर्य! तू भारत में निकलने जा रहा है। क्या तू कृपा कर राम का यह संदेशा उस ज्योतिर्मय को ले जाएगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु बिन्दु भारत के खेतों में पहुंच कर ओस की बूँदें बन जाएं। जैसे शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, ईसाइ ईसा की वैसे ही मैं भारत के दृश्य को हृदय में लाकर उसकी पूजा करता हूं। भारतमाता के प्रत्येक काल को मैं मूर्तिमान भारत ही समझ कर पूजता हूं। हे भारतमाता! मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूं। तू मेरी गंगा है, तू मेरी काली है, तू मेरा इष्टदेव है, तू ही मेरा शालग्राम है।'

आधुनिक क्रान्तिकारी सुधारकों के प्रति उन ऋषि-तुल्य लोकनायक का संदेश है : 'हे नवयुवक! भावी सुधारक! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ-निष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नए-नए बीज बोते रहने से भारत में एकता लाना कठिन हो जाएगा। भारत की अवनति के कारण यहां के धर्म और अध्यात्म नहीं हैं। भारत की विकसित और फूली-फली फुलवारी इसलिए लुट गई कि उनके पास कांटों की बाड़ नहीं थी। कांटों और झाड़ियों की बाड़ चारों ओर लगा दो, किन्तु उन्नति और सुधार के बहाने गुलाब के पौधों और फलदार वृक्षों को न काट डालो।'

व्यावहारिक वेदान्त

प्रजातंत्र की भावना को अपने व्यावहारिक वेदान्त का अंग बताते हुए वह आदेश देते हैं—

'प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिए एकसमान स्वतंत्रता दो। हमारा सिर चाहे जितना ऊँचा रहे, परन्तु पांव सदा सबके साथ पृथ्वी पर ही जमे रहें। वह कभी किसी अन्य मनुष्य के कंधे अथवा गर्दन पर न पड़ें, चाहे वह निर्बल हो अथवा इसके लिए स्वयं राजी ही क्यों न हो।'

आध्यात्मिक साम्यवाद के समर्थक उन वेदान्त केसरी का सिंहनाद आज भी गूँज रहा है—'स्त्रियों, बालकों और श्रमजीवी-जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखों को काट गिराना है, जिनके आश्रय पर हम खड़े हुए हैं। नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही घातक कुठाराघात करना है।'

देश के लकीर के फकीर प्राणियों के प्रति उन क्रांतदर्शी महात्मा का मधुसिक्त व्यंग्य है—यदि आप नई रोशनी को आत्मसात् करने को सहर्ष तैयार नहीं हैं, उस नए प्रकाश को जो आपके ही देश की प्राचीन रोशनी है, तो आओ, इस धरती को छोड़कर अपने पितरों के साथ जाकर निवास करो। यहां क्यों ठहरे हो? प्रणाम!

विश्व को वेदान्त का पावन मंत्र देते हुए मानवीय गौरव से भर कर वह पुकार उठते—

'हे मनुष्य! तू ईश्वर है, केवल शरीर के केन्द्र में रहना भर छोड़ दे। जब शरीर-चेतना, चर्म-दृष्टि छूट जाती है तब ईश्वर चेतना, दिव्य दृष्टि अपने आप प्राप्त हो जाती है। संसार और उसका अंधकार ही शरीर-चेतना की छाया है। वैसे तो ईश्वर-चेतना सदा मानवी आत्मा में अपने प्रकाश से स्वयं चमकती रहती है।'

भारतवासी मरना सीखें

वैसे मरने तो सभी मरते हैं। कालवश सबको मरना पड़ता है। परन्तु हम भारतवासी और प्रकार से मरना भूल गए हैं। मरना जानते हैं जापान वाले, इंग्लैंड वाले तथा अमरीका वाले। हमें यदि उन लोगों से कुछ सीखना ही है, तो मरना सीखें।

जब से हमारा यह देश स्वार्थपरता के कुचक्र में, भंवर में जा उलझा है, इसका पलड़ा उलट गया है। यदि इस देश के निवासी फिर से संभलना चाहते हैं तो स्वार्थपरता की भावना से इस देश को सर्वथा मुक्त करने का प्रत्येक व्यक्ति बीड़ा उठा ले।

ईश्वर तुम्हारे भीतर काम करने लगे, बस फिर कोई कर्तव्य न रह जाएगा। ईश्वर को अपने भीतर से प्रकाशित होने दो। ईश्वर तुम्हारे स्वरूप में प्रकट हो। ईश्वर में रहो-सहो, खाते-पीते ईश्वर को प्रस्तुत देखो। प्रत्येक साँस में ईश्वर का अस्तित्व हो और सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करो। अन्य वस्तुएं सब अपने आप ठीक हो जाएंगी।

स्वर्गीय राज्य में रहो, वह तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा ही स्वरूप है।

राम का अन्तिम संदेश

प्यारे भारतवासियो!

आपको सँभल जाना चाहिए। आपके सौभाग्य का सवेरा अब हुआ ही चाहता है। पहले-पहल विश्वास-रूपी सूर्य का प्रकाश यहीं हुआ था। बाद में यहां से फारस, अरब, मिस्र, रोम, यूनान होता हुआ यूरोप में पहुँचा। यूरोप में इंग्लैंड और वहां से अमरीका पहुंचा। अब वह अमरीका से जापान पहुँच चुका है और जापान से उसकी किरणें भारत के आकाश पर चमकने लगी हैं।

यह हमारे सौभाग्य का प्रभात है, अब हम सचेत हो जाएं। कहीं ऐसा न हो कि यह सूर्य पश्चिम को ढल जाय और आप सोते के सोते रह जाएँ।

प्यारे देशवासियो! उठो और दूसरों को उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने-अपने कर्तव्य पर लग जाओ और अपने देशवासियों को उनके कर्तव्य सुझाओ। सूर्य उदय हो, उससे पूर्व ही अपने देशोन्नति रूपी कर्तव्यों को स्थिर कर लो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच-विचार में ही पड़े रहोगे तो सूर्य पश्चिम को चला जाएगा, फिर आपसे कुछ करते-धरते न बनेगा। ॐ! ॐ! ॐ!!!

उत्तिष्ठत, जाग्रत
प्राप्य वरान्निबोधत

स्वामी रामतीर्थ के रूप में विश्वमंच पर भारत का साकार सत्य ही बोलता था। उनकी वाणी में भारतीय संस्कृति की वह अमर अभिव्यक्ति मिली जिसके कारण समूचा विश्व पुनः इस देश को पूज्य भाव से देखने लगा।

श्रद्धांजलि

'स्वामी राम एक महान् संत थे। भारत के नभो-मंडल में स्वामीजी एक अत्यन्त दीप्तिमान मार्गदर्शक तारे की भांति चमके। देश के नवनिर्माण की इस घड़ी में हम उनके अभाव का अनुभव कर रहे हैं। अगर वह इस समय जीवित होते तो बहुत कुछ सम्भव था कि देश के संघर्षशील तत्त्वों के बीच एकता स्थापित करने में उनका बड़ा हाथ होता और वे सब दलों में वास्तविक सामंजस्य और पारस्परिक प्रेम उत्पन्न कर देते। फिर भी वे आज हमारे हृदयों में प्राणप्रद आत्मिक शक्ति की तरह सदा ज्वलंत, अनन्त एवं अनश्वर रूप में विद्यमान हैं, और रहेंगे।'

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में स्वामी रामतीर्थ भारत के एक उच्चतम व्यक्ति थे। अपने भाषणों और लेखों से ही नहीं, प्रत्युत अपने आकर्षक व्यक्तित्व से भी उन्होंने अपने समकालीन व्यक्तियों पर गहरी छाप डाल दी है।

भारत स्वतंत्र है, किन्तु दु:ख और विपत्तियों से मुक्त नहीं है। भौतिक और आध्यात्मिक समस्याएं हमारे सामने मुंह बाए खड़ी हैं। ऐसे समय में ही स्वामी रामतीर्थ के उपदेशों से हमें आशा, विश्वास और आनन्द प्राप्त होता है। आइये, हम सब भारत की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दें और भारतीय संस्कृति के आदर्श को पूरा कर दिखावें। स्वामी रामतीर्थ का निम्नलिखित संदेश हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहेगा—

'अपने वर्तमान को अतीत के अनुरूप बना लो और साहसपूर्वक अपने पुनीत और सबल वर्तमान को भविष्य की ओर बढ़ने दो। अपने पूर्व पुरुषों से प्राप्त परम्पराओं आदि के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। वह समाज जो इनका बिल्कुल परित्याग करता है, वह बाहर से नष्ट हो जाता है और जो समाज इनके वशवर्ती हो जाता है, वह अन्दर से खोखला होकर नष्ट हो जाता है।'

—डॉ. अमरनाथ झा

मेरे और स्वामी राम के बीच एक सम्बन्ध है, और वह यह कि हम दोनों लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज के विद्यार्थी रहे हैं। थोड़े दिनों वहां गणित के प्राध्यापक रह कर वे संसार से विरक्त हो गए, किन्तु वहां के प्राध्यापक और पुराने विद्यार्थी नवीन विद्यार्थियों को उनके लाभ के लिए स्वामी राम की अद्भुत बातें सुनाया करते थे।

उनका प्रेम, मानवता और विश्व-बन्धुत्व का संदेश, आज के दिन अमूल्य निधि है। विशेषत: उस समय जबकि देश बड़ी उथल-पुथल, दु:ख और पीड़ा से बाहर निकलने का यत्न कर रहा है। पीड़ितों और संतप्तों को मैं यही सलाह दूंगा कि वे स्वामी राम के उपदेशों पर अमल करें। इससे ही उन्हें शान्ति मिल सकती है।

—डॉ. कैलाशनाथ काटजू

अनुपमेय राम

एक और व्यक्ति हैं जिन्होंने कई प्रकार से स्वामी विवेकानन्द से भी अधिक सफलता के साथ नवीन वेदान्त का प्रचार उत्तर भारत में किया। वे व्यक्ति स्वामी रामतीर्थ थे। स्वामी राम के दार्शनिक सिद्धान्त का विवेचन स्वामीजी के ही शब्दों में पढ़िये—

'प्रभु की प्रार्थना में हम कहते हैं—हमको आज की रोटी बख्श और दूसरे स्थान पर हम कहते हैं—मनुष्य केवल रोटी से ही जीवित नहीं रह सकेगा। इन दोनों वाक्यों पर पुनर्विचार करो और उन्हें पूरी तरह समझने की कोशिश करो। प्रभु से प्रार्थना करने का अर्थ यह है कि एक राजा जिसे अपनी रोटी की चिन्ता नहीं है, वह भी प्रार्थना करे। यदि ऐसा है तो 'आज की रोटी हमें बख्श' का स्पष्टत: यह

अर्थ नहीं है कि हम अपने को भिखारी जैसी स्थिति में डाल दें और भौतिक समृद्धि की मांग करें। इस प्रार्थना का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह राजकुमार हो, राजा हो या फकीर हो, इन सब पदार्थों को जो उसके आसपास चारों ओर है, अपनी न समझे, बल्कि उन्हें ईश्वरीय समझे। वह कहे **'इदम् न मम, इदम् न मम,** (यह मेरी नहीं है, यह मेरी नहीं है)' इसको भिक्षा मांगना नहीं, बल्कि त्याग कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक वस्तु ईश्वर को अर्पित कर देना। राजा जिस समय यह प्रार्थना करता है, अपने को उसी स्थिति में डाल देता है और अपने समस्त धन-कोष को, प्रासाद को त्याग देता है, उन पर अपना अधिकार छोड़ देता है, उस समय वह सर्वसम्पन्नन्न होते हुए भी फकीरों से भी बड़ा फकीर बन जाता है।'

....ऐसे परिव्राजक धार्मिक प्रचारकों का कार्य कभी पूरा नहीं आंका जा सकता। ये वास्तव में प्राचीन और अर्वाचीन शृंखलाओं के बीच एक कड़ी का काम करते रहते हैं। स्वामी राम की मिसाल यूरोप के इतिहास में नहीं मिल सकती।

—स्व. सी.एफ. एन्ड्र्यूज

स्वामी रामतीर्थजी का नाम ही ऐसा है कि उससे मेरे हृदय में अलौकिक आनन्द उत्पन्न हो जाता है। मुझे अभी तक उनसे अधिक बड़े किसी ऐसे महात्मा से मिलने का अवसर नहीं मिला जिसने इस प्रकार आत्म-अनुभव किया हो।

उनकी आत्म-शुद्धि और आत्म-अनुभव का सन्देश देश की आने वाली भावी पीढ़ियों के लिए एक महान् वरदान है।

—महामना पं. मदनमोहन मालवीय

महामानव की पुण्य-स्मृति में

स्वामी राम के उपदेशों का प्रचार होना ही चाहिए। वह न केवल भारत, अपितु समूचे विश्व की महानतम विभूतियों में से एक थे। मैं उनके आदर्शों का आदर करता हूं।

—मोहनदास कर्मचन्द गांधी

जब मैं युवा था तब मैंने एक बार, स्वामी रामतीर्थ का भाषण सुना था। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि आज से 50 वर्ष पूर्व भारत के आध्यात्मिक विकास में उनका प्रभावशाली योगदान था। उनका प्रभाव अभी तक विद्यमान है।

—स्वर्गीय सर तेजबहादुर सप्रू

स्वामी रामतीर्थ का जीवन और उनकी कृतियां दीर्घकाल तक संसार को प्रेरणा देते रहेंगे।

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

स्वामी रामतीर्थ का जीवन देशवासियों के लिए सदा प्रेरणा का स्रोत रहेगा। आप ब्रह्मलीन थे और आपको उस प्रभु के दर्शन सर्वत्र और प्राणी मात्र में होते थे। वे जहां कहीं जाते थे, अपनी पुनीत मुसकराहट और आकृति से प्रेम की वर्षा कर देते थे। हम सबसे उत्तम श्रद्धांजलि उन्हें यह भेंट कर सकते हैं कि हम यह दृढ़ निश्चय कर लें कि भविष्य में हम पवित्रता, स्वार्थत्याग, प्रेम और सहनशीलता का जीवन व्यतीत करेंगे।

—**आचार्य जे. बी. कृपलानी**

स्वामी रामतीर्थ उन व्यक्तियों में से थे, जिनसे मुझे अपनी युवावस्था में अपनी मातृभूमि की सेवा करने की प्रेरणा मिली थी। इस देश में हजारों नवयुवक ऐसे हैं जिनकी जीवनधारा पर आपके इस महान् विचार के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है।

—**एस. के. पाटिल**
अध्यक्ष, बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

स्वामी रामतीर्थ के अद्भुत एवं प्रकाशपूर्ण जीवन से अनेकों शिक्षाएँ मिलती हैं। हिन्दुओं के धर्म में त्याग का सर्वोच्च स्थान है, यह जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है, सात्त्विक होना चाहिए। सच्चे जिज्ञासु को स्वामी रामतीर्थ के अनुभवों से, जो अपने ढंग के अनोखे हैं, बहुत अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

—**श्री बी.जी. खेर, बम्बई**

स्वामी रामतीर्थ एक ऐसे विशिष्ट संत थे, जिन्होंने हमारी मातृभूमि को पूज्य स्थान दिलाया है। वे इस भौतिक संसार को बहुत साल पूर्व ही त्याग चुके हैं, किन्तु उनका आत्मिक प्रभाव सदा विद्यमान रहेगा। ऐसे पवित्र अवसर पर ही उनके भक्तों को उनके सशक्त प्रभाव की विशेष अनुभूति होती है। उन सरीखे महापुरुषों ने ही भारत को यथार्थ में महान् बनाया है।

—**स्वर्गीय श्री तुषारकान्ति घोष** (अमृत बाजार पत्रिका)

स्वामी राम के शाश्वत सुख और आनन्द की वर्षा करने वाले महान् उपदेशों ने दुःखी हृदयों के अन्धकार में प्रकाश पहुंचाया है। वे इस संसार में जीवन-पथ पर बढ़ने वाले लाखों मानवों की उन्नति और प्रेरणा का अनवरत स्रोत रहे हैं।

—**श्री आनन्द टी. हिंगोरानी,** सम्पादक 'गान्धी सिरीज'

महामानव स्वामी रामतीर्थ अनेकों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि यह उत्तम प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहे और मानव पर सुख और आनन्द की वर्षा करता रहे और साथ ही उनमें एकता और सच्चे भ्रातृत्व का प्रसार करे।

—**श्रीप्रकाश,** राज्यपाल, मद्रास

स्वामी रामतीर्थ भारत के एक पुत्ररत्न थे। मेरी कामना है कि उनका संदेश अमर रहे और पीड़ित मानवता को विशेष सहायता देता रहे।

—**स्वर्गीय श्री एस. ए. ब्रेलवी,** (बाम्बे क्रोनिकल)

स्वामी रामतीर्थ के उत्तम उपदेशों को जीवित रखना, उनका प्रचार और प्रसार करना महान् कार्य है। वह सच्चिदानन्द के मूर्त-रूप थे।

—**स्वर्गीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी**

स्वामी राम के उपदेशों का पूरे उत्साह से प्रचार करना चाहिए।

—**प्रोफेसर तान युनसान** (शान्ति निकेतन)

अमरीका आने वाले हिन्दुओं में स्वामी राम सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। वे बहुत बड़े संत और ऋषि थे, जिनके जीवन में हिन्दू अध्यात्मवाद के उच्चतम सिद्धान्त प्रतिबिम्बित होते थे। जिनकी आत्मा में विश्व आत्मा के प्रति, जिससे वह साक्षात्कार करना चाहते थे, असीम प्रेम का स्रोत उमड़ता रहता था।

न्यूयार्क, जुलाई 1921 —**लाला हरदयाल,** एम.ए.

इस सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि प्राचीन भारतीय परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर चुके थे। उनका तत्त्वज्ञान तथा उनके विचार इतने उत्कृष्ट, इतने भव्य, इतने यथार्थ, इतने वास्तविक तथा सत्य होते थे कि उनकी तुलना में पाश्चात्य विचार ठीक उतने ही नगण्य प्रतीत होते हैं, जैसे मध्याह्न-कालीन सूर्य के प्रखर प्रकाश के मुकाबले में स्वर्ग से चुराई हुई प्रमीथियन अग्नि (Promethean Fire) का झुटपुटा प्रकाश।

—**विक्टर कजिन** (फ्रेंच दर्शनवेत्ता तथा इतिहासज्ञ)

स्थिर बिन्दु

आर्किमिडीज ने कहा था कि मुझे कोई स्थिर आधार (खड़े होने का स्थल) मिल जाये, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूं। किन्तु बेचारा ऐसा स्थिर बिन्दु न पा सका। स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है, वह है तुम्हारी आत्मा! उसे पकड़ो और सारा संसार तुम चलाने लगोगे।

वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाममात्र अनात्मा हो, तुम ही सुन्दर गुलाब हो, और अभी बुलबुल भी तुम ही हो। तुम फूल हो और भौंरा भी तुम हो। हर एक चीज भी तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देवदूत, पापी और महात्मा, सब तुम ही हो। यह है संन्यास, त्याग का मार्ग। अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, ऐसा करने से तुम गिर पड़ोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपने में रखो, अपने केन्द्र में बने रहो। फिर तुम्हें कोई चीज न हिला सकेगी।

—**स्वामी रामतीर्थ**

बंकिमचन्द्र जयन्ती

श्रीमान् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय बंगाली साहित्य के मुकुटमणि थे। जिन्होंने 'वन्दे मातरम्' का गान गाकर असंख्य भारतीयों का हृदय जीत लिया और इस प्रकार महान् ख्याति पाई। विश्व के महान् उपन्यासों में उनकी कृति आनन्दमठ का विशेष स्थान है जिसका प्रभाव कई पीढ़ियों के भारतीय जनमानस पर पड़ा है। बंकिमचन्द्र की गहन निष्ठा और देश भक्ति से उन्हें बहुत उच्च स्थान मिला है।

इस महान् राष्ट्रभक्त कवि की भारतीय स्वाधीनता संघर्ष को 'वन्दे मातरम्' के रूप में एक बड़ी देन रही है। जिसने अनेक राष्ट्रप्रेमियों और स्वतंत्रता सेनानियों को बहुत प्रभावित किया। लाला लाजपतराय और श्री अरविन्द घोष 'वन्दे मातरम्' के आवाहन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 'मराठा' और 'केसरी' समाचार पत्रों के माध्यम से 'वन्दे मातरम्' की भावना को सर्वत्र फैला दिया। शुद्ध राष्ट्र भक्ति के धनी बंकिमचन्द्र को Plutarch के पृष्ठों में बहुत सम्मान मिला है।

इस ऊर्जावान विद्वान् एवं राष्ट्रनिर्माता को श्री अरविन्द घोष ने इन शब्दों में श्रद्धांजलि दी है—'कई लोकनायक, सन्तगण, ऋषि, भारत भूमि पर समय-समय पर अवतरित हुए। इन महान् पुरुषों की शृंखला में हमें एक महामानव को सदा स्मरण करना चाहिए जिसने नव राष्ट्र का अनूठा मंत्र दिया। यह मंत्र था—'वन्दे मातरम्'।

श्री अरविन्द घोष उन्हें ऋषि बंकिमचन्द्र कहकर बुलाते थे। इनका जन्म 27 जून, 1838 में बंगाल में हुआ। इसी वर्ष तीन अन्य महापुरुषों ने भी जन्म लिया जिन्होंने भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर बहुत प्रभाव डाला। यह थे—केशवचन्द्र सेन, हेमचन्द्र बैनर्जी और कृष्णदास पाल।'

बंकिमचन्द्र भारत की स्वाधीनता के विषय में सकारात्मक विचार रखते थे। उनके राष्ट्र भक्ति गीतों में धार्मिक संदेश भरे हुए होते थे। राष्ट्र भक्ति और धार्मिक क्षेत्र में वे श्री अरविन्द घोष के मार्गदर्शक के समान थे, जिन्होंने कालान्तर में 'भारत धर्म', 'राष्ट्रीय स्वाधीनता का अवतार' और 'स्वराज देव' के मंत्र भारतीय समाज को दिए।

वंदे मातरम् गीत में हम भगवद्गीता के कर्मयोग का मधुर संगीतमय चित्रण पाते हैं। इस गान से हमें एक सुन्दर संकल्पना एवं संदेश मिलता है कि भारतमाता का भाल कभी विदेशी क्रूर शक्ति के सम्मुख नहीं झुकेगा और भारत एक समृद्ध, शक्तिशाली राष्ट्र बनेगा।

आइये, हम सब उस युगपुरुष, स्फूर्तिदायक नायक को 'वंदे मातरम्' की कुछ पंक्तियां गाकर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि दें।

वंदे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्। ...वंदे मातरम् ।।1।।

शुभ्र ज्योत्सनां पुलकितदामिनीम्
फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। ...वंदे मातरम् ।।2।।

सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः सर्वे वर्णाः पाल्यमानाभवन्ति।
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजंस्त्यागं धर्म चाहुरग्रंथ पुराणम्।।

महाभारत शांतिपर्व, 63/27

सभी धर्मों में राजधर्म ही प्रधान है, उसके द्वारा सभी वर्णों का पालन होता है। राजन्! राजधर्मों में सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और ऋषिगण सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीन धर्म बताते हैं।

बंग साहित्य के प्राण संचारक : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

लीलामय प्रभु के इस अद्‌भुत रंगमंच पर एक से एक महत्तम पात्र आया ही करते हैं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण भगवान् के श्रीमुख से उच्चरित यह शब्द अक्षरशः सत्य है—

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 4/7, गीता

जब-जब धर्म का ह्रास होता है और आसुरी शक्तियों के बढ़ जाने से धर्म का वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो जाता है तब-तब भगवान् कृष्ण ही महापुरुषों के लौकिक शरीर में अवतार लेकर धर्म की रक्षा व देश का उद्धार करते हैं। स्वयं आनन्दकन्द भगवान् कृष्णजी ही कभी गुरु नानकदेवजी द्वारा धर्म के बाह्य आडम्बरों की व्यर्थता बता ईश्वर का सच्चा स्वरूप जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं, कभी गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंहजी व वीर बंदा बैरागी के रूप में धर्म व राष्ट्र की रक्षा के लिए बलिदान का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कभी कवीन्द्र-रवीन्द्र के रूप में उस दिव्य अलौकिक अपार्थिव प्रियतम की व्यापकता इस विश्व के कण-कण व पार्थिव देह में बता सान्त में अनन्त की सत्यता प्रमाणित करते हैं और कभी स्वामी विवेकानन्द, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय एवं बालगंगाधर तिलक के रूप में राष्ट्र की डूबती नैया को पार लगाते हैं। रत्नप्रसू-बंगभूमि में जन्म लेने वाले बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय भी इसी परिपाटी के अन्तर्गत आते हैं।

बांग्ला-साहित्य के सूर्य, प्रखर प्रतिभाशाली, वन्दे मातरम् के अमर गायक, महान् दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और समाजशास्त्रज्ञ बंकिमचन्द्र ने न केवल बांग्ला साहित्य को अपनी अद्‌भुत देन द्वारा सजाया-संवारा वरन् उन्होंने महापुरुषों की परिपाटी के सारे नियमों का अनुगमन किया और सारे भारत की स्तुति प्राप्त कर अमर यश के भागी बने। बंकिम बाबू अद्‌भुत निबन्धकार थे। इनके निबन्ध पुराने होकर भी चिरनवीन हैं। इन्होंने राजनीति संबंधी, धर्म संबंधी और सांख्य दर्शन के निबंध लिखे। भारत की स्वाधीनता के लिए बंकिम का हृदय आन्दोलित

था अतः इन्होंने 'भारत कलंक', 'भारत की स्वाधीनता और पराधीनता' नामक निबन्ध लिखे। स्वयं बंकिम बाबू मां के अनन्य भक्त होने के कारण, धर्म के प्रति भी इनके विचार बहुत उच्च थे। अतः धर्मप्रेमियों के लिए इन्होंने 'धर्म और साहित्य', 'ज्ञान', 'मनुष्य क्या है' और 'चित्त की शुद्धि' आदि निबन्ध लिख बांग्ला साहित्य को गौरवान्वित किया। साहित्य प्रेमियों के लिए इन्होंने 'प्रीति-काव्य', 'प्रकृत और अतिप्रकृत', 'आर्य जाति का सूक्ष्म शिल्प' आदि निबन्ध लिखे। बंकिम बाबू के प्रत्येक निबंध में उनकी विनोदप्रियता की छटा दिखाई देती है। यह बात सर्वप्रमाणित है कि जो लोग असाधारण प्रतिभा लेकर इस भूतल पर आते हैं, उनकी दृष्टि अवश्य ही अपने समाज पर पड़ती है। जहां कहीं समाज में कुछ बुराइयां, हानिकारक प्रवृत्तियों की प्रबलता या अधःपतन का कारण देखते हैं, वे उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन बुरे को बुरा कहने से वह सुधरेगा नहीं उलटा बिगड़ेगा। ऐसी अवस्था में महापुरुष असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हैं और अप्रत्यक्ष ढंग से समस्या को सुलझाते हैं। बंकिम बाबू ने यही रीति अपनाई। यद्यपि उन्होंने कई उत्कट देशभक्ति, हार्दिक उच्छवास और मर्मभेदी हृदय के भाव भरे हुए निबंध लिखे हैं लेकिन समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए इन्होंने जो निबंध लिखे हैं वह ऊपर से तो हास्यरस के लेख कहे जा सकते हैं पर भीतर गूढ़ व्यंग्य और शिक्षा है। इस ढंग के निबन्ध लेखक प्रायः बहुत कम होते हैं। पाश्चात्य विद्वानों में डिकेंस व मोलियर ही बंकिम बाबू के स्तर के हैं और हिन्दी, मराठी और गुजराती में तो यह उच्च स्थान बंकिम बाबू को ही प्राप्त है। ऐसे लेख लिखना कोई साधारण काम नहीं है। ऐसे लेख लिखने के लिए चाहिए समाज की भीतरी तह तक पहुँचने वाली सूक्ष्मदृष्टि, विचारशक्ति और अलौकिक प्रतिभा। बंकिम बाबू में यह गुण तो ईश्वर प्रदत्त थे। इनके निबंधों में काव्य के सभी अंग मौजूद हैं। इनमें अलौकिक प्रतिभा, कल्पना, चमत्कार, रस और शिक्षा है। इसीलिए इनके निबंधों को गद्यकाव्य कहा जाता है। इनमें कवि के कौशल, कल्पना और लिखने के ढंग को देखकर सहृदय पुरुष को वही आनन्द आता है जो एक उच्च श्रेणी की कविता पढ़ने से मिल सकता है।

उपन्यासकार के रूप में भी बंकिम बाबू बहुत उच्च कोटि के उपन्यासकार हैं। बांग्ला साहित्य के सम्पूर्ण उपन्यास लेखकों में शरतचन्द्र के अतिरिक्त कोई भी इनके स्तर तक नहीं पहुँच पाया। बंकिमचन्द्र का 'आनन्दमठ' विश्व का सबसे अधिक प्रसिद्ध व पठ्य उपन्यास है। इसका हिन्दी व अन्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है जो कि अनुवादित रूप में भी मूल का आनन्द प्रदान करता है। 'आनन्दमठ' की विचारधारा व चिन्तन ने भारत की असंख्य पीढ़ियों की विचारधारा व चिन्तन पर अपनी अमिट छाप डाल दी है। बंकिमचन्द्र ने अपनी विद्वत्ता व दूरदर्शिता से

'आनन्दमठ' में भारत को स्वतंत्र भारत की दिव्य झांकी दिखलाई। बंकिमचन्द्र की उत्कट देशभक्ति ने उनके नाम को सदा-सदा के लिए अमर बना दिया है। बंकिम बाबू की भारत को महत्ततम भेंट 'वन्दे मातरम्' है। मां के प्रति उत्कट प्रेम के परिणामत: बंकिमचन्द्र के हिल्लोलित हृदय के गीत 'वन्दे मातरम्' ने भावानन्द की संगीतमय वाणी से अभिव्यक्त हो करोड़ों भारतीयों के हृदय पर जादू किया है और भारत के अणु-अणु को स्वतंत्रता का दीवाना बना दिया। 'वंदे मातरम्' प्राय: सभी क्रांतिकारियों के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति का, स्वातंत्र्य का मंत्र रहा है। लाला लाजपतराय एवं सर अरविन्द घोष तो इससे इतने अधिक प्रभावित हुए कि दोनों ने 'वन्दे मातरम्' नाम का समाचार पत्र प्रारम्भ किया। भारतीय क्रान्ति के पिता लोकमान्य तिलक को भी इस मंत्र ने अत्यधिक प्रभावित किया।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्यपूर्ण और वक्रोक्तिपूर्ण पुस्तकों का अभाव है लेकिन बंग साहित्य में इसके सबसे बड़े लेखक बंकिमचन्द्र हैं। बंकिम बाबू अपने समाज की त्रुटियों को न देख सके। अत: उन्होंने उनको कुनैन की गोली देना ठीक न समझ उसे शक्कर मिश्रित कुनैन की गोली दी। जो ऊपर से तो मीठी किन्तु भीतर से अपना प्रभाव करने वाली थी। बंकिम बाबू के कई लेख इस ढंग के हैं जो ऊपर से तो हास्यरस का चोगा पहने हैं किन्तु, भीतर से प्रभावकारी। 'चौबेजी का चिट्ठा' बंकिमचन्द्र का इस ढंग का संग्रह है। इसमें संग्रहित लेखों को पाठक पढ़ने तो बड़ी तन्मयता से बैठता है, क्योंकि रोचकता बंकिम बाबू के साहित्य का अविभाज्य अंग है लेकिन अनायास ही पाठक को अपनी व अपने समाज की त्रुटियों का आभास हो जाता है और वह अपना सुधार करता है।

बंकिमचन्द्र का बांग्ला भाषा के प्रति अनन्य प्रेम तो एक घटना से ही स्पष्ट हो जाता है। उस समय के प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् रमेशचन्द्र दत्त की योग्यता की प्रसिद्धि न केवल भारत में अपितु विलायत तक थी। रमेशचन्द्र जो कुछ लिखते थे अंग्रेजी में। संभवत: बंगाली या हिन्दी में लिखना अपना अपमान समझते थे। एक दिन बंकिम बाबू ने रमेशचन्द्र से कहा—'आप अंग्रेजी में बहुत कुछ लिखा करते हैं, मैं आपसे मातृभाषा में भी कुछ लिखते रहने के लिए अनुरोध करता हूं।' रमेश बाबू ने उत्तर दिया—'मुझे खेद है कि मातृभाषा में लिखने का मुझे अभ्यास नहीं है। मैं जो कुछ सोचता-विचारता या लिखता हूं, सब अंग्रेजी में।' बंकिम बाबू ने कहा—'आपका यह कहना संतोषजनक नहीं। आप जो लिखेंगे वही सुलिखित होगा। मातृभाषा में लिखने-पढ़ने के लिए अभ्यास नहीं, योग्यता चाहिए।' परिणामत: रमेशचन्द्र ने बांग्ला में 'माधवी-कंकण', 'समाज', 'जीवन प्रभात', 'जीवन सन्ध्या' आदि ऐसे ग्रंथ लिखे जो आज भी बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

बंकिम बाबू ने अपने निवास स्थान काटालपाड़ा में 'बंगदर्शन प्रेस' स्थापित करके 'बंगदर्शन' नाम का मासिक पत्र निकालना शुरू किया। बंकिम बाबू चार भाई थे और चारों प्रतिभाशाली और साहित्यानुरागी थे। बंकिम बाबू की मित्रमण्डली में बा. दीनबन्धु मित्रा और हेमचन्द्र बैनर्जी उनके प्रधान मित्र थे जो कि बांग्ला साहित्य के बड़े नाटककार और कवि हो गए हैं। बंकिम बाबू के सम-सामयिक उत्कृष्ट लेखक 'बंग दर्शन' में लिखते थे। छह वर्ष तक पत्र का सम्पादन करने के पश्चात् बंकिमचन्द्र ने पत्र अपने भाई के सम्पादकत्व में छोड़ दिया। यद्यपि इस समय बांग्ला में अनेक अच्छे मासिक पत्र निकलते हैं तथापि उस विधि 'बंगदर्शन' की छटा किसी में भी देखने को नहीं मिलती और इन सब पत्रों का प्रचार अधिक होने पर भी बंगदर्शन के समान आदर या गौरव नहीं है।

बंकिम बाबू का जन्म 27 जून, 1838 के उस शुभ समय में हुआ जिस वर्ष बंगाल की तीन अन्य महान् विभूतियों—कैलाशचन्द्र सेन, हेमचन्द्र सेन और कृष्णदास पाल का जन्म हुआ। बंकिम बाबू उस समय हुए जिस समय हिन्दी साहित्य के पोषक और उसको गति देने वाले बाबू भारतेन्दू हरिश्चन्द्र अपनी सहृदयता, चातुरी और अनुभव से भरे निर्मल प्रतिभामयी प्रभाव से हिन्दी साहित्य का मुख उज्ज्वल कर रहे थे। उस समय बांग्ला भी हिन्दी की तरह हीन अवस्थाओं में थी। जैसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे उच्चपदाधिकारी हिन्दी से घृणा करते थे और यहां तक कि हिन्दी में बोलना-लिखना हीनता समझते थे वैसा ही उस समय बांग्ला का हाल था। लेकिन बंकिम बाबू ने उस समय साहित्यिक क्रान्ति का नेता बन बांग्ला साहित्य की त्रुटियों को दूर कर उसके खोये हुए गौरव को पुनः जाग्रत् किया और उन्होंने ऐसा अमृत सींचा कि अब वह अमर होकर न केवल बंगाल निवासियों का ही स्तुति केन्द्र है वरन् सारे भारत को गौरवमय बना रही है।

बंगदेश की इस महान् विभूति का न्याय भी हमें बाध्य करता है कि इस महान् विभूति के सम्मुख नत-मस्तक हो जाएं। बंकिमचन्द्र बर्दबान में मजिस्ट्रेट थे। एक बार एक ग्रामीण ब्राह्मण, जिस पर चोरी का अभियोग चल रहा था, उसका केस बंकिम बाबू के पास आया। बंकिम बाबू अपनी पैनी दृष्टि से जान गए कि ब्राह्मण निर्दोष है। यह शरारत पुलिस वालों की है। जान-बूझकर एक दिन के लिए न्याय का दिन स्थगित कर दिया। बड़ी दूरदर्शिता से ऐसा षड्यंत्र रचा कि सचाई पता लगा ली और ब्राह्मण को निर्दोष मुक्त कर दिया और पुलिसमैन को कड़ा दण्ड दिया।

बंकिम बाबू की प्रतिभा का जहां साहित्य सृजन में हमें महान् रूप लक्षित होता है वहां वे साथ ही साथ सक्रिय समाज सुधारक भी थे। पति-पत्नी में पारस्परिक स्नेह और पाणिग्रहण के विषय पर बंकिम बाबू के उच्च विचार हैं,

'इन्द्रिय तृप्ति या केवल पुत्रमुख देखने के लिए विवाह नहीं है। यदि विवाह-बंधन से मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष न हो तो विवाह की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियादि तो अभ्यास के वश हैं। अभ्यास से ये सर्वदा शान्त रह सकती हैं। वरन् मनुष्य जाति इन्द्रियों को वशीभूत करके चाहे पृथ्वी से लुप्त हो जाए, जगज्जननी दुर्गा भी शिव की विवाहिता हैं।' एक अन्य स्थान पर 'पति ही पत्नी का परमेश्वर है' यह समझाते हुए लिखते हैं, 'हिन्दू ऋषियों की बुद्धि इस बात को समझने में समर्थ हुई कि यद्यपि भगवान् निराकार और निस्सीम हैं पर उनका यह रूप साधारण मनुष्य के लिए अगम्य है। इसलिए एक साकार और ससीम रूप की आवश्यकता हुई, जिसकी पूजा की जा सके। पत्नी के लिए पूजा की सबसे अधिक स्वभावानुकूल वस्तु उसका पति है। इसलिए ऋषियों का यह वचन है, कि पत्नी को पति की परमेश्वर की भांति पूजा करनी चाहिए।' बंकिम चन्द्र का हृदय देश में दिनोदिन बढ़ते पतन को देख व्यथित हो उठा और वे क्षोभवश कह उठते हैं, 'गृहिणी पंखा हाथ में लिए भोजन की थाली के पास बैठी है। नारी धर्म के पालनार्थ मक्खी उड़ानी ही है। हाय! कौन पापिष्ठ नराधम इस परम रमणीय धर्म का लोप करने जा रहे हैं? जो पापिष्ठ लोग इस धर्म का लोप कर रहे हैं, हे आकाश! उनके सिर पर गिराने के लिए तेरे पास क्या वज्र नहीं है।'

बंकिमचन्द्र को श्रद्धांजलि देते हुए रवीन्द्रनाथ लिखते हैं, 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर से मिलने के लिए कोलकाता के सब तरह के विद्वान्, साहित्य प्रेमी और कलाविद् आते थे। उस समय कोलकाता ही मानो हमारे भारत का हृदय था। भारत की चिरसुप्त प्रतिभा पश्चिम के आघात से जाग्रत् हो उठी थी और अर्धोन्मीलित आँखों को मलते हुए विकास की ओर अग्रसर हो रही थी। बंकिमचन्द्र ने बंग साहित्य में प्राण संचार कर दिया था। देश का लुप्तप्राय गर्व साहित्य के क्षेत्र में अपने आपको ढूंढ़ रहा था।'

धन्य हैं विजय गीत 'वन्दे मातरम्' के अमर गायक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय।

जन्मना जायते शूद्र संस्कारेण द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासी भवेद विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।।

वेदव्यास

मदनमोहन मालवीयजी

(1) 'मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूं। यौवन काल से आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न है। मैं उनको सर्वश्रेष्ठ हिन्दू मानता हूं। वे आचार में नियमित और विचार में बड़े उदार हैं। वे किसी से द्वेष कर ही नहीं सकते। उनके विशाल हृदय में शत्रु भी समा सकते हैं।'—महात्मा गांधी

(2) 'मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि विभिन्न मतों के मध्य केवल मालवीयजी महाराज ही भारतीय एकता की मूर्ति बने खड़े हैं।'—ऐनी बेसेंट

वंद्य मालवीय! तुम्हें भूल न सकेंगे हम,
दीनदुखियों के सुखदायक तुम्हीं रहे।
पुरुष अनेक पुरुषोत्तम तुम्हीं थे एक,
शर है असंख्य किन्तु सायक तुम्हीं रहे।।

विश्वबंधुता के गीत गायक बहुत,
पर सबके सुहृद, सब लायक तुम्हीं रहे।
होते जगती में जन-नायक अनेक,
किंतु हिन्दुओं के एक ही सहायक तुम्हीं रहे।।

('राम') -रा.श्री

वंश, जन्म, शैशव—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का जन्म तीर्थराज प्रयाग में 25 दिसम्बर, सन् 1861 को हुआ। इनके पूर्वज मालवा से प्रयाग आ बसे थे। उनके पिता श्री व्रजनाथजी पक्के सनातन धर्मी एवं आस्तिक थे। उनका भगवद्विश्वास अखंड था। श्रीमद्‌भागवत की कथा या पूजा-पाठ ही आजीविका थी। कोई स्वतः बुला ले जाए तो पंडित जी चले जाते। धर्मपत्नी के यह कहने पर कि घर में भोजन के लिए कुछ नहीं है, उनका बंधा-बंधाया उत्तर था—'कोई कथा या पूजा के लिए बुलाये, तब कुछ प्रबंध हो।' लेकिन दान लेने के वे इतने विरोधी थे कि उदार पड़ोसियों की सहायता भी मालवीयजी की माता छिपाकर ही स्वीकार करती थी। ऐसे विशुद्ध आस्तिक माता-पिता का प्रभाव मदनमोहन पर पड़ना ही था। मिर्जापुर के प्रख्यात सनातनी पंडित श्री नंदरामजी की

कन्या कंदन देवी से मालवीयजी का विवाह हुआ। उनका दाम्पत्य जीवन बड़ा सुखमय व्यतीत हुआ। सती-साध्वी पत्नी ने सदा उनका अनुगमन किया।

हिन्दू महासभा—हिन्दू महासभा के तो महामना जन्मदाता थे। सन् 1909 ई. में इंग्लैण्ड से लौटकर लाला लाजपतराय ने पं. मदनमोहन मालवीयजी के सहयोग से हिन्दू महासभा की स्थापना की।

कांग्रेस द्वारा मनोनीत, सन् 1931 में गोलमेज परिषद् की बैठक में भाग लेने लंदन जाने से पूर्व सत्याग्रह आन्दोलन के वे प्रमुख कर्णधार रहे थे और उनके व्यापक प्रभाव के कारण अंग्रेज-सरकार को बहुत सोचना पड़ा था, उन्हें केवल कुछ दिनों के लिए ही बंदी बनाने के संबंध में। एकमात्र महामना ही राष्ट्रीय कांग्रेस के ऐसे प्रमुख नेता थे जिनका प्रभाव देश के प्रत्येक वर्ग पर समान रूप से था।

पत्रकारिता—कालाकाँकर में ही महामना के पत्रकार जीवन का प्रारंभ हुआ। वहां से प्रयाग आने पर उन्होंने 'अभ्युदय' और 'इंडियन ओपिनियन' पत्रों का सम्पादन कार्य हाथ में लिया।

स्वदेशी आन्दोलन—वे तो स्पष्ट कहते थे—'विदेशी कपड़े मत पहनो, यह कहना ही द्वेषमूलक है। हमें तो कहना है—स्वदेशी ही पहनो।'

महामना को राजनैतिक जीवन के लिए कालाकाँकर नरेश राजा रामपाल सिंहजी से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

अतिथि सत्कार—पूज्य मालवीयजी का गृह अपने अतिथि सत्कार के लिए विख्यात था। उनके घर का चूल्हा प्रातः सूर्योदय के साथ जल जाता। चाहे कोई किसी समय प्रस्थान करने वाला हो। जो आया है उसे तो भोजन करके ही जाना चाहिए। रात्रि के एक बजे तक चौका चलता रहता।

गो रक्षा, गंगा—जब वे गोलमेज परिषद् में महात्माजी के साथ लंदन गए, उनके साथ गंगाजल, मिट्टी और गो भी भारत से गई थी। अतिथि, ब्राह्मण और गो—यही तो हिन्दू के आराध्य हैं।

जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी एक ही धुन थी—प्रत्येक समर्थ मिलने वाले से उस असमर्थ महाप्राण की एक ही याचना होती थी—'मैं गायों की सेवा न कर सका। एक स्थान पर एक गोशाला में एक लाख गायें सुख से पलें—मेरी यह लालसा रह गई।' गोसेवा के लिए, गोचरभूमि के लिए, गोशालाओं के लिए उनका उद्योग कम नहीं था। उनसे किसी सामान्य व्यक्ति ने भी गो के नाम पर कोई सहायता चाही तो उन्होंने कभी अस्वीकार नहीं किया। उनका कहना था—'प्रत्येक हिन्दू के घर में कम से कम एक गाय रहनी ही चाहिए।'

धर्म सेवा—पूज्य मालवीयजी कट्टर हिन्दू थे। हिन्दू सिद्धान्तों की उन्हें सजीव मूर्ति कहना चाहिए। आचार में अत्यन्त संयमी और विचार में परम उदार—हिन्दू धर्म की यह विशेषता उनमें बहुत स्पष्ट थी। उनका स्पर्शास्पर्श का विचार इतना पूर्ण था कि बड़े जंक्शनों के प्लेटफार्म पर एक ओर चौका लगाकर स्वयं खिचड़ी बना लेना उनके लिए सामान्य बात थी। मालवीय परिवार से बाहर किसी के हाथ का कच्चा भोजन वे नहीं करते थे।

ब्राह्मणभक्ति—पूज्य मालवीयजी को लोग ब्राह्मणों का पक्षपाती कहने लगे थे। वे कहा करते थे—'कोई ब्राह्मण मेरे पास किसी उद्देश्य से आए और निराश लौटने लगे तो मेरे प्राण उससे पहले चले जाने चाहिए।' प्राणपण से उन्होंने ब्राह्मणों की सेवा की।

हिन्दुत्व—हिन्दू संगठन, हिन्दू धर्म ही उनका प्राण था।

भगवद् भक्ति—'मैं पुराणों की सत्यता के संबंध में प्रत्येक समय शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हूं।' महामना की यह घोषणा केवल मौखिक नहीं थी। पुराणों पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। श्रीमद्‌भागवत का पाठ उनका नियमित रूप से चलता था। लंदन के अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम में भी उन्होंने अपने पाठ में विराम नहीं पड़ने दिया। उन्हें प्राय: सम्पूर्ण भागवत कंठस्थ थी और जब वे गद्‌गद कंठ से भाव समझाते हुए श्रीमद्‌भागवत के श्लोक पढ़ने लगते थे तब उनके दोनों नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बह निकलती थी।

शिक्षा सेवाएं—'एक साथ एक लाख ब्रह्मचारी एक स्थान पर सस्वर सामगान करें।' यह महत्त्वाकांक्षा थी, जिसने महामना को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में लगाया। विश्वविद्यालय उनकी भारत को अमर भेंट है। विश्वविद्यालय के लिए कुछ सहायता प्राप्त किये बिना वे भोजन तक नहीं करते थे। जीवन के अंतिम वर्षों तक उनका यह नियम चलता रहा और तभी बंद हुआ, जब वे सर्वथा असमर्थ हो गए।

सहृदयता, दयालुता, उदारता—वृद्धावस्था, रोगशय्या, इतना दुर्बल शरीर कि उठकर बैठना कठिन। श्रवण एवं नेत्रों में शक्ति नहीं। कोई बात स्मरण नहीं रहती थी और इस स्थिति में भी महामना विश्वविद्यालय के गरीब छात्रों के सहायक, पितातुल्य थे। दु:खियों के आश्रयदाता थे। उत्पीड़ितों के शरणद थे। राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधारों के मंत्रदाता थे। सब उस पितामह के पास उस स्थिति में भी पहुंच जाते और संतुष्ट होकर ही लौटते।

सब जानते हैं कि लंदन से लौटने पर उन्होंने समुद्र यात्रा का सविधि प्रायश्चित्त किया था। इतने आचार प्रधान होने पर भी उनका विचार इतना उदार था कि वे कभी किसी दूसरे पर कोई दबाव देते ही नहीं थे।

उद्‌बोधक विचार—उन्होंने कहा था—'जो हिन्दुओं को शांति के साथ नहीं रहने देना चाहते, उनके साथ किसी प्रकार की सहिष्णुता नहीं हो सकती।.... हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म खतरे में है। परिस्थिति संकटापन्न है। ऐसा समय आ गया है कि हिन्दू एक होकर सेवक तथा सहायता की साधना को परिपुष्ट करें। आज भी उन महापुरुष की चेतावनी वैसी ही नहीं है—कैसे कहा जा सकता है?

नोआखली काण्ड—नोआखली का वह पैशाचिक हत्याकांड, जराजर्जर, रोगकृश महामना ने वह समाचार सुना और उनका हृदय करुणा से बिद्ध हो गया। वह यह धक्का सम्हाल नहीं सके। यह सभी जानते हैं कि नोआखली कांड ने ही 12 नवम्बर, सन् 1946 को महामना का बलिदान लिया।

महात्मा गांधी उन्हें बड़ा भाई कहते थे। राजे-महाराजों के वे पूज्य थे। धार्मिक जनता के देवता और सम्पन्न वर्ग के परम आदरणीय थे। ब्रिटिश सरकार के उच्च कर्मचारी उनके प्रभाव से परिचित थे और उनका पूरा सम्मान करते थे।

एक सच्चा मानव, एक सच्चा आदर्श हिन्दू, एक सच्चा महापुरुष आया और चला गया। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन ने उससे बहुत कुछ पाया और बहुत कुछ पाया हिन्दू जाति ने। किन्तु, यदि राष्ट्र के कर्णधार और हिन्दू एक होकर उनके आदर्श को स्वीकार कर लेते, भारत सचमुच ऋषियों का भारत हो जाता। हिन्दू संस्कृति पुनर्जीवन प्राप्त कर लेती। क्योंकि महामना स्वयं हिन्दू संस्कृति, सादगी, सदाचार एवं आदर्श की जीवित प्रतिमा थे।

न दाता सुखदुःखानां न च हर्तास्ति कश्चन।
भुञ्जते स्वकृतान्येव दुःखानि न सुखानि च॥

गरुड़ पुराण, 221/8

न कोई किसी को सुख-दुःख दे सकता है, न ही कोई किसी के सुख-दुःख का हरण कर सकता है। सभी अपने किये हुए कर्म के अनुसार ही सुख-दुःख का भोग करते हैं।

× × ×

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्म सूत्रे ग्रथितो हि लोकः॥

उ. रामायण

× × ×

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

मानस, 2/91/4

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पारिवारिक परिचय—रवीन्द्रनाथ का कुटुम्ब बंगाल में अत्यन्त प्राचीनकाल से एक बहुत प्रतिष्ठित कुटुम्ब समझा जाता है। उस वंश में कई बड़े-बड़े साधु और महात्मा पहले भी हो चुके हैं। स्वयं रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी बंगाल के एक बहुत बड़े महात्मा थे। इनकी शांति, दया, क्षमा, धर्म, ज्ञान और परोपकार इत्यादि सद्गुणों के कारण ही लोगों ने इनको कलयुग के समय में भी महर्षि की पदवी दी थी।

परिस्थितियां—उनके जन्म के समय तीन आंदोलन भारत के जन मानस को आलोकित कर रहे थे....। वे तीन धाराएं थीं—ब्रह्म समाज, राष्ट्रीय आंदोलन तथा साहित्य में नवजागरण की चेतना।

कवि की प्रतिभा तो उनमें स्वाभाविक, ईश्वर की दी हुई थी। परन्तु प्रसिद्ध बंग-कवि चंडीदास, मैथिल कवि विद्यापति तथा कबीरदास, चैतन्यदेव इत्यादि साधु कवियों की कविताओं के अध्ययन का प्रभाव उन पर बहुत पड़ा। अतएव कविता के विषय में रवीन्द्र बाबू इन साधुओं को अपना गुरु स्वरूप मानते रहे।

जन्म—इनका जन्म कोलकाता में सन् 1861 में हुआ था।

वंश—रवीन्द्रनाथ का कुटुम्ब बंगाल में अत्यन्त प्राचीनकाल से एक बहुत प्रतिष्ठित कुटुम्ब समझा जाता है। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर एक धर्मात्मा व्यक्ति और महान् चिन्तक थे। वे विशेषकर परोपकार, धर्म-प्रचार और ईश्वर चिंतन में ही मगन रहा करते थे। रवीन्द्रनाथ की माता भी एक प्रतिष्ठित कुल की सुयोग्य महिला थीं। वे अत्यन्त सुशील, धर्मात्मा, पतिव्रता, सती-साध्वी देवी रूप थीं। साधु और साध्वी, पिता व माता के सद्गुण रवीन्द्रनाथ में बालपन से ही दिखलाई देने लगे थे। परन्तु, पूज्य माता की गोद में बहुत दिनों तक लालन-पोषण और शिक्षण प्राप्त करने का सौभाग्य रवीन्द्रनाथ को नहीं मिला। उनकी माता का देहांत उनके बचपन में ही हो गया।

शैशव—अपने बालपन के विषय में रवीन्द्रनाथ ने एक बार अपने एक अंग्रेज मित्र से कहा था—'मैं अपने बालपन की एक खास बात यह बतला सकता

हूं कि मेरा स्वभाव बहुत ही एकांतप्रिय था। मेरे पिता की भेंट मुझसे बहुत कम होती थी। परन्तु, घर में सब उनकी ऐसी धाक मानते थे कि जैसे वे प्रत्यक्ष ही हम लोगों के सामने खड़े हों। जैसे कोई कैदी किसी कोठरी में, सिपाहियों की देख-भाल में रख दिया गया हो। इसी प्रकार से मैं अपने घर में रहता था। मैं अधिकतर अपने घर में ही बैठा रहता था और मेरे आसपास के घर के नौकर-नौकरानियां ही मेरे साथी-संगी थे। हमारे कमरे के बाहर संसार में क्या हो रहा है—इसके नाना भांति के चित्र मैं अपनी कल्पना से ही अपने मन में लाया करता और उन्हीं से अपना मनोरंजन किया करता था। बस, यही मेरा लड़कपन का खेलकूद था।'

शिक्षा—रवीन्द्रनाथ की बालपन की शिक्षा स्कूल में बहुत ही कम हुई। वे लड़कपन में जिस पाठशाला में पढ़ने को जाते थे, उस पाठशाला के अध्यापकों का व्यवहार विद्यार्थियों के साथ अच्छा नहीं था। बालकों को प्यार के साथ विद्या पढ़ाने की सोच उस समय बहुत कम थी। ताड़ना और भय दिखाकर अध्यापक लोग शिष्यों को पढ़ाया करते थे। बालक रवीन्द्र के साथ अध्यापकों का ऐसा ही बर्ताव हुआ। रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि एक अध्यापक तो पाठशाला में उनको बहुत ही निर्दय मिला। वह थोड़ी-सी चूक होने पर भी रवीन्द्र को बिना टोपी के खुले सिर घंटों धूप में खड़ा रखता। अन्य विद्यार्थियों के साथ भी रवीन्द्र ने अध्यापकों का ऐसा ही क्रूर व्यवहार देखा। इसका परिणाम यह हुआ कि पाठशाला की पढ़ाई से उनका मन उचट गया। और पाठशाला से वे अनुपस्थित रहने लगे। इसके लिए वे लड़कपन में अनेक बहाने निकालने लगे। रवीन्द्रनाथ स्वयं कहते थे कि कभी-कभी तो वे अपने पैर के बूटों को पानी में डुबोकर, वैसे ही गीले बूट पहने हुए घूमा करते थे, जिससे उनको बुखार आ जाए और इसी निमित्त से पाठशाला से उनका पिंड छूटे। सच है, रवीन्द्र के समान कोमल भावनाओं के जगत् में विचरण करने वाले बालकों को स्कूल की पढ़ाई के लिए जबरदस्ती मजबूर करना कभी हितकर नहीं है। यह बात उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर के ध्यान में तुरन्त आ गई और उन्होंने बात की बात में रवीन्द्र का स्कूल छुड़वा कर घर में ही निजी शिक्षक के द्वारा उनकी पढ़ाई का प्रबंध किया।

प्रकृति प्रेम—रवीन्द्रनाथ का बालपन अधिकतर प्रकृति माता की ही गोद में व्यतीत हुआ। उनके स्वभाव में एकांतप्रियता के लक्षण पहले से ही दिखाई देने लगे थे। प्रकृति निरीक्षण का ही उन्हें बालपन में विशेष प्रेम था। जब कभी आकाश में बादलों के ऊपर बादलों को दौड़ते हुए देखते थे तब वे पागल-से हो जाते थे। बचपन में भी उन्हें कुछ ऐसा विश्वास था कि जैसे उनके आसपास कोई उनका अत्यन्त प्राणप्रिय मित्र अवश्य मौजूद है। पर उसका नाम क्या है, उसका रूप कैसा है। उसे वे प्रकट रूप से बतला नहीं सकते थे। प्रकृति पर उनका बहुत ही प्रेम था।

जिसको वे शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते थे। उसी को अपनी अत्यन्त प्राणप्रिय सखी समझते और उसमें क्षण-क्षण पर उन्हें नवीन सौन्दर्य दिखलाई देता।

काव्य स्फुरण—रवीन्द्र बाबू सत्रह-अठारह वर्ष की अवस्था में सर्वप्रथम जनता के सामने कवि रूप में प्रकट हुए। उस समय की उनकी रची हुई 'प्रभात-संगीत', 'संध्या-समीर' और 'मृत्यु का अमरत्व' इत्यादि कविताएं बहुत पसंद की गईं।

रवि के पास कवि हृदय तो था ही बस प्रेरणा और संयोग पाकर वह फूट पड़ा और वह केवल भारत का ही नहीं बल्कि विश्व का महाकवि बन गया। जब कवि का सुमधुर कंठ खुला तो लोग आश्चर्यचकित रह गए। सब इस सोच में पड़ गए कि इस महापुरुष को क्या कहा जाए—महाकवि या संगीतज्ञ। लोगों ने उन्हें गुरुदेव कहना शुरू कर दिया।

इंग्लैण्ड यात्रा (18 वर्ष) 'जॉन मोर्ले—रवीन्द्र बाबू पहले-पहल सत्रह वर्ष की अवस्था में विलायत गए और वहां पर लगभग एक वर्ष रहकर प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और राजनीतिज्ञ जॉन मोर्ले के यहां अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करते रहे। एक बार विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की भी उन्होंने कुछ चेष्टा की थी। पर उनको विश्वविख्यात महाकवि बनना था। अतएव, उस समय उनको उक्त चेष्टा में सफलता नहीं मिली।

विवाह—तेईस वर्ष की अवस्था में रवीन्द्र बाबू का विवाह हुआ। अब वे गृहस्थ थे।

जमींदारी—जब वे गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट हुए तब गांव में जाकर अपनी पैतृक जमीन-जागीर का प्रबंध करने के लिए पिता ने उनको आज्ञा दी। जमींदारी के कामों की देखरेख करने के सिलसिले में उन्हें नदियों के द्वारा बराबर यात्रा करनी पड़ती थी। इस प्रकार उन्हें नदियों का पूरा ज्ञान प्राप्त हुआ था।

गृहस्थी—पैंतीस वर्ष की अवस्था तक उनका गार्हस्थ्य जीवन बहुत ही सुख और आनन्द के साथ व्यतीत हुआ।

ग्राम्य जीवन—गांव में रहते-रहते रवीन्द्र बाबू का मन वहां रम गया। गांव में रहने के कारण उनको सर्वसाधारण लोगों और किसानों के आचरण, व्यवहार और उनकी परिस्थिति को जानने का बहुत अच्छा अवसर मिला। वहां उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से यह अनुभव किया कि मनुष्य मात्र के हृदय में आनन्द और दुःख तथा वासना और भावना का परस्पर मिश्रण कैसे होता है।

दुःख का दंश—पैंतीस वर्ष की अवस्था के बाद उनके जीवन में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिन्होंने उनके उस नैसर्गिक प्रेममय जीवन में एक विचित्र क्रांति

अर्थात् परिवर्तन कर दिया। उनका जीवन स्वाभाविक ही भगवद्भक्ति और साधुत्व की ओर अब विशेष रूप से अग्रसर हुआ। अर्थात् पैंतीस वर्ष की अवस्था में पहले उनकी प्रिय पत्नी का देहांत हुआ। फिर कुछ महीने बाद उनकी पुत्री क्षय रोग से स्वर्गवासिनी हुई। इस प्रकार एक के बाद एक ऐसी शोकजनक घटनाएं घटीं जिन्होंने उनके जीवन को और भी ऊँचा करके उनको बिलकुल साधु बना दिया।

वियोग शोक, मृत्यु दर्शन—रवीन्द्र बाबू ने स्वयं एक बार अपने मित्र ऐंड्र्यूज साहब से कहा था—'यह मृत्यु मानो मेरे लिए ईश्वर का एक बड़ा भारी वरदान-सी मालूम हुई। मैंने पूर्णतः समझ लिया कि परमात्मा ने मेरे ऊपर पूर्ण कृपा की। मेरा कुछ भी नष्ट नहीं हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि मिट्टी का एक कण भी, चाहे वह हमको नष्ट होता हुआ-सा दिखलाई दे—पर, वास्तव में नष्ट नहीं हो सकता। मैं परमात्मा पर सारा भार डालकर बिलकुल निश्िंचत हो गया। यही नहीं, बल्कि मुझे विश्वास हो गया कि मेरा जीवन अब बिलकुल सार्थक हुआ। मृत्यु क्या चीज है। इसका ज्ञान अब मुझे हुआ। मृत्यु का अर्थ है—पूर्णता। वह किसी का नाश नहीं कर सकती। उसमें कुछ भी नष्ट नहीं होता।'

साहित्य—टैगोर ने दर्जनों उपन्यास, सैकड़ों कहानियां और अनेक नाटक लिखे हैं। उपन्यासों में—'दो बहिनें', 'नौका डूबी', 'गोरा', 'अन्तिम कविता', 'चार अध्याय', आँख की किरकिरी' तथा नाटकों में 'डाकघर', 'चित्रा', 'लालकनेर' और 'चंडालिका' है। लेकिन मूल रूप में वह कवि थे।

गीतांजलि—गीतांजलि के एक गीत का भावार्थ—'भगवन्! फूल की तरह आप ही आप खिला हुआ यह गीत तुम्हारा ही दिया हुआ है। यह फूल देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। अब इसको अपनाकर मैं तुम्हें समर्पित करता हूं। सो तुम स्नेह से हँसकर इसको अपने हाथ से ग्रहण करो। प्रभो, कृपा करो! मेरा मान रखो।'

नोबल पुरस्कार—सन् 1912 ई. में रवि बाबू ने विलायत में अपनी बांग्ला 'गीतांजलि' का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस 'गीतांजलि' के गीत-पुष्पों की सुगन्ध यूरोप के लोगों को इतनी आकर्षक और मनोहर मालूम हुई कि सन् 1913 ई. में स्वीडन निवासी महात्मा नोबल का स्थापित किया हुआ नोबल पुरस्कार रवीन्द्र बाबू को ही दिया गया। इस पुरस्कार का निर्णय करने वाली विद्वत्सभा ने सर्वसम्मति से यह निर्णय प्रकट किया है कि यह ग्रंथ संसार का सत्य-हित-साधन करने वाला और मनुष्य मात्र के चित्त को शांति देने वाला है। उस अवसर पर रवीन्द्रनाथ को अभिनन्दन पत्र देते समय यूरोप की विद्वत्सभा ने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे—

अभिनंदन—'मनोहर कविता ही आपके लिए ईश्वरीय वरदान है। आप इस वरदान का पवित्र और मंगल कार्य में उपयोग कर रहे हैं। आपने चित्त को आनन्द

दिया है। मन को शांति दी है। कानों को गाना सुनाया है। नेत्रों को सौन्दर्य के रूप दिखलाए हैं और आत्मा को उसके दिव्य स्वरूप का ज्ञान करा दिया है।'

इन शब्दों से रवीन्द्र बाबू की काव्य-प्रतिभा और उनकी 'गीतांजलि' का महत्त्व भली भांति प्रकट हो जाता है। गीतांजलि पर एक लाख बीस हजार रुपये का जो पुरस्कार उनको मिला। वह उन्होंने अपनी परमप्रिय संस्था—बोलपुर के 'शांति निकेतन' को दे दिया।

देश भक्ति

गीत क्रमांक-1

आमार सोनार बांगला आमि तोमाय भालो बासी।
चिरोदिन तोमार आकाश तोमार बातास
ओ मां तोमार प्राणे बाजाय बांसी
सोनार बांगला आमि तोमाय भालो बासी
ओ मां फागुने तोर आमेर बोले घ्राने पागल कोरे
ओ मां अघ्राने तोर भरा खेते ओ मां आमि की देखे ही मधुर हासी।।1।।
आमार सोनार बांगला.....

ओ मां तोर खेला घोरे, शिशु काल काटिलो रे,
ओ मां तोर ओंगे माटी, ओ मां खेला घोला सोकोल
फेले ओमां तोमार कोलेई-छुटे आसि।।2।।
आमार सोनार बांगला.....

गीत क्रमांक-2

ओ आमार देशेर माटी तोमार पोरे ठेकाई माथा
तो माते तोमाते विश्वमाये आँचल पाताय।
ओ आमार.....

'अन्याय सह लेने वाला भी अपराधी होता है। यदि वह न सहा जाए तो फिर कोई किसी से अन्यायपूर्ण व्यवहार कर ही नहीं सकेगा।' रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सन् 1919—जलियांवाला बाग के हत्याकांड पर विश्वकवि ने 'सर' की उपाधि त्याग दी। उन्होंने सरकार को लिखा—'पंजाब में स्थानीय दंगों को शांत करने के लिए जिस नीति का सरकार ने अनुसरण किया है, उससे हमें बहुत भारी व्यथा पहुँची है.... जिस अनुचित तथा क्रूर नीति से उन भाग्यहीन व्यक्तियों को

दंड दिया गया है उसका उदाहरण सभ्य संसार की सरकारों में नहीं मिलता। निहत्थे, साधनरहित नागरिकों पर जिस संस्था ने अत्याचार किए हैं उस संस्था के राजनैतिक औचित्य के प्रति हमारा भारी विरोध है....।

मैं उन भूखे, व्यथा से व्यथित करोड़ों देशवासियों के लिए केवल यही कर सकता हूं कि ऐसी घटनाओं का विरोध कर उसका परिणाम अपने ऊपर लूँ। ऐसी स्थिति में सम्मान के पदक हमारे लिए अपमान के चिह्न हैं।.... इन्हीं दुःखदायी कारणों से व्यथित होकर मैं सरकार से प्रार्थना करता हूं कि मुझे उस उपाधि से मुक्त किया जाए जो सम्राट् ने मुझे दी है।'

शिक्षा सेवा—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने देश के बालक-बालिकाओं को भारत की प्राचीन परिपाटी से शिक्षा देने के लिए कोलकाता नगर में अपनी एक निजी पाठशाला स्थापित की थी। इस पाठशाला में कितना तप-त्याग करना पड़ा इस विषय में अपने एक पत्र में श्री ऐंड्र्यूज को उन्होंने लिखा था—'इस पाठशाला को चलाने के लिए मैंने अपनी पुस्तकें बेचीं। अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के अधिकार बेचे। जो कुछ मेरे पास था; सब बेच डाला। उस समय मैंने कौन-कौन से प्रयत्न किए और कैसी-कैसी कठिनाई झेली, क्या बताऊँ? इस पाठशाला को स्थापित करने में मेरा यह उद्देश्य था कि विद्यार्थियों में देशाभिमान की जागृति हो। फिर आगे चलकर उसमें अध्यात्म विद्या की शिक्षा बढ़ा दी थी। उस समय की कठिनाइयों और संकटों के कारण मेरी मानसिक दशा में एक विचित्र परिवर्तन उपस्थित हुआ था।'

शांति-निकेतन—रवीन्द्र बाबू की कोलकाता की यह पाठशाला तो नहीं चल सकी, पर पाठशाला चलाने की लगन उनके मन में बराबर लगी रही। उनके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने, कोलकाता से कुछ दूर, बोलपुर नामक स्थान के घने जंगल में अपने भगवद्भजन के लिए, लगभग चालीस वर्ष पहले एक आश्रम बनाया था। यहां उक्त महात्मा को अपूर्व शांति का अनुभव होता था। और इसी कारण इसका नाम 'शांति-निकेतन' रखा गया।

विदेशों में प्रतिष्ठा—'नोबल पुरस्कार' के मिलने पर रवीन्द्र बाबू का नाम सारे संसार में विख्यात हो गया। उनकी 'गीतांजलि' के अनुवाद संसार की प्रायः सभी सभ्य भाषाओं में प्रकाशित हुए। अंग्रेजी में तो उसके कई उत्तमोत्तम और सुन्दर संस्करण निकाले गए हैं। गीतांजलि का दिव्य आनन्द प्राप्त करके स्वाभाविक ही कवीन्द्र-रवीन्द्र के दर्शन की और उनके प्रत्यक्ष उपदेश सुनने की अभिलाषा पश्चिमी लोगों को हुई। अतएव अनेक देशों के विद्वानों ने अपने-अपने देशों में पधारने के लिए रवीन्द्र बाबू को आमंत्रित किया। इधर रवीन्द्र बाबू को भी

देश-देशांतर की यात्रा में पहले से ही बहुत आनंद आता था। प्रकृति निरीक्षण और मानवी चरित्र का अध्ययन उनके अत्यन्त प्रिय विषय रहे थे। इसलिए उन्होंने पिछले वर्षों में इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन, स्विटजरलैंड, अमरीका इत्यादि सभी पश्चिमी देशों की यात्रा की। इधर पूर्वी देशों में चीन, जापान, स्याम और जावा, बाली, मलाया इत्यादि पूर्वीय द्वीपों में भी उन्होंने अपना दिव्य संदेश पहुँचाया। सब देशों के विद्वानों ने तथा कई देशों की सरकारों ने भी उनका अपूर्व गौरव से आदर-सत्कार किया।

उनके उपदेश के विषय में एक पश्चिमी लेखक लिखता है—'रवीन्द्रनाथ के व्याख्यान सुनकर हमको बहुत कौतूहल हुआ। ऐसा जान पड़ा कि भारत की प्राचीन अध्यात्मविद्या हमारे देश में पहुँचाने वाले ये हमारे नवीन गुरु हैं। इनका व्याख्यान सुनते समय हमको ऐसा मालूम हुआ जैसे हम किसी ऋषि के आश्रम में बैठकर उनका उपदेश सुन रहे हों।'

दर्शन—भिन्न-भिन्न देशों में रवीन्द्र बाबू ने जो व्याख्यान दिए हैं उनका संग्रह 'साधना' नामक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में स्वार्थ और परमार्थ संबंधी उनके उच्च विचार भली भांति प्रकट हुए हैं। रवीन्द्रनाथ ने सैकड़ों ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, निबंध, प्रबंध इत्यादि सब प्रकार के ग्रंथ हैं। कविता-रत्नों की तो बहुत विपुलता है, जिनमें नाना प्रकार के भावात्मक गान भी हैं। उनकी 'गीतांजलि' को जो सम्मान सारे संसार में प्राप्त हुआ वह आधुनिककाल के अन्य किसी भारतीय ग्रंथ को नहीं प्राप्त हुआ है।

पत्रकारिता—रवीन्द्र बाबू ने अपनी युवावस्था में 'बालक' नामक एक मासिक पत्र निकाला था। इसके बाद 'भारती', 'भंडार', 'साधना' और 'बंग-दर्शन' नामक पत्रों का भी उन्होंने समय-समय पर बड़ी योग्यता से संपादन किया। 'प्रवासी' के 'संकलन' नामक स्तंभ का भी उन्होंने कुछ काल तक संपादन किया था। अपने संपादन काल में उन्होंने अनेक नवीन लेखकों को सुचारु रूप से लेखन-कला की ओर प्रवृत्त करके उनको प्रोत्साहित किया।

स्वर संगीत

गान के सुर—'गान के सुर के आलोक में इतनी देर बाद जैसे सत्य को देखा। अन्तर में यह ज्ञान की दृष्टि सदा जागृत न रहने से ही सत्य मानो तुच्छ होकर दूर खिसक पड़ता है। सुर का वाहन हमें उसी परदे की ओट में सत्य के लोक में वहन करके ले जाता है, वहां पैदल चल कर नहीं जाया जाता। वहां की राह किसी ने आंखों नहीं देखी।'

स्वर धारा—'तुम्हारे सुर की धारा मेरे मुख और वक्षःस्थल पर सावन की झड़ी के समान झड़ पड़े। उदय कालीन प्रकाश के साथ वह मेरी आंखों पर झड़े।

निशीथ के अंधकार के साथ यह गंभीर धारा के रूप में मेरे प्राणों पर झड़े, दिन-रात वह इसी जीवन के सुखों और दुःखों पर झड़ती रहे।

तुम्हारे सुर की धारा सावन की झड़ी के समान झड़ती रहे। जिस शाखा पर फल नहीं लगते, फूल नहीं खिलते उस शाखा को तुम्हारी यह बादल-हवा जगा दे। मेरा जो कुछ भी फटा-पुराना और निर्जीव है, उसके प्रत्येक स्तर पर तुम्हारे सुरों की धारा झड़ती रहे। दिन-रात इस जीवन की भूख पर और प्यास पर वह सावन की झड़ी के समान झड़ती रहे।

श्रावनेर धाराරमतो पड़ुक झरे पड़ुक झरे,
तोमारि सुर त आमार मुखेर परे, वुकरे परे।
पूरबेर अलोर साथे झड़ुक पाते दुइ नयने-
निशीथेर अंधकारे गंभीर धारे झड़ुक प्राणे
निशि दिन एइ जीवनेर सुखेर 'परे दुखेर, परे'
श्रावणेर धारार मतो पड़ुक झरे पड़ुक झरे।।
ये शाखाय फूल फोटे ना फल धरे ना एके बारे।
तोमारि बादल बाये दिक् जागाये सेइ शाखा रे।
या किछू जीर्ण आमार दीर्ण आमार जीवन धारा
ताहारि स्तरे-स्तरे पड़ुक झरे सुरेर धारा
निशि दिन एइ जीवनेर तृषार, 'परे भुखेर, परे'
श्रावणेर धारार मतो पड़ुक झरे पड़ुक झरे।।

इस प्रकार सुर की धारा रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में समस्त जीर्णता, बंध्यता, असफलता और क्षुद्र-प्रयोजनों को बहाकर मनुष्य को सहज-सत्य के सामने खड़ा कर देती है। निस्संदेह संगीत ऐसी ही वस्तु है।

राजनैतिक जागरण का युग

यह युग भारतवर्ष में राजनैतिक जागरण का युग है। रवीन्द्रनाथ ने किसी जमाने में राजनैतिक आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था। परन्तु बहुत शीघ्र ही उन्होंने देखा कि जिन लोगों के साथ उन्हें काम करना पड़ रहा है, उनकी प्रकृति के साथ उनका मेल नहीं है। रवीन्द्रनाथ अन्तर्मुखी-साधक थे। हल्ला-गुल्ला करके, ढोल-पीट के, गला फाड़ के लेक्चरबाजी करके जो आंदोलन, प्रदर्शन किया जाता है, वह उन्हें उचित नहीं जंचता था। देश में करोड़ों की संख्या में दलित अपमानित, निरन्न-निर्वस्त्र लोग हैं, उनकी सेवा करने का रास्ता ठीक वही रास्ता नहीं है, जिस पर वाग्वीर लोग शासक वर्ग को धमका कर चला करते हैं। शौकिया ग्रामोद्धार करने वालों के साथ उनकी प्रकृति का एकदम मेल नहीं था। जो लोग सेवा करना

चाहते हैं उन्हें चुपचाप सेवा में लग जाना चाहिए। सेवा का विज्ञापन करना सेवा भावना की विरोधी बात है। उन्होंने हल्ला-गुल्ला करने वालों को लक्ष्य करके गाया था—

ओरे तोरा
नेइवा कथा ब'लाले
दांड़िये हाटेर मध्यिखाने
नेइ जागालि पल्ली।।
मरिस् मिथ्ये ब'के-झ'के
मने मनेइ ज्व'ल्लि—
नेइ जागालि पल्ली।।
देखे केवल हासे लोके,
ना हय निमे आपन मनेर आगुन,
मने मनेइ ज्व'ल्लि—
नेइ जागालि पल्ली।।
अतरे तोर आछे की-ये,
नेइ रालि निजे-निजे,
ना हय वाद्यगुलो वंध रेखे
चुपचापेइ च'ल्लि—
नेइ जागालि पल्ली।।
काज थाके तो कर गे ना काज,
लाज थाके तो घुचो गे लाज
ओरै, ये-ये तोरे ब'लेछे,
नइ वा ता'ते ट'लिलि—
नेइ जागालि पल्ली।।

अरे भाई! क्या बिगड़ गया यदि तूने कोई बात नहीं कहीं? बाजार में खड़े होकर अगर तूने ग्रामों को जगाने का काम नहीं ही किया तो क्या हो गया! बेकार बकवास करके मर रहे हो, देखकर लोग केवल हंसते हैं। अपने मन की आग से तुमने मन ही मन जला लिया तो क्या बुरा हुआ? क्या हुआ जो तुमने गांव को नहीं जगाया। तुम्हारे मन में क्या है जो तुमने खुद-ब-खुद चिल्लाकर नहीं कहा तो क्या बिगड़ गया। न हो, ये बाजे बंद कर के और चुपचाप ही चल दिए तुम! अरे भाई, तुमने ग्रामोद्धार नहीं किया यदि कुछ काम हो तो जावो न, उसे करो, यदि तुम्हारे भीतर कहीं लाज हो जावो न, सबकी लाज बचावो। अरे भाई! किसने तुम्हें

क्या कहा है, इस बात से तुम नहीं ही विचलित हुए तो क्या बिगड़ गया। न हुआ, तुमने ग्रामोद्धार नहीं ही किया।'

स्वदेश भक्ति और साधना के गीत—उनकी स्वदेश भक्ति उनकी भगवद् भक्ति की विरोधिनी नहीं थी। उनके ऐसे बहुत थोड़े गान हैं जिन्हें निश्चित रूप से स्वदेश भक्ति के गान कहा जा सकता है, नहीं तो साधारणतः राष्ट्रीय गानों के रूप में प्रचलित उनका ऐसा शायद ही कोई गान हो जो भक्ति और साधना के अन्यान्य क्षेत्रों में व्यवहृत न हो सकता हो। उनकी समस्त साधना का लक्ष्य एक ही आनन्द-धाम भगवान् था। यदि किसी कार्य का उसके साथ विरोध है तो उसे उचित नहीं माना जाना चाहिए। उनका प्रसिद्ध उद्‌बोधन संगीत, जिसमें उन्होंने अकेले ही समस्त दुःखों को सिरथः स्वीकार करके अग्रसर होने की सलाह दी है। वस्तुतः यह स्वदेश भक्ति तक सीमित नहीं। वह आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर बढ़ने का आह्वान है।

यदि तोर डाक सुने केउना आसे
तबे एकला चलो रे

देश माता के प्रति जो भक्ति है, वह क्या किसी स्वार्थ के कारण है? माता के प्रति पुत्र का प्रेम अहैतुक होता है।

सार्थक जन्म आमार, जन्मेछि ए देशे।।
सार्थक जन्म मागो तोमाय भाल बेसे।।
जानिने तोर धन रतन, आछे किंना रानीर मतन।।
शुधू जानि आमार अंग जुड़ाय तोमा छपाय एसे।।
कोन् बनेते जानिने फल गंधे एमन करे आकुल।।
कोन् गगने ओठे रे, चांद एमन हासिए से।।
आँखि मेले तोमार आली प्रथम आमार चीख जुड़ाल।।
ओइ आलो तेई नयन रेखे मोरबो नयन शेले।।

अर्थ—माता मेरा जन्म सार्थक है जो इस देश में पैदा हुआ हूं। मेरा जन्म सार्थक है जो मैं तुझे प्यार कर रहा हूं। मुझे ठीक नहीं मालूम कि तेरे पास किसी रानी की भांति कितना धन है, कितने रत्न हैं। सिर्फ इतना ही जानता हूं कि तेरी छाया में आने से मेरे अंग-अंग जुड़ा जाते हैं। मैं ठीक नहीं जानता कि और किसी वन में ऐसे फूल खिलते हैं या नहीं, जो इस प्रकार अपनी सुगंधि से आकुल कर देते हैं, यह भी नहीं जानता कि किसी आसमान में ऐसी मधुर हंसी हंसने वाला चांद उठता है या नहीं, सिर्फ इतना ही जानता हूं कि तुम्हारे प्रकाश में पहले-पहल मैंने आंखें खोली और वे जुड़ा गई। बस इसी आलोक में आंखें बिछाए रहूंगा और अन्त में इसी आलोक में उन्हें मूंद भी लूंगा।

रवीन्द्रनाथ की प्रेरक वाणी

अपूर्णता का नाम ही दुःख है, बुराई है। सृष्टि अपूर्ण है जब तक अपूर्ण सृष्टि में रहेंगे तब तक दुःख होगा। जैसे-जैसे अपने हृदय से स्वार्थ हटाते जायेंगे उतना दुःख दूर हो जायेगा। आत्म विस्तार से दुःख हलका होता जायेगा।

सोबार ऊपर मानव सत्य
तहार ऊपर नाहि।

मानव की महत्ता उसके भोगने में नहीं, उसके त्याग में है। मनुष्य इसलिए मुकुटमणि नहीं है कि उसके पास सत्ता या वैभव है, वह इसलिए महान् है कि 'मनुष्य के पास धर्म है'। वास्तविक धर्म ईश्वर की विस्मयकारी शक्तियां नहीं है, मनुष्य के रूप में ईश्वर की अभिव्यक्ति है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने पाश्चात्य संस्कृति व भारतीय सभ्यता का बुनियादी अन्तर बड़े मार्मिक शब्दों में बयान किया है। वे लिखते हैं, जब यूरोप का एक मजदूर व किसान दिन भर काम करके थका हुआ शाम को घर आता है तो अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीता है और अनाचार करता है। किन्तु भारत का किसान अपनी थकान भजन-कीर्तन द्वारा भूल जाता है और भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है।

दोनों सभ्यताओं में हम एक और विशेष अन्तर देखते हैं। विदेशों में अगर आप पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर किसी रमणीय स्थान पर पहुंचेंगे तो वहां एक 'बार' या शराब की दूकान देखेंगे। लेकिन भारत की यह विशेषता है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थलों में निश्चित ही एक कलापूर्ण मन्दिर या तीर्थ के दर्शन मिलेंगे। हमारे देश में पर्वतारोहण के साथ-साथ धर्म-भावना का समावेश रहा है। इसलिए आज हम गंगोत्री, बदरीनाथ, अमरनाथ, कैलास व गौरीशंकर के भव्य दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशों में नाम कमाना हो तो करोड़पति व अब तो अरबपति बनना जरूरी होता है, या तो फिर बड़ा राजनेता, जिसके हाथ में महान् सत्ता हो। किन्तु भारत में तो एक 'सन्त' व 'महात्मा' के पीछे ही सारी जनता चलती है और उसकी जय-जयकार करती है।

भारत की संस्कृति महलों व प्रासादों में नहीं, वनों व मुनियों के आश्रमों में फलती-फूलती रही है। यहां के राजा-महाराजा अपने गुरुजनों के आदेशों के अनुसार ही राज्य संचालित करते रहे हैं। वसिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य व समर्थ रामदास की गुरु-परम्परा किसी और देश में खोजे भी नहीं मिल सकेगी। भारत भूमि में वह सहज प्राप्त है।

सत्यं शिवं सुन्दरम्
श्री अरविंद सत्यं के साधक हैं।
श्री गांधी शिवं के साधक हैं।
श्री रवीन्द्रनाथ सुन्दरम् के साधक हैं।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम एवं महिमा हमने अभी देखी। उनके जीवन में मोड़ लाने वाली और ऋषितुल्य महापुरुष बनाने वाली घटना है कि उनके दादा थे द्वारकादास टैगोर। वे थे फैशनेबुल डेडी। कोट-पेन्ट टाई लगाने वाले यूरोप की सभ्यता में पले हुए एवं उनमें पश्चिम के सारे हाव भाव बने हुए थे। ऐसे थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दादा द्वारकादास। वे कहते हैं हिन्दुस्तान के उद्धार का एक ही रास्ता है? क्या रास्ता है? हिन्दुस्तान को यूरोप की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। यूरोप की नकल करेगा तब इसका उद्धार होगा। नहीं तो इसका उद्धार नहीं हो सकता। वे इतने ज्यादा पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित थे। और भारत-भारतीयता से कोई प्रेम नहीं था। अचानक उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, वे उदास थे, निराश थे। अग्नि संस्कार करके लौट के आये तो कलकत्ते के भवन के बरामदे में टहल रहे थे। राजा थे। घर बड़ा साफ सुथरा रहता था। उनके यहां कोई कूड़ा-करकट का प्रश्न ही नहीं था। बहुत सफाई रहती थी। अचानक हवा से उड़कर एक कागज का पन्ना आ गया। उनको लगा कि कहां का पन्ना आ गया। आगे जाकर टहलते हुए कागज के पन्ने को पकड़ने लगे। पन्ने को पकड़ने गये तो हवा आयी तो और आगे उड़ गया। तो आगे बढ़े पकड़ने के लिए तो फिर उड़ गया। इस बार झपटकर कागज के पन्ने का पकड़ ही लिया। और उसको पढ़ने लगे। तो बस इससे उनके जीवन की धारा बदल गई। ईशावास्य उपनिषद् का प्रथम मंत्र उसमें छपा हुआ था। तो किसी अखबार वाले या पुस्तक वाले ने उसे रद्दी में डाल दिया होगा। बस उसको उनके जीवन को बदलना था। पढ़ा उसको **ईशावास्यमिद्ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।1।।**

सारा विश्व ईश्वर से आविष्ट है, ईश्वर का रचा हुआ है, सारे जगत् में ईश्वर व्याप्त है, सारा जगत् ईश्वर में है। इसलिए सब कुछ प्रभु को मानकर, प्रभु को समर्पित करके उसका उपभोग करना चाहिए। यह मेरा भाव इस भाव से नहीं, सब कुछ परमेश्वर का है इस भाव से उपभोग करना चाहिए। और किसी के भी धन के प्रति लोभ की दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। बस यह पढ़ते ही उन्होंने बड़ी-बड़ी सम्पत्तियां दान दे दी। उन्होंने विदेशी कोट-पेन्ट उतारकर धोती धारण कर ली। उनके जीवन में जो परिवर्तन आया उसकी छाप पड़ी उनके पुत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर। वे महर्षि बन गये। उस महर्षि के घर आये रवीन्द्रनाथ ठाकुर। और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस श्लोक की महिमा में जो लिखा है उसे आप सोने से भी नहीं तोल सकते। इसने मेरे पूरे परिवार को बदल दिया है।

तत्त्वद्रष्टा : योगीराज अरविंद घोष

पन्द्रह अगस्त का ऐतिहासिक दिन हर वर्ष आता है और चला जाता है। भारतीय जनगण इस स्वातंत्र्य दिवस पर नाचते-गाते तथा आनन्दोत्सव मनाते हैं। किन्तु प्राय: हर वर्ष ही हम स्वातंत्र्य देवता का पूजन करना भूल जाते हैं। जिसका 15 अगस्त के दिन के साथ, भारत देश के साथ तथा हमारी आजादी के साथ सबसे गहरा सम्बन्ध रहा है। भोगवाद की रंग-रलियों में डूबे हुए हम प्राय: उस महायोगी का स्मरण भूल जाते हैं जिसने अपने तन, मन, प्राण, त्याग, तपस्या, योग एवं अध्यात्म शक्ति द्वारा केवल भारतीय जनगण का ही नहीं, वरन् समूची मानवता का मुक्ति मार्ग प्रशस्त किया था। खण्डित देश की खण्डित स्वाधीनता का पर्व मनाते हुए हम अमर एवं अखण्ड भारत के तत्त्वद्रष्टा योगीराज अरविन्द घोष तथा उनकी भारत के पुन: अखण्ड होने के विषय में की हुई महान् भविष्यवाणी का विस्मरण कर बैठते हैं।

योगीराज अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 ई. को कोलकाता में हुआ। दो वर्ष तक दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में पढ़ने के पश्चात् अपने माता-पिता के साथ इंग्लैंड चले गए। इंग्लैंड में ग्रीक तथा लैटिन भाषा पढ़ी। 1890 में उन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् स्वामी विवेकानन्द के विश्व विजय के उदाहरण से उनके हृदय की प्रसुप्त भारतीयता जाग उठी और उन्होंने अपना सारा जीवन देशसेवा के निमित्त समर्पित कर दिया।

गीतांजलि के अमर गायक श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर अरविन्दजी को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हुए कहते हैं—

‘आपके पास दिव्य शब्द हैं और हम इसे आपसे सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। भारत आपकी वाणी द्वारा संसार से कहेगा। मेरी बात सुनो।’

एक और स्थान पर रवीन्द्रजी श्री अरविन्दजी के चरणों में अपनी पुष्पांजलि चढ़ाते हुए कहते हैं—

‘अरविन्द घोष को देखा। आत्मा की उपलब्धि इनका सत्य है। इस सत्य से इनकी सुदीर्घ तपस्या सार्थक व इनकी समग्र चेतना उद्भासित है।’ श्री अरविन्द

अपने अन्दर के प्रकाश से ही जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ होंगे। इनकी मुखकान्ति सौन्दर्यमयी शांति की उज्ज्वल आभा से ज्योतिष्मती है। जीवन को रिक्त-शुष्क समझने में जीवन की चरितार्थता नहीं है। इस सत्य को श्री अरविन्द ने अपनी सम्पूर्ण सत्ता से अनुभव किया था तभी उनका आदर्श था—

युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।

चीनी मनीषी श्री तान-युन-शान ने इन मनोमुग्धकारी शब्दों में श्री अरविन्द के चरणों में वाक्य-पुष्पांजलि भेंट की है—

'श्री अरविन्द ने जीवन का एक ऐसा क्रियात्मक दर्शन विकसित किया है जो मनुष्य की आध्यात्मिक उपलब्धि के इतिहास में अद्वितीय है और जो अपने उद्देश्य को अर्थात् मनुष्य के आंतरिक नव जन्म को अवश्य साधित करेगा। जैसे भूतकाल में चीन को एक महान् भारतीय (भगवान् बुद्ध) ने आध्यात्मिक तौर पर जीता था वैसे ही भविष्य में उसे एक अन्य महान् भारतीय श्री अरविन्द (भारत के महान् योगी) जीतेंगे।'

इसी प्रकार से एक अन्य चीनी विद्वान् चू शियांगकांग श्री अरविन्दजी की महान्कृति 'दि लाइफ डिवाइन' के विषय में अपनी अर्चनांजलि भेंट करते हैं—

'श्री अरविन्द आज केवल एक अग्रणी एवं अत्यन्त सिद्ध विचारक ही नहीं हैं, अपितु ऐसे विचारक हैं जिन्होंने अपनी प्रधान कृति 'दि लाइफ डिवाइन' के रूप में हमें इस युग का सबसे महान् ग्रंथ प्रदान किया है।

अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. विल्सन की पुत्री जब पाँडिचेरि में योगीराज के दर्शन के लिए आई तो उन तपोनिष्ठ महात्मा के चरणों में केवल फूलों या शब्दों की पुष्पांजलि चढ़ाने की अपेक्षा उसने सारा शेष जीवन आश्रम की सेवा में समर्पित किया। माताजी उस महान् अमरीकन महिला को स्नेह से 'निष्ठा' पुकारती थी।

दिव्य जीवन के अमर गायक, ब्रह्मदर्शी, ब्रह्मनिष्ठ, योगी श्री अरविन्द के चरणों में मेरी स्वरचित पुष्पांजलि इस प्रकार हैं—

अरविन्द-पत्र इव निर्लिप्तम् अरविन्दं योगेश्वरम्।
ब्रह्म, ब्रह्मविदं वन्दे, दिव्य-योगीश्वरं कविम्।।

पाण्डि आश्रम परमहंसं,आत्म-सङ्गीत गायकम्।
दिव्य जीवनेश्वरं वन्दे, अरविन्दं जग-वन्दितम्।।

इन महायोगी के चरणों में श्रीमती बेरन एरिक पामस्टीरना की पूजा-पुष्पांजलि भी कितनी हृदयहारी है—

यहां पश्चिम में हम यह अनुभव करने लगे हैं कि अरविन्द उन सुविख्यात व्यक्तियों में से हैं जो भारत ने संसार को प्रदान किए हैं। हमें उनमें दार्शनिक, कवि और अन्त:प्रेरित ऋषि के दर्शन होते थे जो पूर्व और पश्चिम की सीमाओं के ऊपर और आर पार सेतु निर्माण करने के लिए सर्वाधिक योग्य थे। वे पश्चिमी विचार के शिखर पर स्थित थे और साथ ही अद्वितीय कोटि के रहस्यदर्शी थे जिन्होंने दोनों जगतों को आध्यात्मिक मूल्य प्रदान किया। इस जड़वादी युग में वे ज्ञान के ज्योतिस्तम्भ की तरह देदीप्यमान थे। उन्होंने हमें जो मार्ग दिखाया उसका हमें अनुसरण करना है।'

कोटिश: वन्दित जनगण पूजित उस अलौकिक महापुरुष के चरणों में कोटिश: प्रणाम करती हुई श्री दिलीप कुमार राय के निम्नलिखित शब्दों से मैं अपनी श्रद्धांजलि भेंट करती हूं—

धरती के चिरकाल-प्रतीक्षित, अतिथि अनश्वर,
गहन दु:खों का तामस छाया के हे तमचुर।
अपने प्रबल घोष संदेश में देते हो,
शाश्वतजीवी मुक्तिधाम की उज्ज्वल आशा।।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।।

मानस, 2/92/3-4

इस जगत् रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च (मायिक जगत्) से छूटे हुए हैं। जगत् में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाय।

महायोगी अरविन्द और महाकवि रवीन्द्रनाथ

पाँडिचेरि के परमहंस, भारतीय मनीषा के मणिमुकुट, ब्रह्मानन्द मूर्ति योगीराज अरविन्द घोष के चरणों में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो अनेकानेक श्रद्धांजलियां समर्पित की उनमें से भारत एवं भारतात्मा अरविन्द दोनों के अविनश्वर यश का अमर तराना कितना हृदयहारी है—

एकदा ए भारतेर को न वनता
के तुमी महान् प्राण, कि आनन्द बले,
उच्चारि उठिले उच्च सुनो विश्वजन;
सुन अमृतेर पुत्र जतो देवगरा
दिव्य धाम वासी, आमि जेने छि तांहारे,
महान् पुरुष जिनी आंधारेर पारे
ज्योतिर्मय; तारेजेने, तार पाने चाही
मृत्युरे लंघिते पार, अन्य पथ नाहीं।
आर वार ए भारते के दिवेगो आनी
से महा आनन्दमय, से उदात्त वाणी।
संजीवनी, स्वर्गे मर्त्ये सेई मृत्युंजय।
परम घोषणा सेई एकान्त निर्भय
अनन्त अमृत वानी! रे मृत भारत।
सुधु सेई एक आछे नाहीं अन्य पथ!'

अर्थात्—हे महामनीषी! कौन हो तुम जो एक बार भारत के किसी महारण्य की छाया में किस महानन्द के उच्च श्वास में बोले थे हे विश्वजनो, हे अमृत पुत्रो, दिव्यधाम के वासी देवो, तुम सब मिल कर के सुन लो उस महापुरुष को हमने निश्चय जान लिया, जो अन्धकार से पूर्ण मुक्त है, परम ज्योति उस ज्योति पुरुष को जान, उसी की प्राप्ति से मृत्यु से होंगे पार, अन्य है नहीं मार्ग।

वह महानन्द की जीवन मृत्यु विजय
वाणी वह स्वर्ग मर्त्य के बीच महामृत्युं-

जय वह संजीवन वह चिर अनन्त निर्भय स्वर वार्ता।
हे महाऋषि! अब कौन सुनावे तुझे छोड़
हे मृत भारत तेरे हित न अब अन्य पन्थ।।

सचमुच, योगीराज अरविन्द घोष आधुनिक काल में भारत की प्राचीन गौरव गरिमा के मूर्तिमन्त अवतार थे। वे उन ब्रह्मवर्चस ऋषि-मुनियों की महान् परम्परा के एक ज्योतिष्मान उत्तराधिकारी थे जिनका कार्य जीवन के परम लक्ष्य से भ्रष्ट हुई दुर्बल मानवता को पुनः सत्यं एवं ऋतं के आलोकपथ पर चलाना था। सचमुच उसी आलोकपथ के अनुसरण के सिवा भारत की मुक्ति का कोई अन्य पथ नहीं है। विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द ने भी इसी चिरन्तन सत्य का उद्‌घोष करते हुए कहा है, 'जब तक भारत उस परम पुरुष परमेश्वर की खोज में लगा रहेगा तब तक यह अमर रहेगा, इसका कोई नाश नहीं कर सकता।'

महान् वंशलता के तेजस्वी फूल—कवीन्द्र रवीन्द्र तथा योगीराज अरविन्द घोष, दोनों बंगभूमि की अमर सन्तान थे। रवीन्द्र कोलकाता के प्रसिद्ध ठाकुर परिवार के कुलदीपक थे। उनके पितामह श्री द्वारकानाथ ठाकुर लक्ष्मी की अपार कृपा के कारण राजा कहलाते थे। परिवार पर सरस्वती की कृपा भी कम न थी। राजा द्वारकानाथ के बेटे श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर का समूचा जीवन एक दिन सहसा ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र के साक्षात्कार से ही पलट गया तथा अध्यात्म की पावन देहली पर अपना सर्वस्व चढ़ा कर जगती तल में वे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बन कर पूजित हुए। उसी महर्षि के गृह में 8 मई, 1861 के दिन उस विलक्षण बालक का जन्म हुआ जिसके कारण केवल कोलकाता के ठाकुर परिवार की ही नहीं, वरन् स्वयं भारत माता की यशःकीर्ति सारे विश्व में फैल गई। उसी कोलकाता महानगरी के समुद्रतट से कुछ मील दूर विलायत से भारत आने वाले एक जलपोत में 15 अगस्त, 1872 के दिन प्रातः 5 बजे डा. कृष्णधन घोष के परिवार में वह दिव्य बालक अवतीर्ण हुआ जिसे विश्व ने युग का महानतम योगी, दिव्य जीवन का अमर गायक, पाँडिचेरि के परमहंस योगीराज अरविन्द घोष के रूप में पहचाना। यह दोनों महान् विभूतियां अरविन्द और रवीन्द्र क्रमशः अठहत्तर तथा अस्सी वर्ष के लिए भारत के सांस्कृतिक उपवन में अपनी दिव्य प्रज्ञा का प्रकाश बिखेर कर अन्तर्धान हो गई। श्री अरविन्द रवीन्द्रनाथ से 11 वर्ष पश्चात् इस जगती तल में आए तथा 1941 में रवीन्द्रनाथ के महामौन से 9 वर्ष पश्चात् 1950 में वे भी परम ज्योति में विलीन हो गए। जीवन में 69 वर्षों के लिए यह दोनों महापुरुष एक-दूसरे के सम-सामयिक रहे तथा भारत के सांस्कृतिक जागरण के दो अमर दीपस्तम्भ बन कर आलोकदान करते रहे।

विदेशी शिक्षा के प्रति विद्रोह—कोमल मन वाले बालकों पर प्रारम्भ से ही विदेशी शिक्षा के संस्कार डालना एक भीषण अत्याचार है। रवीन्द्रनाथ को भी बाल्यावस्था में इस अत्याचार का शिकार होना पड़ा। बालक रवीन्द्र का बाल मन विद्रोही हो उठा तथा स्कूल जाने से जी चुराते। इन्हें ओरियंटल मिशनरी स्कूल में भेजा गया पर यहां तो बच्चों से अंग्रेजी में गाना गवाया जाता, थ्योरियां रटाई जातीं। रवीन्द्र को यह बिल्कुल न भाता। अतः वे स्कूल जाते समय किसी उपवन में बैठ समय बिताकर घर लौट आते। कई बार तो केवल इस कारण बीमार हो जाते कि बीमार होने के कारण उन्हें स्कूल से मुक्ति मिलेगी। वे कैनवस के जूते पानी में भिगोकर पड़े रहते। एक अन्य स्कूल में रवीन्द्रनाथ को लैटिन की शिक्षा के लिए भेजा गया पर वहां पर वर्ष के शुरू से अन्त तक उनकी पुस्तक एवं लैटिन की कापी इतनी सफेद रही जितना विधवा के सिर का दुपट्टा। आठवीं कक्षा में ही यह बालक उस शिक्षा पद्धति से विमुख हो उठा, तत्पश्चात् जीवनभर पाठशाला का मुंह न देखा।

श्री अरविन्द की भी समग्र शिक्षा पूर्णतया विदेशी वातावरण में हुई। उनके पिता डा. कृष्णधन पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे। वे तो इतना भी चाहते थे कि भारत बदलकर ब्रिटेन का नमूना बन जाए। शैशव में ही बालक को स्वदेशी प्रभाव से बचाने हेतु उन्होंने उसे दार्जिलिंग के एक ईसाई स्कूल में भर्ती करवा दिया। वहां अरविंद तथा उसके भाई को छोड़कर अन्य सब बालक अंग्रेज परिवारों के थे। 7 वर्ष के कोमल बालक को इंग्लैंड ले जाया गया ताकि उसे भारतीय संस्कृति प्रभावित न कर सके। मानचेस्टर में उन्होंने लातीनी भाषा पढ़ी तथा लंदन में ग्रीक भाषा पढ़ी। सन् 1889 में वे छात्रवृत्ति पाकर कैम्ब्रिज में गए तथा वहां ग्रीक तथा लातीनी भाषाओं में कैम्ब्रिज के इतिहास में उच्चतम अंक प्राप्त करके ग्रीस तथा लातीनी (रोम) देश के विद्यार्थियों से भी श्रेष्ठ निकले तथा सदा पारितोषिक प्राप्त किया। वे पिता की इच्छा के अनुसार आई.सी.एस. में गौरवपूर्ण सफलता प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए किन्तु सन् 1893 में स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक विश्व विजय से उनके अन्तर में देशभक्ति की अग्नि इतनी प्रज्वलित हो उठी कि आई.सी.एस. को लात मारकर वे मातृभूमि की देहली पर आ विराजे तथा देशसेवा में अपना सर्वस्व लगा दिया।

मातृभूमि का अनन्त प्रेम—कविगुरु रवीन्द्रनाथ के हृदय में मातृभूमि के लिए अगाध प्रेम, असीमित श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति थी। वे भारत में पुनर्जन्म की आकांक्षा करते हुए कहते हैं—'मैं भारत में ही पुनः-पुनः जन्म लूंगा। समस्त दारिद्र्य, दुःख एवं दैन्य के बावजूद भी मैं भारत से ही सर्वाधिक प्यार करता हूं।' एक अन्य स्थान पर वे अपने हृदय की समस्त भावनाओं को मातृभूमि के चरणों में चढ़ाते हुए भावविभोर हो कह उठते हैं—'मेरे हृदय को सुगन्धि का श्रेष्ठ उपहार

भारतमाता के अपने ही फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि संसारभर में अन्यत्र कहां चन्द्रमा इतने माधुर्य के साथ चमकता है जो मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौन्दर्य से आप्लावित कर सके। मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अन्तरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा मेरी यही आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिर निद्रा में मुंद जाने से पूर्व भी इसी धरती का दिव्य प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।

योगीराज अरविन्द घोष के हृदय में भी मातृभूमि के प्रति अथाह श्रद्धा भक्ति का सागर हिलोरें लेता था। उनके भीतर देशभक्ति की ज्योति इंग्लैंड में एक प्रखर ज्वाला के रूप में इतनी तीव्रता से प्रकाशित हुई कि विदेशी सरकार द्वारा प्राप्त आई.सी.एस. के पद को लात मारकर स्वदेश लौट आए। वे हमारे क्रांतिकारी आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्राणप्रेरक एवं दिव्य देवदूत बन गए। वे कहा करते थे—देशभक्ति एक अवतार है जिसका कोई हनन नहीं कर सकता। देशभक्ति को उन्होंने आध्यात्मिकता की भित्ति पर प्रतिष्ठित किया तथा देशसेवा के महान् कार्य में विश्वाधार ईश्वर की ही महान् प्रेरणा का साक्षात्कार किया। वन्दे मातरम्, कर्मयोगिन, तथा धर्म नाम के पत्र प्रारम्भ करके उन्होंने देशभक्ति की ज्वाला को सारे देश में सुलगा दिया था। देव अरविन्द ने भारतमाता का साक्षात् महाशक्ति दुर्गा के रूप में साक्षात्कार किया था।

काव्यानन्द तथा ब्रह्मानन्द—दोनों काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द की सुन्दर समन्वय मूर्ति थे। दोनों ही उच्च कोटि के कवि थे। कवीन्द्र रवीन्द्र के गान गीतांजलि के माध्यम से विश्वप्रसिद्ध हो गए हैं—

जगते आनन्द यज्ञे आमार निमंत्रण।
धन्य हल धन्य हल मानव जीवन।

अर्थात् जगती के आनन्द यज्ञ में अपना आज निमंत्रण पाकर धन्य-धन्य हो उठा है मेरा मानव का यह सुन्दर जीवन।

अपनी मृत्युंजय नामक कविता में रवीन्द्र मृत्यु को चुनौती देते हैं—

जत बड़ो हओ तुमि तो मृत्यु चेये बड़ो नओ।
'आमि मृत्यु चेये बड़ों' एइ शेष कथा बोले,
जाब आमि चले।

अर्थात् हे काल! तुम कितने बड़े हो, नहीं बड़े मृत्यु से कदापि, मैं तो मृत्यु से भी बड़ा हूं, यही कथना करके बस अन्तिम मैं मृत्युंजय गमन कर रहा।

ब्रह्मानन्द के रस के मतवाले हुए कवीन्द्र गाते हैं—

इस ज्योति समुद्र में जो शतदल कमल है,
उसका मकरंद पी कर मैं धन्य हो उठा।

योगीराज भी आंग्ल भाषा के एक महान् कवि थे। उनका महाकाव्य 'सावित्री' युग का महानतम काव्य माना जाता है। मृत्यु देवता को चुनौती देती हुई जागृत मानवात्मा की प्रतीक सावित्री गाती है—

किंतु नर की ओर से यम को कहा सावित्री ने—

प्रेम मेरा सत्य है तो, ज्ञान भी पा लूंगी मैं,
प्रेम मेरा जानता वह सत्य जो जग में छिपा,
जानती मैं, ज्ञान है इक विश्व आलिंगन क्रिया
जानती मैं जीव सारे मेरे ही सब रूप हैं
प्रति हृदय में छिपा बैठा एक देव अनूप है।
जानती मैं कि परात्पर पुरुष जग को पालता
गुप्त बैठा पुरी में वह शांत अक्षर देवता।
मैं उसी की मर्म वाणी क्रिया ज्वाला जानती
विश्व व्यापी सत्य की वाणी के स्वर पहचानती
तथ्य यह मैं जानती जन्म में मेरे उगे सब सूर्य,
यह मैं मानती। जो हमारे अंतरालों में छिपा प्रेमी बना
मरण का आवरण बस उस देवता पर है चढ़ा।
जानती मैं यह कि मानव जन्म है उस योग में,
जहां मन और हृदय शक्ति से वह तुझ को जीत ले।।

दया करो पर ममता तजकर
सेवा करो तजकर अहसान
प्रेम करो पर मोह त्याग कर
भक्ति करो तजकर अभिमान
धन भोगो स्वामित्व त्याग कर
जग भोगो जगपति का जान
तन मन धन सब दान प्रभु का
क्षुद्र अहं तज हो भगवान।।

—डॉ. ओबराय

योगीराज अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद

अरविन्द घोष का धरती पर अवतरण सचमुच धरती माता के लिए तथा भारतमाता के लिए एक विशेष महत्त्व की घटना बन गया।

15 अगस्त, 1872 के दिन कोलकाता के भारतीय समुद्र के तटों से दूर एक जहाज में जन्म पाने वाला, पूर्णतः इंग्लैण्ड में शिक्षित होने वाला, विदेशी भाषाओं में सर्वोत्तम दक्षता प्राप्त करने वाला तथा अपनी मातृभाषा में बातचीत तक भी न कर सकने वाला यह विलक्षण बालक कभी हमारे ज्वलन्त राष्ट्रवाद एवं हमारी मृत्युंजय संस्कृति का दिव्य देवदूत बनकर विश्व भुवन में पूजित होगा, यह कौन कल्पना कर सकता था?

14 वर्ष तक इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करके श्री अरविन्द ने आई.सी.एस. परीक्षा सम्मानपूर्वक पास की। केवल अंतिम घुड़सवारी की परीक्षा रहती थी। उनके भीतर देशभक्ति की ज्योति सहसा इतनी तीव्रता से जल उठी कि उन्होंने घुड़सवारी की परीक्षा ही छोड़ दी तथा इस प्रकार आई.सी.एस. के पद को लात मारकर भारत के लिए रवाना हुए। कोलकाता बन्दरगाह पर अपने सुपुत्र की प्रतीक्षा में खड़े अरविन्द के पिता को किसी ने गलत सूचना दे दी कि जिस जहाज में अरविन्द आ रहे थे वह तो डूब गया है। यह सुनते ही पिता का प्राणान्त हो गया। श्री अरविन्द ने पिता की लाश को देखकर तथा सम्बन्धियों के बहुत समझाने पर भी अपना देशसेवा के व्रत का निश्चय नहीं बदला।

बंग-भंग आन्दोलन में जब श्री अरविन्द को दोबारा बंदी बनाया गया तो उनकी वकालत करते हुए श्री चितरंजनदासजी ने कहा—

'न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी समझा जाएगा.... उसके शब्द न केवल भारत में बल्कि दूरवर्ती समुद्रों और देशों के पार ध्वनित-प्रतिध्वनित होंगे....यह व्यक्ति इस न्यायालय के सामने ही नहीं खड़ा है बल्कि इतिहास के न्यायालय के सामने खड़ा है।' उसी अलीपुर जेल में श्री अरविन्द को सब कहीं श्रीकृष्ण के दर्शन हुए।

भारतीय आत्मा के पुनर्जागरण के पुनीत कार्य में प्रवृत्त होने पर श्री अरविन्द कर्मयोग के मूर्तिमान अवतार बन गए। बड़ौदा राज्य में प्राध्यापक का कार्य करते

हुए ही उनके मन में मातृभूमि की नीरव सेवा की दृष्टि प्रज्वलित थी। वे तन मन से पूर्णतया स्वदेशी बन गए। सात्त्विक स्वदेशी वेश में वे भारती की सेवा में जुट गए।

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद—राजनीति तथा स्वतंत्रता संग्राम को आध्यात्मिकता की भित्ति पर प्रतिष्ठित करना ही योगीराज अरविन्द की महानतम देन है। उनके विचार में स्वदेश और स्वधर्म में कोई अन्तर नहीं। उन्होंने देश भक्ति को आत्म शक्ति के साथ संश्लिष्ट करने का इतिहास-दुर्लभ उपक्रम किया। वे कहते हैं राष्ट्र की स्वतंत्रता मात्र राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। यह एक धर्म है जो ईश्वर-प्रदत्त है। यह एक ऐसा धर्म है जे तुम्हें जीवन में साकार करना होगा।

अपने आत्मबल से देश के हृदय में प्राण संचार करते हुए वे कहते हैं—'तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि तुम भगवान् के हाथ में यंत्र हो.... राष्ट्रवाद कभी नहीं मरेगा। यह ईश्वरीय शक्ति से ही जीवित रहता है तथा किसी भी भीषण शस्त्र के प्रहार से कुचला नहीं जा सकता।'

वे पुनः तत्कालीन राजनीतिज्ञों को चुनौती देकर पूछते हैं—'क्या तुम में सच्चा ईश्वर विश्वास है या केवल राजनीतिक आकांक्षा मात्र है? या क्या तुम केवल स्वतंत्र होकर दूसरों को भी वैसे ही सताना चाहते हो जैसे कि तुम सताये जा रहे हो? क्या तुमने अपने राजनीतिक पथ को किसी बड़े सूत्र से धारण किया हुआ है? क्या तुममें ईश्वर का प्राकट्य हुआ है? क्या तुमने यह जान लिया है कि ईश्वर के केवल यंत्र मात्र हो तथा तुम्हारा शरीर तुम्हारा अपना नहीं है?

..... यदि तुमने यह जान लिया है तब तुम सच्चे राष्ट्रभक्त हो। तभी तुम इस महान् राष्ट्र का पुनरुत्थान कर सकते हो। तभी तुम्हारे कार्य के ऊपर एक ईश्वरीय आशीर्वाद बरसेगा तथा यह महान् राष्ट्र एक बार फिर वैसा ही उन्नत होगा जैसा अपने आध्यात्मिक गौरव के दिनों में था।'

भारत का उत्थान—ईश्वरीय कार्य—योगीराज ने सत्य के साक्षात्कार से पूर्त हुए नेत्रों से देख लिया था कि 'इस जाति को उठाने का कार्य भगवान् का अपना कार्य (मिशन) है... जो कुछ हम कर रहे हैं उसका उद्देश्य राजनीति नहीं है, बल्कि भगवान् का एक कार्य करना है जिसके लिए हमारा आह्वान हुआ है।'

बंग-भंग आन्दोलन में वे नरकेशरी गरज उठे—ईश्वर तुम्हें स्वतंत्र होने का आदेश देता है तथा तुम्हें अवश्य स्वतंत्र होना पड़ेगा..... दुर्बलता को मत आमंत्रित करो और बहादुरी से सीना तानकर खड़े हो जाओ।

स्वदेश माता महाशक्ति दुर्गा का रूप—स्वदेश माता भगवती दैवी शक्ति का ही एक रूप है। इस सत्यानुभूति की प्रेरणा से श्री अरविन्द के लिए वन्देमातरम् का गीत जीवन का महामंत्र था। श्री अरविन्द के ओजस्वी शब्द हैं—ऐ युवको!

तुम लोगों के पूर्व पुरुषों की शिक्षा का अनुकरण करने के लिए जिस शक्ति को प्राप्त किया जाता है वह शक्ति असंभवनीय घटना को भी करने में कुशल है। वह शक्ति तुम्हारे शरीर में अवतरण करने के लिए उद्यत हो रही है। वह शक्ति ही मां है.... मातृभूमि तुम्हारे हृदय में प्रतिष्ठित हो गई है.... अब अन्तर्निहित माता को आत्म समर्पण करो। कार्यसिद्धि का कोई दूसरा पंथ नहीं।' वे दुर्गा स्तोत्र नामक पुस्तिका में लिखते हैं—'माता दुर्गे! हमारे शरीर में योगबल द्वारा प्रवेश कर। हम होंगे तेरे यंत्र, तेरी अशुभ विनाशी तलवार-राशि, तेरे अज्ञान-विनाशी प्रदीप। हे माता! भारत के युवकों की इस आशा को पूर्ण कर। यंत्री बन कर यंत्र चला, अशुभ हंत्री होकर तलवार घुमा, ज्ञान दीप्त प्रकाशिनी होकर हाथ में प्रदीप ले प्रकाशमान हो। वे पुनः महाशक्ति को पुकारते हैं, वीर मार्ग प्रदर्शिनी आ! अब हम तेरा विसर्जन नहीं करेंगे। हमारा सारा जीवन ही अविच्छिन्न दुर्गा पूजा हो, हमारे समस्त कार्य अविरत-पवित्र, प्रेममय, शक्तिमय, मातृ सेवाव्रत से युक्त हों। यही प्रार्थना है। हे माता! तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान हो।

श्री अरविन्द राष्ट्रसेवा के लिए तप और त्याग को अनिवार्य समझते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं भी अपने आप को इसी महायज्ञ में झोंक दिया तथा असंख्यों को राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पित करने की अमर प्रेरणा दी। श्री अरविन्द की अमर वाणी है—'हमारा उद्देश्य, हमारा दावा यह है कि हम एक राष्ट्र के रूप में विनष्ट नहीं होंगे, बल्कि जीवित रहेंगे और इसके लिए लोगों को हर प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। कारण, कष्ट सहन के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती।'

क्रान्ति का शंखनाद—श्री अरविन्द उन दिनों की कांग्रेस की ढुलमुल नीति तथा भिक्षा मांगने की वृत्ति के कट्टर विरोधी थे। वे स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए देश में एक महाविपल्व का सूत्रपात करना चाहते थे। उनकी नसों में गीता का ओजस्वी धर्मयुद्ध का संदेश गूंज रहा था। उन्होंने एक निर्भीक लेखमाला लिखकर कांग्रेस की नीति की अच्छी खबर ली। वे गर्मदल के नेता बन गए तथा विपिनचन्द्र पाल, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, चितरंजनदास, अश्विनी कुमार दत्त तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति राष्ट्र नेताओं के लिए भी प्राण-प्रेरक बन गए।

अखण्ड भारत के तत्त्वद्रष्टा—योगीराज अरविन्द घोष अखण्ड भारत के दिव्य तत्त्वद्रष्टा के रूप में सदा सर्वदा पूजित होते रहेंगे। 15 अगस्त, 1947 के दिन भारत विभाजन की दुर्भाग्यपूर्ण वेला में उन्होंने देशभर को आशा एवं उत्साह का मार्ग दिखाते हुए कहा था—देश निश्चय ही पुनः अखण्ड होकर रहेगा। विश्व की कोई शक्ति इसको सदा के लिए ऐसे कटा-बंटा हुआ नहीं रख सकती। इसमें ईश्वरीय आदेश एवं ईश्वरीय उद्देश्य निहित है।

योगीराज अरविन्द का शिक्षा-दर्शन

'मेरी भारत यात्रा में जो मुझे सबसे अधिक आनन्ददायक अनुभव प्राप्त हुआ वह था योगीराज अरविन्द के नेत्रों का दर्शन। वे तेजस्वी ज्योतिष्मान नेत्र 'एक्स-रे' उपचार के समान कार्य करते हैं तथा हमारे अन्तर के कलुष को भस्म कर हमारा हृदय परिवर्तन कर देते हैं। चाहे आपकी इच्छा हो अथवा न हो, चाहे आप उसे सहन कर सकते हों अथवा नहीं। यदि मेरे पास कुछ भी धन हो तो मैं उसे श्री अरविन्दजी के भावी जीवन के लिए उत्सर्ग कर दूं।'

इन शब्दों में कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के प्राच्य विद्या विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर स्पीगल बर्ग ने कुछ वर्ष पूर्व योगीराज अरविन्द के जीवन काल में, ऑल इंडिया रेडियो पर भाषण करते हुए उन महान् विभूति को श्रद्धांजलि समर्पित की जिनके पावन जन्म दिवस से सम्बन्धित होने के कारण 15 अगस्त का हमारा स्वाधीनता-पर्व भी गौरवान्वित हो उठा है। पाँडिचेरि में उन महामनीषी के दर्शन कर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर गीत के माध्यम से नृत्य करने लगे—

अरविन्द, रवीन्द्रेर लहौ नमस्कार,
हे बन्धु, हे देशबन्धु, स्वदेश-आत्मार।
वाणी मूर्ति तुमि! लोम लागि नहेमान।।

अर्थात्—हे अरविंद! रवीन्द्रनाथ का नमस्कार स्वीकार करो। हे बन्धु, हे मेरे देशबन्धु, हे स्वदेश की वाणी की साकार स्वतंत्र आत्मा। तुम्हें मान-अभिमान का भाव छू तक नहीं गया...।'

कविगुरु पुनः कहते हैं, 'श्री अरविन्द को देखा, आत्मा की उपलब्धि इनका सत्य है। श्री अरविन्द अपने अन्तर प्रकाश से ही जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ हैं।.... मैं आते समय उनको कह आया, 'आत्मा की चरम और परम वाणी आप हम सबको सुनाएंगे, इसी प्रतीक्षा में मैं रहूंगा। इस वाणी में ध्वनित होगी भारत की शाश्वत वाणी।'

फ्रांस के लब्धप्रतिष्ठ-साहित्यकार श्री रोम्या रोलां कहते हैं—'श्री अरविन्द एशिया की प्रतिभा तथा यूरोप की प्रतिभा का ऐसा पूर्णतम समन्वय है जो कि अब तक उपलब्ध हो सका है।'

योगीराज अरविन्द ने राष्ट्रीय रंगमंच पर देश की स्वाधीनता के लिए जो त्रिसूत्री कार्यक्रम रखा उसमें सरकार का बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा यह तीन विधायक पग थे। प्रारंभ में अरविन्द ने स्वयं बड़ौदा कालेज के अध्यापक के रूप में शिक्षा सेवा प्रारम्भ की तथा बाद में वे प्रिंसिपल के पद तक पहुंचे। किन्तु राजनीतिक संन्यास लेने के बाद भी जब वे पाँडिचेरि आश्रम में एकान्तसेवी-योगी के रूप में रहने लगे तब भी शिक्षा की महत्ता को विचारते हुए उन्होंने वहां आश्रम में भी एक आदर्श शिक्षा-पद्धति का विकास किया। वह पद्धति भारत की प्राचीन आदर्शवादी शिक्षा पद्धति (Idealist View of Education) का ही नया युगानुकूल स्वरूप है।

शिक्षा का उद्देश्य—श्री अरविन्द के शब्दों में, 'वही सच्ची और जीवंत शिक्षा पद्धति होगी जो व्यक्ति के भीतर जो कुछ गुम्फित है उसे पूर्णरूप से प्रकट करने में तथा उसे मानव जीवन के पूर्ण उद्देश्य के लिए प्रयोग कर सकने में सहायता दे। साथ ही वह उसे जीवन के साथ, उस जाति के मन तथा आत्मा के साथ जिसमें कि उसने जन्म लिया है, विश्वव्यापी जीवन के साथ तथा समूची मानवता के मन तथा आत्मा के साथ सच्चे सम्बन्ध में प्रविष्ट करा सके ताकि वह उसका एक स्वतंत्र किन्तु अभिन्न अंग बन सके।'

राष्ट्रीय शिक्षा—'एक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य यह तो निश्चय ही नहीं है कि आधुनिक सत्य एवं ज्ञान की उपेक्षा की जाय वरन् यह कि सारे ज्ञान-विज्ञान की नींव हम अपने अस्तित्व में, अपने मन तथा अपनी (राष्ट्रीय) आत्मा में प्रस्थापित करें।'

गुरु पथ-प्रदर्शक हो—अरविन्दजी के अनुसार, 'शिक्षा का प्रथम सिद्धान्त यह है कि....गुरु, शिक्षक या काम लेने वाला मास्टर नहीं है, वह केवल सहायक तथा पथ-प्रदर्शक है। उसका कार्य सुझाव देना है न कि आदेश देना। वह वास्तव में शिष्य के मन को शिक्षण (ट्रेनिंग) नहीं देता, वह केवल उसे समझाता है कि वह किस प्रकार अपने ज्ञान के साधनों का परिष्कार करे और उसे उस कार्य में सहायता तथा प्रोत्साहन देता है। वह उसे ज्ञान देता नहीं, वरन् उसे सिखाता है कि वह किस प्रकार अपने लिए ज्ञान का स्वयं सम्पादन कर सकेगा। शिक्षक शिष्य के भीतर के ज्ञान को आह्वान करके बाहर प्रकट नहीं करता। वरन् वह कहां छिपा पड़ा हुआ है और वह किस प्रकार प्राय: ऊपरी धरातल पर लाया जा सकता है उसे इसका बोध कराता है।'

ज्ञान में स्वावलम्बन—विचार और झांकियों में श्री अरविन्द कहते हैं—'मनुष्यों की सहायता करो, पर उन्हें उनकी शक्ति से वंचित मत कर दो। मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन करो और उन्हें शिक्षित करो लेकिन ध्यान रखो कि उनकी उपक्रम

शक्ति और उनकी मौलिकता अक्षुण्ण बनी रहे....जो यह सब कर सकता है वही नेता और गुरु है।'

शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार—'शिक्षा का दूसरा सिद्धान्त है कि मन के विकास में स्वयं मन से ही परामर्श किया जाए। माता-पिता या शिक्षक की इच्छा के अनुसार बालक को किसी विशेष रूप में ढालने का विचार बर्बर तथा अज्ञानपूर्ण अन्धविश्वास है। उसे स्वयं अपनी प्रकृति के अनुरूप ही विकास करने की प्रेरणा देनी चाहिए। किसी माता-पिता के लिए पहले से ही यह निश्चय करना कि उसका बालक विशेष प्रकार के गुणों, योग्यताओं, विचारों तथा सदाचारों को प्राप्त करेगा या उसे किसी पूर्व निश्चित व्यवसाय के लिए तैयार करना, सबसे बड़ी भूल है। प्रकृति को अपने स्वाभाविक धर्म को त्यागने के लिए बाध्य करना तो बालक को एक स्थायी हानि पहुंचाना है, उसके विकास को कुंठित करना तथा उसकी पूर्णता को विकृत करना है। यह एक मानवीय आत्मा के प्रति स्वार्थपूर्ण अत्याचार है तथा जाति के शरीर में एक जख्म है.... शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए विकासशील आत्मा को अपने भीतर के श्रेष्ठतम तत्त्वों को प्रकट करने में सहायता देना तथा उसे किसी महत्कार्य के लिए पूर्ण बनाना।'

यथार्थ से आदर्श की ओर—योगीराज अरविन्द के अपने शब्दों में 'शिक्षा का तृतीय उद्देश्य है वर्तमान से भविष्य की ओर गति, यथार्थ से आदर्श की ओर प्रगति। वे पुनः कहते हैं कि मानव की प्रकृति बनाने में उसकी अपनी निजी आत्मा के पिछले संस्कार, उसकी वंश परम्परा, उसका वातावरण, उसकी राष्ट्रीयता, देश, धरती, वायुमण्डल, दृश्य, ध्वनियां, स्वभाव इत्यादि सबका हाथ होता है। वे मानव को बड़ी प्रबल रीति से ढालते हैं तथा हमें उसी से प्रारम्भ करना चाहिए।'

.... यदि कोई वस्तु बाहर से लाई जाए तो वह केवल भेंट की जाए, बालक के मन पर ठूँसी न जाए। एक स्वतंत्र तथा स्वाभाविक विकास ही सच्ची प्रगति की शर्त है।.... हमारा भूतकाल हमारा आधार है। वर्तमान हमारे प्रयोग की कच्ची धान है तथा भविष्य हमारा उद्दिष्ट शिखर है। राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में प्रत्येक को अपना उचित और स्वाभाविक स्थान प्राप्त होना चाहिए।'

पुस्तकों द्वारा धर्म की शिक्षा नहीं—श्री अरविन्द के मौलिक विचार हैं—नैतिक और धार्मिक पाठ्य पुस्तकों की शिक्षा के द्वारा बच्चों को नैतिक और धार्मिक बनाने का प्रयत्न करना निरर्थक और भ्रमपूर्ण है और इसका कारण यह है कि हृदय मन नहीं है और मन शिक्षित करने से हृदय का सुधरना आवश्यक नहीं।

नैतिक शिक्षा का मार्ग—'मनुष्य के लिए अपने आपको नैतिक रूप से शिक्षित करने का एकमात्र तरीका यह है कि वह यथार्थ भावों, श्रेष्ठ संस्कारों तथा

सर्वोत्तम मानवीय भावनाओं और शारीरिक आवश्यकता का अभ्यास डाले और साथ ही भूतकाल के आवेगों की यथार्थ क्रिया को अपने मूल स्वभाव का अंग बनाये।

व्यक्तिगत आदर्श से नैतिक प्रेरणा—'नैतिक शिक्षण का प्रथम नियम है सुझाव और प्रेरणा देना न कि आज्ञा देना या दबाव डालना। सुझाव देने का सर्वोत्तम साधन है व्यक्तिगत दृष्टान्त, दैनिक वार्तालाप और प्रतिदिन पुस्तकों का पढ़ा जाना। इन पुस्तकों में अल्पवय छात्रों के लिए अतीत के ऊंचे दृष्टान्त होने चाहिए जो नैतिक शिक्षाओं के रूप में नहीं वरन् मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी बातों के रूप में दिए जावें। इसी प्रकार कालेज विद्यार्थी के लिए इन पुस्तकों में महान् आत्माओं के महान् विचार तथा साहित्य के ऐसे प्रकरण होने चाहिएं जो उच्चतम भावों को उद्दीप्त करे और सर्वोच्च आदर्शों एवं अभीप्साओं को प्रोत्साहित करे। इतिहास और जीवन चरित के ऐसे कथानक होने चाहिए जो उन महान् विचारों, उत्कृष्ट भावों और अभीप्साशाली आदर्शों को चरितार्थ करने का दृष्टांत उपस्थित करे।

शिक्षा में शारीरिक क्रीड़ाओं का स्थान—पांडिचेरि आश्रम में शिक्षा में शारीरिक क्रीड़ाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। शारीरिक स्वस्थता भी पूर्णता के विकास के लिए आवश्यक है। अरविन्द आश्रम में प्रतिदिन प्रातः-सायं व्यायाम होता है, योगासन कराए जाते हैं। खेल होते हैं तथा मानसिक विकास के लिए प्रतिदिन आत्म चिन्तन का अभ्यास भी कराया जाता है। इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि के समुचित विकास से आत्मा की कोंपल खिल उठती है और उसकी सुगन्धि से मानवता की फुलवारी सुवासित हो जाती है। श्री अरविन्द संसार में रहते हुए भी संसार में न रहने वाले एक अभूतपूर्व संत थे जिनकी दिव्य प्रज्ञा से त्रिभुवन सुवासित हो उठा।

विनोबा भावे कहते हैं कि अंग्रेजी की पढ़ाई-लिखाई के कारण हमारे देश की जनता राहु और केतु के रूप में विभक्त हो गई है। आज जो हमारे शासक और विचार निर्माता हैं उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी के माध्यम से होती है, वे अंग्रेजी में ही सोचते हैं और विदेशी विचार ही उनके लिए आदर्श हैं। वे राहु की तरह केवल सिर ही सिर हैं, भारत के धड़ से भारत की सामान्य जनता से उनका सम्बन्ध कट गया है। भारतीय जनता की भावना, मान्यता और मूल्य चेतना उनके लिए न सम्मान्य है, न ही महत्त्वपूर्ण।

—विनोबा भावे

श्री माँ का राष्ट्र को आह्वान

मातृभूमि की वन्दना—'हे हमारी माँ! हे भारत की आत्म-शक्ति! हे जननी! तूने कभी अत्यन्त अंधकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी.... यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी तथा अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी.. तूने साथ नहीं छोड़ा।

'हे माँ! आज इस महान् घड़ी में जबकि वे जाग पड़े हैं और तेरी स्वतंत्रता के इस उषाकाल में तेरे मुख मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखला, जिससे स्वतंत्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है, वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखला, जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों। और अध्यात्म-मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र व सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य जाति को दिखला सकें।

हे भारत! ज्योति और आध्यात्मिक ज्ञान के देश! संसार में अपने सच्चे जीवन के लक्ष्य के लिए जागो। एकता और सामंजस्य का मार्ग दिखाओ'।

राष्ट्र चिन्तन—जैसे व्यक्ति में चैत्य पुरुष होता है, जो उसकी सच्ची आत्मा है और कम या अधिक खुले रूप में उसकी नियति पर शासन करता है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्र का भी अपना चैत्य पुरुष होता है, जो पर्दे के पीछे से उसकी नियति का निर्धारण करता है। वह है राष्ट्र की आत्मा, राष्ट्रीय प्रतिभा, जनता का उत्साह, राष्ट्रीय अभीप्सा का केन्द्र। राष्ट्र के जीवन में जो कुछ सुन्दर, उदात्त, महान् और उदार है उसका स्रोत। सच्चे देश भक्त उसकी उपस्थिति को ठोस वास्तविकता के रूप में अनुभव करते हैं। भारत में इसी को प्राय: दिव्य सत्ता बना दिया गया है। जिनको सचमुच अपने देश से प्रेम है, वे उसे भारत माता कहते हैं और अपने देश के हित के लिए उसी से प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं। वे ही देश के सच्चे आदर्श का, जगत् में उसके सच्चे कर्तव्य का प्रतीक और मूर्तरूप हैं।

भारत वह देश है जहां आध्यात्मिकता का राज्य हो सकता है और होना चाहिए। और यहां उसका समय आ गया है। उस देश की मुक्ति का यह एकमात्र संभव साधन

है जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य और प्रभाव के कारण मिथ्या हो गई है। लेकिन फिर भी उसके पास एक अद्भुत आध्यात्मिक परम्परा है।

भारत इस जमीन, यहां की नदियों और यहां के पहाड़ों का नाम नहीं है। इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भी भारत नहीं है। भारत एक जीवित सत्ता है। यह सत्ता उतनी ही जीवित-जाग्रत् है, जितने शिव आदि देवतागण।

सभी देशों की अपनी आत्मा होती है। इसलिए अगर तुम देश में परिवर्तन करना चाहो तो यह अवास्तविक होगा। उदाहरण के लिए आजकल आस्ट्रिया जर्मनी का भाग बना हुआ है और फिर भी दोनों एकदम भिन्न हैं। आस्ट्रिया की आत्मा बहुत दु:खी है।

भारत के लिए अब पहले नम्बर की समस्या है अपनी अन्तरात्मा को फिर से प्राप्त करना और उसे अभिव्यक्त करना।

एक समय था जब भारत एकदम सुरक्षित था। उसके लिए आसुरी आक्रमण का शिकार बनने का किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं था, परन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। भारत की प्रजा और उसकी शक्तियों ने ऐसे ढंग से कार्य किया है कि उससे आसुरी प्रभावों को उसके ऊपर आ पड़ने का निमंत्रण मिल गया है। उन्होंने एक विश्वासघाती की तरह कार्य किया है और देश के लिए जो सुरक्षात्मक स्थिति थी उसे जड़ से खोद डाला है।

बाहरी रूप में भारत के प्रदेश....स्वभाव, प्रकृति, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से....एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का कोई भी प्रयास अनर्थकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है। आध्यात्मिक सत्य के प्रति तीव्र सर्जन की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य स्रोत के प्रति उसकी अभीप्सा तीव्र है। इस अभीप्सा के साथ एक होकर समस्त देश एक ऐसी एकता को फिर से स्थापित कर सकता है जिसका अस्तित्व उच्चतर मन के लिए कभी लुप्त नहीं हुआ।

विश्वगुरु भारत—समस्त सृष्टि में पृथ्वी का एक विशेष स्थान है। क्योंकि दूसरे ग्रहों से भिन्न यह विकसनशील है और अपने केन्द्र में एक चैत्य पुरुष को लिए हुए है। उसमें भारत विशेष रूप से भगवान् का चुना हुआ देश है।

भारत को अपने भगवद्निर्दिष्ट कार्य की ऊंचाई तक ऊपर उठना चाहिए और विश्व के सामने सत्य की घोषणा करनी चाहिए।

एकमात्र भारत ही विश्व में सत्य को ला सकता है तथा भागवत संकल्प और शक्ति को अभिव्यक्त करके विश्व के सामने संदेश प्रचारित कर सकता है। पर यह कार्य पश्चिम के जड़वाद का अनुकरण करने से नहीं होगा। भागवत इच्छा का

अनुसरण करने पर भारत आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर जगमगा उठेगा। सत्य का मार्ग दिखलाएगा और विश्व ऐक्य का संगठन करेगा।

सचमुच, सारे संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जो अब भी इस बात के प्रति सचेत है कि सृष्टि में भौतिक पदार्थ के अतिरिक्त कोई और चीज भी है। बाकी देश इसे भूल चुके हैं। फिर वे चाहे यूरोप के देश, अमरीका या दूसरा कोई भी देश क्यों न हो....। इसी कारण भारत के पास अभी तक एक ऐसा संदेश है जिसकी उसे रक्षा करनी है, जिसे उसे जगत् को देना है। लेकिन इस समय भारत अव्यवस्था में छितरा हुआ छटपटा रहा है।

विश्व की भलाई के लिए भारत की रक्षा करनी होगी। क्योंकि एकमात्र भारत ही विश्व को शान्ति और नवीन व्यवस्था प्राप्त करा सकता है।

भारत का भविष्य स्पष्ट है। भारत जगत् का गुरु है। विश्व का भावी संगठन भारत पर निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत आध्यात्मिक ज्ञान को विश्व में मूर्तिमान कर रहा है। भारत सरकार को इस क्षेत्र में भारत के महत्त्व को स्वीकार करना चाहिए और अपने कार्य को इसी के अनुसार सुनियोजित करना चाहिए।

भारत अपने खजाने का रहस्य केवल उन्हीं लोगों को प्रकट करता है, जो मन की अभिरुचियों पर और जाति तथा शिक्षा के पूर्वाग्रहों पर विजय पा सकते हैं। बाकी के सब लोग वांछित चीज न पाने के कारण हताश होकर चले जाते हैं। क्योंकि उन्होंने उसकी खोज गलत तरीके से की थी और दिव्य खोज का मूल्य चुकाने को तैयार नहीं थे।

आध्यात्मिक भारत—आध्यात्मिक दृष्टि से भारत जगत् में सबसे आगे है। उसकी भूमिका है—आध्यात्मिकता का उदाहरण स्थापित करना।

यह बात इतनी स्पष्ट है कि यहां का एक भोला अज्ञानी किसान भी अपने हृदय में यूरोप के बुद्धिजीवियों की अपेक्षा भगवान् के अधिक निकट है....।

लो एक छोटी-सी कहानी सुनो। मेरा एक मित्र भारत की सैर करके लौटा। किसी ने उससे अपनी यात्रा की घटनाएं सुनाने के लिए कहा। एक वयस्क और भोली महिला वहां मौजूद थी। उन्होंने उससे पूछा....'क्या भारत में आत्माएं गिनी जाती हैं?' उसने उत्तर दिया....'हां'। 'उसमें कितनी आत्माएं हैं?'....महिला से पूछा। उसने उत्तर दिया....'बस एक....।'

भारत और पश्चिम—भारत के पास आत्मा का ज्ञान है, बल्कि था। लेकिन उसने जड़-भौतिक पदार्थ की उपेक्षा की और उसके कारण कष्ट भोगा।

पश्चिम के पास जड़-भौतिक पदार्थ का ज्ञान है, लेकिन उसने आत्मा को अस्वीकार किया और इसके कारण वह भी बुरी तरह कष्ट पा रहा है।

भारत और अमरीका—पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान में यह ज्ञात है कि विश्व की रक्षा के लिए तथा एक नए जगत् के निर्माण के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि भारत और अमरीका साथ आएं। क्योंकि यही वे दो देश हैं जो यह कार्य कर सकते हैं। अमरीका अपनी विशाल भौतिक समृद्धि के बल से और भारत अपनी आध्यात्मिक शक्ति से। यह दोनों तत्त्व ही अपरिहार्य हैं।

भारत और फ्रांस—फ्रांस का मतलब है भावना की उदारता, विचारों की नूतनता एवं निर्भीकता और क्रिया में शौर्य। वही फ्रांस सबके आदर-सम्मान और प्रशंसा का पात्र था। इन्हीं गुणों से वह जगत् पर छा गया था।

व्यावहारिकता में फंसा, मतलबी और व्यापारिक फ्रांस, फ्रांस नहीं रहा। ऐसी चीजें उसके सच्चे स्वरूप के साथ मेल नहीं खातीं और इन चीजों को अपने आचरण में लाकर वह संसार में अपनी भव्य प्रतिष्ठा की स्थिति को खो रहा है।

योग—अगर व्यक्ति योग करे तो क्या वह शेक्सपियर और शैली की ऊंचाइयों तक उठ सकेगा? ऐसा कोई उदाहरण रहा है?

क्यों नहीं? महाभारत और रामायण अवश्य शेक्सपियर की या किसी दूसरे कवि की रचना से निकृष्ट नहीं हैं। वे उन महापुरुषों की रचनाएं हैं जो ऋषि थे और जिन्होंने योग तपस्या की थी। गीता, जो उपनिषदों की तरह सबसे महान् साहित्यिक और आध्यात्मिक रचनाओं में से है, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं लिखी गई, जिसे योग की कोई अनुभूति प्राप्त नहीं थी....।

भारत में सबसे श्रेष्ठ चित्र और स्थापत्य तथा शिल्पकला का अधिकतर भाग उन बौद्ध भिक्षुओं द्वारा बनाया गया था जो आध्यात्मिक ध्यान और अभ्यास में जीवन बिताते थे। वे परम कलात्मक काम करते थे, लेकिन उन्होंने अपना नाम छोड़ जाने की परवाह नहीं की।

लोग, विशेष रूप से पश्चिम के लोग, यह समझते हैं कि योग का मतलब है हठ योग या उससे बदतर कोई और चीज। भारत में भी.... मध्यकाल में बौद्ध धर्म, मायावाद इत्यादि के प्रभाव के कारण....योग का अर्थ समझा जाता था जीवन का त्याग। किन्तु प्राचीन काल में ऐसा नहीं था।

कला—अगर तुम चाहो कि कला सबसे सच्ची और ऊंची कला बने, तो उसे इस भौतिक जगत् से लाए गए दिव्य जगत् की अभिव्यक्ति होना होगा। सभी सच्चे कलाकारों में इस प्रकार की अनुभूति होती है। उनमें यह भाव होता है कि वे एक उच्चतर जगत् और इस भौतिक जीवन के बीच माध्यम हैं....।

मध्य युग में कला का यही माना हुआ कार्य था। मध्ययुगीन यूरोप के 'आदिम' कलाकारों तथा गिरजाघरों के निर्माताओं की कला के बारे में कोई और धारणा न थी। भारत में सारे स्थापत्य का, उनकी शिल्प कला का, उनकी

चित्रकला का उद्‌गम यही रहा है और वे इसी आदर्श से प्रेरित हुए हैं। मीराबाई के भजन और त्यागराज का संगीत और भारत के भक्तों, संतों और ऋषियों द्वारा रचित काव्यमय साहित्य जगत् के सबसे महान् रत्नों में से हैं।

सच्ची कला एक इकाई और समष्टि है। वह एक है और जीवन का अभिन्न अंग है। इस घनिष्ठता का आभास हमें पुरातन यूनान और पुरातन मिस्र से मिलता है। क्योंकि वहां चित्रों, मूर्तियों और कला के सभी विषयों को इमारत की वास्तुशिल्पीय योजना के अंश के रूप में बनाया और सुव्यवस्थित किया जाता था। हर ब्योरा समस्त का अंग होता था। जापान में भी ऐसा ही है या कम से कम अभी उपयोगी और व्यावहारिक आधुनिकता की चढ़ाई से पहले तक ऐसा था। एक जापानी घर अद्‌भुत कलात्मक इकाई होता है। हमेशा ठीक चीज ठीक स्थान पर होगी, कोई चीज गलत जगह न होगी, कोई चीज न बहुत ज्यादा होगी, न ही कम। हर एक चीज ठीक वैसी होगी जैसे कि होनी चाहिए और स्वयं घर इर्द-गिर्द की प्रकृति के साथ अद्‌भुत रूप में मेल खाएगा। भारत में भी चित्रकला, शिल्पकला और स्थापत्य एक सर्वांगीण सौन्दर्य थे, भगवान् के प्रति भक्ति की एकमेव गति थे।

यहां (भारत में)....कला की एक परम्परा है जो चली आ रही है। सारा देश ही उन चीजों से भरा है, जो देश के कलात्मक इतिहास के अद्‌भुत क्षणों में बनायी गई थीं। हम उनके बीच रहते हैं। बाकी जगत् में जो कुछ घट गया है, विशेष रूप से यूरोप में, उसके परिणामों को हमने बहुत ही कम अनुभव किया है। भारत के केवल वे प्रदेश सौन्दर्यबोध खो बैठे हैं, जहां अंग्रेजों का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा है। मुम्बई में कुछ कला-शैलियां हैं, जो भयंकर हैं। और फिर, वह कोलकाता शैली है जिसमें भारतीय कला को पुनः जागृत करने की कोशिश की गई थी, लेकिन वह बहुत छोटे पैमाने पर थी। कला की दृष्टि से जो चीजें सबसे ज्यादा तुम्हारी पहुंच में होती, वे हैं पुरानी रचनाएं, पुराने मन्दिर, पुराने चित्र। वह सब बहुत अच्छा था। वह बनाया गया था एक श्रद्धा को अभिव्यक्त करने के लिए। वह कार्य के भाव से किया गया था, अव्यवस्था में नहीं।

मैं कला की जिस प्रवृत्ति की बात करने लगी हूं और जिसका यूरोपीय सभ्यता के साथ सम्बन्ध है, उसे यहां बहुत अनुभव नहीं किया गया....बहुत ही कम और वह भी गहरे रूप से नहीं। यहां अधिकतर रचनाओं पर, यहां तक कि लगभग सभी सुन्दरतम रचनाओं पर, कलाकारों के नाम नहीं हैं। गुहाओं के उन सभी चित्रों पर, मन्दिरों की उन मूर्तियों पर कलाकारों के नाम नहीं हैं। हमें यह बिल्कुल नहीं मालूम कि इन्हें किसने बनाया है। क्योंकि यह सब आजकल की तरह नाम कमाने के विचार से नहीं किया गया था। व्यक्ति संयोग से बहुत बड़ा शिल्पी हो जाता था, महान् चित्रकार होता था, महान् सिद्ध होता था और बस इतना ही।

लोग भूलने न पाएं इस दृष्टि से हर एक चीज पर अपना नाम लिखने का, अखबारों में जोर-शोर से घोषणा करने का सवाल ही न उठता था। उन दिनों कलाकार इसकी परवाह किए बिना कि उसका नाम अगली पीढ़ियों को याद रहेगा या नहीं जो करना होता था, करता था। हर एक चीज किसी उच्चतर सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने की अभीप्सा की प्रवृत्ति से की जाती थी और सबसे बढ़कर इस विचार से कि जिस देवता का आह्वान किया जा रहा है उसे उचित आवास दिया जाए। मध्ययुगीन गिरजाघरों में भी यही बात थी और मुझे नहीं लगता कि वहां भी कलाकारों के नाम बचे हैं। अगर हैं भी तो बिल्कुल अपवाद स्वरूप और अचानक। जबकि आज एक छोटा-सा चित्र-फलक भी ऐसा नहीं मिलता—चाहे उस पर चित्र हों या धब्बे—जिस पर कलाकार के हस्ताक्षर तुम्हें यह न बताएंगे कि फलाने महाशय ने यह बनाया है।

श्रीमद्भगवद्गीता—जानते हो, गीता में, श्रीकृष्ण पथ-प्रदर्शक और आंतरिक प्रभु हैं, और तुम्हें अपने आपको पूरी तरह उनके हाथों में दे देना चाहिए, पूर्ण समर्पण करना चाहिए।

गीता अमर आत्मा की सुदृढ़ अटलता की माँग करती है।

जब आत्मा अमरता के प्रति, सचेतन के प्रति सचेतन हो तो वह शक्ति से बनी अटलता बन जाती है।

चूंकि भगवान् ने अपने आपको जड़-पदार्थ में दे दिया है और जड़ को भागवत् चेतना के प्रति सचेतन करने के लिए उसमें अपने आपको बिखेर दिया है, इसलिए जड़ भगवान् के प्रति यंत्रवत् समर्पित होने के लिए बाधित है। यह एक पारस्परिक यज्ञ है।

और गीता का महान् रहस्य यही है। जड़ के हृदय में भगवत् उपस्थिति का स्वीकरण। इसीलिए जड़ को यंत्रवत्, यहां तक कि अचेतन रूप से, अपने आपको भगवान् के प्रति समर्पित कर देना चाहिए.... वह यह चाहे या न चाहे, होता यही है।

केवल जब यह समर्पण अचेतन रूप से किया जाता है तो तुम्हें यज्ञ का आनन्द नहीं मिलता है, जो कि परमानन्द है।

श्री अरविन्द मानते हैं कि भगवद्गीता का संदेश उस महान् आध्यात्मिक आंदोलन का आधार है, जो मानव जाति को अपनी मुक्ति की ओर ले जाता रहा है, अधिकाधिक ले जाएगा। यानी, मिथ्यात्व और अज्ञान से मुक्ति की ओर, सत्य की ओर।

प्रकट होने के समय से ही भगवद्गीता का बहुत बड़ा आध्यात्मिक प्रभाव रहा है। लेकिन श्री अरविन्द ने जो नया अर्थ लगाया है उसके बाद उसका प्रभाव और भी बढ़ गया है और निर्णयात्मक बन गया है।

गीता का संदेश एक महान् आध्यात्मिक आंदोलन का आधार है, जिसने मानव जाति को मुक्ति का मार्ग दिखलाया है और जो मुक्ति अर्थात् मिथ्या और अज्ञान से मुक्ति एवं सत्य की ओर ले जाएगी।

राधा चेतना—कृष्ण वह दिव्य पुरुष हैं जिनको श्री अरविन्द वंशी बजवैया, अर्थात् अन्तर्यामी विश्वव्यापी भगवान् कहते हैं, जो परम आकर्षण शक्ति है। और चैत्य व्यक्तित्व, यहां जिसे राधा कहा गया है, वंशी बजैया की पुकार का प्रत्युत्तर देता है....।

इस चेतना में प्रत्येक चीज को सतत आनन्द में परिवर्तित कर देने की सामर्थ्य होती है।

काली—काली, विश्व माता का अत्यधिक शक्तिशाली पक्ष है। इसके द्वारा सृष्ट शक्ति सभी देवताओं की शक्ति से अधिक महान् है। अतएव काली से युक्त होने का अर्थ है सभी देवताओं की शक्ति से अधिक विस्तृत, पूर्ण और शक्तिशाली होना।

भक्ति—भक्ति वह कुंजी है जो मुक्ति का द्वार खोल देती है।

कर्म—हम कर्म करें, मानों प्रार्थना कर रहे हैं। क्योंकि कर्म ही भगवान् के लिए शरीर की सबसे अच्छी पूजा है।

रंगभेद—सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से मैं कह सकती हूं....गेहुआँ रंग सबसे ज्यादा अच्छा है। लेकिन यह सोचना कि कोई रंग के कारण ही अच्छा या बुरा है, एकदम वाहियात और मूर्खतापूर्ण बात है। अफ्रीका का नीग्रो सोचता है कि उसका रंग सबसे सुन्दर है। जापानी सोचते हैं कि उनके रंग की प्रजा ही अन्य रंगों से श्रेष्ठ है। रंगभेद बहुत निकृष्ट चीज है। चेतना की बहुत ही निचली अवस्था की निशानी है।....एक ऐसी चेतना की जो अभी-अभी निश्चेतना से निकल रही है। वह एक विचार नहीं है, एक भावना नहीं है, वह कुछ ऐसी चीज है जो इनसे भी नीचे है। जब तुम रंगभेद की दृष्टि से विचार करते हो तो तुम्हारा चैत्य पुरुष तुम्हारी मूर्खता पर हँसता है। वह जानता है कि उसने गोरे, गेहुएं, पीले, लाल, काले, हर तरह के शरीरों में वास किया है। जब तुम्हारे अन्दर इस तरह की भेद भावना उठे तो इसे अपनी चेतना के सामने लाओ और देखो वह गायब हो जाएगी।

गरीबी—एक दिन ऐसा आएगा जब न कोई गरीब, न ही संसार में कोई दु:खी रहेगा। यह श्री अरविन्द की शिक्षा को समझने वालों के लिए बिल्कुल

निश्चित है। हम एक ऐसा स्थान बनाना चाहते हैं जहां ऐसा हो सके, इसीलिए हम अरोविल (उषानगरी) की स्थापना करना चाहते हैं।

गरीबों की सहायता करना अच्छा है, बशर्ते कि यह दान का कार्य, दिखावा न हो। किन्तु दु:ख और कष्ट का इलाज करने की चेष्टा से कहीं अधिक बड़ा कार्य है कि पृथ्वी पर कोई गरीब ही न रहे।

समाजवाद—अन्य राजनीतिक वादों के समान ही समाजवाद भी भूतकाल की वस्तु है और यदि हम सत्य की सेवा करना चाहते हैं तो हमें इसे पीछे छोड़ देना होगा।

राजनीति—सिद्धान्त रूप से हमने कहा है कि राजनीति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। और यह सच है कि इस प्रचलित राजनीति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। पर यह भी एकदम स्पष्ट है कि यदि राजनीति को इसकी सच्ची भावना से लिया जाए, अर्थात् इसे मानव समुदायों के संगठन, शासन के ब्योरे, सामूहिक जीवन की व्यवस्था और दूसरे समुदायों (अर्थात् दूसरे राष्ट्रों और देशों) के साथ सम्बन्ध के रूप में लिया जाए तो अवश्य ही इसे अतिमानसिक रूपान्तर के अन्तर्गत होना होगा। क्योंकि जब तक राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रों का सम्बन्ध वैसा ही बना रहेगा जैसा अब है, तब तक पृथ्वी पर अतिमानसिक जीवन बिताना असम्भव है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह परिवर्तन हो। यह बहुत जरूरी है कि इस पर भी ध्यान दिया जाए। लोग चीजों का, बस, राजनीतिक आवश्यकताओं के लिए उपयोग कर लेते हैं, लेकिन यह बिल्कुल रोचक नहीं......।

श्री अरविन्द के विषय में—श्री अरविन्द राजनीति से अलग हो गए थे और उनके आश्रम के महत्त्वपूर्ण नियमों में एक यह है कि सब प्रकार की राजनीति से अलग रहा जाए। यह बात नहीं है कि श्री अरविन्द का संसार की गतिविधियों में रस नहीं था, बल्कि इसलिए कि आजकल राजनीति एक बहुत ही निम्न कोटि की और भद्दी चीज हो गई है, जो पूरी मिथ्यात्व, चालाकी, अन्याय, शक्ति के दुरुपयोग आदि से भरी है। राजनीति में भाग लेने के लिए कपट, धोखेबाजी और बेतहाशा महत्त्वाकांक्षा पैदा करने की जरूरत है।

हमारे योग का आधार है—सचाई, ईमानदारी, अहंकार का निषेध, भागवत् कार्य के लिए नि:स्वार्थ आत्मदान, चरित्र की उदात्तता और ऋजुता। जो लोग इन आधारभूत गुणों को अपने जीवन में नहीं लाते वे श्री अरविन्द के शिष्य नहीं हैं। इस आश्रम में उनके लिए स्थान नहीं है। इसलिए मैं आश्रम पर किए गए उन मूर्खतापूर्ण और निराधार आक्षेपों का उत्तर देने से इनकार करती हूं जो कि विकृत भावना और बुरे इरादे से किये जाते हैं।

श्री अरविन्द हमेशा अपनी मातृभूमि से प्रगाढ़ प्रेम रखते थे। लेकिन वे चाहते थे कि वह महान्, उदात्त, पवित्र हो और संसार में अपने महान् लक्ष्य के अनुरूप हो। उन्हें यह स्वीकार न था कि वह गन्दे, अधम, अपरिष्कृत, अन्धे, स्वार्थपूर्ण और अज्ञान भरे पूर्वाग्रहों के स्तर पर उतरे। इसलिए हम उनकी इच्छाओं के साथ-साथ चलते हुए सत्य, प्रगति और मानव रूपान्तर की ध्वजा ऊंची उठाते हैं....उन सबकी परवाह न करते हुए जो अज्ञान, मूढ़ता, ईर्ष्या और दुर्भावना के कारण गंदा करना या कीचड़ में घसीटना चाहते हैं....उसे ऊंचे से ऊंचा फहराते हैं ताकि जिन्हें उससे प्रेम हो, वे उसे देख सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें।'

नेतृत्व—अपने आपको भूल जाना सच्चा नेता बनने की एक आवश्यक शर्त है.... अपना कोई स्वार्थपूर्ण हित न रखना, अपने लिए कुछ न चाहना बल्कि अपने पर निर्भर के हित को, समग्र के हित को, ध्यान में रखना। इसी ध्येय को सामने रखकर कार्य करना और अपने कार्य से किसी प्रकार का वैयक्तिक लाभ न चाहना।

इस प्रकार एक छोटे दल का नेता एक बहुत बड़े दल का उत्तम नेता बन सकता है और एक सामूहिक भूमिका के लिए तैयार हो सकता है।

स्वतंत्रता—सच्ची स्वतंत्रता ऊपर की ओर उठती हुई गति है, जो निचली सहज प्रवृत्तियों के आगे नहीं झुकती। सच्ची स्वतंत्रता एक दिव्य अभिव्यक्ति है।

हम भारत के लिए सच्ची स्वतंत्रता चाहते हैं ताकि वह जगत् के आगे, मानव जाति को, जो बनना चाहिए उसका ठीक उदाहरण रख सके और पथ-प्रदर्शक बन सके।

शिक्षा—किसी भी देश में बच्चों को जो सबसे अच्छी शिक्षा दी जा सकती है, वह यह है उन्हें यह दिखाया जाए कि उनके देश का सच्चा स्वरूप और निजी विशेषताएं क्या हैं। जगत् में उनके राष्ट्र को कौन-सा कर्तव्य पूरा करना है और पार्थिव सामंजस्य में उसका सच्चा स्थान क्या है। उसमें दूसरे राष्ट्रों की भूमिका का विस्तृत ज्ञान भी जोड़ देना चाहिए, लेकिन नकल के भाव के बिना और अपने देश की प्रतिभा को आँखों से ओझल किए बिना।

देश सेवा का सर्वोत्तम तरीका चेतना की अभिवृद्धि और उदात्तीकरण है।

मानव को, ज्यों ही वह सोचने योग्य हो जाए, यह शिक्षा देनी होगी कि वह शुद्ध बुद्धि की आज्ञा का पालन करे और प्रवृत्तियों की गुलामी से इनकार कर दे।

शिक्षा का उद्देश्य आत्म-सत्ता का भौतिक जगत् पर उचित अधिकार हो, विकसित और व्यावहारिक...।

शारीरिक प्रशिक्षण—जो लोग शारीरिक प्रशिक्षण की प्रवृत्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वे पूर्ण योग के रास्ते पर एक पग भी न चल सकेंगे, जब

तक कि पहले इस घृणा से छुटकारा नहीं पा लेते। जो शरीर तुम पर शासन करता है, वह शत्रु है, यह एक अव्यवस्था है, जिसे तुम स्वीकार नहीं कर सकते। मन की आलोकित संकल्प शक्ति का ही शरीर पर शासन होना चाहिए। यह नहीं कि शरीर मन पर अपने नियम लागू करे।

ध्यान में निमग्न रहना और अपनी तथाकथित महानता की ऊंचाई से भौतिक वस्तुओं को देखना बड़ा सुहावना है, परन्तु जो अपने घर का स्वामी नहीं वह दास ही है।

भारत उदाहरण उपस्थित करे—देखो, भारत को इसी विचार ने नष्ट-भ्रष्ट किया कि उच्चतर शिक्षा उच्चतर चीजों से ही व्यवहार करती है और निम्न दुनियावी वस्तुओं में इसकी रुचि नहीं तथा वह इन्हें नहीं समझती। इसी विचार ने भारत को नष्ट किया अतः इसे पूर्णतया उन्मूलित करना होगा।

प्रतिस्पर्धा, व्यावसायिकता, धोखेबाजी और प्रतिद्वन्द्विता के बजाय यदि देश सत्य के अनुसार जीवन में आचरण करने का उदाहरण प्रस्तुत कर सके तो यह अपने लक्ष्य को साधित कर सकेगा।

यदि कोई देश इस कार्य को कर सकता है तो भारत ही कर सकता है।

यदि एक देश अपना उदाहरण प्रस्तुत करे, सत्य के अनुसार जीये, सम्पूर्ण सचाई और खुलेपन के साथ जीये, सबके साथ मित्रता और परस्पर में सहायक होने की भावना रखे तो वह जगत् को दिखा सकता है कि जीवन सभी तरह से समृद्ध और सुखमय बन सकता है। यह सामाजिक, आर्थिक सभी समस्याओं का प्रतिस्पर्द्धा की पद्धति से अधिक अच्छी तरह समाधान कर सकता है।

यह भारत का योगदान होना चाहिए। जगद्गुरु होने के नाते भारत को अपने उदाहरण से अन्यों को शिक्षा देनी चाहिए।

आह्वान तरुणाई को—तरुणाई का अर्थ है भविष्य में निवास करना। तरुणाई का अर्थ है कि तुम जो हो, उसे छोड़ने के लिए प्रस्तुत रहना और जो बनना है वह बन जाना। तरुणाई का अर्थ है कभी स्वीकार न करना कि अब उन्नति असम्भव है।

तुम तो तरुण हो, तुम्हीं देश की आशा हो। अपने को तैयार करो ताकि तुम इस आशा और विश्वास के योग्य बन सको।

अपने तुच्छ अहंकारपूर्ण व्यक्तित्व के परे उठ जाओ और भारतमाता की सुयोग्य संतान बनो। अपने कर्तव्यों को ईमानदारी और सहजता के साथ पूरा करो और भागवत् कृपा पर अडिग विश्वास रखकर सर्वदा प्रसन्न और निश्चिंत बने रहो।

अनन्त शयनम् आयंगर

संस्कृत एवं संस्कृति, दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रय संबंध है। संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है और संस्कृत उस आत्मा को प्रकाशित करने वाली राष्ट्र की बोली है, भाषा है। भारतीय संस्कृति के सभी महान् एवं ऐतिहासिक अभिलेख संस्कृत तथा संस्कृत मूलवाली भारतीय भाषाओं में ही सुरक्षित है। अतः हमारी संस्कृति संस्कृत में ही बोलती है, संस्कृत में ही सुरक्षित है, संस्कृत के माध्यम से ही युगानुयुग परंपरा हम तक पहुंची है। संस्कृति जीवन के महानतम आदर्शों की संस्कार परंपरा है किन्तु यदि कोई पूछे कि वे आदर्श क्या हैं? तो बिना भाषा के माध्यम के उन आदर्शों का निर्वचन कोई नहीं कर सकता। भाव भाषा के माध्यम से यात्रा करते हैं और भारतीय संस्कृति देवभाषा संस्कृत के दिव्यरथ में बैठकर ही देशों-कालों एवं युगों की यात्रा करती हुई अभी तक अमर बनी हुई है।

स्वर्गीय श्री अनन्त शयनम् आयंगर, जिनका 19 मार्च 1978 को 87 वर्ष की अवस्था में, दक्षिणापथ के सर्वप्रसिद्ध विष्णुतीर्थ तिरुपति में वैंकुठवास हुआ। वे आधुनिक भारत में संस्कृत एवं संस्कृति के एक अद्वितीय अनन्य उपासक थे। उन्होंने संस्कृति के प्रकाश एवं संस्कृत वाङ्मय के वैदुष्य को भारतीय सभ्यता की सरलता, सात्त्विकता एवं शालीनता के साथ ऐसा समन्वित कर लिया था कि उनका विष्णु तिलकमंडित मस्तक, कुरता धोती एवं उत्तरीय विभूषित वपु उनकी शतप्रतिशत भारतीय निष्ठा एवं स्वाभिमानपूर्ण व्यक्तित्व है। दानशीलता के भाव से प्रेरित होकर गरीबों की सहायता करना उनका अपमान करना है और जो उनके लिए मृत्यु से भी बुरा है। कारण, धनिकों को धन का अभिमान है और रूपवानों को अपने सौंदर्य का, कवियों के पास उनकी प्रतिभा है, परन्तु गरीब के पास केवल मान है। यदि समाज सेवा करना चाहते हो तो विनय भाव से करो। इसीसे तुम्हारी सेवा को दीन-दुःखी और मरते हुए लोग स्वीकार करेंगे। इसी के कारण गरीब तुम्हारे हाथ से वह जल ग्रहण करेंगे, जिससे उनके प्राणों की रक्षा की संभावना है।'

'यह वही भारतवर्ष है जो पहली शती के आरंभ में भी पूर्ण सभ्य था और संसार को उन उज्ज्वल स्त्री रत्नों को आदर्श स्वरूप अर्पण कर चुका था जो बुद्धि

और विद्या दोनों ही के ऊँचे शिखर पर पहुंची हुई थीं।....राष्ट्रीयता का निर्माण आप लोगों के हाथ में नहीं हम लोगों (स्त्रियों) के हाथ में है।

विद्यार्थियों की सभा में

'यदि मुझसे कहा जाय कि भाषा के संपूर्ण भंडार में से तुम एक ऐसा वाक्य चुनकर कहो जो तुम्हारे अंतरतम हृदय में भविष्यानुरूप से निगूढ हो और उसके बाद चुप हो जाओ, तो मैं यही कहूंगी—

'तुम्ही भविष्य की आशा हो।'

अहमदाबाद में एक छात्र-सम्मेलन में सभानेत्री के पद से आपने कहा था— 'मैं अपने जीवन में सर्वोच्च महिमा तथा सिद्धि इसी में समझूंगी कि मेरी समाधि के शिलालेख पर ये शब्द अंकित किए जायें-भारत की नई पीढ़ी से इसे प्रेम था, उसी पर इसको विश्वास था, उसी के साथ इसने काम किया और उसी के सहयोग से इसने स्वतंत्रता प्राप्त की।'

मद्रास में छात्रों को संबोधित करते हुए कहा

'तुमने महान् आदर्शों को पूर्वजों से थाती में पाया है। तुम पर बड़े-बड़े कर्तव्यों का भार है। तुम्हारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इससे प्रयोजन नहीं कि तुम क्या हो, कौन हो और क्या काम करते हो। गली में झाड़ू देने वाला भी देशभक्त हो सकता है। उसमें भी तुम एक ऐसा उत्तेजक भाव पा सकते हो, जिससे तुम्हारे मन को उच्च प्रेरणा प्राप्त हो सके।'

काव्य और जीवन

'मुझ से लोग बार-बार पूछते हैं कि तुम कल्पना के हाथी दांत के गुबंद से उतर कर बाजार में क्यों आ गई हो? तुमने कवि की वीणा और वंशी का परित्याग करके देश के स्वातंत्र्य युद्ध के लिए उत्तेजित करने वाला बिगुल क्यों धारण कर लिया है?' इसीलिए कि कवि का कर्तव्य उद्यान में, स्वप्न के मंदिर में एकान्त निवास करना नहीं है, उसे जनता के साथ रहना चाहिए, युद्ध की कठिनाइयों के बीच में रहना चाहिए।'

'क्या हम ऐसी नींव पर स्वराज्य खड़ा करना चाहते हैं जिसमें दरारें हो? जो स्वराज्य एकता की दृढ़ चट्टान पर आश्रित न रहे, प्रत्युत पृथक् जातीय विचार पर स्थित हो वह स्वराज्य बालू की नींव पर आश्रित समझना चाहिए।

किसी जाति का बल उनकी जनसंख्या पर आश्रित नहीं है प्रत्युत उस जाति के नैतिक बल पर आश्रित है। महात्मा गांधी के शरीर में एक बच्चे का भी बल न होगा, परन्तु उसने एक महान् शासन की जड़ हिला दी।

प्रवासी भारतीयों के लिए प्रेम (प्रयाग का भाषण)

'तुम लोग जो स्वराज्य के लिए आंदोलन कर रहे हो, तुम लोग जो देशभक्ति के स्वप्न देख रहे हो, यदि तुम समुद्र पार के रात्रि दिवस सुनाई देने वाले वेदना क्रंदन का प्रतिकार नहीं कर सकते, तो क्या तुम देश भक्त कहलाने योग्य हो? यह वेदना उन देश के भाइयों की है जिनकी दशा कुत्ते की दशा से अन्य नहीं, उन बहनों की है जिनके प्रति पशुतुल्य आचरण होता है। आज मैं अपने अंदर उस यातना का अनुभव कर रही हूँ जो वर्षों से वे बहनें सहन कर रही हैं, जिनको अब मृत्यु में ही शांति मिल सकती है। मैं उस अकथन लज्जा और ग्लानि का अनुभव कर रही हूँ जो कुली प्रथा से अभिन्न है।

1919 में इंडियन होमरूल लीग की और से इंग्लैण्ड गई।

जलियांवाला बाग दुर्घटना- उन्होंने इंग्लैण्ड में पंजाब के हत्याकाण्ड के संबंध में जो व्याख्यान दिए उनसे अंग्रेजी राजनैतिक दलों में सनसनी फैल गई। भारत सचिव मिस्टर मांटेग्यू से सरोजिनी नायडू की लिखा-पढ़ी होती रही।

1920 में गांधीजी को लिखा—

'मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। परन्तु पंजाब और खिलाफत के युगल प्रश्नों में संपूर्ण ध्यान दे रही हूँ और उन्हीं के लिए कार्य कर रही हूँ। किन्तु ऐसी जाति से जो बल में मद के चूर और अंधी हो रही हो, जिसमें जाति, धर्म वर्ण, संबंधी तीक्ष्णतर पक्षपात भरा है, जो भारतीय दशा, विचार और आकांक्षाओं का कुछ ध्यान नहीं रखती है। किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। अंग्रेजी न्याय तथा सहानुभूति में मुझे जो विश्वास शेष था उसे पार्लियामेंट में होने वाले पंजाब संबंधी वाद-विवाद ने पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस विवाद में हमारे मित्रों ने अज्ञान प्रदर्शित किया, हमारे शत्रुओं ने धृष्टता-दोनों का सम्मिलन हृदय को विदीर्ण करने वाली अवस्था उपस्थित करता है। मिस्टर मांटेग्यू फटी हुई ढफली सिद्ध हुए।'

जिनेवा में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में भाग लिया।

असहयोग के कार्यक्रम के अनुसार उन्होंने अपना 'केसरे हिन्द' पदक सरकार को लौटाते हुए पत्र लिखा—

कई वर्षों से एक असहाय जाति अनेकों प्रकार से अपमानित हो रही है, उसका घोर दमन हो रहा है, उसके प्रति जो प्रतिज्ञाएं की गई थी, वे भी भंग की जा रही हैं। इन दो बातों के अतिरिक्त दो बड़े पाप हुए हैं—एक तो मुसलमानों को दी हुई प्रतिज्ञा का अनादर और दूसरे पंजाब का हत्याकाण्ड। यह मेरे सम्मान और मानुषिक विचारों के प्रतिकूल है कि मैं इन अत्याचारों को देखकर भी चुप रह सकूं और उस सरकार से जिसने कि न्याय का तिरस्कार किया है सहमत हो सकूं।'

1924 ई. में पूर्वी अफ्रीका में का व्याख्यान में कहा—'आप लोग एक स्वर से सरकार से कह दें कि यद्यपि प्राकृतिक नियम से नदियां उलटी नहीं बहा करती तथापि हम लोग आपके निर्णयों की धारा को उलटी बहा देंगे। यद्यपि हम लोग दीन और दरिद्र हैं तथापि आप यह न समझें कि आप हमारे अधिकारों को छीनने के उद्देश्य में सफल हो सकेंगे।'

नमक सत्याग्रह

1931 में गोलमेज कान्फ्रेंस में

1 मार्च 1949 में सहसा हृदय रोग से मृत्यु।

हिन्दू होने का गर्व करो

आओ! हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि संसार की कोई भाषा इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर पाई।

जितनी ही मैंने भूतकाल पर दृष्टि डाली है, यह गर्व मुझे उतना ही बढ़ता गया है। उसने मुझे साहसपूर्ण निष्ठा और शक्ति प्रदान की है। उसने मुझे धरती की धूल से उठा कर ऊपर खड़ा कर दिया। भगवत्कृपा से तुम भी उस गर्व से परिपूर्ण हो जाओ। कई अन्य गौरवशाली जातियां आयीं और चली गईं। किन्तु हम आज भी जीवित हैं और आज भी हमारे पुराण-ऋषि-मुनि वापस लौट आयें तो उन्हें आश्चर्य न होगा, उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि वे किसी नये देश में गये। आज भी वही प्राचीन विधान (वेद, उपनिषद् व गीता) विद्यमान हैं। आज भी वे हमारे प्रेरणा के स्रोत हैं।

—स्वामी विवेकानंद

× × ×

हिन्दुत्व ही वह अंकुरण भूमि है जिसमें भारत की जड़ें गहरी जमी हुई है तथा उससे उखाड़ देने पर वह वैसे ही अनिवार्यरूपेण मुरझाकर निष्प्राण हो जायेगा जैसे एक वृक्ष को उसके स्थान से उखाड़ देने पर वह मर जाता है।

—डॉ. एनीबेसेन्ट

स्वामी श्री शिवानन्दजी सरस्वती

'अपने हृदय को टटोल कर देखो। क्या तुम प्रेम नहीं चाहते? क्या तुम्हारे हृदय में, तुम्हारे अन्तरतम में यह चाह नहीं कि सब तुम्हें चाहें? मानव-जाति सुख, शान्ति और ऐक्य से रहे, और ये युद्ध, झगड़ा-फसाद, सब का नाश हो जाए? यही तो तुम्हारे अन्तरतम की आवाज है। यही तो सत्य का संदेश है।....जहां शुद्ध सतत सत्य और निःस्वार्थ प्रेम है, वहां—प्रभु की प्रीति, अध्यात्म नीति, ज्ञान-ज्योति, आत्मशक्ति, राजहंस पक्ष सम शुभ्र-धवल-कीर्ति, सरस्वती, तृप्ति, भक्ति, मुक्ति—सभी निवास करती हैं।' इस दिव्य जीवनमंत्र के द्रष्टा पूज्य स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती आधुनिक युग के एक महानतम ऋषिकल्प महाविभूति हुए हैं। जिन्होंने अपनी अध्यात्म सुवास से मानवता की फुलवारी को सुवासित किया तथा लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता को सत्यम् एवं ऋतम् का आलोकपथ दर्शाया।

भारत का अध्यात्म ज्ञान विश्व के सर्वोच्च पर्वत हिमालय का अमर वरदान है। हिमाद्रि की कलकल निनाद करती हुई अजस्रवाहिनी सदानीराएं अपने अमृतजलों से इस धरती के बेटों की तृषा शान्त करती रही है। उन्हीं अमृततोया नदियों के सिंचन से उत्पन्न अन्न से कोटि-कोटि भारतीयों की क्षुधा शान्त होती रही है। उसी पुण्यपावन हिमालय के तुषारमंडित हिमशिखरों पर अनन्त तपश्चर्या करने वाले संतों-महात्माओं के ज्ञान से फूटने वाली अमृत गंगा से भी युग-युग से मानवता का उद्धार होता रहा है। दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश के प्राणप्रेरक ब्रह्मलीन स्वामी शिवानंदजी सरस्वती भी इसी ऋषि परम्परा की उज्ज्वल कड़ी के रूप में इस धरा पर आए थे।

स्वामी श्री शिवानंदजी का जन्म 8 सितम्बर, 1887 को मद्रास प्रान्त के पट्टमदई ग्राम में (तिन्नेवेल्ली जंक्शन से 10 मील दूर) श्री पी.एस. वेंगू अय्यर के पावन गृह में हुआ था। पिता वेंगू अय्यर शिवभक्त ज्ञानी थे तथा एत्तियापुरम राज्य सम्पत्ति के तहसीलदार थे। वहां एत्तियापुरम के राजा एवं प्रजा दोनों उनका सम्मान-सत्कार करते थे। स्वामीजी की वंश परम्परा 16वीं सदी के महान् विद्वान् एवं मनीषी श्री अप्पय दीक्षित से चली आती है। दक्षिण भारत में श्री अप्पय दीक्षित को साक्षात् शिव का अवतार माना जाता था। उनके लिखित 104 संस्कृत ग्रंथ मिलते हैं।

उनके 'चतुर्मतसार संग्रह' में वेद के चार मतों (द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शिवाद्वैत तथा अद्वैतवाद) के साथ पूर्ण न्याय किया गया है। काव्य-छन्द, तर्क-दर्शन सभी में उनकी समान गति थी। वे काव्य में पंडितराज श्री जगन्नाथ के प्रतिस्पर्धी थे।

स्वामी शिवानन्द का बचपन का नाम कुप्पु स्वामी था। स्कूल की शिक्षा में उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण बहुत से पुरस्कार प्राप्त किए। मेडिकल की शिक्षा तंजोर मेडिकल इंस्टीट्यूट में प्राप्त करते समय उन्होंने एक औषधि विज्ञान की पत्रिका Ambrosia चलाई। एक पुराने असिस्टेंट सर्जन को विभागीय परीक्षा में बैठना था। वह किशोर छात्र कुप्पु स्वामी को अपनी पाठ्य पुस्तकें पढ़कर सुनाने के लिए कहता। इससे श्री कुप्पु स्वामी को अन्य छात्रों की अपेक्षा अधिक जानकारी प्राप्त हो गई तथा वे वहां सब पत्रों में प्रथम स्थान प्राप्त करने लगे।

मलाया में रोगी सेवा—डॉक्टरी पास करने के पश्चात् डॉ. कुप्पुस्वामी मलाया के रबर क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा देने हेतु मलाया चले गए। शाकाहारी होने के कारण मार्ग में, समुद्र यात्रा में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई। सिंहापुर (सिंगापुर) में वे एक अनजान एवं मित्रविहीन व्यक्ति के रूप में पहुँचे। वहां के एक डॉक्टर आयंगर ने उन्हें पत्र देकर मलाया के सैरेम्बन (श्री रामबन) नगर में डॉक्टर हेरोल्ड पारसन्ज के पास भेजा। वहां रबर एस्टेट में काम करने के लिए श्री राबिन्ज ने डॉ. कुप्पुस्वामी को रख लिया। वहां सात वर्ष रोगियों की भरपूर सेवा के पश्चात् वे जोहोर मेडिकल ऑफिस में तीन वर्ष सेवा देते रहे। अपने कठोर परिश्रम, निष्काम सेवा, सहानुभूति पूरित हृदय के कारण डॉ. कुप्पुस्वामी चित्त शुद्धि प्राप्त कर देवतुल्य पूजित होने लगे। मलाया में धन एवं ऐश्वर्य के सब साधन उपलब्ध होने पर भी वे एक कमलपत्र के समान निर्लिप्त रहे। वे दैनिक पूजा-पाठ, प्रार्थना, स्वाध्याय, भजन, सत्संग, अनाहत लययोग एवं स्वरसाधना करते रहते। सन् 1980 में (लेखक) मैं मलाया (सैरेम्बन, जोहोर, कुआलालम्पुर, सिंहापुर में) के शिवानन्द आश्रमों में गीता व्याख्यानमाला हेतु गया था।

वैराग्य एवं संन्यास—पवित्र भाव से दुःखियों की सेवा करते-करते उन्हें नर से नारायण की अनुभूति होने लगी थी। डॉक्टरी की सेवा ने उन्हें संसार के दुःख, रोग, शोक को निकटता से देखने का अवसर प्रदान कर दिया था। उनका मन जिज्ञासा करने लगा—क्या कोई ऐसी स्थिति नहीं जहां संसार के तीन ताप एवं पंच क्लेश का आत्यंतिक नाश होकर शाश्वत शांति प्राप्त हो? जिस प्रकार संसार के दुःख, रोग, शोक व मृत्यु आदि को देखकर सिद्धार्थ के मन में वैराग्य का भाव उदय हुआ था, उसी प्रकार डॉ. कुप्पुस्वामी के मन में भी प्रबल वैराग्य का भाव उदित हुआ। श्रुति का वचन है—'यदाहरेव विरजेत तदाहरेव प्रव्रजेत।' जिस दिन वैराग्य जागे, उसी दिन संसार त्यागे।

सन् 1923 में अपना सारा सामान एक मित्र के पास ही छोड़ कर डॉ. कुप्पुस्वामी वैराग्य सम्पन्न साधु के रूप में सिंगापुर छोड़कर भारत के वाराणसी नगर में आ गए तथा भगवान् विश्वनाथ के दर्शन किए। फिर नासिक, पूना आदि तीर्थों में गए। पूना से 70 मील पैदल चलकर पंढरपुर तीर्थ गए। वे अनेक महात्माओं से मिले तथा अध्यात्म के कई महान् पाठ पढ़े। फिर ऋषिकेश में आकर 1 जून, 1924 को गंगा के तीर पर उन्होंने परमहंस स्वामी विश्वानंद सरस्वतीजी से संन्यास की दीक्षा ली। कैलास आश्रम के आचार्य स्वामी विष्णुदेवानन्दजी महाराज ने इस अवसर पर विरजा होम करवाया। इस प्रकार डॉ. कुप्पुस्वामी, स्वामी शिवानन्द सरस्वती बन गए।

गुरु मार्गदर्शक, शिष्य साधक—स्वामी शिवानन्दजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—'शिष्य के लिए गुरुकृपा आवश्यक है।....किन्तु शिष्य के लिए गुरु ही सब साधना नहीं कर सकता। गुरु के कमंडलु के जलबिन्दु मात्र से आध्यात्मिक उपलब्धियों की आशा करना मूर्खता है। गुरु शिष्य का मार्गदर्शन कर सकता है। संशय दूर कर सकता है। मार्ग प्रशस्त कर सकता है। प्रलोभनों, गड्ढों तथा बाधाओं को दूर कर सकता है। मार्ग को प्रकाशित कर सकता है। किन्तु, शिष्य को स्वयं ही आध्यात्मिक यात्रा पथ का प्रत्येक पग चलना पड़ता है।'

स्वाध्याय सेवा साधना—स्वामी शिवानंदजी ने ऋषिकेश में आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य को पाने हेतु अपनी सारी शक्ति और समय को स्वाध्याय, सेवा व साधना में समर्पित किया। बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्रा पर जाने वाले हजारों यात्रियों को औषधि सेवा की आवश्यकता होती थी। स्वामीजी ने लक्ष्मण झूला में यात्रियों की औषधि सेवा हेतु सत्य-सेवाश्रम स्थापित किया। वे औषधि के अतिरिक्त रुग्ण यात्रियों व उन महात्माओं को दूध-फल, विशिष्ट आहार, वस्त्रदान, वस्त्र प्रक्षालन, तेल मालिश आदि की सेवा भी प्रदान करते थे। वे दैनिक आसन-प्राणायाम, मुद्राबन्ध, एकान्तवास, मौन की साधना भी करते थे। मुनि की रैती में राम आश्रम लाइब्रेरी है जहां स्वामी रामतीर्थ ने वानप्रस्थ त्याग कर संन्यास लिया था। शिवानंदजी वहां से आध्यात्मिक ग्रंथ लेकर स्वाध्याय करते थे। वे व्यर्थ की बातचीत एवं शास्त्रार्थ में समय को बरबाद न करके आत्मचिन्तन एवं आत्मविश्लेषण करते रहते थे। फिर स्वर्ग आश्रम में एक 8 फुट × 10 फुट की कुटिया में रहने लगे। दोपहर की भिक्षा काली-कमलीवाला क्षेत्र से करते। वे प्रत्येक कुटिया में जाकर रोगी-महात्माओं की परिचर्या करते। उनके पांव दबाते तथा उनके मैले वस्त्र धो देते।

उस काल में उन्होंने स्वर्गाश्रम, साधु-संघ स्थापित किया। ऋषिकेश से वे पुनः अनेक तीर्थों की यात्रा पर गए। वे दक्षिण भारत में अरुणाचल पर्वत पर महर्षि

रमण के दर्शन के लिए गए। संयोगवशात उस दिन महर्षि रमण का जन्म दिवस भी था। उन्हें महान् प्रेरणा प्राप्त हुई। रामेश्वरम् में उन्होंने रामलिंगम की पूजा और पुरी में भगवान् जगन्नाथजी की पूजा की।

सन् 1936 में उन्होंने मुनि की रैती क्षेत्र में गंगा के तीर पर दिव्य जीवन संघ (Divine life Society) की स्थापना की। वे बदरी, केदार, गंगोतरी, यमुनोतरी, कैलास, मानसरोवर की यात्राओं पर पैदल गए। मार्ग में रोगी एवं आहत साधुओं को वे अपने कंधों पर उठा-उठाकर अगले पड़ावों तक पहुँचाते रहे। सन् 1939 में मलाया से एक स्कूल मास्टर शिवानन्द आश्रम ऋषिकेश में स्वामीजी से मिलने आया तथा उसने कहा कि सिंगापुर में आपका मित्र आपके छोड़े हुए सामान की देख-भाल अभी तक कर रहा है और आपकी वापसी की प्रतीक्षा कर रहा है। स्वामीजी ने मुसकराकर कहा—**'संसार की वस्तुएं संसारीजनों की प्रतीक्षा करती ही रहती है, मुमुक्षुजनों की प्रतीक्षा तो मोक्षधाम में हो रही है।'**

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
अयं बन्धुश्चं नेति गणना लघुचेतसाम्।।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

महोपनिषद्, 6/71, हितोपदेश मित्रलाभ, 71

यह अपना है, यह पराया है, यह अल्पबुद्धिजनों की गिनती है। उदार चरित्रवालों के लिये पूरी पृथ्वी ही कुटुम्ब है।

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

महाभारत उद्योग पर्व, 37/17, सभापर्व 62/11

समूचे कुल की भलाई के लिए एक पुरुष को त्याग दें। गांव के हित के लिये एक कुल को त्याग दें। देश की भलाई के लिये एक गांव को त्याग दें और आत्मा के उद्धार के लिये सारी पृथिवी को त्याग दें।

महाराष्ट्र के संत कवि माणिकराव

मध्यकालीन भारत में भारत एवं भारतीयता को संकटसागर से उबारने के लिए जिन महान् संत भक्तों का उदय हुआ उनकी महान् परम्परा भक्तिकाल के समाप्त होने के साथ समाप्त नहीं हो गई। वरन् साहित्यिक धाराओं के बदल जाने के उपरान्त भी भक्ति की सांस्कृतिक धारा अबाधगति से प्रवाहित होती रहीं। फिर भक्ति तो भारत की धर्म भूमि की विशेष वस्तु है—यह वह अनादि-अनन्त धारा है जो भारत की साक्षात् प्राणधारा बन गई है। जब भारत के आनन्दकानन में भक्ति के कोमल बिरवे खिलने समाप्त हो जाएंगे तब फिर भारत भारत ही नहीं रहेगा।

भारत के प्रत्येक कोने से समय-समय पर संतों ने प्रकट होकर युग की मांग के अनुसार जन गण में आदर्शवाद फूंकने का जो महाकार्य किया है उसका लेखनी या वाणी से उचित मूल्यांकन करना कठिन है। देशभर में घूम-फिर कर लोकमानस की चेतना को उद्बुद्ध करने वाले संत-महापुरुष मानो चलते-फिरते जंगमतीर्थ ही हैं। 19वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में एक महान् भक्त कवि का उदय हुआ। जिनका जन्म काल, जन्म स्थान, माता-पिता, जाति, गोत्र, वंश-परम्परा सभी कुछ अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिनी आँखों के लिए भी अज्ञात बना हुआ है। इस महान् संत कवि के अस्तित्व का एकमात्र ऐतिहासिक आधार है—हुमणाबाद में बनी हुई एक छोटी-सी, धूलि में सनी हुई समाधि। जिस पर आने-जाने वाले भक्त नर-नारी कभी अपना नमन चढ़ा जाते हैं तथा कभी कोई श्रद्धालु जीव दो एक फूल चढ़ा कर अपने मन में सांत्वना लाभ करता है। उस महान् अलौकिक महापुरुष का यही एकमात्र लौकिक स्मारक काल की डाहभरी दृष्टि से बचा हुआ उस संत की स्मृति को सजीव बनाए हुए है। हुमणाबाद के बड़े-बूढ़े सज्जनों को जिनकी आँखों की ज्योति मंद हो चली है, एक धूमिल स्मृति बनी हुई है कि उन्नीसवीं शती के अन्तिम तथा बीसवीं शती के प्रथम चरण में महाराष्ट्र में एक भक्ति संगीत से मुखर हृदय वाला संत कवि प्रभु के मधुर गीत गाता हुआ घूमता-फिरता था। उन सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु के इने-गिने बूढ़ों को यह भी याद है कि आज से 59 वर्ष पूर्व सन् 1911 में उन महान् संत की भक्ति संगीत से गूँजने वाली

हृदयवीणा अचानक मौन हो गई तथा उस संत कवि ने अपना नश्वर चोला त्याग कर ब्रह्मसमाधि प्राप्त की।

उस अविनश्वर संत के मिट्टी व ईंट के बने हुए नश्वर स्मारक के अतिरिक्त उस अमृत कवि की महान् रचनाएं उनका चिरन्तनजीवी स्मारक है। वह महान् अपने महान् मृत्युंजय गीतों के माध्यम से आज भी अमर है और सदा के लिए अमर रहेगा।

सदाशिव वंदना—शंकर महाकाल है। उनका प्रलयंकर रूप दुष्टों के कलेजे को प्रकम्पित करने वाला है। किन्तु माणिक जैसे भक्तों को वह रूप बड़ा लुभावना लगता है—

भोला! तोहे मूरत लागत नीको।
कान भुजंग सुहावत कुंडल,
वोहे ही छाला व्याघ्रांबर,
गाल बजाए के नाम ही लेत,
काल ही कांपत थरथर,
माणिक के प्रभु ऐसे सदाशिव,
भावहि भक्ति के भूको।
भोला तोहे सूरत लागत नीको।

अर्थात् हे भोलेशंकर! तेरी मूर्ति मुझे अच्छी लगती है। तेरे कानों में सर्प रूपी कुंडल शोभायमान हो रहे हैं। तुमने व्याघ्र की छाल का वस्त्र पहना हुआ है। आप गाल बजाते, ऊँचा शब्द करते हो तथा डमरु ध्वनि भी करते हो तथा आप (महाकाल) के नाम से भी काल (मृत्यु) थरथर कांपने लगता है। माणिक के प्रभु सदाशिव ऐसे प्यारे हैं, जो केवल भाव भक्ति के भूखे हैं।

अवधूत शिरोमणि दत्तात्रेय—महाराष्ट्र में भगवान् दत्तात्रेय की बड़ी पूजा-प्रतिष्ठा है। संत कवि माणिक भी उन अवधूत शिरोमणि की वंदना में गाते हैं—

मन लागा मेरे रे! अवधूता सो।
निराकार निर्गुन निरंजन,
निराकार बिन नाथा सो।
बहुरंगी जोगी संगत त्यागी,
ज्ञान अखिल पददाता सो।
माणिक के मन लग गए सुमरन,
अनसूया जी के पूता सो।

अर्थात् मेरा मन उन अवधूत प्रवर दत्तात्रेयजी में रम गया है। जो निराकार, निर्गुण और निरंजन ब्रह्म के स्वरूप हैं। तथा जिनका कोई नाथ नहीं। अर्थात् वे ही सभी के स्वामी हैं। जो जीवन के अनेक रंगों वाले जोगी हैं तथा संगदोष से मुक्त निर्लिप्त महापुरुष हैं एवं अखिल ज्ञान के दाता हैं।

उन अनुसूयाजी के सुपुत्र दत्तात्रेय भगवान् के स्मरण में भक्त माणिक का मन लीन हो गया है।

गुरु चरणों की पांवरी, मेरे तन को चाम—श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

तुलसी जिन के मुखन ते, धोखेऊं निकसत राम।
तिन के पग की पाहिनी, मेरे तन की चाम।।

महाराष्ट्र सन्त श्री माणिक अपने गुरुदेव के चरणों के जूतों के लिए अपने तन का चमड़ा देने को परम व्याकुल हैं—

गुरु जी! तोरे पैयां पर सीस धरूं।
तेरे नाम का ध्यान धरूं, तेरे काज मरूं।
अपने तन की चाम निकाल के, चरण पनैया करूं।
माणिक कहे तेरी सूरत प्यारी, नैनन बीच भरूं।।

श्रीराम की बाल छवि—संत माणिकराव प्रभु के बाल रूप पर मुग्ध हो नृत्य गीत गाने लगता है—

देखो देखो सखि रे छब बाला की।
शेषाचल पर आप विराजे, चौकी हनुमन्त लाला की।
मोर मुकुट मस्तक पर सोहे, बहुत लगी लड माला की।
माणिक के मन सुमरत बाला, फासा कटे भवजाला की।।

शब्दों की रंगीनी से उभरा हुआ यह श्रीराम की बाल छवि का चित्र कितना अनूठा है।

लक्ष्मण मूर्च्छा पर राम विलाप—रामायण में लक्ष्मण मूर्च्छा का प्रसंग समूची कथा में सबसे अधिक अश्रुप्रेरक, करुण प्रसंगों में से एक है। इन राम भक्त कवि ने उस करुण दृष्टि को कैसे अश्रु-मुक्ताओं में गूंथा है—

आज बडो ये कठिन भयो।
नीर ढलकत नैन से या रघुबर के।
लाग के बाण जद लछुमन,
व्याकुल प्राण भयो भयोधर के!

क्या कहूं मैं भरत भैयाकु,
कैसे मैं जाऊं अयोध्या नगर कु
ज्यावेंगे काल कपि गिरि कंदर,
ज्यावे विभीखन अब कौन घर के?
माणिक के प्रभु धनुख धरे,
बतावो निशाचर अब कौन घर के।

लक्ष्मण के बेहोश हो जाने पर नयनों से नीर बहाते हुए श्रीराम कहते हैं कि अब मैं अयोध्या नगरी में किस मुंह से जाऊंगा और भरत भैया से क्या कहूंगा कि मेरा प्यारा बंधु लक्ष्मण कहां रह गया है, इत्यादि-इत्यादि। इसमें संत कवि ने करुणरस का अच्छा परिपाक दिखाया है।

तेरी सांवली सूरत पर वारी—कृष्ण प्रेम में मतवाली मीरा बाई ने गाया है—

तेरी सांवली सूरत पर वारी।

बिल्कुल उसी भावधारा में नन्दलाल की सांवरी सूरत पर मुग्ध होकर कवि माणिकराव संगीत मुखर पदों में गाने लगते हैं—

मैं तो वारि रे सैयां! तोरे पर से।
सांवलि सूरत रसभरी अखियां लेउगि
बलियां दोनों कर से
माणिक प्रभु वो नन्द लाला।
दर्शन पर जिया तरसे।
मैं तो वारि रे सैयां तोरे पर से।

मुरली की मधुर तान—श्री कृष्ण की मुरली माधुरी का मधुर चित्रण कितना कर्णमधु है—

नन्द कुमार सांवरो कान्हा, बांसुरी बजाई।
शुक सनक व्यास मुनि, ध्रुव प्रह्लाद नारद मुनि।
भये रहे स्थिर देह, सुध बिसराई।
चकित भये सब ही देव, ब्रह्मा विष्णु महादेव।
त्रिभुवन मो नाद भरे सुनत शेष शामी।
स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये विमानी सुर।
माणिक दास नभये।

गुरु गोविन्दसिंह ने भी मुरली महिमा में लिखा है—

ठाड़ी रही जमुना, खग बोलत...

अर्थात् श्री कृष्ण की मुरली सुन कर यमुना भी खड़ी हो गई। भक्त माणिकदास ने भी लिखा है—

स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये विमानी सुर।

अर्थात् यमुना का जल खड़ा हो गया तथा विमानों में विचरण करने वाले देवता भी मुग्ध हो गए।

हिन्दी साहित्य में स्थान—इस प्रकार भक्त माणिकराव ने महाराष्ट्र में जन्म पाकर तथा मराठी भाषी होकर भी हिन्दी में इतने सुललित भक्ति पदों की रचना की कि उनका हिन्दी साहित्य में एक आदरपूर्ण स्थान बन जाता है। किन्तु, दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी के किसी भी इतिहास में इन अज्ञात भक्त कवि के विषय में एक पंक्ति भी नहीं लिखी गई।

भाषा—भक्त माणिकदासजी की भाषा साधु-संतों की सधुक्कड़ी भाषा है। जो अटपटी होने के उपरान्त भी हृदय पर प्रभाव डालती है। अलंकार अधिक नहीं हैं। किन्तु, उपमा, रूपक इत्यादि अलंकार अच्छे निभाए हैं।

भाव—भाव की सरलता एवं सचाई जो एकदम हृदय को अभिभूत कर लेती है, संतों की एक विशेषता है। आज भी कोई मराठी भाषी या हिन्दी भाषी सहृदय व्यक्ति जब भावविभोर होकर भक्त प्रवर माणिकदासजी के भक्ति रसामृत में डूबे हुए पदों को गाते हुए आनन्दाश्रु बरसाने लगता है तो उस विस्मृत महाकवि की अमरकला को उचित श्रद्धांजलि समर्पित हो जाती है।

मातृवत्परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

गरुडपुराण नीतिसार, 1/111/12

परायी स्त्रियों में जिसकी मातृवत्-दृष्टि है, पराये द्रव्यों (वैभवों) को जो मिट्टी के ढेले के तुल्य तुच्छ समझता है और जो सभी प्राणियों को आत्मतुल्य समझता है; वह पण्डित है।

दक्षिण भारत के कवि बल्लतोल

अपने समय के सबसे महान् मलयाली कवि बल्लतोल थे। 1925 में बल्लतोल ने रवि ठाकुर की शैली में कविताएं लिखकर मलयालम को एक नई दिशा दी। संस्कृत के छन्द छोड़कर आपने प्राचीन मलयालम के छन्द अपनाए। रूप से अधिक महत्त्व काव्य के विषय को दिया और साहित्य को सुधार का साधन बनाया। बल्लतोल ने अपनी कविताओं के सामाजिक तत्त्व को कायम रखते हुए कविता की मधुरता व सुन्दरता को खूब निभाया है। दक्षिण भारत के इस महान् सन्त तथा कवि ने रामायण का भी मलयालम में अनुवाद किया है।

बल्लतोल मलयालम के आस्थावान कवि थे। आप केरल कला मण्डल के संस्थापक भी थे। आपने तामिल साहित्य को अपनी अनुपम रचनाओं से सम्पन्न व गौरवान्वित किया। आपकी सुप्रसिद्ध प्रकाशित पुस्तकें यह हैं मग्दलन मारियम, शिष्यनु मकनु, साहित्य मंजरी, (8 खण्ड) व ऋग्वेद का पद्यबद्ध अनुवाद।

श्री बल्लतोलजी ने महाभारत की एक घटना को मलयालम में लिखा। कथा इस प्रकार है कि धर्मराज युधिष्ठिर प्रतिदिन किसी ब्राह्मण को दान दिए बिना भोजन नहीं करते थे। एक बार वे महाबलि के प्रसिद्ध अतिथि बनकर केरल में रहे थे, उस समय केरल इतना समृद्ध और ऐश्वर्यपूर्ण था कि एक भी व्यक्ति उनसे दान लेने के लिए तैयार नहीं हुआ। इसी घटना के आधार पर उन्होंने केरल के विषय में लिखा 'मरुप्परम्पल्ला' अर्थात् मरुभूमि नहीं।

नटन्नु सर्वत्र तिरक्किकियिदुं जिटच्चतिल्लारेयु मेन्न मूल।
इंट पेट्टुन्नारुटे वासभूविल मुटडडियों प्रार्थनु नित्यदानं।।

घूम-घूमकर खोजने पर भी लेने वाला कोई न मिलने के कारण युधिष्ठिर का दान-नियम जिसके राज्य में न चल सका।

वरिष्ठानामाबलि दीर्घकाल भरिच्च मन्निन्टे मणिक्किटाड़कुल।
वरिक्कयो वामनवृत्तिए का तिरिक्कियो मूलयिलेच्चिल वारान।।

उस महाबलि के शासन में सुदीर्घ काल तक रही भूमि की सन्तान आज क्या वामन की वृत्ति—याचक-वृत्ति स्वीकार करे? जूठन बटोरने की ताक में जगह-जगह बैठी रहे?

कनिंमु कैकालुकल बल्कियिट्टुष्टेंनिटकु शिवावक वेल चेटवान।
धनि प्रभुक्कलक चविट्टुवलाय कनिंनु निल्कु मुतं वल्लितल्ला।।

प्रकृति देवी ने अपनी असीम कृपा से मुझे परिश्रम करने के लिए काम करने के लिए हाथ और पैर दिए हैं। और मेरी यह रीढ़ की हड्डी धनिकों के पैर रखकर चलने के लिए झुककर सोपान बनाने के लिए नहीं हैं।

अनथमे! पुलकोट्यिल्ल जान जिनकनत्त काट्टत्तुमुञ्ञु चायान्।
मनस्विमार् तन् करुण ननञ्ञु चीयिल्ल नृजीवितं।।

हे विपति! तुम्हारे तेज झोंक से हिल कर झुक जाने वाला तिनका मैं नहीं हूं। मैं अपने मानव-जीवन को मनस्वी लोगों के दनीय अश्रुप्रवाह गीला होकर जीर्ण न होने दूंगा।

अरक्षितस्नेहिवल पिश्च तेण्टुनरर्कुतीप्यिकोरुप्पिट्ङ्ङल्।
ओरर्थिये खिलु पाषपेटिरक्कु माराकषेल परप्पाल्।।

मेरी कामना काम ऐसा किया जाए, ऐसा फैले कि यह इमारतें जो अर स्नेह शीलता के लिए याचकों के लिए बनाई हैं, स्वयं एक याचक के लिए रचक बन जाएं।

करुत्तु नम्माकोरुमप्पट्टु, मरुन्नुभत्योंचित शुचित्वम्।
परुत्तितन् पटुप्पु पेट्टि वरुत्तुमों नां वक्कु तक्कम्?

हमारी शक्ति एक साथ मिल कर प्रयत्न करना हमारी दवा है मानवोचित शुचि। और ये कपास के फूल (बेड़िया) हमारे वस्त्रागार। हम गरीबी को आने के लिए प्रवेशद्वार ही कहां देंगे।

निरुद्ध चैल मपौरुषत्तिल्, चरुटु कूटोल्ल सर्पर वींटुम्।
गुरुपदत्ताक्षर विद्यनेटि, तिरुत्तणं वां धि दुर्विलेखम्।।

मेरे भाइयो, कर से हम निरुद्ध चैतन्य न बनें, अपने अपौरुष में न डूब जाएं। गुरुजनों द्वारा दी जाने वाली विद्या को सीख कर दुर्विधि के लिखे हुए लेख को सुधारें।

तेरुन्नने कर्मठा कुमारो नौरुङ्ङिय ल् पोन विल् कोयोडुक्कां।
भरुप्परपल्ल मषुपकाशालिरुट्टिल् निन्नद्धृतमाय राज्यम्।।

कर्म की दीक्षा लेकर तैयार हो जाएं तो हम सोने की फसल काट सकते हैं। क्योंकि परशु के प्रकाश द्वारा (समुद्र के) अन्धकार से उद्धृत किया हुआ यह भार्गव क्षेत्र कोई मरुभूमि नहीं है।

मलयालम साहित्य के महान् कवि बल्लतोल की अनुपम कविताएं व साहित्य भावी साहित्यकारों के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

जयप्रकाश नारायण

सम्वत् 1959 विजयादशमी का दिन

12 अक्टूबर, 1902, बिहार के गांव सितावदियारा गंगा व सरयू का संगम स्थल के एक मध्यवित्त कायस्थ परिवार में बाबू हरदयाल के घर में एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया जो विजयादशमी की पर्व परम्परा के अनुरूप ही भ्रष्टाचार के घोर तिमिर पर पुनः प्रकाश की जय स्थापित करने वाला जयप्रकाश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बचपन में बाल सुलभ उछल-कूद व चंचलता के अभाव में बहुत ही शान्त-वृत्ति एवं बहुत कम बोलने के कारण माता ने बच्चे को 'बउल' कहना शुरू किया। यही उनका घर का नाम पड़ गया। पिता खीजकर उसे बूढ़ा बालक कहते थे। यह किसे पता था कि इतना शांत बालक महाक्रान्तिकारी देवदूत बनेगा। यह गूंगा-सा बाल अपने अग्निमुखी भाषणों से सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला भड़का देगा और इस बूढ़े बालक को बच्चे-बूढ़े, जवान नर-नारी सभी लोकनायक मानकर अपने हृदय में पूजेंगे।

प्राइमरी शिक्षा के बाद जयप्रकाशजी को पटना में आगे की शिक्षा के लिए भेजा गया। उनकी गिनती कक्षा के 6 मेधावी लड़कों में से थी। वे सरस्वती भवन, छात्रावास में अनुग्रह बाबू और श्रीकृष्ण आदि के साथ रहते तथा देशभक्ति की भावना से राजनीतिक गतिविधियों में खूब रुचि लेते थे। जयप्रकाश गणित में 100 में से 98 अंक लाते थे, पर उनका हृदय साहित्य की ओर, मस्तिष्क विज्ञान की ओर दौड़ता था। मैट्रिक परीक्षा में जयप्रकाश स्कॉलरशिप के साथ पास हुए।

वे विद्यार्थी-जीवन में दैनिक गीतापाठ करते। गीता स्कूल में भी ले जाते और खाली समय में साथियों को गीता सुनाते और व्याख्या करते। तब से अब तक जयप्रकाशजी का गीता से प्रेम बना हुआ है। इसी गीता के निष्काम कर्मयोग ने उन्हें निःस्वार्थ राष्ट्र सेवा की प्रेरणा दी है। पदलोलुपता से दूर रहकर स्वयं अपने निज के लिए कुछ भी न चाहकर अपना सारा जीवन लोक संग्रह और बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के लिए लगा देने वाला वह अनोखा कर्मयोगी है।

जब जयप्रकाशजी युवा थे तब देश की राजनीति में दो धारायें समानान्तर बह रही थी। एक बंगाल की विपल्वी क्रान्तिकारी धारा जिसके अन्तर्गत खुदीराम बोस ने बिहार के मुजफ्फरनगर में बम फेंका था और श्री अरविन्द, कन्हाईलाल दत्त, वारीन्द्र घोष, विपिनचन्द्र पाल आदि के अग्निमुखी भाषणों तथा स्फुलिंग-वर्षी बमों से वातावरण ज्वलन्त था।

दूसरी धारा थी गांधीजी की सत्याग्रह व अहिंसा की धारा। गांधीजी ने चम्पारन में सत्याग्रह किया तब बिहार के युवक उनकी सुरक्षा, दृढ़ता और जनता से एकात्मता की ओर आकर्षित हुआ। जयप्रकाशजी पर दोनों का प्रभाव हुआ। वे खादी के कपड़े पहनते और देश की आजादी के लिए अपने जीवन की योजनाएं बनाने लगे। उन्होंने गांधीजी की गीता भक्ति भी सुनी और यह भी सुना की फांसी के तख्ते पर झूलते समय खुदीराम बोस गीता का श्लोक दोहराता रहा। वे दोनों धाराओं के बीच के मार्ग में झूलते रहे—

क्रान्ति का मार्ग या शान्ति का मार्ग।

गांधी की गीता या खुदीराम की गीता।

उन्हीं दिनों पुलिस ने क्रान्तिकारियों की खोज हेतु प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार के घर को घेर लिया। जयप्रकाश आकर्षित हुए एक बंगाली नवयुवक से और जयप्रकाश पर क्रान्तिकारी हाथों का जादू चल गया। कभी गंगा के किनारे, कभी घाट पर, कभी खण्डहर में, कभी मैदान में सवेरे के अंधेरे में उन्हें बम, पिस्तौलों एवं गोला बारूद की रोमांचकारी योजनाओं से आकर्षित कर वह जयप्रकाश से एक गीत गवाता—

गोरन को मार-मार कर

बोरन में भरीहो।

जयप्रकाश के मन में बड़ी हलचल थी, किन्तु कोलकाता से उस युवक की खोज में सी.आई.डी. के कुछ अफसरों के पटना पहुंच जाने के कारण वह क्रान्तिकारी नवयुवक लुप्त हो गया। जयप्रकाश उनकी खोज में घाट-घाट भटकते रहे। किन्तु वह नहीं मिला। इसलिए कुछ देर के लिए क्रान्ति का जादू टल गया और जयप्रकाशजी गांधी के मार्ग की ओर आकर्षित हुए।

जयप्रकाशजी की साहित्य में बड़ी रुचि थी। वे मैथिलीशरण गुप्त, भारतेन्दु, माखनलाल चतुर्वेदी से बहुत प्रभावित हुए। भारतेन्दु का नाटक 'भारत दुर्दशा' पढ़कर रो उठे। गुप्तजी की भारत-भारती पढ़कर करुणा में डूब गए और रामचरितमानस पढ़कर मन शान्त हुआ।

जयप्रकाशजी का विवाह प्रसिद्ध जनसेवी बाबू ब्रजकिशोर की सुपुत्री प्रभावती

देवी से हुआ। यह सम्बन्ध कराते हुए राजेन्द्र प्रसाद उपस्थित थे। राष्ट्रसेवा कार्य में प्रभावती का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा।

सन् 1919 के जलियांवाला काण्ड के भीषण नरसंहार पर रवीन्द्रनाथ टैगोर का अपनी सर की उपाधि का त्याग आदि की घटनाओं से जयप्रकाश का मन मचल उठा। जयप्रकाशजी अपने 5 साथियों के साथ कालेज छोड़कर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

स्कूल-कालेजों के बहिष्कार के कारण विद्यालय त्यागने वाले विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किए गए। पटना में बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुई। जिसके प्रधान आचार्य हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और वहीं जयप्रकाश नारायण पढ़ने लगे।

फिर जयप्रकाश के मन में अमरीका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जागी। 20 वर्ष के जयप्रकाश अमरीका गए और उनकी पत्नी साबरमती आश्रम में गांधीजी के पास चली गई। अमरीका में जाकर जयप्रकाशजी ने प्रारम्भ में अंगूर के खेत में मजदूरी की तथा कुछ पैसे जमाकर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से आई.ए. प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद आगे का खर्च चलाने के लिए पुनः अंगूर के खेत में काम करने लगे। शिकागो के एक होटल में एक मेहत्तर का भी काम किया। जब अर्थ संकट से परेशान हुए तो हिमालय की बूटियां नाम से सेन्ट, क्रीम, हेयर लोशन बनाकर हब्सी महल्लों में बेचने लगे। इसी व्यवसाय में एक स्त्री ने उनसे बहुत-सा सामान लेकर उन्हें ठग लिया। पैसा नहीं दिया। जयप्रकाश आठ माह बीमार रहे। उन्होंने ओहिया विश्वविद्यालय से बी.ए. पास किया। पुनः वहीं से एम.ए. किया। पुनः पीएच.डी कर रहे थे। तभी घर से माताजी की बीमारी का समाचार आया। इसलिए जयप्रकाश अमरीका में सात साल बिता कर घर वापस लौटे। अमरीका में ही जयप्रकाशजी कम्यूनिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आये और प्रभावित हुए और बहुत समय तक वे खुलेआम अपने आपको कम्यूनिस्ट घोषित करते रहे।

लाहौर कांग्रेस में गांधी ने जे.पी. की भेंट जवाहरलाल से करवाई। दोनों की मित्रता बढ़ती गई। जे.पी. कांग्रेस के स्थायी मंत्री बन गए।

सन् 1930 के नमक सत्याग्रह में जे.पी. भाग लेने के लिए तैयार थे। तभी जे.पी. की माताजी का स्वर्गवास हो गया।

जब नेहरूजी बंदी बना लिए गए तब जे.पी. ने पारसी का भेष बनाकर बम्बई में श्री सरोजिनी नायडू को कागजात हवाले कर दिए। कुछ दिनों बाद जे.पी. ने बनारस में गुप्त बैठक रखी जिसमें मालवीयजी और राजेन्द्र प्रसाद भी आए।

जे.पी. गुप्त रूप से मद्रास चले गए। वहां पर वे स्टेशन पर पकड़े गए और नासिक जेल में बन्द कर दिए गए। नासिक जेल में जे.पी. ने संकल्प किया—किसान और मजदूरों का राज्य लाने के लिए समाजवाद लाना होगा।

भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करती थी। सत्याग्रहियों पर हमला करती थी। तिरंगे झण्डों को छीन लेती और अंग्रेजों का साथ देती थी। नेहरूजी रूस घूम आए और वे भी समाजवाद से प्रभावित थे।

सन् 1932 में बिहार सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। इसका सदस्य बनने के पहले कांग्रेस का सदस्य होना अनिवार्य था। सन् 1934 में बिहार में भयंकर भूकंप आया। जिसमें जे.पी. ने सहायता केन्द्र में मंत्री के रूप में कार्य किया।

समाजवादी आंदोलन—जे.पी. बिहार सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की रचना में लग गए। 1938 का लाहौर अधिवेशन जे.पी. की अध्यक्षता में हुआ। उनके साथी थे लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन आदि। 1937 में जब कांग्रेस के मंत्री बनने लगे तो जे.पी. ने विरोध किया और गिरफ्तार हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जब गांधीजी ब्रिटेन को नैतिक समर्थन देने के पक्ष में थे तब जे.पी. ने उसका विरोध किया। वे अवसर का लाभ उठा कर देश को आजाद कराना चाहते थे। कांग्रेस कार्यसमिति ने ब्रिटेन से कहा कि वह हिन्दुस्तान के संबंध में अपना उद्देश्य घोषित करे। ब्रिटेन ने कांग्रेस कार्यसमिति के अनुरोध को ठुकरा दिया। फलस्वरूप कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। उधर, कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष बोस चुने गए जिसे गांधीजी ने व्यक्तिगत हार कहा। जे.पी. ने दोनों पक्षों में समझौते के विफल प्रयास किए। जे.पी. को 1940 में जमशेदपुर के एक भाषण के आधार पर गिरफ्तार कर लिया गया। वे नौ मास के बाद हजारीबाग की कारा से छूट गए। किन्तु, इसके बाद शीघ्र ही मुम्बई में पुनः गिरफ्तार कर लिए गए। जेल में प्रभावती मिलने आई तो जे.पी. ने एक गुप्त पुलिंदा प्रभावती के माध्यम से बाहर भेजना चाहा पर वह पकड़ा गया। 18 अक्टूबर, 1941 को देश भर के अखबारों में छपा—जयप्रकाश हिन्दुस्तान के षड्यंत्री नम्बर एक हैं। ये लोग डकैतियां डालेंगे और विदेशों से सम्पर्क करके सशस्त्र विद्रोह करेंगे आदि-आदि। इस समाचार से बड़ा हंगामा मचा।

अगस्त, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी तथा सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए। जनता घिसती-पिटती जा रही थी। जे.पी. ने दृढ़ निश्चय किया कि जान पर खेलकर भी बाहर जाना होगा। वे छह लोगों के साथ जेल से बाहर हो गए। उन्हें पुनः पकड़ने के लिए पहली

बार दस हजार रुपये, दूसरी बार 21 हजार रुपये का इनाम घोषित किया गया। जेल से बाहर आकर जे.पी. ने बनारस में गुप्त रूप से कुछ खुली चिट्ठी लिखी। (1) आजादी के सैनिकों के नाम, (2) अमरीका के फौजी अफसरों के नाम, (3) सैनिकों के नाम, (4) विद्यार्थियों के नाम। जे.पी. के प्रयत्न से क्रान्ति की ज्वाला फिर से भड़कने लगी। अतः जे.पी. पुनः पकड़ लिए गए और उन्हें लौहार किले में रखा गया। उन्हें बर्फ की चट्टान पर बैठाया जाता था। सोने नहीं दिया जाता था और उनकी ओर से वकालत करने वाले वकील को भी पकड़ लिया गया।

सन् 1945 में गांधी की रिहाई के पश्चात् कैबिनेट मिशन भारत आया तो गांधीजी ने जे.पी. और लोहिया को छोड़ने की शर्त रखी। तब जे.पी. और लोहिया को मुक्त किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर ने जे.पी. के यश में लिखा है—

जयप्रकाश है नाम समय की
करवट का, अंगड़ाई का
भूचाल बवण्डर के ख्वाबों से
भरी हुई तरुनाई का
है जयप्रकाश वह नाम जिसे
इतिहास समादर देता है
बढ़ कर जिसके पदचिह्नों को
उर पर अंकित कर लेता है।

जे.पी. ने जब देखा कि कांग्रेस के नेतागण सरकार में शामिल होने को बेचैन हो उठे हैं तो उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी से इस्तीफा दे दिया और सन् 1947 के प्रारम्भ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का ऐतिहासिक अधिवेशन डॉ. लोहिया की अध्यक्षता में हुआ। इसमें कांग्रेस का नाम काट कर शुद्ध सोशलिस्ट पार्टी बनाई गई। तभी गांधीजी ने जे.पी. को मनाकर कहा कि वे कांग्रेस अध्यक्ष बन जाएं। पर नेहरूजी ने इसे पसंद नहीं किया।

1947 में देश के विभाजन से क्षुब्ध होकर जे.पी. ने गांधीजी से कहा कि मैं कांग्रेस से अलग होना चाहता हूं। गांधीजी ने कहा बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। आजादी के बाद बिहार के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में नेहरू ने हवाई सर्वेक्षण किया और रोष में भर कर कहा कि मैं बम गिराऊंगा और इन बिहारियों को शांत करूंगा। पटना में एक सभा में विद्यार्थियों ने नेहरूजी को घेरकर उनके कपड़े फाड़ दिए। तब जयप्रकाश ने नेहरू की रक्षा की और छात्रों से माफी मंगवाई।

जनवरी, 1948 के प्रथम सप्ताह में जब गांधीजी दिल्ली गए तो जयप्रकाशजी साथ थे। कोई कांग्रेसी गांधीजी की अगवानी करने नहीं आया। जयप्रकाशजी कांग्रेस तथा सरकार, दोनों द्वारा गांधीजी के प्रति इस अवज्ञा से बहुत दुःखी हुए। 30 जनवरी, 48 को गांधीजी की हत्या के बाद कांग्रेसी नेताओं ने विलाप का खूब नाटक किया। जयप्रकाशजी मुम्बई से तुरन्त दिल्ली पहुँचे। जयप्रकाश गांधीजी के बिना आश्रयविहीन हो गए। उन्होंने दुःखी होकर कहा, 'एक गलती गांधी ने की, पाकिस्तान बनने का विरोध न करके, दूसरी गलती मैंने की गांधी की बात मानकर।' जयप्रकाश आजादी को अधूरी मानते थे तथा उन्होंने संविधान सभा की सदस्यता अस्वीकार कर दी थी। 1948 के नासिक सम्मेलन में सोशलिस्टों ने कांग्रेस से पूरी तरह अलग हो जाने का निर्णय किया। जयप्रकाशजी को अपने खून-पसीने से निर्माण की हुई संस्था (कांग्रेस) को छोड़ना पड़ा। 1948-51 तक जे.पी. प्रभावती के साथ सोशलिस्ट पार्टी के संगठन के लिए देशभर का दौरा करते रहे। 1950 के सोशलिस्ट पार्टी के अधिवेशन में जे.पी. और लोहिया के मतभेद खुलकर सामने आए। लोहिया ने सम्मेलन में भाग नहीं लिया। सन् 1952 के चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी की करारी हार हुई। कुछ नेता सारी जिम्मेदारी जे.पी. पर डालते थे। कुछ ने कहा, जे.पी. जवाहर का दोस्त है। इन्होंने गुप्त रूप से कांग्रेस की मदद की। जे.पी. का दिल टूट गया। उन्होंने कहा, दोस्तो! मैं बिहार छोड़ रहा हूं। उनकी आँखों में आंसू आ गए। पुनः कृपलानी से मिलकर मजदूर पार्टी बनाते हैं।

राजनीति से निराश होने पर उन्हें राजनीति से वैराग्य हो गया। वे विनोबा के सर्वोदय संदेश की शरण में आए। 1954 में बोधगया सर्वोदय सम्मेलन में जे.पी. ने अपना जीवनदान घोषित किया। जे.पी. ने अहिंसक क्रान्ति के लिए जीवन समर्पित किया। जे.पी. ने नवादा के पास के एक गांव सेखोदेवरा में सर्वोदय आश्रम की स्थापना की। धीरे-धीरे वही उनका मुख्यालय बन गया।

1962 में देश पर चीनी आक्रमण के समय जे.पी. ने तिब्बत की स्वायत्तता और देश की रक्षा के लिए आह्वान किया। जे.पी. का विश्वास था कि इसका उत्तर सर्वोदय ही हो सकता है। पुनः जे.पी. ने अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय शांति मिशनों की अध्यक्षता की। 1971 में चम्बल घाटी के डाकुओं का हृदय परिवर्तन कर उन्हें आत्मसमर्पण के लिए राजी किया।

1971 में जे.पी. ने भ्रष्टाचार निवारण तथा लोकतंत्र संरक्षण के लिए नया अभियान प्रारम्भ किया।

गुजरात के मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल ने तेल व्यापारियों, मिल मालिकों से लाखों रुपया रिश्वत लेकर उन्हें मनमानी तौर पर दाम बढ़ाने की छूट दे दी। इसके

विरोध में छात्र एवं युवा वर्ग ने आन्दोलन छेड़ा। जे.पी. ने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। श्री मोरारजी देसाई ने अनशन किया। गुजरात सरकार का पतन हुआ।

बिहार में वैसा ही भ्रष्टाचार का दौर दौरा होने के कारण जनता में असंतोष था। युवा वर्ग के लोग जे.पी. के पास मार्गदर्शन के लिए पहुँचे। जे.पी. ने स्वीकार कर लिया और बिहार आंदोलन का आह्वान किया। जे.पी. ने बिहार में मंत्रिमण्डल के भ्रष्ट होने के कारण उनसे त्यागपत्र की मांग की। साथ ही एम.एल.ए. से भी। पर यह स्वीकार नहीं हुआ सरकार को। तब इसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए। तब अंध बर्बर सरकार ने छात्रों की उचित मांगों को स्वीकार करने के बजाय गया में, पटना में निर्मम लाठीप्रहार एवं गोलियां चलाई। कितने ही आहत हुए और कितने ही मृत्यु को प्राप्त हुए। फिर जे.पी. ने बिहार बंद का आह्वान किया। पटना में छात्रों ने सरकार के विरुद्ध विशाल प्रदर्शन किया। तब निर्मम लाठीप्रहार हुए। जे.पी. की तो नानाजी देशमुख ने अपनी बाजू तुड़ा कर प्राण रक्षा की। फिर जे.पी. ने भ्रष्टता उन्मूलन के लिए पूरे बिहार का दौरा किया। तब बहुत से लोगों के सम्पर्क में आए। सभी ने यह सुझाव दिया कि भ्रष्टाचार तो पूरा भारत व्यापी है। अत: इसे देशव्यापी रूप दे देना चाहिए। तब जे.पी. ने देशव्यापी सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए आह्वान किया और आन्दोलन सम्पूर्ण देशव्यापी हो गया। गुजरात में कांग्रेस की पराजय, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा सर्वोच्च सत्ता इन्दिराजी की भ्रष्टता का सिद्ध होना और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश नहीं मिलने पर इन्दिराजी द्वारा गद्दी की सुरक्षा के लिए आपातस्थिति की घोषणा हुई।

सम्पूर्ण क्रान्ति—समाज के प्रत्येक वर्ग में क्रान्ति की आवश्यकता और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति की आवश्यकता है।

(क) शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन—वर्तमान शिक्षा पद्धति क्लर्क ढालने की मशीन है। कोई भी विदेशी शक्ति किसी देश में स्थापित होती है तो उसका प्रथम कार्य स्व पर प्रहार करना होता है। स्व विहीन करना होता है। अत: अंग्रेजों ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन लिया। उन्हें अपना प्रशासन चलाने के लिए क्लर्कों की आवश्यकता थी। अत: स्व विहीन परावलम्बी बनाने वाली शिक्षा पद्धति को अपनाया। उस समय की शिक्षा पद्धति और वर्तमान शिक्षा पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। आज भी शिक्षा पद्धति क्लर्क ढालने की मशीन है। अत: इसमें आमूल परिवर्तन आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा पद्धति का व्यावहारिकता से सम्बन्ध नहीं है। विद्यार्थी-जीवन तक तो छात्र पुस्तक चाटते रहते हैं। छात्र जीवन की समाप्ति होते ही उन पुस्तकों को बांध कर ताक पर रख देता है और मरने तक जीवन से जूझता रहता है। शिक्षा के पश्चात् इसका व्यावहारिक उपयोग ही नहीं रह जाता।

(ख) प्रशासन में क्रान्ति

(ग) चुनाव पद्धति में परिवर्तन

राजनीतिक क्रान्ति में लोकजीवन पद्धति में आस्था।

विरोधी दल का साझा मंच बनना।

प्रेस की स्वतंत्रता।

सामाजिक क्रान्ति।

धार्मिक क्रान्ति।

आर्थिक क्रान्ति।

राजनीति कीचड़ से भरी है। कीचड़ को साफ करना है तो कीचड़ के अन्दर जाना ही पड़ेगा, मगर ऐसा करते समय हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि वह कीचड़ के अन्दर उस कीचड़ को साफ करने आया है।

—दीनदयाल उपाध्याय

न वै राज्यं व राजासीन्न न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

श्रीमहाभारत शान्तिपर्व, 59/14

पहले न कोई राज्य था, न राजा था, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला था। समस्त प्रजा धर्म द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

छा. उ., 5/11/5

राजा अश्वपति कहते हैं—मेरे जनपद में न कोई चोर है, न कोई कृपण है, न मद्य पीने वाला ही है, न कोई अग्निहोत्ररहित है, न कोई अनपढ़ है, न कोई व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी का तो कहना ही क्या?